भगवान महावीर स्वामी के २५ सौ वे परिनिर्वाण महोत्सव के पावन अवसर पर

प्रबोधसार तत्त्व दर्शन

लेखक

आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण जी महाराज संघस्थ
मुनि श्री १०८ ज्ञानभूषण जी

प्रकाशक

ब्र० अंगूरी बाई लश्कर

प्रथम संस्करण : १९७५

मूल्य—५.००

मुद्रक

एस० नारायण एण्ड संस (प्रिंटिग प्रेस)

७११७/१८ पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषण जी महाराज

जन्म संवत् १९६०. मुनिदीक्षा संवत १९८५

ग्रन्थ कर्ता के दो शब्द

श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषण जी महाराज के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ" प्रबोधसार तत्त्व दर्शन" लिखा गया है। इसमें सम्यक्त्व के विषय का संकलन किया गया है। यह ग्रन्थ मुझ अल्पज्ञ ने अपनी भक्ति और भावना से श्लोकों की रचना कर उनका हिंदी अनुवाद किया है। इस ग्रन्थ में संस्कृत श्लोकों में छन्द और व्याकरण, अलंकार, समास आदि लिंग विभक्ति का विवेक न होने के कारण बहुत सी त्रुटियां विद्वानों की दृष्टी में अवश्य ही प्रतीत होंगी। इसका भी एक ही मुख्य कारण है कि हम व्याकरण और काव्य व अलंकार छन्दों को नहीं जानते हैं। सिर्फ हमने तो अपनी भावना की पूर्ति करने की अपेक्षा कर इस ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में जिस प्रकार शब्द नय लिंग का विचार नहीं कर उसके अर्थ को ग्रहण करता है इसी प्रकार इस ग्रन्थ में अविवेक है इसमें स्त्री लिंग के स्थान पर पुलिंग और नपुंसक लिंग तथा पुलिंग के स्थान पर नपुंसक लिंग भी अनेकों स्थानों पर आये हुए दिखाई देंगे। यह भूल इसलिए हुई है कि हमको व्याकरण के नियमों का व सन्धियों का पूरा ज्ञान नहीं है। स्वरान्त और हलंतों का भी पूर्णतया ज्ञान नहीं होने के कारण जगह-जगह पर त्रुटियां परिचय में आवेंगी उन त्रुटियों को विशेषज्ञ सुधार लेवें और स्वय पढ़ें तथा अन्य जनों को पढ़ावें। पढ़कर अपने हृदय में यदि उतार लेवेंगे तब तो इस ग्रन्थ का पढ़ना सार्थक होगा। इसमें अक्षर स्वर व्यंजन मात्राओं की त्रुटियां भी विशेष रूप से देखने में आवेंगी उनका शोधन कर पढ़ें। इस ग्रन्थ के छपाई में सबसे बड़ा हाथ दि० जैन समाज जौलाग्राम जि० मुजफ्फर नगर वासियों का रहा है कि जिन्होंने एक शब्द के कहते ही ३०७२ रुपया की रकम एकत्र करके ड्राफ्टबन वाकर जयपुर हरीचन्द टिकसाली के पास भेज दी। तथा अन्य व्यक्तियों ने भी अपनी इच्छा से ही जो रकमें दी हैं वे आगे के पेज पर दी जा रही हैं। इन दातारों को ही इस ग्रन्थ की छपाई का श्रेय है। वैद्य प्रेमचंद्र जी ने इस ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन करने में बहुत प्रयत्न किया है। समय-समय पर प्रेस में जाना रात में प्रूफ कापियों का शोधन करना इतना प्रयत्न करने के पीछे हमने भी प्रूफ का कुछ मोटे तौर पर संशोधन किया है फिर भी गलतियां रह सकती हैं उन गलतियों को सज्जन विद्वान शोधकर पढ़ें। यह ग्रन्थ सरल आधुनिक हिंदी व संस्कृत काव्यों से सहित है। इस ग्रन्थ में सप्त व्यसनों की मनोरंजक और धार्मिक कथायें भी दी गई हैं। समय-समय पर दृष्टान्त देकर शंकाओं का भी समाधान किया गया है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत तीन अध्याय हैं जिसमें प्रथम अध्याय में सम्यक्त्व की उत्पत्ति विनाश आदि विषयों का विचार

किया गया है दूसरे अध्याय में प्रमाण और नयों का विचार किया गया है और मतिज्ञान के भेद श्रुतज्ञान के भेदों का कथन अवधिज्ञान मन: पर्यय केवल ज्ञानों का कथन किया गया है। तीसरे अध्याय में चारित्र का कथन किया गया है। इस ग्रन्थ का सार यही है कि पढ़कर भव्य जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करें। इस ग्रन्थ में पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले देहली ने १२०१ रुपया देकर महान पुण्य का संचय किया है तथा जिल्द बंधाई का खर्च श्री सौभाग्य-वती रेखा जैन धर्म पत्नी नरेश कुमार जैन गांधी नगर वालों ने दिया उनको हमारा धर्म वृद्धि आशीर्वाद है। तथा सब दाताओं को धर्म वद्धि आशीर्वाद।

इति
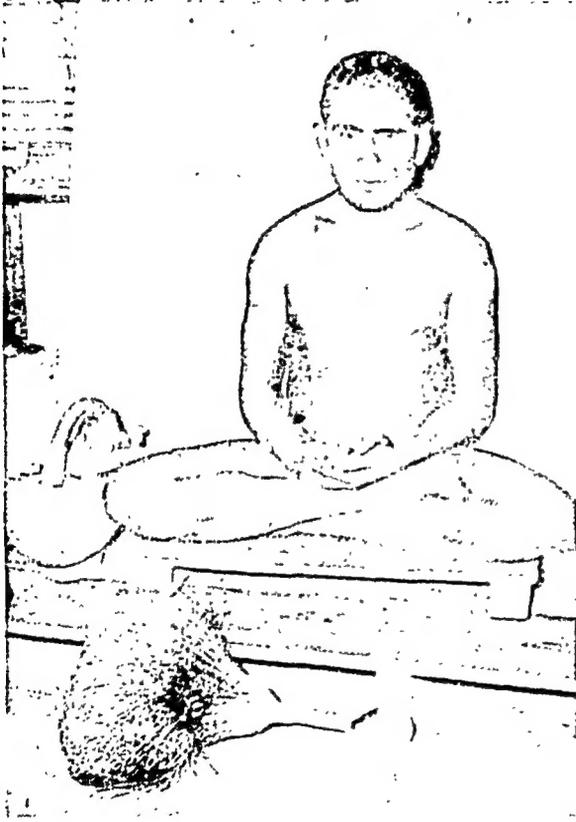
श्री १०८ मुनि ज्ञान भूषण जी

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

मुनि श्री १०८ ज्ञान भूषणजी महाराज का संक्षिप्त परिचय

श्री १०८ परम पूज्य विद्यालंकर, बालब्रह्मचारी, आचार्य-रत्न देशभूषणजी महाराज के परम शिष्य श्री १०८ ज्ञानभूषण जी का जन्म मध्यप्रदेश (मध्य भारत) ग्वालियर स्टेट में जिला मुरैना, परगना अम्बाह, ग्राम ऐसहा में हुआ था। यह ग्राम चम्बल नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यहां पर श्रावक दि० जैन जायसवालों के सात घर थे जो जैनधर्म, परायण, सदाचारी, न्यायनीति व संयम—पूर्वक आहार विहार करते थे। वहीं पर श्री सेठ प्रेमराजजी तथा विजयसिंहजी दो भाई रहते थे। उन दोनों भाईयों का विवाह एक घर की ही दो वहिनों के साथ हुआ। प्रेमराज के दो पुत्र, दो पुत्री हुई और विजयसिंह के एक पुत्र हुआ। प्रेमराज के दो पुत्रों में से बड़े का नाम श्रीलाल तथा छोटे का नाम पंचाराम था। उनकी दो बहिनें थी बड़ी बहिन का नाम चिरोंजा बाई और छोटी का नाम चंदनियाँ बाई था। पंचाराम तो बाल ब्रह्मचारी हो गये। उन्होंने बाल्यावस्था में ही जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य ले लिया तथा वे घर बार छोड़कर चले गये।

बड़े भाई श्रीलाल की धर्मपत्नी का नाम सरस्वती देवी था। सरस्वती देवी के गर्भ से तीन पुत्र तथा एक पुत्री ने जन्म लिया। बड़े पुत्र का नाम लज्जाराम तथा बहिन का नाम रामदेवी, उनसे छोटे भाई का नाम पोखेराम, उनसे छोटे भाई का नाम कपूरचन्द।

पोखेराम का जन्म आषाढ़ सुदी ७ बुधवार की रात्रि में वि० सं० १९८७ में हुआ था। जब डेढ वर्ष की उम्र थी तब प्रेमराज अपने परिवार सहित ऐसहा ग्राम को छोड़ कर नयापुरा में जाकर रहने लगे। वहां से जाने का कारण यह था कि एक दिन रात्रि में कुछ चोरों ने चोरी की। जिसमें बहुत से पीतल कांसें के बर्तन व सोना चांदी को चोर ले गये, जिसके कारण ऐसाहा ग्राम छोड़कर वे चल दिये और नयापुरा ग्राम में आकर रहने लगे।

ये व्यापार के लिए कलकत्ता आया जाया करते थे तथा घर में भी घीका व्यापार व गिरवी रखने धरने या अन्य व्यापार भी होता था। पोखेराम का स्कूल में शिक्षण चार साल तक हुआ। उसके पश्चात उनके पिता की कुछ लोभ प्रकृति होने से उन्होंने आगे पढ़ने से रोक दिया। कुछ दिन बाद श्रीलालजी कलकत्ता चले गये। उनके ज्येष्ठ पुत्र लज्जाराम का पाणिग्रहण रूअर ग्रामवासी श्री ज्योतिप्रसाद की पुत्रीके साथ हो गया। कर्म योग से कुछ दिन बाद रोग हो गया जिससे पुत्रवधू का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात कलकत्ता

में ही दूसरी जगह से पुनः ज्येष्ठ पुत्र का पाणिग्रहण फूलपुर में हो गया। उसी के बाद पोखेराम को कलकत्ता जानेका प्रथम अवसर मिला, पर कलकत्ता कुछ दिन रहकर पुन नया-पुरा वापस आगये। पुनः कुछ दिन के पीछे कलकत्ता जाने का अवसर उपलब्ध हुआ और कलकत्ता में वह बाजार में दुकान पर बैठने लगे कि एक दिन रात्रि में सो रहे थे कि रात्रि के चार बजे एक अजीब स्वप्न देखा। वह स्वप्न बता रहा था कि पोखेराम तुम्हारा यह मार्ग सम्मेद शिखर का है। इस मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग से नहीं जाना।

यह पहला ही अवसर था कि एक दिन यह स्वप्न हुआ, उसका ध्यान कर बिना विचारे, बिना कहे दुकान से उतर कर सम्मेद शिखर की यात्रा को चल दिये। माघ का महिना था शुक्ल पक्ष पंचमी का दिन था। ठंड भी मीठी मीठी पड़ रही थी। हवड़ा से गाड़ी में बैठकर ईसरी स्टेशन पर उतर कर पैदल के मार्ग से चल दिये। उनने जो स्वप्न देखा था स्वप्न के अन्तर्गत जो जो चिन्ह देखे थे वे अब प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते जाते थे। जैसे जैसे ईसरी स्टेशन से मधुवन की ओर बढ़ते जा रहे थे कि वैसे वैसे ही स्वप्न की बातें स्मरण होती आ रहीं थीं। स्वप्न में आम के वृक्ष एक खेत में देखे थे वे भी उपलब्ध हो गए। पीछे एक टीले पर कुछ गायें देखीं वे भी टीले पर चरती हुई मिल गईं और आगे चलते गाड़ियों में लकड़ी लदी हुई स्वप्न में देखी थी वे भी मिल गईं। आगे चले तो स्वप्न में एक खोटा मार्ग देखा था वह भी सामने आ ही गया और पोखेराम उस मार्ग में मधुवन जाने को उद्यत हुए। जंगल में प्रवेश किया परन्तु मार्ग आगे न मिलने के कारण वापस आना पड़। और मैन रोड से चलने लगे। आगे जाते हैं तो चौराहा देखा और उसके आगे एक नाला दिखाई दिया। जंगल भयानक था, चारों तरफ वृक्ष ही वृक्ष दिखाई दे रहे थे। नाले में पानी कलकल करता हुआ बह रहा था। उसको पार कर आगे बढ़े तो पुन एक नाला मिला ही था कि मधुवन के मन्दिर और धर्मशालायें दिखाई देने लगी।

चलते-चलते शाम हो गई। शाम को तेरह पंथी कोठी के बाहरी गेट पर बैठे थे कि धर्मशाला का जमादार आकर पूछने लगा कि तुम कहां ठहरे हो? तब पोखेराम ने कहा कि हम कलकत्ता से आये हुए है पर हमारे पास कपड़े बिस्तर आदि कुछ भी नहीं हैं। इस कारण हम धर्मशाला से बाहर आकर बैठे हैं। क्योंकि कोई बिना बिस्तर के मुसाफिर को ठहरने देगा नहीं। यह सुनकर धर्मशाला का कर्मचारी शीघ्र ही धर्मशाला कोठी के मैनेजर के पास पहुंचा और समाचार दिया। समाचार सुनते ही मैनेजर ने पोखेराम को गद्दी में बुलवाया और सब हकीकत पूछ कर गद्दी में ही रात्रि में सोने की पूर्ण व्यवस्था करदी। रात्रि के तीन बजे बहुत से यात्री वंदना को जा रहे थे उनके साथ ही पोखेराम भी शुद्ध वस्त्र पहन कर सम्मेद शिखर सिद्ध क्षेत्र की वन्दना को गये। पुन दूसरे दिन वंदना करते हुए जब पार्श्वनाथ भगवान की टोंक की वन्दना की तो वहीं पर यह भाव हुआ कि आगे हम अपना विवाह नहीं करेंगे। आज से हमारे सब प्रकार संपूर्ण प्रकार की स्त्रियों का त्याग है। इस समय पोखेराम की उम्र अठारह वर्ष की थी।

कुछ दिन बीत जाने पर पिता ने आग्रह किया कि बेटा! अब तुम्हारा विवाह

करने का हमारा विचार अमुक् की पुत्री के साथ है। यह सुनकर पोखेराम ने उत्तर दिया कि पिताजी आप विचार करें कि जो लड़की अपने को चाचा कहती है उसके साथ विवाह कैसा ? तव अन्य जगह से सम्बन्ध करने का विचार किया लेकिन पोखेराम ने विवाह करने को साफ इनकार कर दिया। कुछ दिन वीते ही थे कि पोखेराम के पिता का स्वर्ग-वास हो गया। उसके पीछे माताजी ने वहुत शोक किया। तव पोखेराम ने माताजी को अनेक प्रकार से समझाकर संतोप व धैर्य वंधाया। उसके कुछ दिन वीत जाने पर दुकान के माल की चोरी हो गई तथा अन्य कारण आ उपस्थित हुए जिस कारण दोनों दूकानें टूट गई। पोखेराम को लाचार नौकरी करनी पड़ी। साथ में छोटा भाई भी रहता था। घरके व माता के खर्च की सव व्यवस्था पोखेराम को करनी पड़ी। नोकरी से खर्च तो निभ नहीं पाता था। उधर दुकान का मालिक कहने लगा था कि कल से सुवह सात वजे दुकान पर आना होगा। यह सुनकर पोखेराम ने कहा कि हम भगवान की पूजा किये बिना नहीं आ सकते, हम दुकान पर आठ वजे आ सकते है। यदि आपकी इच्छा हो तो रक्खो नहीं तो मत रक्खो। इतना कहकर दूसरे दिन दुकान पर नहीं गए। और अपना स्वतन्त्र रोजगार करने का प्रयत्न करने लगे।

स्वतन्त्र व्यापार से उनको पहले दिन तीन रुपया का लाभ हुआ। दूसरे दिन पांच रुपया का लाभ हुआ। इस प्रकार करते हुए पूर्व में किए हुए कर्ज को चुका दिया तथा कुछ रकम एकत्र करली। वैशाख मास में छोटे भाई कपूरचन्द का विवाह धोलपुर निवासी श्री लीलाधर की पुत्री के साथ होगया। विवाह कर कलकत्ता लौटने पर श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण मुनि महाराज संघके दर्शनों का लाभ मिला। आचार्य श्री का चातु-र्मास कलकत्ता में हुआ तथा पोखेराम की वहन रामदेवी ने चौका लगाया। उसमें सहयोगी पोखेराम व कपूरचन्द भी हुए। इस प्रकार चातुर्मास में चौका वेलगछिया में लगता रहा।

जव श्री आचार्य महाराज का चातुर्मास कुशलता पूर्वक हो गया और आचार्य श्री ने विहार सम्मेद शिखर की तरफ किया तव पोखेराम के भी ये भाव हुए कि आचार्य श्री को सम्मेद शिखर तक छोड़ आवें। आचार्य श्री को छोड़ने के लिए साथ चल दिये। पन्द्रह दिन में सम्मेद शिखर जव संघ सकुशल पहुँच गया। संघस्थ श्री १०५ शान्तिमति माताजी ने पोखेराम के प्रति प्रेरण की कि तुम दूसरी प्रतिमा के वारहव्रत धारण करो। तब पोखेराम ने कहा माताजी! यह व्रत निभ नहीं सकेगा। तव शान्तिमति माताजी कहने लगी बेटा! तुम्हारा निभ जायगा। तुम्हारी वहिन भी वारह व्रत की धारी है। तुम्हारा और तुम्हारी वहिन का व्रत अच्छी तरह से निभ जायगा। इतना उन्होंने कहा तव पोष सुदी ११ के दिन वारह व्रत धारण कर लिए। उसके वाद श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषण महाराज ने कहा कि पोखेराम तुम हमारे साथ चलो वाहुवली की यात्रा करने को। तब पोखेराम ने चलने का वचन दे दिया।

माघ में संघ ने श्रवण वेलगोला की तरफ विहार कर दिया। संघ के संचालक वुनिन्दा निवासी सेठ नथमल पारसमल कासलीवाल और उनकी माता मंगेजबाई और

धर्मपत्नी रत्नवाई, पुत्री गुणमालादि सब संघ के साथ चल दिए। साथ में श्री भागचन्द कालू निवासी, हाल कलकत्ता वाले भी चल दिये। तीन माह में संघ विहार करता हुआ श्रवण वेलगोला पहुँच गया।

श्रवण गोला में पोखेराम ने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिए। अब संघ में ब्र० पोखेराम रहने लगे और आचार्य श्री का संघ सहित चातुर्मास कोल्हापुर में हुआ। कोल्हापुर चातुर्मास के पश्चात नादनी से कलकत्ता जाकर पोखेराम टूंडला में श्री १०८ विमलसागर महाराज के पास तीन माह रहे और कोल्हापुर पंचकल्याणक में पुनः आचार्य देश भूपणजी के संघ में चले गए। संघ के साथ विहार कर दिल्ली आये। जयपुर में पार्श्वनाथ चूलगिरी की स्थापना के समय संघ में ही थे। पश्चात संघ के साथ मथुरा पंचकल्याक और अयोध्या में ३३ फुट ऊँची विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक देखा। निर्वाण कल्याणक बुधवार १३ को आचार्य श्री देशभूपणजी द्वारा क्षुल्लक दीक्षा ली और नाम ज्ञानभूपण रखा गया। तीन वर्ष ६ माह क्षुल्लक अवस्था में रहे। श्री शांतिमति माताजी से व्याकरण एवं धर्म ग्रन्थ पढ़े। पं. अजितप्रसादजी से सर्वार्थसिद्धि पढ़ी। इसके बाद संघ दक्षिण की ओर गया, बाहुबलि अभि-षेक में सम्मिलित हुए। तीर्थों की यात्रा करते हुए स्तवनिधि में चतुर्मास किया। पुनः वेलगाममें चतुर्मास हुआ। कोथली में पंचकल्याणक हुआ। जयसिंहपुरा में मानस्तम्भ प्रतिष्ठा के अवसर पर माघ शुक्ला ७ शुक्रवार सन् १९६९ में आ० देशभूपणजी महाराज से मुनि दीक्षा ली। इसके बाद चतुर्मास कोथली कुप्पन वाड़ी में किया। यात्रा करते हुए कुम्भोज पंचकल्याणक देखा आचार्य श्री की आज्ञा से उत्तर की ओर विहार किया। पावागिर की वन्दनाकर वड़वानी आये। वहां से बीकानेर गए। वहां सामाजिक झगड़ा चल रहा था। मन्दिर एक, वेदियां तीन और तीन वेदियों के अलग अलग पूजा करने वाले, प्रबन्ध करने वाले तथा माली आदि भी भिन्न भिन्न थे। भंडार लड़ाई के कारण बंद था। लोगों में खूब तनाव था। पूज्य मुनि श्री १०८ ज्ञानभूपणजी महाराज के प्रयत्न से ११ वर्ष पुराना झगड़ा शांत हुआ और समाज में वैर विरोध समाप्त हो एकता हुई।

संघ वहां से रवाना होकर सिद्धवर कूट की वन्दना को गया। ओंकारेश्वर के पहाड़ का निरीक्षण किया कि जहां पर अनेक मन्दिर फूटे टूटे पड़े हुए हैं अनेक चमत्कारमय पत्थर पड़े हुए हैं। वहां से विहार कर इन्दौर में आये और ऊनकी वन्दना के लिए गए। ऊनकी वन्दना कर लौटे। इन्दौर में चातुर्मास किया और चातुर्मास के पीछे विहारकर जयपुर में ससंघ आये। वहां पर श्री १०८ देशभूपण महाराज के दर्शन किए तथा धूलिया से लाई हुई कुमारी शकुन्तला व इन्दौर से साथ में लाई हुई श्रीमती सज्जनवाई को क्षुल्लिका दीक्षा दिलवाई। फिर श्री महावीरजी की यात्रा कर संघ सहित जयपुर में चातुर्मास किया। चातुर्मास में आ० महावीर कीर्ति संघके दश त्यागी तथा ज्ञानभूपण महाराज संघके १२ त्यागियों ने बड़े धूम धाम के साथ राणाजी की नशिया में चातुर्मास किया।

चातुर्मास के पीछे ज्ञानभूपण महाराज ने सब संघ को वहीं छोड़कर सम्मेद शिखर को विहार किया। आगरा होते हुए, सोनागिर सिद्ध क्षेत्र के दर्शन किये और वहां से

वनारस होते हुए सम्मेद शिखर पर पहुँच गये। २२ दिन रहकर वहाँ पर ६ वन्दनायें पर्वत की की। वहीं पर आचार्य श्री १०८ विमल सागर महाराज का संघ था। उनके दर्शनों का भी लाभ मिला और वहाँ से विहार कर मंदारगिरि, भागलपुर, चम्पापुर, नवादा, गुणावा, पावापुरी, पंचगिरि इत्यादि तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करके चतुर्मास के लिए श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषण जी के पास जयपुर में आ गये। चातुर्मास से पूर्व एक पुस्तक लिखी थी। जयपुर में दशलक्षण धर्म तथा दिल्ली चातुर्मास में सोलहकारण भावनायें लिखीं। मुनि महाराज सतत अपने ध्यान अध्ययन में लीन रहते हैं। एक समयभी इधर उधर संसार सम्बन्धी वातचीत तक भी नहीं करते हैं। वे अत्यन्त मधुर एव गम्भीर सरल भाषा में नित्यप्रति दो वार उपदेश देते रहते हैं। ज्ञान भूषण महाराज श्री महावीर जी क्षेत्र के दर्शन करने को गये। और लौटकर जयपुर में चातुरमाँस किया। और चातुर्मास बीत जाने पर ज्ञान भूषण महाराज सघ को छोड़कर अकेले ही विहार कर सम्मेद शिखर के दर्शन को गए थे और दर्शन किये वहीं पर श्री १०८ आचार्य विमल सागर जी महाराज संघ के दर्शन किए संघमें २१ मुनि माहाराज तथा आर्यिका क्षुल्लक क्षुल्लिका करीव ४२ त्यागीथे। वहां से विहार कर मन्दार गिरी भागलपुर चम्पापुरी के दर्शन किये और विहार कर नवादा गुणावा पावापुरी और राजगिरी पंचपहाड़ी के दर्शन किये। और विहार कर पटनामें सुदर्शन सेठ के निर्वाण क्षेत्र के दर्शन कर आगरा होते हुए वनारस पहुचे वहाँ पर पार्श्वनाथ व चन्द्रप्रभ देव का जन्म हुआ है वहाँ के मन्दिरों के दर्शन किये। और अयोध्या की तरफ को विहार किया। अयोध्या के मन्दिरों के दर्शन का विहार करते हुए दिल्ली में चातुर्मास के लिये आ पहुंचे।

जहां पर परस्पर के झगड़े के कारण मन्दिर के भण्डार में दो पार्टीयों ने अपने अपने ताले डाल दिये थे। उन तालों को खुलवाने का प्रयत्न श्री १०८ महावीर कीर्ति जी ने किया परन्तु सफलता नहीं प्राप्त हुई। अव श्री १०८ ज्ञान भूषण जी महाराज आ पहुँचे और तीन पार्टी तीन वेदी वनी हुई हैं। यह देखकर श्री ज्ञान भूषण जी ने कहा कि हम आहार यहां तव नहीं करेंगे जव तव तुम सव एक नहीं हो जाओगी तव सव को वुलवाकर उनका विरोध दूर कर दिया और मन्दिर की व्यवस्था वनवाई। इस प्रकार श्री १०८ ज्ञान भूषण जी महाराज का सक्षिप्क परिचय लिखा गया है।

नि० व्र० अंगूरी वाई लश्कर

श्री १०८ विद्यानन्द जी, श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषण जी, श्री १०८ ज्ञानभूषणजी
१०८ सन्मति भषण जी व अन्य त्यागी गण

दान दाताओं की सूचि

३५१) पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले दिल्ली
५०१) आदीश्वर कुमार जी जैन हापुड़
५०१) जयचन्दराय गुणवन्तराय जैन दिल्ली
५०१) भगवानदास जोवा
५०१) मित्र सेन जोवा
५०१) उग्रसेन जैन खेरवड़ा
५०१) हुक्मदेवी धर्म पत्नी वाला ऊदमीराम जी जैन दिल्ली
३०१) राजेन्द्र प्रसाद जैन खतोली
२५१) रतीलाल जी पवापुर सूरत
२५१) चौधरी कस्तूर चन्द जैन इन्दौर
३५१) श्रीमती कुन्ती वाई जैन धर्म पत्नी सिंघई सोहनलाल जी वैदवाडा दिल्ली
२५१) महावीर प्रसाद पहाडी धीरज दिल्ली
२५२) पुष्पावाई जैन पहाडी धीरज
२५१) जुगमन्दर दास गुलियान दिल्ली
२०१) लालचन्द जी लुहाड़िया वैद्यवाडा दिल्ली।
२०१) भूपालसिह मुखतार सिंह जोला।
२०१) छज्जूमल जी जैन "
२०१) रेलूमल जी जैन "
२०१) कीर्ति प्रसाद जैन "
२०१) कैलाश चन्द जैन "
२०१) कानी गोह जगदीश प्रसाद वागपत
२०१) किरण वाई धर्म पत्नी लाला जयचन्द जैन पहाडी धीरज
२५१) शकुन्तला वाई धर्मपत्नी वाला अजित प्रसाद जौहरी दिल्ली
२०१) त्रिशला वाई जैन पहाडी धीरज "
२०६) विमला वाई जैन गांधी नगर
२५१) पन्ना लाल जी जैन गांधी नगर दिल्ली
२५१) जुगमन्दर दास जैन जौला
१५१) शांतीवाई जैन "
२०१) पंसारी साहपुर जैन
१०१) दीपचन्द जैन कवाल
१०१) सुरेन्द्र कुमार जैन खतोली
१०१) भूषण लाल जैन कवाल
१०१) धनपत राय जैन कवाल
१०१) नन्दलाल इन्द्रकुमार जैन साहपुर
१०१) जगमोहन लाल जैन सौरम
१०१) उलफतराय जी जैन "
१०१) शांती वाई जैन पहाड़ी धीरज दिल्ली
१०१) सुरेश चन्द जैन वड़ोत
२०१) हरस्वरूप सिंह जैन "
१०१) घसीटूमल जी जैन जोला
१०१) हेमचन्द जी जैन "
१०१) सजना कमार जी जैन "
१०१) धर्ममित्र केशोराम जी जैन"
१०१) धन लाल पटवारी खेखड़ा
१०१) सब्जीदेवी खेखड़ा
१०१) मलसटराम जी जैन वागपत
१०१) सलेख चन्द जैन वागपत
१०१) खचेरूमल जैन "

१०१) कुसुम कुमारी बड़ौत
१०१) किरण बाई जैन
१०१) प्रेमचन्द जी जैन दिल्ली
५१) देवेन्द्र कुमार जैन जौला
५१) सरमन लाल जैन "
५१) रिखवदास जैन "
५१) राजुल मती पटोरी वारी।
५१) सुखवीर सिंह जौला

५१) गुलशन राय जौला
५१) सुखमाल चन्द "
५१) अत्तर सेन "
५१) रणजीतसिंह प्रवेश कुमार जैन
५१) चेतनलाल मामचन्द जी जौला
५१) विमला देवी सरूरपुर
५१) सोना बाई
५१) सुरेश चन्द्र जैन दरीवा दिल्ली

प्रबोधसार तत्त्व दर्शन

प्रबोध सार ग्रन्थ में पूर्व आचार्य की परिपाटी के अनुसार इस ग्रन्थ के प्रथम में लोकाचार रूप मिथ्यात्व के स्वरूप का सक्षिप्त वर्णन किया गया है। उसके पश्चात द्रव्य परावर्तन का स्वरूप उसके पीछे क्षेत्र परावर्तन का स्वरूप तत्पश्चात काल परावर्तन का स्वरूप कहा गया है। उसके बाद भव परावर्तन का स्वरूप कहा गया है। उसके पीछे भाव परावर्तन का स्वरूप संक्षेप से कहकर पांच प्रकार के मिथ्यात्व का स्वरूप सविस्तार कहा गया है। जिसमें पहले विपरीत मिथ्यात्व एकान्त मिथ्यात्व विनय मिथ्यात्व सशय मिथ्यात्व का स्वरूप कहने के पीछे अज्ञान मिथ्यात्व का लक्षण कहकर यह दिखाया गया है कि पंच परार्तन का मुख्य कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि पंचपरावर्तन का कारण पंच प्रकार का मिथ्यात्व और अनुबंध में रहने वाली काषायें हैं वे अनंतानुबंधी हैं। वे शैल के समान पत्थर की रेखा के समान वांस की जड़के समान क्रिमि रंग के समान होती हैं उनका का स्वरूप कहा गया है।

इसके पश्चात् सात भवो का संक्षिप्त· कथन किया गया है। तथा सात व्यसनों का सविस्तार वर्णन किया गया है सात व्यसनों में प्रसिद्ध पुरुषों की कथायें भी दी गई हैं। सात व्यसनों को भी सम्यक्त्व का विराधक या कलंक कहकर अनंत संसार का कारण बताकर उनका त्याग का उपदेश दिया गया है। इसके पीछे सम्यक्त्व का महात्म्य व सम्यक्त्व के उत्पत्ति के कारण पांच लब्धियों का कथन अनेक प्रकार आगम के अनुसार कहा गया है । स्वयं ही स्पष्ट कर दिया गया है कि आगे की चार लब्धियां भव्य और अभव्य जीवों के अनेक वार प्राप्त हो जाती है परन्तु कारण लब्धि के अभाव में सम्यक्त्व का लाभ नहीं होता है। प्रथम में क्षयोपशम लब्धि होती है उसके पीछे विशुद्धि देशना आयोग लब्धि ये लब्धियां जीवों को अनेक वार हो जाया करती हैं परन्तु सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो पाती ! मिथ्यात्व रूप संसार अवशेष रह गया है ऐसे भव्य जीव विशुद्धि लब्धि काल में कर्मों की स्थिति रह जाने पर अनादि मिथ्यादृष्टी जीव करण करता है वे करण तीन होते हैं अधः करण अपूर्वकरण अनिवृत्ति करण करके अन्तकरण करता है। अंतकरण के प्राप्त होने पर नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति जीव को प्राप्ति होती है।

करणों का कथन करने के पश्चात छह द्रव्यों की स्वभाव पर्याय विभाव पर्याय स्वभाव व्यंजन पर्याय विभाव व्यंजन पर्याय स्वभाव अर्थपर्याय विभाव अर्थपर्याय का कथन करके पंचास्ति कायों का कथन किया गया है। व द्रव्यों के सामान्य गुणों का कथन करके

विशेष प्रत्येक द्रव्य के गुणों का कथन किया गया है। कोई मतावलम्बी क्षणिक जीवादि द्रव्यों को मानते है व पंच भूतों से जीव द्रव्य की उत्पत्ति का निशोध किया गया है तथा द्रव्यों का उत्पाद व्यय घ्रोव्य वताकर द्रव्यों का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। तथा जो अज्ञान व गुणों के अभाव होने में मोक्ष मानते हैं उसका निराकरण करके द्रव्यों की सत्ता गुण विशेष का प्रकाश व रत्नत्रय से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। एक एक से मोक्ष की प्राप्ति नहीं इसका निराकरण कर दिया गया है। सात तत्वों में प्रथम जीव तत्व का कथन कर अजीव तत्वों का कथन किया गया है इसके पीछे आस्रव तत्व का सविस्तार गुण स्थान व मार्गणा स्थानों व जीव समासों में कथन किया गया है।

आगे वध यत्व का कथन कहां कौन से गुण स्थाना में वध कितनी और कौन कौन सी प्रकृतियों का वोध होता है। कौन जीव किस परिणाम वाला विशेष कर्म वंधक होता है और वह वेध कितने प्रकार का होता है और वेद के कारण क्या क्या होते है इनका कथन संक्षिप्त रूप से किया गया है। प्रथम में १४६ प्रकृतियों का वेद कह कर मुख्य १२० का कहा गया हैं यह कथन कर्म काण्ड की अपेक्षा से किया गया है। उसके गाद द्रव्य वेद भाव वेद द्रव्य वेद का कारण भाव वेद का कारण वताने के बाद चार प्रकार का वंध वताया गया है। प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश वंध का निर्ण . करके पुण्य और पापों का प्रश्न उत्तर रूप काव्य है तथा पुण्य पाप आस्रव और वध के अन्तर भूत हो जाते है ऐसा काव्य है।

इसके पश्चात संवर के कारण रूप काव्य है और कार्य रूप काव्य है सम्वर के विशेष भेदों का प्रति पादन किया गया है। किन किन भावों से कर्मो का आस्रव रुक जाता है इसका कथन करके गुण स्थान और मार्गणा स्थानों में सम्वर का निरूपण किया गया है। कौन सा जीव विशेष संवर करने वाला होता है किन जीवों के सामान्य संवर होता है संवर के योग्य भावों का कथन यथा स्थान किया गया है। आगे निर्जरा का स्वरूप कहा है तथा कहां कौन सी गति में व गुण स्थान में किन किन कर्मों की निर्जरा होती है। द्रव्य निर्जरा और भाय निर्जरा का स्वरूप कपा गया है और सकाम और अकाय निर्जरा का गुण स्थान मार्गणा स्थानों में निर्यणय कर दिया गया है। कर्मो का उदय सत्ता और सकाम का कथन गुण स्थानों में किया गया है तथा सकाय निर्जरा एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत गुण स्थान के पूर्व तक वाले जीवों के होती हैं। परन्तु वह यथार्थ निर्जरा नहीं कही गई है क्योंकि विशेष कर्म वंध का कारण हैं एसा स्पष्टो करण करके अकाम निर्जरा का कथन किया गया है।

आगे मोक्ष तत्व का कथन किया गया है मोक्ष तत्व का कथन गुण स्थानों की अपेक्षा से कथन किय गया है कहां किस कर्म प्रकृति की सत्ता का क्षय होता है। किस गुण स्थान के अन्त में परिणामों की विशेष विशुद्ध होती है और वहां पर होती है उस मोक्ष का उपाय और कारण क्या था कव जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती हैं .मोक्ष का स्वरूप कहा गया है। तथा सिद्ध परमात्मा का स्वरूप व सामान्य विशेष गुणों का कथन करके सात तत्वों

का कथन किया गया है।

यथानंतर नव देवताओं का कथन किया गया है वे नव देवता अरहंन सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु ये पंचपरमेष्टी व जिन वाणी जिन मिम्ब प्रतिमा तथा चैत्य लय और चैत्य ये नव देवताओं का कथन विषय का कथन किया गया है। प्रथम में अरहंत के गुणों का कथन किया गया है। तथा उनके अतिशयों का कथन करने के पश्चात सकल परमात्मा होते है वे ही शेष अघातिया कर्मो का नाश कर सिद्ध बन जाते हैं। अरहंतों की त्रेसठ प्रकृतियों का कथन किया गया है। उसके पश्चात सिद्धो की अवगाहना का निर्णय कर उनके गुणों का व पुनः संसार अवस्था में आने का निसेध रूप काव्य है। उसके आगे आचार्य परमेष्ठी के गुणों का कथन है उनका स्वरूप का कथन किया गया है कि वे आचार्य कितने गम्भीर व कितने दयालु होते हैं। वे शिष्य पर शिष्यों को किस प्रकार सन्मार्ग में लगाते हैं इस व्याख्या रूप काव्य है।

आगे उपाध्याय परमेष्ठी के पच्चीश गुणों का उपदेश का निर्णय कर साधुओं के अट्ठाईश मूल गुणों का व उत्तर गुणों का संक्षिप्त कथन किया गया है। तथा जिन वाणी का स्वरूप कहा गया है वह द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत रूप से दो विभागों में विभाजित है ऐसा कथन किया गया है। जिन विम्ब का लक्षण नाम मुद्रा और आकृति का संक्षिप्त कथन करके जिन चैत्य का कथन किया गया है। जिन मन्दिर का कथन किया गया है कि जिन मन्दिर कितने वड़े विवाल होते हैं मंदिरों से भव्य जीवों को क्या क्या लाभ होता है यह स्पष्टी करण किया गया है। अरहंत के आठप्रातिहार्य और आठ मंगल द्रव्यों का कथन किया गया है। आगे विस्तार पूर्वक सम्यक्त्वे के विरोधी सात व्यसनों का कथन सविस्तार किया गया है व दृष्यान्तों से ओत पोत भर दिया है। आठ पदों का सविस्तार एक एक के ऊपर काव्य पूर्वक कथन किया गया है। आठ संकादिक दोषों का विस्तार पूर्वक विवेचन कर दिया गया है।

छप छनायतन व तीन मूढ़ताओं का कथन करके निशांकित अंग का विस्तार पूर्वक काव्य व्याख्या द्वारा किया गया है, इसमें प्रसिद्ध अंजन चोर की कथा संक्षिप्त रूप में दी गई है। निकांछित अंग का स्वरुप और अनंत मती की कथा भी संक्षेप से दी गई है। निर्विःचिकित्सा अंग का सविस्तार काव्य और अर्थ से किया गया है तथा इस अंग में प्रसिद्ध उद्यायन और प्रभावती रानी की कथा संक्षिप्त रुप से दी गई हैं। अमूढ दृष्टि अंग का सविस्तार पूर्वक कथन करके रेवती रानी की कथा दी गई है विद्याधर शुक्ल के द्वारा छल विद्या कर रेवती रानी की परीक्षा की कथा है। आगे उपगहन अंग का कथन है और उपगून अंग में प्रसिद्ध जिन दत्त श्रेणी की कथा है। स्थिति करण अंग का दो काव्यों में कथन किया गया है तथा उस स्थिति करण अंग में प्रसिद्ध वारिसेन मुनि राज की कथा प्रसिद्ध है। वात्सल्य अंग का कथन व उससे लाभ औ सुगति अविरोध की प्राप्ति का कथन करके उसमें प्रसिद्ध विष्णु कुमार मुनि महाराज प्रसिद्ध हुए है उनकों कथावली प्रहलाद सुक्र और वहस्पति इनका जैन धर्म स्वीकार करना। इसके पश्चात प्रभाना अंग का कथन संक्षेप से

किया गया है तथा इस अंश में प्रसिद्ध वज्रकुमार नामक मुनि प्रसिद्ध हुए हैं उनकी कथा है।

आगे जैन धर्म में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू जिन चैत्य चैत्यालय जिन प्रतिमा जिनवाणी आदि नव देवताओं का उपदेश दिया गया है कि इन नव देवताओं में भिन्न कोई देव नहीं है। अन्य कोई गुरु हैं न अन्य कोई परमेष्ठी ही हैं। इनसे भिन्न अन्य जितने देव व देवियां हैं वे सब ही कुदेव हैं और कुगुरु हैं। इनका कथन सामान्य से इस शास्त्र में दृष्टांन्त सहित कथन किया गया है। तथा इन नव देवताओं की पूजा भक्ति करने व अनुमोदन करने पर सम्यक्त्व को यथाकाल प्राप्त होती है। रत्नत्रय का मूलाधार सम्यक्त्व है सम्यक्त्व के होने पर ही जप तथा ध्यान शील संमादि कर्मों का सम्वर व निर्जरा के कारण होते है अन्यथा कर्म बध के ही कारण कहे गये हैं।

इसके पश्चात मिथ्यात्व त्याग करने का उपदेश दिया गया है और सम्यक्त्व का उपार्जन करने का उपदेश दिया है। साथ ही मिथ्यात्व का फल और मिथ्यात्व ही के कारण जीव संसार में नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त कर नीच गतियों में दुःखों का अनुभव कर भ्रमण करता है। यह मिथ्यात्व जीवों का महा वैरी है जब कि सम्यक्त्व दुर्गतियों के दुःखों से जीवों को छुड़ा कर शुभ गतियों में ले जाता है। साथ ही नरक गति में देवगति में त्रियंच गति में मनुष्य गति में सम्यक्त्व उत्पन्न होने में साधन कितने और कौन-कौन हैं यह विवेचन किया गया है। मलों से दूषित सम्यक्त्व संसार बन्धन का छेदक नहीं होता है और सम्यक्त्व के विना जो ज्ञान होता है व मिथ्या ज्ञान है जो चारित्र होता है वह मिथ्या चारित्र यह बताते हुए स्पष्ट कर दिया गया है कि मोक्ष रूपी महल में जाने के लिए सम्यक्त्व प्रथम सीढ़ी है। या मोक्ष फल जिस वृक्ष पर लगता है उसकी बुनियाद या जड़ है। बुनियाद के बिना मकान व वृक्ष जिसकी स्थिति नहीं रह जाती है उसी प्रकार सम्यक्त्व को मूल कहा गया है। वहां कौन सी गति में कौन से जीव के कौन-सा सम्यक्त्व होता है किन जीव के कौन सा सम्यक्त्व होता है इसका निर्णय भली प्रकार किया गया है। इसके पश्चात् आठ अनुयोग द्वार और निक्षो से सम्यक्त्व का कथन किया गया है। पहले अनुयोग द्वार में सम्यक्त्व को सत्ता कहाँ किस गति में पाई जाती है यह विवेचन किया गया है।

किस गुणस्थान वाले जीवों के कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का उदय सत्व पाया जाता है। गुणस्थानों में स्पष्ट किया गया है। मिथ्यात्व का व अनन्तानुबन्धी कषायों का क्षपक कौन जीव होता है कब और कहाँ होता है यह भी खुलासा कर दिया गया है। सम्यक्त्व के दश प्रकार हैं उनका भी यथा काल कथन सरलता पूर्वक किया गया है। किस सम्यक्त्व में कौन सा सम्यक्त्व व संयम होता है कौन सा ज्ञान किस गुण स्थान में होता है यह स्पष्ट किया गया है। कौन सा ज्ञान किस गुण स्थान वाले जीव को प्राप्त होता है गुण स्थान क्या चीज है उसका विवेचन किया गया है। कौन सी इन्द्रिय वाले जीव व गतियों में कौन-कौन गुणस्थान पाये जाते हैं यह कथन कर दिया गया है। किस काय वाले जीव के निरन्तर मिथ्यात्व का उदय सत्व विद्यमान रहता है किन काय वालों को कब कैसे परिणामों से सम्यक्त्व प्राप्त होता है इसका विवेचन है। योग तीन प्रकार के कहे गये हैं पहले दूसरे योग के चार-चार भेद

होते हैं तीसरे योग के सात भेद हैं। इन पन्द्रह योग वाले जीवों के कौन-सा गुण स्थान होता है कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व रह जाता है। इसका खुलासा प्रयत्न पूर्वक किया है कौन से योग वाले जीवों के कौन सी गति प्राप्त होती है कौन सा गुण स्थान प्राप्त होता है कौन सी मार्गणा में कौन से योगों की सत्ता रहती है। विग्रह गति में किस योग की सत्ता रहती है यह विवेचन कर आगे वेदों में कौन-कौन वेद वाले जीवों के कौन-कौन गुण स्थान पाये जाते हैं व कौन सा मिथ्यात्व का सत्व रहता है या सम्वक्त्व का सत्व पाया जाता है। कौन-कौन मार्गणा पाई जाती है इसका निर्णय किया गया है।

यहां विवेचन दो प्रकार किया गया है एक भाव वेद दूसरा द्रव्य वेद का लक्ष्य में रखकर गुणस्थानों में विभाजित किया है। स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंकवेद में कौन सा सम्यक्त्व कहां पर होता है कौन से सम्यक्त्व की सत्ता है। कषायें पच्चीस होती हैं इन कषाय वाले जीवों के कौन जीव के कौन कषाय वाले जीव के मिथ्यात्व का सत्व उदय पाया जाता है कौन जीव के सम्यक्त्व कौन सी कषाय वाले के कौन से गुण स्थान तक पाया जाता है कौन सी मार्गणा में कौन-कौन कषायों का सत्व रहता है किस जाति की कषायें रहती हैं ऐसा विवेचन किया गया है।

ज्ञान मार्गणा, ज्ञान के दो भेद हैं मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान इस प्रकार दो है मिथ्या ज्ञान में कौन-कौन से गुण स्थान होते है सम्यग्ज्ञान में कौन-कौन से गुण स्थान मार्गणा स्थान होते हैं। कौन-कौन ज्ञान में सम्यक्त्व की सत्ता पाई जाती है या मिथ्यात्व का सत्व उदय पाया जाता है। कौन सी इन्द्रिय वाले जीवों को कौन सा मिथ्याज्ञान व कौन सा सम्यग्ज्ञान पाया जाता है यह विवेचन किया गया है। संयम के छह। सात। पांच मुख्य भेद हैं कौन से संयम में कितने गुणस्थान व जीव कषाय व मार्गणायें पाई जाती हैं। कौन सा मिथ्यात्व या सम्यक्त्व का सत्व रहता है यह कथन है। चार भेद वाला है किस दर्शन वाले जीव के कौन-कौन गुण स्थान होते हैं कौन-कौन सी मार्गणायें होती है मिथ्यात्व का सत्व कहां तक रहता है। सम्यक्त्व कौन सा रहता है किस सम्यक्त्व का सत्व पाया जाता है। लेश्यायें छह हैं तीन अशुभ तीन शुभ। इन छहों लेश्या वाले जीवों के कौन-कौन गुण स्थान व जीव समास मार्गणा स्थान होते हैं कौन सा सम्यक्त्व का सत्व रहता है या मिथ्यात्व का सत्व उदय रहता है। भव्य और अभव्य दो प्रकार के हैं भव्य जीव के कितने गुण स्थान होते हैं कौन-कौन मार्गणायें पाई जाती हैं कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व पाया जाता है। अभव्य जीव के कौन सा सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व उदय रहता है इसका स्पष्टीकरण किया गया है। सम्यक्त्व मार्गणा में कौन सा गुणस्थान व मार्गणा स्थान व जीव समास की सत्ता पाई जाती है कहां कौन सा सम्यक्त्व पाया जाता है। कौन सी संज्ञा वाले जीवों के कौन सा गुण स्थान व मार्गणा स्थान व समास पाया जाता है। कौन सी संज्ञा वाले जीवों के मिथ्यात्व का उदय और सत्व रहता है कौन विराधक होता है व सम्यक्त्व की सत्ता वाला होता है असैनी जीव के कौन सा गुणस्थान व मार्गणा स्थान होता है सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का सत्व होता है।

सत्व कहने के पीछे संख्या अनुयोग से जीवों की संख्या कही गई है। मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर अयोग केवली गुणस्थान तक वाले जीवों की किस गुण स्थान में कितनी संख्या कितनी किस मार्गणा में जीव राशि की संख्या है। प्रत्येक गुण स्थान व मार्गणा स्थान में संख्या का निर्णय सम्यग्दृष्टी और मिथ्यादृष्टी जीवों का किया गया है।

क्षेत्र अनुयोग द्वार की अपेक्षा करके मिथ्यात्वादि से लेकर सामान्य और विशेष क्षत्र कितना है। सम्यग्दृष्टी जीव किस क्षेत्र में निवास करते हैं मिथ्यादृष्टी जीव कितने क्षेत्र में निवास करते हैं कौन से गुणस्थान वाले जीव लोक में कहां कहां निवास करते हैं मार्गणा स्थान वाले जीव कहाँ किस लोक क्षेत्र में निवास करते हैं। सम्यग्दृष्टी जीव कितने लोक में या क्षेत्र में निवास करते हैं या सब लोक में इसका विवेचन किया गया है।

आगे काल अनुयोग द्वार के द्वारा सामान्य और विशेष कर मिथ्यात्व की काल मर्यादा व सम्यक्त्व कौन सा सम्यक्त्व किस गति में कितने काल तक रहता है। अथवा किस-किस गुण स्थान में कौन सा सम्यक्त्व कितने काल तक रहता है किस सम्यक्त्व की काल मर्यादा किस गति में कौन से सम्यक्त्व की होती है इत्यादि प्रत्येक मार्गणा में कथन किया गया है।

इसके पश्चात अन्तर सामान्य विशेष बताया गया है कि मिथ्यात्व किन जीवों के निरन्तर रहता है किन जीवों के सान्तर मिथ्यात्व होता है। किन जीवों के सामान्य से सासादन कितने काल तक रहता है एकवार छूटने के पीछे पुनः कितने काल के बीत जाने पर सासादन गुणस्थान होगा। इस ही प्रकार मिश्र व उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व एक वार छूटकर पुनः कब कितने काल के बीत जाने पर वही पहले के समान जीव के परिणाम होंगे। तथा पहले के समान उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होगा यह दिखाया गया है। एक वार संयमा संयम होकर छूट गया पुनः वही संयमासंयम जीव को कितने उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल बीत जाने पर होगा। इसका कथन और गुणस्थान और मार्गणा स्थानों की अपेक्षा कर कथन किया गया है।

इसकी समाप्ति होने के पश्चात अल्प बहुत्व अनुयोग द्वार की अपेक्षा कर सामान्य गुण स्थानों में कथन करने के पश्चात् मार्गणाओं की अपेक्षा कथन किया गया है। उपशम सम्यक्त्व और क्षायक सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यक्त्व इनकी काल मर्यादा की अपेक्षा कथन किया गया है। स्वामी की अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व के स्वामी कम हैं उससे अधिक क्षायक सम्यक्त्व के उसकी अपेक्षा क्षयोपशम सम्यक्त्व के स्वामी अधिक होते हैं। क्योंकि एक के अपेक्षा कर विशुद्धता और स्थिति का कथन किया गया है कि कितने काल तक उपशम सम्यक्त्व का वासना काल है। क्षायक सम्यक्त्व का वासना काल उससे अधिक है उससे भी अधिक क्षयोपशम सम्यक्त्व के वासना काल का निर्णय करने पर अल्प बहुत्व प्राप्त होता है विशुद्धता की अपेक्षा कर देश संयम और सकल संयम और गुण स्थानों में किन गुणस्थानों में किन गुण स्थान वाले जीवों के परिणामों की विशेष विशुद्धता कहां किस काल में किस प्रकार पायी जाती है। इस प्रकार भावों की अपेक्षा संयम सम्यक्त्व को आधार कर अल्प बहुत्व का कथन किया गया है।

आगे चलकर योगों कर आस्रव बंध किस मार्गणा में किस प्रकार का आस्रव बंध संवर निर्जरा का हेतु बताया गया है। आगे सम्यक्त्व की वृद्धि के कारणों का कथन किया गया है। मिथ्यात्व ही संसार की मूल है और सम्यक्त्व ही मोक्ष महल की पहली सीढ़ीया लड़ी है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान, चारित्र, तप, दान, शील, यम नियम सब ही अनन्त संसार वृद्धि के कारण हैं। यदि वे ही भाव सम्यक्त्व सहित होवें तो संवर और निर्जरा के कारण होते हैं इसका विशेष विवेचन करके सम्यग्दृष्टी जीव मरकर कहां कहां उत्पन्न नहीं होता है यह स्पष्टीकरण करने के पश्चात सम्यग्दृष्टी कौन-कौन से उच्च-उच्च पदों का स्वामी होता है और लोक में सम्यक्त्व की ही क्यों पूजा की जाती है यह कथन किया गया है। इस ग्रन्थ में श्लोक संख्या करीब ७८५ के करीब है। इसमें ग्रन्थकार की रुचि भाव की प्रधानता कर कथन किया गया है। इस ग्रन्थ में विशेष यह है कि सम्यक्त्व के ४४ दोष बताए गये हैं यह भी बताया गया है कि जहां पर ये चौवालीस दोष विद्यमान रहते हैं वहां पर सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि हो जावे तो सम्यक्त्व ठहर नहीं सकता है क्योंकि यहां पर अनन्तानुबन्धी चारित्र मोह की चोकड़ी का निरन्तर उदय पाया जाता है? किस गुणस्थान व मार्गणा स्थान में सामान्य विशेष से कितने किन-किन जीवों के भाव एक साथ रहते हैं? कहां औदयिक भाव कितने रहते हैं? क्षयोपशमिक भाव कितने हैं और वे किन जीव के पाये जाते हैं? क्षायक भाव कौन-कौन से हैं? और वे कितने किन किन जीवों के यथा वासना काल में पाये जाते हैं। पारिणामिक भाव कहां किस मार्गणा व गुणस्थान व गुणस्थानातीन जीवों के कौन कौन से परिणामिक भाव पाये जाते है? औपशमिक भाव किन किन जीवों के किस गुणस्थान वालों के व मार्गणा वालों के पाये जाते हैं? इसका विशेष कथन किया गया है।

आगे चलकर दान का महात्म्य बताकर भगवान की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए। शास्त्र की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए। गुरुओं की भक्ति पूजा किस प्रकार करनी चाहिए। भक्ति का फल और भक्ति करने वाले भक्त को भगवान क्या-क्या देते हैं? इसका विशेष कथन किया गया है। यथा काल में विनयादिक का कथन किया गया है। साथ में गुरु ने शिष्य को सन्मार्ग और कुमार्ग का हेयोपदेश का उपदेश दिया है। निश्चय सम्यक्त्व व्यवहार सम्यक्त्व का स्पष्टीकरण कर दिया गया है। तथा सम्यक्त्व के भेदों का कथन किया गया है। देव शास्त्र गुरु की पूजा त्रिकाल करना चाहिए। यह पूजा सम्यक्त्व की वृद्धि का कारण है। दृष्टान्त भी दिये गये हैं कि भक्त जनों को क्या-क्या वस्तुओं का लाभ निरन्तर होता रहता है। यह पूजा सम्यक्त्व वृद्धि का कारण क्यों है? ऐसा प्रश्न उठने पर उत्तर देकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है। यहाँ तक सम्यक्त्वाधिकार पूर्ण कर ज्ञान चारित्राधिकार संक्षेप से कहेंगे। कर्म काण्ड में बन्ध से विच्छुत्ती और बन्ध कितने प्रकृतियों का किस गुणस्थान में होता है उनक यहां इस ग्रन्थ में संक्षिप्त रूप से कह आये हैं। कौन से गति वाले जीवों का मरण कर कौन-कौन सी गतियों में जन्म होता है? और देव मर कर कहाँ किन-किन स्थानों में जन्म लेते हैं? नारकी जीव मरण कर कहाँ कहाँ जन्म लेते हैं? त्रियंच प्राणी मरण कर कहां किस गति में उत्पन्न होते हैं? मिथ्यादृष्टी मनुष्य कहां-कहाँ कौन सी गति में उत्पन्न होते हैं। इनका भी स्पष्ट विवेचन किया गया है।

अनुसूचि

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१
मंगलाचरण	१
चौराशी लाख योनियों का वर्णन	१
कुदेव का स्वरुप और लक्षण	२
कुदेवोंकी आराधना का फल	५
कुदेवोंका स्वरुप	६
कुगुरुका लक्षण	८
कुधर्मका स्वरुप	११
अन्य ग्रंथोमें धर्मकी मान्यता	१२
पांच प्रकारके मिथ्यात्वोंका कथन	१४
एकान्त मिथ्यात्व	१४
संशय मिथ्यात्व	२१
विनय मिथ्यात्व	२५
अज्ञान मिथ्यात्व	२८
विपरीत मिथ्यात्व	२८
पंचपरावर्तन द्रव्य परावर्तन	२९
क्षेत्रपरावर्तन	३२
कालपरावर्तन	३३
भवपरावर्तन	३४
भावपरावर्तन	३५
पंचपरावर्तनोंका कारण	३८
सप्त व्यसन और भय	४१
मिथ्यात्व ही विशेष कर्म बंधका कारण	४२
पंचप्रकारके संसारोंकी विशेषता	४२
भावों के भेद	४३
बीज वृक्षकी तरह बंधकीगति है	४४
दुर्भावनाओंका त्याग	४६
सम्यकत्वको पात्र	४७
पंचलब्धियोंके नाम क्षयोपशम	४७
देशनालब्धि	४८
विशुद्धिलब्धि	४८
प्रायोगलब्धि	४८
करण लब्धि A अधःकरण	४९

विषय	पृष्ठ
अपूर्वकरणBअनिवृत्त करण	५०
उपशम सम्यकत्व	५०
क्षयोपशम सम्यक्त्व	५०
सम्यकत्वके विरोधीकारण	५१
सम्यकत्वके विरोधीकारण	५१
सम्यकत्वके कारण	६०
सम्यकत्वका स्वरुप निश्चय और व्यवहार	६१
अरहंतदेवका स्वरुप	६५
अठारह दोषोंके नाम	६५
शास्त्रका स्वरुप	७०
सिद्धोंका स्वरुप	७१
आचार्य उपाध्यायका स्वरुप	७२
साधुका स्वरुप	७२
जिनबिम्बका स्वरुप	७४
जिनधर्मका स्वरुप	७६
बिना दयाके लोकमें सुख नही	७९
द्रव्योंके सामान्य विशेष गुण	८०
उत्तमक्षमादि दश धर्म	८३
सकल विकल चारित्रका कथन	८६
चैत्यालय का स्वरुप	८८
आठ मदोंके नाम	८९
सम्यकत्व के आठ मळ (दोष)	९३
छह अनायतन का स्वरुप	९८
धूत क्रीडाका लक्षण	१००
पांडव कौरवोंकी कथा	१०३
मांस व्यसन का स्वरुप	१०७
मांस व्यसनमें प्रसिद्ध सोरसेन-वचकराजा की कथा	११३
मद्यपान व्यसनका स्वरुप	११६
मद्यपान करनेमें प्रसिद्ध एकपादित्व	१२१
वेश्या व्यसनका स्वरुप	१२३
वेश्यार्तव्यसनमें प्रसिद्ध चारुदत्त	१२८
चोरीव्यसनका स्वरुप	१३०

विषय	पृष्ठ
चोरीव्यसनमें प्रसिद्ध शिवभूति	१३७
शिकार व्यसनका स्वरुप	१४२
शिकार व्यसन में प्रसिद्ध ब्रह्मदत्त राजाकी कथा	१४७
परस्त्री व्यसन का लक्षण	१४८
परस्त्री व्यसनमें प्रसिद्ध कंडारपिंगकी कथा	१५६
सप्त व्यसनोंका सामूहिक लक्षण	१६०
जीवाजीव तत्वोंका स्वरुप	१६२
संसारी जीवोंका कथन	१६४
उपयोगोंके भेद और लक्षण	१६६
आत्मा अरूपी है	१६८
जीवज्ञानावर्णादिके योग्य भावोंका करनेवाला है	१६८
जीवके प्रदेशोंकी संख्या	१६९
व्यवहार सेकर्मोका कर्ता भोक्ता	१७०
कुल योनि मार्गणादि आत्मामें नहीं	१७१
पुद्गलादि द्रव्योंका स्वरुप	१७६
पुद्गलके भेदोंका स्वरुप	१७७
जीवपुद्गल परिणामी द्रव्यें	१७८
आश्रव तत्वके भेद लक्षण	१७९
कहां कौन सा आश्रव है	१८१
मार्गणा गुणस्थानोमें आस्रवोंकी संख्या	१८६
देवायु और तीर्थंकरनामकर्मकाआस्रव	१९२
बंध और बंधके भेद	१९३
कर्मोकी मूल प्रकृति व उत्तरप्रकृति	१९६
नरकादि आयुका बंधक कौन	१९८
संवर का स्वरुप	२००
निर्जराका स्वरुप	२०४
मिथ्यादृष्टी संसारीकी निर्जरा	२०६
निर्जराकी विशेषता	२०८
सम्यक्दृष्टी संयमीकी निर्जरा	२१०
शुद्धोपयोगकी महिमा	२१६
मोक्ष त[illegible]	२२०

विषय	पृष्ठ
शरीर मात्र सुखाने से मोक्ष नहीं	२२१
मोक्षका स्वरुप	२२४
सम्यकत्वके निमित्त कारण	२२५
सम्यकत्वका निशंकित अंग	२२६
निकांक्षित अंग	२३०
निर्विचिकित्सा अंग	२३२
अमूढदृष्टी अंग	२३४
उपगूहन अंग	२३६
स्थितीकरण अंग	२३७
वात्सल्य अंग	२४०
प्रभावना अंग	२४३
भवनवासी व्यंतरज्योतिसीमें कल्पवासी कल्पातीतों के कौनसे सम्यकत्व	२४५
त्रियंचगतिमें सम्यकत्व	२४६
मनुष्यगतिमें सम्यकत्व	२४७
सम्यकदृष्टी क्या प्राप्त करता है	२४९
सम्यकदृष्टी जीव संसारके उत्तम भोगोको प्राप्त करता है	२५१
सम्यकत्व जीवका उपकारी	२५३
अविवेक ही अज्ञान मिथ्यात्व	२५४
अरहंत सिद्धोंके स्वरुप को न जानने वाला अपने त्रिप्रकारके आत्माको नहीं जानता वह मिथ्यादृष्टि है	२५९
अंगहीन सम्यकत्व कार्य करने में असमर्थ	२६०
सम्यकत्वके आठ अंगोंमें प्रसिद्ध	२६२
राजकुमार ललितांगकी कथा	२६२
सम्यकदृष्टी मिथ्यादृष्टीको न नमनकरे	२६५
मार्गसेभ्रष्ट स्वस्थानको नहीं पाता	२६७
सम्यकत्वके दोष	२६९
सम्यकत्वके बिना चारित्र तप कार्यकारी नहीं २७० दृष्टान्तसे समर्थन	२७१
अनंतमतीकी कथा निकांक्षित अंगमें	२७३
उद्दायन राजाकीकथा निर्विचिकित्साग	२७५
अमूढदृष्टि अंगमें प्रसिद्ध रेवतीरानी	२८०

विषय	पृष्ठ
उपगूहन अंगमें जिनभक्तशेठकी कथा	२८३
सम्यक्त्वके भेद	२८४
गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व	२८६
भव्य जीवोंके सब अभव्यजीवोंके एक पहला	२८८
स्थितिकरण अंगमें वारिसेन मुनिकी कथा	२८८
किनकिन जीवोंके सम्यकत्व होता हैं	२९१
कहांकोनसे गुणस्थान होते हे	२९१
मार्गणाओंमें कोन कोनसें गुणस्थान होते हैं।	२९३
कोनसा चारित्रकिसगुणस्थानमेंहोताहे	२९४
भावलिंग प्रधान	२९५
वात्सल्य अंगमें प्रसिद्ध विष्णुकुमार	२९८
प्रभावना अंगमें प्रसिद्ध वज्रकुमार मुनि	३०५
मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें जीवोंकी गणना	३०९
मार्गणाओंमें सम्कदृष्टोजीवोंकी संख्या	३११
सम्यकदृष्टी जीवोंका क्षेत्र कितना है	३१९
सम्यकदृष्टीकितने क्षेत्रका स्पर्शन करते है	३२६
सम्कदृष्टी जीवोंका काल कितना है	३३६
सम्कदृष्टीका वासनाकाल	३४०
आठो कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति	३५०
ज्ञानकी कालमर्यादा	३५०
संयमोका काल	३५१
दर्शनोका काल	३५२
लेष्याओंका वासना काल	३५३
आहारकादिका काल	३५४
अंतर प्ररुपणागुणस्थान	३५६
अंतर मार्गणा स्थान	३६०
भाव प्ररुपणा	३७४
कोनसे गुणस्थानमें कितने भाव	३७५

विषय	पृष्ठ
अल्पबहुत्व	३८०
गुणस्थानोंमें अल्पबहुत्व	३८१
मार्गणाओंमें अल्पबहुत्व	३८३
सम्यकत्वकिन जीवोको प्राप्त होता हैं	३८७
बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्माके भेद	३८९
बहिरात्माका स्वरुप	३९०
बहिरात्मा ही संसार में भ्रमता है	३९१
बहिरात्मा ही दुःखों पाता है	३९३
आर्तध्यान के भेद	३९६
मिथ्यादृष्टी का सुख	३९७
मिथ्यादृष्टीको शुभ कार्य रुचता नही	३९९
स्वर्गमें देवोंको भी सुख नहीं	३९९
नित्यनिगोद इतरनिगोदके दुःख	४०१
पृथ्वीकायिक जीवोके दुःख	४०२
जलकायिक जीवोंके दुःख	४०२
अग्निकायिक जीवोंके दुःख	४०३
वायुकायिक जीवोंके दुःख	४०३
वनस्पति कायिक जीवोके दुःख	४०४
त्रसकायिक जीवोंके दुःख	४०५
मनुष्यगति मे दुःख	४०६
दुःखोंका कारण मिथ्यात्व	४१३
पंचेन्द्रियविषयोंमें आशक्त	४१५
आस्रवोंके भेद	४१७
जीव समास कहां किस गतिमें कितने	४१८
मार्गणाओंमें गुणस्थान	४२०
कोनसे योग कहां कहां हो	४२१
मार्गणास्थानोंमें योग	४२३
कहां कितने उपयोग होते है	४२५
जीव समासोंमें योग	४२८
पंच परमेष्ठीयोंकी पूजा का उपदेश	४३८
भगवन पूजा का फल	४४३
दर्शनविधि	४४६
पूजाके भेद	४५०
दान वैयावृत्तिके दोष	४५२
दातारके गुण	४५३

इति अनुक्रमणं

मंगलाचरण

श्री वृषभादि वीरेभ्यो दोषावारण हीनेभ्यः।
नमोगतरजेभ्यश्च सतदेवेन्द्र वन्दितेः ॥१॥

मैं ग्रन्थ कर्ता मुनि ज्ञान भूषण उन प्रथम तीर्थंकर वृषभ देव से लेकर अन्तिम तीर्थंकार भगवान महावीर पर्यन्त चावीस तीर्थंकरों के लिए नमस्कार करता हूं। जिन तीर्थंकरों की पूजा सौइन्द्रों के द्वारा की गई है। अरहंत भगवान ने ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय इन चारों दोष और आवरणों का नाश कर दिया है उनके लिए जो बृषभ सेन आदि गणधर जी चौदह सौ बावन हैं उनको नमस्कार करता हूं।

व्यपगत कषाय रोषं रागद्वेष दोष मल रहितेभ्यः।
संयम तपरतेभ्यश्च विगतराग जिनमुनिभ्योनमः ॥२॥

जिनका कषाय नष्ट हो गया है तथा जिनका रोष नाश हो गया है तथा क्रोध, मान, माया लोभ इनका भी नाश हो गया है रागद्वेषादि मल दोष हैं अथवा अठारह दोषों से रहित जो वीतराग हैं। और अपने संयम में तप रत हैं जो जिनों में श्रेष्ठ हैं उन मुनियों को मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं। इस श्लोक में मुनियों के विशेषण दिये गये हैं। प्रथम तो क्रोध कषाय को नाश जिसने कर दिया है दूसरे जिसने मान कषाय का मर्दन कर दिया है। तीसरे माया और लोभ कषाय जो राग रूप हैं उनको जीत लिया है। चौथे अन्तर बाहर मल दोषों से रहित हैं तथा अठारह जन्म मरणादि दोषों से रहित हैं परम वीतराग मुद्रा के धारक और अन्तरंग वाह्य दोनों प्रकार के तपश्चरणों को कर रहे हैं जो संयम और ध्यान में स्थित हैं उन मुनि श्रेष्ठों को ही जिनवर कहते हैं उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूं। आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओं को नमस्कार किया गया है।

द्वादशांग भारतीं च वाह्यांग प्रविष्ट श्रुतं नमामि।
तत्पारगेभ्योहत रज शुद्धोपयोगेभ्यश्च ॥३॥

जो द्वादशांग आचारांगदि श्रुत है तथा अंगवाह्य श्रुत हैं उस जिनवाणी भारती को नमन करता हूं तथा उस श्रुत के पारगामी केवली श्रुत जो शुद्धोपयोग के धारक हैं और जिन्होंने ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और दान लाभ भोग उपभोग वीर्यान्तराय इन कर्मों का नाश कर दिया है उन श्रुत पारगामी सिद्ध भगवान का अरहंत आचार्य उपाध्याय और मुनियों को उत्तमांग सिर झुकाकर नमस्कार करता हूं।

अंग प्रविष्ट और अंग वाह्य भारती है अंगप्रविष्ट के आचारांग सूत्र कृतांगादि

बारह अंग हैं उन सब श्रुत को नमस्कार करता हूं। तथा जिनकी कोष्ठ बुद्धि वीज बुद्धि पादानुसारिणी बुद्धि सभिन्न श्रुत के धारक व भण्डार हैं अथवा जो शुद्धोपयोग से युक्त वृषभ सेन से लेकर अन्तिम सुधर्माचार्य गणधरों को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूं। अथवा श्रुत केवली हुए हैं हो रहे हैं उन सबको नमस्कार करता हूं।

शुद्धोपयोग भी उन ही मुनियों को प्राप्त होता है जिन्होंने अन्तरंग और वहिरंग परिग्रह का त्याग कर शरीर से भी राग छोड़ दिया है, जो गुण, श्रेणी, कर्मों को निर्जरा करने वाले वीतराग हैं शुद्धोपयोग को प्राप्त हैं वे ही जिन श्रुत के पारगामी व श्रुत के भण्डार हो सकते हैं वे केवली व श्रुत केवली है उनको हमारा नमोस्तु।३॥

नमः श्रीधरसेनाय चकारागम षट् खण्डम्।
श्रीगुणधर पुष्पदंत भतवली सूरीभ्यः ॥४॥

मैं आचार्य धरसेन स्वामी को नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने अपने योग्य शिष्यों को षट्खंडागम का उपदेश दिया था। उन गुणधराचार्य को नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने कषाय सुत्त आगम की अंकलिपि करी थी। उन पुष्पदन्त और भूतवलि युगल मुनियों को नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने षड्खंडागम की अंक लिपि कर अज्ञानियों के अज्ञान रूप अन्धकार को नाश किया उन आचार्य भूतिवलि पुष्पदन्त को नमस्कार करता हूं ॥४॥

नमः श्री कुन्दकुन्दाय समंतभद्रभारतीम्।
जिनेन्द्र बुद्धि पूज्यपादं देवनंदवे नमः ॥५॥

पंचम काल में होने वाले आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी हैं जिन्होंने चोरासी प्रभृतों का अंक लिपिवद्ध कर संसारी जीवों के अज्ञान अन्धकार को नाश किया है तथा श्रमण धर्म का और समाधि मरण का सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र का कथन किया है उनको में नमस्कार करता हूं। स्याद्वाद केशरी भगवत् आचार्य समन्त भद्र के द्वारा रची गई जिनवाणी भारती जो जगत जीवों के अन्तरंग में वैठें हुए अज्ञान अन्धकार को नाश करती है उस श्रुत को मैं नमस्कार करता हूं। जिन्होंने जैन धर्म की प्रशंसा देश देशान्तर में फैलाई थी। जिन्होंने भगवान की स्तुति रूप काव्यों की रचना कर अनेक मत मतान्तरों का खण्डन व दोषों को प्रकट कर दिया था और वादियों का मान मर्दन किया जिनके सुनते ही वादी जनों की हाथ की नाडी उसी प्रकार छूट जाती थी कि जिस प्रकारमदोन्मत्त हाथियों के मध्य में कण्ठीख आ जाता है तव हाथियों के मद नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार आचार्य समन्त भद्र थे, जिन्होंने अनेकों स्थानों पर वाद किये थे। उन्हें अनेक मन्त्र सिद्धि भी कहते हैं। जिनके नमस्कार करने को महादेव की पिण्डी सहन न कर सकी वह फट गई और चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति निकली और इस अतिशय को देखकर शिवकोटि राजा जैन धर्मानुयायी बन गया था। उन समंत भद्र स्वामी को मैं नमस्कार करता हूं। तथा समन्त भद्र भारती को तथा पूज्यपाद देवनन्दी आचार्य को नमस्कार करता हूं जिनकी वुद्धि जिनेन्द्र भगवान के समान उपमा से युक्त है। जिन्होंने श्रावकाचार, इष्टोपदेश, समाधि तंत्र, सवार्थ सिद्धि और जैनेन्द्र व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

भट्टाकलंकदेवाय श्री विद्यानन्द वाक्पतिम् ।
प्रथमद्वितीयौजिन सेनाभ्यो: वसुनंदये ।।६।।

स्वामी आचार्य भट्ट अकलंदेव व वाग्पति विद्यानन्द देव को मैं नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने वाद वादियों के मद को नाश किया था। जिन्होंने श्लोक वार्तिक अष्ट सहस्री आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी उन प्रसिद्ध विद्यानन्द देव को मैं नमस्कार करता हूं। प्रथम जिनसेनाचार्य और दूसरे जिनसेनाचार्य तथा वसुनन्दी आचार्य की मैं मस्तक झुकाकर वन्दना करता हूं।

नम: श्री शांति सिंधवे श्री पायसागरायैवम् ।
श्री वीरसागराय च नम: श्री जयकीर्तये ।।७।।

उन पंचम काल में अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने वाले व चरित्र का प्रकाश करने वाले चरित्र चक्रवर्ती परम पूज्य प्रात: वन्दनीय आचार्य शान्ति सागर को तथा उनके पट्ठ शिष्य पाय सागर, वीर सागर, कुन्थ सागर को मैं नमस्कार करता हूं तथा पाय सागर के शिष्य जय कीर्ति मुनि राज को नमस्कार करता हूं।

मह्यं विद्यापपाठतं स्मरामि शान्तिर्रजिकां ।
दीक्षा गुरुवे नम: देशभूषणायैवम् ।।८।।

मैं उन आर्यिका शान्तिमती को स्मरण करता हूं कि जिन्होंने अपनी मधुर वाणी का उपदेश देकर मुझे विद्या अध्ययन कराई थी। तथा संसार के मार्ग से निकाल कर सन्मार्ग में लगाया था। अपने दीक्षा गुरु श्री आचार्य देशभूषण महाराज को नमस्कार करता हूं कि जिन्होंने अनेक कन्नड, संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की हिन्दी भाषा में टीकायें लिखी हैं। तथा कन्नड़ में भी अनुवाद किया है।

मैं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र को नमस्कार करता हूं तथा उसी प्रकार

रत्न त्रयं च वन्दे चौवीस जिनानां पंचगुरूणां ।
सर्वदा चारण चरणं भारतीं च भक्त्या च वंदे ।।९।।

ऋषभादि चौवीस तीर्थंकर परमात्मा हुए हैं उनको भी नमस्कार करता हूं। पंच गुरु अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्व साधू इन पंच गुरुओं को नमस्कार करता हूं चारण चरण महा ऋधियों के धारक मुनियों को नमस्कार करता हूं। तथा भक्ति से उस जिनवाणी भारती को नमस्कार करता हूं ।

वीतरागायनमः

प्रबोधसार तत्त्व दर्शन

नमः श्रीजिन चन्द्राय मोहं संज्ञा ज्वरक्षयात् ॥
प्रबोधसार साराध्य प्रवक्ष्ये स्व हितार्थाय ॥१॥

श्रीजिन जिनेन्द्र भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर स्वामी तक चतुर्विशति तीर्थंकर हुए हैं उन्होंने अपने दर्शनमोह और चारित्रमोह का नाश कर दिया है। जिस संज्ञा रूपी ज्वर से सब संसारी जीव दुखी हो रहे थे उन चारों संज्ञाओं (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह) का नाश कर दिया है तथा संज्ञाओं के साथ ही ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय कर्मों का नाश करके अंतरंग लक्ष्मी, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चारित्र, केवल ज्ञान और केवल दर्शन तथा अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य रूप अन्तरंग लक्ष्मी तथा बाह्य में बारह सभा आठ प्रातिहार्यों सहित विराजमान हैं उन श्री जिनों में चन्द्रमा के समान प्रकाश मान हो रहे श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूं। यह प्रबोधसार नाम का जो ग्रन्थ है उसको मैं अपने हित के लिये कहता हूं। यह प्रबोध सार ग्रन्थ अपने कल्याण के लिये मैं रचना कर रहा हूं। इसमें आगम के कुछ आराधने योग्य पदार्थों का लक्षण कहेंगे ऐसी ग्रन्थकार ने प्रतिज्ञा की।

संसार भीषणं वह्नि जीवा तपन्ति नित्यैव ॥
प्राप्नुवन्ति च दुःखं ये भ्रमेत्पंचपरावर्त्ते ॥२॥

यह संसार महाभयंकर अग्नि के समान है इसमें जीव अनन्त काल से जन्म मरण जरा बुढापा को प्राप्त कर महाघोर दुःखों को प्राप्त हो दुःखी होते आ रहे हैं तथा पंचेन्द्रिय विषयाशारूपी अग्नि धधक रही है उसमें मिथ्यात्व और अज्ञान रूपी ईंधन पड़ा हुआ है जो रागद्वेष रूपी भयंकर तूफान चलने के कारण विशेष रूप से जिसकी ज्वाला उठा रही है। जिससे सर्व लोक में रहने वाले प्राणी तप्तायमान हो रहे हैं। तथा दर्शन मोह और चारित्र मोह के उदय होने के कारण जीव पंचपरावर्तन रूप संसार में दुःखों का अनुभव करता हुआ भ्रमण करता चला आ रहा है। वे पंच परावर्तन द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव भेद वाले हैं इनका कथन सविस्तार पूर्वक आगे किया जायगा।

चतुरशीति लक्षयोनिषु पावन्ति दुःखं च ॥
विक्रान्तमरणं नित्यं कृत्वा कुदेव धर्मौ च ॥३॥

यह भोला अज्ञानी मिथ्यात्व रूपी अंधकार के बीच में फँसा हुआ कुदेव कुगुरु और

कुधर्म की आराधना करता चला आ रहा है जिससे चौरासी लाख योनियों में जन्म मरण के दुःखों का अनुभव कर रहा है। तथा वे योनि इस प्रकार हैं नित्य निगोद संसार चतुरगति निगोद पृथ्वी जल अग्नि वायु इन छह की प्रत्येक की सात-सात लाख हैं वनस्पति की दश लाख दो तीन चार इन्द्रिय जीवों की दो दो लाख योनि हैं। देव नारकी पंचेन्द्रिय त्रियंचों की चार-चार लक्ष तथा मनुष्यों की चौदह लक्ष योनिहैं इन में जीव जन्म मरण रूपी रहट में भूला करते हैं ।।३।।

आगे कुदेव का स्वरूप कहते हैं।

पिप्पल कदली निम्बाः वट केरिकरीराश्च ।।
सुखार्थिनश्च नंदन्ति भूगौ गजाऽस्वकीशानां ।।४।।

यह मोही अज्ञानी जीव अज्ञानता से पीपल नीम वड़ केला व आंवला के वृक्ष करीर तथा नारियल के वृक्षों की पूजा करते हैं नमस्कार करते हैं यज्ञोपवीत पहनाते हैं तथा जल से वृक्षों की पिंडिका को धोते हैं। तथा दूध दही पूड़ी खीर हलुआ इत्यादि वस्तुओं से तथा भात पूड़ी पापड़ी इत्यादि अनेक बस्तुओं से पूजते हैं। पीपल वृक्ष तथा वटके वृक्ष को व केला आँवला के वृक्ष को ब्राह्मण मान पूजते हैं नमस्कार कर विनती करते हैं प्रदक्षिणा देकर मस्तक पर धूलि लगाते हैं। तथा तुलशा के वृक्ष को विष्णु भगवान की औरत मानकर चूड़ी पहनाते हैं तथा वस्त्रों से सजाते हैं और प्रदक्षिणा देकर दीपक से आरती करते हैं तथा उसके ऊपर पानी डालते हैं और उसके पत्तों को तोड़ कर खा जाते हैं।

सुख की इच्छा से भूमि की तथा गाय की पूजा करते हैं तथा तैंतीस करोड़ देवताओं का वास एक गाय के सर्वांग में होता है फिर भी वह गाय विष्टा खाती फिरती है। बैल हाथी घोड़ा और बंदरों की तथा वकरी भेड़ इत्यादि को देव मानकर पूजा करते कराते हैं तथा हलदी गुड़ सिंघाड़ा की लापसी बनाकर हाथी की सूड पर लगाते हैं और नमस्कार करते हैं। तथा गाय के पीछे के प्रष्ठ भाग कमर व पूंछ के पुट्ठों को स्पर्श कर गाय के पैरों को छूते हैं। और गाय के मूत्र को पवित्र मानकर पीते हैं। तथा अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं वकरी के मुख की गति पवित्र मानकर उसके मुख से स्पर्श की गई वस्तु को भी पवित्र मानते हैं और उस झूठन को वड़े आनन्द के साथ सबको बाँट कर खाते हैं और आनन्द मानते हैं। बंदर को हनुमान का वंशज मानकर उसकी पूजा करते हैं नमस्कार करते हैं घोड़ा-घोड़ी को अपना रक्षक मानकर उसकी पूजा करते हैं पीठ पर घी गुड़ लगाते हैं और कुआ वावड़ी पूजने को ले जाते हैं और सुख की अभिलाषा करते हैं।

आगे और भी कहते हैं ।।४।।

पृथ्वी नीराग्नि वायुश्चाकाशभूतानि नंदन्ति ।।
स्तुवन्ति वालुकापुंजं पिंडदानादिमूढतः ।।५।।

पृथ्वी को देवी मानकर पूजा करता है जल अक्षत नैवेद्य चढ़ाता है तथा नमस्कार कर वारवार विनती करता है कहता कि हम आप की सेवा में उपस्थित हुए हैं। आप हमें तथा सेवकों को सुख प्रदान करो दुःखों को दूर करो। हम को धन धान्य से परिपूर्ण करो। स्त्री

पुत्र मित्र परिजनों की समृद्धि करो। हे जल देव आप तो अमृत स्वरूप हैं तथा आपका नाम अमृत है आप हमारे रोग शोक भय वैरी कृत उपद्रवों का नाश करो। हे जल देव हम सब पूजाकी सामग्री व हवन की द्रव्य लाये हैं और आपकी पूजा करते हैं आप हमारे तथा पूजक यजमानों के दुःखों को दूर करो हम दुःखों से डरकर आपकी शरण में आये हुए हैं आप हमसब की रक्षा करो दुःखों का नाश करो सुख संपति प्रदान करो। हमारी चिन्ता व आकुल ताओं को तथा व्याधियों को अपने प्रवाह से बहा दो। हे अग्नि देवता हमारी रक्षा करो हम संसार के ज्वर से घवड़ाये हुए हैं। दानव लोग हमारे पीछे लगे हुए हैं हमारी सब विद्या बल सैन्य राज संपत्ति का अपहरण करने को उद्यत हैं उनसे हमारी रक्षा करो। सेवक गण आहुति देकर नमस्कार करते हैं। तथा हमारे सब प्रकार के दुःखों को भस्म करो आपका नाम भी भस्मक है। अविचल वैकुंठ के सुखों को प्रदान करो। यमराज से हमारी तथा यजमान पूजकों की रक्षा कर उनकी इच्छाओं को पूरा करो यह हमारी प्रार्थना है।

हे वायु देवता आप तीनों लोकों में भ्रमण करने वाले एक ही हैं क्योंकि आपकी दया से प्राणी जीवन ज्योति को जला रहे हैं। आप ही सब जगत का भरण पोषण करते हुए चले आ रहे हैं। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है कि जिसको आप न जानते हों। आप गर्मी के मौसम में सबको शीतल मंद सुगंधित पवन के द्वारा प्रफुल्लित करते हैं। आपकी दया से सब वृक्ष लतायें फूलती हैं तथा फलती हैं। शीत काल में आप मंद-मंद गति से चलते हैं जिससे प्राणी शीत के दुःख से वच जाते हैं। आप हम सेवकों पर दया करो हमको तथा पूजकों को धन धान्य स्त्री-पुत्र सबसे युक्तकर हमारे दुःखों का नाश करो। हम अपने को अनाथ जानकर आप की शरण को प्राप्त हुए हैं आप हम पर दया करो। रोग शोक भय आकुलता दूर करो। हमारे पीछे लगे हुए दानवों का निग्रह करो। हम आपकी पूजा आहुतियों से करते हैं।

हे आकाश देव आप सबसे विशाल हैं आपका अन्त नहीं है अंतातीत हैं आपके उदर में तीनों लोक बसे हुए हैं आप विष्णू तथा ब्रह्म स्वरूप हैं आप की पूजा ब्रह्मा विष्णु कार्तिकेय तथा धूर्जटी इत्यादि सब करते हैं। आप महान हैं इसलिए हम आप की शरण को प्राप्त हुए हैं। तथा पूजा की सामिग्री भी लाये हैं आपकी पूजा भी हम भक्ति-भाव से कर रहे हैं। आप हमारे सब संकटों का विनाश करो धन धान्य संपत्ति पुत्र मित्र और स्त्री इत्यादि से सेवकों की समृद्धि करो, सुख करो, रोग शोक मृत्यु दूर करो इत्यादि प्रकार से आकाश को देव मान पूजा करते हैं। स्तवन करते हैं। तथा पानी चढ़ाकर वेर गुड़ पूड़ी पापड़ी मिष्टान्न चढ़ा कर पूजा करके नमस्कार करते हैं। तथा नदी में स्नान कर अपने को शुद्ध मानते हैं। और कहते हैं कि नदी के पानी में स्नान करने से सब पाप मल धुल जाते हैं पीछे को कोई पाप नहीं रह जाता। तथा नदी में रेत का ढेर लगाकर उसकी पूजा करते हैं कि हे गंगा आप तीर्थों में प्रधान हैं आप के पानी में स्नान कर अनेक जीव संसार के दुःखों से छूट चुके हैं। आपका नाम नन्दीश्वरी है क्योंकि आपको महादेव जी ने अपने मस्तक पर जटाओं में धारण किया था। और जटाओं में से आप को निकलने के लिये मार्ग नहीं मिला तब भागीरथ ने तपस्या की

जिसके प्रभाव से आप महादेव की जटाओं से बाहर निकली। अब हम आपकी शरण में आये हैं आप रक्षा करो। इस प्रकार नदी को देवी मानकर पूजा करते हैं। आप के जल में यह भस्म लाये हुए हैं कि आप हमारे पुरखा जो मर गए हैं उनको पवित्र करो और वैकुंठ धाम में रहने दो। इस प्रकार नदी की पूजा स्तवन करते हैं। विचार कियाजाय कि इन में देवपना कैसा है।

लिंगं योनौ स्थापय सन्मुखे वलीवर्धोविरच्यते ॥
धनुर्वाणं कृपाणं दीवलंमल संग्रह मर्चन्ति ॥६॥
कोऽपि पीरं कुणय वेश्मनं लांगलं वापिकां वाल्मीकम् ॥
आपणं वित्तकोशं कथं देवत्वभवन्ति येषाम् ॥७॥

कोई मोही अज्ञानी स्त्री की योनि में पुरुष के लिंग को स्थापन कर उसकी पूजा करते हैं तथा उसको ही परमात्मा मानते हैं और उसके सामने नादिया रख कर शिव मानकर पूजते हैं। कोई धनुष और वाण को कोई तलवार को देव मानते हैं और आहुति देकर पूजा करते हैं। तथा देहली पूजते हैं और घूरे की पूजा करते हैं और मुट्ठी भरकर कूडा ले आते हैं। कोई अज्ञानी मृतक शरीर को जमीन में गाड़कर उसको पीर मान कर उसकी पूजा पुष्प चढ़ाकर करते हैं उनको गर्मी नहीं लग जावे इसलिये कपड़ा ढकवाकर शीतल सुगंधित पानी छिड़कवाते हैं शीत नहीं लग जावे इसलिये कपड़ा ढकते हैं और वार-वार धोक देते हैं। तथा श्मसान की पूजा करते हैं और उसको अपना रक्षक मान कर दीपक से आरती करते हैं पुष्पक्षेपण करते हैं। कोई अज्ञानी हल मूषल की तथा कोई कुआ बावड़ी की पूजा करते हैं तालावों की पूजा करते हैं कोई सर्प की वामी की पूजा करते हैं वामी में दूध डालते हैं विचारते हैं कि इससे नाग देवता प्रसन्न हो जायेंगे तो धन पुत्र स्त्री व निरोगता देवेंगे। कोई दुकान को देव मानकर पूजते हैं नमस्कार करते हैं धूप दीप से पूजा कर नमस्कार करते हैं। तथा खजाने की पूजा करते हैं। यह कुदेवों के लक्षण कहे गये हैं। इन से किन के देवपना है सो कहो? इनके देव-पना है ही नहीं। क्योंकि कुछ तो वनस्पति कायक तथा पंचभूत एकेन्द्रिय हैं कुछ एकेन्द्रिय भी नहीं हैं, जड़ हैं किसी के आकार रूप भी नहीं हैं वे एकइन्द्रिय जीव आप स्वयं जन्म-मरण के दुःख में पड़े हुए हैं फिर भला तुम उनसे सुख मांगते हो वे तुमको कैसे दे सकते हैं।

मन्यते पुण्यमापगा सागरेषु च छालने।
मननमात्र पाषाण नोकायामुपविश्यं च ॥८॥

कोई अज्ञानी मानता है कि नदी या समुद्र में स्नान करने से पाप मल सब धुल जाते हैं और पुण्य की वृद्धि हो जाती है, तथा अन्तरात्मा शुद्ध हो जाती है। जिससे जीव को संसार में दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं। परन्तु यह भी मान्यता इस प्रकार की है कि जिस प्रकार कोई पत्थर की नाव में वैठकर समुद्र को पार करने की इच्छा करता है। पत्थर की नाव डूव जाती है वैठने वाला भी डूव जाता है। कहा भी है।

अत्यन्त मलिनो देहो देही चात्यन्त निर्मलः।
उभयोरन्तरं दृष्ट्वा कस्य शौचविधीयते ॥१॥

अन्य स्थान पर कहा है।

आत्मानदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहाशील तटादयोर्मी ।
तथाभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ।।१।।
चित्तमंतर्गतंदुष्टं तीर्थस्नानैर्नशुध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धोतं मद्यभांडमिवाशुचि ।।१।।
कामराग मदोन्मत्ताः स्त्रीणां ये वसवर्तिनः ।
न ते जलेन शुद्धवन्ति स्नात्वा तीर्थशतैरपि ।।२।।
गंगतोयेन सर्वेण भृङ्गारैः पर्वतोपमैः ।
आम्लैरप्यचरन् शौचं भावदुष्टो न शुद्धयति ।।३।।
मनोविशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचांयमश्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि मोक्षस्य मार्गं प्रति दर्शयन्ति ।।४।।
अरण्येनिर्जले देशेऽशुचित्वद्ब्राह्मणोमृतः ।
वेद वेदांगतत्वज्ञः कां गति स गमिष्यति ।।१।।
यद्यसो नरकं याति वेदाः सर्वेनिरर्थकाः ।
अथ स्वर्गमवाप्नोति जलशोचं निरर्थकं ।।२।।

यह शरीर अत्यन्त मलीन है तथा इस शरीर में रहने वाला आत्मा अत्यन्त निर्मल है इन दोनों में अन्तर देखकर किसकी शौचि कही जाय ।१

आत्मारूपी नदी है जो संयमरूपी पानी से परिपूर्ण भरी हुई है सत्य जिसका प्रवाह है शील जिसके किनारे हैं ऐसी आत्मारूपी नदी में हे पाण्डु पुत्र तू स्नान कर केवल नदी मात्र में शरीर के ऊपर लगी हुई रज को धोने से तेरी अन्तर आत्मा शुद्ध नहीं होगी ।१।

यदि अपना अन्तरंग विकार पापमलयुक्त मन है वाह्य में शरीर को खूब गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी, कृष्णा इत्यादि हजारों नदियों व तालाबों में अनेक बार धोने पर भी शुद्ध, पवित्र नहीं हो सकता। जिस प्रकार शराव के घड़े को हजारों बार धोने पर भी दुर्गन्ध रहित नहीं हो सकता है ।।१।।

जो कामी दुराचारी स्त्रियों में आसक्त काम भोगों में लीन और स्त्रियों के आधीन हो रहे हैं वे जीव यदि लवणोदधि के सब पानी से अपने शरीर को पवित्र करना चाहें तो भी पवित्र नहीं हो सकता है। हजारों तीर्थों में स्नान करने से भी वह पवित्र नहीं होता है ।२।

यदि एक गंगा जी के पानी से स्नान किया जाये तो भी जिनका मन क्रूर है उनकी पवित्रता नहीं हो सकती है। चाहे पर्वत के बरावर माटी से रगड़ २ कर शरीर को धोया जाय, भाव की शुद्धता के विना पानी में नहाने से कोई लाभ नहीं है ।।३।।

मन के विकार को जिसने दूर कर दिया है और संयम, नियम और पंचेन्द्रियों के विषयों को रोंक देना तप है ऐसे देहधारियों के तीर्थ हैं इनमें स्नान करने पर मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है ऐसा वताया है। इस प्रकार भगवद्गीता में कहा है ।४।।

कोई वेद वेदान्त का जाननेवाला ब्राह्मण एक जंगल में गया वहाँ पर पानी नहीं था और उसको शौच लग गई और शौच गया उसी समय यदि मरण हो जाय तव कौन गति

होगी। और नरक चला जावे तो वेद का पढ़ना निरर्थक हुआ। यदि नदी में स्नान करके भी कोई मरण करके नरक चला जावे तो उसका गंगा में स्नान करना भी निरर्थक हुआ। और विना गंगा के स्नान के यदि वह स्वर्ग चला जाये तो गंगा का स्नान करना निरर्थक ठहरा। इसलिए जल में स्नान मात्र से तो शरीर भी पवित्र नहीं हो सकता है तव अन्तर आत्मा कैसे शुद्ध होगी।

मोहरूपं महारिपुः संसारस्य महामूलम्।
दुःखं पावन्ति जीवैकः संसाराब्धेयेभ्रमत्यसौ ॥६॥

इस संसार में इस जीव का महावैरी तो दर्शन मोह, और चरित्र मोह ही है जो आत्मा के सम्यक्त्वादि गुणों का घात करता हैं, यह मोह ही संसार रूपी वृक्ष की जड़ हैं। इस मोह के कारण ही जीव संसार में भ्रमण करता है तथा जन्म-मरण आदि व्याधियों के दुःखों को प्राप्त करता हुआ ससार रुपी समुद्र में मग्न होता हुआ भ्रमण करता है और जीव अकेला ही दुःखों का अनुभव करता है।

संसारस्य यथा भेदाजिनोपदिष्टपंचधा।
द्रव्यक्षेत्रश्च कालश्च भवभावौच विख्यातम् ॥१०॥

संसार के पांच भेद हैं (द्रव्य क्षेत्र) वे जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये हैं ये द्रव्य परावर्तन क्षेत्र परावर्तन काल परावर्तन भव परावर्तन भाव परावर्तन ये पाँच परावर्तन जगत में प्रसिद्ध हैं। ये पाँचो परावर्तन पाँच प्रकार के मिथ्यात्व से सम्वन्ध रखते है। एक विपरीत, दूसरा अज्ञान, तीसरा विनय, चौथा संशय, पाँचवां एकान्त इन पाँचों को प्राप्त जीव ही एक-एक को लेकर संसार में जन्ममरण के दुःखों को पा रहे हैं। कुदेवों की पूजा स्तवन करने वाले वेदवादी ब्राह्मण हैं।

आगे कुदेवों का स्वरूप कहते हैं :—

भैरव प्रेत भूतानां यक्ष राक्षस वैतालाः।
शीताशंश्वकौ च शीतला शान्ति दुर्गाच गौरी च ॥११॥
पिशाचयोगिनीकाली शनी राहुश्च तारकाः।
वुधशुक्र तथा केतुः चण्डी चामुण्ड केलिकाः ॥१२॥
कालो वम्वा च भैरवी नागाश्चगण देवताः।
कामार्थो खलुचार्चन्ति वहुधा किन्नराणां च ॥१३॥
विप्र नापितकुम्भकार रजकाश्च तैलिकाः।
वाल्मीगृहा च देहली हारा भूषण वस्त्राणां ॥१४॥
नदी सिंधुश्च वापिका शैल विमान मुद्राणाम्।
हितकांक्षिण एतदर्चन्ति कुदेव भूतानाम् ॥१५॥

यह अज्ञानी, मोही अपने हिताहित के विवेक से रहित भोगों की अभिलाषा कर कुदेवों की नित्य पूजा करता है, आराधना करता है। कभी भैरव (भुमिया, नगरसेन) की पूजा करता है, कहीं यक्ष देव की पूजा, कहीं क्षेत्रपाल देव की पूजा करता है। कहीं पर भूत

व्यन्तर देवों की उपासना करता है। कहीं यक्ष राक्षस वैताल आदि देवताओं को अपने कुल का रक्षक मानकर उनकी आराधना करता है। आराधना कर उनसे पुत्र, धन, स्त्री, परिवार, राज्य, वैभव की याचना करता है। कभी सूर्य की, कभी चन्द्रमा की पूजा करता है, जल की धारा छोड़ता है, कभी आरती उतारता है, चरु अर्पण कर कहता है कि मैंने सूर्य व चन्द्रमा को अर्घ चढ़ाया और जल से स्नान कराया। क्योंकि ये दोनों ही संसार को प्रकाश देते हैं और सुख देते हैं कल्याण का पथ दिखाते हैं। उसके बदले में उनसे निरोग शरीर तथा भोगों की सामग्री हमको दो हम दुखी हैं, हमारे कष्टों को दूर करो, योग्य पुत्र, स्त्री, मित्र, माता, पिता, धन योवन दो ऐसी प्रार्थना करता है। शीतला, शान्ता, गौरी, गांधारी, दुर्गा, काली, अम्बा देवी इत्यादि देवियों को प्रसन्न करने के लिए बकरा, भेंसा, भेड़, मेढा इत्यादि अनेक जीवों को मार-मारकर बलि चढ़ाता है और उनको प्रसन्न करता है तथा प्रसन्न कर याचना करता है कि हे देवी मुझे वरदान दो मुझ पर प्रसन्न हो मुझे पुत्र दो, मैं मुकद्दमा से बड़ा दुःखी हूँ, मेरी मुकद्दमा में जीत हो और धन दो धान्य से घर भर दो स्त्री मित्र क्षेत्र दो और सुख-शान्ति दो रोग तथा वैरियों का नाश करो। हे शीतलादेवी आप सब जगत के जीवों को शान्ति प्रदान करती हो हम आपकी शरण में आये हुए हैं पूजा व हवन की सामग्री भी साथ में लाये हैं। हम पूजकों पर प्रसन्न होकर हमारे ऊपर आये हुए कष्टों को दूर करो। हे शान्ति देवी आप जगत को शान्त करने में भीमसेन से भी बलवान हैं और पराक्रमशील हैं आपका वाहन गरुड़ है आप तलवार, त्रिशूल, वज्रायुध सहित रहकर जगत की रक्षा करती हो आप हम पूजकों की रक्षा करो आशा पूर्ण करो। हम नैवेद्य दीप धूप लेकर आपकी सेवा में आये हैं हम तथा सेवकगण आपका ही कीर्तन व गुणानुवाद करते हैं हम पर शीघ्र ही प्रसन्न होओ। दुर्गाभवानी, गौरी, गांधारी, पिशाचिनी, योगिनी, काली, चण्डी मुण्डी, केलिका, अम्बा इत्यादि देवियों की भक्ति करता है सुख की कामना करता है तथा देवियों के नाम पर भैंषा, बकरा, मेढा आदि जानवरों की बलि चढ़ाता है तथा हंस, मुर्गी इत्यादि अनेक पक्षियों की बलि चढ़ाता है यह उसके बदले में यश-कीर्ति सुख-सम्पत्ति की इच्छा करता है तथा पुत्र धन स्त्री राज्य वैभव और निरोग शरीर की याचना करता है। शनी राहू केतू बुध गुरु मंगल और शुक्र इन ग्रहों को अपना हितकारी जानकर आराधना करता है स्तवन करता है। यह कुदेव पूजा है। ये सब कुदेव स्वयं ही भिखारी हैं वे आगे भेंट माँगते हैं जो पहले भेंट माँगता है वह भेंट देने वाले को पुत्र मित्र सुख-संपदा दे सकता है ? यह सब कुदेव पूजा है।

ब्राह्मण व गुसांईं, फकीर, सांई, नाई, धोबी, तेली आदि के घर पर जाकर नाई की कैंची, छुरा की पूजा करता है तथा भेंट में सवा रुपया देता है तथा धोबी के घर जाकर उसकी मोगरी को पूजता है और धोबी को नमस्कार कर भेंट देता है। विवाह आदिक में तेली के घर तेल लेने जाते हैं और उसके कोल्हू व लाट की पूजा करते हैं, रुपया पैसा पूड़ी पुआ इत्यादि से पूजा करते हैं तथा नारियल लेकर फोड़ते हैं। सर्प की वामी को पूजते हैं, वामी में दूध की धारा छोड़ते हैं व नाग पूजा करते हैं। गुहा कंदरा की पूजा करते, घर की देहरी की पूजा करते तथा दीपावली के दिन हार कंकण बाजूबंदन आदि की पूजा

करते नमस्कार करते आरती उतारते तथा नदी समुद्र की पूजा व कुंआ बावड़ी की पूजा करते, रामनौमी तथा दीपावली के दिन रुपया पैसा आदि का ढेर लगाकर पूजते आरती उतारकर नमस्कार करते हैं। अन्न देवता मानकर दुकान मकानादिक की पूजा करते हैं और उससे अपना हित चाहते हैं परन्तु हित होता हुआ दिखाई नहीं देता है। यह सब कुदेव पूजा व अदेव पूजा का संक्षिप्त कथन किया है।

आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है :—

वरोपलिप्स आसावान् रागद्वेषमलीमसा।
देवतायदुपाशीत देवता मूढमुच्यते ॥२६॥

जो राग द्वेष जन्म-मरण के दुखों से भयभीत हैं कोई भक्त उन देवताओं की पूजा भक्ति करता है पूजता है और उनसे अपनी इच्छाओं को प्रकट कर मांगता है वर पाने की इच्छा करता है उसी का नाम देव मूढता है।

आगे अगुरु कुगुरु का लक्षण कहते हैं :—

मान्यन्तेविवुधा राग द्वेष युक्ता जनार्गुरुन्।
काक हंस वकाश्येनाः पृथ्वीजलतेजानां ।१६॥
वायुगगन सागराः पामर निशिभोजिनां।
विप्रो गुसायः लाशवा हिंसका सत्य भाषकान् ॥१७॥
ये पररमणीरताः चौर परिग्रहेसक्ता।
कांञ्छारसरता कथं गुरुधरः किं माप्तनुत् ॥१८॥

अज्ञानी भोले-भाले कुगुरुओं से ठगाये गये मोह वस यह मानते हैं कि ये कौआ हंस वगुला चील बाज तथा गृद्ध व पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश और समुद्र तथा पर्वत को अपना गुरु मानकर पूजते हैं। इनके गुणों को धारण करो ये हमको शिक्षा देते हैं ये ही महान् हैं। जो नीच कुलों में उत्पन्न हुए हैं रात्रि में भोजन करते हैं कन्दमूल खाते हैं और मांसाहार करते हैं तथा मदिरापान कर मत्त मनुष्य के समान रहते हैं गांजा चर्स भंग अफीम आदि अनेक नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। जो ब्राह्मण क्षत्रिय वंश में व वैश्य वंश में उत्पन्न हुए हैं और दुराचारी हैं रागी द्वेषी मोही पंचेन्द्रियों के विषयों में आसक्त हैं दुराचारी हैं वे सब अगुरु हैं। जो पर रमणी को देख उनमें आसक्त हो जाते हैं तथा रतिदान माँगने लग जाते हैं तथा पर स्त्रियों के साथ भोग भोगने लग जाते हैं दुराचारी जाति कुजाति के विचार से शून्य है वे दुराचारी गुरु नहीं हो सकते हैं। आरंभ खेती करना मकान बनवाना कुआँ खुदवाना झाड़ना बुहारना लीपना पानी भरना इत्यादि आरम्भ कार्यों में रत रहते हैं जो जीवों की हिंसा करने में रत हैं झूठ बोलकर लोगों को ठगा करते हैं व चोरी करते हैं और बाह्य दश प्रकार के परिग्रह तथा आरम्भ में रत रहने वाले हैं वे सब अगुरु हैं। गुसाँई जाति विशेष में उत्पन्न हुए हैं भीख मांगकर पेट भरते हैं जो चांडालादि जातियों में उत्पन्न हुए हैं वे सब अगुरु हैं। उनके पास गुरुत्व नहीं हो सकता। जो आरम्भादि व कषाय क्रोधादि तथा भावों में रत हैं व पंचेन्द्रियों के विषय रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श तथा खट्टा, मीठा, खारा,

चरपरा कडुआ और कपोला आदि रसों में आशक्त हैं वे सब अनंत संसारी हैं व गुरु नहीं हो सकते वे सब ही अगुरु हैं गुरुपने को प्राप्त नहीं हो सकते । १६।१७।१८।।

विषयाशक्तचित्ताश्च रागद्वेष मलीमसा ।।
आरम्भहिंसने लीना कुगुरु मन्यतेमुनिः ।।१९।।

पंचेन्द्रियों विषयों में आसक्त है मन जिनका जो किसी से राग करते हैं किसी से द्वेष वैर करते हैं तथा जिनका मन रागद्वेष में मगन हैं और आरम्भादि हिंसा कार्यों में लवलीन हैं जो मित्थात्व के पोषक तथा भोजन के लम्पटी हैं जो जीवों की विराधना रूप हिंसा से युक्त हैं। जो प्राणियों के विवेक से शून्य हैं माया मिथ्यात्व और निदान इन तीनों सल्यों से युक्त कृष्ण लेश्या के धारण करने वाले हैं और समीचीन धर्म से द्वेष करने वाले हैं ऐसे जो पाखण्डी हैं वे कुगुरु हैं। जिनका मन क्रोध, मान, माया, लोभ चारों कषायों से कलुषित रहता है। जो गांजा, भाँग, धतूरा, सुलफा, जरदा, बीड़ी, सिगरेट का पान करते ही रहते हैं और नशों में डूवे रहते हैं। नशा के आवेश में आकर खोटे वचन गाली गलोज भी बोलने लग जाते हैं वे सब कुगुरु हैं। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ।।१९।।

पलं भुंजन्ति मद्यपाः रण्डारमण कारकाः
रात्रौ भुज्यमगालितं तोयं पिबन्ति कापालाः ।।२०।।

जो रसना इन्द्रिय के लोलुपी विवेक हीन मांसभक्षण करते हैं तथा शहद शराब ताड़ी का पान करते हैं। परस्त्री राँड विधवा स्त्री को बहलाकर उनके साथ विषय भोग करते हैं स्त्रियों को देख कर रण्डा रण्डा कहकर खोटा वचन निकालते हैं और अपने को अवधूत कहते हैं। अपने पास स्त्रियों को रखते हैं तथा जंगलों में से कंद खोदकर लाते हैं और उनको अग्नि में भूनकर खा लेते हैं। आलू सकरकद, अरवी, गाजर, मूली रतालू इत्यादि कन्दों को खाकर अपनी क्षुधा को शान्त करते हैं। तथा रात्रि में भोजन करते हैं जो रात्रि का भोजन मांस के समान तथा पानी रक्त के समान महाभारत शिव-पुराण मारकण्डेय पुराण में कहा है। नदी तालाब कुआँ बावड़ी समुद्रादि में स्नान करते हैं बिना छाना पानी पीते हैं जो खेती करते हैं जग्याओं के गादीदार बने हुए हैं सर्प विच्छू आदि जहरीले जानवरों को देखते ही निर्दयतापूर्वक मार डालते हैं ऐसे कापालिक जटाधारी कुगुरु हैं।२०।।

आशायुक्ताश्शरीरं च शोषयन्ति च किल्विषाः
आपगासिंधवोः स्नानं जटा शस्त्रादि धारकाः ।।२१।।

जो आशाओं के वशीभूत परिग्रह की प्राप्ति के लिए शरीर को सुखा देते हैं तथा खोटे बातों की धारक नीच वृत्ति को करते हैं। अज्ञान तप करते हैं काँटों की शैया पर शयन करते हैं कांटे चुभने की वेदना को भी सहन करते हैं। पंचाग्नि तप करते हैं जिससे सारा शरीर अधजले के समान हो जाता है। और वर्षों तक खडगासन से खड़े रहकर अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टों को सहन करते हैं। तथा महीनों तक पानी पीकर लोंग व कालीमिरच चबा कर भी रह जाते हैं! दिन में सब प्रकार के अन्न जल का त्याग कर अंधकार में भोजन पान करते हैं। तथा अपने मस्तक पर जटायें वढाते हैं जिसमें जुओं पड़ जाते हैं तब उनको मारने का

प्रयत्न करते हैं। गंगा, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा तथा समुद्र में स्नान करते हैं जब जटाओं को खोलकर फैलादेते हैं तो जल में विचरने वाली मीनें फंस जाती है और मर जाती हैं। पुस्कर जी के तालाब में कूद कर स्नान कर अपने जटाओं को खोल देते हैं खाने की लम्पट मछलियाँ आ जाती हैं और फँसकर मर जाती हैं। इस प्रकार महंत जटाओं के धारक होते हुए अपने पास चिमटा कुल्हाड़ी फर्सा कुसादि हथियार रखते हैं वे सब कुगुरु हैं; कुलिंगी हैं।

दम्वीवराकपाखण्डी मायाव्यन्तर सेवका:
परम्हंस नागादि सर्व कुगुरुरुच्यते ॥२२॥

जो अपने तप के मद में डूवे हुए हैं जो नीच वृत्ति के धारक आर्त्त ध्यान तथा रौद्र ध्यान के धारक हैं पाखण्डी हैं मायाचारी जिन के रग-रग में भरी हुई है कहते कुछ करते कुछ हैं भावना अंतरंग से भिन्न होती हैं। जो लोगों को दिखाते हैं कि हम सिर्फ पानी पीकर रहते हैं रात्रि में परस्त्रियों से छिपाकर भोजन मंगाकर खा लेते हैं पर स्त्री को देखना भी नफरत करते हैं रात्रि में स्त्रियों के साथ भोग विलास रति क्रीडा करते हैं तथा गंदे तालाव में वहता हुआ पानी पी लेते हैं। जो लोभी परिग्रह संग्रहासक्त होते हैं जो हाथी घोड़ा गायें रखते हैं तथा चढ़कर चलते हैं तथा चर्म मृगछाला को पहनते हैं। विछाकर वैठते हैं तथा मनुष्य की मस्तक की खोपड़ी को अपने पास रखते हैं जो चण्डी काली दुर्गा भैरव केला भवानी, चामुण्डी, प्रेत, राक्षस, यक्ष, यमादि अनेक व्यन्तरों की सेवा करते हैं उनको प्रसन्न करने के लिए वलि चढ़ाते हैं। सैतान, साकनी, डाकिनी, चुड़ैल, वैताली, आदि व्यन्तरिनियों की सेवा करने में लवलीन रहते हैं। तथा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की वलि दिया करते हैं तथा वलि देकर उस मुरदा के मांस को देवता का प्रसाद मानकर खा जाते हैं ऐसा पाखण्डी साधू तथा जो नग्न रहते हैं लिंगी में छला डाले रहते हैं शरीर पर भभूति रमाये हुए दिन रात आग से अग्नि से तापते रहते हैं अग्नि जलाने पानी भरने झाड़ू देने रूप आरम्भ करते हैं। भीख मांगतें हैं लड़ाई लड़ना लाठी चलाना यह ही उनका परम कर्तव्य है इसीलिए जिस पर क्रोधित हो जाते हैं उसको मारे विना चैन नहीं लेते हैं वे पाखण्डी मूढ नागा परम हंस गुरु नहीं हो सकते वे तो कुगुरु ही हैं। और भी सुनिये।

स्वेतवस्त्र मुखे पत्रः दण्ड पात्राणि धारका:
विहीन संयमोनरा स्तेऽपिगुरु न शंसया: ॥२३॥

जो सफेद वस्त्र के धारक हैं और अपने को निग्रंथ मुनि मान लेते हैं तथा मुख पर चार अंगुल चौड़ी या दो अंगुल चौड़ी पट्टी रखते हैं तथा लाठी कम्वल रखते हैं घर-घर जाकर मांग-मांग कर वरतनों के धोवन का पानी मांगकर लाते हैं और एकांत में वैठ कर खा लेते हैं। जो कहार, काछी, माली, जाट, कुम्हार इत्यादि मांसाहारियों के यहाँ से भोजन लाकर अपने उदर की पूर्ति करते हैं। और अपने को मुनि कहते हैं। जो स्त्रियों से भीख के टुकड़े मंगा करके खा लेते हैं। उधर यह भी कहते हैं कि हम स्त्रियों को पास भी नहीं आने देते हैं तब उनसे भीख मंगवाकर आप खालेना कितना उचित है अपने परिग्रह की प्रशंसा करते हैं तथा अपने को निरग्रन्थ कहते हैं। मुख पर कपड़े की पट्टी वाँधते हैं जो पात्र रूप व कम-

डल ७२ गज कपड़ा तथा ९६ गज कपड़ा का परिग्रह धारण करते हैं और चादर बिछौना आदि रखते हैं वे कुगुरु हैं अपने को महाव्रतों का धारक कहते हैं तथा पानी विना छना पीते हैं विना छने पानी से बनी हुई वस्तुओं को खाते हैं। अचार, मुरब्बा, आलू, गोभी, प्याज, सकरकंद आदि अनंत कायक वस्तुओं को सुख पूर्वक खाते हैं जब कि गृहस्थों को ग्रंथकारों ने यह निषेध किया है। महाभारत में चार नरक के द्वार कहे हैं पहला रात्रि भोजन दूसरा पर स्त्री के साथ मैथुन करना तीसरा अनंत काय आलू गोभी सकरकंद प्याज चौथा मुरब्बा अचार का खाने वाला हिंसक है इनमें बहुत अगणित जीवों की उत्पत्ति होती रहती है वे भी मांस खाने के समान ही माने गये हैं। इनको खाने वाले को नरक जाना पड़ता है इधर अपने को महाव्रती कहते हैं उधर विना छना पानी अचार जमीकन्द भक्षण करने वाले कैसे अहिंसक वन सकते हैं। जहाँ भी वैठते हैं वहीं पर खाना पानी चालू रखते हैं वे संयम हीन गुरुत्वपने को नहीं प्राप्त होते हैं वे कुगुरु हैं। इधर तो लोगों को उपदेश देते रहते हैं कि अणुव्रतों का पालन करो उधर आप स्वयम् अणुव्रतों का पालन नहीं करते हैं। रात्रि में शौचादि क्रिया करने को पानी नहीं रखते हैं जव रात्रि में शौचादिक क्रिया करते है और वह क्रिया अपने साथ में लाये हुये पात्र में रख लेते हैं गुदा स्थान को धोते ही नहीं क्योंकि विना पानी के कैसे धोया जाय कैसे हाथ प्रक्षालन किया जावे। घरों में पात्र लेकर जाते हैं वहां पर यदि कोई शुद्धता पूर्वक हाथ धोकर भोजन देवे तो वे लेते नहीं है वे वापस लौट आते हैं। यदि किसी अपवित्र वस्तु से हाथ दुर्गंधित या अन्य प्रकार का होता है तो वे विना धोये हुए हाथ से भोजन ले लेते हैं तथा यदि कोई गृहस्थ भोजन कर रहा हो और उसने अपनी थाली में से उच्छिष्ट भोजन देदिया तो उसको सहर्ष ले लेते हैं और कहते हैं कि आज शुद्ध आहार मिला शौच जंगल में जाते हैं वहां शौच होने के पीछे लकड़ी लेकर भिष्ठा को इधर-उधर फेंक देते हैं उसमें कहते हैं कि हमारे मल में कीड़ा उत्पन्न नहीं होगे जिससे हिंसा नहीं होगी। दूसरी तरफ यह कहते हैं कि यदि कषाई गाय, भैंस, बकरी आदि को मार रहा हो तो उसको मत बचाओ। जो मारता है उसको मारने दो उसका वही कार्य है जिनके यहां पर इतनी निर्दयता है वे गुरु कैसे हो सकते हैं वे सब कुगुरु ही हैं।

कुधर्म का स्वरूप

पर्वतात् पतने नद्यामग्नौ मकर शंक्रान्ते ॥
गोदानं तिलदानं च कुम्भार्चने न धर्मोऽस्ति ॥२४

अज्ञानी मोही जीव, मिथ्यादृष्टि जीव याचक जनों के उपदेश को सुन कर पहाड़ से गिर कर मरने पर धर्म होता है सुख मिलता है पुत्र पौत्रादि होते हैं। विचार करते हैं कि पर्वत से गिर कर मरता है वह विष्णु भगवान के निश्चित स्थान वैकुण्ठ का वासी होता है। धन धान्य पुत्र स्त्रियों से समृद्ध होता है। जो नदी में डूबकर मरते वे ब्रह्मलोक के वासी होते हैं उनकी सेवा में हजारों स्त्री पुरुष होते हैं तथा धन धान्य स्त्री पुरुष राज्य वैभव का स्वामी होते हैं यह नदी में डूबकर मरण करने का ही फल होता है यही काशी करवट लेने

का फल है ऐसा ब्रह्मा जी ने धर्म का उपदेश दिया हैं। यही धर्म का फल है धर्म मान कर मकर की संकराँत के दिन गोदान देना और तिलदान देना तथा कुम्भराज की पूजा करना व सूर्य को सन्मुख कर धान्य की धारा छोड़ना उसको ब्रह्मण को देना उसमें धर्म मानना इत्यादि प्रकार से धर्म नहीं होता है यह तो कुधर्म ही है।

गोऽस्व ब्राह्मणमेघा पशुहोमं च याचका:
धर्मविघ्नांग कुर्वन्ति कन्या हेम प्रदानंच ॥२५॥

धर्म और पुण्य मानकर अश्वमेध, गजमेध, ब्राह्मणमेध, गोमेध, नृपालमेध, अजामेध स्थापना कर उसमें अनेक दीन-हीन पशुओं को जीवित ही अग्नि में होम देते हैं तथा मार करहोम देते हैं जब वे बुरी दशा में मरते हैं तब कहते हैं कि देखो वेद मंत्र की आहुति देने से मरे हुए तथा यज्ञ में होमें हुए जीव धर्म के प्रभाव से स्वर्ग में गये हैं। इन जीवों को यज्ञ में होम देने को ही ब्रह्मा ने बनाया है इनके हवन करने में कोई दोष नहीं। सब जीवों को यज्ञ करना चाहिए यज्ञ के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। इस यज्ञ धर्म से ही जीवों को मोक्ष मिलता है (नित्यं होम क्रिया मोक्ष:) इति सूत्र है। इसका अर्थ यह है नित्य हर रोज यज्ञ करो जिससे तुम दुर्गति से बच जाओगे और मोक्ष की प्राप्ति होगी। नित्य होम सबको करना चाहिए यही धर्म मोक्ष और मोक्ष का उपाय है। तथा धर्म के जानने वाले ब्रह्मा विष्णु शंकर आदि ने कहा है धर्म मान कर दूसरों की पुत्र-पुत्री का कन्यादान देना तथा ब्राह्मणों को सुवर्ण दान देना मांगने वाले को धर्म मान धन देना सुवर्ण देना तथा गाय भैंस इत्यादि पशुओं को धर्म मान कर दान देना भी धर्म नहीं है यह कुधर्म है।

मन्यते लौकिका धर्मो सरिता सागरेस्नाने।
कल्मषानिक्षयार्थ च बालुकापिण्डदानेषु ॥२६॥

अज्ञानी मोही (जीव) लौकिक जन गंगा गोदावरी कृष्णा कावेरी और नर्मदा इत्यादि नदियों में स्नान करने में धर्म मानते हैं। तथा समुद्र में स्नान करने में धर्ममानते हैं अथवा धर्म मान कर नदी समुद्र तालाब आदि में गोता लगाकर स्नान करते हैं और विचार करते हैं कि बस अब हमारे जन्म में किये गये सब पाप धुल गये और हमारी आत्मा पवित्र हो गई। तब विचार करते हैं कि हमारे दादे परदादे मर चुके हैं अब उनको दुर्गति के दुखों से निकालना चाहिये। यहाँ धर्म कर पित्रों को स्वर्ग व मोक्ष में पहुँचाना चाहिये। इस भावना को लेकर बालू का पुंजकर विप्रको बुलवाकर पिण्ड दान करवाते हैं और कहते हैं कि तुम्हारे इस धर्म के प्रभाव से तुम्हारे पूर्वज सब वैकुण्ठ धाम को प्राप्त होंगे तथा दुर्गति के दुख से छूट जावेंगे ॥२३॥

काक दानं बलीदानं कुक्करदानमाचाहम् ॥
श्येनदानं च तैलिका: सर्व धर्मो निगद्यते ॥२७॥

मैं अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिये ऐसा दान दूंगा कि जिससे मेरे और मेरे पूर्वजों के पाप नष्ट हो जावेंगे। आ—अनुकंपा कर कौओं को आश्विन महीने में खीर पूड़ी हलुआ खिलाते हैं उसको कागोर कहते हैं उस कागोर को अपने पूर्वज मर गये

हैं उनकी तिथि वार के दिन करते हैं उससे यह कामना करते हैं कि हमारे पूर्वज जो मर गये हैं यह उन पर दया करते हैं उनके नाम से कौओं को खिलाते हैं तथा विचार करता है कि हमारे पूर्वजों के पास यह पुण्य पहुँच जावेगा जिससे वे वैकुण्ठ में पहुँच जावेंगे। इसमें धर्म मानता है तथा ब्राह्मणों को मांस मछली को खिलाता है व अनेक व्यंजन खिलाता है और कहता है इनको खिलाने में ही धर्म है। कोई-कोई मोही अज्ञानी जीव काली चामुण्डी गोरी गांधारी दुर्गा भवानी इत्यादि देवताओं की पूजा में धर्म मान कर भैंषा बकरी मुर्गा मुर्गी इत्यादि जीवों की बलि चढाता है और बलि में चढ़ाये हुए जीवों के शरीर के मांस पेशी को आप खाता है तथा दूसरों को खिलाने में धर्म मानता है तथा पापों का नाश करने वाला मानता इत्यादि। यह तो देवता का प्रसाद है इसे खाने में कोई दोष नहीं है दोष तो उसमें है जिसे यह अपने लिये मारे और खावें। कुत्तों की पूजा करना देव मानना तथा धर्म मान कर कुत्तों को रोटी मिठाई खिलाना व कुत्तों व बिल्ली का पालना इत्यादि में धर्म मानना अथवा धर्म के कारण हैं श्येन (बाज) चील गिद्ध आदि हिंसक पक्षियों को दूसरे भोले प्राणियों के प्राणों का नाश कर उसके शरीर के टुकड़े कर उसके मांस को खिलाना व पूड़ी पापड़ी पकोड़ी इत्यादि बनवाकर खिलाना तथा खिलाने में धर्म मानना यह हीनाचारी मनुष्यों को धर्मातमा मान तथा देवताओं के भक्त मान उनको शराब पिलाना मांस खिलाना उनके बताये हुए मार्ग में धर्म मान कर चलना यह सब कुधर्म ही हैं इनके सेवन करने वाले यदि स्वर्ग जावें तो नरक कौन जायेगा।

भूत धर्मो जीवस्य क्षणे जीव विनश्यति पुरुष लोकैव ॥
शून्यं ब्रह्मैवं वा ब्रह्मधर्मो सदाशिवस्य ॥२८॥

यह चेतना वाला जानने देखने वाला जीवात्मा पाँच भूतों से उत्पन्न हुआ है जब ये पांचों भूत अपने-अपने में मिल जाते हैं जब जीव नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती। इस प्रकार जीव का धर्म ही नहीं है न जीव का कोई अस्तित्व है ऐसे मानने वालों का धर्म है वह कुधर्म है। कोई जीव का धर्म क्षण में विनाश मानते हैं। क्षण भर में जीव में विनशता है और एक शरीर में दूसरा जीव क्षण मात्र में बदल जाता है। इस प्रकार से जीव के ध्रौव्य गुण नहीं ठहरता है। इस प्रकार से धर्म मानने वाले ही कुधर्म के धारक हैं अथवा ये मानते हैं कि जीव के संपूर्ण विशेष गुणों का नाश होना मोक्ष है। कोई एक पुरुष का धर्म लोक है दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। जो दिखाई दे रहे हैं पहले दिखाई देते थे दिखाई देंगे वे सब पुरुष के ही विभाग भेद हैं अथवा अंश हैं। जिनकी ऐसी धर्म की भावना है वे कुधर्म हैं। जो धर्म वाले सब जगत को शून्य मानते हैं वे कहते हैं कि संसार में कोई द्रव्य ही नहीं है। सब जगत शून्य मय है जिनके मत में तथा धर्म में कोई पदार्थ की स्थिति नहीं है वे कुधर्म हैं। सब जगत ब्रह्म रूप है ब्रह्म की ही यह सब लीला है जीव जितने होते हैं वे सब ब्रह्म रूप हैं। ब्रह्म में से उत्पन्न होते हैं और विनाश होने पर पुनः ब्रह्म में मिल जाते हैं। ऐसी जिनकी धर्ममान्यता है, तथा ब्रह्म धर्म है यह भी कुधर्म है क्योंकि इसमें यदि व्यवहार से देखा जाता है कि कोई राजा कोई भिखारी कोई नीच और कोई ऊँच दुःखी कोई सुखी देखे जाते हैं यह धर्म की मान्यता भी

एक ब्रह्म रूप नहीं दिखाई देती, इस लिये कुधर्म है। कोई ब्रह्म को धर्म मानते हैं कोई सदाशिव को धर्म मानते हैं ये सब ही मिथ्यात्व एकांत धर्म हैं इसीलिये ही कुधर्म हैं। इन धर्मों में विशेष और सामान्य गुण धर्म की व्यवस्था नहीं ठहरती है, क्योंकि समी द्रव्यों में सामान्य विशेष गुण देखे जाते हैं। इसमें पुण्य और पाप के फल कर्त्ता और भोक्ता का स्थान नहीं रहता है। विशेष और सामान्य गुण के सद्भाव में ही पदार्थ की सिद्धि होती है।

पुत्र-स्त्री रक्षणे च जातिकुल वित्तस्य रक्षणे धर्मः।
कापालिकार्धूर्जटी ब्रह्मवाद पुरुषैव धर्मः ॥२६॥
कोऽपि वदन्ति धर्मको द्वितीयं नास्ति वादिनः।
धर्मः शिवैव योगिनः ब्रह्मधर्मेव सांख्यकाः ॥३०॥

कोई लोग पुत्र स्त्री की रक्षा करना और उत्पन्न करने को ही धर्म कहते हैं। कोई धन का उपार्जन करने में धर्म मानते हैं तो कोई धनके रक्षणकरने में धर्म मानते हैं कोई अपनी कुल जाति की परम्परा को ही धर्म मानते हैं। तथा हेय उपादेय के विचार से शून्य जो धर्म है वे कुधर्म हैं। कापालिका धूर्जटी ब्रह्म आदि, ब्रह्मवादि, शैव, सांख्य, बौद्ध, चारवाक, योगी ये सब एकांतपक्ष विपरीत पक्ष सांसयिक अज्ञान और विनयमिथ्यात्व से संवन्धित हैं वे सब मिथ्या धर्मही कुधर्म हैं क्योंकि जिसमें वस्तु स्वरूप की यथार्थता नहीं है वहीं पर कुधर्म है। हिंसा रूप कार्यों को करने में धर्म मानना असत्य वचन कर उसमें धर्म मानना, चोरी मायाचारी, ठगाई करने में धर्म मानना, पर रमणियों के साथ में रमण करने में तथा स्त्रियों के साथ रासलीला करने में, उनके साथ में विषय भोग करने में धर्म मानना तथा परस्त्री हरण शीलव्रतों का भंग करने में धर्म मानना तथा परिग्रह में धर्म मानना ये सब कुधर्म हैं। क्योंकि जिनमें सारा सार का भेद विवेक नहीं है, जो कापालिका भिक्षा मांग दुर्गंधमय पानी का आचमन कर उसमें धर्म मानते हैं इस प्रकार कुगुरु कुदेव कुधर्म की व्यवस्था की। इस धर्म का सेवन करने वाले जीव ही संसार में भ्रमण करते हैं तथा जन्म मरण के दुःखों को भोगते हैं।

आगे पांच प्रकार के मिथ्यात्व का स्वरूप संक्षेप से कहते हैं।

मुखाग्रे छागा स्पष्टमपर शरीरे वदन्ति गोप्रष्टे।
जले स्नानेन शुद्धयति खलु च वपुषादुष्कृतमलम् ॥३१॥
पलं दाने च पित्रो-भवन्ति वटुकेभ्यश्चैव सुखं नित्यम्।
जहोत्यग्नौ धर्मः पशु विकलाल्लादिविसुखं ॥३२॥

ब्राह्मणों ने विपरीत मिथ्यात्व का पोषण अनेक प्रकार से किया है कहते हैं कि यदि कोई वस्तु अपवित्र हो जावे तो छागा के मुख का स्पर्शन होते ही शुद्ध हो जाती है। तथा गाय की पूंछ तथा पीछे के भाग से स्पर्शन हो जाने पर शुद्ध हो जाती है तथा एक गाय के शरीर में तेंतीस करोड़ देवताओं का निवास स्थान है। गाय की पेशाब को अमृत के समान मानकर उसको पीते हैं और अपने को मल भक्षण कर शुद्ध मानते हैं। गाय के पृष्ठ भाग को स्पर्श कर पैर छूते हैं तथा प्रथम भोजन में वनाई हुई वस्तुओं को खिलाते हैं एवं गाय जव जंगल में जाती है तव विष्टा खाती है और जव शाम हो आती है तव गाय के गले में रस्सी बांधकर

उसको खूंटा से बांध देते हैं तब उस गाय के शरीर में रहने वाले तैंतीस कोटि देवता भी बांध दिये जाते हैं। उन तैंतीस कोटि देवताओं को बंधन में डालकर भोजन करते हैं यह कैसी विपरीतता है। जब कि देवताओं की अराधना पूजा करते हैं उनको ही बंधन में डालकर आप आनंद से भोजन करते हैं तथा सोते हैं।

तथा गंगा जमुना नर्वदा गोदावरी घाघरा तथा गंगासागर इत्यादि तथा पुष्कर इत्यादि के पानी में गोता लगाकर स्नान मात्र से अपना शरीर तथा किये गये पाप मल धुल जाते हैं। यदि पानी में स्नान मात्र से पापों का नाश हो जाता है तो उसमें रहने वाले जल कायक जीव त्रशकायक मीन मगर मेंढ़क इत्यादि जीव भी सब स्वर्ग चले जायगे फिर नरक में कौन जावेगा। कहते हैं कि ब्राह्मणों को बकरा व मछली का मांस खिलाने पर पित्र प्रसन्न हो जाते हैं। जीवित पशुओं को यज्ञ तथा यज्ञ की अग्नि में आहुति देने से वे सब जीव स्वर्ग में चले जाते हैं। वे जीव यज्ञ धर्म के प्रभाव से संसार के दु:खों से छूटकर सब स्वर्ग में गये हैं वहां बहुत सुखों का भोग करते हैं। तथा जीवित स्त्रियों को उनकी मृतक पति के साथ चिता में जला देते हैं और कहते हैं कि पति के साथ जल जाने पर बैकुण्ठ को प्राप्त होती हैं।

पर्वतान् पतने सुखं संपत्ति साम्राज्यं पुत्रादि ॥
देवगतौ भवत्यमररजरा: काशीकर्वटेवा ॥३३

ओंकारेश्वर के पर्वत पर से गिरकर मरण करने पर धर्म होता है उसके प्रभाव से सुख मिलता है राज्य मिलता है और उसको अपने मन वांछित पुत्र स्त्री भाई माता-पिता कुल जाति व सुमित्र तथा सुगुण सुशीलों की प्राप्ति होती है। जो काशी कर्वट लेता है उसको देव गति की प्राप्ति होती है तथा देवों का राजा होता है वहां उसको वृद्ध अवस्था की प्राप्ति नहीं होती है तथा वह विष्णु भगवान के पास पहुंच जाता है। यह विपरीत मिथ्यात्व है।

कोऽपि मन्यते क्षणिक: कोऽपि शून्यं कोऽपि जीवो नास्ति।
कोऽपि पंच भूतैश्च पुरुष ब्रह्मैकश्च विष्णु: ॥३४॥

कोई अज्ञानी एकान्त वादी बौद्ध कहते हैं कि जीव क्षणिक है जो जीव पहले समय में था वह अब नहीं वह बदल गया है। दूसरे क्षण में आत्मा बदलती रहती है। एक शरीर में एक आत्मा नहीं रहतो है वह दूसरे समय में बदल जाती है। कोई एक ग्वाला बौद्ध धर्मावलम्वी के यहां नौकरी करने लगा जब एक दो माह बीत गये तब उसने अपनी वेतन माँगी यह सुनकर बौद्ध मतावलंवी कहने लगा कि भाई जिस आत्मा ने तेरे को नौकरी पर रक्खा था वह तो मर चुकी अब तो दूसरी भी शांत हो गयी उसके पीछे भी अनेक आत्मायें शान्त हो गयीं अब तेरे को कौन तनुखा देगा। यह सुनकर वह ग्वाला दूसरे दिन गायों को चराने ले गया और चराकर अपने घर में सब गाय भैंसों को बांध लिया। जब बौद्ध मतावलम्बी आया कि भाई हमारी गाय भैंसें कहाँ हैं तब वह ग्वाला बोला कि गाय भैंसों को चराने को ले जाने वाला आत्मा तो चला गया अब तो बहुत से आत्मा बदल गये अब गाय भैंस कहाँ यदि नहीं मानते हो तो देख लो कि तुम्हारे शास्त्र में लिखा है या नहीं? यह सुनकर क्षणिकवादी बौद्ध शान्त हो उसकी वेतन चुका कर अपनी गायें घर ले आया। यह भी मान्यता एकान्तमती है

क्योंकि हम आज भी देखते हैं कि जिसको बाल्यावस्था में जो पाठ पढ़ाया गया है वह आज भी स्मरण में आ रहा है फिर क्षण में कैसे जीव बदल गया यदि क्षण में बदल जाता तो पूर्व की बात याद नहीं आनी चाहिये। यह कहना नितान्त मिथ्यात्व है इसको एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। क्योंकि द्रव्य के गुणों की पर्यायें बदलती रहती हैं परन्तु द्रव्य का तो ध्रौव्यपना शास्वत है। उत्तर पर्यायों की उत्पत्ति तथा पूर्व पर्यायों का विनाश तथा द्रव्य की सत्ता ध्रौव्यात्मक है न उसका विनाश ही है न उत्पाद ही है। यदि द्रव्य ही बदल जावे तो पदार्थ कहां और किस में होगा। इस प्रकार क्षणिक बौद्ध एकान्त मिथ्या दृष्टि है। कोई एकान्त वादी कहता है कि जगत शून्य है जगत में कोई वस्तु है ही नहीं तब कहते हैं कि जब कोई नहीं तब तू कहां से आया और तू तो है कि नहीं। जिनसे तू उत्पन्न हुआ वे तेरे माता माता हैं या नहीं। यह भी एकांतवाद है परन्तु संसार में छहों द्रव्य लोक में देखी जाती हैं शून्य नहीं हैं कोई एकान्तवादी कहता है कि जगत में जीव नाम की कोई वस्तु है ही नहीं यह जीव तो पंचभूतों से उत्पन्न हुआ है और जब नाश होता है तब पांचों भूत अपने-अपने में मिल जाते हैं तब जीव नाम की कोई भी वस्तु नहीं रह जाती है। पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश पांच भूतों से ही जीव की उत्पत्ति होती है इनका नाश होने पर वे अपने-अपने में मिल जाते हैं। यह भी एक बड़ी विडम्बना की बात है कि जब हम देखते हैं जो गाय का बच्चा होता है वह जन्म लेते ही गाय के स्तनों की ओर उठकर चल देता है इससे यह प्रतीत हो जाता है कि जीव पर पूर्व भव का संस्कार है जिस संस्कार से ही वह मां के स्थनों का दूध पी लेता है। दूसरी बात यह है कि अनेक जीवों को अपने पिछले भवों की बातें याद होती है वे बताते हैं और सब बातें सत्य निकलती हैं, तीसरी बात यह भी है कि यदि जीव के ऊपर पूर्व भव का संस्कार न हो तो स्त्री के साथ विषय भोग करना स्त्री से प्रेम करना उसको अपनी मानना यह उसने फिर कैसे जाना ? इससे यह कहना ठीक प्रतीत नहीं होता है कि जीव पंचभूतों से बना है यदि पंचभूतों से ही बना हो तो साग की हाडी में भी जीव उत्पन्न होना चाहिये क्योंकि वहाँ पर भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पाँचों ही द्रव्य मौजूद हैं ऐसा होता हुआ नहीं देखा जाता है। यदि जीव पाँच भूतों से ही उत्पन्न होता है तो स्त्री के साथ भोग करना संतान के लिए सो भी निरर्थक ठहर जाता है। जब तक योनि में जीव नहीं आता है तब तक स्त्री के साथ भोग करने पर गर्भाधान नहीं होता है, जब जीव पूर्व योनि को छोड़कर आता है नये शरीर ग्रहण करने को तब ही गर्भ बढ़ने लग जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव असंख्यातप्रदेशी और नित्य है अविनाशी है। पाँच भूतों से उत्पन्न नहीं हुआ है जो ऐसा मानते हैं कि जीव कुछ भी पदार्थ नहीं यह मिथ्यात्व है।

कोई मानते हैं कि सब संसार में एक पुरुष ही द्रव्य है अन्य कोई द्रव्य नहीं है यह जगत में दिखाई दे रहा है यह सुख एक पुरुष की ही महिमा है। पुरुष की ये सब अवस्थायें हैं जो सूर्य, चन्द्रमा, विमान दिखाई देते हैं, वे सब एक पुरुष रूप हैं उसमें ही पृथ्वी ज़ल, अग्नि, वायु वनस्पति आकाश सब पुरुषमय है यह एकान्त पक्ष है जब कि सबको साक्षात् देखा जाता है कि द्रव्यों के गुण, धर्म, भिन्न भिन्न हैं। एक द्रव्य के गुण दूसरी द्रव्य में

नहीं पाये जाते हैं। यदि एक पुरुष को ही जगत मान लिया जाय तो एक बड़ा विडम्ब खड़ा हो जायेगा कि कोई भी पदार्थ चेतन नहीं ठहरेगा न कोई अचेतन ही ठहरेगा तब पुरुष कहां जायेगा इससे यह सिद्ध होता है कि जगत पुरुष नहीं है, पुरुष जगत नहीं, जगत पुरुष नहीं, यह भी मान्यता मिथ्यात्व ही है।

कोई ब्रह्मवादी कहता है सब जगत को ब्रह्मा ने बनाया है पहले यहाँ पर जल ही जल था पृथ्वी नहीं थी तब ब्रह्मा ने इस जगत की रचना की और घास, पौधे, पशुपक्षी, नरनारी आदि को बनाया तथा सबके भोग और उपभोग की वस्तुयें बनाईं। परन्तु यह भी मान्यता गलत है कि जब ब्रह्माने ये बनाई थीं तब उनको राग और द्वेष था ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि राग द्वेष नहीं था तो किन्हीं को राजा महाराजा बनाया सेठ साहूकार बनाया जिनके यहाँ द्रव्य के भण्डार भरे रहते हैं किन्हीं को दरिद्री, भिखारी, कोढ़ी, रोगी, नपुंसक, मतिभ्रष्ट और ज्ञानी बनाया। यदि ब्रह्मा के बनाये हुए होते तो वे सुखी-दुःखी नहीं हो सकते, यदि ब्रह्मा ने बनाये तो वह इतनी द्रव्य कहाँ से लाया। कहाँ पर थी जहाँ से लाया यदि कहीं से लाया तो वहाँ पर उनका स्थान खाली हो गया होगा उसकी पूर्ति फिर कैसे की इससे यह मानना कि ब्रह्मा ने बनाया नितांत मिथ्यात्व है, कोई कहता है कि लोक एक ब्रह्ममय है, जितने दिखाई देते हैं वे सब ब्रह्ममय हैं, ब्रह्म में से उत्पन्न होते हैं और पीछे ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं ये सब ब्रह्म के ही अंश हैं। यह भी विचार करने पर मिथ्या ही सिद्ध होता है कि यदि ब्रह्म के अंश हैं तो क्या ब्रह्म के भी टुकड़े हो जाते हैं। यह भी कोई नारंगी और मोसम्मी हैं कि जिसकी कलियाँ निकाल ली जायें। परन्तु नारंगी की कलियों में सब में रस समान एकसा होता है परन्तु यह बात ब्रह्म में दिखाई नहीं देती, इससे वह सन्निष्कर्ष निकला कि ब्रह्मा किसी का कर्ता धर्ता नहीं है जीव अपने किये हुए कर्मों के फल के अनुसार सुख व दुःखों का भोग करता है पुण्य के उदय से राजा होता है, पाप के उदय से भिखारी होता है। न किसी में मिलता है न किसी से बिछड़ता ही है, यदि जगत को एक ब्रह्म का ही कार्य मान लिया जावे तो पुण्य फल और पाप फल को न भोगेगा, कौन राज दण्ड भोगेगा। यदि ब्रह्ममय है तो जेलखाने में ब्रह्म को पुलिस व जेलर के डण्डे खाने पड़ते होंगे और सूली और फाँसी पर चढ़ना पड़ता होगा तब तो ब्रह्म को दुःख होना चाहिए परन्तु हम देखते हैं कि जब फाँसी होती है तब बहुत से लोग हँसते हैं, कहते हैं कि जैसा किया वैसा ही फल चखा इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि जगत ब्रह्ममय या ब्रह्मा का बनाया नहीं है। पानी पड़ने पर घास आदि उत्पन्न होती है वे ब्रह्मा ने कब बनायीं क्योंकि वह तो एक है, वनस्पति अनंत है, एक साथ उत्पन्न होती हैं वे कैसे बनाईं क्योंकि एक व्यक्ति एक साथ सबको नहीं बना सकता है। दृष्टान्त के लिए कुम्हार जब घड़ा बनाता है तब क्रम से एक-एक को ही बनाता जाता है जब घड़ा बनाता है तब कुण्डा या सुराही हुक्का नहीं। जब हुक्का सुराही बनाता है तब कुण्डा या घड़ा नहीं, इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मा ने किसी को नहीं बनाया न ब्रह्ममय ही जगत है यह मान्यता भी एकान्त मिथ्यात्व है।

कोई धर्मावलम्बी कहते हैं कि विष्णुमय जगत है, जल में विष्णु थल में अग्नि में

विष्णु ज्वाला में विष्णु पर्वत के मस्तक पर विष्णु है मालाकुल इन सव में विष्णु ही विष्णु है और सव जगत विष्णुमय है। यदि सव जगत विष्णुमय है तो भूमि खोदने, पानी फेंकने, अग्नि वुझाने और अग्नि से पानी गर्म करने पर विष्णु को कष्ट होता होगा या वनस्पति को तोड़ने या काटने पर विष्णु कट जाते होंगे तव विष्णु के टुकड़े हो गये। यदि आप कहें कि विष्णु भगवान सव जगत की रक्षा करते हैं तव हम पूछते हैं कि कौरव और पांडवों में युद्ध करवाया, आप सारथी वने, हर द्रोह को चक्र से मारा तथा कौरवों को मरवाया लाखों करोड़ों का संहार हुआ तव वह विष्णु कैसे रक्षक हुए। जव दधिकुमार ने अपने पुरुषार्थ से व्रह्मा विष्णु तथा अन्य देवताओं को कैद खाने में रक्खा तव महादेव जी हिमालय की गुफा में दुवक गये थे पार्वती को लेकर। और वहां विद्या का साधन करने लगे तव विष्णु और लक्ष्मी दोनों को कैदखाने में रहना पड़ा। तथा देवता दुःखी हुए व्रह्मा और विष्णु को छह महीना तक जेल में छोड़ दिया फिर सव देवों की सलाह हुई कि दैत्य वड़ा वलवान है उससे पार नहीं वनता तव एक देव ने कहा कि उसकी स्त्री पतिव्रता है उसके पतिव्रत धर्म को भंग कर दिया जावे तो वह दधिकुमार दैत्य मारा जा सकता है। यह सुन सवने राय करी कि इस कार्य को कौन करने में समर्थ है तव सवने कहा कि हे विष्णु भगवान आप ही इस कार्य को कर सकते हैं तव विष्णु भगवान ने दधिकुमार की स्त्री के पास जाकर दधि-कुमार का रूप धारण किया और उसके राज महल में प्रवेश किया जव कि दधिकुमार महादेव जी से युद्ध कर पार्वती को छीनना चाहता था, वह तो युद्ध कर रहा था तथा महादेव जी डर के मारे भागते कभी सामने आ जाते थे तव विष्णु ने रात्रि में दधिकुमार की स्त्री के साथ भोग किया और उसके शील को भंग किया यह विष्णु कैसा व्यभिचारी जो पर स्त्रियों का शील भंग करे तथा वैरियों के द्वारा वाँध लिया जावे यह भी कहने योग्य नहीं है कि विष्णुमय जगत है। कहा भी है :—

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णु पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमय जगत् ॥

यदि विष्णु सर्व जगत में व्याप्त है तथा सव देहधारियों में निवास करता है तो वृक्षों के काटने पर विष्णु के ही टुकड़े नियम से हो जायेंगे। कहा भी है :—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽद्य वामनः।
रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कि च ते दश ॥१॥
मत्स्य कूर्मोवराहश्च विष्णुः सम्पूज्य भक्तिनः।
मत्स्यादीनां कथं मांसं भक्षितु कल्प्यते वधैः ॥२॥

विष्णुपुराण में विष्णु भगवान के दस अवतार माने गये हैं वे मछली, काक्षप, सूकर, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, वुद्ध और कल्कि ये दस हैं। इनकी पूजा करने का आदेश दिया गया है कि इनकी पूजा सवको करनी चाहिये फिर मांस के लोलुपी मक्ष काक्षप सूकरों को मार-मारकर उनके मांस को कैसे खा जाते हैं वे अपने विष्णु भगवान के प्रति भी दया नहीं करते हैं। जव विष्णुमय जगत है तव यज्ञों में पशुवधकर कैसे होमते हैं, कैसे

देवताओं के लिए बलि देते हैं क्योंकि वह बलि तो विष्णु भगवान की ही हो गई ? और मांस भक्षण कैसे करते हैं ? यदि विष्णुमय जगत है तो वे विष्णु कौन से थे जो गोपिकाओं के साथ गायों के स्थान में जाकर विषय भोग करते थे व दधि माखन चुराकर खाते थे। वे कौन से थे जो दैत्यों से डरकर वैकुण्ठ में जा विराजे थे ? वे विष्णु कौन से थे कि जिन्होंने स्त्री का रूप धारण कर लिया और भस्मासुर को मारा था ? यदि जगत विष्णुमय है तो फिर दैत्यों से युद्ध क्यों हुआ ? इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विष्णु किसी के कर्ता हर्ता व रक्षक विनाशक नहीं है जगत स्वभाविक अनादि निधन है, जीव और पुद्गलों के संयोग सम्बन्ध से संसार में उत्पत्ति विनाश और ध्रौव्यता कायम रहती है न विष्णुमय जगत है न कोई विष्णु नाम का ही द्रव्य है। महाभारत में यज्ञ का स्वरूप इस प्रकार कहा है।

यज्ञं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वारुधिर कर्दमम् ।
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥१॥
ध्रुवं प्राणिवधो यज्ञोनास्ति यज्ञहिंसकः ।
सर्व सत्वेष्वहिंसेव सदा यज्ञो युधिष्ठिरः ॥२॥

यज्ञ का स्वरूप :—

इन्द्रियाणि पशूनकृत्वा वेदीकृत्वा तपोमयीम् ।
अहिंसा माहुति कुर्याच्चात्म यज्ञं यजामहे ॥१॥
अहिंसा सर्वभूताना सर्वज्ञैः प्रतिभाषिता ।
इदं हि मूलधर्मस्य शेषं तस्य च विस्तारः ॥२॥

ब्रह्म का स्वरूप

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म पंचेन्द्रिय निग्रह्
सर्वभूतदया ब्रह्म एतद् ब्रह्मस्य लक्षणं ॥१॥
यो दद्यात् कांचनं मेरू कत्स्नां चापि वसुंधरां ॥
एकोऽपि जीवितं दद्यात् न च तुल्यं युधिष्ठिरः ।२॥
नाभिस्थाने वशे द् ब्रह्माविष्णु-कण्ठे समाश्रितः ॥
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः ।३॥
नासाग्रे च शिवं विद्यात्तस्यान्ते च परोपरः ॥
परात्परतं नास्ति इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥४॥
चत्वारोनरकद्वारं प्रथमं रात्रि भोजनं
परस्त्री गमनं चैव संधानानंतकायके ॥५॥
रक्ता भवन्ति तोयानि अन्नानि पिशितानि च ।
रात्रि भोजनशक्तस्य ग्रासेण मांसभक्षणं ॥६॥
मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंद भक्षणं ॥
कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥७॥

जब पशुओं को मार कर यज्ञ में हवन करते हैं और उनका रक्त बहा देते हैं वे जीव ही स्वर्ग जाने लगेगे तो दया पालन करने वाले संयमी फिर क्या नरक जायेंगे ? पशुओं को नाश करने वाले खून बहाने वाले ही नरक जाते हैं ।१।। श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि प्राणियों का नाश कर उनके कलेवर का हवन करते हैं यह यज्ञ नहीं है यह तो हिंसा ही है । परन्तु सब जीवों पर दया करना ही हे युधिष्ठिर यज्ञ है ।२।।

इन्द्रिय रूपी पशुओं का नाश करना तप रूपी वेदी बनाना उसमें अहिंसा रूपी आहुति देना इस आत्म यज्ञ की मैं पूजा करता हूं ।।३।।

सब जीवों पर दया करना, किसी भी जीव को मारना नहीं पीड़ा देना नहीं यही धर्म का लक्षण सर्वज्ञ का कहा हुआ है । शेष जो विस्तार है इसी एक का है । अहिंसा ही धर्म की जड़ है ।४।।

सत्य ब्रह्म है तप करके पापमलों का नाश करना ब्रह्म है पंचेन्द्रियों के विषयों का निग्रह करना ब्रह्म है संपूर्ण प्राणियों पर दया करना ब्रह्म है ये सब ब्रह्म के लक्षण हैं अथवा ब्राह्मण के लक्षण हैं ।५।। हे युधिष्ठिर जो मेरु पर्वत के बराबर सोना दान देवें और सर्व पृथ्वी का दान देवें तो भी उतना पुण्य धर्म नहीं होता कि जितना एक जीव को अभयदान देने पर होता है अभय दान ही सब दानों में श्रेष्ठदान है ।६।।

नाभि स्थान में ब्रह्मा निवास करता है और विष्णु कण्ठ में रहते हैं तालु में मुख में रुद्र महादेवजी रहते हैं ललाट मस्तक में निवास महेश्वर का है । नासिका के आगे के भाग में शिव निवास करते हैं । विद्या अन्त स्थानों में रहती है पर से पर नहीं होते हैं ऐसा शास्त्र का निश्चय है ।।७।।

नरक जाने के चार दरवाजे हैं पहला दरवाजा रात्रि में भोजन करना है दूसरा दरवाजा पर रमणी के साथ रमण करना है । तीसरा द्वार अचार मुरब्बा का खाना है चौथा द्वार अनंत काय आलू घुहिया (अरबी) रतालू रतरुआ सांखाआलू सकर कन्द इत्यादि अनेक प्रकार के कंद हैं वे सब ही अनंत काय हैं ।।८।।

रातमें पानी रक्त के समान कहा है रात्रिमें अन्न से बनी हुई वस्तु यें है वे सब माँसके समान हैं जो एक ग्रास भी रात्रि में भोजन करता है वह मांस भक्षण करता है । जो रात्रिमें भोजन करते हैं तथा मांस मद्य और शहदका सेवन करते हैं तथा जमींकंद खाते हैं उनके द्वारा किये गये जप तप उपवास तीर्थ यात्रा हवन गंगास्नान व पुस्करी यात्रा चंद्रायण व्रत ये सब निष्फल हो जाते हैं । एकादशी व्रत सब ही निष्फल हो जाते हैं ।

कोऽपि भव्यते यागं ब्रह्म वेदवादिनः क्रियावादी ।।
साख्या ज्ञानेन तथा सर्वगुणक्षणे मोक्षमेव ।।३५

कोई कहते हैं कि योग हवन क्रिया करने पर अग्नि में आहुति देने से मोक्ष होता है । ब्रह्मवादी कहते हैं कि वेदोंका पठनपाठन मनन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है दूसरा मोक्ष प्राप्ति का उपाय नहीं है । क्रियावादी कहते हैं नित्य क्रिया करने से मोक्ष होता है यही धर्म है । तथा आचरण अपना अच्छा करो अपना आचरण श्रेष्ठ रक्खो यही मोक्ष है । तथा

सांख्य बौद्ध मतावलम्वी कहते हैं कि ज्ञान मात्र से ही मोक्ष हो जाता है श्रद्धान व चारित्र की कोई आवश्यकता नहीं है जीव के सब विशेष गुणों का जब अभाव हो जाता है तब मुक्ति होती है इस प्रकार एकान्त वादियों का एकान्त मिथ्यात्व जानना चाहिये विशेष आगम से जान लेना चाहिये।

इति एकान्त मिथ्यात्व।

संशय मिथ्यात्व का स्वरूप

स्वेतवस्त्र धारणिकाः संशययुक्तानं विशेष वस्तूनाम्।
बहुविकल्पेन युक्ताः सत्यमसत्यं यानिर्णयम् ॥३६॥
किं शीपिका हिरण्यं किंकुलिशं वा मनुष्यो द्वन्द्वेयुः।
नास्ति अयोः एकस्य निश्चयं भवतः शाँसयके च ॥३७॥
किं सवस्त्रे निर्ग्रन्थलिंगेन भवति मोक्षोजीवस्य।
संशयमिथ्यात्वमेव वा मन्यतेश्वेत पद ग्राही ॥३८॥

श्वेत वस्त्र के धारण करने वाले श्वेताम्बर संशय मिथ्या दृष्टि हैं। उनके मत में वस्तु का यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता है। उनके मन में अनेक कोटि के विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं जिससे (कितजियं किभजियं) उनके यहां यथार्थ वस्तु स्वभाव का निश्चय नहीं हो पाता है जिसमें सत्य और असत्य का निर्णय होना असम्भव होता है। जिस प्रकार मार्ग से कुछ दूरी पर पड़ी हुई शीप है उसको दूरसे देखा तब मन में यह विकल्प पैदा हुआ कि यह चांदी है या शीप है। कभी कहता है कि यह तो चांदी होना चाहिये कभी कहता है कि शीप होगी बहुत देर तक उसके तरफ देखता रहा परन्तु निर्णय को कोटी में नहीं पहुँचा। अथवा निर्णय न होने के कारण रात्रि में भी विचारता रहा कि वह चांदी होना चाहिये कभी कहता कि नहीं जी वह तो शीप होगी इस प्रकार संशय में ही पड़ा रहा।

दूसरा दृष्टान्त कोई एक मनुष्य अंधेरी रात्रि में शौचको ग्राम से बाहर गया वहां उसने देखा कि कोई खड़ा हुआ है। वह विचार करता है कियह मनुष्य है या भूत है कभी विचारता है कि यहआदमी है या ठूठ है। इधर ये भयभीत भी होता है उधर ये धैर्य भी बांधता है परन्तु कभी कहता है कि मनुष्य है कभी कहता है कि भूत दिखाई दे रहा है। या ठूठ दिखाई दे रहा है। श्राद्धानपूर्वक यथार्थ निर्णय नहीं हो पाता है। क्या वस्त्र सहित मोक्ष की प्राप्ति होती है या निर्ग्रन्थ दिगम्बर लिंग से मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा शंसय उक्त है। उनको कभी भी मोक्ष होने की (सम्भावना) वास्तविक सामर्थ्य नहीं हो सकती यह कैसे कहा जा सकता है। इस प्रकार शंसय में व्यस्त रहने वालों के एक भी वस्तु का निर्णय नहीं। इस प्रकार शंसय मिथ्यात्व तथा भ्रम में पड़े हुए श्वेताम्वर हैं।

स्त्रीणां च भवति मुक्तिः सवस्त्रे भवति निग्रन्थीऽचेलकः ॥
कवलाहारेन सदा केवली जीवन्ति व्रजन्ति ॥३९॥

वे श्वेताम्वर स्त्रियों को मोक्ष होता है ऐसा कहते हैं मानते हैं कि मरुदेवी भगवान

आदिनाथ भगवान की माता जव हाथी पर चढ़ी हुई मुनिराज के दर्शन को निकली तव उनको हाथी पर बैठे बैठे ही केवल ज्ञान हो गया और मोक्ष चली गई। कपड़ा रूपी परिग्रह के धारक भी निर्ग्रन्थ होते हैं वे भी अचेलक कहलाते हैं। कि जिस प्रकार एक गरीव के कपड़े फट गये वह वजाज के यहाँ से कपड़ा खरीद कर लाया और दरजी के पास गया और कहने लगा कि भाई मैं नंगा हो गया मुझे वस्त्र जल्दी सिलाई करके दो ? वस्त्र सहित होते हुए भी नग्न कहलाता है। उसी प्रकार हमारे पास भी नये पुराने वस्त्र होने पर भी हम नग्न नहीं हैं। हम तो उपसर्ग रूप में धारण किये हुए हैं स्वभाव से हमने वस्त्र नहीं धारण कर लिये हैं। आगे कहते हैं कि कल्पसूत्र भद्रवाहु श्रुत केवली ने वनाया है उसमें अनेक कोटि के मिथ्याकल्पित विषयों का कथन किया है कि भगवान जव स्वर्ग से माता के गर्भ में आये थे तव त्रिशला देवी ने प्रभात के समय, चौदह स्वप्न देखे और श्वेत वैल मुख में से प्रवेश करते देखा। उधर ये कहते हैं कि श्रमण भगवान महावीर ब्राह्मणी के गर्भ में आ गये तव इन्द्र ने विचार किया कि श्रमण भगवान महवीर का इस नीच कुल में जन्म लेना ठीक नहीं है तव वासुक देव को इन्द्र ने आज्ञा करी कि शीघ्र तुम जाओ और श्रमण भगवान महावीर को ब्राह्मणी के गर्भ से निकाल कर त्रिशला रानी जो कुण्ड ग्राम के अधिपति सिद्धार्थ राजा की पटरानी हैं उसके गर्भ में रख आओ। यह आज्ञा पाकर वासुक देव श्रमण भगवान महावीर को ब्राह्मणी के गर्भ के अशुभ परमाणुओं को छोड़कर त्रिशलादेवी के गर्भ में स्थापन कर आया और शुद्ध परमाणुओं को इकट्ठा करके वासुक देव अपने इन्द्र के पास चला गया यह कहना कहां तक सम्भव हो सकता है क्योंकि किसी के गर्भ में से जीव को निकालना असम्भव है क्योंकि जिस योनि में या गर्भ में जीव जाता है वहां की योनि से उसका सम्वन्ध होता है वह सम्वन्ध नाभि से होता है। नाभि से ही वच्चा मां के द्वारा खाये हुए रस का पान करता है फिर उस देव ने गर्भ में प्रवेश कर कैसे नरा काटा और कैसे उसके शरीर को ले गया ? कैसे माता के गर्भ में से ले जाकर दूसरे के गर्भ में धरा व नरा जोड़ा ? जव भगवान ब्राह्मणी के ही गर्भ में आये तव सिद्धार्थ के यहां पंद्रह महीना रत्नों की वर्षा कैसे हुई ? कैसे त्रिशला ने सोलह स्वप्न देखे ? कैसे इन्द्र ने नगरी की रचना की ? क्योंकि जव जीव माता के गर्भ में आता है तव वह माता की रज और पिता के वीर्य को ग्रहण कर आहारक हो जाता है फिर एक गर्भ से ले जाकर दूसरे गर्भ में कैसे रखा गया ? श्रमण भगवान महावीर की आयु तीस वर्ष हो गई तव भगवान ने दीक्षा धारण की थी उसके पहले भगवान का विवाह एक राजकुमारी के साथ हो गया था यह भी कोई शंसय की वात नहीं परन्तु श्रमण भगवान महावीर के एक पुत्री हुई वह भी यौवन युक्त हुई और उसकी भी शादी एक राजकुमार के साथ हो गई उसके भी एक पुत्री हो गई तव हम पूछते हैं कि श्रमण महावीर का विवाह कितनी उम्र में हुआ और कितनी उम्र में लड़की हुई और लड़की की शादी कितनी उम्र में हुई ? इस प्रकार उनके यहां अनेक प्रकार के शंसयात्मक प्रश्न खड़े हो जाते हैं। एक तरफ लिखते हैं कि भगवान महावीर स्वामी ने अपना विवाह नहीं किया व वालब्रह्मचारी थे दूसरी ओर कहते हैं कि भगवान महावीर ने विवाह किया उनके एक पुत्री हुई पुत्री के भी पुत्री हो गई तव दीक्षा ग्रहण

करी इन दोनों में से कौन सी बात सत्य है कौन सी बात असत्य है सो इसका निर्णय करते नहीं बनता है ? एक बात और है कि तीर्थंकर स्त्री रूप से जन्म लेते है और श्वेताम्बर उसको पुरुषाकार बनाकर पूजा अभिषेक करते हैं तथा मल्लिनाथ को मल्लिका देवी कहते हैं वह जन्म से स्त्री थी जब दीक्षा ली तब इन्द्र ने सोचा कि यह दीक्षा दिगम्बर पुरुष को ही हो सकती है स्त्री को नहीं तब इन्द्र ने अपने वैभव से मल्लिका देवी को मल्लिनाथ पुरुषाकार बना दिया कहना कहाँ तक सम्भव हो सकता है कि प्राकृतिक स्वभाव को कौन बदल सकता है। क्या उसके रज को व मासिक धर्म को इन्द्र बदल कर वीर्य की रचना कर सकता है ? जिनका संहनन कीलक है क्या उनका संहनन वज्रवृषभनाराच हो सकता है ? यदि सूर्य ठण्डा हो जावे और चन्द्रमा अग्नि बरसाने लगे तो भी स्त्री को पुरुष व पुरुष को स्त्री नहीं बनाया जा सकता है। जो पुरुष का कूर्म ऊपर को मुख किये हुए होता है तथा स्त्री का कूर्म अधोमुख होता है उस कूर्म को बदला जाता है क्या ? यदि बदला तो कैसे बदला सो कहो ?

आचार्य कहते हैं कि स्त्रियों के मासिक धर्म के साथ रक्त योनि में से झरता है उनके योनि के कांख प्रदेशों में सम्मूर्छन जीवों की उत्पत्ति होती रहती है तथा संहनन भी पहले के तीन होते हैं तथा धैर्यता नहीं होती है कलाई स्वभाव से कोमल होती हैं स्वभाव में भी ढीलापन व माया कषाय सतत विद्यमान रहती है फिर उनको तो बिना दीक्षा किये ही केवल ज्ञान हो गया। अब आप दीक्षा ले पात्री हाथ में लेकर क्यों भीख मांग कर खाते हैं आप लोगों के साधु होने से क्या प्रयोजन जब बुहारी देते हुए महतरानी को भी केवल ज्ञान हो सकता है तब अन्य मुनियों को भी हो जाना चाहिये। सो तो होता हुआ देखा नहीं जाता है ? जब भगवान महावीर स्वामी ने दीक्षा धारण करी उन्होंने सब वस्त्र उतार दिये तब इन्द्र ने एक रत्न (कम्बल) वस्त्र भगवान के कांधे पर रख दिया जब भगवान जंगल के मार्ग से जा रहे थे तब एक ब्राह्मण उनके पास कुछ मांगने के लिये आया भगवान बोले नहीं परन्तु उनके कन्धे पर रखा हुआ वस्त्र एक झाड़ी में उलझ गया और आधा फट गया उसको ब्राह्मण ने उठा लिया। यहां यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि क्या वह वस्त्र भगवान महावीर ने हाथ में पकड़ लिया था कि जिससे आधा फट गया था। बचा हुआ भगवान वीर प्रभु के पास रह गया ? या इन्द्र ने श्रमण महावीर के कन्धे से चिपका दिया था ? जब आधा फटा हुआ वस्त्र था वह भी गिर जाता है तब भगवान महावीर दिगम्बर ही रहे। जब भग-वान को केवल ज्ञान हो गया और इन्द्र ने भगवान के समवशरण की रचना की तब भगवान को क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र तथा अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त भोग उपभोग दान लाभ और अनन्त वीर्य ये नव लब्धियां प्राप्त हो गई। मन का व्यापार शान्त हो गया व भगवान सर्वज्ञ हो गये तब भगवान ने कवलाहार किया यह कहाँ से लाकर या पात्री में मांग कर लाये और खाया सो कहो ? यदि भगवान को कवलाहार है तो अनन्त भोग किस काम का ? यदि भगवान के क्षुधा कर्म बाकी रह गया जब कि मोह कर्म के सम्बन्ध से भूख लगती है वह मोह तो वहां है ही नहीं ? फिर कैसे आहार किया ? इत्यादि जिनके मन में शंसय ही शंसय दिखाई देते हैं ॥३९॥

गृहस्थास्त्रीणां भवति गृह यार्जने समये केवलज्ञानम् ।
क्षेत्रात् गत्वानत्वा गुरुवे: पदानुगच्छति सः ॥४०॥
गुरोरुपदेशं श्रुत्वा मनस्यचिन्त्योद्भवति केवल ज्ञानम्
मल्लिका देवीं वा मन्यते पूज्यते पुरूषये ॥४१

यह कहते हैं कि घर में वुहारी देते हुए स्त्री को केवल ज्ञान हो गया। कहा जाता है कि एक महतरानी एक जमींदार के दरवाजे पर वुहारी दे रही थी उसी समय वुहारी देते देते केवल ज्ञान हो गया ऐसा कहा जाता है। और देव लोग उसके केवल ज्ञान की पूजा करने को आये और वह मोक्ष चली गई। एक जाट खेत में काम कर रहा था उसने मुनि महाराज को आता हुआ देखकर हल को खेत में वैल जुते हुए छोड़ दिये और मुनियों के दर्शन के लिये पीछे वापस आने लगा तव गुरु के मुख का एक शब्द सुनूँ इस विचार से वोला महाराज कुछ कल्याण का उपदेश दो? यह सुनकर गुरु ने कहा कि जो मन में आवे वह नहीं करना इतना उपदेश देकर गुरु तो विहार कर गये जाट वहीं चौराहे पर खड़ा रह कर खेत में जाने को हुआ तो विचारने लगा कि यह तो मेरे मन में आ गई अव नहीं जाऊंगा। फिर घर की तरफ जाने को तैयार हुआ मन में विचार किया तव कहने लगा कि यह भी मेरे मन में आ गई इस प्रकार वह जाट चौराहे पर खड़ा रह गया और मन का विचारा नहीं किया तव उसको केवल ज्ञान हो गया। इसके लिये हम उनको कहते हैं कि जव हाथी पर चढ़े हुए मरुदेवी को केवल ज्ञान हो गया। वुहारी (झाडू) देते हुए महतरानी को केवल ज्ञान हो गया तव ७२ गज कपड़ा और पांच पात्री दण्ड कमण्डल और ऊनी वस्त्र धारण करना उनकी मुञ्छालनी (पीछी) का धारण करना व पात्री लेकर घर-घर से कौरा (टुकड़ा) मांग मांग कर लाना और खाना घर के वाल वच्चों का त्याग कर व्रतों को धारण करना अणुव्रत महाव्रत पालन करना पैदल चलना इन कार्यों की क्या आवश्यकता क्या प्रव्रज्या धारण करने का प्रयोजन? जव कि जाट महतरानी मरुदेवी को गृहस्थी की अवस्था को विना त्यागे ही केवल ज्ञान हो गया। हम जितनों को देख रहे हैं उन मुनियों में किसी को भी केवल ज्ञान नहीं हुआ ?

श्री मल्लिनाथ भगवान को जन्म से स्त्री उत्पन्न हुई कहते हैं जो मल्लिका देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई थी पुण्यवान थी सुन्दर शरीर व आकृति की धारक थी। देव भी देख मोहित होते थे। उस मल्लिका देवी को इन्द्र ने पुरुष वना दिया पूजाकरी और प्रव्रज्या धारण करी तव इन्द्र ने विचारा कि दिगम्वर स्री का होना उचित नहीं है तव उसने उनको मल्लिनाथ वना दिया और स्त्री रूप पर्याय को वदल दिया तव से मल्लिनाथ की पूजा पुरुप रूप से हुई यह किस प्रकार सम्भव है? कि स्त्री पुरुष वन जावे यह तो एक श्वेताम्वर ही वना सकते हैं उनके मत में असम्भव हेत्वाभाप से भी नहीं डरे। इस प्रकार की असंभवता अन्य मतावलम्वियों के मतों में भी नहीं सुनी जाती हैं कि स्त्री होकर पुरुप वना कर पूजा जाय। अथवा पुरुपाकार मूर्ति वनाई जाये जन्म के संस्कारों को छुड़ा दिया जाय।

सग्रन्थे सति मोक्षः तीर्थंकराः किमत्यजन् राज्यैव ॥
जीर्णः व्रणवद् रत्नान् निवसंति निर्जीणेऽरण्ये ॥४२॥

भगवान जिनेन्द्र के मार्ग में यह प्रसिद्ध है कि वस्त्रधारी परिग्रह के धारण करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तब हम उनको पूछते हैं कि भाई यह कहो भगवान तीर्थकर अपने सब राज्य सार्वभोम व चौदह रत्न अनेक स्त्री रत्नों व सारी सम्पत्ति को सड़े हुए तिनके के समान त्याग कर निर्जन वन में जाकर एकान्त में दीक्षा लेकर रहने लगे और आत्म ध्यान में लीन हो गये थे। उन्होंने अंतरंग परिग्रह एवं वाह्य परिग्रह तथा शरीर से भी ममत्व का त्याग कर इच्छाओं का त्याग कर समाधि का साधन किया तब कठोर तपस्या और अविचल शुक्ल ध्यान कर कर्म रूपी ईधन को जलाया जब सर्व घातिया कर्म जल गये तब भगवान को केवल ज्ञान हुआ। परन्तु श्वेताम्बर बिना प्रव्रज्या धारण किये बिना परिग्रह के त्याग किये पांच पापोक्त तथा आरम्भ तथा समारम्भ और हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह में अशक्त तथा मासिक में जिनके शरीर से दुर्गन्धमय रक्त वहता है उन स्त्रियों को केवल ज्ञान कहते हैं यह कितना बड़ा असम्भव दोष हो जाता है। तथा मोक्ष हो जाता है, तब घर त्यागने से क्या प्रयोजन पात्री दण्ड कमण्डल लेना व घर-घर टुकड़ा मांगना मुख पर पट्टी बांधना और पात्रों रूपी परिग्रह का धारण करना रक्षा करना तथा वस्त्रों की रक्षा करने में ही लक्ष्य रहेगा धर्म पालन भी नहीं बन सकता है तब निराकुल शुक्ल ध्यान परिग्रह के धारियों में कैसे हो सकता है।

गृहीत्वा पात्रण्य सो वहुगृहेषु भ्रमति किं भिक्षार्थम् ।।
कथं सतिरत्नवृष्टिः निपतता तत्रैव गृहेगृहे ।।४३।।

जब तीर्थकर प्रव्रज्या धारण कर या साधु मुनि बनकर प्रथम भिक्षा के लिए जाते हैं तब वहाँ पर देवों के द्वारा रत्नों की वर्षा की जाती है। परन्तु हम उन श्वेताम्बरों से पूछते हैं कि जब भगवान दीक्षा लेकर आहार की पात्री लेकर जाते हैं और सात या नौ घर से माँग कर टुकड़ा लाते हैं तो फिर कहो कि किन-किन के घरों में रत्नों की वर्षा हुई ?

आहारोऽपि षड्विधो नोकर्म कर्म लोपौजाहाराः ।
इच्छाहारो वितथा कवलाहारोऽपि निर्दिष्टः ।।४४।।

आहार छह प्रकार का है। प्रथम नौकर्मा-हार, दूसरा कर्मा-हार, तीसरा लेप कर्माहार, चौथा औजाहार, पांचवा इच्छाहार, और छठवा कवलाहार। ऐसे आहार के छः प्रकार बतलाये हैं। नौकर्मा-हार-केवली के कर्माहार सांसारिक पृथ्वी जल अग्नि वायु कायक प्राणियों के होता है। लेपाहार वनस्पति, पृथ्वी जल, अग्नि, वायु इनके लिये होते हैं और कवलाहार मनुष्य तथा पशुओं को होता है और औजाहार पक्षियों के होता है। ये छः ही शरीर की वृद्धि के कारण है क्योंकि पक्षी के अंडा देने के पश्चात् उस पर पंखों की गर्मी देने के लिए उसकी माँ बैठ जाती है, अंडे में गर्मी देती है, वही उसका आहार है। वनस्पति का लेप आहार है क्योंकि खाद, मिट्टी, जल के लेप होने पर ही वृक्षों की वृद्धि होती है। मनुष्य त्रियंच का कवलाहार है तथा देवों का इच्छाहार है। इसलिए केवलियों के नौकर्म आहार होता है उनके कवलाहार नहीं।

इति शंसय मिथ्यात्व।

देवासादृश भैरवा शिवसदा काली भवानी नदी
वा शंखेस्वर शाकिनी हरिहराऽर्हतास्तथाप्तेश्वराः ।

माभेंदा च भवन्ति विष्णु शिव एते देवताषृ वा ,साधितुः
मन्यन्ते खलु मूढयो गिनियते मिथ्यात्व वैनायिकः ।।४५।।

योगियों के मत में जितने देव हैं वे सब समान हैं सब ही की समान भाव से पूजा करते हैं। तथा वे सदोष व निर्दोष का विचार नहीं करते हैं। जहां गये वहां पर ही कोई भी देवता मिल जावे उसकी वंदना व पूजा करते ही करते हैं। नमस्कार करते हैं उन्हीं के गुण गान कर आरती आदि उतारते हैं। वार-वार विनय पूर्वक धोक देते हैं। भैरव नाम के जो क्षेत्र पाल हैं उनमें तथा शिव में काली और भवानी तथा नदी में कोई अन्तर नहीं मानते हैं। संखेश्वर श्री कृष्ण में तथा शाकिनी तथा डाकिनी में अंतर नहीं मानते हैं हरिहर तथा अरहंत में कोई अन्तर नहीं मानते हैं तथा आप्त और विष्णु व ईश्वर में कोई अन्तर नहीं मानते हैं वे विष्णु और महादेव में भी अन्तर नहीं मानकर समान रूप से देखते हैं वे अज्ञानी योगी मतवाले वैनायिक मिथ्यादृष्टि हैं। यह विनय मिथ्यात्व योगियों के मत में हैं।

योगियों के मत में भेदाभेद नहीं माना गया है वे जिस प्रकार से सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देव की पूजा वंदना करते हैं उसी प्रकार अन्य पृथ्वी जल वायु अग्नि इनको भी देव मानकर पूजा करते है। क्षेत्रपाल देवी देवता इत्यादिकों की पूजा विनय करते हैं। गर्दभ व घोड़ा की भी पूजा करते हैं उनको भी देव मानते हैं इस प्रकार सब स्थानों में सब तीर्थों में जाते हैं स्नान करते हैं यात्रा करते हैं वे वैनयिक मिथ्यादृष्टि हैं, वे कौन देव हैं कौन गुरु हैं क्या धर्म है क्या अधर्म है क्या उपादेय है इस विवेक से शून्य मूढ अज्ञानी हैं ।।४५।।

पुत्रार्थ वित्तार्थं सुख समृद्धयार्थ विजयार्थ तथा।
देवार्चानस्मै वलि देह कूल रक्षणार्थमेव ।।४६।।

कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए वकरा-वकरी मुर्गी, मुर्गा, की वलि देवताओं को देता है कोई धन पाने के लिए वलि देता है कोई सुख को वृद्धि के लिये वलि देता है कोई मुकदमा जीतने के लिए वलि देता है कोई कुल जाति और शरीर की रक्षा करने के लिए पशुओं की वलि चढ़ाता है और देवों के लिए वलि देकर अपना स्वारथ पूर्ण करना चाहता है। परन्तु यह वात कदापि हो नहीं सकती कि दूसरे जीवों का विनाश कर अपने को सुख मिलेगा या सुख की वृद्धि हो जायेगी। या दूसरे हीन दीन जीवों की वलि देने से क्या पुत्र हो जायेगा ? यदि हो जावे तो स्त्री के साथ मैथुन करने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। यदि देवी देवता पुत्र ही दे देवें तो वन्ध्या के भी पुत्र हो जायं परन्तु ऐसा होता हुआ कहीं देखा नहीं जाता है। जव स्त्री के साथ ऋजुकाल में विपय मैथुन किया जाता है तव स्त्री गर्भवती हो जाती है और पुत्र या पुत्री होते हैं। जव कुछ पुण्य का उदय हो साथ में अपना पुरुपार्थ हो वव तो धन की प्राप्ति हो सकती है परन्तु जव तक पुण्य का उदय नहीं है तव तक एक वकरा नहीं हजारों वकरे देवी या भैरव के मन्दिर में मार-मार कर रक्त वहाते रहो परन्तु धन की प्राप्ति नहीं हो सकती है। दूसरे जीवों को दुःख देने से यदि सुख (मिले) अथवा प्राण घात करने से सुख की प्राप्ति होतो हो तो कपाई शिकारी भील इत्यादि अनेक जीवों को मार-मार कर देव देवियों के मन्दिरों में ढेर लगा देते हैं फिर भी वे दुःखी एक-एक अन्न के दाने को

तरसते फिरते हैं। अपने सुख की वृद्धि के लिए जीवों की बलि नहीं देना चाहिए सुख तो धर्म से मिलता है जीवों के अभयदान देने दया करने रक्षा करने से मिलता है। कोई अज्ञानी मुकदमा में मेरी जीत हो जावे इसलिए देवी देवताओं के मन्दिरों में दीन हीन पशु पक्षियों की बलि चढाकर देवताओं को प्रसन्न कर मुकदमा जीतना चाहते हैं। परन्तु बलि देने वाले मुकदमा व लड़ाई में तथा वाद जीतते हुए नहीं देखे जाते हैं क्योंकि जो सत्य अहिंसा के आधार पर खड़ा हुआ है वही मुकदमा व युद्ध में विजयी हो जाता है। परन्तु हिंसक तो पापों में फंस जाता है जिससे दुर्गति में चला जाता है। विजय नहीं पाता है और निर्दयी कहलाता है। अपने शरीर व कुल की रक्षा करने के लिए देवी देवताओं की पूजा करता हुआ कुक्कट छागा भेंड़ इत्यादि जीवों की हिंसा करके अपनी रक्षा करना चाहता है उन देव देवियों से व भूत प्रेतों से अपनी रक्षा करने में समर्थ होवें तो आप मरण को क्यों प्राप्त होवें। पुत्र प्राप्ति के लिए तथा पुत्र की रक्षा करने के लिए पुत्र की शादी करने के लिए अनेक दीन हीन मृगादि जीवों को मार कर देवी की भेंट में दे देते हैं दूसरे का रक्त बहाने पर अपनी रक्षा कैसे हो सकती है कदापि नहीं हो सकती दूसरों के प्राण नाश का पाप ही लगता है। दृष्टान्त एक ग्राम में एक चमार रहता था उसके कोई पुत्र नहीं था तब किसी ने कहा कि देवी तुम पर रुष्ट हो गई है इसलिए तुम्हारे पुत्र नहीं हैं। तब उसने देवी की भेंट में अनेक जीवों का रक्त बहा दिया कुछ कर्म योग हुआ जिससे पुत्र हो गया तब सब कहने लगे कि देवी के प्रसाद से तुम्हारे पुत्र हो गया। वह पुत्र अल्पायु वाला था, दो चार वर्ष बीते ही थे कि उस ग्राम में राक्षस रहता था उस बालक का भी नम्बर आ उपस्थित हुआ तब वह दौड़ा दौड़ा गया और देवी की आहुति दी दो चार जीवों का खून खच्चर कर दिया तब देवी की आभा प्रकट हो कहने लगी क्यों मुझे याद किया ? तब भक्त कहने लगा कि हे देवी जो तूने पुत्र दिया है उसको कल यमराज राक्षस खा लेगा उससे उसकी रक्षा करो। तब देवी ने कहा कि लेआ अपने पुत्र को वह भक्त शीघ्र ही गया और पुत्र को ले आया और देवी के कहे अनुसार उसकी मढिया में बच्चे को छोड़ दिया। देवी भी दरवाजे पर तलवार निकाले खड़ी थी कि राक्षस आया और देवी से कहा कि हमारा आहार तुमने क्यों रोक रक्खा है हमको दो ? तब देवी का और राक्षस का युद्ध हुआ और बच्चे को भीतर अजगर निगल गया राक्षस भी भाग गया देवी की जीत हो गई। देवी भक्त से बोली कि जा ले जा अपने पुत्र को, जब वह किवाड़ खोल कर देखता है तो वहां पुत्र नहीं है उसको तो अजगर पूरा ही निगल गया। विचार करो कि देवी देवता हमारी और हमारी संतान की रक्षा कैसे कर सकते हैं। देव भी निर्बल की ही बलि चाहते हैं क्या ?

> गजं नेवाऽश्वनैवच सिंह नैव च नैव च।
> अजासुतं वलिदयात हा देव दुर्वल घातकः ॥४७॥

देव हाथी की बलि नहीं चाहते घोड़ा की भी बलि नहीं चाहते सिंह और वघर्रा की बलि नहीं चाहते। अन्य बकरी के बच्चे की बलि ही देव चाहते हैं देखो देव भी दुर्बल के ही घातक हैं।

विनय करने मात्र से अज्ञानी जीव मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं वे गधा घोड़ा बैल गाय सर्प सिंह सब की विनय करते हैं। कि विनय करना ही धर्म है सब की विनय करना ही हमारा कर्तव्य है। विनय मात्र से मोक्ष नहीं होता मोक्ष तो सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र के पालन करने पर होता है। एक विनय गुण से सब देव कुदेव धर्म अधर्म के विवेक सून्य होने पर सबको ही सत्य मानना यह तो अज्ञानता है। यदि देव व यंत्र मन्त्र की विनय करने से रक्षा होगी तब यह कहना भी एक मिथ्या ज्ञानी का विषय है क्योंकि रावण के पास हजार विद्यायें थीं तथा चक्र आयुध था। उसको भी वे मरण से नहीं बचा सके। इसलिए हमको चाहिये कि सच्चे धर्म देव जो अठारह दोषों से रहित सर्वज्ञ वीतराग हैं निग्रन्थ गुरु हैं वे ही हमारे लिए शरण भूत हैं वे ही हमारे रक्षक हैं तथा अन्य देवी देवता हैं, वे हमारे रक्षक नहीं हैं वे स्वयम ही दुःखों से पीड़ित हैं वे दूसरों की क्या रक्षा कर सकते हैं ? इस प्रकार विनय मिथ्यात्व का स्वरूप संक्षेप से कहा गया है ॥४७॥

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप मस्करी

अज्ञानतो भवतिमोक्षरशेष एव
माप्तनकोऽपि सति किंचिदपायम्
लोकान प्रकाशयन शून्य मिहोपदिष्यं
यत्कर्म कर्तृ न च भुंजति भिन्न जीवः ॥४८॥

कोई अपने विषय व ज्ञान मद में मस्त होकर कहता है कि सर्वज्ञ कोई है ही नहीं सब झूठ है। जीवों को उपदेश देता हुआ कहने लगा कि अज्ञान से ही मोक्ष होता है, यह जगत सब शून्य है, जो कर्मो का कर्ता है वह उन कर्मों के फल को नहीं भोगता है। क्योंकि सब शून्य हो है तब भोग किस में होगा और कौन भोगने वाला होगा। इससे संसार में विराग होने का कुछ भी विचार करने का नहीं है।

नित्यंकर्मानि विरचति हिंसादिभिः युक्त धर्मः
राज्ञावश्यं तदपि च मया यत्कृतं दृष्कृतानि ॥
किभुञ्जन्तीति विविधफलं कीदृश शून्य लोकः
मिथ्याज्ञानेभरतिचिरकालं च लोकेषु दुःखं ॥४९॥

कोई अज्ञानी हिंसा झूठ चोरी, परस्त्रीगमन तथा परिग्रह में आसक्त हो कर्म कर पापों का उपार्जन करते हैं। तथा मैंने तो स्वयम् नहीं किये हैं जैसी प्रकृति की आज्ञा थी वही किया है मेरे द्वारा तो उसी प्रकार किये गये हैं इन का फल मैं नहीं भोगता क्योंकि जगत शून्य है। आप कहते हैं कि संसार में भगवान या ईश्वर ब्रह्मा महादेव या अरहंत सिद्ध विद्यमान हैं वे तो हमारी दृष्टि में ही नहीं आते हैं वे किसने देखे हैं। किसने देखा है कि कर्म फल देते हैं। क्या भोगते हुए देखे हैं इस प्रकार अज्ञानी जीव पापों को कर सात प्रकार के लोकों में भ्रमण कर जन्म मरण के दुःखों का अनुभव अनंत काल तक करते रहेंगे ।४९॥

स्वच्छन्दे न करोति बहुदुष्कृतं हिंसारम्भेऽसक्तः
आक्षिपन्ति कर्ताकृतं अक्षविषये लम्पट जनाः ॥५०॥

यह अज्ञानता से भगवान की ऐसी ही मर्जी थी और वही मैंने किया। पंचेन्द्रियों के विषयों में आशक्त होकर अनेक भेड़ बकरा मुर्गा कबूतर हिरण गाय भैंस इत्यादि जीवों का गला काट काट कर मारता है जिससे मरने वाले जीवों को कितनी वेदना होती है इसका क्या विचार निर्दयी हत्यारे के दिल में आसकता है क्या ? ऐसी ही भगवान की मरजी कह कर बड़ी स्वच्छंदता से पाप कर कर्ता के माथे लगा देते हैं।

दृष्टान्त—आज मुसलमान स्वयं पापाचार करते हैं यदि वे मुहर्रम के दिन विचारें कि दीन हीन मुर्गा मुर्गी तथा बकरा बकरी भेड़ा भेड़ गाय इत्यादि जानवरों के करुआ (गला) काट देते हैं जिससे वे जीव बहुत देर तक लोट पोट होते हुए तड़फड़ाते हैं तड़फड़ा तड़पड़ा कर प्राण छोड़ते हैं। तब कहते हैं कि अल्लाह इस पर बहुत प्रसन्न है। हिंसा करके कहते हैं कि खुदा ने इनको इसीलिए पैदा किया है। मुरदा को जमीन में गाड़ कर कहते हैं कि शहीद हैं वे जब इसलाम धर्म के पालन करने वालों पर संकट आवेगा तब ये सब कबर में से उठ कर युद्ध लड़ेंगे इसलिए उस कबर की पूजा करते हैं दीपक चढ़ाते हैं कपड़ा माला फूल चढ़ाते हैं। तथा दिन में तो भूखे रहते हैं और रात्रि के अंधेरी में बिना दीपक के भी सारी रात्रि में भोजन करते हैं जिससे असंख्यात जीवों को अपना भोजन बना लेते हैं। सारे दिन पुण्य कमाते और उसको रात्रि में भोजन कर नष्ट करके पापकी गठरी शिर पर लाद लेते हैं। हिंसा करने में ही धर्म मानते हैं। कहते हैं कि प्याज खाने में पाप होता है इधर खुदा के नाम पर पशुओं को मार-मार कर रक्त बहा देते हैं और उनका मांस निकाल कर आप मिलकर खा जाया करते हैं। उसका पाप दोष सब खुदा के ऊपर रख देते हैं इस प्रकार आप स्वच्छन्दता पूर्वक (पाप करते) हिंसा करते हैं और हिंसा कर सुख चाहते हैं यह विपरीत अज्ञान मिथ्यात्व है क्योंकि इसमें हेय उपादेय की विधि नहीं हैं ॥५०॥

इति अज्ञान विपरीत मिथ्यात्व।

यत्परावर्तन् पंच द्रव्य क्षेत्र कालश्चभव सहभावैः।
संसरंति च जीवाः चिरकालं दुःखमनुभवन्ति ॥५१॥

परावर्तन पाँच होते हैं जिनमें जीव मिथ्यात्व दर्शन मोह के वशीभूत होकर तथा अपने निज भाव व स्वरूप को भूलकर भ्रमण करते रहते हैं। तथा जन्म मरण रोग शोक संयोग वियोग रूप दुःखों का अनुभव करते रहते हैं वे पंच परावर्तन इस प्रकार हैं द्रव्य परावर्तन क्षेत्र परावर्तन काल परावर्तन और भव तथा भाव परावर्तन ये सब दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति के साथ ही होते है उसको छोड़कर नहीं। इन परावर्तनों का कारण जीव के मिथ्या भाव ही हैं यही संसार हैं।

पुदगल परावर्तन का स्वरूप और भेद।

ततो द्रव्य परावर्तन् द्रव्यनोकर्म भेदतः।
षट्पर्याप्ति शरीराणि योग्यं लाति च नोकर्मणा ॥५२॥

यहां पुद्गल परावर्तन के दो भेद कहे गये हैं एक तो नोकर्म परावर्तन दूसरा द्रव्य कर्म परावर्तन है। इसमें नौकर्म परावर्तन इस प्रकार है। जब जीव द्रव्य परावर्तन को प्रारम्भ करता है उस समय अपने औदारिक वैक्रियक और आहारक इन तीन शरीरों तथा छह पर्याप्तियों के योग्य नौ कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है वे वर्गणायें जिस जाति गुण धर्म व वीर्य शक्ति वाली होती हैं वर्गणायें २३ प्रकार की होती हैं भाषावर्गणा मनोवर्गणा, इत्यादि हैं वे अन्य ग्रन्थों से जान लेना चाहिये।५२।

प्रथमसमये लभ्यते वर्ण गंध रस स्पर्श शक्तिश्च ॥
यद् ग्रहीतानिमुञ्चति द्वितीय समय औदारिकादीन् ॥५३॥
मध्यमध्येऽन्योऽन्यं सचित्ताचित्तानि द्रव्यानि च।
यत्प्राग्वत् गृण्हाति भवति नो कर्म परावर्त ॥५४॥

जिन नौकर्म वर्गणाओं को प्रथम समय में जैसी वर्ण गन्ध रस तथा स्पर्श व शक्ति को ग्रहण किया था वे वर्गणायें औदारिक वैक्रियक आहारक इन तीन शरीरों के योग्य तथा इन्द्रिय भाषा और मन श्वास्वोच्छ्वास आहार बल और आयु ये छह पर्याप्तियों के योग्य ग्रहण की और दूसरे समय में छोड़ दी। उसके पीछे अनेक वार अग्रहीतों को ग्रहण किया। अनेकवार ग्रहीत अग्रहीत मिश्रों को ग्रहण कर मध्य में छोड़ दिया। कभी सचित्त मिश्र कभी अचित्त मिश्रों को ग्रहण किया। तथा हीन शक्ति वाली ग्रहण की और छोड़ दी कभी अधिक शक्ति वाली नौकर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर छोड़ दिया। वे वर्गणायें सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त अचित्त सचित्त तथा दोनों प्रकार की हीनाधिक शक्तिवाली मिली हुई ग्रहण कर छोड़ दी।

पुद्गल द्रव्य में परमाणु तथा संख्यात असंख्यात आदि अणुओं के जितने स्कन्ध हैं वे सभी चल हैं किन्तु एक अन्तिम महास्कन्ध चलाचल है क्योंकि उसमें कोई परमाणु चल है कोई अचल पुद्गल परमाणु के तेईस भेद हैं १ अणुवर्गणा २ संख्याताणुवर्गणा ३ असंख्याताणुवर्गणा ४ अनंताणु वर्गणा ५ आहारवर्गणा ६ अग्राह्य वर्गणा ७ तैजस वर्गणा ८ अग्राह्यवर्गणा ९ भाषा वर्गणा १० अग्राह्य वर्गणा ११ मनोवर्गणा १२ अग्राह्य वर्गणा १३ कार्माण वर्गणा १४ ध्रुव वर्गणा १५ सान्तर निरन्तवर्गणा १६ शून्य वर्गणा १७ प्रत्येकशरीरवर्गणा १८ ध्रुव शून्य वर्गणा १९ वादर निगोदवर्गणा २० शून्यवर्गणा २१ सूक्ष्मनिगोदवर्गणा २२ नभोवर्गणा २३ महा-स्कन्ध वर्गणा। तेईस प्रकार की वर्गणाओं में से अणुवर्गणा में जघन्य और उत्कृष्ट भेद नहीं है। शेष वाईस जाति की वर्गणाओं में उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य भेद हैं। तथा इन वाईस जाति की वर्गणाओं में भी आहार वर्गणा भाषा वर्गणा मनोवर्गणा तैजस वर्गणा और कार्माण वर्गणा ये पांच ग्राह्य वर्गणायें हैं एक महास्कन्ध वर्गणा इन छह वर्गणाओं को इन जघन्य और उत्कृष्ट भेद प्रतिभाग की अपेक्षा कृत है। किन्तु सोलह जाति वर्गणाओं के जघन्य उत्कृष्ट भेद गुणकार की अपेक्षसे हैं ये वर्गणायें वर्गों के समूह से वनी हुई एक एक वर्गणा में संख्यात वर्ग असंख्यात वर्ग अनंत वर्ग के समूह को वर्गणा कहते हैं। संख्यात वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं। यह सब लोकाकाश में भरे हुए हैं ॥५२

इस प्रकार अनन्त वार छोड़दी परन्तु जिनको पहले समय में ग्रहण किया था उनको

सचित्त कहते हैं जिनको ग्रहण नहीं किया उनको अचित्त कहते हैं। ऐसी वर्गणायें अनन्त हैं कि जिसको जीव ने ग्रहण नहीं किया है। दोनों प्रकार की वर्गणाओं को मिश्र कहते हैं जब जीव के पहले के समान भाव हों और पहले के समान ही वर्ण रस गंध स्पर्श शक्ति मिले जिसमें न हीनता हो न अधिकता हो ऐसी वर्गणाओं को जिस समय में अपने तीन शरीर व छह पर्याप्तियों के योग्य ग्रहण करे तब नोकर्म द्रव्य परावर्तन होता है।

कर्माष्टविधोबन्धो ज्ञानावर्णादीनाँ योग्यं लभते ॥
द्वितीये मुक्ताकाले सचित्ताचित्त प्राग्वल्ला ॥५५॥
द्रव्यं रस गंध स्पर्श वर्णाभावमापद्यं यथा काके ॥
द्रव्यपरावर्तनमुक्तं च संसारिणां साधिकदुःखं ॥५६॥

कर्म द्रव्य परावर्तन—जब यह जीव अपने भावों कर आठ कर्मों के योग्य द्रव्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है। वे कर्म वर्गणायें स्पर्श रस गंध वर्ण शक्ति की धारक ग्रहण की और दूसरे समय में छोड़ दी। जब पहले के समान आठों कर्मों के योग्य ग्रहण करे तब द्रव्य कर्म परावर्तन होता है। वे आठ कर्म ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन द्रव्य कर्मों का वंध आयु कर्म को छोड़ कर शेष का निरंतर होता है आयु कर्म का वंध जीवन में एक वार होता है। मध्य में सचित्त अचित्त व सचित्ताचित्त को अनंत वार ग्रहण किया और छोड़ा उनका यहां ग्रहण नहीं किया गया है। विशेष इतना है कि ज्ञानावर्णादि आठों कर्मों में से एक आयु कर्म को छोड़कर सात कर्मों का आस्रव और वंध निरंतर चलता रहता है। परन्तु आयुकर्म का वंध आयु के त्रिभाग में एक बार ही होता है ऐसे त्रिभाग (अपकर्षणकाल) जीव के मुक्तायु में मनुष्य व त्रिर्यञ्चों में आठ बार अपकर्षण काल कहलाता है। उसमें ही आयु का वंध होता है देव और नारकियों के छह महीना आयु के शेष रह जाते हैं तब आयु का वंध होता है। बीच में आयु का वंध नहीं होता है बीच में अनेक ग्रहीत अग्रहीत ग्रहीताग्रहीत द्रव्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर छोड़ दिया। परन्तु पहले के समान भाव और वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और शक्ति की प्राप्ति नहीं हुई। जब पहले के समान जीव के भाव हों और पहले के समान शक्ति और द्रव्य कर्म वर्गणायें पर्याप्त हों और द्रव्य कर्म वर्गणायें आठों कर्मों के योग्य प्राप्त हो तब द्रव्य परावर्तन हो जाता है इस परावर्तन को पूरा करता हुआ प्राणी मिथ्यात्व के कारण वहुत दुखों का भोग करता है।

विशेष—पुद्गल परावर्तन दो प्रकार का है एक नौकर्म द्रव्य संसरण द्रव्य कर्म संसरण, उसमें नोकर्म परावर्तन नाम तीन शरीर (तथा भाषा) औदारिक वैक्रियक, आहारक शरीर। तथा आहार शरीर भाषा इन्द्रिय मन और श्वास्वोच्छवास ये छह पर्याप्तियों के योग्य नौकर्म वर्गणायें एक जीव के द्वारा ग्रहण किये स्पर्श, रस, गंध, आदिक तीव्र मंद मध्यम भावो से ग्रहण किये यथा दूसरे समय में छोड़ दिये। विना ग्रहण की हुई नौकर्म वर्गणाओं को अनेकवार ग्रहण किये और छोड़ दिये। मिश्र वर्गणाओं को भी ग्रहण किया। और छोड़ दिया कुछ पहले ग्रहण की कुछ नहीं भी उनका भी अनन्त वार ग्रहण कर छोड़ दिया वीच में अग्रहीत वर्गणाओं का त्याग कर जो पहले समय में जिनको ग्रहण कर आहारक हुआ था वे

ही पुनः तीव्र, मंद, मध्यम, रस शक्ति की धारक स्पर्श रस गंध वर्णमय नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करे तथा समय प्रवृद्ध को ग्रहण करे तव नो कर्म द्रव्य परावर्तन होता है।

एक जीव ने अपने भावों कर आठकर्मों के योग्य समय प्रवृद्ध द्रव्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण किया वे वर्गणायें पहले के समान ही तीव्र मन्द या मध्यम रसादि युक्त ग्रहण किये। इनको दूसरे समय में भोग कर छोड़ दिए। पुनः पहले के समान अगृहीत और गृहीत अगृहीताग्रहीतों को बीच में अनंत वार ग्रहण कर छोड़ता रहा तथा फल भोग निर्जरा की। जब पहले के समान वे ही मन्द तीव्र मध्यम शक्ति वालो भावों सहित ग्रहण करने में आवे तव द्रव्य कर्म परावर्तन होता है। ५६। कुन्द-कुन्दाचार्य नें संसारानुप्रेक्षामें कहा है।

सव्वेंसि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥
असइ अणंत खुत्तो पुग्गल परिपट्ट संसारे ॥१॥

इस जीव ने निश्चय से लोक में जितने कर्म नोकर्म पुद्गल थे उन सब को अपना आहार वना-वना कर भोग कर छोड़ दिया। ऐसा कोई पुद्गल द्रव्य वाकी नहीं रहा कि जिसको जीव ने आहार नहीं वनाया हो अनन्त काल व्यतीत कर दिया पुद्गलों का पर्वत पूरा किया। और संसार में भ्रमण करता आ रहा है।

आगे क्षेत्र परावर्तन का स्वरूप कहते हैं।

प्रागाकश्यं क्षेत्रं: शैलस्यमध्याष्टौ प्रदेशानि।
सूक्ष्म निगोद शरीरं एकैक वृद्धिः सर्वलोकः ॥५७॥

जव यह जीव क्षेत्र परावर्तन को प्रारम्भ करता है लोक के मध्य मेरु पर्वत है उसके मध्य आठ प्रदेशों को एक सूक्ष्म निगोदिया जीव ग्रहण कर श्वास के अठारहवें भाग मात्र आयु का भोग कर मरण को प्राप्त हुआ पुनः दूसरी वार आशा करके एक प्रदेश वृद्धि कर जन्म लिया और यहां इसी क्रम से ग्रहण किये और छोड़े मध्य में अनेक अग्रहीत और ग्रहीत अग्रहीत दोनों मिले हुए प्रदेशों को ग्रहण किया और मरण कर छोड़ा ऐसे अनंत वार किये उनका यहाँ क्रम नहीं। जिस प्रकार कोई जीव मध्य लोक मनुष्य पर्याय में जन्म लेकर अपनी आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप से वाहर त्रिर्यकलोक में त्रिर्यंच हो गया फिर नरक गया फिर तिर्यचों में उत्पन्न हुआ फिर देव पर्याय को भी पाया और छोड़ा परन्तु मनुष्य पर्याय नहीं पाई ऐसी मध्य की पर्यायों की यहां पर गिनती नहीं की गई। जगत में भ्रमण कर जव उन मेरु के मध्य के आठ प्रदेशों की सवसे छोटी अवगाहना को धारण कर एक प्रदेश क्रम से वृद्धि कर जन्मा और मरण किया। पुनः एक आकाश प्रदेश की वृद्धिकर जन्मा और अपनी आयु को पूर्ण कर मरा इस प्रकार क्रम से आकाश प्रदेशों को अपना जन्म क्षेत्र वनालेता है कोई लोक में ऐसा आकाश का क्षेत्र वाकी नहीं रहा कि जहां इस जीव का जन्म क्षेत्र वनना हो। जव संसार में भ्रमण कर फिर उन्हीं आठ प्रदेशों को अपना पहले के समान जन्म स्थान वना लेवे तव एक क्षेत्र परावर्तन होता है। विशेष यह है कि निगोदिया सूक्ष्म लब्धपर्याप्तक जघन्य अवगाहना वाले शरीर का धारक लोक के मध्य आकाश प्रदेशों को अपने शरीर के आठ प्रदेशों को ग्रहण कर (श्वास के अठारहवें भाग में) जन्मा और क्षुद्रभव धारण कर श्वास के अठारहवें भाग

में आयु को पूर्ण कर मरण किया। उसकी अवगाहना को धारण कर घनांगुल के असंख्यातवें भाग सूक्ष्म शरीर का धारक हुआ। पुनः एक प्रदेश वृद्धि कर जन्मा इसी प्रकार दूसरी वार तीसरी वार चौथी वार क्रम से प्रदेशों का ग्रहण करता रहा। जब लोकाकाश के सब प्रदेशों को अपना क्रम से जन्म क्षेत्र बना लिया अन्तराल में क्रम को छोड़कर अन्य प्रदेशों को जन्म क्षेत्र अनंतवार बनाया पर वह क्षेत्र यहां ग्रहण नहीं किया गया है यहां पर तो क्रम ग्रहण किया गया है। जब क्रम के अनुसार एक-एक प्रदेश की वृद्धि कर के असंख्यात प्रदेश वाले लोक के प्रदेशों को अपना जन्म स्थान बना लेता है तब एक क्षेत्र परावर्तन होता है। वीच में सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त प्रदेशों को ग्रहण किया उनकी कोई गिनती नहीं है।

आगम में भी कुन्द-कुन्दाचार्य कहते हैं।

सव्वं हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं ॥
ओगा हणेण बहुसो परिभमिदो खेत्त संसारे ॥२॥

काल परावर्तन :

कालोद्विविधो भवति उत्सर्पिण्य व सर्पिणी विभागतः
जीवो जातोत्सर्पिण्यां प्राक् समये भुक्तायुर्निर्जीर्णः ॥५८॥
विशंति कोटा-कोटी स्थितिः सागरः काल संसारस्य
समयैकंक वृद्धिश्च सर्व काल प्रदेशान्यायुषम् ॥५९॥

काल के दो भेद हैं एक उत्सर्पिणी और दूसरा अवसर्पिणी है। कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और आयु का भोग कर मरण किया। पुनः द्वितीय उत्सर्पिणी के दूसरे समय में जन्म लिया और आयु का भोगकर मरण किया। पुनः उत्सर्पिणी के तीसरे समय में जन्म लिया इसी क्रम से दश कोडा कोडी सागर उत्सर्पिणी के जितने समय हुए उन सब को क्रम से ग्रहण किया और भोगकर छोड़ दिया जब उत्सर्पिणी काल शान्त हो जाय और अवसर्पिणी काल का प्रथम समय जीव को प्राप्त हो और पहले क्रम के अनुसार अवसर्पिणी के दश कोडा कोडी सागर के जितने प्रदेश होते हैं उन सब को अपनी आयु समाप्त करे तब काल परावर्तन होता है। मध्य में उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी के क्रम को उलंघन कर अनेक कालाणुओं को प्राप्त करता रहा वे काल प्रदेश सचित्त और अचित्त तथा सचित्ताचित्त मिले हुए ग्रहण कर भुक्तायु को त्याग कर अनंत भव धारण किए वे भव यहां पर ग्रहण नहीं किये गये हैं।

विशेष—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों दश-दश कोडा-कोडी सागर की स्थिति वाले होते हैं। इन दोनों की समाप्ति होने को एक कल्पकाल कहते हैं। कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और अपनी भुक्तायु को परिसमाप्त कर मरा और दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय में जन्म लेकर वहां की आयु को भोगकर मरण किया। और तीसरी उत्सर्पिणी के तीसरे समय में जन्म लिया और वहां की आयु का भोगकर मरा। इसी प्रकार क्रम से दश कोडा-कोडी सागर के जितने समय होते हैं उन सबको अपनी आयु बना ली और क्रम से पूर्णकर अवसर्पिणी को भी पहले क्रम के अनुसार भोग मध्य की गिनती नहीं की इस प्रकार काल परावर्तन समाप्त किया ५८।५९॥

कुन्द-कुन्दाचार्य ने भी कहा है ।

उवसर्प्पिणी अवसर्प्पिणी समयावलियासु णिरवसेसासु ।।
जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु काल संसारे ।।३।।

आगे भवपरावर्तन को दो श्लोकों में कहते हैं ।

दस सहस्र वर्षायुः स्त्रायांत्रिंशत्सिधूत्कृष्टं नारके ।।
तिरश्चां जघन्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्त त्रिपल्योयम् ।।६०।।
तिर्यङ्तेव मनुष्ये नारकवत्तेवदेव देवेषु विशेषः ।।
मिथ्यात्वे भवत्यायुः एकत्रिंशत सागरोपमः ।।६१।।

नारकी जीवों की प्रथम नरक के प्रथम इन्द्रक विल में जघन्य आयु दश हजार वर्ष की और उत्कृष्टायु सातवें नरक के रौरव नाम के नरक में तेंतीस सागर की है । तथा तिर्यचों की जघन्य आयु एक अन्तर्मुहूर्त से लेकर उत्कृष्ट भोगभूमि को त्रियंचों की आयु तीन पल्य की होती है तिर्यचों के समान ही मनुष्यों की आयु होती है । देवों को आयु नारकियों के समान दश हजार वर्ष से लेकर तेंतीस सागर की होती है परन्तु इतना विशेष है कि मिथ्यात्व के उदय में रहते हुए देवों की आयु इकतीस सागर की होती है क्योंकि कोई द्रव्य लिंगी जिनकल्पी मुनि घोर तपस्या करके अन्तिम ग्रीवक में उत्पन्न होता है जिससे वहां की आयु इकतीस सागर की प्राप्त करता है । उससे आगे देवों में मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते । नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानों में नियम से सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं वे मनुष्य भव से ही अपने साथ लेकर जाते हैं । और च्युत होकर एक भव कोई दो भव मनुष्य के धारण कर अंत में मुक्ति को प्राप्त होते हैं । इसलिए उनकी आयु को यहां ग्रहण नहीं की है ।

किसी जीव ने नरक गति की व नरक भव की प्रथम समय में दश हजार वर्ष की आयु बांध कर जन्म लिया और वहां की आयु का भोगकर नरक गति को छोड़कर अन्य क्षेत्र अन्य पर्याय में उत्पन्न हुआ पुनः मर कर उसी नरक में अन्तरमुहूर्त की वृद्धि करके दश हजार वर्ष की आयु भोगी इसी क्रम से अन्तर्मुहूर्त की प्रत्येक वार वृद्धि कर जन्म लेता रहा वीच वीच में क्रम वदल कर अन्य नरकों में भी गया उसका ग्रहण यहां नहीं किया । जितने दस हजार वर्ष के समय थे उनको क्रम से अपनी आयु वना लिया और वृद्धि करता हुआ सातवें नरक की तेंतीश सागर के समय प्रवृद्ध कर आयु को भोगा । वीच-वीच में अन्य भव धारण किये उनका यहां ग्रहण नहीं किया । क्रम कर सव नरकायु का भोग कर छोड़ा तव त्रियंचगति में पहुंचा वहां की आयु जघन्य अन्तरमुहूर्त की आयु को वांधकर जन्म लिया और आयु का भोगकर मरण किया पुनः त्रियंच गति को प्राप्त होकर अन्तर मुहूर्त के जितने समय होते हैं उतने वार जन्मा और मरा पुनः एक-एक समय को वृद्धि कर त्रियंच आयु का वंध कर समय प्रवृद्ध करते हुए तीन पल्य की आयु तक क्रम से भोग किया और मध्य में अन्य गति व अन्य आयु का भोग किया उसका यहां ग्रहण नहीं करना यहां तो क्रम के अनुसार ही ग्रहण करना वीच में अन्य भवों में वा अन्य त्रियंचों की आयु को प्राप्त कर भोगा उनका यहां क्रम नहीं गृहीत, अग्रहीत, ग्रहीताग्रहीत तीनों आयु का भोग किया जिसमें अनंत वार जन्मा और

मरा और भव धारण किये वे यहाँ गिने नहीं गये हैं।

पुनः मनुष्य गति को प्राप्त हुआ और मनुष्यगति की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त को लेकर जन्मा (तथा भोगकर छोड़ा) तथा अन्तर्मुहूर्त की स्थिति मात्र भुक्तायु को भोगकर मरण को प्राप्त हुआ पुनः एक समय की आयु की वृद्धि करके मनुष्य भव को धारण किया और आयु को भोगा मरण को प्राप्त हो अन्य योनियों में व गति में उत्पन्न हुआ वहां की स्थिति को पूर्णकर पुनः मनुष्य भव में समय की वृद्धि कर जन्म लिया इस प्रकार एक-एक समय प्रवृद्धि करते हुए मनुष्य की तीन पल्य आयु तक क्रम से प्राप्त करता गया जब तीन पल्य में जितने समय होते हैं उन सब को क्रम से पूर्ण कर देव गति को प्राप्त किया और नरक के समान क्रम से देव आयु का भोग किया। यहां पर इतना विशेष है कि नरक में जघन्य पहले इन्द्रक की नारकी जीवों की आयु १० हजार वर्ष की है वैसे ही देवों में व्यन्तर भवनवासी तथा ज्योतिषी देवों की भी आयु १० हजार वर्ष की जघन्य होती है। नरकों में तो सातवें रौरव की उत्कृष्ट आयु का भोग करते हैं परन्तु देव मिथ्यादृष्टि इकतीश सागर की स्थिति का ही भोग करते हैं। इस प्रकार चारों गतियों में भ्रमण कर पुनः वैसे ही भाव हो जिससे पहले के समान नरक गति को प्राप्त हो तब एक भव परावर्तन होता है।

विशेष—प्रथम नरक में सबसे जघन्य आयु दश हजार वर्ष प्रमाण है कोई मिथ्यादृष्टि जीव नरक के पहले पाथड़े में दश हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुआ और आयु की परिसमाप्ति कर मरण किया। पुनः अन्यगति में गया वहाँ की आयु को भोगकर मरा और वहां पर पहले नरक की जघन्यस्थिति के दूसरे समय का बध कर उत्पन्न हुआ जिसमें दश हजार वर्ष के समय होते हैं उन सबको क्रम से एक-एक समय की वृद्धि कर सब समयों को भोगकर क्रम से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर बीस सागर और तेंतीस सागर के जितने समय होते हैं उनको अपनी आयु बनाकर भोगता है इस प्रकार नरक भव को पूर्ण करता है। बीच-बीच में अन्य-अन्य भव धारण करता रहता है इसका भी एक कारण है कि नारकी मरकर नारकी नहीं होता देव मर कर देव व नारकी नहीं होता नारकी मरने के पीछे देव नहीं होता है। देव और नारकी दोनों ही त्रियंच व मनुष्यों में ही नियम से मर कर उत्पन्न होते हैं। इसलिए बीच में अन्य भव धारण किये थे वे गिनती में नहीं लिए गये हैं। मनुष्य और त्रियंचों में एक विशेषता यह है कि मनुष्य मरकर भी मनुष्य भव को धारण कर सकता है उसी प्रकार त्रियंच भी मरण कर त्रियंच हो सकता है इस कारण मनुष्य के भी क्रम से लेकर तीन पल्य तक की आयु का भोग करता है। अनुदिश और अनुत्तर विमान वासी जीव सब सम्यक्त्व लेकर उत्पन्न होते हैं। उनका एक या दो बार मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर कर्मों का नाश कर अविनाशी अविचल ध्रौव्य अविकलंक निरंजन टंकोत्कीर्ण पद को प्राप्त होते हैं। इसलिए इन चौदह विमानों का भव परावर्तन में ग्रहण नहीं किया गया है।६०-६१।।

इति भव परावर्तन

कहा भी है—**णिरयादि जहण्णादिसु जावदुदुनुवरिल्लिपादु गेवेज्जा ॥**
मिच्छत्त संसिदेण दु वहुसो विभवट्ठिरी भमिदो ॥४॥

आगे भाव परावर्तन का स्वरूप कहते हैं ।

संज्ञी पर्याप्तकश्च सानिराकारोपयोगयुक्तश्च ।
वंधं करोति चतुर्था: योग कषाय मिथ्यात्वैः सह ॥६२॥
षट् स्थाने पतितानि ऐधन्ते कषायानिसलोक परिसमाप्यते ।
जघन्योत्कृष्टान्तकोटाकोटी त्रिंशत्सागरः ॥६३॥
ज्ञानावर्णादीनां प्रकृतिस्थित्यनुभाग प्रदेशानि ।
वंधित्वा संसारेऽनंतभाव परावर्तने च ॥६४॥

कोई मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्तक पंचेन्द्रिय दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगवाला प्रकृति स्थिति वंध को कषाय और योगों कर बांधता है वे योग स्थान क्रम से छह स्थानों को प्राप्त होते हैं । संख्यातगुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनंत गुण वृद्धि, अनंतगुणहानि, असंख्यात गुण हानि, संख्यात गुण हानि । तथा संख्यात भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, अनंत भाग वृद्धि, अनंत भाग हानि, असंख्यात भाग, हानि संख्यात भाग हानि इस प्रकार योगों की वृद्धि प्राप्ति होती है । जव योग स्थान वृद्धि को प्राप्त होते हुए सव लोक परिसमाप्त होते हैं तव एक क्रोध कषाय स्थान होता है जव क्रोध कषाय वृद्धि को समाप्त होता है सव सर्वलोक परिसमाप्ति करता है । उसी क्रम से मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषायों की वृद्धि भी जानना चाहिये । जव कषायों की वृद्धि योग स्थानों सहित हो तव स्थिति वंध होता है । जव अनंन्त कोटा कोटी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मों की रह जाती है तव योगस्थान होता है । योग और कषायों की जैसी वृद्धि होती जाती है तथा संक्लिष्ट परिणाम होते जाते हैं वे परिणाम असंख्यात लोक के (प्रमाण) वरावर होते हैं तव ज्ञानावरण की स्थिति वंध ३० कोटा कोटी सागर की होती है । यह चार प्रकार का वंध प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश वध कोई एक मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रि पर्याप्तक दर्शन ज्ञानोपयोग सहित जीव अपने योग मंद संक्लिष्ट परिणामों वाला अन्त कोटा कोटी सागर की जघन्य स्थिति वांधता है । करोड़ से करोड़ का गुणा करने पर जितनी संख्या हो उसको अन्त कोटा कोटी कहते हैं जिस जीव के कषाय स्थान असख्यात लोक प्रमाण छह स्थान पतित उस स्थिति के योग्य होते हैं । अर्थात् उस अन्त कोटा कोटी सागर को जघन्य स्थिति वांधने का कारण कषाय भाव ही है । वे भाव जितने लोक में प्रदेश हैं उतने हैं ।

उस एक स्थान में अनंतानंत अविभाग परिच्छेद हैं जिनमें अनन्त भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, सख्यात भाग हानि संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनंत गुण हानि । अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, अनंत गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, सख्यात गुण वृद्धि, इस प्रकार छह हानि छह प्रकार वृद्धि रूप प्राप्त होते हैं । वहां पर सम्पूर्ण जघन्य कषाय हैं अध्यवसाय स्थान हैं निमित्त कारण है और अनुभाग वंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक के प्रदेशों के प्रमाण होते हैं इस प्रकार कषाय मोहनीय का स्थान सर्व जघन्य है अनुभाग स्थानों का दूसरा असंख्यात भाग वृद्धि सहित योग स्थान होता है इस प्रकार त्रयादिक योग स्थानों चौथे स्थान को प्राप्त हुए जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योग

स्थान होते हैं। तो भी पहले के समान स्थितऔरपहले के समान कषाय अध्यवसाय स्थान को प्राप्त हुए द्वितीय अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है और उसके योग स्थानों को पहले के समान ही जानना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे आदि में भी अनुभाग अध्यवसाय स्थान होते हैं। वे भी सर्वलोक बराबर होते हैं वास्तविक ये ही स्थित स्थान को प्राप्त करने वाले जीव के द्वारा किये गये कषाय अध्यवसाय स्थान होते हैं। इस प्रकार उस ही स्थिति को ग्रहण करने वाले के द्वितीय कषाय अध्यवसाय स्थान होता है उसका भी होना अनुभव अध्यवसाय स्थानों को तथा योग स्थानों को पहले के समान ही जानना चाहिये। कही हुई जघन्य स्थिति के एक समय अधिक कषायादि स्थानों को पहले के समान क्रम से एक समय अधिक उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटी सागर प्रमाण कषाय स्थान जानना चाहिये।

भावार्थ—इस प्रकार (असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थानों में एक से एक में योग-स्थान जगत् श्रेणी के असंख्यात वें भाग असंख्यात प्रमाणगणनाम से अनुक्रम से होते जावें और अनुभाग स्थान असंख्यात लोक प्रमाण अनुक्रम से हो चुके तब एक कषाय स्थान बदलता है और दूसरा कषाय स्थान होता है। इसी प्रकार तीन आदिक भी कषाय अध्यवसाय स्थान होते होते असंख्यात लोक परिपूर्ण होने तक क्रम से वृद्धि जानना चाहिये।

अर्थात्—तीसरे कषाय स्थानों में असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान क्रम से होते हैं। अनुभाग स्थानों के एक एक में जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण अनुक्रम से योग स्थान होते जाते हैं। इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटे और पाँच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते-होते असंख्यात लोक प्रमाण हो जावें तब पहले कही गई अत:कोटा कोटी सागर की स्थिति से एक-एक समय अधिकज्ञानावरण कर्म दर्शनावरण की स्थिति बंधती है कही गई जघन्य स्थिति से समय अधिक के कषाय भाव स्थान अनुभाग अध्यवसाय स्थान योग स्थान क्रमानुसार पहले के समान होते हुए एक समय अधिक क्रम से उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तीस कोड़ा कोडी सागर प्रमाण तक अनुक्रम से कषाय स्थान अनुभाग अध्यवसाय स्थान योग स्थान पहले की तरह जानना चाहिये। अर्थात् जगत श्रेणी के असंख्यात वे भाग प्रमाण असंख्यात गणना में जब योग स्थान क्रम से पलट जावें तब एक अनुभाग स्थान पलटता है और असंख्यात लोक प्रमाण जब अनुभाग स्थान एक कर क्रमानुसार बटवारा हो जाय तब एक कषाय स्थान पलटता है। जब असंख्यात लोक प्रमाण कषाय स्थान क्रम के अनुसार पलट जावें तब एक समाधिक होकर स्थिति बदलती है। अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनंत गुण वृद्धि, इस प्रकार छह स्थान गुण वृद्धि है। छह स्थान हानि है पहले कह आये हैं उसी प्रकार यहां भी हानि छह प्रकार जाननी चाहिए। अनंत भाव वृद्धि अनंत गुण हानि को छोड़ कर शेष चार को यहां पर ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार सब कर्मों की मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियों का परिवर्तन क्रम जानना चाहिये। इस प्रकार के समूह का नाम भाव परावर्तन है। प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंध होता है।

भाव संसार में विशेष जानने की बात यह है कि कषाय और योगों से ही कर्मों को

तीव्र, मंद, मंदतर, तीव्रतर, तीव्रतम इस प्रकार की स्थिति पड़ती है। वंध के मूलकारण मिथ्या-कषाय और योग हैं तथा अविरत और प्रमादों को भी ग्रहण किया गया है परन्तु प्रमाद और अविरति दोनों का कषायों में समावेश हो जाता है। क्योंकि कषायों से ही असंयम होता है प्रमाद भी कषायों से ही होता है। मिथ्यात्व दर्शन मोह तथा कषाय मोह का उदय ही संसार है। जब कषायों से युक्त जीव होता है तव कषायें वाह्य निमित्त पाकर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होती हैं तव लोक में असख्यात प्रदेशों के वरावर कर्म वर्गणाओं को अपनी तरफ खींच लेता है। क्रोध का स्वभाव शैल के समान है, मान का स्वभाव पत्थर के समान है, माया का स्वभाव वांस की जड़ के समान है, लोभ का स्वभाव किरिमी के रंग के समान है। जैसे जैसे कषायें वढ़ती जाती है तैसे-तैसे आत्मप्रदेशों में परिस्पन्द होता जाता है और योग रूप परिणति होती है तव कषायों की वृद्धि अधिक हो जाती है। जैसे कषायें वढ़ती हैं तैसे ही परिणामों में संक्लिष्टता वढ़ती जाती है जिससे तीव्र, मंद, मध्यम और उत्कृष्ट, जघन्य जैसे कषायें होती हैं वैसे ही परिणाम होते हैं। जिस जाति की कषायें होती हैं उसी जाती की द्रव्य कर्म वर्गणाओं के स्कन्ध समय प्रवृद्ध को प्राप्त होते हैं अनंतानुवंधो कषाय युक्त जीव ही लोक प्रमाण असंख्यात कर्म वर्गणाओं को आकर्षित करता है। तथा जव कषायों का निमित्त मिलने पर मन रूप, वचन रूप, काय रूप जो आत्म प्रदेशों में परिस्पन्द (हलन चलन) होता है उनको क्रम से मनोयोग, वचन योग, काय योग कहते हैं। कषायों के मिले हुए भावों की चंच-लता का या आत्म प्रदेशों का होना योग है मनोयोग चार प्रकार वचन योग चार प्रकार काय योग सात प्रकार का होता है इनका कथन आस्रव प्रकरण में करेंगे। इन कषाय और योगों के द्वारा आकर्षित द्रव्य कर्म वर्गणायें आती हैं और स्वयं कर्म रूप परिणमन कर जाती हैं वर्गणाओं का संख्यात, असंख्यात, अनन्त तोन प्रकार से आस्रव होता है। एक समय में जीव सिद्धराशि के अनंतवें भाग तथा अभव्य राशि के अनंत गुण (वर्गणा) वर्ग समूह को ग्रहण करता है। उनका वँटवारा आठ कर्मों में समानता से होता है वचा वहुभाग वेदनीय को दिया जाता है। उसमें से वचा वहुभाग मोहनीय को उसमें से वचा भाग ज्ञानावर्ण दर्शनावरण और अंतराय इन तीन को नाम और गोत्र को वहु भाग दिया शेष वचा वह आयु कर्म को दिया क्योंकि उसकी स्थिति तेंतीस सागर उत्कृष्ट है। विशेष यह है कि सात कर्मों का निरं-तर वंध चलता रहता है परन्तु आयु कर्म का वंध भुक्तायु के त्रिभाग में ही पड़ता है ऐसे त्रिभाग को अपकर्षण काल कहते हैं। उनमें ही आयु वंध होता है। अथवा अंत काल में या छह महीना शेष रहने पर। देव तथा नारकियों के समान आयु का वंध होता है। तीव्र संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि ही नरकायु का उत्कृष्ट वंध करता है। मंद कषाई सम्यग्दृष्टि श्रेणी चढ़ने वाला संक्लिष्ट परिणामी देव आयु का उत्कृष्ट वंध करता है। और संसार में भ्रमण कर भाव परावर्तन करता है। समय प्रवद्ध किसको कहते है? समय प्रवद्ध जितनी कर्म वर्गणाओं को जीव एक समय में ग्रहण करता है उनको समय प्रवद्ध कहते हैं। इन परा-वर्तनों का स्वरूप विशेष आगम में जानना चाहिये।

इति भाव परावर्तन।

सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभाग पदेश वंध ठाणाणि ।
मिच्छत्त संसिदेण यभमिदा पुणभाव संसारे ।।४।।

सव प्रकृति वंध स्थान, स्थित वंध स्थान, अनुभाग वंध स्थान, प्रदेश वंध स्थान को प्राप्त कर मिथ्यात्व के कारण ही जीव ने भाव संसार में भ्रमण किया ।

मिथ्यात्वमोहोदेये जीवः पावति च दारुणं दुःखं ।।
षट्षष्टि सहस्र साधिक षट् त्रिशत् त्रिशत् क्षुद्र भवः ।।६५।।

मिथ्यात्व दर्शन मोह के उदय होने के कारण ही जीव संसार में चिरकाल भ्रमण करता हुआ यहाँ घोर दीर्घ काल से जन्म मरण के दुःखों को प्राप्त कर भोगता हुआ संसार में दुःखी हो रहा है । मिथ्यात्व के ही कारण यह जीव लब्ध पर्याप्तक अवस्था में क्षुद्रभव धारण करता हुआ अन्तरमुहूर्त में ६६३३६ बार जन्म मरण करता है एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल वायु, अग्नि व वनस्पति इनमें क्षुद्र भव साधारण व प्रत्येक इनमें क्रम से प्रत्येक-प्रत्येक के ग्यारह हजार २२ भव धारण करता है सव के मिल कर ६६१३२ वार होते हैं । तथा दो इन्द्रिय के ८० तीन इन्द्रिय के ६० चार इन्द्रिय के ४० पांच इन्द्रिय के २४ भव एक जीव क्षुद्र भव धारण करता है । कुल जन्म मरण ६६३३६ वार होते हैं ।

लब्ध्वादुःखं चतुरगतिषु, सकलगतिषु भ्राम्य मानाऽशरीरी
इष्टाऽष्टौ शुभमशुभमिच्छा च योगे वियोगे ।।
लाभालाभेस्वपरिजन पुत्रादि वित्तं क्षयेवा
मिथ्यामोह न सह इह नाना कुयोनीषु नित्यम् ।।६६।।

हे भव्य जीव तू दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय में रहने के कारण चौरासी लाख योनियों में जन्म और मरण के दुःखों का भोग करता आ रहा है । चारों गतियों में तथा चौरासी लाख योनियों में वे योनि नित्य निगोद, संसार चतुंगति निगोद पृथ्वी कायक, जल कायक, अग्नि कायक, वायु कायक और इन सवकी सात-सात लाख तथा वनस्पति की दश लाख विकलेन्द्रिय जीवों की प्रत्येक की दो दो लाख देव नारकी तथा पंचेन्द्रिय त्रिर्यचों की चार-चार लाख तथा मनुष्यों की १४ लाख योनियों में भ्रमण करते हुए तथा जन्म-मरण करते हुए नाना प्रकार से दुख भोगने में अनेक वार आये हैं । कभी इष्ट सम्वन्धी का वियोग रूप दुःख कभी अनिष्ट वस्तु का संयोग रूप दुःख भोगा । कभी निर्धनता के कारण कभी धन के क्षय होने के कारण दुख का अनुभव किया । कभी इष्ट पुत्र के व स्त्री भाई माता पिता इत्यादि इष्ट वस्तुओं के वियोग होने के कारण से दुःख प्राप्त किया । कभी स्त्री कर्कसा तथा पुत्र दुराचारी व्यसनी कलहकारी मिलने के कारण । कभी शरीर में रोग हो जाने के कारण व पुत्र न होने के कारण कभी पुत्र होकर मर जाने के कारण दुःख पाया कभी धन हानि कभी मान हानि के कारणों के मिलने से दुःख पाया । नरक में पृथ्वी के स्पर्श करने मात्र से जो दुःख होता है उसकी उपमा देना ही सम्भवः नहीं । क्योंकि कहते हैं कि चित्रा पृथ्वी में उत्पन्न हुए एक हजार विच्छू एक साथ डंक मारे तो भी इतना दुःख नहीं होता कि जितना नरक की भूमि स्पर्शन मात्र से दुःख होता है ऐसा दुःख पाया । आपस में

नारको जो लड़ते हैं तब वे वैक्रियक शरीर के भी टुकड़े कर डालते हैं तथा बांधते हैं और अग्नि की जलती हुई ज्वाला में झोंक देते हैं ऊपरी नरकों में उष्णता की वेदना का दुःख प्राप्त किया तथा भूख-प्यास की अत्यन्त तीव्र वेदना भूख इस प्रकार की लगती है कि यदि जितना अन्न तीनों लोक में होता है उस सबको खाजाऊँ। पर एक दाना भी नहीं मिलता है प्यास ऐसी लगती है कि तीन लोक के सब पानी को पी जाऊंगा परन्तु पानी को एक भी बूँद नहीं प्राप्त होने के कारण ही बहुत दुःख और वे दुःख दश हजार वर्ष से लेकर क्रम से तेंतीस सागर प्रमाण आयुका भोग करते हुए सहन किए। तिर्यच गति में भी अनेक प्रकार के कारणों से दुःख पाये कहीं पर छेदने रूप कहीं पर भेदन विदारण व मारने व पीसने के कारण से दुःख पाये। चर्म पकड़ कर खींचने व जीवते हुए अग्नि में झोंक देने व पैर बांधकर जलती हुई ज्वाला में डाल कर मारने व जलाने रूप दुःख तथा शरीर के मांस पेसियों के निकालने रूप महा घोर दुःख त्रियंच गति में पाये। तथा कहीं पर छेदने कूटने पीटने बुझावने रोकने व तोड़ने व छेदने कूटने काटने मरोड़ने चवाने रूप दुःख पाये। देव गति में मानसिक दुःख हीन ऋद्धि व आज्ञा मानने व इन्द्रों की सभा में न जाने रूप दुख सहे। जब मरण काल आ प्राप्त हुआ तब हाय-हाय कर संक्लिष्ट परिणामों कर मरण किया और दुःखों का भोग किया और पुनः नये-नये कर्मों को बांध कर दर्शन मोह का तीव्र वंधकर स्थावर एकेन्द्रिय में जा उत्पन्न हुआ इस प्रकार चारों गतियों में दुःख का भोग किया।

मिथ्योपदिष्टं यथा श्रद्ध धत्युक्ताउक्तातत्वानां ।।
मारुच्यते क्षीरं (पित्तज्वर) जिनोपदिष्टमेव पित्तज्वरे ।।६७।।

मिथ्या मार्ग में चलने वाले गुरुओं के द्वारा कहे गये तत्व पर विश्वास करता है श्रद्धान करता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान के यथार्थ समीचीन धर्म के स्वरूप व तत्वों के उपदेश को नहीं सुनता है नहीं मानता है न श्रद्धान ही करता है। जिस प्रकार मीठा दूध यदि किसी पित्त ज्वर वाले को पीने को दे दिया जाय तो वह दूध उसको रुचिकर नहीं लगता है वह मीठा दूध भी कडुआ लगता है मुख में लेकर भी कडुआ कहकर उसको मुख से बाहर निकाल कर फेंक देता है या कुल्ला कर देता है। इसी प्रकार जिनकी सत्ता में दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति विद्यमान है उनको जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ समीचीन धर्म नहीं रुचता है।"

मिथ्वत्वैवं निगदित मरिर्वा त्रिलोकेषुनित्यं
जीवानां किंचिदपि न सुखं कोऽपि काले विभाति ।।
वर्धन्ते राग सुलभ करंद्वेष मेवं विभावः ।।
भ्रमत्यात्मा स्वगुणविमुखं पंचभेदैव युक्तः ।।६८।।

मिथ्यात्व पांच प्रकार का कहा गया है संशय, विपरीत, अज्ञान, विनय और एकांत भेद वाला है इन में भी दो भेद है एक गृहीत और दूसरा अगृहीत। मिथ्यात्व ही लोक संसार में जीवों का महावैरी है ऐसा भगवान ने कहा है जिस मिथ्यात्व के कारण जीवों में राग द्वेष माया ईर्षा प्रमाद वढ़ जाते हैं। जीवों को कोई भी समय में नाम मात्र भी सुख नहीं दिखाई

देता है। परन्तु फिर भी राग की वृद्धि होती है राग ही इस जीव को सरलता से प्राप्त है तथा उससे द्वेष की वृद्धि होती रहती है। जिससे अपना आत्मा विकारी वनकर तथा विभावों को प्राप्त कर अपने दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग से विमुख अथवा तिरोभाव हो रहा है। तथा निज स्वभावगुणों को परित्याग कर विभाव भाव विभाव गुणों विभाव रूप श्रद्धान ज्ञान में लीन हो रहा है। इसी कारण संसार में किसी काल में भी सुख को प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि यह तो क्रोध मान, माया, लोभ, मिथ्यादर्शन राग, द्वेष, मोह, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रौत्र, इनके विषयों में तथा इष्ट अनिष्ट निद्रा स्नेह में रत हो रहा है।

द्यूत क्रीडा पलं सुरा च वेश्या पररमणी शेव्यमानश्च।
आखेटं स्तेयं वा ऽकस्मिको लोकालोकभयं ॥६९॥
अगुप्ति वेदनाऽवनिपालश्च मरणादि च विद्यन्ते।
अमत्यशरणैकं वा मद्यप जात निर्दयम् ॥७०॥
किंचिदपि न रोचन्ते समीचीनं सुधर्मो यत्।
कुकर्माणि च कुर्वन्ति देवतार्थं वधं प्राणीन् ॥७१॥

अज्ञानी मिथ्या दृष्टी मोही द्यूत क्रीड़ा करता है (जुआ खेलना) मांस खाता है, सुरा पान करता है, वेश्या के साथ भोग करता है तथा पर स्त्री के साथ रमण करने की चेष्टा करता है तथा पर स्त्री में आशक्त होता है तथा चोरी करता है पशु पक्षी व जल चर थल चर जीवों को गिलोल बंदूक रायफल तीर कमान से मारता है इन सात व्यसनों का सेवन कर पापों का संग्रह करता है जरा भी हिचकता नहीं वह निर्दय हो जाता है। और इसलोक भय, परलोक भय, अगुप्ति भय, अनरक्षक भय, मरण भय, वेदना रोग भय, और आकस्मिक भय इस प्रकार इन सातों भयों से संयुक्त होता है। तथा मरण प्राप्त करने के लिए हीना चारी दुष्ट पापासक्त कुदेवों की पूजा करता है तथा चण्डी चामुण्डी गौरी दुर्गा भवानी व यक्ष क्षेत्र पाल भूमियां आदि देवताओं की पूजा करता है तथा भेड़ बकरी के बच्चे व मुर्गी के वच्चों के जोड़ों की बलि देकर उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। तथा उनसे कहता है कि हे देव, हे देवी, तुम हमारी रक्षा करो हम आप की शरण को प्राप्त हुए हैं हम वड़े दु:खी हैं हमारे पीछे दुस्मन (बैरी) पड़े हुए हैं। तथा चढ़ाई हुई वकरी व अन्य जीवों के मांस को देवी का या देवता का प्रसाद मान कर खा लेता है और कहता है कि देवी प्रसन्न और तृप्त हो गई। उस निर्दयी मद्यपान करने वाला व्यसनी व्यभिचारी को भयों से वचाने वाला जो सन्मार्ग रूप समीचीन धर्म है उसको वह रुचिकर नहीं होता है। अपने तथा अपने परिवार की रक्षा वृद्धि व सुख की कामना कर दीन हीन पशुओं को मार कर देवताओं को भेंट देता है कहता है यह तो देवी का भोखन है। जिसकी विवेक बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और कर्तव्य से ऐसा विमूढ़ हो गया है। इन सव का कारण मोह युक्त मिथ्याज्ञान ही है। दर्शन मोह के उदय में ही व्यसन और भय रहते हैं। भय के ही कारण जीव अन्य राजा हाकिम देव देवी आदि की खोज करता है। भय के ही कारण कोट किला खाई इत्यादि वनाता है तथा भय के ही कारण लाठी बंदूक तलवार फर्सा कुल्हाड़ी त्रिशूल इत्यादि अस्त्र-शस्त्र धारण करता है। तथा भय

के कारण ही आर्त्तध्यान रौद्रध्यानजीव के उत्पन्न होते हैं। भयभीत प्राणी ही एकान्त, गुप्त स्थान में छिपकर वैठ जाता है। भयभीत ही दूसरे नीच कुल वालों की चाकरी करता है। मरण से भयभीत मानव हो वैद्य हकीम डाक्टर आदि की खोज करता है तथा औषधियों का सेवन करता है व्यसन और भयों की व्याख्या विस्तारपूर्वक आगे की जायेगी। यहां पर नामों का उल्लेख मात्र किया है।

आगे मिथ्यात्व ही विशेष कर्म वंध का कारण है, उन कारणों को कहते हैं।

मिथ्यात्वाविरतिं च योग कषायश्च प्रमादैर्बन्धः
पंच द्वादश पंचदश, पंचविंशति पंचदश विधः ॥७२॥

वंध के कारण मिथ्यात्व, अविरति योग कषाय और प्रमाद कहे गये हैं इनके द्वारा ही जीव कर्मों को वंध करता है। एकान्त, विपरीत, विनय, अज्ञान और संशय ये पांच मिथ्यात्व तथा अविरति छह काय के जीवों का संयम नहीं पंचइन्द्रिय और एक मन संयम नहीं। पंचस्थावर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पंच स्थावर काय की विराधना रूप असंयम हैं। इसका नाम अविरति है। योग के पंद्रह भेद हैं वे इस प्रकार हैं सत्य मनोयोग असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग। सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग, औदारिक काय योग, वैक्रियक काय योग, आहारक काय योग, तथा औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र योग, आहारक मिश्र काय योग और कार्माण योग। कषाय दो प्रकार की है कषाय और नोकषाय। कषाय-अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया लोभ। नोकषाय हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुष वेद नपुंसक वेद। प्रमाद के भी पंद्रह भेद होते हैं चार काषायें तथा चार विकथा पांच इन्द्रिय निद्रा और प्रीति। ये वंध के कारण हैं। मिथ्यात्व के संम्वन्ध करने पर सव वंध के कारण हैं। उत्कृष्ट प्रकृतिवंध, स्थितिवंध, अनुभाग वंध और प्रदेश वंध इन चारों वंधों को करने वाला मिथ्यादृष्टि संक्लिष्ट परिणामी जीव ही करता है जव मिथ्यात्व साथ में नहीं रहजाता है तव जीव के वंध होता है वह अल्पस्थिति को लेकर होता है। जिस प्रकार विना फार का हल खेत जोतने में कार्यकारी नहीं होता है उसी प्रकार यहां जान लेना चाहिए। अन्य वंध के कारण वने रहें वे वंध के कारण कार्य करने में समर्थ नहीं होते हैं। जिस सेना का सेनापति मर गया हो वह सेना कहाँ तक युद्ध कर सकती है ? नहीं कर सकती।

आगे पांच प्रकार के संसार की विशेषतायें वताने में श्लोक कहते हैं।

द्रव्यात्क्षेत्रविशेषः कालादभव वहु विशेषप्रमाणम् ॥
भावस्तदनंत मूलं सर्वेषां योग मिथ्यात्वम् ॥७३॥

योग और मिथ्यात्व को मूल कहते हैं मिथ्यात्व के कारण सहकारी अनंतानुवंधी कषायें तथा योग होते हैं। इनसे ही जीव द्रव्य परावर्तन करता है द्रव्य परावर्तन करने में सवसे स्तोक काल लगता है द्रव्य परावर्तन से असंख्यात गुणा क्षेत्र परावर्तन का काल है क्षेत्र परावर्तन से असंख्यात गुणा काल परावर्तन है काल परावर्तन से असंख्यात गुणा भव परावर्तन है भव परावर्तन से असंख्यात गुणा भाव परावर्तन का काल है।

(दुष्कृतासवस्य हेतुः)

पापास्रवैश्च कारणं मूले जीवस्य भावंश्च।
न कोपिपर इत्यस्य किंचितोऽशुभ संक्लिष्टः ॥७४॥

मूल में पापों के आस्रव के कारण जीव के अशुभ संक्लिष्ट भाव ही होते हैं अन्य पापास्रवों का दूसरा द्रव्य कारण हेतु नहीं हैं।

जो पांच वंध के कारण बताये गये हैं वे निश्चय करके वंध के कारण नहीं हैं क्योंकि एक द्रव्य पर द्रव्य रूप होती नहीं है क्योंकि छहों द्रव्य स्वभाव से एक आकाश के प्रदेश में निवास करतीं हुई एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप से परिणमन नहीं करतीं। न दूसरे द्रव्य में ही मिलती है क्योंकि एक द्रव्य में दूसरी द्रव्य का अत्यन्ताभाव है। जो कषाय मिथ्यात्व असंयम योग से पुद्गल द्रव्य के विकारी भाव हैं। स्वभाव भाव नहीं हैं न जीव के ही स्वभाव भाव हैं वे जीव के भावों के अनुसार ही होते हैं जब जीव के भाव संक्लिष्टता युक्त होने से ही अशुभ रूप आर्त ध्यान और रौद्रध्यान ये कषायों से युक्त अपने भाव होते हैं तथा विपरीतता को लिये हुए मिथ्यात्व रूप जो भाव होते हैं उनके होने पर आत्मा में मन रूप से जो परिस्पंद होता है वह चार प्रकार का होता है तथा वचन रूप से जो परिस्पन्द होता है वह वचन योग हैं काय रूप से जो आत्म प्रदेशों में हलन चलन होता है वही काम योग है वे भाव ही अपने काय योग रूप होते हैं। कषायों के योग से आर्तध्यान व रौद्र ध्यान होते हैं उनका ही नाम संक्लिष्ट परिणाम है। जिससे परिस्पन्द हो वे ही योग मन वचन काय हैं ये योग मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद रूप होते हैं जिससे जीव कर्मों का आस्रव और वंध करता है। आगम में भी कहा है काय वाङ्गमनः कर्म योगाः स आस्रवः ।७४॥

आगे भावों के भेदों को कहते हैं।

भावो भवन्ति त्रिविधः अशुभेन अशुभ शुभेन तथा शुभः।
शुद्धेन तथाशुद्धः सह मिथ्यत्वेन अशुभमभावः ॥७५॥

भाव तीन प्रकार के होते हैं जब जीव के परिणाम मिथ्यात्व और कषायों से युक्त होते हैं तब अशुभभाव होते हैं जब जीव के भाव मिथ्यात्व से रहित कषायों के क्षयोपशम होने पर जो शुभ रूप परिणाम होते हैं तथा सम्यक्त्व संयम सहित होते हैं तब शुभ भाव होते हैं जब मिथ्यात्व असंयम और कषायों के अभाव होने से जो भाव होते हैं उन्हें शुद्ध भाव कहते हैं।

विशेष यह है जो कि अशुभ शुभ और शुभ भाव हैं वे अपने ही परिणामों के अधीन हैं जैसे अपने परिणाम होंगे वैसे ही अपने भाव होंगे। अपनी शुभ सम्यक्त्व और संयम रूप भावनाओं के होने पर अपने भाव शुभ होते हैं। जो मिथ्यात्व अविरति कषाय रूप अपने परिणामों के द्वारा ही अपने भाव होते हैं वे अशुभ भाव होते हैं। कषायों के क्षय तथा असंयम और मिथ्यात्व के क्षय होने से जो भाव होते हैं वे भाव शुद्ध कहे जाते हैं ऐसा निश्चय है। जो भाव मिथ्यात्व और कषायों को लिये हुए होते हैं वे भाव अशुभ कहलाते हैं अशुभ भावों वाले जीवों के ही आर्त रौद्र रूप अशुभ ध्यान होते हैं ये ही भाव युक्त जीव संसार में भ्रमण करता है ॥७५॥

जव जीव मिथ्यात्व युक्त होता हुआ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह तथा सरम्य, समारम्भ, आरम्भ इन तीन तथा क्रोध मान, माया लोभ इन कषाय रूप पांच प्रकार के अनर्थ दण्डों में प्रवृत करता है तव उससे होने वाले अशुभ परिणामों से अशुभ भाव होते हैं। तथा जब देव पूजा संयम स्वाध्याय दान और वैयावृत्ति करने व ध्यान कायोत्सर्ग करने में प्रवृत्त होता है तथा अणुव्रत महाव्रत आदि भावों से पराजित होने पर जो भाव होते हैं वे शुभ भाव होते हैं। तथा जव मिथ्यात्व और अविरति प्रमाद कषायों का नाश होने पर जो वीतराग भावों के द्वारा ही जो भाव होता है वे शुद्ध भाव होते हैं इस प्रकार जीव के तीन भाव होते हैं ।७५।।

मिथ्यात्वेन सह ध्यानं वर्धते आर्त रौद्रे च ।।
समयवालि हिं वंधं खलु समय प्रवद्धं ।।७६।।

मिथ्यात्व के साथ जीव के आर्तरौद्र ध्यानों की वृद्धि होने लग जाती है। जिस कारण जीव के प्रति समय कर्मवर्गणायें तथा (नो कर्म वर्गणायें) वंध के योग एक समय में ग्रहण करता है उनको समय प्रवद्ध कहते हैं समय प्रवद्ध जितने कर्मों की कर्म वर्गणाओं को जीव अपने अशुभ भाव या शुभाशुभ भाव व शुभ भावों से अपनी तरफ खींचता है वे अभव्य जीवों से अनंत गुणी तथा सिद्ध राशि के अनंतवें भाग मात्र द्रव्य कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है उनको समय प्रवद्ध कहते हैं। जैसे जीव के आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान विशेप मोह के कारण वढ़ते जाते हैं तो वैसे ही कर्मास्रव की गति तीव्रता से वढ़ती जाती है जव रौद्र ध्यान छूटता है तव आर्तध्यान होता है उसके होने पर भावों में कलुशता कम होती जाती है तव कर्म वर्गणायें मन्द रूप से अशुभ हो जाती हैं जव ये दोनों छूट जावे धर्म ध्यान में जीव की प्रवृत्ति हो तव देव पूजा विनय स्वाध्याय जिन भक्ति तथा दान वैयावृति सयम पालने के भाव का होना संसार शरीर भोगों से विरक्त चित्त होना व सवसे राग द्वेष का त्याग कर समभाव धारण करना तथा मैत्री भाव करुणा भाव का धारण करने पर शुभ भाव होते हैं वहाँ अशुभ कर्म वर्गणायें आती थीं वे रुक जाती हैं और शुभ वर्गणायें आने लग जाती हैं तव शुभ वध होता है यह भाव अपने कृत हैं। जव शुभ ध्यान भी छूट जाताहै और शुद्ध ध्यान होता है तव शुभ पुण्य कर्म वर्गणायें भी रुक जाती हैं और वहाँ पर आने वाली वर्गणायें अपने कार्य रूप में परिणमन न करती हुईं निकल जाती हैं इसलिये अपने कर्मों के आस्रव वंध का कारण अपना अशुभ ध्यान व संक्लिष्ट भाव ही है।

वंश परम्परावंधः कालमनन्त वव्रजुः ।
दुःखं भरति जीवैकः पंचोदधौषु भग्नेषु ।।७७।।

यह संसार की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है कि जीव आप स्वयं कर्मों को कर्ता है और आप ही वंध जाता है। यह कहा नहीं जा सकता कि कर्मों का और जोव का सवंध कितने काल से चला आ रहा है। इन कर्मों का और जीव का सम्वन्ध कव से भाई चारा रूप चला आ रहा है कितना काल निकल गया ? इनकी परम्परा अनंत काल से चली आ रही है इसी कारण से वंधा हुआ एक जीव पंचपरावर्तन रूप संसार में भ्रमण करता हुआ जन्म मरण व रोग शोक आदि से होने वाले असंख्यात भवों से व अनन्त भावों से दुखों

का अनुभव करता चला आ रहा है। जिस प्रकार वंश की परम्परा चला करती है जिसमें पूर्वजों का विनाश तथा पुत्र पौत्रादि की उत्पत्ति और वृद्धि होती रहती है। उसी प्रकार बंध की व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही हैं। पूर्व बंध का फल देकर या बिना फल दिये ही खिरजाना और नवीन कर्मों की उत्पत्ति का होना और भविष्य में फल देकर निर्जीर्ण होना यही परम्परा चली आ रही है। यह सब परम्परा अपने भाव के अनुसार ही है। जिस समय तीव्र या मन्द या मध्यम फल देने की शक्ति को किये हुए कर्मों का विपाक होता है तब कर्मों का फल जीव भोग कर छोड़ देता है। उस कर्म फल को भोगता हुआ अपने भावों में सक्लिष्टता रूप आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान हो जाता है तब उस काल में निर्बुद्धि विवेक शून्य होकर दूसरों के प्रति कुभाव करता है। दूसरों को पीड़ा देने व प्राण घात करने रूप रौद्र ध्यानी हो निर्दयता पूर्वक हिंसा करता है झूठ बोलता है चोरी करता है परस्त्री का अपहरण करता है या परि-ग्रह में आशक्त होकर नवीन नवीन कर्मों का आस्रव बंध कर लेता है। जीव के कुभाव मिथ्यात्व असंयम कषाय योग प्रमाद ये सब बंध के कारण उपचार से ही कहे गये हैं। निश्चय दृष्टी से विचार कर देखा जावे तो अपनी गलती अपने को आप महसूस होने लग जायेगी कि मैंने ही अपने अशुभ भावों के द्वारा ही कर्मों को आकर्षित किया है जिस समय अपने भावों में संक्लिष्टता होती है उस संक्लिष्टता का नाम कषाय है जब अपने आत्म प्रदेशों में हलन चलन होता है या परिस्पन्द होता है उसका ही नाम योग है। जब अपने भाव कषाय युक्त होकर दूसरे जीवों के विनाश करने रूप होवें तब वे अपने भाव ही असंमय कहे जाते हैं। जब नष्ट करने रूप भाव होते हैं वे भाव ही हमारे कषाय हैं तथा भावों में संक्लिष्टता उत्पन्न होती है अपने भाव के संयोग से शरीर की आकृति भी विकारमय बन जाती है वही हमारे भाव ही कषाय हैं। जब भावों में संक्लिष्टता अधिक मात्रा में बढ़ जाती है तब विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे दूसरे अन्य प्राणियों के जीवन व जीविका नष्ट करने व अपहरण करने के भाव होते हैं तब रौद्र ध्यान अशुभ होते हैं हिंसानन्दी असत्यानन्दी चौर्या-नन्दी परिग्रहानन्दी होते हैं। जब भावों में से कषायें निकल जाती हैं तब अपने भाव सरल कलुसिता रहित होने पर विवेक वृद्धि होती है तब आर्त ध्यान होता है इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग वेदनानुभव और निदान बंध रूप अपने भाव जो होते हैं वे भाव ही मिथ्यात्व असंयम कषाय योग और प्रमाद रूप से पाँच भेदों से युक्त होते हैं। आर्त ध्यान या रौद्र ध्यान कहो या अशुभ और अशुभतर भाव जो हैं इन अशुभतर भावों में जीव अनादि काल से स्थित हो रहा है एक क्षण मात्र को नहीं छोड़ता है। वे भाव ही कर्म संसार हैं अपने भावों के अनुसार ही गति अगति कही गई है यह निश्चय दृष्टि है। इनसे भिन्न जो कुछ प्राप्त होता है वह तो निमित्त मात्र ही है जिस प्रकार चुगलखोर चुगली कर आप दूर भाग जाता है परन्तु चुगलखोर किसी से तलवार लेकर लड़ते हुए नहीं देखा जाता है वह तो चुगली कर आपस में भिड़ाकर निकल जाता है पर मुद्दई मुद्दायत दोनों मेदान में आ अपने सामने खड़े होकर युद्ध करने लगते हैं उसी प्रकार यहां बाह्य निमित्तों को समझना चाहिये। यदि चुगल ने चुगली को और सुनने वाले की लड़ने की शक्ति नहीं हो तब निमित्त क्या करेगा। यह निमित्त तो एक व्यव-

हार मात्र हैं। निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो शरीर वंध का कारण नहीं वचन भी वंध का कारण नहीं पंचेन्द्रियों के विषय भी वंध के कारण नहीं द्रव्यमन भी वंध का कारण नहीं प्रमाद भी वंध के कारण नहीं वंध के कारण मुख्य अपने भाव हैं तथा भावकर्म द्रव्य वर्गणा रूप पुद्गल स्कन्धों को अपनी तरफ खींचते तव वे पुद्गल स्कन्ध वर्गणायें स्वयं परिणमन कर कर्म रूप हो जाती हैं तव द्रव्य कर्म का कारण अपना भाव कर्म हैं द्रव्य कर्मों का आना और वंध का होना ही कार्य है इसलिये हे आत्मन ज्यादा कहने से कुछ भी लाभ नहीं अपने भावों को देखो और दुर्भाव है उन को निकाल कर शुभ भाव जो सम्यक्त्व संयम तथा कषाय प्रमादों का त्याग कर दुष्ट योगों व दुष्ट इन्द्रियों के विषयों का त्याग कर हिंसादि पापों का त्याग कर शुभ तथा शुद्ध भावों में प्रवृत्ति करने से ही पंचपरावर्तन रूप संसार के दुखों से छूट जाओगे। दुर्भाव ही पाप है और शुभ भाव ही पुण्य है। इन दोनों में पाप का फल तो नरक त्रियंच गति में तथा मनुष्य गति में वेदना व इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग वेदना रूप दुखों का भोग करना पड़ता है शुभ पुण्य रूप हे उनसे देव गति के सुख व तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिक उच्च पदों के सुख की प्राप्ति होती है। इन पंचपरावर्तन के कारण आत्मा के भाव ही हैं अन्य दूसरे कोई कारण नहीं है। मुख्य में अपना मिथ्यात्व भाव है वही संसार है वही दुख है वही जन्म मरण है वही आर्तरौद्र ध्यान हैं वही अज्ञान व असंयम हैं वही योग व प्रमाद है इसलिये मिथ्या भाव का त्याग करना ही चाहिये।

निर्मग्नश्चाशुभे भावेऽनंतकालोव्यतीतश्च।
न गतः शुभभावेन किं वदामि सांप्रतम् ॥७८॥

यह संसारी प्राणी अनादि काल से अशुभ भावों में मग्न हो रहा है। अथवा कुभावों में ही रत है तथा शुभ भावना व शुभ भावों को कभी भी प्राप्त नहीं हुआ। इस समय इस पचम काल में तो हम क्या कहें इस पंचम काल में निरंतर अशुभ भाव ही दिखाई देते हैं। क्योंकि इस काल में धर्म ध्यान से लोगों को नफरत व ग्लानि हो गई है परन्तु आर्तध्यान व रौद्रध्यान तो अधिक मात्रा में बढ रहा है जीवों के अन्दर कुटिलता निर्दयता बढ़ती हुई चली जा रही है। और अशुभ भावों की वृद्धि हो रही है। यहाँ ग्रन्थकार खेद कर प्रकट करते हैं। कि शुभ भावों में रुचि ही नहीं रह गई है ॥७८॥

आचार्य कहते हैं कि दुर्भावनाओं का त्याग कर शुभ भावना कर।

दुर्भावं मुञ्च भावना याहि शुभश्च भावना।
ग्राह्यं सम्यक्त्व मामुक्तिः संयमादिषु भावना ॥७९॥

हे भव्यात्मन्! तू अव अशुभ भावना और भावों का त्याग कर। अशुभ भाव मिथ्यात्व असंयम और कषाय तथा अशुभ योग तथा प्रमादों को छोड़कर एवं शुभ भाव जो सम्यक्त्व संयम तथा समिति गुप्ति दश धर्म और वारह अनुप्रेक्षा तथा वावीश परीषहों पर विजय प्राप्त करना ही शुभ भाव हैं तथा समता भाव को धारण करना व विनय पूर्वक दानादिक में प्रवृत्ति का होना तथा मैत्री प्रमोद करुणा भाव तथा देव पूजा स्वाध्याय और अनेक प्रकार से चारित्र का पालन करने रूप शुभ भाव हैं तथा अणुव्रत व महाव्रतों का धारण

कर परिग्रह से मूर्छा भाव का त्याग करना ये सब शुभ भाव हैं इन शुभ भावों से ही कालान्तर में मुक्ति अवश्य होगी इसलिए इन शुभ भावों को मत छोड़ो क्योंकि शुभ भावों से ही शुद्ध भावों की प्राप्ति होती है। इसलिए संयमादि अपने स्वभावों का त्याग मोक्ष के इच्छुक को कभी नहीं करना चाहिए। इस प्रकार अशुभ का त्याग शुभ में प्रवृत्ति का उपदेश दिया गया है।

सम्यक्त्व के प्राप्त करने की शक्ति किसको होतो है सो कहते हैं।

अनादि सादि मिथ्यात्वः पर्याप्त को विशेषश्च ।
उपयोगौ संयुक्तश्च पंचाक्षः प्रथमोपशमः ॥८०॥

कोई भव्य अनादि मिथ्यादृष्टि व सादि मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक पचेन्द्रिय दर्शनोपयोग सहित भी प्रथमोपशम के योग्य होता है जिसका संसार थोड़ा बाकी रह गया है तथा कर्मों की स्थिति का अंत हो चुका हो और कर्मों की स्थिति घटकर अंत कोटा कोटी सागर प्रमाण रह गई हो ऐसा भव्य जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य होता है।

आगे पांच लब्धियों के नाम व स्वरूप कहते हैं।

प्राग्लब्धिपंच विख्यातं क्षयोपशम देशना ।
प्रायोग्यैव विशुद्धिश्च लब्धिः करण भावैव ॥८१॥
ज्ञानावर्णादि घाति कर्मणामुदयाभावे क्षयं च ।
सद्वस्तोपशमे वा देश घातिनामुदये च ॥८२॥

सम्यक्त्व होने के पूर्व में पाँच लब्धियां होती हैं। लब्धि का अर्थ प्राप्त होता है। वे लब्धियां प्रथम क्षयोपशम लब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग लब्धि, विशुद्ध लब्धि तथा करण लब्धि या भाव लब्धि यह लब्धि आत्मा स्वभाव की विशुद्धिरूप है तथा करण लब्धि सब के पीछे प्राप्त होती है ।८१॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय इन चार घातियाँ कर्मों की सर्व घातिया प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय तथा सदवस्थारूप उपशम और देश घातिया कर्मों का उदय में आना इस को क्षयोपशम लब्धि कहते हैं।

द्वितीय प्रकार—सादि मिथ्यादृष्टि तथा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने बहुत कालसे नित्य निगोद तथा चतुर्गतिनिगोद स्थान में निवास किया उसका निगोद स्थावर नाम कर्म का उदयाभावी क्षयोपशम होना तथा त्रस नाम कर्म तथा स्थावर नाम कर्म का सदवस्थारूप उपशम हुआ एवं देशघातिया पंचेन्द्रिय नाम कर्म उदय में आवे तब पर्याप्तक मनुष्य भव पावे तथा पंचेन्द्रिय सैनी मनुष्यों में व अन्य स्थानों में पंचेन्द्रियों में उत्पन्न हो इसका नाम क्षयोपशम लब्धि कहते हैं।

आत्म विशुद्धि के लिए जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप तथा संसार मोक्ष आराध्य देव, गुरु, शास्त्र, मिथ्यात्व सम्यक्त्व, आदि बातों को समझने योग्य ज्ञानावरण अन्तराय आदि कर्मों का क्षयोपशम हो सो क्षयोपशम लब्धि है। उदय में आने वाले कर्मों के सर्वघाती अंशों का सत्व में रहे आना तथा फल देने की शक्ति का क्षय होना और

सदवस्था रूप अंशों का उपशमन होना एवं देश घातिया कर्मों का उदय इस प्रकार कर्मों की तीन अवस्थाओं का मिला रहना सो ही क्षयोपशम (लब्धि) है उस क्षयोपशम अवस्था में आत्मा के सब गुणों का विकास व विनाश नहीं होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक होना क्षयोपशम लब्धि है।८२॥

विहाअशुभभावं शुभभावना वंर्धन्तेऽच करुणा।
मैत्री प्रमोद समता पाति विशुद्धि लब्धिः जोवान् ॥८३॥

अशुभ भावों का त्याग करने पर तथा मैत्री भाव, प्रमोद भाव, समता भावों का होना। तथा संसार शरीर भोंगों के स्वरूप को जान कर त्याग करने पर शुभ भाव होते हैं इन शुभ भावों का होना यह विशुद्धि लब्धि है। हिंसादि पापों से विरक्त भाव होना यह विशुद्ध लब्धी है।

विशेष—जो अशुभ भाव हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञा तथा माया, मिथ्यात्व, निदान, वंध तथा आर्त्तध्यान रौद्रध्यान क्रोध मान माया, लोभ, कषायरूप संक्लिष्ट परिणामों का तथा राग द्वेष मोह और पंचेन्द्रियों का असक्यता व अन्य अशुभ भाव को त्याग कर जब शुभ भावों में प्रवृत्ति हो। देव, पूजा, संयम, दान मुनियों की वैयावृत्ति व स्वाध्याय करना अणुव्रत महाव्रतों की प्राप्ति सद्भावना का होना तथा सब जीवों से मैत्री भाव का होना सब जीवों पर दया भाव का होना तथा अपने से बड़े व विद्वान चारित्रवान मुनियों की संगत का योग मिलने पर हर्षित होना और कषायों का मंद मंद उदयावली में आना तथा संक्लिष्ट परिणामों का बदलकर सरल पारिणाम का होना धर्म ध्यान में चित्त की रुचि होना इन भावों के होने को विशुद्धि लब्धि कहते हैं।

आगे देशनालब्धि का स्वरूप कहते हैं।

देशना ग्राह्ययोग्यं चित्तकरणेन्द्रियोद्भवति योग्यता।
यासि देशना लब्धिः भव्याऽभव्यानां कदापि ॥८४॥

जब जिसकाल में ज्ञानावरण मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय इन तीनों का क्षयोपशम प्राप्त हो और सैनी पंचेन्द्रिय सांगोपांग पर्याप्तक सैनी मनुष्य या देव त्रियंच जीव के उपदेश ग्रहण करने की शक्ति का प्रकट होना तथा धारणा करने की शक्ति का होना, अरहंत केवली व आचार्य उपाध्याय या साधू व पंडित विद्वान् का उपदेश मिले और वह अपने अन्दर रम जावे इसको देशना लब्धि कहते हैं। विशेष यह है अशुभ भावों का त्याग करने के भावों का होना और शुभ भावों के प्रति सन्मुख होने को देशना लब्धि कहते हैं। आत्मा के प्रति रुचि करने वाले वाहरी साधनों का मिलना केवली आचार्य उपाध्याय तथा साधू व विशेष विद्वान का उपदेश मिलना जिनवाणी का मनन करना सुने हुए को धारण करने की शक्ति विशेष का प्राप्त होना ही देशना लब्धि है। यह भव्यात्मा को कभी भी प्राप्त हो सकती है। तथा अभव्य को भी प्राप्त होती है।

यदा याति कर्मणा च कोटा कोटी स्थितिं काण्डं च।
प्रायोग्य लब्धि भाति परम भावः शुभ कारणैव ॥८५॥

जब जीव के ज्ञानावरण दर्शनावरण मोह चारित्र मोह तथा अन्तराय कर्म की स्थिति घट कर अन्तः कोडा-कोडी सागर प्रमाण रह जाती है तब जीव की कषायें मंद उदय में आती है तथा आगामी बंध अन्तः कोडा-कोडी की स्थिति से हीनता को लिए हुए बंधता है तब किन्हीं पापास्रवों के कारणों का तथा प्रकृतियों की बन्ध विच्छुत्ती का होना प्रयोग लब्धि है ।८५।।

त्रिधा करण लब्धिश्च अधोऽपूर्वोऽनि वृत्तिश्च
भवन्तिप्राक्चतुः भव्या भव्ययोः संज्ञिनां नित्यः ।।८६।।

पहले कही गई चार लब्धियां संसारी भव्य तथा अभव्य दोनों प्रकार के जीवों को प्राप्त हो जाती हैं परन्तु अन्तिम जो करण लब्धि हैं वह भव्य जीव को ही प्राप्त होती है । वह भी कि जिसको सम्यक्त्व प्राप्त अवश्य होगा उसको ही होती है वह करण लब्धि तीन भेद वाली है । अधःकरण, अपूर्वकरण अनिवृत्ति करण जिन जीवों का संसार पर्यटन थोड़ा साबाकी रहगया है अथवा अर्ध पुद्गल परावर्तन शेष रहगया है ऐसा निकट भव्य ही इन तीन करण लब्धियों को करने वाला होता है ।

आत्मा के परिणामों को ही करण लब्धि कहते हैं जिन परिणामों के होने पर जीव के सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है उन परिणामों को करण कहते हैं । करण आत्मा के स्वभाव को कहते हैं । उस आत्मा के वैभव को जानने रूप रुचि का होना करण लब्धि है वह अधःकरण अपूर्व करण, अनिवृत्त करण है ।

जब अन्य परिणामों में समय-समय विशुद्धत्ता बढ़ती है तथा एक समय पीछे अधःकरण करने वाले या दो तीन चार समय पीछे अधःकरण करने वाले जीवों के परिणाम ऊपर तथा नीचे के परिणामों में विषमता लिए हुए भी हों तथा नीचे और ऊपर के समानता को लिए हुए परिणाम पाये जाते हैं । परन्तु प्रथम समय के परिणाम नीचे सादृश नहीं मध्य या ऊपर में सादृश होते हैं । असादृश भी होते हैं । जो प्रति समय संख्या-तासंख्यातगुणी कर्मों की दशा को निर्जीर्ण करते हैं । इन परिणामों का विशेप कथन गोमट्ट सार से जान लेना चाहिए । क्योंकि यहां पर विशेष कथन नहीं किया गया है । इन तीनों लब्धियों का काल अन्तर्मुहूर्त कहा गया है । अधःकरण लब्धि होने के पीछे अपूर्वकरण लब्धि होती है । अधःकरण का काल भी अन्तर मुहूर्त है । नीचे तथा ऊपर के परिणामों में विशुद्धता अधिक से अधिक प्रतिसमय बढ़ती जाती है एक समय से दूसरे समय में अपूर्व करण करने वाले जीव के परिणाम के समानता नहीं होती है । एक समय दो समय या तीन चार पांच समय में अपूर्व करण करने वालों के परिणाम समान नहीं होते जैसे किसी ने एक सेवक रक्खा उसकी वेतन १० रु-दूसरे को दूसरे समय में रक्खा तब पहले वाले की वेतन बीस रुपया कर दी और दूसरे की १० रुपया अब तीसरे को रक्खा तब पहले वाले की २० रुपया तथा दूसरे वाले का वीस रुपया तीसरे वाले को दश । जब चौथा रक्खा तब उसके ४०।३०।२०। अन्तिम के दश ।१० ! इस प्रकार अपूर्व करण वाले जीवों के परिणाम अपूर्व ही रहते हैं उन परि-णामों के होने पर विशेष-विशेष संवर व निर्जरा व उदीरणा और संक्रमण होता है । तथा वे

सब एक एक से अनंत गुणी विशुद्धि को लिए हुए होते हैं। इन परिणामों के होने का नाम अपूर्ण करण लब्धि है।

अनिवृत्ति करण—प्रथम संमय दूसरे समय तीसरे चौथे समय में अनिवृत्तक करण करने वाले जीवों के परिणाम समानता रूप ो विशुद्धता लिये हुये होते हैं। उस विशुद्धि से अनादि काल का पीछे लगा हुआ उस मिथ्यात्व दर्शन मोह के तीन विभाग हो जाते हैं। तथा अनिवृत्त करण करने वाला मिथ्यात्व के अन्दर फूट डालकर उसके तीन टुकड़ा कर डालता है। मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति तथा चरित्र मोह की अनंतानुबंधो क्रोध मान माया लोभ द्रव्य चारों को मिला कर सात का उपशम करता है। तथा कोई पांच का मिथ्यात्व और चार कषायों का उपशामक होता है। इन सातों के तथा पाँचों के दब जाने पर उपशम सम्यक्त्व प्रगट में होता है। उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। ८६॥

आगे उपशम सम्यक्त्व का काल अन्य कारणों से कहने के लिये श्लोक कहते हैं।

सम्यक्वौपशमियकस्य जघन्योऽकृष्टान्तर्मुहूर्तस्थितिः
क्षायकस्योत्कृष्टैव त्रायस्त्रिंशत्सागरोपमं ॥८७॥

उपशम सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर मुहूर्त की है यही स्थिति उत्कृष्ट तथा जघन्य समझना चाहिये। जिस किसी भव्य जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया है उस के उपशम सम्यक्त्व अधिक दो घड़ी रहेगा। इसका कारण यह है कि अन्तर्मुहूर्त के पीछे नियम से अनंतानुबंधी कोई कषाय उदय में आ जाती है जिससे वह सम्यक्त्व की विराधना कर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। क्षायक सम्यक्त्व की स्थिति तेंतीस सागर से कुछ अधिक कोटि पूर्व है तथा अनंत काल भी है संसारी जीवों की अपेक्षा से कही गई है कि क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव अधिक तेतीस सागर तथा कोटि पूर्व से कुछ अधिक आठ वर्ष कुछ महीना होती है। उसके पीछे मोक्ष हो जाता है। इसका कारण यह है कि किसी जीव ने केवली के बाद मूल में क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर संयम धारण कर उपशम श्रेणी से चढ़ा और बीच में ही मरण हो गया मरण कर सर्वार्थ सिद्धी में जाकर उत्पन्न हुआ। वहां की आयु को पूर्ण कर पूर्व कोटि की आयु वाले कर्म भूमियां मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और ८ वर्ष तक तथा साढ़े तीन महीना की उम्र में जिन दीक्षा धारण कर कुछ ही समय में ध्यान बल के कर्म रूप राजा की सेना को नाश कर केवल ज्ञानी बन गया और बहुत काल तक केवल ज्ञान अवस्था में रहा और अन्त में योग निरोध कर अघातिया कर्मों को नाश कर अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करता है तब वही क्षायक सम्यक्त्व अनंतकाल तक जैसा का तैसा ही रह जाता है ॥८७॥

आगे क्षमोपशम सम्यक्त्व की स्थिति को कहते हैं।

क्षायोपशमकस्यैव षट् षष्टि सागरोऽतंर्मुहूतैव
सम्यक्त्वं द्विस्त्रिदशधा जिनवरशासने ऽसंख्यात ॥८८॥

क्षयोपशम सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट ६६ छयासठ सागर प्रमाण होती है उसके पीछे यदि मुनि हो श्रेणी चढ़ने के आरूढ़ हो वे तो सातवें गुणस्थान में चढ़ कर सातिशय होता है तव क्षमोपशम सम्यक्त्व की जो सम्यक्त्व प्रकृति होती है उसको क्षय कर क्षायक सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं। तथा उपशम श्रेणी से चढ़ने के सन्मुख होता है तव सम्यक्त्व प्रकृति का भी उपशम होता हुआ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है तव उपशम श्रेणी से चढ़ता है। सम्यक्त्व के भेद वहुत जिनागम में कहे गये हैं प्रथम सम्यक्त्व के दो भेद हैं निसर्गज दूसरा अधिकगमज। तीन भेद भी हैं उपशम सम्यक्त्व क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायक सम्यक्त्व। सम्यक्त्व के दश भेद भी हैं। आज्ञासम्यक्त्व, वीजसम्यक्त्व मार्गसमुद्भव, उपदेशसमुद्भव, सूत्रसमुद्भव, संक्षेपसमुद्भव, विस्तारसमुद्भव, अर्थसमुद्भव, अवगाढ़ परमावगाढ़ इस प्रकार सम्यक्त्व के भेद कहे गये हैं। तथा श्रद्धान की अपेक्षा से असंख्यात भेद सम्यग्दर्शन के होते हैं ॥८८॥

सम्यक्त्व के वाह्य चिह्न व लक्षण

संवेगं निर्वेगं अस्तिक्यानुकम्पाश्च मैत्री वा ।
भक्ति निन्दागर्हा वात्सल्य मुपशमश्च वाह्यम् ॥८९॥

सम्यग्दृष्टि के वाह्य में देखे जाने वाले चिह्न व संवेग—संसार परिभ्रमण रूप दुःखों से तथा जन्म मरण और नरकादिक दुःखों से भय भीत रहना तथा नित्य पापक्रियाओं से विरक्त भाव रहना। तथा धर्म और धर्म के साधनों में अनुरक्त रहना। निर्वेग—संसार शरीर और पंचेद्रियों के विषय भोगों से विरक्त भाव होना। आस्तिक्य—धर्म तथा धर्म के साधन व सात तत्व नव पदार्थों में तथा देव शास्त्र गुरुओं में आस्थारखना, जीवों के प्रति दया भाव करना तथा झूठ, चोरी, हिसा, कुशीलादि पापों से भयभीत होना। जिन कार्यों के करने मात्र से जीवों की विराधना रूप हिंसा होती हो उनसे दूर रहना यह अनुकम्पा गुण है। सव जीवों के प्रति मैत्री भाव का होना द्वेष कषायों का निराकरण होना तथा वैर भाव का त्याग करना मैत्री भाव है। भक्ति—देव, शास्त्र, गुरु, धर्म की भक्ति। अपने किये हुए पापों की व दुष्ट कर्मों की निन्दा करना देव व गुरु के सन्मुख वैठ कर व खड़े होकर निन्दा आलोचना करना गर्हा पापों से मन में ग्लानि का होना तथा गुरु के सन्मुख अपने दोषों की आलोचना करना तथा प्रकट करके निन्दा करना। धर्मात्मा जनों के प्रति प्रेम भाव रखना तथा वैर विग्रह का त्याग करना यह वात्सल्य भाव है। वाह्य अनेक कारणों के मिलने पर भी कषायों का आवेश नहीं आने देना उनको दवा देना यह उपशम है। इतने सम्यग्दृष्टि के वाह्य चिह्न हैं। वाशब्द से यहां पर प्रशम संवेग आस्तिक्य और अनुकम्पा ये चार भी वाह्य सम्यग्दृष्टि के चिह्न हैं ॥८९॥

विहायव्यन भया निसप्त पंचविंशति सम्यग्मलानि
अष्टांगं संयुक्तं जगत् शरीर भोगेभ्योनिर्वेगं ॥९०॥

व्यसन सात होते हैं उनके नाम द्यूत (जुआ) खेलना, मांस खाना, शराव पीना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या के साथ रमण, करना पर स्त्री में रमना ये सात हैं। तथा भय भी सात हैं इसलोक भय, मरण भय, वेदना भय, आकस्मिक भय, राजभय, अनरक्षक भय। मल सम्यक्त्व के पच्चीस भेद होते हैं। तीन मूढता, देव मूढता, धर्म गुरु मूढता, छह अनायतन, कुदेव

बिम्ब और उसके पूजक कुदेव मंदिर उसके पूजक कुतप कुतप के करने वाले के पूजक कुशास्त्र और उनके पूजक कुधर्म और कुधर्म के धारक और उनके उपासक ये छह अनायतन हैं, आठ मद हैं ज्ञान मद, बल मद, तप मद, धन मद, जाति मद, कुल मद, बल मद, ऋद्धि मद, रूप मद, इस प्रकार मद के आठ भेद हैं। शंका कांच्छा चिकित्सा अन्य दृष्टि प्रशंसा अनस्थिति करण अनुप गूहन, अवात्सल्य, अप्रभावना, आठ सम्यक्त्व के मल तथा इन दोषों का त्याग करना चाहिए तथा संसार शरीर और भोगों से विरक्त भाव का होना निशांकित, निकांच्छित निर्विचिकित्सा, स्थिति करण, उपहगून अमूढदृष्टि वात्सल्य और प्रभावना इन आठों अंग सहित सम्यक्त्व का पालन करना चाहिए।

विशेष—जुआ खेलना-जिन खेलों में बाजी लगाकर व दाव लगाकर हार जीत मानी जाती है तथा रुपया पैसा का देन लेन होता है उसको जुआ कहते हैं। अथवा द्यूत क्रीडा कहते हैं। पासा फेंकना कोड़ी फेकना व पत्तों से व रेश के घोड़ों पर दाव लगाकर रेस खेलना ये सब जुआ के ही प्रकार हैं। तथा फीचर हड़िया लगाना भी एक प्रकार का गुप्त जुआ है। जुआरी मनुष्य अपने धन को बर्बाद कर भिखारी बन जाता है जुआरी मनुष्य धन, घर, खेत, जेवर, हाट, बाजार, मकान, दुकान तथा सब मालों को दाव पर लगा देता हैं। तथा यहां तक देखा जाता है कि जुआरी लोग अपने पुत्र, स्त्री को भी दाव पर लगा देते है, तथा अपने व बच्चों व स्त्री के वस्त्रों को शरीर के कपड़ों को भी दाव पर लगा देते हैं। वे अपने कुल जाति के वैभव व कीर्ति की परवाह नहीं करते हैं। जुआरी मनुष्य अपने माता पिता पुत्र स्त्री व भाईयों को मार डालते हैं। जब जुआरी के माता, पिता, भाई व स्त्री धन देने से इनकार कर देते हैं तब वह ज्वारी अपने माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि को तलवार बंदूक लेकर मार डालता है और कहता है कि ला धन दे इन कार्यों के करने में जरा भी हिचकता नही है। और घर की द्रव्य को ले जा कर पुनः जुआ खेलने मे लग जाता है इस जुआ खेलने में प्रसिद्ध कौरव तथा पांडव हुए हैं जिन्होंने अपना सारा राज पाट व सब परिवार को जुआ के दाव पर लगा दिया था, तथा अपनी रानियों को भी दाव पर लगा दिया था। कौरव ने छलकर जीत लिया था। और अब द्रोपदी हमारी हो गई अब पांडवों की नहीं इस प्रकार आग्रह वचन कहकर द्रोपदी जी की साड़ी का पल्ला पकड़ कर दुर्योधन ने द्रापदी जी से कहा कि अब ये जेवर और वस्त्र हमको दे दो क्योंकि ये सब हमारे हैं हमने जुआ में जीत लिये हैं। तब यह सुनकर द्रोपदी जी जहां पर पांचों पांडव बैठे थे वहां राज सभा में आई और सारा समाचार जान कर अपने अग पर से सारा जेवर दुराग्रही दुर्योधन को दे दिया। अब कहने लगा कि ये कपड़े भी तो हमने जीत लिये है ये सब निकाल कर दे दो। यह सुनकर द्रोपदी जी स्त्री पर्याय बिना वस्त्र नहीं रह सकती तब देने से सकुची तो दुस्साशन ने उनकी साड़ी का पल्ला शीघ्र ही पकड़ लिया और खीचने लगा। तब धर्म के प्रभाव से चीर बढ़ने लगा दुस्सशान भयभीत हो गया यह क्या मामला है कि चीर बढ़ता ही जाता है दुस्साशन खींचता जाता है चीर का ढेर लग गया। उसके पीछे यह विषय समाप्त कर दिया गया। इसको विस्तार पूर्वक कहेंगे। इस जुआ के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ था कि जिसमें लाखों करोड़ों जन की धन क्षति हुई।

मांस व्यसन—मांस प्रथम तो पंचेन्द्रिय प्राणी का शरीर या कलेवर है अथवा टुकड़ा है अपवित्र दुर्गन्ध भय अशुचि अभक्ष्य है। वह मांस वृक्ष तथा तला की डाली पर नहीं लगता है। जब दूसरे प्राणी के प्राणों का नाश किया जायगा और उसके शरीर का विदारण करने पर मांस की प्राप्ति होगी बिना उसके मांस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि मांस जब दूसरे के शरीर को छेदन भेदन कर ही निकाला जाता है तब उस प्राणी को कितना दुःख होता है कितनी वेदना होती होगी कि जिसके शरीर का मांस निकाला जा रहा है तीसरी बात यह है कि जितने प्राणी हैं उनको अपने प्राण प्यारे हैं और वे प्राणी कोई भी मरण को नहीं चाहते हैं वे सब अपने जीवन की इच्छा करते हैं माँस तो गाय, भैंस, बकरी, शावक, हिरण, रोज, बैल, मछली, मकर, सूकर, मुर्गी, कबूतर आदि पक्षियों के मारने पर ही प्राप्त होता है। संसार में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो मरण की इच्छा करता हो। सबको अपने-अपने प्राण प्यारे होते हैं। जब सामने वधिक को सिंह देख लेता हैं तब वह भी अपने प्राणों को बचाने के लिए घनघोर जंगल में प्रवेश कर छिप जाता है। तथा सर्प जब कभी आदमी को आता देखकर विचार करता है कि यह मनुष्य मुझे मार डालेगा इस भय के कारण अपनी बांमी में प्रवेश कर जाता है तथा असैनी चींटी मक्खी मच्छर जब उनको पता लग जाता है तब वे भी बड़े वेग से भागने लग जाते हैं क्योंकि उनको भी अपने प्राण प्यारे हैं। मांसाहारी गोह, सर्प, नोवला, बिल्ली आदि को देख कर वृक्षों पर रहने वाले पक्षी भी भय भीत होकर इधर उधर दौड़ने लग जाते हैं व बोलने लग जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई भी प्राणी अपने जीवन को नाश करने को तैयार नहीं है। हम अपने शरीर को पुष्ट बनाने के लिए मांस खाते हैं और अपने पैरों की रक्षा करने व कांटें आदि की वेदना से बचाने को जूता चप्पल पहनते हैं। तब विचार कर देखाजाय तो जैसे कांटा चुभने पर हमारे वेदना होती है उसी प्रकार सब प्राणियों के वेदना अवश्य ही होती है। यदि अपने प्राण हमको प्यारे नहीं होते तो वैद्य हकीम और डाक्टरों के पास जाना कड़वी दवाइयों का सेवन करना किस काम का? यह बात सिद्ध हुई कि हमारे समान ही सबको प्राण प्यारे हैं।

दृष्टान्त—एक दिन की याद आ जाती है कि एक अंग्रेज एक बैरिस्टरसाहब के यहाँ मिलने के लिये गये थे वकील साहब ने अंग्रेज का यथा योग्य आदर किया। वकील साहब के बंगला में एक चिड़ियों का घोंसला था। जब घर में अंग्रेज ने प्रवेश किया तब सब चिड़ियाँ एक दम घोंसले से बाहर निकल आई और इधर-उधर उड़ने लगीं और बोलने लगी। यह देख अंग्रेज बोला बैरिष्टर साहब आप यहाँ पर कैसे रहते होंगे ये चिड़ियाँ इतना शोर मचाती हैं। तब कुछ इन चिड़ियों के बोलने का कारण होना चाहिये विचार कर बोला कि आप मांस का भोजन करते हैं क्या? तब अंग्रेज बोला जी हां। तब वकील साहब बोले कि इसका अर्थ यही है कि आप मांसहारी हैं इसलिए चिड़ियाँ घबड़ाकर बाहर निकल पड़ी हैं कि यह कहीं मार नहीं डाले क्योंकि यह हिंसक प्राणी है। हिंसक को देखकर ये बोलने लगी तथा इधर उधर को उड़ने लगीं जब वह अंग्रेज उस बंगला में से निकल गया तब चिड़ियां वापस आ कर बैठ जाती हैं बोलना भी बंद हो जाता है इसका कहने का तात्पर्य यह है कि मांसाहारी

को देखकर चिड़ियाँ भी भयभीत हो जाती हैं क्योंकि मांसाहारी को दया नहीं रह जाती है।

कहा भी है—मांसाहारी कुतोदया सुरापाने कुतः सत्यं। जो मांस भोजी होते हैं उनके दया नहीं जो शराब पीते हैं उनको सत्यता कैसी ? ये नहीं होती। वह तो निर्दयी होता है। इस लिये मांस खाने वाला निर्दयी होता है हिंसानन्दी रौद्र ध्यान को करके नरक में चला जाता है तथा नरक को पाता है।

मद्यपान व्यसन : शराब प्रथम त्रश जीवों का कलेवर है अपवित्र दुर्गंधमय है यह मन की विवेक बुद्धि को नष्ट कर देती है तथा इसके सेवन करने वाले को कामवासनायें अधिक बढ़ जाती हैं स्वभाव में क्रोध की तीव्रता हो जाती है। तथा भय भी अधिक मात्रा में बढ़ जाती है। जिसके पीने से अपने शरीर का होश नहीं रह जाता है पीने वाला बेहोश होकर जमीन पर व नाले या रास्ता में कहीं भी पड़ जाता है तथा मुख में से कुछ का कुछ बोलने लग जाता है गाली गलौज व गलत वचन बोलने लग जाता है। मद्य में सूक्ष्म जीव की संख्या नहीं गिनाई जा सकती इसमें एक बूंद में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति प्रति समय होती रहती है इसके एक बूँद के जीवों को यदि कबूतर बना कर उड़ाये जावें तो तीनों लोकों में न समावें वे सब जीव शराब के पीने पर एक दम मर जाते हैं मद्यपान करने से मानव शरीर में एक प्रकार की विपरीत उत्तेजना प्राप्त होती है तथा गर्मी अधिक बढ़ जाती है जिससे स्मरण शक्ति व विचार नष्ट हो जाती विचार के साथ विवेक भी नष्ट हो जाता है। उत्तेजना में भय बढ़ जाता है तथा अभक्ष्य भोजन खाने लग जाता है तथा अनेक खोटे कार्यों को करने लग जाता है अथवा माता पुत्री बहन व बूआ भौजाई इत्यादि का विवेक शून्य होकर एक दृष्टि से देखने लग जाता है तथा अपनी माता बहन इत्यादि के साथ जबरन विषय सेवन करने लग जाता है वह विवेक शून्य अपनी कुल जाति व धर्म की मर्यादा को भंग कर डालता है। अपने माता पिता दादा गुरु इत्यादि से द्वेष करता है। अपनी वंश परम्परा से चली आई धर्म प्रवृत्ति को नाश कर डालता है। मद्यपाने कुतः सत्यं। मद्य पान करने वाले यदि सत्य बोलने लग जावें तो बाकी सब झूठ ठहर जावें परन्तु मद्यपाई कभी भी सत्य नहीं बोल सकता है इसलिये मद्य के कहने से अन्य नशाओं का भी निषेध किया गया है जैसे भांग घोटकर पीना धतूरा पीना संखिया, अफीम, तम्बाकू, सिगरेट, कोकीन व बीड़ी इत्यादि को भी नहीं खाना पीना चाहिये। ये अमल हैं ये मल नहीं है मलों का निषेध नहीं हैं इनके सेवन करने पर अनेक कोटि के रोग शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं कामोदीपन तथा क्षुधा का अधिक लगना व रोग की वृद्धि होती है तथा शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है तथा स्मरण शक्ति भी क्षय हो जाती है। इसके सेवन करने वाले के हृदय से जीव दया, मय धर्म नष्ट हो जाता है जिससे नरकगामी बन जाता है इसलिये मद्यपान व्यसन का भव्य जीवों को त्याग कर देना ही योग्य है।३।।

वेश्या व्यसन—यह वेश्या का नाम पण्यका व सर्व वल्लभा है इसका अर्थ इसको बाजारू स्त्री कहते हैं जिस प्रकार बनिये के दुकान पर दुष्ट सज्जन साधू सब ही वस्तुयें खरीदने को आते हैं खरीदते हैं उसी प्रकार वेश्या व्यसनासक्त सब ही नीच कुल वाले तथा उच्च कुल वाले सब के सब ही आते जाते हैं वह वेश्या भी पैसा लेकर सबके साथ भोग करती है।

यह वेश्या जब तक तुम्हारी है कि जब तक तुम्हारे पास उसके लिये देने को पैसा है जब पैसा नहीं रह जाता है तब वह भी तुम्हारी नहीं। यह धन को हरण कर मनुष्य को नंगा बना देती है उसके अलावा वीर्य को भी अपहरण कर लेती है तथा नीच पुरुषों को संगत करती है तथा नीच अकुलीन पुरुषों के साथ भी भोग करती है तथा मांस खाती है शराब पीती है व कोकीन का नशा करती है। यह स्वभाव से ही बड़ी निर्दय होती है। यह जीवों के प्राणघात करने में जरा भी नहीं डरती है यह सम्पत्ति के साथ जीवों की कीर्ति यश धर्म को मर्यादा को भी क्षय कर देती है। वे वेश्या के सहवास में रहने वाले लोग जैसे वेश्या खान पान करती वैसे वे भी खान पान करने लग जाते हैं। वेश्या मांस खाती शराब पीती है तब साथियों को मांस खिलाती है शराब पिलाती है वे भी मांस खाने व शराब पीने लग जाते हैं तथा वेश्या सेवन करने वालों के सुजाक गर्मी खुजली दमा आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। वेश्या जब देखती है कि अब इसके पास धन नहीं रहा तब वह उनके ऊपर मुख की पीक डाल देती है यहां तक देखा जाता है कि जूते मारती है और जूते लगाकर अपने स्थान से निकाल देती है यहाँ तक भी देखा जाता है वेश्या उसको पिटवाकर अन्त में पाखाने में डलवा देती है और जीते जी नरक यहीं दिखा देती है इस लिये भव्य जीवों को वेश्या का त्याग व कुमारी राड़ का भी सहवास नहीं करना चाहिये क्योंकि ये भी यश कीर्ति धन मान मर्यादा धर्म की घातक हैं।

चोरी व्यसन—पर धन का अपहरण करना यह चोरी है चोरी करने में रत रहने को चोरी व्यसन कहते हैं। चोरी करने वाले चोर डाकुओं का कोई विश्वास नहीं करता है न कोई भी आदर की दृष्टि से देखता है जहां कहीं भी जाते हैं वहां निन्दा व तिरस्कार ही होता है तथा राजा चोरों को पकड़वा लेता है तब सजा देता है किसी को फांसी किसी को सूली किसी को गोली से भी मरवा डालता है। माता पिता भी उसका विश्वास नहीं करते हैं। जिस धन को चोर डाकू लूट खसोटकर ले जाते हैं वह धन सब प्राणियों का प्राण है जीवित मनुष्य के दश प्राण होते हैं ग्यारहवां प्राण धन को माना गया है जब धन चोरी चला जाता है तब वह कहता है कि हाय वैरी मार गये हाय मैं मर गया इस प्रकार हाय-हाय कर दुःखित हो मूर्छित होकर जमीन पर मरे हुए के समान पड़ जाते हैं। चोरी करने वाले पुरुष के धर्म कर्म व यश सब कीर्ति व गुण सब नष्ट हो जाते हैं। तथा चोर बिना मौत के ही मारा जाता है और दुर्गति का स्वामी बन जाता है। यदि कहीं चोरी करते हुए पकड़ लिया जाता है तो वहाँ के लोग उसको लाठी फरसा लात चाबुक आदि से मार लगाते हैं। जब वे लोग चोर को पकड़ कर राजा के सिपाहियों को सौंप देते हैं तब वे राजकर्मचारी भी उसको बहुत प्रकार से वेदना देते हुए कहते हैं कि वहां कितना माल चुराया बताओ वह कहां है इस प्रकार कह कर बड़ो डण्डों की मार लगाते हैं तथा हाथों को रस्सी से बांधकर लटका देते हैं और नंगाकर मार लगाते हैं तब चोर हाय हाय कर रोता है तब भी उसको छोड़ते नहीं है मार ही मार लगाते हैं। तथा यह भी देखा जाता है राजा उनको फांसी व सूली तथा कुत्तों से खिंचवाने की भी सजा दे देते हैं। चोर डाकुओं को भी सज्जन आदर की दृष्टि से नहीं देखते हैं, वास्तविक

कटाक्ष व बुरी दृष्टि से देखते हैं। इस लोक में अपयश और परलोक में वेदना भोगनी पड़ती है इस लिये भव्य जीवों को इस चौर्यव्यसन को अवश्य त्याग कर देना चाहिये। यह धन यदि चोरी करने से वृद्धि को प्राप्त हो जावे तो चोर लखपती बन जावे परन्तु यह चोरों को जैसा आता है वैसा ही चला जाता है वह किसी के भोग उपयोग में नहीं आता है तथा अपने घर के धन को भी साथ में ले जाता है। किसी कवि ने कहा है कि 'चोरी कर होरी रची वही छिनक में राख' इसलिए इस चोरी व्यसन का सज्जनों को त्याग कर देना ही चाहिये क्योंकि यह चोरी अकुलन्ता की जड़ है चोर मनुष्य अच्छी तरह बैठकर खाना नहीं खा सकता है पानी भी नहीं पी सकता है उसको भय इतनी मात्रा में लगी रहती है कि कहीं कैसी भी आवाज आ जावे तो सामने की रोटी को छोड़ कर भाग खड़ा होता है तथा रात में भी नींद नहीं आती है तथा उसको अपने मरण का ही दिन रात भय लगा रहता है वह रोटी भी निराकुल होकर नहीं खा पी सकता है। रोग हो जाने पर दवाई भी नहीं ले सकता है तब विचार करो कि चोरी करने वालों को कितना सुख है। अपने बाल बच्चों के पास भी नहीं आ सकता है न अपनी स्त्री से बात ही कर सकता है तब विचार करो कि कितना चोरी करने में आराम है। जेब काटना मकान को तोड़कर धन को ले जाना जबरन कर छीन लेना तथा कई प्रकार से जान छिपा कर ठग लेना यह भी चोरी है। तथा खेत में से धान्य ले जाना व तोड़ना इत्यादि चोरी के अनेक प्रकार हैं इन सब को छोड़ देना ही सज्जनों की परम कीर्ति का कारण है। विशेष आगे पुनः प्रकरण पर कहेंगे।

आखेट—शिकार खेलना पशु पक्षियों को तीर मारकर व बंदूक व लाठी से जीवों का बध करना इसको शिकार कहते हैं। तथा बांसुरी डालकर जाल डालकर व जाल बिछा कर उड़ने वाले पक्षियों को व पशुओं को तथा मगर मीन व हिरण, साबर, बारहसिंहा इत्यादि जानवरों को फँसा कर मार डालना इनको शिकार कहते हैं। यह शिकार महानिंद्य अदयायुक्त पाप बीज है नरक गति का कारण हैं तथा वैर द्वेष का कारण है जीवों के विराधना रूप हिंसा है इसलिये दयावान को चाहिए कि वे किसी जीव को प्रयोजन या बिना प्रयोजन कैसे भी विराधना नहीं करनी चाहिए। शिकारी जन ही रोरव नाम के सातवें नरक में जाते हैं। जहाँ पर यह सुना जाता है कि जो कोई राजा दूसरे राजा के पास जाता और अपने मुख में तृण दबा लेता तो राजा लोग उसको अभय दान देकर विदा कर देते थे। परन्तु आज शिकारी जन नित प्रति जंगलों में तृण खाकर तथा पत्ते खाकर झरने का पानी पीकर सुख से विचरते हैं तथा जो इतने भयभीत रहते हैं कि किसी को जरा सी आवाज होने पर भागने लगते हैं तथा वे जीव किसी की कोई भी प्रकार से हानि भी नहीं करते हैं फिर भी उन अनाथों को भी शिकारी दुष्ट पापचारी जन वीणा बजाकर व जाल में फंसा लेते हैं और उन तृण चारियों को मार डालते हैं। जब अधिक लोग बांसुरी अलगोजा या बीन महुअर की ध्वनि करते हैं तब वे हरिण सर्फ एक चित्त होकर सुनने में आसक्त हो जाते हैं तब दुष्ट बधिक लोग उनको बंदूक तलवार या लाठी का प्रहार कर मार डालते हैं। आचार्य कहते हैं कि उन जनों को धिक्कार हो जो तृण चारी निर्दोष प्राणियों को नष्ट करते हैं। आखेट महानिंद्य तथा वैर

उठाने वाली है जिनको आज तुम मार रहे हो वह शरीर ही मर जाता है परन्तु उसका आत्मा नहीं मरता है। यह जीव मरने के बाद भी वैर अवश्यमेव ले लेता है। हे भव्य, तुम उस निंद्य और वैर बढ़ने वाली शिकार का त्याग करो।६

परस्त्री गमन रूप व्यसन—जब कोई अपनी माता बहन पुत्री व स्त्री को कुदृष्टि से देखता है तब हम उसको बदकार निर्लज्ज कह कर उसका तिरस्कार करते हैं। उसका विरोध कर तलाक देते हैं। जब हमको अपनी माता बहन बेटी व स्त्री का शील व इज्जत प्यारी है उसी प्रकार अन्य जनों को भी अपनी माता बहन पुत्री व स्त्री आदि का शील इज्जत प्यारी है उस शील की रक्षा करने में सब ही कटिबद्ध होते हैं। जब कोई किसी की माता या स्त्री आदि पर दृष्टि डालता है तब कुपित होकर लोग सहसा तिरस्कार व मार पीट करने को उतारू हो जाते हैं तथा व्यभिचारी मनुष्य को यहाँ तक देखा जाता है कि मार भी डालते हैं अपमान भी करते हैं कामी पुरुषों को जब कभी किसी के घर में पकड़ लिया जाता है तब उसको लाठी बेंत चाबुक आदि से मारते हैं तथा उसके अंग उपांगों को छेदन भेदन कर डालते हैं। व्यभिचारी भाई को भाई भी मार डालते हैं एक समय की बात है कि जिला भिन्ड में गढ़िया ग्राम था उसमें एक जागीदार रहते थे उनके तीन पुत्र थे बड़े का नाम मानसिंह था दूसरे का नाम सूबेदार था तथा तीसरे का नाम तहसीलदार था जिनमें सूबेदार बड़ा दुराचारी था एक दिन उसकी दृष्टि पास में रहने वाले ब्राह्मणों की पुत्रवधू पर पड़ी वह उसको प्राप्त करना ही चाहता था। कि यह बात घर वालों को मालूम हो गई कि सूबेदार यहाँ पर हमारी औरतों के पीछे पड़ता है तब उन्होंने उसके पिता के पास जाकर कहा कि जागीरदार जो आप का लड़का हमारी बहू बेटियों को मार्ग में चलने पर छेड़ता है तब उसके पिता ने बहुत डाटा परन्तु वह परस्त्री लम्पटी कब मानने वाला था। जब पुनः उसने वही कार्य किया तब पुनः वे जागीरदार साहब के घर आये और कहने लगे कि ठाकुर साहब आप नहीं रोकेंगे तो फिर हमें जैसा सूझेगा वैसा करेंगे। फिर हमें तुम दोष नहीं देना। तब जागीरदार बोले जैसा तुमको दीखे वैसा करो हम तुम्हारे से कुछ भी नहीं कहेंगे। इतनी बात सुनकर ब्राह्मणों को अपनी स्त्रियों के शील की अवहेलना करना कहाँ तक सहन हो सकता था। एक दिन रात्रि का समय था कि सूबेदार एक दिन रात्रि में एक अबला के पास आया और अबला उसको देखकर घर से बाहर को भागी तब उसके पति ने व जेठ ससुर ने बैटरी डालकर देखा और गोली चला दी जिससे वह मर गया। मर जाने के पीछे जंगल में फिंकवा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि सबको अपना शील धर्म प्यारा है। पर स्त्री में आसक्त पुरुष की विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है तथा धर्म की मर्यादा और वैभव सद्गुण विलय हो जाते हैं। पर स्त्री लम्पट जन सदा दुःखी और भयातुर ही रहता है वह जिस मार्ग से निकलता है वहाँ के निवासी लोग कहने लग जाते हैं कि यह दुष्ट दुराचारी इस मार्ग से क्यों आया? इसको तलाक देना चाहिए ताकी यह पुनः कभी मुहल्ले में न आवे। पर स्त्री लम्पटी मनुष्य जाति कुल का कुछ भी विचार नहीं करता है कि यह स्त्री किस कुल की है किस जाति की है यह मेरी कौन है मैं इसका कौन हूं इसके विवेक से रहित होता हुआ चांडाल

चमार नाई धोबी इत्यादि नीच जाति व ऊंच जाति ब्राह्मणी है या मेरी माँ बहन बेटी का भी विचार नहीं करता है वह तो सबको समान मान विषय भोग में आसक्त होता है। किसी कवि ने कहा है।

यथा माता तथा पुत्री यथा भगिनी तथा स्त्री ॥
कामलुब्धक एकेन रुपण पश्यति स्त्रीणां ॥१॥

कामी पुरुष माता पुत्री बहन व स्त्री में विवेक न करता हुआ जिस स्त्री को देखता है उस ही रूप से बहन को देखता है तथा उस ही रूप से माता व पुत्री को भी देखता है तथा उनके साथ भी विषय सेवन करने लग जाता है तथा धर्म भ्रष्ट होकर तथा कुकर्म करके तथा पाप का भार मस्तक पर लादकर ले जाता है जिसके भार से नरक गति में चला जाता है। वहाँ पर सागरों की आयुपर्यन्त दुःख भोगता है पर स्त्री लम्पटी जीवों को स्त्रियों के अपवित्र दुर्गंधमय शरीर को देखकर घृणा भी नहीं होती है। जिसकी योनि से पेशाब रूप मल निकलता है तथा रक्त पात होता है वह योनि स्थान अपवित्र व जहां पर योनि स्थान में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति होती है उस पर कैसे भोग करेगा कैसे सुख मिलेगा ? अपितु सुख नहीं दुःख ही दुःख मिलेगा। इस लिए भव्य जीवों को पर स्त्री व्यसन का त्याग करके पापों से बचना चाहिए। ये सात व्यसन ही महापाप कहे गये हैं साथ ही यह भी है कि सात ही नरक हैं सात ही महापाप रूप व्यसन हैं। ये सात व्यसन आत्मा के सम्यक्त्व गुण व चरित्र गुण का घात करते हैं मिथ्यात्व असंयम अथवा दर्शन मोह और चारित्र मोह के साथ वेदनीय कर्म के तीव्र बंध के कारण हैं। जहां पर व्यसन रह जाते हैं वहां पर सम्यक्त्व गुण नहीं रह जाता है। तथा अनंतानुबंधी क्रोध मान माया और लोभ में ये चारों कषायें तथा सात भय और भी अधिक बढ़ जाती हैं। बैर द्वेष भी बढ़ जाते हैं जिससे जन्म जन्मान्तर में बैर की परिपाटी चला करती है। पर स्त्री व्यसन की कथायें अनेक शास्त्रों में पायी जाती हैं ग्रन्थकार स्वयम् ही आगे करेंगे।

आगे सात भय हैं इस लोक, परलोक भय, मरण भय, अगुप्तिभय, रोग भय, अत्राणभय, आकस्मिक भय। इन सातों भयों से संसारी जीव भिन्न नहीं हैं सभी प्राणियों के लगी हुई हैं। जब तक ये भय लगी रहती है तब तक सम्यक्त्व गुण प्रकट नहीं हो सकता है। क्योंकि भयातुर जीव ही अपनी रक्षा के लिये कुदेव व कुगुरुओं की सेवा पूजा करता है। भय रहित जीव निशंकित होता है अथवा निशंक होता है। इसलिए निशंक उसका नाम है। भय रहित मनुष्य कहीं भी जावे वह जंगल या पहाड़ या परदेश में जावे वहां पर भी निर्भय ही रहता है।

इहलोक भय—इस गाँव व नगर में कोई मेरा संरक्षक नहीं है कहाँ जाऊँ किसके पास जाऊँ कहां छिपकर रहूं किस देश में जाऊँ जितने ही यहाँ पर हैं वे सब ही लुटेरे हैं मुझको मार डालेंगे मेरा धन छीन लेंगे तथा मुझे मार डालेंगे। यहां तो मुझे अपना मरण ही मरण दिखाई देता है। हाय मेरा घर मेरे बाल बच्चे व सब परिवार का विनाश हुआ जाता है फिर मैं क्या करूंगा इस प्रकार का मन में भयातुर रहना इह लोक भय है।

परलोक भय—हाय मेरे मरने के पीछे मुझे कहां दूध मिलेगा कहाँ दही ऐसी सुन्दर

अज्ञाकारिणी स्त्री मिलेगी। अब न जाने कहाँ किस कुल योनि में जन्म लेना पड़ेगा। न जाने कैसे दुःख भोगने पड़ेंगे हे भगवान मेरे घर को मत छुड़ावें मरने के पीछे जहाँ जन्म लूँगा वहां के लोग न जाने क्या क्या दुःख देवेंगे तो मुझे कौन बचावेगा। फिर क्या करूंगा वहां तो कोई मेरी पहचान का भी न होगा तब किसके पास जाऊँगा कौन मेरी रक्षा करेगा मैं वहां क्या करूंगा ? वे मेरी इज्जत को भी नष्ट कर डालेंगे तथा पीड़ा देवेंगे। हमारा जर माल वहां के लोग छीन लेवेंगे। न जाने कैसी स्त्री पुत्र बांधव जन मिलेंगे, वे मेरे को दुख देवेंगे। या सुख देवेंगे। हाय अब क्या करूं मैं मरा हाय कहां जाऊँगा इस प्रकार के अनेक विकल्पों से भय का होना यह परलोक भय है।

मरण भय—अरे वैद्यो बचाओ मेरा मरण हो जायेगा। हाय भगवान अब मेरे ऊपर दया नहीं रही जिससे मेरा मरण आ गया। मेरे धन स्त्री परिवार का विछोह हो जायेगा। हाय अब मेरा मरण होगा अब किस वैद्य व हकीम डाक्टर की शरण में जाऊं जो मुझे मरने से बचावेगा किस देवी देवता की शरण लूँ जो मुझको मरण से बचा सकेगा। मरण से बचने के लिये दूसरे जीवों को मूर्ख लोग देवी देवताओं के लिये बकरा भैंसा इत्यादि जीवों को मार कर बलि चढ़ा देते हैं। मरण के भय से मनुष्य अनेक बलवान राजाओं की शरण खोजता है तथा मरण के भय से जंगलों में कंदरा गुफा में छिपने का प्रयत्न करता है तथा अनेक औष-धियों का प्रयोग करता है। अनेक अभक्षों को भी खालेता है इस प्रकार के भय को मरण भय कहते हैं।

अनरक्षक (अगुप्ति) भय—इस क्षेत्र में नगर ग्राम में तो मेरा संरक्षक कोई नहीं है सब लोग मेरे से विरुद्ध व पीड़ा देने वाले हैं यहाँ पर मेरी जान पहचान का भी नहीं है। मेरे नगर के चारों ओर कांटे व खाई भी नहीं है जिसमें छुपकर अपनी जान बचाई जा सके तब अपने धन माल की रक्षा की जा सके। इस मार्ग में तो चोर डाकू बहुत हैं वह मेरे धन को चुरा लेवेंगे और मुझे भी पीट देवेंगे। हाय कोई धनकी चोर न ले जायेगा मेरे को मार डालेंगे बांध लेवेंगे ऐसी मन में धारणा कर भयभीत होकर इधर उधर छिपने की कोशिश करना यह अनरक्षक भय है।

रोग भय—मेरे को रोग न हो जावे यदि मैं रोगी हो गया तो कहां से वैद्य आवेगा कौन लावेगा कौन मेरी देख भाल करेगा तथा मेरी सेवा वैयावृति करेगा। रोग हो जाने पर शरीर में वेदना होगी। रोग हो जाने पर मूर्ख अज्ञानी दिन रात रोता है और कहता है कि हे वैद्य जी तुम ये रुपया ले लो मैं पैर छूता हूं मुझे इस रोग से बचा लो मैं आपका अहसान नहीं भूलूँगा इस प्रकार अनेक विकल्पों कर रोग से भयभीत हो रोता है कांपता है तथा मूर्छा खाकर गिर जाता है यह रोग भय है। यह क्षेत्र अच्छा नहीं, वह क्षेत्र अच्छा है यह वैद्य अच्छा नहीं, वह डाक्टर अच्छा है वहीं चलना चाहिए इत्यादि प्रकार रोग भय के हैं।

अवनिपाल भय—इस नगर में कोट किला कुछ भी नहीं है जहाँ पर छिपकर बैठ कर अपने जान माल की रक्षा कर सकूं। यहां पर तो मेरे शत्रु बहुत हैं मेरे कर्मचारी ही मेरे शत्रु हैं वे मुझे नीचा दिखाने के लिये तुले हुए हैं। तथा लुटवाने मरवाने के लिए तुले हुए हैं

इस क्षेत्र का राजा बड़ा भारी निर्दयी है वह टैक्स ही टैक्स लगाता रहता है वह जरा भी नहीं हिचकता है यदि राजा को हमारे माल धन का पता लग जायेगा तो वह अवश्य ही छुड़ा लेगा इस प्रकार भयभीत होना ; तथा इस जगह में तो चोर बाजारी है ये सब ही चोरों के सरदार हैं हाय मैं कहाँ आफंसा ये सब मेरे माल को चुरा लेवेंगे अथवा जबरन छीन लेवेंगे और मार डालेंगे। अब इस नगर में रहना ठीक नहीं क्योंकि यहां का राजा भी चोर है और प्रजा जन भी चोर हैं चोरों का ही बोल बाला है। यदि किसी के यहां पर अपना सामान माल रख दूं तो हड़फ जायेंगे तब क्या करूंगा इस प्रकार भयभीत रहना यह अवनि पाल भय है।

आकस्मिक भय—आकाश में बादलों के हो जाने व गर्जने पर भय भीत होना इधर उधर दौड़ना बिजली के तड़-तड़ करने पर कांपना कि यह मेरे ही ऊपर न पड़ जावे इस प्रकार मन में शंका उत्पन्न कर भयभीत होता है। अकस्मात् में सुन लिया कि ग्राम में आज डाका पड़ गया और चोरी हो गई यह सुनकर अधीर होकर अपने घर परिवार को छोड़कर भागने का विचार करना कि यहां भी इस ग्राम में न आजावे। उनको रोग है मेरे को न हो जावे। मेरे ऊपर बिजली न पड़ जावे। मकान न गिरजावे और भी अनेक प्रकार के विकल्पों के उठने से भयभीत होता है। ये सात भय हैं इनका संक्षिप्त कथन किया है। मूल में भय कषाय भय संज्ञा का तो अन्तरंग में उदय तथा बाह्य में वैसे हो कारणों के मिलने पर मन चलायमान होता है वही भय है। ये भय सम्यक्त्व के घातक है तथा निशंकित अंग भी नहीं हो सकता है। सम्यक्त्व के आठ विपरीतांग है शंका कांञ्छा चिकित्सा अन्य दृष्टि प्रशंसा (मूढ़ दृष्टि) अस्थिति करण व अनुपगूहन, अवात्सल्य, अप्रभावना ये तथा देव धर्म गुरु मूढ़ता कुदेव मन्दिर और बिम्ब और उनके पूजक। कुतप-कुतप के उपासक तथा कुधर्म के धारक ये छह अनायतन है। ज्ञान, पूजा, तप, बल, जाति, कुल, रूप, एश्वर्य इन आठ मदों से रहित होना तथा निशंकित निर्विचिकित्सा निःस्कान्छित, स्थिति कारण, अमूढ़ दृष्टि, उपगूहन, वात्सल्य तथा प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अंग सही बताते हुए संसार शरीर भोगों में विरक्त भाव होना ही सम्यक्त्व का लक्षण है। गुणों का ग्रहण करना तथा दोषों का त्याग करना ही सम्यक्त्व है।

भक्तिः पंचगुरुणां आप्तागमैव धर्मस्यभावना।
सम्यक्त्वं धर्मव तन्मूलं मोक्षपादपस्य ॥६१॥

सम्यक्त्व की भावना सहित अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और जगत में सब साधुओं की भक्ति करना उनके गुणों में अनुराग होना तथा भावना का होना इनको ही अपना इष्ट मानना और उपासना करना तथा इनके द्वारा कहा हुआ ही शास्त्र है अन्य कुलिंगियों के द्वारा कहा हुआ शास्त्र नहीं हो सकता है इस प्रकार देव, शास्त्र और गुरु तथा धर्म में रुचि पूर्वक श्रद्धान का होना सो ही सम्यक्त्व है वह सम्यक्त्व ही मोक्ष रूपी वृक्ष की मूल जड़ है। जिस प्रकार बिना जड़ के पेड़ बढ़ नहीं सकता न फल फूल सकता है न उसकी कोई स्थिति ही रह जाती है। जिस वृक्ष में जड़ होती है वही वृक्ष वृद्धि को प्राप्त

होता है। जड़ के बिना नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार सम्यक्त्व ही मोक्ष रूपी तथा चारित्र रूप वृक्ष की जड़ है चारित्र रूप वृक्ष में ही मोक्ष रूपी फल लगते हैं अथवा सर्व प्रथम धर्म तो सम्यक्त्व ही है पहले पद्य मे कहे गये सात भय, सात व्यसन, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढ़ता तथा आठ शंकादिकों का जब तक पूर्ण रूप से अभाव नहीं होता है तब तक सम्यक्त्व नहीं होता है यही सम्यक्त्व के होने में बाधक हैं।

आगे सम्यक्त्व का स्वरूप व्यवहार और परमार्थ से कहेंगे।

भूतार्थेन च भणितं जीवाजीवास्रव वंधपुण्यैवं
पापसंवरनिर्जरा मोक्षपदार्थेषु श्रद्धानम् ॥९२॥

निश्चय नय से कहे गये नव पदार्थ हैं वे जीव, अजीव, आश्रव, वंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष तथा पुण्य और पाप ये हैं। इनमें श्रद्धान का होना ही सम्यक्त्व है।

जीव पदार्थ—जीव दो प्रकार के हैं एक जीव संसारी कर्म सहित दूसरे जीव कर्म मल कलंक से रहित हैं ऐसे मुक्त जीव हैं। संसारी जीव वे हैं जो नाना रूप धारण करते हुए भ्रमण करते हैं जो चारों प्राणों से पहले जीते थे जी रहे हैं व जीवेंगे वे सब संसारी हैं। जिन के इन्द्रिय, आयु, बल, श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण होते हैं। वे सब जीव हैं। जिनमें पदार्थों के जानने व देखने की शक्ति है वे सब जीव हैं। वे जीव अनेक भेद वाले हैं इनको देह धारी भी कहते हैं स्थावर कन्धक जीव व त्रसकायक जीव इस प्रकार दो भेद संसारी जीवों के हैं। स्थावर पाँच प्रकार के होते हैं जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कायक होते हैं। इनमें भी एक एक के दो दो भेद होते हैं एक सूक्ष्म दूसरे वादर उनमें भी दो भेद तथा तीन भेद होते हैं। एक पर्याप्तक दूसरे निवृत्त पर्याप्त तीसरे लब्ध पर्याप्तक भेद वाले होते हैं। सूक्ष्म पर्याप्तक सूक्ष्म निवृत्त पर्याप्तक सूक्ष्म लब्धि पर्याप्तिक उसी प्रकार वादर भी तीन प्रकार के होते है। वनस्पति काय के दो भेद है एक साधारण दूसरे प्रत्येक। प्रत्येक के दो भेद होते हैं एक सप्रतिष्ठित दूसरा अप्रतिष्टित सबके सब पर्याप्तक निवृत्त पर्याप्तक लब्ध पर्याप्तक इन के आश्रित निगोद राशि भी है। त्रस राशिके दो भेद हैं एक विकलेन्द्रिय दो इन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक जीवों को विकलेन्द्रिय कहते हैं तथा पंचेन्द्रिय जीवों को सकलेन्द्रिय जीव कहते हैं। विकलेन्द्रिय जीव शंख दोइन्द्रिय चीटीं, तीन इन्द्रिय भौंरा, मक्खी चार इन्द्रिय। सकलेन्द्रिय, देव नारकी मनुष्य तथा गाय, भैंस, हाथी, मछली, मगर, सर्प इत्यादि होते हैं। पचेन्द्रिय में दोभेद होते हैं कुछ तो सैनी होते हैं कुछ असैनी। मन सहित जीवों को सैनी तथा मनरहित जीवों को असैनी कहते हैं। जीव स्थूल ही होते हैं तथा अपर्याप्त निवृत्तक पर्याप्त और पर्याप्तक होते हैं। जो देव गति व नरक गति व त्रियंच गति और मनुष्य गति में गमन करते हैं उनको गति कहते हैं। अथवा जो गुणस्थानों में निवास करते हैं वे सब जीव हैं। मार्गणा में खोजे जाते हैं, देखे जाते हैं वे सब संसारी जीव हैं। इनसे विपरीत रूप को धारण करने वाले अचेतन द्रव्य हैं वे सब रूपी और अरूपी मिलकर पाँच प्रकार के हैं। पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य आकाश द्रव्य, काल द्रव्य इन में एक पुद्गल द्रव्य तो रूप, रस, गध, स्पर्श, वाला है शेष चार द्रव्य अरूपी हैं। रूपी द्रव्य संख्यात, असख्यात, अनंत परमाणू, वाला है परन्तु अरूपी धर्म, अधर्म जीव ये तीन द्रव्य

असंख्यात प्रदेश वाले हैं आकाश अनंत प्रदेश वाला है काल द्रव्य एक प्रदेशी है वे प्रदेश असंख्यात लोक प्रमाण हैं वे आकाश में रत्नों की राशि के समान भरे हुए हैं। तथा धर्म अधर्म और जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी अखंड एक द्रव्यों है। पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पांचों द्रव्यों में से एक पुद्गल द्रव्य स्वभाव और विभाव रूप से परिणमन करता है परन्तु चार द्रव्य अपने स्वभाव में ही परिणमन करते हैं। वे विभाव रूप से परिणमन नहीं करते हैं। तथा जीव द्रव्य स्वभाव और विभावों में परिणमन करता है इन जीव और पुद्गलों के सम्वन्ध से होने वाले कार्य के द्वारा जो द्रव्य कर्म वर्गणायें आश्रव आस्रव को प्राप्य होती हैं, उनको आस्रव कहते हैं। जब जीव और अजीव के सम्वन्ध से जीव के विकृत परिणामों से जो आश्रव होता है वह भावाश्रव है तथा भावाश्रवों से जो कर्म वर्गणायें आई हैं वे ही कर्म रूप होकर परिणमन करती हैं वही द्रव्याश्रव है। जो कर्म वर्गणायें शुभ भावों से आई हैं वे पुण्य हैं तथा जो अशुद्ध भावों से आई हैं वे पापाश्रव हैं। जो द्रव्य वर्गणायें आश्रवित हुई हैं उनका जीव प्रदेशों में दूध पानी की तरह मिल जाना बंध है। परिणामों के अनेक भेद हैं उनमें संक्लिष्ट परिणामों के पाँच भेदों को लिए हुए होते हैं। संक्लिष्ट परिणाम तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर इस प्रकार के होते हैं। मिथ्यात्व का सहयोगी अनंतानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों सहित जो परिणाम होते हैं उनको तीव्रतम संक्लिष्ट परिणाम कहते हैं। अप्रत्याख्यान कषायों युक्त जो संक्लिष्ट परिणाम होते हैं उनको भी संक्लिष्ट तीव्र तर कहते हैं प्रत्याख्यान की चौकड़ी उदय में होने वाले परिणामों को तीव्र कहते हैं तथा संज्वलन कषाय के उदय में होने वाले परिणामों को मंद कहते हैं तथा नव कषायों के उदय में जो मंदतर संक्लिष्ट परिणाम होते हैं। इन पाँचों के भी उत्तम मध्यम और जघन्य के भेद से तीन तीन प्रकार होते हैं। इन परिणामों में से तीव्रतर, तीव्रतम ये दोनों संक्लिष्ट परिणाम पाप मूलक हैं तथा पापाश्रव के कारण हैं। तीव्र में पुण्य पापाश्रव तथा मध्य मे जघन्य में पुण्याश्रव होता है क्योंकि परिणामों की ही विचित्रता है अपने परिणाम ही तो बंध के कारण हैं। इसलिए आश्रव बंध के पीछे पुण्य और पाप का कथन किया गया है। कर्माश्रव के कारणों को रोक देना ही संवर है। संक्लिष्ट परिणामों में प्रवृत्ति कान होना यह संवर है। मिथ्यात्व का संवर सम्यक्त्व से तथा असंयम का संवर संयम से कषायों का संवर दश धर्मों से तथा प्रमादो का संवर शीलों से तथा समितियों से योगों का संवर गुप्तियों के पालने से तथा परीषहों के जीतने से संवर होता है। जिस प्रकार मोरियों में होकर तालाव में पानी आता था तब उन मोरियों में डाट लगा देने पर पानी रुकता जाता है। पानी का रुकना ही संवर हैं। जिनके द्वारा कर्मो का आश्रव होता था उनको रोक देना ही संवर है। एक देश संचित कर्मो का क्षय होना ही निर्जरा है निर्जरा भी दो प्रकार की होती है सवि-पाक; अविपाक। जो कर्म अपना तीव्र तीव्रतर तथा मद मन्दतर फल देकर खिर जाते हैं उनको सकाम निर्जरा कहते हैं। जिन कर्मों के उदय का काल नहीं आया है उनको उदय में लाकर नष्ट कर देना यह अकाम निर्जरा है इसको अविपाक निर्जरा कहते हैं यह निर्जरा प्राय: करके योगी ध्यानी संयमी साधुओं के ही होती है क्योंकि वे तप के व ध्यान के प्रभाव

से कर्मों को शीघ्र ही उदय में लाकर नष्ट कर देते हैं तथा उदीरणा करके क्षय कर देते हैं। जब सव कर्म द्रव्य कर्म भाव कर्म तथा नो कर्मों का क्षय हो जाता है तथा चार प्रकार के बन्धन से मुक्तात्मा हो जाता है तव मोक्ष होता है। इस प्रकार पदार्थों का जैसा स्वरूप है वह संक्षेप से कहा गया है इनको निश्चय कर श्रद्धान कर ना ही सम्यक्त्व है। ६२।।

सप्तत्त्व नवपदार्थ षट् द्रव्यास्ति काय पंच सास्वत्
आगमोपदिष्टैव विहाय मलानि श्रद्धानं ।।६३।।

पहले श्लोक में नव पदार्थ कहे जा चुके सात तत्व जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्व हैं। छह द्रव्य हैं जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इन छहों द्रव्यों में से काल द्रव्य को छोड़कर शेष पांच अस्तिकाय हैं। ये पांचों द्रव्य शरीर के समान वहुप्रदेशी हैं इसलिए इनको अस्तिकाय कहते हैं इनका स्वभाव जानकर जैसा कहा गया है वैसा ही श्रद्धान का होना सो सम्यक्त्व है अथवा आत्मा में जो रुचि होती है वह ही सम्यक्त्व है। पहले कहे गये हैं उनका यथार्थ रूप जानकर श्रद्धान का होना सो सम्यक्त्व है आगे कहे गये हैं मलों का त्याग होना आवश्यक है आठ मद, आठ शंकादिक दोष, तीन मूढ़ता छह अनायतन तथा सात व्यसन और भय ये सम्यक्त्व के मल दोष हैं जहां ये मल दोष होते हैं वहाँ अन्य को तो वात क्या सम्यक्त्व की स्थिति नहीं रहने देते हैं न इनके रहते सम्यक्त्व होता ही है। इसलिए मलों का त्यागकर श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है।६३।।

निश्चय नय से अपने आत्मा में जो रुचि होतो है वह ही सम्यक्त्व है।

श्रद्धानं खलु आत्मनि भूत भविष्य संयुक्तः।।
सांप्रतंन विनश्यति ज्ञानदर्शने मा नित्यम् ।।६४।।

यह मेरा आत्मा अनादि निधन है न कभी पहले ही मरा था न अव ही विनाश हो रहा है न आगमी काल में विनाश होगा वह सव द्रव्यों से भिन्न दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग सहित है और शाश्वत है। अविनाशी है। जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम गोत्र और अंतराय ये द्रव्य कर्म मेरी आत्मा में नहीं रहते हैं न मेरी आत्म रूप ही कदापि हो सकते हैं। वे कर्म जड़ द्रव्य हैं। वे चेतना से रहित तथा मेरे आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं। मेरे आत्मा में इनका अत्यन्ताभाव है भय तथा अन्य प्राणास्पद वस्तुओं का तथा अन्य कोई हास्यापद मिलने पर भी जिसमें चलमल नहीं होता है तथा दुखमल उपसर्ग आने पर भी आत्म श्रद्धान से चलायमान नहीं होना यह सम्यग्दर्शन है। यह दर्शन मोह की तीन व चरित्र मोह की चार इन सात प्रकृतियों का अत्यन्ताभाव होकर पर होता है। ये सव प्रकृतियां कर्म जनित हैं उनका ही विनाश है यह शरीर और शरीर की वालावस्था यौवनावस्था वृद्धावस्थायें हैं वे सव शरीर के साथ हैं मेरे आत्म स्वभाव से भिन्न हैं। मेरे आत्मा का मरण नहीं हैं ये विनाश होने वाली तो विकारी पर्यायें हैं तथा पर्यायों की उत्पत्ति और विनाश नियम से होता ही रहता है। ये राग द्वेष भी मेरे आत्म स्वभाव नहीं हैं ये सव जड़ और चेतन के संयोग से उत्पन्न हैं ऐसा गाढ़ श्रद्धान का होना निश्चय सम्यक्त्व है। जो विकारी सव द्रव्यों के संयोग से रहित आत्मानुभूति रूप जो श्रद्धान है वह निश्चय सम्यक्त्व है। अथवा वीतराग क्षायक सम्यक्त्व

कहते हैं।६४।।

देवानां च स्वरूपैव श्रद्धानं भक्ति ऐधते।
त्रिमूढा पोढमष्टांग सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।।६५।।

जैन धर्म में नव देवता प्रसिद्ध हैं वे इस प्रकार हैं अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और मुनि जिन चैत्य चैत्यालय जिन धर्म जिनगय ये नव देवता हैं इनमें भक्ति का होना तथा भक्ति सहित रुचि का होना तीन मूढ़ता रहित अष्टसंकादिक दोप रहित श्रद्धान का होना ही सम्यक्त्व है। इन नव देवताओं का यथार्थ स्वरूप जानना व जानी हुये है उसी प्रकार से श्रद्धान का होना सो ही सम्यक्त्व है। जब आप्त देव के स्वरूप व गुणों को ज्ञान उन गुणों में जो अनुराग हो तथा उसी रूप से अपने स्वभाव में अनुभव अथवा अनुभूति का होना। अपने आत्मा को तीन प्रकार जानेगा और जानकर उस आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान होगा तब सम्यक्त्व अपने आत्मा में ही प्रकट होगा। आत्मा तीन प्रकार का है परमात्मा अंतरात्मा और वहिरात्मा इनमें वहिरात्मा को जान जव त्याग करेगा और अन्तरात्मा वनकर निरंतर अरहंत सिद्ध स्वरूप का अपने में (देखेगा) परमात्मा वनने की चेष्टा करेगा व उधर परमात्मा को लक्ष्य वनावेगा तव यथार्थ श्रद्धान की प्राप्ति होगी वही सम्यग्दर्शन है।

आप्तागम सिद्धाश्च आचार्योपाध्याय सर्व साधवः।
जिनधर्मश्चैत्यश्च चैत्यालयञ्च नव देवताः ।।६६ ।।

अरहंत भगवान तथा उसके द्वारा कहा गया आगम जिनवाणी है जिसका कोई उलंघन नहीं कर सकता है परस्पर विरोध से रहित है। सिद्ध भगवान जिन्होंने अपने घातियाँ और अघातिया कर्मों का नाश कर जो निकल परमात्मा वन गये हैं वे सिद्ध भगवान कहलाते हैं। तथा जो लोकाग्र में निवास करते हैं। वे सिद्ध परमात्मा आठ कर्मों के क्षेय होने पर जिनमें आठ गुण प्रकट हुए हैं वे आत्मा सिद्ध कही जाती हैं। आचार्य जो मुनियों को व श्रावकों को शिक्षा और दीक्षा देते हैं तथा दश धर्म वारह तप के तपने वाले होते हैं छह आवश्यक तीन गुप्तियों के पालन करने वाले होते हैं तथा पंचाचार इन गुणों से युक्त होते हैं वे आचार्य परमेष्ठी हैं। तथा जो आगम का उपदेश शिष्य वर्ग को देते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी एकादश अंग तथा चौदह पूर्व के शास्त्र के पारगामी होते हैं। जो मौन सहित रहते है वे मुनि है मुनिराज एकाग्रचित के धारक मोक्ष के साधन में लवलीन रहते हैं तथा आगम परिग्रह से रहित होते हैं तथा वे पंचमहाव्रत पांच समिति पंचेन्द्रिय निरोध छह आवश्यक तथा केशलुंचन सात शेष गुणों सहित होते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं। जिन धर्म समीचीन हैं जो सब प्राणियों का हित करने वाले हैं जीवों को दुःखों में से निकालकर सतत सुख में रखता हैं अथवा पहुँचाता है। यह धर्म आप्त का कहा हुआ है। जिन चैत्य जो वीतराग सर्वज्ञहितोपदेशी अरहंत भगवान समवसरण में विराजमान एक हजार आठ चिन्हों से युक्त होते हैं। उनकी मूर्ति तदनुरूप वनवाकर स्थापना करना। जहाँ जिस भवन में वह स्थापित कराई जाय उसको चैत्यालय कहते है। जो आठ प्रातिहार्यों से युक्त प्रतिमा के आलय को कहिये मन्दिर जिसको मिथ्यादृष्टि लोग दूर से देख मिथ्यात्व रूप भावना को छोड़कर सम्य-

त्त्व को प्राप्त हो जावे वे नव देवता हैं ये कहे हुए ही अराधने योग्य हैं इनसे भिन्न देव अराधने योग्य नहीं हैं ॥९६॥

आगे अरहंत का स्वरूप कहते हैं ।

आप्तेनोऽष्टादशदो वीतराग: सर्वज्ञो हितकराः ।
धर्मोपदिष्टासैव नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥९७॥

जिन्होंने कर्मों की ६३ प्रकृतियों को नाशकर दिया है। वे प्रकृतियां ज्ञानावरण की पांच दर्शनावरण की ९ मोहनीय की २८ अंतराय की पांच तथा देव नरक त्रिर्यच ये तीन आयु कर्म की शेष तेरह नाम कर्म की। इनका नाश होते ही भगवान अरहंत परमेष्ठी लोक तथा अलोकाकाश सहित सब पदार्थों को अपने ज्ञान से जानते हैं और देखते हैं वे ही सर्वज्ञ हैं दर्शन मोह क्षय हो जाने के कारण ही वे वीतराग हैं वे ही जीवों को सन्मार्ग कुमार्ग के यथार्थ स्वरूप का उपदेश देकर कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग का ही प्ररूपण करते हैं इसलिये सब प्राणियों का हित करने वाले हैं वे ही अठारह दोषों से मुक्त हैं। यदि इससे भिन्न कोई होगा वह कदापि आप्त नहीं हो सकता जिन कर्मों के उदय रूप जन्म मरण भूख, प्यासादि दोष हों और अपने को सर्वज्ञ मानने का दावा रखते हैं वे मिथ्या, दृष्टि हैं। मिथ्यादृष्टि मनुष्य पागल के समान कभी कुछ कहता है कभी कुछ व अपने वचन से आप स्वयम् ही वाधित हो जाता है पूर्व में कहे हुए का उत्तर में आप ही विरुद्ध बोलने लग जाता है यह वीतरागी सर्वज्ञ न होने के कारण ही उसका ज्ञान यह नहीं जान सकता है कि मैंने कल क्या कहा था आज क्या कह रहा हूं। इसी कारण से बुद्ध महात्मा ने आत्मा को क्षणिक मान लिया कि जो आत्मा सुवह वोली थी वह वदल गई वह दूसरे क्षण में अन्य प्रकार से बोल रही है उनके वचन से स्वयम ही वाधित होते हुए भी देखे जाते हैं इस लिए वे सर्वज्ञ नहीं। परन्तु सर्वज्ञ के मत में पूर्व अन्य हो उत्तर में अन्य हो ऐसा विरोध उत्पन्न नहीं होता है ॥९७॥

अठारह दोषों को कहते हैं

क्षुत्तृट् भयश्च रोगं रागमोहश्चिन्ता जरारूजा ।
स्वेदं खेदो मदोरति र्जन्मोद्वेगौ विस्मय निद्राः ॥९८॥

भूख का लगना, आहार की प्राप्ति के लिए यत्र तत्र भ्रमण करना, कवलाहार करना, प्यास के लगने की आकुलता से पानी की खोज करना, भय का लगना, जिस भय के कारण लाठी त्रिशूल तलवार इत्यादि आयुधों का धारण करना, तथा दूसरों की शरण खोजना तथा किला कोर्ट खाई सुरंग गुफ़ा इत्यादि में छुपने का प्रयत्न होना, शरीर में मूल व्याधि भगंदर अतिसार कुष्ठ सुजाक इत्यादि रोगों के हो जाने पर वैद्य की खोज कर उसके पास जाना और इलाज करवाना औषधि करवाना, परवस्तु में प्रेमकरना राग से अपनी मानना और उनके संरक्षण का चिंतवन करना। अशुभ वस्तुओं के मिलने पर उनका परिहार करने का विचार करना चिन्ता है। वृद्धा अवस्था को प्राप्त होना जरा है। क्रोधमान कषाय आना तथा वैर विरोध करना व नीचा दिखाना व हानि पहुँचाने का प्रयत्न जारी रखना। स्वेद शरीर से पानी का निकलना जिससे मानव के शरीर में आकुलता वढ़ जाती है। इष्ट

वियोग अनिष्ट संयोग होने पर जो दुख होता है वह खेद है। जो दूसरों को अपने से हीन समझते हैं अपने को ज्ञाता ष्टा समझते हैं वलवान विवेक और रुपवान, धनवान, कुलवान मानते हैं यह मद है। पर वस्तुओं को अपनी मान प्रेम करना यह प्रीति है। पूर्व पर्याय के वनाश होकर नयी पर्याय का धारण करना यह जन्म है तथा वर्तमान शरीर का विनाश होना मरण है। जन्म मरण में आश्चर्य मानना अथवा इष्ट वस्तु के प्रति अभाव में खेद तथा शोक करना कि हाय मेरी वस्तु विनष्ट गई अव क्या करूं कैसे पाऊं यह विस्मय है। निद्रा का आना विछौना पलंग चारपाई अथवा भूमि पर सो जाना यह निद्रा है। ये सव मोहनीय कार्य व ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम और अंतराय कर्मों के उदय में ही होते हैं। परन्तु आप के इन सव दोषों का अभाव हो गया है।

विशेषार्थ – असाता वेदनीय कर्म के साथ में मोहनीय कर्म का उदय होने पर पेट खाली होने पर या इष्ट भोजन दिखाई देने पर भूख लगती है व शरीर में निर्वलता सी आती है वह क्षुधा है क्षुधा से होने वाली पीड़ा सो क्षुवा है केवली भगवान के मोहनीय कर्म का पूर्ण रूप से नाश हो गया है। इसलिए वेदनीय कर्म क्षुधा उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है। वेदनीय कर्म तथा मोहनीय कर्म की प्रकृति रति और अरति के साथ ही परद्रव्य जनित सुख व दुःख देने की सामर्थ्य होती है। जव अरहंत केवली के मोह कर्म का पूर्ण क्षय हो गया है तव रति और अरति किस आधार से रह गई ? नहीं वे तो क्षय हो गई इस लिये प्रभु वीतरागी अपने आनन्दमय निज स्वार्थ में लीन हो गये। तथा अनन्त सुख रूप रस का आस्वादन करने लग गये। तव उस निजात्म अलौकिक अनुभव स्वादी को अविनाशी सुख की तरफ से हटाकर क्षुधा की वेदना करना और फिर क्षुधा का दुख मिटाकर साता का होना यह वात न्याय संगत नहीं है अन्तराय कर्म के नाश होने से अनन्त वल के धारी के निर्वलता कैसे हो सकती है। यहां पर कोई मतावलम्वी कहते हैं कि केवली भगवान के कवलाहारी होते हैं। इसका उत्तर देते हुए कहते हैं जव केवली सर्वज्ञ हैं उनके ज्ञान में तो सव वस्तुयें दिखाई देती हैं व जानी जाती हैं वे जव भिक्षा के निमित्त किसी गृहस्थ के यहाँ जावेंगे तो गृहस्थ के द्वारा किये गये सव आरम्भ ज्ञात हो जावेंगे तव अन्तराय कर लौट जावेंगे। दूसरी वात यह है मोहनीय कर्म का सर्वथा अभाव हो गया है तव भोगान्तराय और लाभान्तराय का भी क्षय हो गया है जिससे अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त वीर्य का प्राप्त होना किस कामका कि भूख प्यास लगे और निर्वलता दिखाई जाय। जव साधु आहार के लिये ग्राम नगर में जाते हैं तव वे श्रावक के घर जाकर अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तथा निमित्त ज्ञान का प्रयोग नहीं करते हैं तव विचारो कि केवली भगवान कवलाहार कैसे करते हैं जव कि आगंतुक उत्पादन आरम्भिक दोप तो प्रत्यक्ष होंगे इसलिए केवली भगवान के भूख की वेदना नहीं होती है।

साधारण मनुष्यों के समान आहार अर्थात् चार प्रकार के भोजन में से किसी का भी ग्रहण केवली भगवान के नहीं हैं। उनका शरीर परम औदारिक होता है जिसकी स्थिति नोकर्म वर्गणाओं के ग्रहण से हो जाती है। अनंत चतुष्टय के (धारी) अधिपति को क्षुवा से दोप लगाना उनके अनंत चतुष्ट्य में वाधा डालना है। इसलिए केवली स्वाभाविक केवल

ज्ञान ही सुख रूप में परिणमन करता है वह ही उनकी अनादि काल की गंभीर क्षुधा को समय समय मेटरहा है। असातावेदनीय कर्म के उदय रूप तीव्र तीव्रतर तीव्रतम उदय के वस से पीडा का होना सो प्यास है वह भी केवली के नहीं है इसके पान करने वाले को क्षणिक प्यास को वुझाने वाले जल की इच्छा कैसे हो सकती है। इसलोक भय, परलोक, भय अनरक्षक भय, अगुप्ति भय, मरण भय, वेदना भय, आकस्मिक भय ऐसे सात प्रकार के भय हैं। सो भी अरहंत के शरीर भोग इन्द्रिय जनित सुख तथा धन, धान्य कुटम्व, घर, जमीन, सोना चाँदी आदि के प्रति किसी प्रकार की मूर्छा नहीं है। क्योंकि केवली भगवान ने दोनों प्रकार के मोहनीयकर्म को नाश कर दिया है इसलिए जिनेन्द्र भगवान सव प्रकार के भयों से रहित हैं और निर्भय हैं। क्रोधकषाय के तीव्रउदय में रहने पर ही जो परिणाम होते हैं उनको रोष कहते हैं। अर्थात् क्रोध है वह भी क्षमाशील प्रभु के नहीं हो सकता है क्योंकि प्रभु ने अपनी पूर्व अवस्था अनिवृत करण गुणस्थान के पहले भाग में पूर्ण रूप से क्षय कर दिया है। राग भी दो प्रकार एक प्रशस्त राग दूसरा अप्रशस्त राग, शुभ अशुभ। दान देना पूजा करना गुरुओं की सेवा वैयावृत्ति करना देश सयम सकल संयम का धारण करना तथा गुप्ति समितियों का पालन करना तीर्थ वंदना स्तवन करना इत्यादि शुभ कर्मों में प्रवृतिका होना प्रशस्त राग है। अप्रशस्तराग स्त्री कथा राज कथा भो जन कथा हिंसादान अपध्यान पापोपदेश दुःश्रुति पढ़ना सुनने में कौतूहल रूप परिणामों का होना अथवा उनकी कथा वार्ता करने के लिए चित्त में कौतूहल रूप हो उसमें आनंद मानना सो अप्रशस्त राग है। सो वे दोनों ही प्रकार के राग अरहंत भगवान के नहीं हैं क्योंकि प्रभु का राग मोक्ष प्राप्त करने में उपयुक्त है। जो चार प्रकार का संघ ऋषि मुनि यति अनगार इनकी तरफ वात्सल्य भाव का होना सो मोह है। सो आत्मा के मोह के परसंघ कृत मोह का संभवं पना नहीं हो सकता। शुभ विचार करना सो प्रशस्त चिन्ता है वह धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान रूप है अशुभ विचार करना सो अशुभ चिन्ता आर्त्त रौद्र ध्यान रूप है सो भगवान के स्वरूप का निश्चलता के होने से इस चिन्ता का प्रवेश नहीं है। यद्यपि शुक्ल ध्यान कहा जाता है परन्तु यह कथन मात्र उपचार से है। श्रीवीतरागी अनंत सुखी के चिन्ता होने से विक्षेप पड़ सकता है। सो प्रभु के चिन्ता नहीं है। इसलिए उनके सुख में विघ्न नहीं है। निर्भय व मनुष्यों के औदारिक शरीरों का आयुकर्म के झरने के निमित्त से निजरा हो जाना अर्थात् वूढ़ा हो जाना सो जरा है अनंतवल के धारी कोटि सूर्य की प्रभा से अधिक प्रभा के धारी के शरीर में जराका स्वप्न में भी प्रवेश नहीं हो सकता।अरहंत केवली के नख केश वढते ही नहीं हैं वायु कफ पित्त की विपमता से पैदा हुई शरीर में वाधा का होना ही रोग है सो जिनको परम औदारिक महासुन्दर निश्चलशान्त शुक्ल ध्यानाकार गात्र में किसी तरह से भी उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि अन्तसहित मूर्तिक इन्द्रियों कर चिंहित हैं आत्मक जाति से विलक्षण विजातीय नर नारकत्रियञ्च देवगति सम्बन्धी विभाव व्यञ्जन पर्याय अर्थात् औदारिक वैक्रियक और आहारक शरीर का ही नाश अर्थात् आत्मा के सूक्ष्म कार्माण शरीर से अलग हो जाए सो मरण है। सो प्रभु के परम औदारिक देहका छूटना कार्माण देह के साथ-साथ हो जाता है। इसलिए उनके संसारी जीवों

की भाँति परवा नहीं है। संसारी जीवों की पर्यायों का छूटना है सो ही मरण है। उत्तर पर्याय की अथवा विभाव व्यञ्जन पर्याय को उत्साहित होना सो ही जन्म है। मरण जन्म कर सहित है तथा स्वाधीन आत्मा का अव किसी भी देह में उपजना नहीं है इसलिए भगवान केवली के जन्म मरण की वेदना व्यापती नहीं। अशुभ कर्म के उदय में आने से शरीर में परि-श्रम के होने से दुर्गंधमय जलविन्दुओं का प्रकट होना सो स्वेद है अर्थात् पसीना है सो स्वरूपा नंदी परम शुद्ध शरीर धारी के संभव नहीं है। जो वस्तु अपने को प्रिय है उसके अलाभ में जो रंज करना सो खेद है सो परिग्रह तथा मूर्छा रहित स्वरूपानंदी स्मरणी के खेद का प्रकाश कभी भी सम्भव नहीं हो सकता है। सहजकविता की चतुराई संपूर्ण मनुष्यों को सुनने में आनंद हो ऐसी वचन की चतुराई पटुता तथा मनोज्ञशरीर उत्तमकुल अतुलवल अनुपम ऐश्वर्य आदि के होने से आत्मा के भाव में अहंकार का होना सो मद है ऐसा क्षायक सम्यक्त्व धारी शरीरादि पर द्रव्य परिग्रह त्यागी तथा निजात्मा के उत्कृष्ट मार्दव गुण में आसक्त किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता है मनको प्यारी वस्तुओं में गाढ़ प्रीति का होना सो रति है शिवनारी में रति करने वाले परम वीतरागी संकल्प विकल्प के धारक मन के अभाव को रखने वाले भगवान को अपनी अनुभूति में रति है। परन्तु इससे भिन्न किसी भी द्रव्य व पर गुण व पर पर्याय से प्रीति नहीं है। परम समरसी भावना से दूरवर्ती पुरुषों के कभी किसी अपूर्ववस्तु को जिसको कभी नहीं देखा है उसके देखने पर विस्मय अर्थात् आश्चर्य का होना सो विस्मय है अर्थात् आश्चर्य है। तीन लोक तथा आलोक की त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्यों की सर्व अवस्थाओं में होने वाली क्रियाओं को केवल दर्शन और केवल ज्ञान से एक ही समय में रखते हैं और जानते हैं ऐसा कोई पदार्थ और पदार्थ की होने वाली पर्याय शेष नहीं रह जाती कि जिसको अपूर्व कहा जाय प्रभु के अपूर्व वस्तु ही नहीं तव प्रभु के विस्मय नामका दोष भी नहीं हो सकता है। केवल शुभ कर्मों के उदय में आने से देवगति में केवल अशुभ कर्मों को उदय में आने पर नरक गति में मायाचार के करने से त्रियंच गति में पुण्य और पाप समान होने पर मनुष्य गति में जीवों को शरीर की प्राप्ति का होना सो जन्म है, सो प्रभु ने चारो गति नाम कर्म को पहले ही क्षय कर दिया अथवा कारणों का अभाव हो जाने पर कार्य का भी अभाव हो जाता है इसलिए केवली भगवान के देव आयु नरक आयु त्रियंच आयु मनुष्य आयु का वंध नहीं है। प्रत्येक देव आयु वंध के कारण से राग संयम सयमा सयम अकामनिर्जरा व वालतप आदि के भाव ही है न जिनेन्द्र श्रेणी के नीचे स्थित है जहां ही देव आयुका वंध होता है न स्वामी के मोह कर्म का अत्यन्ताभाव होने के कारण नरक आयु वंध के कारण वहु आरम्भ और परिग्रह संवन्धी भाव हैं वीतरागी होने से त्रियंच आयु वंध का कारण भाव नहीं है अटल सुख स्वादक के अन्य आरम्भ अन्य परिग्रह के भाव भी नहीं उनके न साधारण मार्दव साधारण सम्यक्त्व। इसलिए प्रभु जन्म व अवतार सम्वन्धी दोष से रहित हैं। दर्शनावरण कर्म के उदय से ज्ञान ज्योति का अचेतन सा हो जाना ही निद्रा है श्री अरहत परमात्मा ने दर्शनावरण कर्म का पहले ही क्षयकर दिया है इसलिए निरंतर निजस्वरूपावलोकन में जाग्रत हैं। एक समय भी अचेतन के समान होते ही नहीं है। इष्ट

चेतन अचेतन अथवा मिश्र पदार्थों क वियोग प्राप्त होने पर घबराहट भाव का होना सो उद्वेग है अर्थात् आकुलता है सो अरहंत परमात्मा ने समस्त पदार्थों में समरसी भाव का आलम्बन किया है इससे यह संम्भव नहीं है इत्यादि अठारह दोष हैं। इन दोषों से समस्त संसारी तीनों लोकों में जन्ममरण करने वाले जीव जकड़े हुए हैं। अथवा संसारी इन दोषों युक्त हैं। जितने राजा, राणा, बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण, इन्द्र, धरमेन्द्र गौरी गोधारी यक्ष यक्षिणी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुहा दत्यादि। जितने देवदेवी मनुष्य त्रियंच नारकी हैं वे सब इन दोषों से युक्त हैं इन कहे गये अठारह दोषों में से एक भी दोष हो तो सब ही दोष हैं जब तक ये दोष जीवों के साथ रहते हैं तब तक ही संसार में जन्म मरण रह जाता है तथा सब प्राणी ही इन अठारह दोषों से पीड़ित किये जा रहे हैं। ये कहे गये दोष अरहंत प्रभु के नहीं हैं।

आगे पुनः अरहंत का विशेष रूप कहते हैं।

घाति कर्मभ्योविमुक्तः केवल दर्शन ज्ञानवीर्यमयाः।
स क्षायक सम्यक्त्वे श्रीपत्यरहंता भवन्ति ॥६९॥

जिन्होंने अपने विरोधी (बैरी) जो अनंत संसार को बढ़ाने वाले बीज वृक्ष की परंपरा चलाने वाले सर्व घातिया कर्मों को अपने स्वरूप से जुदा कर दिये हैं। (अथवा क्षय कर दिये हैं) जिस प्रकार बीज के जल जाने पर वृक्ष की परपरा बंद हो जाती है। उसी प्रकार कर्मों के क्षय हो जाने पर ससार के परिभ्रमण का बीज क्षय हो गया है सो क्षायक सम्यकत्व क्षायकज्ञान, क्षायक दर्शन, क्षायक लाभ, क्षायक भोग, क्षायक उपभोग, क्षायकवीर्य इन अनंत गुणों से युक्त होते हैं। यह ही अरहंत भगवान की अंतरंग लक्ष्मी है अथवा जो मोक्ष लक्ष्मी के साथ विवाह करने को सन्मुख है अथवा जिनके विवाह मंडप कैसा है देवों ने रचा है वह मंडप कैसा है आगे प्रथम कोट और चार तोरण दरवाजे बने हुए हैं तथा आगे चलते ही प्रत्येक दरवाजे के सामने विशालकाय एक-एक मानस्तम्भ है। जिस प्रकार विवाह मंडप में चार खम्भा होते हैं उसी प्रकार मान स्तम्भ बने हुए हैं जो मानी पुरुषो के मान को भंग कर देते हैं अथवा जिनके दर्शन करने से मान नष्ट हो जाता है। उनके आगे कोट कोट के भीतर चैत्यालय बने हुए हैं उनके आगे पुन. कोट बना हुआ है उसमें नाट्यशालाये बनी हुई हैं उसके आगे कोट है जिसमें वेदिकायं मणियों से मण्डित हैं अथवा रत्नों की बनी हुई हैं उससे आगे कोट हैं उसमें नाना प्रकार की फुलवाड़ी फुव्वारे लगे हुए हैं। उसके बाद कोट है उसमें अनेक बाग बावड़ियां स्वच्छ निर्मल जल से भरा हैं और तालाब हैं उससे आगे कोट है जिसमें ध्वजाये विराजमान हैं अनेक चिन्होवाली व अनेक रंगवाली हैं। उनके बाद पुनः कोट है उसमें फूल के बगीचे बने हुए हैं जहां पर भ्रमरगुंजार कर रहे हैं वे ऐसे लगते हैं कि मानो भगवान के विवाह महोत्सव के गीत गा रहे हो यह प्रतीत सूचना कर रहे हों कि अब विवाह की शुभ लगन आ चुकी हो उसके बाद कोट है और उस कोट में बारह सभायें हैं उनमें भवन वासी देव दूसरी में व्यन्तर तीसरी में ज्योतिपी देव चौथी में कल्पवासी देव पांचवी में व्यंतरणी देवियां ये भवन वासी देवियां ज्योतिपी देवियां तथा कल्पवासी देवियां। एक में मुनिराज एक में आर्यका और श्राविकायें तथा एक में

मनुष्य तथा एक में त्रियंच प्राणी बैठे हुए हैं उनके मध्य में तीन कटनी की वेदी वनी होती है जो अनेक, सुवर्ण रत्नों से मण्डित कमलाकार होती है।

अथवा कमलाशन वना हुआ होता है उस पर उससे चार अंगुल अंतराल से आकाश में अरहंत भगवान विराजमान होते हैं। गंधर्व देव मण्डप में वाजे वजाते हैं इन्द्र इन्द्राणी तांडव नृत्य करते हैं। तथा गंधर्व भगवान के विवाह मण्डप के विषय में अनेक प्रकार से गुण गान करते हैं। तथा भगवान के सर्वांग से दिव्य ध्वनि निकलती है वारह सभाओं में उपस्थित देव मनुष्य और त्रियंच प्राणी अपनी-अपनी भाषा में सुनते रहते हैं। सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष का अभाव होता है। परस्पर विरुद्ध प्रकृति के धारक उस विरोधता व क्रूरता को छोड़ कर एक साथ प्रेम से बैठते हैं। सव ऋतुओं के फल फूल वृक्षों की शोभा वढ़ाते हैं। आकाश में से देव पुष्पों की (फूलों की) वर्षा करते हैं। मेघ कुमार जाति के देव सुगंधित जल से सिंचन कर (वर्षा करते हैं) पवन कुमार देव सभा मण्डप व विहार करते समय मार्ग की सफाई करने में लगे रहते हैं। तथा कुछ देव भगवान के विहार काल में कमलों की रचना आगे-आगे करते जाते हैं (इस प्रकार वाह्य लक्ष्मी के) भगवान के पीछे जो भमंडल होता है वह इतना प्रकाशमान रहता है कि जिसके प्रकाश को देख कर करोडों सूर्य भी लज्जित हो जाते हैं। दुन्दुभी वाजे वजाते हैं। इस प्रकार वाह्यलक्ष्मी तथा अंतरंग लक्ष्मी के स्वामी श्री अरहंत भगवान दुलहा वनकर परमऔदारिक शरीर से सुसज्जित हैं। भगवान का जो ज्ञान है वह लोकालोक को जानने वाला है अथवा श्रेयस्कर वना रहता है। जितने ज्ञेय पदार्थ है उन सवको भगवान का ज्ञान जानता है. तथा दर्शनोपयोग से देखते हैं और जानते है। वही सर्वज्ञ सर्व व्यापी हैं। तथा मोह कर्म के सर्वथा अभाव हो जाने के कारण ही वे वीतराग हैं। तथा इच्छाओं का अभाव हो जाने से वे ही यथार्थ उपदेष्टा हैं तथा सव जीवों का कल्याण करने वाले अरहंत हैं अथवा पहले कहे गये अठारह दोषों से रहित हैं वही अरहंत हो सकते हैं अथवा तीर्थंकर हो सकते हैं इससे भिन्न नहीं हो सकते। उनके दोनों तरफ दाईं वाईं तरफ वत्तीस-वत्तीस चामर यक्ष कुमार देवों के द्वारा ढोरे जा रहे हैं तथा मस्तक के ऊपर तीन छत्र शोभा दे रहे हैं जिनका प्रकाश अथवा वे कह रहे हैं कि ये भगवान तो तीन लोक के स्वामी हैं। अव वे विवाह मण्डप में ही विराजमान हैं और विवाह मंडप में श्री नामकी कन्या पाणिग्रहण के लिए आ खड़ी हुई तव सव लोग सभा के कहने लगे कि हे सुन्दरी अभी कुछ दिन और ठहर जाओ हमें कुछ और लाभ लेने दो परन्तु वह नहीं मानी तव वर माला डाल दी भगवान ने योग निरोध किया जिससे शेष वचे हुए अघातिया कर्मों का नाश कर दिया इधर मण्डप भी शांत हो गया और भगवान तो अरहंत अवस्था को छोड़कर निकल परमात्मा वन गये।

णमो अरहंताणं इत्यादि ॥९९॥

आवापराविरोध मनुलध्य माप्तैः प्रक्षिप्तैः मूलं ॥
प्रमाणनय विलसितेऽदृष्टेष्टानेकान्तात्मकम् ॥१००॥

जो श्रुत आगम शास्त्र सर्वज्ञ के मुख से कहा हुआ अनेकान्तात्मक है जिसमें पूर्व

और उत्तर में विरोध उत्पन्न नहीं होता है। वादी प्रतिवादी भी जिसका उलंघन नहीं कर सकते। जो अन्य मिथ्या दृष्टियों के द्वारा रचे गये एकान्त का नाश करने वाली है। जिसका वादी प्रतिवादी भी आगम अनुमान प्रमाण नयों से जिसका खण्डन कभी नहीं कर सकते हैं जो प्रमाण रूप है और प्रमाणाभाष का संधारक है जो एकान्त पक्ष रूप नयों से रहित है और अनेकान्त रूप नयों से युक्त है। जो परस्पर एक नय दूसरे नय से सम्बन्धित है जो संशय अनध्यवसाय विपरीतरूप भ्रम से रहित है तथा इन तीनों को नाश करने वाली हो वही शास्त्र श्रेष्ठ है। जो पूर्वपर के विरोध का मंथन करने वाला है जो अनेकान्त रूप तत्वों का कथन करता है जिसमें परस्पर विरोधी धर्मों का व गुणों के रहते हुए भी विरोध को नहीं प्राप्त होता हो वही सच्चा श्रुत है पूर्वापर स्ववचन से जिसमें बाधा उत्पन्न नहीं होती है अथवा विरोध नहीं पाया जाता है वही आगम शास्त्र है। जैसा अन्य मतावलम्बियों के मतों में पूर्वापर विरोध पाया जाता है वह विरोध सर्वज्ञप्रणीत श्रुत में नहीं पाया जाता है इसलिए पूर्वापर दोषों से रहित जो आगम है वही प्रमाणांश और नय है वे नय प्रमाण को छोड़ कर नहीं रह जाती है प्रमाण तो एक समुद्र है और उसमें तरंगे उठने वाली हैं वे नय है। अथवा प्रमाण समुद्र है नदियां नय हैं जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिल कर एक समुद्र के रूप हो जाती हैं उसी प्रकार अनेक नय मिलकर ही प्रमाण होता है। वे नय सब सापेक्षता को लिये हुए हैं वे परस्पर विरोध से रहित हैं यद्यपि परस्पर विरोध भी दिखाई देती हो तो भी एक दूसरे की पोषक हो वही यथार्थ है इससे विपरीत निरापेक्ष नय ही मिथ्यात्व कहलाती है। जो अविरोध रूप सत्यार्थ का प्रकाश करने वाला वीतराग का कहा हुआ आगमश्रुत ही सत्यागम है ॥१००॥

आगे सिद्ध भगवान का स्वरूप कहते हैं।

नष्टाष्ट कर्मनोकर्मान् सम्यक्त्वं ज्ञानं दर्शनं वीर्यं।
लब्ध्वा गुरुलघु क गुणाः लोकाग्र वाशिनश्चसिद्धाः ॥१०१॥

जिन्होंने अपने (ध्यान) आत्मध्यान के बल से व यथाख्यातचरित्र के बल से ज्ञानावरणादि आठों कर्मों को नाश कर दिया है तथा औदारिक वैक्रियक और आहारक इन तीनों शरीरों का नाश कर दिया है। तथा प्रकृतिबंध, स्थित बंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बध इन चारों का क्षय कर दिया है अथवा सब बंधों से रहित हो गये हैं। जिन्होंने क्षायक सम्यक्त्व क्षायक अनंतज्ञान, क्षायक अनंतदर्शन, क्षायक अनंत वीर्य, अगुरुलघु, अव्याबाध, सूक्षमत्व और अवगाहनत्व इन आठ गुणों को प्राप्त किया है वे सिद्ध भगवान लोक के अग्रभाग में निश्चल, अचल, विमल, अनुपम गुणों--सहित विराज रहे हैं। जो पंचपरावर्तनरूप मिथ्यात्व ज्ञान था उसका पहले ही नाशकर चौथे गुण स्थानवर्ती हुये और क्षायक सम्यकत्व के धारक हो गये चारित्र मोह जो चारों गतियों में बंध का कारण था ऐसे मिथ्यात्व असंयम का भी भगवान ने बारहवें गुण स्थान के पूर्व ही नाश कर दिया है। दशवें गुण स्थान के अन्त में नाश कर दिया है जो निर्मल ज्ञान में बाधा डालने वाला केवल ज्ञानावरण था। उसको (तथा केवल दर्शनावरण और अंतराय कर्मों का नाश) तथा आत्मा के केवल दर्शन को होने में बाधा डालने वाला जो केवल दर्शनावरण था तथा आत्मा को अनंत शक्ति को प्रकट होने में बाधक

कर्म था वीर्यान्तिराय इनका वारहवें क्षीणमोह नाम के गुणस्थान के अन्त समय में नाश कर दिया इसलिये भगवान के अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनत सुख प्रकट हुआ। जो आत्मा के अगुरु व लघु गुण का विरोधी नाम कर्म था उसको भगवान ने क्षय कर दिया वेदनीय गोत्र और आयु ये सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व अव्यावाधकत्व गुणों के घात करने वाले थे उनको भगवान ने चौदहवें गुण स्थान के अन्त में नष्ट कर दिया है इसलिए भगवान के सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व अव्यावाधकत्व अगुरुलघु गुण प्रकट हुआ है। इसलिए अरूपी हैं। इस प्रकार अनंत गुणों के धारक वे भगवान सिद्ध हैं ॥१०१॥

षट् त्रिंशतिगुणयुक्ताः धीरागं णगंभीरा ध्यानयागे।
सम्यक्त्व चारित्रेपरिस्थिताऽऽचार्यमां पान्तु सदा ॥१०२॥

जिन्होंने मुनिव्रत कोधारण कर अनेक प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन किया तथा प्रायश्चितग्रन्थों का अध्ययन कर लिया है जो शिष्यों के दोपों को समुद्र की तरह दोप रूपी पानी को पीजाते है वाहर नहीं निकलने देते हैं। तथा जो संघ के संचालक होने हैं स्वयं पंचाचारों को पालन करते हैं तथा दशधर्म बारह प्रकार के तपों को करते हुए तीन गुप्तियों का पालन परिपूर्ण रूप से करते हैं तथा छह आवश्यक क्रियाओं को पालन करते हैं। जो सम्यक् चारित्र में स्थित हैं। तथा जो धीर हैं गुणों में जो अत्यन्त गंभीर होते हैं। और जो नित्य ध्यान में स्थित रहते हैं तथा अंतरंग आत्मयोग में नित्य स्थित रहते हैं वे आचार्य परमेष्ठी हमारी रक्षा करें।

विशेष सम्क्यत्वाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार, उपचाराचार, तथा उत्तम क्षमा, उत्तम आर्जव, उत्तम मार्दव, उत्तमशौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य, ये दस धर्म हैं प्रोषघोपवास ओमोदर्य रसपरित्याग व्यविक्त, शैयाशन, काय क्लेश, व्रत परि संख्यान ये वाह्य और अंतरंग आलोचना प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युतसर्ग और ध्यान कायोत्सर्ग ये अंतरंग तप है छह आवश्यक समता स्तुति वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग ध्यान ये छह आवश्यक क्रियायें इनका नाम कृतकर्म भी है। मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति इनके धारक होते हैं उनको आचार्य परममेष्ठी कहते हैं। जो शिष्यों की शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित देते हैं।

अध्ययनं करोति च कारयन्ति च शिष्यानां।
एकादशांग पूर्वा.न सूत्राण्युपदेशकाः ॥१०३॥
अज्ञानतिमिरं व्याप्तं निराकुर्वन्ति भव्यानां।
पूर्वाचार्य कृमज्ञात्वोपाध्याय परमेष्ठिनः ॥१०४॥

जो ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों का नित्य अध्ययन करते हैं तथा अपने शिष्यवर्ग को वढ़ाते हैं तथा सूत्रों का अर्थ भली प्रकार से उपदेश करते हैं। जहां मिथ्यात्व अज्ञान का अंधकार फैला हुआ है उन तत्वों का यथार्थ उपदेश कर दूर करते हैं। तथा भव्य जीवों के मन में मिथ्यात्वांधकार व्याप्त हो रहा है उसके निराकरण कर सन्मार्ग का उपदेश देकर उसमें स्थिर करते हैं। जो अरहंत भगवान की दिव्य ध्वनि में जिनका जैसा व्याख्यान किया गया है उसका ही अर्थ गणधर देवों ने सूत्र रूप में रचना कर विस्तार किया है उसका उपदेश आचार्य परंपरा से जैसा प्रवाह रूप चला आ रहा है उस ही उसी प्रकार कहते हैं वे

उपाध्याय परमेष्ठो हैं। वे उपाध्याय अनेक ऋद्धियों के धारक बहुश्रुत कहे जाते हैं। इनका पाठक भी नाम है। १०३। १०४।

ये बाह्याभ्यान्तर ग्रन्थमविरहितमारम्भमाशावशाती—
ज्ज्ञानध्याने तपोरक्त ररति विषयेच्छा न येषां ॥
नित्यं साध्यन्ति रत्नत्रय निजगुण युक्तं षडावश्यकानां।
शुद्धात्मानश्च सेवन्ति निशदिनसु भूतार्थ भाग्वेन साधु: ॥१०५॥

जिन्होंने अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकार का है तथा बाह्य परिग्रह दशप्रकार का है ऐसे दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करदिया है। मन, वचन, काय से तथा जो मिथ्यात्व क्रोध मान माया, लोभ चार कषाय रूप परिग्रह तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्री वेद नपुंसक वेद, पुरुष वेद ये अंतरंग तथा बाह्यक्षेत्र (खेत)मकान दुकान चांदी सोना धन गाय भैंस हाथो घोड़ा इत्यादि धान्य गेहूं, जौ, ज्वार, बाजरा, चना इत्यादि नौकर नौकरानी स्त्री पुत्र पुत्री माता पिता इत्यादि वस्त्र आभूषण तथा लोटा थाली बटलोई कलश इत्यादि ये दश प्रकार तथा सेज उपसेज भुक्त पानादि अनेक प्रकार का बाह्य परिग्रह हैं उससे रहित है संरम्भ समारम्भ और आरम्भ का भी मन, वचन, काय से त्याग कर दिया है तथा कृत कारित अनुमोदना से त्याग किया है जो संसार सम्बन्धी व परिग्रह सम्बन्धी इच्छाओं से दूर रहते है अथवा छोड़ दिया है जो ऐसे निरन्तर ध्यान और अध्ययन में मग्नरहते हैं। जो सम्यग्दर्शन सम्ग्ज्ञान सम्यग्चरित्र है उनको अपने में ही अनुभव करते हैं। तथा अपने पंचमहाव्रत, पंच समिति, पंच इन्द्रिय निरोध छह आवश्यक केशलोंच करना खड़े आहार लेना, एकबार लेना, भूमि पर शयन करना दांतोन नहीं करना तथा नग्न रहना इन अष्टाविंशति मूलगुण तथा चोरा सीलाख उत्तर गुणों का भो यथायोग्य पालन करते हैं। तथा मूल गुण उत्तर गुणों से युक्त परम वीतराग भाव रूप समाधि साधन में स्थित हैं। तथा सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रति क्रमाण, प्रत्याख्यान, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग इन छहो आवश्यक क्रियाओं का निर्दोष रूप से पालन करते हैं। जो अपने शुद्धात्माका अनुभव करने में दिन-रात तन्मय रहते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं।

जो पंचेन्द्रियों के विषय खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला और खारा ये पांच रसनाइन्द्रिय के विषय हैं। स्पर्शन इन्द्रिय के विषय कोमल, कठोर, हल्का, भारी, शीत, उष्ण, स्निग्ध रूक्ष ये आठ हैं तथा चक्षुइन्द्रिय के नीला, पीला, काला, लाल और सफेद ये पाँच हैं घ्राण इन्द्रिय के सुगन्ध और दुर्गन्ध दो हैं कर्ण इन्द्रिय के विषय षडज वृषभ गाँधार मध्यम पंचम धैतव और निषाद ये सात स्वर तथा अनेक विकल्प रूप एक मन का विषय इस प्रकार अट्टाईश पंचेन्द्रियों के विषय हैं। इन इन्द्रियों के विषयों का जिन्होंने त्याग कर दिया है तथा सब इच्छाओं को रोक दिया है विषय वासनाओं से रहित है। आरम्भ-खेती करना पानो खींचना हल जोतना, अग्नि जलाना, जमोन खोदना, अग्नि बुझावना, पानी फेंकना, आटा पीसना, बुहारी देना, कूटना तथा व्यापार करना पेड़ों को तोड़ना, काटना, विदारण करना, इत्यादि सब आरम्भ ही हैं और भी आरम्भ के भेद जैसे मकान बनवाना, मन्दिर बनवाना बाग

बगीचा घास का खोदना फसल का काटना तोड़ना ये सब आरम्भ के प्रकार हैं। इनके साधनों के जुटाने (सरम्भ है) के भाव होना सो समारम्भ उनके जुटाने में लग जाना समारम्भ है उनके तथा उनसे कार्य करने लग जाना ये आररम्भ है जैसे खेत का जोतना मशीनरी चलाना इत्यादि इनका जिन्होंने मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक त्याग कर दिया है। कषायों से होने वाले आरम्भ का भी त्याग कर दिया है। जो नित्य ही संसार के दुःखों से भय-भीत हैं तथा ध्यान, अध्ययन, स्वाध्याय में निस्प्रमाद रत रहते हैं तथा छह आवश्यकों का का पालन करते हैं जो शुद्धात्मा की अनुभूति में स्थित होने से जिनको दिन-रात का कुछ भी मालूम नहीं पड़ता है। वे वैराग्य भावनाओं से युक्त होते हैं तथा अठारह हजार शीलों का पालन करते हैं। जो संसार के दुःखों से भय-भीत हैं तथा सबसे बड़ा नरक गति का दुःख है उसको ज्ञान कर जो जंगल के वासी बन गये हैं वे साधु परमेष्ठी हैं।१०५।।

ध्यायन्ति शुद्ध निश्चयं रत्नत्रयैव संयुक्तः ॥
अशारागपिशाचः मा प्रशश्यते च निर्ग्रन्था ॥१०६॥
मूलोत्तर गुणैर्युक्ताश्च विषयविरताः साधुः।
भवन्ति वन्दनीयाः खे ऋद्धीश्वरार्महाभट्टाः ॥१०७॥

जो सदा निश्चय रत्नत्रय का ही ध्यान करते हैं रत्नत्रय रूप अपने आत्मा में आत्मा को देखते हैं जिनके पास में आशा रूपी पिशाच नहीं है वही निर्ग्रन्थ मुनिराज ही प्रशंसनीय हैं। जो अनेक ऋद्धियों के स्वामी होते हैं परन्तु वे उनसे कोई काम नहीं लेते हैं। जो उपसर्ग और परीषह जीतने में समर्थ हैं तथा कर्मों का नाश करने में महासूर वीर हैं वे कायरता से रहित होते हैं। जो मूल गुण व उत्तर गुणों से युक्त हैं और पंचेन्द्रियों के विषयों तथा आरम्भ से रहित हैं वही साधू तीनों लोकों के द्वारा वन्दनीय है। तथा आपा और राग ही संसार में दुःख व वैर का कारण हैं ऐसा जानकर त्याग कर दिया है वे साधु परमेष्ठी लोक में पूज्यनीय हैं। कर्मरूपी वैरियों को नाश करने को योधा की भांति सन्मुख खड़े हुए हैं तथा कर्मों को नाश कर रहे हैं। जिन योगीश्वरों को देखकर कामदेव दूर से ही भाग गया अथवा कामदेव को मार कर भगा दिया है वे साधुवंदनीय हैं इस प्रकार साधु परमेष्ठी का संक्षेप से स्वरूप कहा है। १०६। १०७॥

आगे जिनबिम्ब का स्वरूप कहते हैं।

सहस्राष्टौ विभान्ति नख शिखान्त सर्वांगे प्रातिहार्याः
समचतुर संस्थानं वज्र वृषभनाराच संहननं ॥ १०८॥
विकम्पितमुखं वीतराग मुद्रा हरतिचित्तं सकाश च।
अष्ट द्रव्यैयुक्तैश्च चैत्यप्रतिमा विशालम् ॥ १०९॥

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा आलौकिक सुन्दरता को लिये हुए होती है जिनेन्द्र भगवान व अरहंत भगवान का जो बिम्ब है वह समचतुर संस्थान तथा ऐसी होना चाहिए कि मानो वज्रवृषभनाराचसंहनन हो प्रत्यक्ष हों। आठ प्रातिहार्य सहित हो तथा जिनके पैरों से लेकर शिर की चोटी पर्यन्त १००८ एक हजार आठ लक्षण चिन्हों से अलंकृत हो जिनमें

एक सौ आठ महा चिन्ह तथा ९०० नौ सौ व्यंजन लाँछन होते हैं। जिस प्रतिभा का मुख खिले हुए कमल की भाँति होता है अथवा जिसके चेहरे को देख मन अत्यन्त प्रसन्न और आकुलता से रहित हो जावे ऐसी हसमुख जिन प्रतिमा होना चाहिए। जो प्रतिमा साक्षात् रूप ले वीतराग भाव को प्रकट कर रही हो अथवा वीतराग मुद्रा को धारण कर रही हो। जो भव्य जीवों के मन को आकर्षण करती हो। जिसके पास में आठ प्रतिहार्य तथा आठ मंगल द्रव्यें विद्यमान हों। ऐसी जिन प्रतिमा यक्ष यक्षिणी सहित हो वह जिन प्रतिमा कहलाती है तथा जिसकी दृष्टि नासिका के ऊपर गिरती हो। यह पर्यंका-शन या खड़गासन से विराजमान हो। जिसको देख दुःखी जीवों का दुःख नाश हो जावे मन प्रफुल्लित हो जावे जिसके दर्शन करने मात्र से वीतराग भाव जाग्रत हो जावे ऐसी जिन प्रतिमा ही श्रेष्ठ है। अथवा विशाल हैं इन कहे गये गुण व लाँछनों से रहित जिन विम्ब न चैत्य नहीं कहलाते हैं।

विशेषः—जिन प्रतिमायें एक हजार चिन्ह अथवा लक्षणों से जो दैदीप्यमान हो रही हैं तथा जिसका आकार समचतुर संस्थान रूप है जो साक्षात् यह वताती हैं कि अरहंत भगवान समवशरण में ही विराज रहे हैं। जिसके अशोक वृक्ष प्रतिहार्य जिसके ऊपर पुष्प वृष्टि देवों कृत हो रहे हों दोनों तरफ चमर शोभायमान हों भगवान के पीछे भामण्डल विराजमान हो दुंदुभिनाद अथवा नगाडा या मृदंग हो तथा सिंहासन तथा रातपत्र (दर्पण) ये आठ प्रातिहार्यों से संपन्न होनी चाहिए। तथा आठ मंगल द्रव्य भारी, कलश दर्पण, चामर, ध्वजा, ताल, व्यंजन, (पंखा) छत्र, जिन धूपदान ये आठ मंगल द्रव्य हैं। जिन प्रतिमा का मुख ऐसा होना चाहिए कि मानो प्रतिमा जी दर्शनार्थी को देखकर हंसने लग गई हों। तथा जो अपनी वीतराग छवि के द्वारा सव भव्य जीवों के मनको आक-र्षित करती हो। ऐसी जिन प्रतिमा ही गुणों से युक्त विषाल और श्रेष्ठ कही गयी है। वह तदाकार सव गुणों से सहित हैं जिसकी वंदना देव दानव मानव त्रियंच सब ही करते हैं तथा अपने भावों की कलुषता को छोड़ देते हैं और प्रफुल्लित मन हो जाता है। तथा जिसके दर्शन कर भव्य प्राणी पुण्योपार्जन कर लेते हैं। मूर्ति के निर्माण करने में एक वात का लक्ष्य रखने योग्य है प्रथम तो मूर्ति का समचतुर संस्थान हो दूसरे मूर्ति का मुख खिले हुए कमल के समान हो तीसरे मूर्ति ऊन अंगुल के प्रमाण हो समांगुल की मूर्ति आगम में अच्छी नहीं कही गई है। मूर्ति एक अंगुल तीन पाँच सात नौ ग्यारह इत्यादि ऊन होना चाहिए वही शुभ आगम में कही गई। मूर्ति एक सौ आठ महा चिन्हों से अलंकृत होनी चाहिए मूर्ति के सर्वांग में वीतरागता ही दिखाई देती हो। जिसकी आकृति को देख कर कुभावों से रहित होकर वैराग्य मय वन जावे। तथा निर्ग्रन्थ नासिका दृष्टि नेत्र खुले भी न हों वद भी न हो मानो ध्यान अवस्था में ही विराजमान हैं। जिसको देख ऐसा प्रतीत हो कि साक्षात् केवली भगवान ही समवशरण में विराज रहे हैं एसी मूर्ति की भक्ति करने में पापों की छूट हो जाते हैं और विशेष पुण्य वंध होता है। तथा सम्यक्त्व गुण की वृद्धि होती है। इस मूर्ति की वंदना स्तवन करना ही चैत्य वंदना है।१०८।१०९॥

आगे जिन धर्म का स्वरूप कहते हैं।

जीवानाँरक्षणार्थं भगवदुपदिशं साम्यभावं दया च।
चरित्रैवं च धर्मः निलय परम कारूण्य भावं सदैव,
सम्यक्त्वं सार धर्मेषु गुण उदधिः एवं स्वभावात्मनश्च॥
मालभन्तेविरोधं क्वचिदपि सति षट्काय हिंसादि पापं॥ ११०॥

यह धर्म जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतराग का कहा हुआ सब जीवों की रक्षा के लिए है। धर्म वही है जो समीचीन हो संसारी प्राणियों को सब प्रकार से संरक्षण करता हो। तथा दयामय धर्म है साम्यभाव रूप जो चरित्र है वह धर्म परस्पर के वैर भाव द्वेष कषायों का नाश करने वाला है और परस्पर में प्रीति का वर्धक है तथा सुख स्वरूप है सम्यक्चारित्र निश्चय नय कर धर्म है क्योंकि यह धर्म एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणियों की विराधना पीड़ा से तथा मोह क्षोभ से रहित है वह निश्चय व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। व्यवहार से सम्यक् ज्ञान पूर्वक पंचमहाव्रत अहिंसा महाव्रत सत्य महाव्रत आचौर्य महाव्रत ब्रह्मचर्य महाव्रत परिग्रह त्याग व्रत तथा ईर्या समिति, भाषा, समिति, ऐसणा समिति आदान निक्षेपण समिति, उच्चार समिति तथा मन गुप्ति, वचन गुप्ति, इस प्रकार का है। तथा अशुभ भावों का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति करना यह चरित्र है वह चरित्र अणुव्रत और महाव्रतों के भेद से दो प्रकार का है। एक देश संयम दूसरा सकल संयम रूप है तथा निश्चय नय से ज्ञान का सम्यक्त्व रूप होना जिनका श्रद्धान हुआ है उनका ही ज्ञान होना तथा राग द्वेष कषाय भावों को जिस क्रिया से दूर किया जाय ऐसे क्रिया रूप ज्ञान का परिणमन् होना सो निश्चय चारित्र धर्म है। यह चरित्र धर्म समभाव रूप अपना ज्ञान मय स्वभाव है अथवा धर्म है जिन्होंने पृथ्वी काय, जल काय, वायुकाय, अग्नि काय, वनस्पति काय तथा इतर निगोद और नित्यनिगोद की सात सात लक्षयोनियों को जान लिया है तथा वनस्पति काय की १० लक्ष तथा देव नारकी त्रियंचादि की चार-चार लक्ष योनि तथा मनुष्यों की १४ लाख योनियों को जान लिया है तथा सूक्ष्म वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त दो इन्द्रियों तीन चार इन्द्रियों सैनी असैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त रूप चौदह जीव समासों को जानकर विराधना भाव का त्याग कर दिया है तथा करुणाभाव से हृदय भीगा हुआ है वे अहिंसा महाव्रत के धारी होते हैं। जिन्होंने वारह प्रकार के असत्य वचन का मन, वचन, काय, कृत कारित, अनुमोदन, से त्याग कर दिया है व सत्य महाव्रत के धारी हैं। वे असत्य वचन अम्य-ख्यान, वचन, कलहवचन, पैशून्य वचन, असंवन्धप्रलाप वचन रति उत्पादक वचन उपधि वचन, निकृति, वचन, अप्रति वचन, मोष वचन, सम्यक्दर्शन वचन, मिथ्यादर्शन वचन ये हैं। इनकी विशेष व्याख्या चरित्राधिकार में की जायगी। सत्य वचन के दश भेद हैं। नाम सत्य, रूप, सत्य, प्रतीति सत्य, स्थापना सत्य, संस्कृति सत्य, संयोजना सत्य, जनपद सत्य, देश सत्य, भाव सत्य, समय सत्य ये दश सत्य के भेद हैं। वारह प्रकार के असत्य का जो त्याग करता है उसके दूसरा महाव्रत होता है। जो भूली विसरी पड़ी विना दी हुई वस्तु को कृत कारित अनुमोदना से ग्रहण नहीं करता है न करने का आदेश देता है। न लेते हुए ही

अच्छा कहता है वह आचौर्य महाव्रत का धारी भव्य है। तथा मन वचन काय से भीग्रहण भाव नहीं करता है उसके तीसरा महाव्रत होता है। जो देवांगना तथा त्रियंच स्त्री मनुष्यों स्त्रियों का रूप वर्ण्य भोग उपयोग गीत नृत्य तथा ध्वनि भी नहीं सुनता है न पूर्व में भोगे गये भोगों को ही याद करता है न काष्ठ स्त्री शिला स्त्री चित्र स्त्री इत्यादि स्त्रियों में दृष्टि डालता है। न उनके हाव भाव को ही देखता उनका मन वचन काय व कृत कारित अनुमोदना से त्याग करता है उसके चौथा महाव्रत होता है। तथा जिसने अन्तरंग व परिग्रह वाह्य परिग्रहों का मन वचन कार्य से तथा कृत कारित अनुमोदनापूर्वक सब परिग्रह का त्याग कर दिया है उसके ही पाँचवाँ महाव्रत होता है। तथा इष्ट अनिष्ट पदार्थों से मूर्छा भाव का त्याग करना ही पाँचवाँ महाव्रत है। पाँच समिति ईर्या समिति भाषा समिति, ऐसणा समिति, आदावल निक्षेपण समिति व्यत्सर्ग समिति ये पाँच समितियां हैं। जो दिन में प्राशुक मार्ग से गमन करता हुआ एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय जीवों की विराधना नहीं करता हुआ सावधानी से अपने सामने की चार हाथ प्रमाण भूमि को देख कर चलता है उसके ईर्या पथ होता है यह इर्या समिति है। भाषा कटुक कठोर निष्ठुर क्रोध, मान, माया लोभ, रूप अशुभ वचन नहीं वोलता है और हित मित प्रिय वचन बोलता है उसके भाषा समिति होती है। जो आहार के ४६ अन्तरायों को टाल कर ग्रहण करता है तथा आहार शुद्ध प्रासुक तथा उत्पादन दोष उद्गम दोष रहित मल दोष रहित जो किसी देवी या यक्ष को पूजा के लिए न बना हुआ हो किसी मिथ्यादृष्टि के लिये न बना हो जोकि सचित्त अचित्त मिला हुआ न हो। जो दासी नौकरों के हाथ का न बना हो देने वाला दास न हो ज मुनिराज के निमित्त सेन बनाया गया हो जो परिवर्तन सचित्तन हो जो यचित्र सचित्ताो चित्त मिश्रण न हो तथा त्याग किया हुआ न हो ऐसे दोषों से रहित आहार को शोधकर देख कर लेना व लालसा और प्रमाद को छोड़ कर भोजन ग्रहण करना। जिसमें त्रस व स्थावर जीवों को कोई प्रकार की वाधा नहीं पहुँचती हो ऐसे प्राशुक आहार का ग्रहण करना ऐषणा समिति है।

आदान निक्षेपण समिति पुस्तक कमण्डल चटाई पाटा तथा स्वशरीर को उठते समय वैठते समय व लेटते समय कोमल पिच्छि से मार्जन कर उठाना और रखना और मार्जन करके ही अच्छी तरह से देखकर उठाना चाहिए ताकि किसी प्रकार से जीवों को विराधना व वाधा न हो। उत्सर्ग समिति वलगम मूत्रमल व विष्टा मल जहाँ क्षेपण करना हो तथा निघाण नाक का मल जहाँ डालना हो वहां की जमीन को भली प्रकार देख सोच कर ही क्षेपण करना ताकि त्रश और स्थवरों को वाधा उत्पन्न न हो। यदि रात्रि में मल क्षेपण का मौका आवे तो प्रथम पीक्षी से वोध करे पीछे अपने हाथ को उल्टाकर उस स्थान को स्पर्श करो कि यदि कोई त्रशकायक जीव होंगे तो संचार करते हुए मालूम पड़ जाये जब ज्ञात हो जावे कि निर्जन्तु स्थान है ऐसा जान कर मलादि क्षेपण करना। यह उत्सर्ग समिति होती है।

मनोगुप्ति, वचनोगुप्ति, काय, गुप्ति, मनोगुप्ति आर्तध्यान रौद्रध्यान इसलोक सल्य

परलोक सत्य तथा आहार भय मैथुन और परिग्रह संज्ञा इनके प्रति जो चार प्रकार का इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग वेदना अनुभव और निदान वंध ये चार प्रकार के आर्तध्यान क्रोध, मान माया लोभ कषायों का रोकना तथा रागद्वेप रूप मन की प्रवृत्ति को रोक कर धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में लगाना यह मन गुप्ति है। इष्ट वियोग नाम का आर्तध्यान स्त्री पुत्र माता पिता जमाई इत्यादि का मरण हो जाने पर या असंयम धारण करने पर जो ध्यान होता वह इष्ट वियोग नाम का आर्तध्यान है। तथा इष्ट वस्तु के न मिलने पर अपमान होने पर जो ध्यान होता है उससे कषायें वढ़ जाती हैं संक्लिष्ट परिणाम हो जाते हैं। यह इष्ट वियोग नाम का आर्त ध्यान है। अनिष्ट संयोग अपने मन के मुताविक पुत्र व स्त्री का न मिलना तथा अपने मन के मुताविक भोग उपभोग की वस्तुओं की प्राप्ति न होना। तथा वैरी अनिष्ट वस्तुओं का संयोग हो जाना तथा उसका वहिष्कार करने का प्रयत्न किया जाता है वह अनिष्ट संयोग नाम का आर्तध्यान है। उद्वेग आकुलता का कारण है जिससे वैर द्वेष की वृद्धि होने लग जाती है परिणामों में संक्लिप्टता वढ़ जाती है। यह अनिष्ट संयोग नाम का आर्तध्यान है।

वेदना नाम का आर्तध्यान अपने व अन्य सम्बन्धियों के शरीर में रोग हो जाने पर उसके दूर करने रूप प्रयत्न करना वैद्य हकीम डाक्टर आदि को वुलाना तथा खोज करने का प्रयत्न करना प्रयत्न करने पर भी जव प्राप्त न हो अथवा रोग दूर न हो हाय मेरे वेदना है अरे मेरी सुनो अरे मेरा कोई देखने वाला भी नहीं अरे मरा अरे मरा इत्यादि अशुभ वेदना युक्त परिणामों से संक्लिष्टता का होना ही वेदना नाम का आर्त ध्यान है। जिसमें रोता है चिल्लाता है कुछ-कुछ अपशब्दों का भी ध्यान आ जाता इन भावों के होने पर जो होता है वह वेदना नाम का ध्यान आर्तध्यान है। अथवा चोट लग जाने कोढ़ हो जाने जल जाने इत्यादि कारणों से वेदना होती है। भगवान की सेवा पूजा दान व भक्ति और संयम तप का फल मुझे ऐसा मिलेगा कि मैं दीर्घ जीवी होऊँ राजा होऊँ तथा देव होऊँ देवों के वैभव को पाऊँ या विद्याधर वन जाऊँ ऐसे भावों व भावनाओं का होना यह निदान वंध नाम का आर्त ध्यान है। ये सव ही ध्यान अशुभ भाव और अशुभ भावनाओं के कारण हैं। हिंसा में आनन्द असत्य में आनन्द चोरी करने में आनन्द परिग्रह में आनन्द मान ये चार रौद्रध्यान हैं इन सवको जानकर त्याग करना मनगुप्ति है तथा कृष्ण नील कपोत इन तीनों लेश्याओं का त्याग करना इत्यादि।

वचन गुप्ति—स्त्री कथा, राष्ट्र कथा, भोजन कथा, राज कथा चोर कथा, वैर कथा पर पाखंडियों की कथा, देश कथा, भाषा कथा, अकथा, विकथा पर पैसून्य कथा, निष्ठुर कथा, कंदर्प कथा, कुकृत्य कथा, मुख से वकवाद करने रूप कथाओं का त्याग कर मौन धारण करना कुवचनों का प्रयोग नहीं करना अपने वचनों को संकुचित करना यह वचन गुप्ति है। तथा राग द्वेष व उद्वेग वढ़ने के कारण हों ऐसे वचनों का त्याग कर मौन धारण कर वहां के वहीं रोक देना यह वचन गुप्ति है। परके प्रति जो वचन विन्यास हो गया है उसको द्रव्य वचन का तो मौन से तथा भाव वचन को ध्यान से रोक देना यह वचन गुप्ति है।

काय गुप्ति जो शरीर और मन के सम्बन्ध से होने वाली संकोच विस्तार रूप जो क्रिया चलती है जो दुष्कर्म का कारण है उसका त्याग कर आत्म ध्यान में लीन होना तथा काय की हलन चलन क्रिया का रोक देना यह काय गुप्ति है। अथवा शरीर से ममत्व त्याग कर निज आत्म स्वभाव में चित्त का स्थिर करना यह काय गुप्ति है यह तेरह प्रकार या चारित्र धर्म है। समता का धारण करना धर्म है यह समता व करुणा रूप ही है अहिंसा मय ही है तथा जहाँ समता भाव नहीं वहां दया व चरित्र धर्म नहीं दया रूप धर्म का अलंकार ही चरित्र है सदा करुणा भाव ही पहला है सर्व धर्मों में श्रेष्ठ है वह सम्यक्त्वादि सब गुणों का समुद्र है तथा आत्मा का भी स्वाभाविक धर्म है यह अन्य हीन स्थानों में नहीं रह जाता। धर्म के दश भेद उत्तमक्षमादि कहे हैं तप को भी धर्म कहा है इस प्रकार अनेक नाम लेकर कहे गये सब धर्म एक हैं भगवान के कहे हुए धर्मों में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है जितने धर्म हैं वे सब दया स्वरूप हैं। जिस धर्म में छह काय के जीवों की विराधना रूप हिंसा होती है वह धर्म जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ नहीं हो सकता है। जिनेन्द्र भगवान के मार्ग में धर्म में दया ही प्रधान है। प्रथम अपने ऊपर दया पीछे दूसरे जीवों पर दया। पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय, वनस्पति काय तथा (दो इन्द्रिय) त्रशकायक जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय ये सब पर्याप्त अपर्याप्तक होते हैं पंचेन्द्रिय असैनी और सेनी दो प्रकार के होते हैं। एक इन्द्रिय के चार प्राण होते है दो इन्द्रिय के छह प्राण तीन इन्द्रिय के सात चार इन्द्रिय के आठ असैनी पंचेन्द्रिय के नौ सेनी पंचन्द्रिय के दश प्राण होते हैं। वे प्राण एकेन्द्रिय के आयुबल कायबल, स्वास्वोच्छ् और एक स्पर्श इन्द्रिय। दो इन्द्रिय के छह प्राण एक भाषा स्पर्श रसना इन्द्रिय बढ़ जाती है अन्य के एक-एक वृद्धि होती जाती है। इन जीवों को जानकर विराधना नहीं करना यह जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेक नाम वाला धर्म है। जहाँ जीवों को विराधना रूप हिंसा होती है वहाँ धर्म नहीं है वहाँ कुधर्म अथवा आर्त रौद्र ध्यान रूप पाप का कारण है वह दुष्कर्म पाप ही है धर्म तो वही सत्य जो समीचीन है वही धर्म जिनेन्द्र का कहा हुआ है। वह अनेकान्त मय धर्म है। जिनके हृदय कमल में दया नहीं है तथा जिनके पास दया रूपी वैभव नहीं है उनके तो दुःख ही दुख है। ११०।

सुखं स्वोच्छा प्राणी नक्वचिदपि न वांच्छन्ति मनुजाः।
अशर्मोद्योतं किंचिदपि न तु भाव्यन्तु समये।
दयायाविद्यन्ते स्वहृदय सरोजे व विभवं।
कथं सौख्यंलोके सुकृतमविना भाविकरुणा ॥१११॥

जितने एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणी हैं वे सब दुखों से डरते हैं और वे सुख की कामना करते हैं। इससे भिन्न कुछ भी नहीं चाहते। परन्तु सुख की प्राप्ति नहीं होती और दुःख प्राप्त हो जाता है। जब पाप कर्म रूप हिंसा प्राणिवध करता है तब विचार नहीं करता है कि ये पाप कर्म कर रहा हूं उसका ही फल मुझे भोगना पड़ेगा जब फल काल आ जाता हैं तब भोगते रोता है। कभी भी अपने परके प्राणों का रक्षण करने का भाव ही नहीं (आता) करता है जहाँ दया नहीं वहाँ पुण्य कैसे हो सकता है जहाँ पुण्य नहीं वहां सुख कैसे हो सकता

है। जिनके हृदय कमल में दया नहीं है। और दया का वैभव भी नहीं है उनको सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि दया ही पुण्य का कारण है पुण्य से लक्ष्मी व भोग उपभोग की वस्तुयें प्राप्त होती हैं करुणा भाव हृदय में नहीं है पुण्य का अविनाभावी सम्बन्ध करुणा से है।

विशेष—विषयांध हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह व कुलेश्याओं में आसक्त मोही अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव धर्म के निमित्त धर्म की इच्छा कर व सुख की इच्छा करके तथा धन धान्य की प्राप्ति के लिए व रोग ग्रहों की शान्ति के लिए देवो देवभूमिया आदि को भेंट में भेड़ बकरी कबूतर मुर्गा इत्यादि जानवरों का मार-मार कर रक्त बहा देता है तथा जीवित भी जलती हुई अग्नि में डाल देता है तथा बलि चढ़ा देता है। जीवों का नाश कर के निर्दय हृदय वाला सुख की अभिलाषा करता है जिस पाप से पुनः अत्यन्त दुःखों के सागर में पड़ जाता है। कोई निर्दयी अनेक प्रकार से पुत्र स्त्री की प्राप्ति करने के लिए देवी देवता व कुल देवी की व भूमिया भैरव न नाहर सिंह आदि देवों की पूजा करता है। उनकी पूजा कर अन्त में जीव हिंसा करता है और सुख की कामना करता है। आचार्य कहते हैं कि दया रहित प्राणी को सुख की प्राप्ति नहीं।

इसलिए दया धर्म ही जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेकान्त मय धर्म है वही सुख देने वाला है और दुखों को नाश करने वाला है।११११॥

धर्मो द्रव्यस्वभावैव विना धर्मो न द्रव्याणि
धर्मैवस्वगुणाः खलु भणन्ति मुनि पुंगवैः ॥११२॥
सामान्य खलु धर्मो वा अनेकान्तात्मकं नित्यम्
परिणमन्ति माऽन्योन्ये उत्पाद् व्यय ध्रुवात्मकम् ॥११३॥

द्रव्यों के स्वभाव को धर्म कहते हैं धर्म के विना कोई ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें धर्म न हो धर्म द्रव्य का स्वगुण है क्योंकि गुणों को छोड़कर द्रव्य नहीं और द्रव्य को छोड़कर गुण धर्म नहीं रहते हैं गुणों के समूह का नाम ही द्रव्य है। द्रव्य अपने अपने सामान्य और विशेष गुण धर्मों युक्त होती है। और द्रव्यें अनेकान्त मय धर्म की धारक हैं तथा अनन्त गुण धर्मों का पिण्ड ही द्रव्य है वे अनेक धर्मों से युक्त अनादि काल से स्थित है और अनंत काल तक स्थित अपनी-अपनी सत्ता को लिए हुए विद्यमान रहेंगी। वे द्रव्यें अपने अपने गुणों में ही परिणमन करती रहती हैं। परन्तु वे द्रव्य एक दूसरी द्रव्य के रूप में व गुणों में परिणमन नहीं करती हैं न अपने गुणों को ही छोड़ती हैं वे द्रव्यें आकाश प्रदेश में एक क्षेत्रावगाही होते हुए भी तथा एक प्रदेश में रहती हुई भी अविरोध रूप से अपने अपने स्वभाव में स्थित रहती हैं। वे द्रव्यें उत्पाद व्यय और ध्रौव्यात्मक हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। जिनमें अनेकान्तात्मक भाव पाया जाता है वे ही द्रव्यें हो सकतो हैं उनका ही प्रमाण और नयों में सिद्धी होती है। तथा वे सब द्रव्यें सामान्य गुण तथा विशेष गुणों को धारण करती हुई लोक में विद्यमान रहती हैं जहां ये द्रव्यें देखने में आती हैं उसका ही नाम लोक है। जो गुण एक द्रव्य को छोड़ कर दूसरे द्रव्य में न पाये जायें उनको विशेष गुण ऐसी संज्ञा है। जो गुण सामान्य से सब

द्रव्यों में पाये जाते हैं वे गुण सामान्य कहलाते हैं। जितनी द्रव्य हैं वे सब सामान्य और विशेष गुणों से प्रतिष्ठित हैं। तथा ये द्रव्य कोई भी अवस्था विशेष होने पर भी एक सामान्य गुण वाली ही रह जावें तो विशेष गुणों के अभाव से द्रव्यत्वपना वन नहीं सकता है, यदि विशेष गुणों से युक्त रह जावें और सामान्य गुण नहीं रह जावे तो भी द्रव्यत्वपना वन नहीं सकता। यदि हम यह मान लेते हैं कि विशेष गुणों वाली द्रव्य हैं तो विना सामान्य के विशेष गुण कैसे जाने जा सकते हैं कि जीव द्रव्य के ये विशेष गुण हैं तथा पुद्गल द्रव्य के ये विशेष हैं उसी प्रकार धर्म अधर्म और आकाश तथा काल ये कैसे जानें जावेंगे। यदि हम यह मान लेते हैं कि सामान्य गुण वाली द्रव्य हैं परन्तु विना विशेष के जाने विना सामान्य गुण भी नहीं जाने जा सकते हैं। इसलिए द्रव्यें सामान्य और विशेषात्म मानने में कोई विरोध नहीं प्राप्त होता है। यदि सामान्य या विशेषदोनों प्रकार के गुणों में एक को भी छोड़ दिया जायेगा तो द्रव्य की सत्ता को सिद्धि नहीं होगी। और वे सब एक हो जावेंगी तब शंकर नाम का महादोष उत्पन्न होगा। तथा जीव व अजीव सब द्रव्यों का एक पिण्ड बंध जायेगा और जड़ वस्तुयें चेतन हो जायेंगी और चेतन वस्तुयें अचेतन जड़ वन जायेंगी। यहां कोई प्रश्न करता है कि जो आपने उत्पाद व्यय और ध्रौव्य कहा है सो कहना भी ठीक नहीं ? क्योंकि उत्पाद और व्यय कहने से ध्रौव्यपना आप ही वन जाता है ? इसका समाधान यह कि जो पूर्व पर्याय का विनाश हुआ और उत्तर पर्याय की उत्पत्ति नहीं वन सकती जव कोई हमारे सामने धौव्य रूप होगी तभी उसमें उत्पाद और व्यय दोनों वन जायेंगे। यदि ध्रौव्य नहीं है तव व्यय किसमें और उत्पाद किसमें होगा ? ऐसा प्रश्न उपस्थित होगा। तव हमको ध्रौव्य द्रव्यपना मानना ही होगा। यदि ध्रौव्य ही आप मानते हैं तो हमें कोई शंका नहीं परन्तु उत्पाद की क्या आवश्यकता हागी ? यदि उसमें उत्पाद नहीं माना जाय और व्यय भी न माना जाय तव द्रव्य एक पिण्ड रूप होगी यह भी कहना ठीक नहीं। यदि व्यय भी माने तो विना उत्पाद के व्यय किसका होगा। यदि व्यय भी ही होता रहे तो द्रव्य कहाँ से आवेगा। यदि उत्पाद ही होता रहे तो वह कहां समावेगा और द्रव्य की स्थिति कैसे रह जायेगी ? इस लिये द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्यात्मक कही है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है।११२।११३॥

सम्यक्त्वं ज्ञानमेव दर्शनं चारित्रं चेतनासुखं।
स्पर्शं रसं गंधं च वर्ण गति स्थित्यिवगहनं॥११४॥
वर्तना लक्षणं कालं गुण धर्मश्च सद्भावं।
धर्माधर्मौच जीवाऽसंख्यात प्रदेश रूपित्रि॥११५॥

जीव के विशेष गुण सम्यक्त्व दर्शन, ज्ञान, चारित्र, चेतना, और सुख ये छह हैं तथा पुद्गल के इन को छोड़कर ८ प्रकार के स्पर्श एक, रस ५, वर्ण ५, गंध दो ये विशेष गुण पुद्गल द्रव्य के हैं। अधर्म द्रव्य के स्थिति करण धर्म द्रव्य का गमन में सहायक होना आकाश का अवगाहन गुण है तथा काल का परिवर्तन करना ये विशेष गुण सब द्रव्यों के हैं। जीव व धर्म अधर्म इनके प्रदेश असंख्यात और अखण्ड है तथा कहे गये विशेष गुण अपने अपने द्रव्यों को

छोड़कर नहीं रहते हैं वे गुण सब ही अपनी पर्यायों से युक्त है अथवा गुणों में भी पर्यायें होती रहती हैं वे पर्यायें अनेक प्रकार होती हैं। एक अर्थ पर्याय दूसरी व्यंजन पर्याय ये पर्यायें भी दो-दो भेद वाली होती हैं एक स्वभाव अर्थ पर्याय, एक विभाव अर्थ पर्याय, एक स्वभाव व्यंजन पर्याय, एक विभाव व्यंजन पर्याय के भेद से कहीं गयी है। जो रूपी पुद्गल द्रव्य है वह तीन भेद वाला है संख्यात असंख्यात और अनंत परमाणू वाला है। दो अणु से लेकर संख्यात अणुओं का एक स्कंध असंख्यात परमाणुओं का एक स्कंध तथा अनन्त पुद्गलों का एक स्कंध इस प्रकार तीन भेद वाला पुद्गल द्रव्य है। गति स्थिति हेतत्व वर्तना हेतत्व ये सब धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य और काल द्रव्य के गुण जानना चाहिये। ११४। ११५॥

आकाशस्यानंता अनंतानंताऽसंख्याताः प्रदेशाः।
कालास्याणुरिव सदा रत्नराशिवल्लोके स्थिताः॥११६॥

आकाश द्रव्य के असंख्यात तथा अनंतानंत प्रदेश हैं वे लोक तथा अलोकाकाश में स्थित हैं। काल द्रव्य एक-एक अणु रूप है वे अणु लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उतने हैं वे कालाणु आकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित हैं वे काल द्रव्य के अणु एक दूसरे से मिलते नहीं हैं भिन्न भिन्न ही रहते हैं जिस प्रकार रत्नों की राशि एक में एक मिलतीन हीं है उसी प्रकार काल द्रव्य असंख्यात प्रदेश लोकाकाश में सर्वत्र विद्यमान रहता है। इस प्रकार सब द्रव्यों की स्थिति कही गई है। ये द्रव्य सब ही अपने अपने गुणों से युक्त लोक में देखी जाती है। तथा लोक का बनाने वाला या बिगाड़ने वाला कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ न होगा यह लोक अनिधन है। ये सब द्रव्य परिणमन शील हैं तथा अनेकान्तमय हैं इन में परस्पर एक में ही दो विरोधी धर्म रहते हुए भी विरोध को नहीं प्राप्त होते हैं। अनेकान्तमय तथा नित्य ये पहले कह आये हैं ११३ श्लोक में इन द्रव्यों में अपने अपने गुणों में गुण से गुणान्तर तथा पर्याय से पर्यान्तिर होते रहते हैं। इन में गुण संक्रमण होता है वह छह गुण हानि तथा छह गुण वृद्धि होती रहती है यह गुण हानि वृद्धि सतत निरंतर चलती रहती है यही द्रव्यों का स्वभाव है॥११६॥

आगे द्रव्यों के सामान्य गुण कहते हैं।

अस्तित्वं वस्तुत्वं अगुरु लघु द्रव्य प्रमेत्व च।
चेतनाचेतन गुणाः मूर्ता मूर्तित्वं द्रव्येषु॥११७॥

अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यतत्व, प्रमेयत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तित्व, अमूर्तित्व ऐसे अनन्त गुण हैं। वे सब गुण सामान्य से द्रव्यों में कहे गये हैं वे प्रत्येक द्रव्य में होते हैं। जैसे जीव द्रव्य में, अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, चेतनत्त्व, अमूर्तित्व, प्रदेशत्व ये सामान्य गुण हैं। पुद्गल द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व प्रमेयत्व, अचेतनत्व, अमूर्तितत्व प्रदेशत्व ये आठ हैं। धर्म द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व, अचेतनत्व, अमूर्तित्व ये आठ हैं। अधर्म द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व, प्रमेत्व, अचेतनत्व तथा अमूर्तित्व और द्रव्यत्व सब आठ हैं। आकाश द्रव्य में भी अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व, अचेतनत्व, अमूर्तित्व, द्रव्यत्व ये आठ हैं, तथाकाल द्रव्य में भीजानना चाहिए।

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी भी नाश न हो उस गुण को अस्तित्व

गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में क्रिया अर्थ क्रिया होती रहती है उसको वस्तुत्व गुण कहते हैं। जैसे घड़ा का कार्य जल धारण है। चेतनत्व सामान्य से सिद्ध तथा सब संसारी जीवों में पाया जाता है इसलिए चेतनत्व सामान्य गुण है। रूपित्व गुण पुद्‌गल द्रव्य में पाया जाता है वे पुद्‌गल संख्यात असंख्यात और अनंत है वह सबों में ही पाया जाता है इसलिए रूपित्व गुण सामान्य स्व द्रव्य की अपेक्षा है। अमूर्तित्व यह गुण सामान्य से जीव, धर्म, अधर्म आकाश तथा काल में पाया जाता है यह भी सामान्य गुण है। जिसके निमित्त से द्रव्य एक साथ रह जावे और उत्पाद व्यय होता रहे। और प्रति समय पर्यायें बदलती रहें उसको द्रव्यत्व गुण कहते हैं। जिसमें हमेशा ही अर्थ पर्याय, व्यंजन, पर्याय, गुण पर्याय, बदलती रहती है वही द्रव्यत्व द्रव्य गुण है जिसमें द्रव्य का कोई न कोई रूप से अस्तित्व रह जाता है वह द्रव्यत्व गुण सामान्य है प्रमेयत्व गुण जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय बनी रहे उस गुण को प्रमेत्व गुण कहते हैं। जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्यों की व्यवस्था ज्यों की त्यों कायम रहे अथवा द्रव्यता कायम बनी रहे। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप न परिणमे। अथवा एक द्रव्य के गुणों का समूह विखर न सके तथा हीना-अधिकता को प्राप्त न हो सके, एक गुण दूसरे रूप न परिण मे एक द्रव्य के अनन्त गुण विखर न जांय अथवा भिन्न-भिन्न न हो जावें उसको अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं। जिस शक्ति को निमित्त से द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य बना रहे उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं। इस प्रकार द्रव्यों के गुण धर्मों का स्वरूप जिनेन्द्र भगवान के आगम में जैसा कहा गया है उसका संक्षिप्त कथन किया है। ये सामान्य विशेष धर्म द्रव्यों की सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं वे द्रव्यों को छोड़ कर नहीं रहते हैं। आगे दश धर्मों की व्याख्या की जाती है।

क्षमाऽऽर्जव मार्दवाश्च सत्यशौच संयमस्तपस्त्यागः
आकिञ्चिन्योब्रह्मोत्तम धर्मश्च दशधाः (विकल्पाः)॥ (भवन्ति) ११८॥

उत्तम क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, और ब्रह्मचर्य ये दश भेद धर्म के हैं। ये दश विकल्प होते हैं।

उत्तम क्षमा—अनेक बाह्य कारणों के मिलनें पर भी क्रोध कपाय का वेग नहीं आने देना अथवा क्रोध का न आना यही उत्तम क्षमा धर्म है। जहाँ कोई अनायाश ही लड़नें व ताड़नें व मारने व गाली गलोज करने को व मारपीट करने तथा अंगादि को छेदन करने को सम्मुख आगया हो तथा द्रव्य क्षेत्र को अपहरण करने को सन्मुख हो ऐसी अवस्था विशेष मिलने पर भी क्रोध कषाय का आवेश न होना तथा तिरस्कार व बदला आदि लेनें व परस्पर लड़ने भाव रूप क्रोध का न होना ही उत्तम क्षमा है। उत्तम क्षमा सब जीवों पर दया करना और मित्रता का भाव रखना तथा द्वेष भाव का त्याग करना व दूसरों के गुणों में अनुराग करना अपनें अवगुण दोषों की आलोचना करना तथा दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना तथा अन्य के द्वारा दी गई वेदना को कर्म जनित मान कर समभाव धारण करना ही उत्तम क्षमा है। अपनें से चाहे निर्वल हो अथवा बलवान हो परन्तु अपने आत्म स्वभाव में क्रोध रूप संक्लिष्टता तक का न होना ही उत्तम क्षमा धर्म है।

उत्तम आर्जव धर्म—अनेक प्रकार के अपमान होने के कारणों के मिल जाने व अनेक प्रकार के वल वैभव ऋद्धि धन इत्यादि के होने पर भी मद अर्थात् घमण्ड नहीं आने देना अथवा मान कषाय का न आना ही उत्तम आर्जव धर्म कहलाता है। कोई छोटे व बड़े व बुद्धि विशेष का व धन वल तथा रूप वैभव का अहंकार न होना तथा अपने से कम वलवान व कुरूप धन हीन ऋद्धि हीन हैं उनका भी तिरस्कार करने का भाव नहीं करना। तथा जहाँ कोई अपना अपमान या तिरस्कार करे तो भी अपने मन में खेद का नहीं होना आर्जव धर्म है (जहां पर किसी का अपमान होता हो या) यदि कोई अपना तिरस्कार करे तो भी मन में उसका तिरस्कार करने के भावों का नहीं लाना उसका यथा योग्य आदर सत्कार विनय करना यह आर्जव धर्म है।

मार्दव धर्म—जब कोई वस्तु वस्तुविकार व कोई प्रकार अपवाद मार्ग को प्राप्त हो जाने पर उसको दवाना या कुछ का कुछ कहना कुछ का कुछ वताना कुछ का कुछ करने लगना यह तो माया है सो इस माया का त्याग कर जो गुण वे दोष उनको जैसा का तैसा कहना तथा क्रिया रूप से आचरण में लाना ही मार्दव धर्म है। जो गुण व दोष हुए हों उन गुण व दोषों का हीन अथवा अधिक या विलकुल ही नहीं कहना यह तो माया कषाय परन्तु जैसा का तैसा उच्चारण करना ही सरल भाव है ऋजु भाव है उसका नाम ही उत्तम मार्दव धर्म है।

उत्तम शौच—जिस लोभ कषाय के उदय में आने पर प्राणी अनेक प्रकार के सचित्त अचित्त सचित्ताचित्त परिग्रहों को एकत्र करता ही रहता है तथा प्रयत्न करता ही रहता है। तथा उसे परिग्रह को प्राप्त करने व उसकी रक्षा करने के लिये हिंसा करता है आरम्भ करता है व नीच दुराचारी व अकुलीन जनों की सेवा करता है। भयानक वीयावान जंगल व पहाड़ों की कंदराओं में लोभ कषाय के वशी भूत होकर प्रवेश करता है तथा सिंह वाघिरा आदि क्रूर भयानक जीवों से भी भय नहीं खाता है तथा समुद्र में प्रवेश कर गोता लगाता है तथा शंख शीप मोती इत्यादि निकालता है मरण के भय से भी डरता नहीं। सिंह वघिरा को भी पकड़ खिलाता है। कितना भी परिग्रह प्राप्त हो जावे पर संतोष तो नहीं होता है। जव वस्तु मिले अथवा न मिले या मिल जाय परन्तु आकुलता रहित जव संतोष हो लोभ कषाय नहीं होवे तव ही जीव के आत्मा में शौच धर्म की प्राप्ति होती है। परिग्रह से ममत्व भाव का छूटना व लोभ कषाय से होने वाली आकुलता को संतोष से दूर करना व निराकुलता की प्राप्ति का होना ही उत्तम शौच धर्म है। थोड़ा सा भी परिग्रह होता है वह भी आकुलता पैदा कर देता है तव अन्य की वातें तो दूर रहीं। जितना परिग्रह अधिक होगा उतनी ही आकुलता वढ़ती जाएगी इसलिए निस्परिग्रह ही सुख का कारण जान कर संतोष करना यह उत्तम शौच धर्म है।

उत्तम सत्य—विपत्ती आने पर व धन धान्य के क्षय होने पर, अपमान होने की संभावना होने पर या अन्य कोई कारण मिल जाने पर अथवा भय के कारण मिलने पर भी जो ज्यों का त्यों वोलता है यह सत्य धर्म है। जो पीड़ा देने पर व मान की इच्छा व कीर्ति की इच्छा से भी असत्य भाषण नहीं करता है उसके ही सत्य धर्म होता है।

संयम धर्म—जिन्होंने एकेन्द्रिय पृथ्वी, पानी, आग, हवा, वनस्पति, इनके स्वरूप को जान लिया है तथा दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय जीवों की व्यवस्था को भली प्रकार जान लिया है उस जानी हुई प्रकार से उन त्रस स्थावर जीवों की विराधना नहीं करना न करने के भाव ही करना तथा द्रव्य प्राण व भाव प्राणों को जान लिया है कुल कोटि व गुण स्थान योनिस्थान, मार्गणा स्थान, और जीव समासों को जान लिया है उनके द्रव्य प्राण व भाव प्राणों की विराधना नहीं करना यह उत्तम संयम धर्म है। यह संयम दो प्रकार का है एक प्राणसंयम अथवा इन्द्रिय संयम तथा दूसरा काय संयम। पंचेन्द्रिय और मन के विकारी भाव रूप क्रियाओं का रोक देना सो इन्द्रिय संयम है। पंचेन्द्रियां के विषय भी भिन्न-भिन्न हैं उनके विषयों को रोकना तथा मन के द्वारा होने वाले कषाय राग द्वेष रूप आर्तध्यान व रौद्रध्यान का रोकना तथा पंचास्थावर एक त्रस कायक जीवों क प्राणों कीविराधना का त्याग करना ही उत्तम संयम है। पृथ्वी कायक, जल कायक, अग्नि कायक, वायु कायक और वनस्पति कायक एक त्रश के भेद दो इन्द्रिय लट शंख शीप जोक इत्यादि तीन इन्द्रिय खटमल चीटी मकोड़ा विच्छू खान खजूरा इत्यादि चार इन्द्रिय माखी पतिंग भौंरा वर्र इत्यादि पंचेन्द्रिय देवनारकी गाय भैंस सिह इत्यादि व मनुष्य ये सब छह काय के प्राणियो की विराधना का त्याग तथा पंचेन्द्रियों और मन की क्रियाये और विषयों का रोकना ही सयम है तथा अपने भाव प्राण व द्रव्य प्राणों की विराधना न होने देना संयम है अथवा अपने भाव प्राणों की विराधना करने वाले अपने कषाय और मिथ्यात्व हैं इनको ही असयम कहते हैं इनको निकाल कर दूर कर देना ही उत्तम संयम है।

उत्तम तप—सब पंचेन्द्रिय की भोग और उपभोग की इच्छायों का रोंक देना तथा दुर्भावनाओं को रोक देना व कषायों का रोक देना योगों की कुटिलता को रोक देना ही तप है। इच्छाओं का रोक देना ही उत्तम तप है। जहां पर असंयम भाव थे उन असयम भावों को रोककर मन, वचन, काय की होने वाली कुक्रियाओं को रोक देना तथा अशुभ भाव और भावनाओं का रोक देना उत्तम तप है। तथा विभावों को रोक कर स्वभाव में स्थिर होना ही उत्तम तप है।

लोभ कषाय का त्याग करना तथा रागद्वेष का त्याग करना व संतोप पूर्वक आहार दान, औषध दान, ज्ञान दान, अभय दान करना या त्याग तथा असयम को कारण कपाय हैं तथा मिथ्यात्व है इनका त्याग कर सम्यक्त्व व संयम को प्राप्त करना। तथा अशुभ भाव और भावनाओं का त्याग करना तथा दान, पूजा, सेवा, आदि क्रियायें करना तथा उनमें प्रवृत्ति का होना ही उत्तम त्याग धर्म है। हिंसादि पाप तथा आहारादि संज्ञायों व पंचेन्द्रियों के विषयों का त्याग करना भी दान है। तथा उपदेश देना व विद्या अध्ययन कराना भी दान है यह भी उत्तम त्याग है तथा सब पर वस्तुओं से राग भाव का त्याग कर निज स्वभाव में स्थिर होना यही उत्तम त्याग है। चंचल प्रवृत्तियों का रोकना ही श्रेष्ठ दान है।

आकिंचन्—संसार में जितनी वस्तुयें दिखाई दे रही हैं वे सब अपनी अपनी स्थिति पूर्णकर विनाश को अवश्य ही प्राप्त होंगी। जिनको मैं मोह राग वश अपनी मान रहा था वे स्त्री पुत्र भाई वेटा माता पिता घोड़ा हाथी मोटर बंगो इत्यादि; सोना चांदी हीरा पन्ना

नीलम पुखराज इत्यादि रत्न व घर मकान हाट,हवेली व वैभव सेना संपत्ति है वे एक भी मेरी नहीं हो सकती हैं इन पर वस्तुओं की तो वात ही क्या जव कि शरीर माता के गर्भ में से ले कर आया था जिसके ऊपर मैं गर्व करता था कि यह तो मेरा ही है परन्तु मैं देख रहा हूँ कि यह शरीर भी समय पाकर अपनी स्थिति पूर्ण भये पीछे नही रह जायेगा तव अन्य की तो कथा ही क्या है। इस प्रकार विचार कर संसार शरीर भोगों से विरक्त भाव होना तथा आत्मा की तरफ दृष्टि का होना कि मेरा चेतन स्वरूप आत्मा ही शाश्वत है अन्य किंचित भी मेरा नहीं है यह उत्तम आकिंचन् धर्म है। तथा अन्य द्रव्य के प्रति जो राग द्वेष भाव था उसका त्याग करना आत्म स्वभाव में प्रवृति का होना ही उत्तम आकिंचन् धर्म है।

उत्तम ब्रह्मचर्य—देवांगना त्रियंचनी व मनुष्यनी इत्यादि स्त्रियों के साथ रमण भाव का त्याग करना तथा उनके साथ सहवास व संसर्ग का त्याग करना। तथा गुण धर्म को जानकर स्त्री मात्र का त्याग करना यह ब्रह्मचर्य है। तथा स्पर्श, रसना, घ्राण, कर्ण और चक्षु इन इन्द्रियों के विषय रूप वासनाओं का त्याग करना तथा पराधीनता का त्याग करना व स्वाधीनता में प्रवृति करना ही उत्तम ब्रह्मचर्य है। तथा अपने आप रूप में लवलीन हो जाना व स्वात्मा में स्थिर हो भोग उपभोग करना ही ब्रह्मचर्य धर्म होता] है । जो निज में ध्यान ध्येय ध्याता के विकल्प रूप जाल को तोड़कर एक चित्त ब्रह्म में रमण करता है यह उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है यह ब्रह्मचर्य धर्म सव प्रकार से कर्म मल कलंकों का नाश कर अनन्त क्षायक सम्यक्त्व क्षायक ज्ञान क्षायक दर्शन क्षायक वीर्य और सुख दान, लाभ, भोग, उपभोग, रूप को प्राप्त होता है वह एक ब्रह्म आत्मा है उसमें रमण करना ही परभाव भावसे रहित ब्रह्म है यही उत्तम ब्रह्मचर्य है।११८॥

विकल और सकल चारित्र धर्म का स्वरूप

सकलं विकलं धर्मोऽनगाराणां सागाराणाँ नित्यम् ॥
द्वादश व्रत मूलाष्ट गुणाष्टाविंशति प्रज्ञानं ॥११९॥

धर्म दो प्रकार का है एक अनागार मुख्य धर्म और सागार (उपचार) धर्म तथा सकल चारित्र व विकल चारित्र के भेद से है। गृहस्थ धर्म तो आठ मूल गुण व वारह उत्तर गुण व्रत रूप है। मुनि धर्म सकल चारित्र अट्ठाईश मूल गुण रूप है। आठ मूल गुण जो गृहस्थ महाव्रतों से भय भीत हैं उसके लिये प्रथम ही पांच पापों का त्याग तथा मद्य मांस मधु का त्याग रूप आठ मूल गुण है। अथवा मद्य मांस शहद का त्याग व पानी छानकर पीना रात्रि भोजन नहीं करना देव दर्शन करना किसी जीव को संकल्प कर नहीं मारना तथा क्षीर फल व उदम्वर फलों का त्याग करना ऐसे श्रावक के आठ मूल गुण कहे गये हैं। वड़फल पीपल फल अंजीर, गुलर (ऊमर) पाकर फल जिनके अन्तर्गत त्रस जीव रहते हैं उन फलों का त्याग करना ये श्रावक के आठ मूल गुण कहे हैं। इनका धारक देव शास्त्र गुरु के पक्ष को स्वीकार कर उनकी अवहेलना नहीं देख सकता है वह पाक्षिक श्रावक होता है तथा संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग करता है परन्तु विरोधी उद्योगी और आरम्भी हिंसा से वच नहीं सकता है। इस प्रकार संकल्प का त्याग करने वाला श्रावक हिंसा अणुव्रत का धारक श्रावक होता है। ऐसा स्थूल झूठ नहीं वोलता है कि जिसके वोलने से किसी जीव के प्राण घात हो जावें

या पर द्रव्य का विनाश हो ऐसा श्रावक सत्याणुव्रत का धारक होता है जो स्थूल रूप से चोरी का त्याग करता है वह बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने के भाव नहीं करता है तथा माटी पानी को छोड़कर यदि माटी पानी पर भी किसी का प्रतिबंध हो तो उसको भी ग्रहण नहीं करता है ऐसा श्रावक अचौर्याणुव्रत का धारक होता है। जो पर स्त्रियों से तो विरक्त भाव है परन्तु अपनी विवाहिता स्त्री का त्यागी नहीं होता है जो पर महिला के रूप, रस, रंग वा वाणी नृत्य का भी आस्वादन नहीं करता है वह ब्रह्मचर्याणुव्रत का धारी श्रावक होता है। जिसने क्षेत्र वस्तु धन धान्य इत्यादि प्रकार के परिग्रह की मर्यादा का प्रमाण किया है वह श्रावक अपरिग्रहाणुव्रत का धारी है। जिसने दशों दिशाओं में आजन्म की जाने की मर्यादा करली है वह श्रावक दिग्व्रत का धारी है। जिसने रात दिन पक्ष मास की गमनागमन की मर्यादा बांधली है वह देश व्रत धारी श्रावक है। जिन्होने हिंसा दान दुश्रुति अपध्यान पापोपदेश और प्रमाद चर्या का त्याग किया है वह श्रावक अनर्थ दण्ड व्रत का धारी है। जो श्रावक अपनी शक्ति के प्रमाण कषायों व दुर्भावनाओं को रोककर समता भाव का धारक होता है वह सामयिक व्रत का धारक श्रावक व्रती होता है। तथा पर्व तिथियों में अपनी शक्ति के अनुसार उपवास करता है वह प्रोशधोप वास व्रत का धारी श्रावक है। जो भोग उपभोग की वस्तुओं की मर्यादा कर स्थिर होता है उसके भोगोपभोग नाम का व्रत होता है। तथा जो मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस प्रकार के चार संघों को दान देता है और दान देने की वाञ्छा रखता है वह अतिथि संविभाग नामक व्रत का धारी श्रावक है ये श्रावक के आठ मूल गुण तथा बारह उत्तर गुणों का संक्षेप से कथन किया गया है। इन बारह व्रतों को सम्यक्त्व पूर्वक धारण करने पर ही व्रती कहलाता है।

आगम वचन है निःशल्योव्रती। माया मिथ्या निदान रहित हो जो व्रताचरण करता है वही सच्चा व्रती है। ऐसा विकल संयम धर्म है।

जिन्होंने सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह का त्याग कर दिया है तथा हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह का मन वचन काय कृत कारित अनुमोदन से त्याग कर दिया है वे अनगार होते हैं तथा पंच समितियों का पालन करते हैं तथा पंचेन्द्रियों की विषय वासनाओं का मन, वचन, काय से त्याग कर छह आवश्यक क्रियाओं का निरतीचार पालन करते हैं तथा मनो गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति इन तीन गुप्तियों का सम्यक्त्व पूर्ण पालन करते हैं तथा अनेक प्रकार से तपों का तपना व अठारह हजार प्रकार के शीलों का पालन व गुणों का पालन व ८४ लक्ष उत्तर गुणों का पालन करने वाले सकल चरित्र के धारी साक्षात मोक्ष का कारण सकल संयम धर्म है।

इस प्रकार धर्मों की व्याख्या संक्षेप में की गई है। यह भगवान अरहंत देव के द्वारा कहा गया धर्म ही मगल रूप है तथा वही धर्म सब लोक में उत्तम है उसी धर्म को धारण कर अनन्त जीव अक्षय अविनाशी सुख को पा चुके हैं। जो जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ धर्म है वही धर्म समीचीन है तथा मलों पापों का नाश करने वाला है। वही धर्म स्मरण ग्रहण करने के योग्य है इस प्रकार धर्म की व्याख्या की गई है। जैसे जिन धर्म और धर्मो के नाम पर

हिंसा होती है यह धर्म नहीं है वह तो पाप ही है। और अनंत संसार रूपी वृक्ष की मजवूत जड़ के समान है।

आगे चैत्यालय का स्वरूप कहने को श्लोक कहते हैं।

धवलोज्वल कूटकोटि ध्वजराजि शोभते ॥
विराज मान मृद्धिवर्द्धित सुकृत मुञ्जुलि ॥१२०॥

मन्दिर के ऊपर शिखर है वह वड़ी विशाल है और शिखर के कंगूरों पर ध्वजाओं की पंक्ति लगी हैं वे सव ध्वजायें फहराती हुई हैं वे सव श्वेत और उज्वल स्फटिक मणि समान हैं। यह जिन मन्दिर अनेक ऋद्धियों का स्थान प्रतीत होता है तथा मन्दिर से ऐसा मालूम होता है कि भव्यों को अंजुलि भर कर पुण्य वाँट रहा हो तव मन्दिर को देख कर ही भव्य प्राणियों को अशुभ भाव दूर हो जाता है तथा शुभ भावों को प्रदान कर रहा हो जो शुभ भाव हैं वे ही पुण्य वंध के कारण हैं। अथवा यह मन्दिर अनेक गुणों की वृद्धि का ही कारण है ॥१२०॥

प्राकार शोभितं भूमि भागं नानामणि प्रचयम् ।
ये व्यालीढ गवाच्छ जालं निर्मलं विशालैव ।१२१॥

मन्दिर के चारों ओर कोट खींचा हुआ शोभा को प्राप्त हो रहा है जहाँ पर जिस भूमि में मन्दिर का कोट खिचा हुआ है वह भी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा है। जहाँ की भूमि अनेक मणियों से खचित है अथवा जहाँ कि भूमि रत्नों से विभूषित है अथवा रत्न जड़े हुए हैं। तथा कोट में रत्न जड़े हुए हैं जिस कोट में अनेक खिड़कियां वनी हुई हैं जिनमें हो कर प्रकाश हो रहा है व खिड़कियां वड़ी वड़ी वनी हुई हैं उन खिड़कियां में मन्दिर वेष्ठित हो शोभा को प्राप्त हो रहा है खिड़कियों से कोट की शोभा है कोट से खिड़कियां को शोभा है तथा इन दोनों से मन्दिर को शोभा है ॥१२१॥

घंटा ध्वजा तोरणं कूट कोटि कलशादण्ड सुप्रतीकम् ॥
मणिहेमरत्न समोज्ज्वलैः कलश चामरदर्पणाद्यैः ॥१२२॥

जिस मन्दिर के तोरण द्वार अत्यन्त शोभायमान सोना व चांदी के वने हुए हैं तथा उनके भीतरी भाग में अत्यन्त विशाल घंटा लगा हुआ है जिसकी ध्वनिविस्तारता को प्राप्त हो रही है तथा आगे मन्दिर के कंगूरों पर प्रति कंगूरों पर ध्वजायें फहरा रही हैं तथा जिस मन्दिर के ऊपर कलश चढ़े हुए हैं जो आकाश को स्पर्श कर रहे हैं तथा पास में ही ध्वजायें भी स्थित हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि यहां पर मंगल ही मंगल हो रहे हैं जिन ध्वजाओं को देखते ही सव अमंगल नष्ट हो जाते हैं। यह ध्वजदण्ड सुवर्ण तथा चांदी व अनेक रत्नों का वना हुआ है तथा ध्वजा उज्ज्वल हैं वे कह रही हैं कि भगवान का उज्ज्वल यश तीनों लोकों में फ़ैल रहा है यह प्रत्यक्ष रूप से दिखा रही हैं। उस मन्दिर में आठ महामंगल द्रव्यें भी विराजमान हैं वे आठ मंगल द्रव्यें कलश, चामर, छत्र, दर्पण, पंखा, ध्वजा, धूपदान और ठोना भारी इन मंगल द्रव्यों से विभूषित हैं ॥१२२॥

मेघायमानं गगने पवन विधातचञ्चच्चलविमलं ॥
ध्वज सुप्रतीकं यथा सराज्वलदिगंतरालैः ।१२३॥

वे ध्वजायें भगवान के समवसरण के मन्दिर में एक सौआठ होती हैं वे ध्वजायें

हवा के चलने से चंचल होती है अथवा फहराती हुई आकाश को स्पर्शन कर रही है। वे ध्वजायें इतनी ऊँची हैं कि मेघों से घिरी हुई हैं। तथा आश्विन मास में जिस प्रकार पानी एकदम स्वच्छ हो धवलता को प्राप्त होता है उसी प्रकार ध्वजायें भी धवलता को प्राप्त हैं। तथा जो दूर से दिखाई देती हैं। मन्दिर की दीवारें अनेक प्रकार के रंगवाली मणियों से विभूषित हैं तथा सिंहासन अनेक मणियों से निर्मित हुआ है। वह वेदिका के अन्दर ही है। वेदिका के शिखर के ऊपर सुवर्ण के कलश चढ़े हुए हैं तथा वेदिका अनेक चित्र-विचित्र मणियों की बनी है। उनमें जो चित्र बनें हुए हैं वे ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो साक्षात् नाग कुमारी देवियां गा रही हों, वीणा बजा रही हों, गंधर्वदेव ही गान कर रहे हों अथवा वीणा बांसुरी सारंगी मुजर ढोलक मंजीरा तथा घुंघुरू इत्यादि अनेक रत्नों के बने हुए हैं। मन्दिर का कोट भी अनेक रत्नों से शोभायमान है तथा मन्दिर का फर्श सुन्दर-सुन्दर रत्न-पत्थरों से बना हुआ है। तथा जिसमें अनेक प्रकार के चित्र व फूल-पत्ते लगे हुए हैं। मन्दिर का दरवाजा लघु है जिसमें प्रवेश करने के लिए कुछ नीचे झुकना पड़ता है। इस प्रकार जिन चैत्यालय का कथन किया। इन नव देवताओं की पूजा भक्ति जो मन, वचन, काय से करते हैं उनको ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

आगे आठ मदों के नाम उल्लेख करते हैं।

ज्ञानं पूजा कुलं जातिः बलमृद्धि तपोवपुः
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयाहुर्गतस्मया ॥२५॥ रत्न करण्ड श्रावकाचार।

ज्ञान मद, पूजा मद, कुल मद, जाति मद, बल मद, ऋद्धि मद, तप मद, वपु मद— ये आठ मदों को नाश करने वाले अरहंत देव ने कहे हैं। इन आठों का आश्रय लेकर मान करने को मद कहते हैं।

जानामि मया स्वशक्त्या कोऽपि किंचिदपि च सर्वे नरोऽज्ञः।
नवदामि क्वचिदपि च तत् सर्वे जनाममाश्रयन्ति ॥१२४॥
सर्वे यजन्ति ममाज्ञा नोल्लंघयन्ति कदापि च सास्वतम्।
यत्र व्रजामि तत्र इच्छन्ति जना सुभक्त्या माम् ॥ १२५॥

इस लोक में अथवा परदेश नगर शहर में व ग्राम में मेरे समान विद्वान कोई नहीं है जितना मैं शास्त्रों को जानता हूं उतना कोई नहीं जानता है मैं एक अपूर्व विद्वान हूं। मैंने किसी के पास विद्या अध्ययन नहीं किया है मैंने तो स्वयम् ही सब पढ़ लिया है। मेरे समान पुरुषार्थ करने वाला कोई नहीं है। यहां पर ऐसा कोई नहीं है जो मेरे समान ज्ञानवान हो व नीतिवान हो। अपने को विद्वान मानकर मान करते हैं वे क्या मेरे समान हैं। उनको तो कुछ भी ज्ञान नहीं है वे हमारे को क्या पढ़ा सकते हैं वे तो स्वयम् ही अविज्ञ हैं। वे सब के सब निरे मूर्ख ही मूर्ख हैं क्या मैं मूर्खों से वाद करूँ। मैं तो उनसे कुछ भी नहीं कहूंगा। क्योंकि उनको क्रिया का कुछ भी विवेक नहीं। वह तो महा मूर्ख हैं। सब जन तो हमको ही बुलाते हैं और हमारे पास ही आते जाते हैं। उनके विषय में क्या कहूं मैं उनसे कम विद्या नहीं पढ़ा हूं मैं तो उनसे भी अधिक मात्रा में पढ़ा हूं उनको क्या विचारूँ वे तो स्वयं अज्ञ हैं।

यदि मैं अपनी विद्या को दूसरों को वता हूं तो सव विद्वान वन जायेंगे फिर मेरा कौन आदर करेगा। इस प्रकार अपने ज्ञान मद में मत्त होकर विद्वानों का तिरस्कार करना ही ज्ञान मद है। अथवा अपने अध्ययन करने वाले गुरु का नाम नहीं वताना यह ज्ञान मद है। सव जगह मेरी लोग प्रतीक्षा करते हैं जैसी मेरी पूजा व सत्कार होता है वैसा अन्य विद्वान का नहीं होता है। तथा मेरी आज्ञा का कोई भी उलंघन नहीं करता है। जहां मैं जाता हूं वहां सव लोग मुझको ही चाहते हैं तथा मेरा आदर करते हैं। मैं ही जगत में एक पूज्य विद्वान हूं मैं ही पूजने योग्य विद्वान शिरोमणि हूं। मैं ही आदर करने योग्य हूँ इस प्रकार अपनी कीर्ति का व गुणों का गान करना यह ज्ञानमद है जो दूसरे विद्वानों के गुणों को व यश को सहन नहीं करता है न विद्वानों का आदर सत्कार ही करता है वह मूढ ज्ञान मद का धारी है। मेरे को ही राजा वुलाता है आदर करता है व धार्मिक चर्चा करता है इस प्रकार अपने ज्ञान मद में मत्त रहना यह ज्ञान मद है।१२४।।

मेरी आज्ञा का कोई भी उलंघन नहीं कर सकता है मेरी वात को राजा भी मानता है और राजा मुझको अपने वरावर ही वैठाता है। मैं जो आज्ञा देता हूं उसको राजा भी स्वीकार करता है। जहां मैं जाता हूं वहीं के लोग सव एकत्र हो मेरा विनय सत्कार करते हैं। तथा वे मेरी आज्ञा का कभी भी उलंघन नहीं करते हैं। मैं कहीं भी जाऊँ पर वहां वड़ा ही आदर करते हैं। जहां मैं जाऊँ वहाँ सव ही मेरी पूजा करते हैं मुझको अपने देवता के समान मानते हैं और जिस प्रकार देवता की पूजा करते हैं उसी प्रकार मेरी पूजा करते हैं। जहाँ कहीं भी मैं जाता हूँ वहीं के लोग मुझको चाहते हैं। मैं ही एक महापुरुष हूं और मैं ही गुरु हूं मैं ही आदर करने योग्य हूँ इस प्रकार अपनी कीर्ति का गुणगान करना यह पूजा मद है। तथा पूज्य पुरुषों का निरादर करना व गुरुओं के प्रति विनय नहीं करना आदर वुद्धि न होना ही पूजा मद है। मुझको राजा भी मानता है मैं तो राज्यमान्य हूं पर मैं उन दीन हीन पुरुषों का क्या आदर विनय करूँ सव हंसेंगे इस प्रकार की मन में भावना का होना ही पूजा मद है ।।१२५।।

उज्वलं मम प्रधानमपिपरं परोच्चंयादाधिकारः।
सर्वेषां कुलमकिं आध्यक्ष चिराल्लोकेऽन्यः। १२६ ।।

मेरा कुल सव कुलों में श्रेष्ठ व पूजनीय है, मेरे कुल में परंपरा से राजा अधिराज महाराजा होते आये हैं। हमारे तो कुल की परिपाटी ही ऐसी है कि जिसमें कोई न कोई राजा अवश्य होता ही आया है। अभी भी राजा हैं हम किसी से कम नहीं हैं। हमारा भाई प्रधान मंत्री है, सेनापति है, कलक्टर है। अन्य दीगर कुलों में कोई भी ऐसा मानव नहीं है जैसाकि हमारे कुल में है। कहो किस के कुल में प्रधान मंत्री तथा सभा का अध्यक्ष है वह-तो कुलोज्वल ही नहीं है। यदि आप कहेंगे तो मैं उनसे कह दूंगा तव तुम्हारा यहाँ रहना ही मुश्किल हो जायेगा। देखो अमुक के कुल में कैसा कलंक लगा हुआ है वह कुल इस प्रकार का है उन्होंने ऐसा व्यवाहर उसके साथ किया है ऐसा मेरे साथ करते तो आज ही उनको जेल का दरवाजा दिखवा देता। यदि तुम कुछ मेरे से कहोगे मैं तुम्हारी

शिकायत कर दूंगा इत्यादि प्रकार अपने कुल का गर्व करना यह कुल मद है। इस प्रकार अन्य कुलों को नीचा बताने का भाव होना तथा उच्चपद का मान होना यह कुल मद है सो अनेक कोटि में वैर और द्वेष वढ़ाने वाला है तथा संसार का ही कारण है। १२६।।

मम मातुलो नृपोच्च पदाधिकार स्वभावान्नित्यं ।।
कोऽपि च भाग्यवान ममासादृशं जाति मदं ।१२७।।

मेरे मामा के वंश में कोई न कोई राजा व सेनापति अवश्य ही होता रहा है। पहले नाना था अब मेरा मामा राजा है तथा मेरा भाई सेनापति है। मेरा मामा प्रधान मंत्री है मेरा नाना कलक्टर है तथा मेरा ममेरा भाई कलक्टर है यदि तुमने मुझसे कुछ कहा तो मैं तुम्हें बहुत दण्ड दिलाऊंगा। मेरे मामा की कीर्ति सब जगह फैली हुई है तथा मेरे मामा को ऐसा कौन है जो नहीं जानता हो क्योंकि वे तो प्रसिद्ध पुरुष हैं मेरे मामा का कुल तो उच्च कुल है मेरा नाना ही तो इस ग्राम वा नगर का प्रधान है सव लोग उसकी आज्ञा का पालन करते हैं मेरे नाना बड़े विद्वान हैं जिनकी राय बड़े-बड़े लोग लेने के लिए आया करते हैं तुम जानते नहीं हो वे तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यदि मेरे को छेड़ा तो समझ लेना नहीं तो लेना का देना पड़ जायेगा ऐसा अहंकार कर अन्य का तिरस्कार करना जाति मद है। यह भी वैर और द्वेष का कारण है।

घोराति घोरमतर्यरिन मादृश् लोके तपश्विनः पश्य।।
मयाकृतवान् शार्दूल विक्रीडितं च मेघ माला ।। १२८ ।।

मैंने अपने जीवन में महान् घोर तपस्या की है। पक्षोपवास मासोपवास व प्रथम रत्न पंक्ति तप किया, रत्नावली तप किया चंद्रायण तप किया शार्दूल विक्रीडित व रोहिणी व्रत किया तथा पंचमेरु व श्रेणी बंधित व्रत किया इस प्रकार व्रत करने की आज कौन की हिम्मत है। मेघमाला कनकावली व्रत के उपवास अनेक बार किये तथा दशलक्षण व रत्नत्रय अष्टाह्निका के उपवास किये मेरे समान कोई भी तपस्वी नहीं है एक दो उपवास कर लिये और कहने लगे कि हमने उपवास किये। हम तो तब जाने कि हमारे समान व्रत करें ? जब हमारे समान तपस्या करोगे तब तुमको पता चलेगा। यह तप ऐसे ही नहीं हो जाता है। मेरे समान तपस्या करने वाला कोई जन्मा ही नहीं है इस प्रकार का मद होना कि मेरे समान उत्कृट तप करने वाले हो नहीं सकते यह तप मद है। किये हुए तप को सरसों की खल के समान बना देता है। अथवा सार रहित कर देता है ।।१२८।।

पश्यत्वं मम सदृशं वं परम धैर्य बलं गम्भीरं किं ।
निग्रहे वीरान मही तले पातमनेक वाराम् । १२९ ।।
यामि गगने च भूमौ पुण्पहारंशृंगारं मा पातं ।
सर्पिरस सरसं मनोज्ञं ममार्द्धि समृद्धितः प्रभा । १३० ।

आप तो जानते ही नहीं कि मेरे में कितनी धैर्यता है, मैं बड़ा बलवान हूं, मेरे समान कोई बलवान नहीं है, मैंने अनेक बार अखाड़ों में जा जा कर कुस्तियां लड़ीं और देखते देखते अच्छे अच्छों को धराशाही बना दिया अथवा कुस्तियां जीतीं। इस प्रकार

मान करना यह वल मद है। तुम मेरी भुजाओं की तरफ देखो कि मेरी भुजायें वल से स्फुराय मान हो रही हैं मैं वड़ा ही गंम्भीर हूं किसी के हिलाये हिलता नहीं हूं अपने पुरुपार्थ से सव युद्धों में विजय की मेरी पताका फहराई थी, मैंने अनेक राजाओं के दल वल को क्षीण कर दिया है और वांध लिया। कभी कहता है मेरा फरसा या तलवार ऐसी है।, जिसके सामने किसी का पार नहीं वसाता है अपने वल के मद में देह को अकड़ा कर चलता है वह जगत को अपने से निर्वल व धैर्यतारहित गंम्भीरता रहित समझता है। अव अपनी ही वढ़ाई और वल का अहंकार करता है। तथा वड़े व छोटे का तिरस्कार करता है ऐसा वल मत्त पुरुष अपनी ही मैं करता है यह वल मद भी दुर्गति का कारण है ।। १२९ ।।

मुझे मेरी तपस्या के प्रभाव से अनेक ऋद्धि प्राप्त हो गई हैं, जिनका प्रभाव तुम क्या जान सकते हो, मेरे में वहुत ताकत है, मैं आकाश और जमीन को पलट दूँ। मेरे हाथ में आते ही पानी घी के समान मधुर स्वादिष्ट वन जाता है, तथा मैं अपनी ऋद्धि के प्रभाव के वल से कहीं भी जा सकता हूं, मेरे चलने पर मेरा शरीर फूलों की माला के समान सुन्दर शृंगार सहित दिखाई देता है अथवा अँधेरे में भी चमकता है। तथा मेरे शरीर से फूलहार भी विनाश को प्राप्त नहीं होया हैं तथा वृक्ष और लतायें अपने खिले हुए फूलों से ऐसी दिखाई देती हैं कि मानो शृंगार करके नव वधू अपने ससुराल को ही जा रही हो ऐसे वृक्षों पर व लताओं पर चलने पर भी मेरे शरीर से उनको वाधा नहीं आ सकती है ये सव मेरे ऋद्धि का ही प्रभाव है मेरे में ऋद्धियों की समृद्धि है, इसका ही महात्म्य विशेप है आप जानते नहीं कि मैं कितना ऋद्धि वाला हूं इस प्रकार ऋद्धि मद है, यह सम्यक्त्व गुण का विरोधी दूषण है ।।१३०।।

मम रूपं दृष्ट्वा कोऽपि नवयुवतयौमने तृप्ति न पिवान् ।।
पुनस्ताः पश्यन्ति माँ किं लावण्य स्व प्रशंसा ।। १३१ ।।
यत्करोत्यहंकारं वाचालो मन्यते स्वं श्रेष्ठं ।
व्यक्ताव्यक्तं चित्तं विनय विहीनमधमो नराः । १३२ ।।

मेरे रूप और सुन्दरता को देख कर सव यौवन से युक्त स्त्रियां मोहित हो जाती हैं, और मुझको ही वार-वार देखती हैं, तो भी उनका मन तृप्त नहीं होता है। मेरी सुन्दरता व मेरे शरीर के समान सुन्दर समचतुर संस्थान किसी के नहीं हैं। मेरा रंग गोरा व सुन्दर है मैं अपने रूप से कामदेव को भी तिरस्कार करता हूं। अपने रूप के पीछे सवसे घृणा करता है यह रूप मद है। १३१ ।।

जो कोई अहंकार करता है तथा अपने सगुण गुरु तप ऋद्धि और ज्ञान गुरुओं का तिरस्कार करता है, विनय रहित होता है, वह संसार में अत्यन्त निन्दा का पात्र वन जाता है। जो मान करता है उसका तिरस्कार अवश्य होता है, उससे सव लोग घृणा करने लग जाते हैं, जो मनुष्य अहंकार करता है, तथा वकवाद करता है, वह दुष्टाचरणों का धारक कहा जाता है। व्यक्त, अव्यक्त, मान, कषाय दोनों ही प्रकार का मान कषाय जीवों को नीचा

दिखाता है तथा नीच गति व वैर का कारण है। जो मदोन्मत्त हैं वे ही अपने गुणों का गान किया करते हैं तथा अपने को ही श्रेष्ठ और उच्च विवेकवान, कुलवान, जातिवान; और धर्मात्मा व दयालू व धनवान मानते रहते हैं, तथा ऋद्धि व रस गौरव सात गाख से युक्त श्रेष्ठ मानते हैं—परन्तु वे सज्जनों की दृष्टि में अविनयी अधम गिने जाते हैं। जिनके ये मदविद्यमान रहते हैं। उनको सम्यक्त्व की प्राप्ति और वृद्धि भी नहीं हो सकती है। न वे संक्लिष्टता से ही दूर जा सकते हैं। जब संक्लिष्टता दूर होगी तब ही सम्यक्त्व की प्राप्ति और उज्ज्वलता होगी। यदि किसी को सम्यक्त्व उपशम हो जाय तो मान कषाय के उदय में आते ही सम्यक्त्व रूप शिखर से उसी समय गिर जाता है और मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। अथवा मान संज्वलन उदय में आ जाने पर उपशम श्रेणी से चढने वाला जीव गिर जाता है; क्रम से गिरता हुआ मिथ्यात्व में भी आ सकता है, इसलिए मान कषाय सब गुणों का नाश करने वाला है। आत्मा के सम्यक्त्व गुण व चरित्र गुण के साथ ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, वेदनीय मोहनीय और अंतराय इन कर्मों की दीर्घ स्थिति बंध का भी साथ ही कारण है। जो प्राणी उपशम व क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर चुका है, जिस काल में अनंतानुबंधी मान कषाय व अन्य मान की संयोगिनी कषायों के उदय में आने पर सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र से जीव भ्रष्ट हो जाता है तथा मिथ्यादृष्टि बन जाता है यह मान कषाय के आठ भेद हैं, परन्तु और भी अनेक भेद हैं, वे भी इन में गर्भित हो जाते हैं इन सब मान कषायों को छोड़ देने पर सब गुणों की प्राप्ति और वृद्धि होती है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है, तब ही आत्मा का सम्यक्त्व स्थिर रह सकता है। अन्यथा नहीं रह सकता है। इसलिए इन मदों को सम्यक्त्व का मूल घातक कहा गया है ॥ १३२ ॥

आगे सम्यक्त्व के आठ दोषों को कहते हैं जिन में पहला शंका दोष है।

कोऽपि भ्रान्ते मन्यते हिरण्यं किं शीपं निर्णयं मा।
तथा जिनोक्तं मोक्षः निर्ग्रंथेन च स ग्रन्थेन ॥१३३॥

कोई मोही भ्रम बुद्धि से दूर से देख रहा था कि एक कोई वस्तु पड़ी है उस पर उसकी दृष्टि एकाएक पड़ गई तब विचार करने लगा कि यह चांदी है अथवा शीप है। कभी कहता है शीप है कभी कहता है कि यह चांदी दोनों का निर्णय करने में समर्थ नहीं हो सका न उसके समीप तक ही गया। उसी प्रकार अज्ञानी जीव विचार करता है कि भगवान ने सग्रन्थ लिंग से अथवा निर्ग्रंथ लिंग से मोक्ष कहा है। परन्तु अनेक कोटि में संशय रूपी जाल में फँस जाता है इसमें सत्य कौन असत्य कौन है। इस वस्तु अवस्तु के विषय में संशययुक्त रहना, यह शंका रूप नाम का सम्यक्त्व का दोष है। कोई अज्ञानी यह संशय उत्पन्न करते हैं, कि अन्य मतों में यह कहा गया है, कि पृथ्वी को ब्रह्मा ने बनाया और शेषनाग के ऊपर स्थित है। तथा जैन धर्म यह कहता है कि सृष्टि स्वयं सिद्ध अनादि निधन है इसका कोई कर्ता व हरता नहीं है यह वातवलयों के आधार से रुकी हुई इस प्रकार के विकल्पों के करते हुए यथार्थ वस्तु का निर्णय नहीं करना यह शंकित नाम का मल है ॥ १३३ ॥

ये निरता विषय सुखे दानं शीलंतपश्चरणं व्रतम् ।
इच्छन्ति मलं लोलुपः विष्णुप्रति विष्णुरिन्द्रादि ॥१३४॥

कोई अज्ञानी पंचेन्द्रियों के भोगों में आशक्त किये गये आहार दान, ओषधी दान, विद्या दान व अभय दान व उपकरण दान देकर उसके फल की इच्छा करता है कि मैं राजा बन जाऊँ व शीलों का पालन कर मैं शील के प्रभाव से इन्द्र बन जाऊँ तब तो अच्छा हो। इस तपश्चरण के प्रभाव से मरणकर चक्रवर्ती होऊँ व नारायण, प्रति नारायण, बलदेव या कामदेव हो जाऊँ ऐसी इच्छा का होना ही कांछा है। यह अज्ञानी पंचेन्द्रिय विषय लंपटी मनुष्य जिस व्रत, तप, दान का फल मोक्ष था उसको छोड़कर पत्ते बटोर कर फल की इच्छा करता है। यह काञ्छा नाम का सम्यक्त्व का अति चार है। सम्यक्त्व का मल है, जिस तप से मोक्ष की प्राप्ति होती है क्या उससे संसार के उत्तम पद नहीं मिल सकते हैं? अवश्य ही मिल सकते हैं। जिस किसान के धान्य आता है उसको पुआल भूसा कभी नहीं मिलती है? ॥१३४॥

अवलोक्यं निर्ग्रन्थान्, मलामाच्छादितंगात्रं दन्तमलम् ।
दुराशाः निदन्ति तत् पश्यति न तेषां गुणानाम् ॥१३५॥

दुराग्रही अज्ञानी मनुष्य सुतप करने वाले योगीश्वरों के अनेक प्रकार के गुणों को नहीं देखते हुए उनके ऊपरी शरीर के मलों को ही देखते हैं, तथा दांतों के ऊपर मैल लगा हुआ है उसकी ओर दृष्टि डालते हैं, एवं उनके कृश शरीर को देखकर घृणा करते हैं।

बड़े ही धूर्त हैं कितने गंदे व दुर्गन्धमय हैं इनके सब शरीर में से पसीना निकल रहा है दुर्गन्ध आ रही है, जिनके पास भी बैठने का जी नहीं चाहता है, बैठने पर दुर्गन्ध आती है मुख में से भी दुर्गन्ध आती है। और दांतों के ऊपर कितना मैल लगा हुआ है। देखो ये दांतों को स्वच्छ नहीं करते हैं। ये तो बड़े मूर्ख हैं कि अपने शरीर पर इतना मैल लगा हुआ होने पर भी पानी से नहीं धोते हैं क्या इनको पानी भी नहीं मिलता है, जिससे ये इतने गंदे हैं। ये तो बड़े ही धूर्त व हठी मानवों में से हैं। ये काम धाम तो कुछ भी करते नहीं हैं गृहस्थों के घर जाकर माल खा पीकर मस्त हो जाते हैं, परन्तु ये तो नहाते व मुख की व दांतों की सफाई भी नहीं करते हैं। चाहे जहां तहाँ जाते हैं वहाँ नंगे ही जाया करते हैं, न इनको शर्म लगती है, न इनको कुछ सोच विचार ही होता है। कि बाल वृद्ध युवतीयों के बीच में जावें। देखो ये बड़े ही निर्दयी हैं कि धूप में बैठे ही हैं खड़े हैं तो खड़े ही रहते हैं ये शीत व उष्णता को नहीं देखते हैं। इस प्रकार करने से क्या लाभ है। तथा कोई कहता है कि मुनिराज पंखा के नीचे बैठे थे वे सिगड़ी से ताप कर सकते हैं क्या? वे तो शास्त्र के छपाने के लिए रुपया इकट्ठा करने में लगे हुए हैं। इनको शास्त्रों से क्या प्रयोजन है शास्त्र तो श्रावक अपने आप ही छपवालेंगे। हमने देखा था कि उनके पास रसीद कट्टा रक्खा था। वे तो यहाँ ऊपर ही दिन रात रहते हैं वे तो नगर में भी नहीं आते, क्या उनको पहाड़ पर ही रहना ठीक है? साधुओं को नृत्यकार का नृत्य देखना व गाना सुनना कितना और कहाँ तक ठीक है वे रात्रिमें पढ़ते हैं लिखते हैं क्या उनको ऐसा करना

चाहिए। सब शास्त्रों के विरुद्ध है। वे कलम व पेन से लिखते हैं क्या तोलिये से हाथ पोछना या पुछवाना ठीक है उनको तो शरीर से कपड़ा लगने देने ही नहीं था। वे तो स्त्रियों से पैर धुलवाते हैं तथा स्त्रियों से आहार लेते हैं क्या यह ठीक है? जब कि स्त्रियों को सात हाथ दूरी पर मुनियों से रहने का शास्त्र में लिखा है।

आचार्य कहते हैं कि अज्ञानी मोही जीव उन गुणों के भण्डार साधुओं के दुर्गुणों को देखते हैं परन्तु अपने दुर्गुणों के ऊपर जरा भी दृष्टि नहीं डालते। जिसका वस्त्र सफेद है उसपर यदि नील का दाग लग जावे उस दाग को देखकर निरादर करते हैं, कहते हैं कि देखना कितना दोष है परन्तु अपने वस्त्रों की तरफ नहीं देखता है कि मेरा सारा कपड़ा ही काला है। कोई अज्ञानी कहता है कि हम तो परीक्षा करके ही आहार दान देवेंगे। ये साधु द्रव्य लिंग के धारण करने वाले हैं ये भाव लिंगी होवेंगे तो हम दान देवेंगे। इस प्रकार गुणों पर दृष्टि नहीं डालते परन्तु ऊपर के आडंम्बर को ही देखकर घृणा करते हैं। आडम्बर को देख निंदा करते हैं। दोषारोपण करते हैं, कभी कोढ़ी भी कह देते हैं इस प्रकार संयमी योगियों की निंदा करना यह सम्यक्त्व गुण का महान दूषण हैं। यथार्थ वस्तु स्वरूप का विराधक तथा अवस्तु के पोषकपना ही दीर्घ काल तक संसार में भ्रमण का कारण है। इसलिए भव्य जीवों को दोष नहीं देखना चाहिए न घृणा ही करना चाहिए। हमेशा गुणों के ग्राहक बनना चाहिए जो गुणों पर दृष्टि नहीं डालते हैं वे छुद्रनीच कहलाते हैं। तथा उनके चिकित्सा नाम का सम्यक्त्व का दूषण होता है ॥१३५॥

मायापि पश्यं विभूतिं संस्तव मनुजाश्च निर्विवेकाः।
कुदानंतपोव्रतानि मन्यते श्रेष्ठं कुदृष्टिभिः ॥ १३६ ॥

लौकिक साधुओं की मायाचारी को न जानता हुआ उनके माया जाल में फँस जाते हैं। वे साधु अपनी विद्यावल को अनेक प्रकार से लोगों को दिखाकर रिझाने का प्रयत्न करते हैं। और अज्ञानी जब उनके चक्कर में आ जाया करते हैं तथा अपनी चेटक विद्याओं का प्रयोग कर अनेक प्रकार का वैभव दिखाते हैं। एक गांव में एक जटाधारी साधु आया था उसने कहा कि मैं एक लंवंग लेकर पानी पीकर रहता हूं। मैं अन्न फल फूल दूध दही कुछ भी नहीं खाता हूं। यह कहानी सुनकर सब लोग बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये। तथा यह चर्चा धीरे-धीरे सारे ग्राम में फैल गई सब लोग साधु के दर्शन कर आनंद मानते थे। कुछ दिन बीत गये साधु महात्मा के पास भीड़ बढ़ने लगी और बाबा जी के पास एक युवक आने लगा बाबा जी रुपयों को एकत्र कर रखते जाते थे। कहते थे कि यहाँ एक जगह बनवानी है। अब बाबा जी को छह महीना हो गये थे। एक दिन सब लोग आपस में विचार करने लगे कि बाबा तो बड़े महान हैं देखो बिना अन्न के एक लौंग पर रहते हुए छह महीना हो गये हमसे तो एक दिन भी नहीं रहा जाता है। और बाबाजी का शरीर भी दुबला नहीं होता है। एक दिन एक युवक रात के मध्य में उसकी परीक्षार्थ निकल पड़ा और बाबा जी की सारी रात्रि देख-रेख की, जब रात्रि के एक बज रहा था कि बाबा जी ने धूनी को छोड़ कर कमण्डल उठाया और शौच गये और शौच से आकर हाथ पाँव

धोए और कमण्डल में पानी भरा और आसन के नीचे रक्खे हुए लड्डू निकाले और खाकर पानी भी पी लिया एवं वहीं पैर फैला कर सो गये। दूसरे दिन वही समय था कि वावा जी ने देखा कि अवतो यहाँ कोई नहीं है वे उठकर शौच गये थे कि युवकों ने आसन के नीचे से मय वर्तन के लाड़ू निकाल लिये थे। इस प्रकार के मायावी लोगों की चमत्कारियों को न जानते हुए उनकी मायाचारी को भी सत्य मानना व उनके चक्कर में फँस जाना पूजा करना दान देना परम गुरु मानना व स्तुति करना यह सव मूढ़ दृष्टि है। अन्य मिथ्यादृष्टि के तप को देख कर प्रशंसा करना कि वे देखो कितने तपस्वी हैं, वे पंचाग्नि तप तापसी हैं, वे वहुत गुणवान हैं, इत्यादि के प्रशंसा करना यह मूढ़ दृष्टि दोष है। जो कुल कुदान कुव्रत कुध्यानों को ही श्रेष्ठ मानते हैं वे उनके धारण करने वाले सव मूढ़ कुदृष्टि हैं वे अनंत काल तक मिथ्मात्व को धारण कर संसार में भ्रमण करेगें। तथा नरकादि कुगतियों में परिभ्रमण करेंगें ॥१३६॥

हिंसाऽऽरम्भेषु ये स्थिताः जटाऽऽयुद्धाऽवलादिषु।
कंदमूलादि सेवन्ते माद्यकादि प्रशंसनम् ॥१३७॥

जो हिंसा आरम्भ में तल्लीन हैं वे खेती करते हैं व कराते हैं मकान मठ कुटी वनाने रूप आरम्भ में लगे हुए रहते हैं, तथा खेतों में चरस जोतकर पानी की सिंचाई करते हैं, जो जमीन के खोदने में अग्नि के जलाने में पानी भरने में तथा विना छना पानी पीने और स्नान करने में ही रत रहते हैं। जो हाथी घोड़ा रखते हैं, पालन करते हैं, उनके ऊपर चढ़कर गमन करते हैं। तथा गाय भैंस वकरी रखते हैं और उसका दूध निकाल-निकाल कर पीते हुए उन गायों के लिए चारा पानी लाने में रत रहते हैं। गाय वैल को वेचते हैं। जो रात्रि में हाथों से वनाते हैं और आप भी खालेते हैं तथा वना कर दूसरों को खिलाते हैं। जो नदी, तालाव, कुआँ, वावड़ी और समुद्र में कूद गोता मार-मार कर स्नान करते हैं। तथा वस्त्रों को सोडा सावुन इत्यादि लगाकर धोते हैं। सर्प विच्छू खानखजूरा आदि उनको दिख जावे तो वे तुरन्त ही मार डालते हैं वे निर्दयता से युक्त होते हैं; उनके हृदय में दया का अंश भी नहीं होता है, तथा महन्त वनने की अभिलाषा से वे वहां के निवासियों को मरवा डालते है वे निर्दयी पाखण्डी हैं।

जो मस्तक पर लम्वे लम्वे जटा धारण करते हैं, दाढ़ी मूंछ रखते हैं तथा हाथ में चीमटा कुशा फर्शा लाठी और नारियल का खप्पर रखते हैं, एवं चर्म की चादर को विछाते हैं और पहनते हैं ओढ़ते भी हैं तथा उसको मृगछाला कहते हैं वे सव कुलिंगी हैं। जो पीताम्वर व रक्ताम्वर मृगछाला व श्वेताम्वर व ऊनी वस्त्र धारण करते हैं, तथा जो मुख पट्टी पात्री व लाठी रखते हैं वे कुदृष्टि हैं। जो कांच माटी व रुद्राक्ष की मालायें व अव्रत पत्थर की मालायें धारण करते हैं, गुहेरा सर्पों को अपने गले में लटकाये रहते हैं डमरु और त्रिशूल धारण करते हैं, जो वैल पर वैठते हैं, तथा स्त्री को साथ में रखते हैं, दिन रात प्यारी प्यारी रटते हैं, तथा स्त्रियों में आशक्त जिनका चित्त रहता है, या जो स्त्रियों में आशक्त रहते हैं तथा भोगों की अभिलापा करते हैं, शरीर पर भस्म रमाते हैं, अग्नि जला कर पंचाग्नि

तप करते हैं बबूल के कांटों पर सोते हैं वे पैसा के लालची होते हैं तथा परिग्रह में आशक्त होते हैं वे कुदृष्टि हैं।

जो खुदा, आदिम व अल्लाह के नाम पर विचारे दीन हीन पशुओं के गले को काट-काट कर डाल देते हैं जिससे वे अत्यन्त दुःखी होते हुए विलवलाट करते हुए तड़प-तड़प कर मरते हैं उसमें होने वाली हिंसाको कहते हैं कि हमने कुर्वानी की थी खुदा व आदिम रहीम की यही आज्ञा थी इसमें कुछ दोष नहीं है। जब वे जानवर मुर्गी, मुर्गा, गाय, वैल, वकरा, वकरी, भेड़, मैढा, इत्यादि मर जाते हैं तब वे मुल्ला काजी फकीर पेगम्वर सव उनके शरीर से मांस निकालकर आप खा जाते हैं और उसको खाने में आनंद मानते हैं। ये सव कुदृष्टि है। जो जंगलों में रह कर वहाँ की वनस्पतियों की जड़ कांटों को खोद कर लाते हैं और उन कन्दों (खोद) को कच्चा व पका कर खाते हैं। व कोमल वृक्षों की छाल व पत्तों को निकाल कर खाते हैं। तथा जंगलों के वृक्षों के फूल पत्ते व फलों को तोड़कर खाते हैं। वृक्षों के पत्तों को तोड़कर खाते हैं, ओढते हैं, बिछाते हैं व झोपड़ी बनाकर निवास करते हैं कुत्ता और बिल्लियों को पालते हैं। तथा कुत्ता बिल्लियों के साथ खाते हैं। वे कुलिंगी मिथ्यादृष्टि हैं। जो शराव भांग धतूरा व अन्य वनस्पतियों को घोट-घोट कर पीते हैं व खाते हैं तथा नशा अफीम कोकीन खाते हैं व गांजा धतूरा व शंखिया सुलफा इत्यादि अमलों को चिलम हुक्का आदि में रखकर दम लगाते हैं वे कुदृष्टि हैं। तथा जो नशवार सूंघते हैं सिगरेट बीड़ी तम्बाकू खाते हैं पीते हैं व हुक्का में रख उसकी स्वास के द्वारा अपने पेट में धुआं ले जाते हैं जिससे नशायुक्त हो जाते हैं व नशे में चकना चूर हो जाते हैं और कहते हैं यह महादेव की बूटी है इनका सेवन करना ही परमार्थ है तथा जब नशा अधिक हो जाता है और वे कुछ का कुछ कहने लग जाते हैं आपस में नाना प्रकार की खोटी बातें कहा करते हैं जव कोई स्त्री दीख जावे तो उसको रण्डा-रण्डा कह कर पुकारते हैं तथा गालियां देने लगते हैं और पर रमणियों के साथ विषय भोग भी करने लग जाते हैं वे कुदृष्टि पाखण्डी हैं। उनकी प्रशंसा करना कीर्ति गुणगान करना और उनको भलामान आदर सत्कार विनय करना यह अन्य दृष्टि प्रशंसा नाम का सम्यकत्व का दूषण हैं। जो अपने को नागा कहते हैं दिगम्बर रहते हैं ध्वजा दण्ड चीमटा फर्सा कुसा रखते हुए अपनी लिंगी में छल्ला पहने रहते हैं। तथा जिन्होंने अपने कान फाड़ लिये हैं और उनमें वाला पहन लिये हैं भगवा वस्त्र धारण कर लिये हैं। हाथ में खप्पर सिर पर जटा बगल में मृगछाला गले में रूद्राक्ष की माला तथा हाथी की सवारी तथा बाईं तरफ स्त्री है वे कहते हैं कि जगत कोई वस्तु नहीं है जगत शून्य है। कुछ भी नहीं किंचित् भी नहीं है वे कुदृष्टि हैं। पीत रक्त वस्त्र के धारक कहते हैं कि संसार में जीव क्षण-क्षण में बदल जाता है ऐसे कहने वाले कुदृष्टि हैं जो हिंसा करके यज्ञ की गई है उसको ही मोक्ष देने वाली मानते हैं यही मोक्ष का साधन है तथा अन्य प्रकार से भी कुदृष्टियों का स्वरूप जानकर इनकी प्रशंसा स्तवन व कीर्ति का गान नहीं करना चाहिये, यदि करे तो महापापात्व होगा जिससे अनंत संसार में भ्रमण करना होगा तथा प्रशंसा करने वाला इस प्रकार डूव जायेगा जैसे पत्थर की नौका डूब जाती है और बैठने वाला भी डूब जाता है। जिनका स्तवन गुणगान

किया गया है वे तथा गुणगान करने वाले दोनों ही दुर्गति गामी होते हैं यह कुदृष्टि स्तवन नाम का सम्यक्त्व का दूषण है ।।१३७।।

कुदेवपूजकाः बिम्बं कुतपः धरकाश्चयत् ।।
कुचैत्यालय पूजकाएषां शो शेवाचकारकाः ।।१३८।।

कुदेव और कुदेव की मूर्ति की पूजा वंदना व स्तवन नहीं करना चाहिये। कुतप के धारक व कुतप की पूजा प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। कुचैत्यालयों की पूजा नहीं करना न उनकी सेवा ही करनी चाहिये। पूजा आरती व निर्माण कार्यों में सहायता नहीं करनी चाहिये यदि करे तो सम्यक्त्व का दूषण है। ये छह अनायतन हैं।

ये दोषानि च दृष्ट्वा विकरन्ति सम्यक्संयमेऽपकृतं ।।
मोहोदयेषु जीवाश्चलमलं प्रयुक्तं विरूद्धं ।।१३९।।

जिन्होंने दर्शन मोह का दीर्घ बंध कर लिया है तथा मिथ्यात्व प्रकृति का उदय है उनको सम्यक्त्व तथा चरित्र की वात अच्छी नहीं लगती है। तव वह सम्यक्त्व और चरित्र के दोषों की क्या देख भाल करता है। देखे गये दोषों को इधर उधर फैलाता है तथा स्वयं भी उनकी निन्दा करता है उनकी अवहेलना करता है उनकी हंसी मजाक उड़ाता है। देखो वे बड़े धर्मात्मा हैं जितने धर्मात्मा होते वे पापों से नहीं डरते हैं। तुम क्या क्या व्रत करने वैठे हो, चलो देख लिये इन व्रतों से तो हम ही अच्छे हैं इन्द्रप्रस्थ से निमंत्रण आया है वहाँ वड़े-वड़े सुन्दर पकवान मिष्टान्न वनेंगे वहां सव लोग आवेंगे और जीमेंगे। यहां पर तो तुमको पूजा दान करते कितना समय हो गया परन्तु तुमको कुछ मिला है क्या? देखो अमुक ने अम्बिका देवी की पूजा करी सो पुत्र हो गया और धनवान भी वन गया। देखो उन्होंने पूजा की तो मुकद्दमा जीत गया और स्त्री वीमार थी वह भी देवी के प्रसाद से ठीक हो गई। यह देवी की पूजा करने वाले का महात्म्य है क्या तुमसे कुछ दुराव है ? देखो यह देवी का मन्दिर अमुक सेठ ने वनवाया था वह कितना विशाल है। पहले उसके सन्तान नहीं थी जव किसी भक्त ने कहा कि सेठ जी यदि आप सन्तान की इच्छा करते हों तो चामुण्डी देवी की पूजा करो, तव श्रेष्ठी ने पूजा करना चालू किया कि उसके पुत्र भी हो गया और धन लाभ भी। देखो ये हमुमान वंदर हैं, वे राम चन्द्र भगवान के भक्त हैं, यदि उनकी भक्ति कोई करे रोट चढ़ावे तथा सिन्दूर चढ़ावे तो पूजा करने वाले को सन्तान होगी? यह सुनकर उसने वैसा ही किया जिससे उसके एक वर्ष में ही सन्तान हो गई। जिससे उसने शिखर वन्दमन्दिर वनवाया है जिनको तुम तपस्वी मानकर पूजा करते हो दान देते हो सेवा वैयावृत्ति में लगे रहते हो वह फिजूल में पैसा वर्वाद कर देते हो। उनकी सेवा वैयावृत्ति करते हो उससे तुमको क्या मिला यह वताओ ? देखो उन वावा जी व महात्मा की तपस्या का फल अनेकों को धनवान वना दिया, तथा अमुक के पास मकान नहीं था उसने वावा की सेवा मन लगा कर की तो चन्द दिन में ही मकान वन गया। व आज धनवान वन गया। तुम भी वहाँ जाकर तपस्या करो तुम भी महान वन जाओगे। वावा जी को दूध पिलाओ मेवा खिलाओ वे वड़े तपस्वी हैं दिगम्वर साधुओं की सेवा करना छोड़ो उसमें क्या रक्खा है। उन व्रतों को भी छोड़ो कि जिनसे कुछ

खा-पी नहीं सकते न भोग ही भोग सकते हो। कहीं पार्टी में जाओ तो वहां बिना खाये अच्छा लगता है यह अनुपगूहन नाम का दूषण है। आचार्य कहते हैं जब कुछ पूर्व पुण्य का उदय आ जावे तब देव पूजा करने पर न करने पर भी पुण्य का फल अवश्य मिलता है। जो मिथ्यादेव मिथ्यात्व देव की प्रतिमा तथा मन्दिर की पूजा तथा मिथ्या तप तथा मिथ्यात्व को धारकों की व उनके सेवकों की पूजा करने से महापाप बंध ही होता है जिससे जीव को अनंत काल तक संसार में ही भ्रमन करना पड़ता है। यह अनुपगूहन नाम का सम्यक्त्व का दूषण है।

धर्मात्मा मीरणं पश्यति विनिवशतां मा समीपे कदाप्य-
विज्ञोमिथ्यापथेच्छा व्रजति सह हटग्राहिनासाद्य विद्या ।।
यद्विघ्नोद्योदयं साधु मधुरममृतं वाक् चपूजाव दाने,
स्त्री पुत्रौ बांधवानां कलहमतिथि धर्मेन्न वात्सल्यमेवं ।।१४०।।

यह अज्ञानी मोही दुराग्रही पापिष्ठ धर्मात्मा जनों के प्रति झगड़ा करता है। दान व पूजा करने में विघ्न उत्पन्न करता है। मन्दिर में भी जब जाता है तब यही विग्रह उत्पन्न करता है कि यहां पर तो मैं पूजा करूँगा तुम यहां कहाँ से आये हो हटो जो नोकरों के साथ झगड़ा करता है। तथा सज्जन साधु जनों के व अतिथियों के प्रति दुर्भावना करता है तथा उनकी निन्दा करता है उनके धर्म कार्यों में विघ्न डालता है। तथा अपने घर में भी स्त्री पुत्र मित्रों से भी झगड़ा करता है। तथा धार्मिक कार्यों में झगड़ा कर विघ्न उत्पन्न करता है सभी के साथ द्वेष करता है। धर्मात्मा जीवों को खोटी दृष्टि से देखता है उनके साथ दुर्व्यहार करता है। जो कोई उसके पास रहता है उससे वह वैर विरोध ही करता है मिथ्यामार्ग का पोषण करता हुआ बिना सम्यग्ज्ञान के कुमार्ग में गमन करता है यह मिथ्यात्व का धारक समीचीन धर्म जो जैन धर्म है उससे भी विपरीत आचरण करता है यह सब सम्यक्त्व का अवात्सल्य नाम का दूषण है।

विशेष—यह अज्ञानी मोही बहिरात्मा कुधर्म में प्रीति कर कुधर्म को ही धर्म मानता है कुशास्त्रों को शास्त्र कुगुरुओं को गुरु मानकर सच्चे समीचीन धर्म और धर्म के धारक जीवों के प्रति द्वेष करता हुआ गमन करता है और हठग्राही अपनी इच्छा अधर्म में तथा मिथ्यात्वी लौकिक जनों की आज्ञा का पालन करता है धर्मात्मा जीवों के प्रति खोटी भावना ही करता है परन्तु सद्भावना नहीं करता है। वह तो आप अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, माता-पिता अन्य श्रावक श्राविका व मुनि आर्यिका आदि सबसे वैर विरोध करने के प्रति सन्मुख होता है। तथा मिथ्यादृष्टि लौकिक जनों की स्तुति करता है यह सम्यक्त्व का अवात्सल्य-दूषण है।

येषां रुचिनसद्धर्मे विकरतिन सन्मार्ग।
क्षिपति खलु बालुकायां रत्नमविवेकोऽपि ।।१४१।।

यह अविवेकी प्राणी जिनको सच्चे धर्म की प्राप्ति है उस धर्म की इधर-उधर प्रभावना नहीं करते हैं जिस प्रकार कोई मूर्ख अपने हाथ में रक्खे हुए रत्न को दूसरे जौहरी को न दिखाता हुआ बालुका के ढेर में फेंक देता है। इसी प्रकार अविवेकी मनुष्य

अपने सद्धर्म की महिमा को अन्य लोगों के पास नहीं जाने देता है। अज्ञानी मोही जीव विचारता है कि यदि ये लोग धर्म और अधर्म फल को सुन लेवेंगे तव ग्रहण कर अपने हृदय में उतार लेवेंगे और हमारी निन्दा करेंगे ऐसी मन में भावना करता हुआ सन्मार्ग की प्रभावना नहीं करता है। मिथ्यात्व और अज्ञान मय धर्म की रामलीला कृष्णलीला इत्यादि करके प्रभावना करता है। कहता कि यही उनके योग्य है यह सन्मार्ग व समीचीन धर्म उनके योग्य नहीं है यह सम्यक्त्व का आठवां दूषण अप्रभावना है।

आगे जुआ व्यसन को कहते है।

(कुर्वान्तद्यूत) द्यूतं क्रीडन्ति पांसुलाः स्वर्धा दावं च दत्त्वैवम्
वित्तं क्षेत्रं ददंति क्षित् ग्राम राज्यं तथैवं ते ॥ १४२॥

पापी धर्म विमुख मानव होड़ लगाकर जुआ खेलते हैं। तथा दाव डालते हुए अपने धन माल का दुरुपयोग करते हैं जुआरी मनुष्य पांसा व कोडी पत्ते तासों से जुआ खेलते हैं तथा रेश खेलते हैं कि यदि यह घोड़ा आगे निकल गया तो हम तुम को इतनी रकम देवेंगे यदि नहीं निकला तो हम तुमसे ले लेवेंगे तथा यदि वादल आज वरस जावेंगे तो हम इतना रुपया तुमको देवेंगे नहीं वर्षा तो हम तुम से ले लेवेंगे। इस प्रकार और भी अनेक प्रकार जुआ खेलने के तरीके हैं जिन में मग्न हुए जुआरी अपने धन खेत पृथ्वी राज्य आदि को दाव पर लगा देते हैं। तथा स्त्री पुत्र माता पिता आदिकों को भी दाव पर लगा देते हैं।

वाजी मर्धुजिजीविषु ह्रासैवमधु सादृशं।
कोऽपि न त्यजतांमनीश इच्छा वर्धनीयं वा ॥१४३॥

जुआरी जव जुआ खेलते-खेलते हार जाता है तव विचार करता है कि मैं अवके दाव पर जीत जाऊँगा मेरी विजय अवश्य होगी। यह जुआ खेलने वाला यदि हार रहा हो तो भी मीठा लगता है उसको वंद नहीं करना चाहता है। एक वार चालू होने पर वह वंद नहीं होता है, वढ़ता ही जाता है। जव जुआ खेलने वाले की इच्छायें अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होती हैं। हे मनीश ! तुम इस जुआ को खेल कर पार नहीं पा सकते। देखो वैल के कंधे पर रक्खा गया जुआ उसके सव शरीर को नाकाम वना देता है। तथा वैल को जमीन पर पटक देता है। इस जुआ के खेलने वाले का हौसला वढ़ता जाता है और इच्छायें भी वढ़ती जाती हैं वह विचारता है कि अव दाव मेरा ही तो अवेगा अभी मैं जीत जाऊँगा ॥ १४३ ॥

लज्जा धर्मो विवेकान् क्षित् कीर्तिर्यशोधनानि च।
विग्रहं भूत मादण्डः सर्वत्रभयमादानं ॥१४४॥

इस जुआ खेलने वाले पापी के हृदय में दया और धर्म नहीं रह जाता है उसको अपने पूर्वजों वृद्ध पुरुषों की भी लज्जा (शर्म) नहीं रह जाती है विवेक नष्ट हो जाता है कीर्ति यश भी नष्ट हो जाते हैं। तथा जुआरी निर्धन भिखारी हो जाता है उसके पास धन नहीं होता है। यदि जुआरियों में कोई दाव के पीछे मन चाल हो जावे तो वे आपस में मारपीट करने में तुल जाते हैं तथा भयानक झगड़ा होने से मर भी जाते हैं। जुआरियों की राजा भी खोज करता है जव जुआरी खेलते हुए पकड़ लिये जाते हैं तव राजा भी उनको

कठोर दण्ड देता है। तथा धन माल जेवर को भी छीन लेता है। जुआरी लोग एकान्त गुप्त स्थान में ही छुपकर जुआ खेलते हैं। जुआरी जहाँ कहीं भी जुआ खेलते हैं वहाँ उनको भय अवश्य ही लगा रहता है वे चौकन्ने रहते हैं कि किसी को पता न लग जाये। यदि पता लग गया तो पकड़ कर ले जावेंगे और मारेंगे तथा कैद खाने में वंद कर देवेंगे। तथा छड़ी वैंत चावुक आदि से मार भी लगावेंगे हाथ पैर वाँधकर काल कोठरी में डाल देवेंगे। पड़ोसी मुहल्ला वाले व ग्राम के लोग देख लेवेंगे तो निकाल देवेंगे इस भय से जुआरी लोग छिप कर ही जुआ खेलते हैं इस प्रकार यह जुआ भयों का देने वाला है।

दयासत्यं न विश्वासं चिन्ताहिताहितेऽशेषं ॥
जातंक्रूरं च कौटिल्यमकीर्तिः खलु कौरवाः ॥१४५॥

जुआरी जन के हृदय में क्रूरता निवास करने लग जाती है उसके हृदय में दया भाव नहीं रह जाता है। वह अपने पराये प्यारे से प्यारे मित्र भाई माता पिता पुत्र के साथ भी कभी सत्य नहीं वोलता है वह जुआरी वोलता कुछ करता कुछ है। क्रिया व भावना उसकी अन्य प्रकार की ही होती है। जुआरी मनुष्य हमेशा चिन्तातुर ही रहा करता है और अपना अंतरंग भेद किसी को नहीं देता है। तथा वह हित किसमें है अहित किस में है। यह भी खोज नहीं करता है न विचार ही करता है। वह अपकीर्ति का पात्र वन जाता है। जैसे कि कौरव अपकीर्ति के पात्र वन गये थे। जिनकी अपकीर्ति का प्रभाव आज तक विद्यमान है। मायाचारी करते-करते दुर्योधन ने पांडवों के साथ जुआ खेला और राजपाट सव ही जीत लिया। राजपाट जीतने पर भी कौरवों को शान्ति नहीं आई।

भजत नित्यमादुर्ध्यानं गमिष्यति भी दुःखं ॥
भरतेऽनंत नारकेइत्थं तन्मुञ्च मानव ॥१४६॥

जो इस द्यूत क्रीडा में मग्न रहते हैं वे नित्य ही दुर्ध्यान से युक्त रहते हैं अथवा उनके दुर्ध्यान की वृद्धि हमेशा अवश्य ही होती रहती है एक समय भी ऐसा नहीं आता कि जिस समय दुर्ध्यान और भय नहीं रहता हो। प्रथम तो वहुत भय लगा हुआ रहता है दूसरे धन की क्षति का दुःख तीसरे निंदा के पात्र चौथे कीर्ति का विनाश पाँचवे अविश्वास का पात्र छठवे झगड़े का भय व राज भय जिससे आकुलतायें वढ़ती जाती हैं। और भय के साथ चिन्ता भी वढती रहती है। इस प्रकार अशुभ ध्यान सहित मरण कर नरक में जाना पड़ता है अथवा दुर्ध्यान का फल तो नरक में ले जाने वाला है। जिससे दीर्घकाल तक नरकों के दुःख भोगने पड़ेंगे। इसलिए हे मानव! इस जुआ खेलने का तुम शीघ्र ही त्याग करके शुभाचरण करो। यह जुआ महा पापों का समुद्र है।

पश्यत्वं नारके किं भवति च नियमेन क्षमायां लभन्ते
भूस्पष्टे वेदनासन्ति कतितदपि वा वृश्छकैः दंश प्राग्।
जन्मे दुखैः सहस्रै रपि विविध विधं सारमेया इवालो-
क्यंतत्प्रष्ठेःऽनु धावन्ति खलु निज गृहेरान्ति तापं तथापि ॥१४७॥

जिस नरक में नारकी पृथ्वी को स्पर्शन करने पर जितना दुःख होता है उतना यहाँ

पर हजारों बिच्छुओं के डंक मारने पर भी नहीं होता है जितना कि भूमि के स्पर्श करने मात्र से नारकी जीवों को नरकों में होती है। जहाँ पर जिस पृथ्वी के स्पर्शन करने से इतनी वेदना होती है कि चित्रा पृथ्वी पर विचरने वाले जहरीले काले विच्छुओं के द्वारा एक साथ डंक मारने पर भी नहीं होती। जितनी कि नरक की पृथ्वी के छूने मात्र से होती है। इतना ही नहीं जब उपपादस्थान से नीचे गिरता है जहाँ पर ३६ आयुध प्राकृतिक बने हुए हैं जिनके ऊपर गिरता है तत्काल की वेदना से घवड़ाकर पाँच सौ धनुष ऊपर को छलांग मार कर विचार करता है कि मैं इस नरक से निकल जाऊँ परन्तु आयुकर्म बड़ा ही बलवान है वह उसको वहाँ से नहीं निकलने देता है। पुनः जब वहीं भूमिपर आ जाता है तब पुराने नारकी उस नवीन नारकी के पीछे पड़ जाते हैं और कितनी प्रकार से वे उस नव नारकी को दु:ख देते हैं यह कहा जासकता है कि जिस प्रकार नये कुत्ता को आता देखकर घर-ग्राम में रहने वाले कुत्ते उस कुत्ता के पीछे लग जाते हैं और उसको नोच काट खाते हैं। तथा चारों ओर से चीथने लग जाते हैं जिससे नया कुत्ता कांय-कांय चिल्लाता है पर वे उस कुत्ते को शीघ्र ही छोड़ने को तैयार नहीं होते हैं। इस प्रकार नरक में एक नारकी जीव को अनेक नारकी वेदना देते हैं। वह नारकी बुरी तरह चिल्लाता है रोता है तो भी वे निर्दयी नारकी कृष्ण नील, कापोत, लेश्या के धारक उसको नहीं छोड़ते वे तो दुःख ही दुःख देते हैं। उस नरक में वेदना के अलावा और कुछ एक क्षण के लिए नहीं मिलता है।

सारपासेन अक्षैश्च वदनी वाजधावनात्।
कुक्कटौ तीतरौ युद्धे द्यूतं बहुविधं प्रोक्तम् ।।१४८।।
शर्तिरोपण माकार्यं महामनाः कृतोद्यूतं ।।
र्वाहिष्कारं च पावन्ति सर्वत्र इह लोकेषु ।।१४९।।

यह (जुआ) द्यूत अनेक प्रकार से खेला जाता है कोई पांसों पर वदनी लगाकर कोई गोटों से कोई पत्तों से व चौपड़ से जुआ खेलते हैं। कोई बैलों को युद्ध व भैंसाओं का व कुक्कट व तीतर को लड़ाकर शर्त करते हैं कि यदि मेरा बैल हार जायगा तो मैं तुम को इतना रुपया दूँगा नहीं तो तुमको इतना रुपया देना पड़ेगा।

रेश करके भी जुआ खेलते हैं जहाँ रेश होती है (घुड़दौड़) वहाँ अनेक लोग देखने को जाया करते हैं और वहाँ बदन बदते हैं कि अमुक नम्बर का घोड़ा अभी दौड़ेगा उसके बराबरी में अमुक नम्बर का घोड़ा दौड़ेगा यह सुनकर जुआरी लोग उन घोड़ों पर बदन लगाते हैं कि यदि यह घोड़ा आगे निकल जायेगा तो तुम को १०) रु० देने होंगे यदि यह आगे निकल गया तो हम तुम को देवेंगे। यहाँ तक देखा जाता है कि लोग मुर्गाओं की लड़ाई में भी शर्त करते हैं कि यदि तेरा मुर्गा हार जाएगा तो हम अपने लड़के की शादी तुम्हारे लड़की के साथ कर लूंगा यदि मेरा हार गया तो मैं अपनी लड़की तुम्हारे लड़का के साथ व्याह कर दूंगा। या तीतरों का युद्ध करवाना जो जीतेगा सो ही पायेगा ये हमारे रुपया जमा हैं तुम भी जमा करो इस प्रकार आपस में बदन बद-करके हार जीत करते हैं यह जुआ है। फीचर खेलना दड़ा लगाना हण्डी इत्यादि ये सब जुआ के प्रकार हैं। पत्तों में जुआ खेलते हैं यदि नहला पहले

निकल आयेगा तब हम जीत गये और नहला न आकर पहले दूसरा अंक सांत आगया तब हम तुमको दे देंगे नहीं तो यह ले लेवेंगे। जुआरियों को हार भी मीठी लगती है तथा जीत भी अच्छी लगती हैं। जिसमें स्पर्धा की जाती है वह सब ही जुआ है। जो जुआ खेलता है वह इस लोक में तो साक्षात् रूप से बहिष्कार पाता है। ग्राम से घर से निकाला जाता है। घर वाले घर में घुसने तक नहीं देते हैं। तथा रोटी पानी भी नहीं देते हैं। यहाँ तक देखा जाता है कि माता पिता भी जुआरी पुत्र को मरवा डालते हैं व जुआरी पुरुष अपने पुत्र पौत्रादिक को भी मार डालते हैं तथा उनके मारने में जरा भी नहीं हिचकते हैं। इस व्यसन में कौरव पांडव प्रसिद्ध हुए हैं ॥१४८॥ ॥१४९॥

कौरव पांडवों की कथा

इस जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र के मध्य एक कुरुजांगल देश है उस में एक हस्तनापुर नामका प्रधान नगर था जहाँ पर पारासर राजा के पुत्र धृतराष्ट्र व पांडु दोनों राज्य किया करते थे। धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधे थे जिससे राज्य का कार्य पाण्डु किया करते थे। पाण्डु का रंग सफेद था वे सूर्यमुखी थे, पाण्डु के दो रानियाँ थीं एक का नाम कुन्ती दूसरी का नाम माद्री था। धृतराष्ट्र का एक गाँधारी नाम की कन्या के साथ पाणिग्रहण हुआ था। गांधारी के गर्भ से दुर्योधनादि सौ पुत्र हुए तथा कुन्ती के गर्भ से कर्ण युधिष्ठर भीम और अर्जुन तथा माद्री के गर्भ से नकुल और सहदेव नाम के दो पुत्र हुए। ये सब राज पुत्र गुरु द्रोणाचार्य के पास पढ़ने लगे थे उन्होंने अनेक धर्म शास्त्र, न्याय, व्याकरण, छन्द अलंकार पढ़े तथा धनुर्विद्यायें भी पढ़ी थी। विद्या अध्ययन करने में पांडु के पांचों पुत्र निपुण थे जो विद्या गुरु पढाते थे उसको वे शीघ्र ही पढ़ लेते थे। जब गुरु उनको पूछते तो वे उसका उत्तर देने में विलम्ब नहीं करते थे। परन्तु जब दुर्योधनादि को पूछते थे तब वे बैल जैसे देखते हुए खड़े रह जाते थे। इसलिए दुर्योधन पाण्डु पुत्रों से द्वेष करते थे।

जब पढ़ लिख कर सब पांडव और कौरव निपुण हो गये। उन सब में अनेक गुण सम्पन्न विद्याओं के भण्डार युधिष्ठर थे बल और विद्याओं में प्रवीण भीम थे। अनेक विद्या कलाओं में तथा युद्ध बाण विद्या में निपुण श्री अर्जुन थे। दया दान और शास्त्र नीति न्याय विद्याओं में श्रेष्ठ ऐसे बलशाली नकुल और सहदेव थे। वे सब ही बड़े गंभीर विद्वान विचार वाले थे। परन्तु कौरव दुर्योधनादि धृतराष्ट्र के सौ पुत्र पापाचारी कुविचार व दूसरों से वैर विरोध करने जुआ खेलने में चतुर थे। मन्दबुद्धि थे उनको अनेक बार विद्यागुरु के पढ़ाने पर भी पाठ याद नहीं होता था। जब पांडव और कौरव दुर्योधनादि खेलते थे तो दुर्योधन का क्रूर स्वभाव होने से सब पांडवों व अन्य राजकुमारों को मारता या पीटता था। तथा निर्दयता का व्यवहार करता था। परन्तु पांडव लोग किसी के साथ क्रूरता का व्यवहार नहीं करते थे वे सब के साथ प्रेम का व्यवहार करते थे। एकदम अचानक पाण्डु का स्वर्गवास हो गया जिससे राज्य का कार्य धृतराष्ट्र ने अपने हाथों में ले लिया और अपने पुत्रों को राज्य कार्य करने की आज्ञा दी परन्तु पाण्डु पुत्रों को कुछ नहीं दिया। यह चरित्र देख पांचों भाई दंग रह गये दुर्योधन अब राजा बन बैठा था यह देख

पांडव सब हताश हो गये थे। तत्पश्चात् उन्होंने अपने काका विदुर तथा द्रोणाचार्य व भीष्म पितामह कर्ण शकुनी इत्यादि से सारी हकीकत कही तब उन्होंने धृतराष्ट्र से कह कर राज्य को दो हिस्सों में बंटवारा करा दिया। अब कौरव और पांडव अपने अपने राज्य में सुख पूर्वक राज्य करने लगे थे। पांडवों की कीर्ति चन्द दिन में ही चारों ओर फैल गई और सब लोग पांडवों के व्यवहार को देख कर प्रसन्न होते थे तथा उनको आदर की दृष्टि से देखते थे। वे प्रजा का पालन अपने पुत्र के समान करते थे जिससे वे सबके हृदय में निवास करने लगे थे। सब प्रजाजन परिजन पांडवों को ही चाहते थे। परन्तु दुर्योधनादि सौ कौरवों को कोई नहीं चाहता था। यह देखकर दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति द्वेष बढ़ने लग गया। एक दिन दुर्योधन विचार करने लगा कि इन पांडवों को किसी प्रकार मारडालना चाहिए ताकि अपना कांटा मिट जावे। ऐसा विचार कर उसने एक अद्‌भुत लाख का महल बनवाया और पांडवों को अपने यहाँ निमंत्रण देकर बुलवाया जब पांडव आ गये तब दुर्योधन ने उस महल में ही ठहरा दिया और सारी व्यवस्था करवा दी महल की देखभाल विदुर ने की थी उसमें से बाहर जाने के लिए एक गुफा द्वार गुप्त बनवा दिया था (अथवा सुरंग) पांडवों को इस मायाचारी का कुछ भी पता नहीं था जिससे वे सरलता पूर्वक उस महल में ही ठहर गये। एक दिन अर्धरात्रि का समय था पांचों पांडव तथा उनकी माता कुन्ती व माद्री सब सो रहे थे कि दुर्योधन ने आग लगवा दी। जिससे थोड़े ही समय में सारा मकान जलने लग गया। पांडव जाग्रत हुए परन्तु इधर उधर कहीं मार्ग नहीं दिखाई दिया। लपटें आकाश को स्पर्श कर रही थीं पाँडव उसके भीतर ही थे कि अकस्मात् उनकी दृष्टि एक शिला पर गई और भीमसेन ने तुरन्त उस शिला को उठाकर देखा तो उसके अन्तर एक बड़ी सुरंग निकली वह मकान के दक्षिण भाग में थी उसमें होकर पांडव निकल गये। तथा उनकी सेवा में रक्खे गये दास दासी सब जलकर भस्म हो गये। यह देख पाँडव विचार करने लगे देखो यह दुष्ट दुर्योधन का नीच कर्म हमको मायाचारी करके जीते जी जलाने में कमी नहीं रक्खी। इसने हमको नष्ट करने की भावना से ही यह कुकृत्य किया है। जब पांडवों को ठहराया गया था तब विदुर को खबर मिल चुकी थी की यदि कोई आपत्ति काल आ जावे तो यहाँ पर यह पत्थर लगा हुआ है उसको खोलकर बाहर निकलने का रास्ता है। जब बाहर चारों ओर से आग लग गयी तब वे सब पांडव व कुन्ती माद्री सहित सातों प्राणी उस सुरंग के मार्ग से चल कर हस्तिनापुर से कुछ दूरी पर निकल गये। जब सवेरा हुआ और लाख के महल को जलता हुआ देखा तब सब लोग हाहाकार शब्द करते हुए रो रहे थे कि हाय पांडव व उनकी माता जल गये यह समाचार दुर्योधन ने भी सुना तब दिखावटी खेद प्रकट करने लगा। कहने लगा कि कैसे महल में आग लग गयी। मन में तो आनद परन्तु लोग दिखाई के लिये मुर्छा खाकर जमीन पर पड़ गया। और रोने लगा हाय पांडव हाय माता कुन्ती हाय माता माद्री इत्यादि। तथा सब कौरव दुख करने लगे। तत्पश्चात दुर्योधन विचार करने लगा कि चलो अब तो हमारा कांटा निकल गया अब तो सौ भाईयों सहित राज्य करूँगा क्योंकि वैरी पांडव तो महल में

जल ही गये। दुर्योधन ने पांडवों का राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया और राज्य करने लगा। प्रजाजन पांडवों के वियोग व मरण के विषय में अत्यन्त अधीर व्याकुल हो गये थे। मानो विना मणि का सर्प व्याकुल हो जाता है। विना पानी कमल का तालाब, विना चन्द्रमा के रात्रि, विना मेघों के वर्षाकाल, विना पानी के जलद इस प्रकार शोकातुर हो इस प्रकार तड़फडा रहे थे कि जिस प्रकार विना पानी के मीन, तड़फडाती है उसी प्रकार सब जनता में पांडवों के वियोग में तड़फडाहट व कोलाहल मच रहा था, स्त्रियां उनके वियोग में अपने गोद के बच्चों को दूध पिलाना भी भूल गई थीं। उधर पांचों पांडव जोगियों का रूप धारण कर भ्रमण करते हुए राजा द्रुपद की पुत्री द्रोपती के स्वयंवर में जा पहुंचे वहाँ उनकी वेशभूषा सब तपस्वियों जैसी थी। जब वे स्वयंवर मंडप में जाने लगे तब पहरेदारों ने रोका कि यहाँ पर राजकुमारों का कार्य है यहाँ योगियों का क्या कार्य तब वे समझाकर भीतर गये। सभा मण्डप में बड़े-बड़े धीर वीर राजे महाराजे विराज रहे थे। वहाँ पर एक तेल का भरा हुआ कढाव रक्खा था उसके कुछ दूरी पर मीनाकार का यंत्र रक्खा था उसकी परछाई उस कढाई के तेल पर पड़ती थी। राजा द्रुपद की प्रतिज्ञा थी कि जो राजकुमार इस कढाही में पड़ती हुई छाया को देख कर मीन पत्र को वेधेगा उसके साथ मैं अपनी सुन्दर कन्या का विवाह कर दूंगा। द्रौपदी भी वर माला लिये हुए खड़ी थी अनेक राजा लोग क्रम-क्रम से अपनी हुंकार करते हुए आते थे तथा उस परछाईं को देख कर उस मीन पत्र में वाण मारते थे परन्तु कामयाब नहीं होते थे। कोई कहता था मैं अभी इस पत्र का भेदन करे देता हूं कोई कहता मैं करूंगा कोई कहता था कि मेरे समान धनुषधारी दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार मन में अहंकार करते हुए धनुष वाण हाथ में ले ले कर उठते थे और मीन पत्र को भेदन न करते हुए निराश होकर अपने अपने स्थान पर जा बैठते थे दुर्योधनादि सब भाईयों ने तथा कर्ण आदि योद्धाओं ने मीन पत्र को भेदन नहीं कर पाया। तब द्रुपद राजा कहने लगा कि अब सब राजा हताश हो गये क्या कोई राजा नहीं रहा क्या निःक्षत्रिय देश हो गया जिससे यह मीन यंत्र भेदा नहीं गया इस क्षत्रिय पन को धिक्कार हो। ऐसे कठोर वचन युधिष्ठर आदि पांडवों ने भी सुने तब युधिष्ठिर महाराज कहने लगे कि आप हताश मत होइए। हम जोगियों के वालकों का तो वैभव देखिये हम इस मीन पत्र को चन्द मिनट में भेदन कर नीचे गिरा देवेंगे। इतना कह कर अर्जुन हाथ में धनुष वाण उठाकर खड़ा हुआ और कढाव के तेल में से परछाई देखते हुए वाण का निशाना लगाया और मीन पत्र को भेदन कर दिया। यह देख द्रौपदी जी ने सोचा कि यह योगी पुत्र ही मुझे पसंद था वही मेरे को मिल गया यह विचार करती हुई जहाँ पर पांचों भाई वैठे थे वहीं माला गले में डाली तब माला टूट गई जिससे उसके फूल पाँचों पाण्डवों पर पड़े तो लोग कहने लगे कि द्रौपदी जी ने तो पाचों भाइयों को अपना वर चुना है। द्रौपदी जी को पंच भरतारी कहते थे। इस प्रकार द्रौपदी जी का विवाह अर्जुन के साथ हो गया। यह देख दुर्योधन को सहन नहीं हुआ और कहने लगा कि यह जोगियों का पुत्र राजकुमारी को व्याह कर ले जावे। तुम सरीखे क्षत्रियों को धिक्कार हो। ऐसा सुनते ही राजा लोग

अपने-अपने युद्ध के साज बाज सम्हारने लग गये। तथा कौरवों की सेनायें भी युद्ध भूमि में आगई। यह देख द्रुपद घवड़ाने लगे अव क्या करना यह देखकर युधिष्ठर महाराज बोले राजन् आप अधैर्य मत होइये हम को एक रथ और सारथी दीजिये यह सुनकर राजा ने रथ सारथी व सेना दे दी सेना को साथ लेकर अर्जुन रथ में बैठकर युद्ध में जा उतरा। युद्ध का नगाडा बजने लगा तथा युद्ध होना चालू हो गया जिसमें पांडवों की जीत हुई तथा राजा लोग अपने-अपने प्राण लेकर भागने लग गये। तथा कौरव भी पीछे को हटने लग गये तव अर्जुन ने विचार किया कि अपने सव बांधव हैं इन से क्यों व्यर्थ लड़ना यह विचार कर एक वाण में पत्र लिख कर भीष्म पिता के रथ में चला दिया उसको देख भीष्म पिता ने पढ़ा और शंख फूक दिया युद्ध वन्द हो गया पांडवों की विजय हुई। अव कौरवों को पांडवों के जीवित रहने का पता लग गया था। कौरव पांडवों को अनेक प्रकार से संवोधन करके हस्तिनापुर ले आये और उनका आधा राज्य वापस दे दिया पांडव तथा कौरव अपना-अपना राज्य कार्य सम्हालने लग गये। एक दिन दुर्योधन ने मायाचारी पूर्वक पांडवों को हस्तिनापुर बुलाया और कहा पांसा लेकर दिल वहलाने के लिए जुआ खेलें। इस प्रकार दुर्योधन व युधिष्ठिर दोनों जुआ खेलने लगे।

यद्यपि दुर्योधन जुआ बड़ी चतुरता पूर्वक खेलता था परन्तु भीमसेन जव वह पांसा फेंकता तव हुंकार कर देता था जिससे पांसा उलटा पड़ जाता था। यह देखकर दुर्योधन विचार करने लगा कि इस प्रकार यह काम नहीं बनेगा। तव उसने किसी काम के बहाने से भीम को वाहर भेज दिया, भीम को वाहर गये वहुत देर हो गई इधर दुर्योधन की वन पड़ी और जीत का पांसा पड़ने लगा। युधिष्ठिर ने पहले अपना खजाना दाव पर लगाया उसको हार गये फिर देश को, राज्य को हार गये, फिर क्या था उन्होंने हाथी, घोड़ा, वाहन, गाय भैंस आदि दाव पर लगाये वे सव हार गये। तथा अंतपुर का सव सामान हार गये और स्त्रियों के आभूषण भी हार गये। इतने में हुंकार करता हुआ भीम वहां पर आ पहुँचा तव उसने युधिष्ठिर को अपनी सारी सम्पत्ति को हारा हुआ देखा। तव वह दुर्योधन की सारी चालवाजी समझ गया और जान लिया कि दुर्योधन ने मुझे वड़ा धोखा दिया इससे भीम वहुत दुःखी हुआ। और अपने स्थान पर चले गये। जव दूसरा दिन हुआ तव दुर्योधन ने कहलवाया कि अव तुम यहां से चले जाओ यह राजपाट सव हमारा है। सव आभूषण हमारे हैं इतना कह कर दूत चला गया। तत्पश्चात दुस्सासन द्रोपती जी के वस्त्राभूषण लेने के लिये गया और सव के सामने द्रोपती जी का चीर खींचने लगा यह वात पांडवों को अच्छी नहीं लगी। द्रोपती का चीर शील के प्रभाव से वढ़ गया और दुस्साशन द्रोपती को नंगी करने में समर्थ नहीं हुआ और असफल ही रहा। दुर्योधन की आज्ञा प्रमाण पांडव तेरह वर्ष के लिए जंगल में चले गये और छुपकर रहने लगे जव वारह वर्ष और एक वर्ष पूर्ण हो गई तव पांडव वापस हस्तनापुर आये और अपना राज्य वापस मांगा तव दुर्योधन ने एक ही उत्तर दिया कि यदि तुमको राज्य लेना है तो राज्य युद्ध करके ही मिलेगा विना युद्ध के एक सुई की नोक के बरावर भी राज्य नहीं दिया जायेगा। यदि तुम्हारी भुजाओं में ताकत है तो ले लो। नहीं

तो राज्य की आशा छोड़कर जंगल में ही लकड़ी बेचकर खाओ।

इस प्रकार दुर्योधन का कठोर वचन सुनकर युधिष्ठिर आदि सब पांडवों को बुरा लगा जिससे दोनों तरफ से युद्ध की तैयारियां होने लगी पानीपत के मैदान में अठारह दिन तक घमासान युद्ध हुआ जिसमें दुर्योधन आदि सौ कौरव तथा भीष्मपितामह द्रोणाचार्य कर्ण विदुर इत्यादि महा योद्धा मारे गये तथा अन्य अनेक सहायक राजा व सेना मारी गई। पांडवों की जीत हुई। यह कथा एक जुआ खेलने के कारण ही हुई यदि कौरव तथा पांडव जुआ नहीं खेलते तो युद्ध नहीं होता न पांडव को जंगल में भ्रमण करने के दुःख ही भोगने पड़ते। न छिपकर ही बारह वर्ष रहना पड़ता न युद्ध ही होता था। यह द्यूत व्यसन में प्रसिद्ध पाँडवों की कथा समाप्त हुई।

आगे माँस भक्षण और उत्पत्ति का कथन करते हैं।

भूमौनोद्भवाऽव्विषे किमपि चाग्नौमारुते मापलम्।
आकाशे पृथ्वीधरेऽवनितले पृथ्वीरुहे वल्लियां
पुष्पे वा कमले तथा व्यशनिपत्रे वारिधे वागदे
गोधूमे प्रमुखा च धान्यफलके नित्यं वने मन्दिरे ॥१५०॥

यह मांस पृथ्वी के ऊपर या भीतर उत्पन्न नहीं होता है तथा खेत में उत्पन्न नहीं होता है। पानी में नदी सरोवरों में उत्पन्न नहीं होता है। यह मांस अग्नि की सिखा में या अंगार में व तिलंगा व अग्नि की लौ में उत्पन्न नहीं होता तथा अंगार में भी मांस की उत्पत्ति नहीं होती है तथा भाड़ भट्टी इत्यादिक में भी उसकी उत्पत्ति नहीं। यह मांस पंखा की हवा में या स्वाभाविक हवा में व अकालिकी हवा में मेघों की पानी मिश्रित हवा में उत्पन्न नहीं होता है। भोर पड़ती हुई हवा में भी उत्पन्न नहीं होता है। आकाश में भी कहीं उत्पन्न होता होगा सो भी नहीं है, पहाड़ में या पहाड़ के मध्य में या पहाड़ की चोटी पर कहीं भी मांस की उत्पत्ति नहीं होती है। वृक्षों की जड़ के अन्दर या नीचे व वृक्षों की डालियों टहनियों में पोइयों व पर्वो में उत्पन्न नहीं होता है। वेलों में वेल के फूल व पत्तों में व पेड़ की जड़ों में भी मांस की उत्पत्ति नहीं होती है। फूलों में कमलों में भी नहीं कमल की पंखुड़ियों व केवड़ा मोगरा गुलाब गेंदा, रातरानी, इत्यादि के सुगंधित फूलों में भी मांस उत्पन्न नहीं होता है। कमलिनी के पत्तों में, वेल में, जड़ों में भी नहीं। समुद्र व औषधियों में मांस उत्पन्न नहीं है। गेहूं, जौ, ज्वार, चना, वाजरा, मटर, मूंग, इत्यादि धान्यों में मांस की उत्पत्ति नहीं। तथा मोसम्मी, संतरा, अनार, नारियल, आम इत्यादि में भी मांस की उत्पत्ति नहीं तथा वन व मन्दिरों में भी मांस का उत्पत्ति नहीं है ॥१५०॥

त्रसजीवानां गात्रे रक्तं मासं नान्यत्र प्राप्तं।
प्राणभ्रष्टे च तथा तच्छरीरसकलंमांसम् ॥१५१॥

लट, चींटी, भोंरा, मनुष्य, गाय, भेंस, घोड़ा, वैल, वकरी, मुर्गा, कबूतर, गोह, चूहा, सिंह, इत्यादि त्रस जीवों के प्राणों का नाश करने पर ही मांस की उत्पत्ति होती है। इससे भिन्न दूध, दही, घी इत्यादि में व खांड़ मिश्री इत्यादि में कभी उत्पन्न नहीं होता है। यह

मांस तो बकरी आदि प्राणी के शरीर का टुकड़ा है। रक्त और मांस ये पंचेन्द्रिय प्राणी का कलेवर है और अत्यन्त दुर्गंधमय है।

गौ वृषभश्छागा मृगाः पाठीन मकर कुक्कुट गात्रेषु।
कापोतादि खगानां वा प्राणक्षये जातं पलम् ॥१५२॥

यह मांस गाय, बैल, भैंस, भैंसा, व बकरी, बकरा, मेष, भेड़ा, साबर, नील, रोज, सूकर, बानर, हरिण, तथा मछली, मगर, कच्छप, केकड़ा, तथा मुर्गा, मुर्गी, कबूतर, तीतर, हंस, इत्यादि अनेक पशु-पक्षियों के शरीर का मल है और उनके प्राणों का नाश करने पर उत्पन्न होता है। अथवा प्राणों के नाश होने पर उनके शरीर को छेदकर टुकड़े करने पर ही मांस मिल सकता है अन्यथा मांस की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिये दयावान जीव इस मांस को कैसे ग्रहण करेंगे ?

स्पर्श मात्रेणमृयन्ते मांसपेशीमनंत सुतोभूतं ॥
तज्जाति तत्सादृशं त्रसकायका जातप्राणिनः ॥१५३॥

जिस देहधारी के शरीर का मांस है उसके आकार के धारक क्षुद्रभव के धारक सम्मूर्छन निगोदिया जीव प्रति समय उत्पन्न होने लगते हैं। उस जाति के जीव उत्पन्न हो जाते है वे सब मांस के छूने मात्र से नष्ट हो जाते हैं (मर जाते हैं)। पुनः और वैसे ही जीव उत्पन्न होने लग जाते हैं। व पकाते समय मर जाते हैं जब पक जाता है तब भी उस मांस के टुकड़े में उत्पन्न हो जाते हैं। वे सब जीव त्रसकायक दो इन्द्रियादि ही होते हैं। यह प्रथमतः पंचेन्द्रिय प्राणी के शरीर का मल है और उसकी उत्पत्ति भी त्रस जीवों के अशुद्ध मलों के द्वारा हुई है। जीवों के घात करने पर ही मांस की प्राप्ति होती है वह मांस अशुद्ध मलों का पिण्ड होने के कारण ही दुर्गंधमय होता है। जब तक हिंसामय व दयाहीन क्रूर परिणाम नहीं होंगे तब तक जीवों का रक्त पात कौन करने को समर्थ होगा ? जहां दया, अहिंसा, शान्ती होगी वहां क्या जीवों के प्राणों का विनाश किया जा सकता है ? नहीं किया जा सकता है।

अस्यस्पर्शे न मासं नोच्चकुलोद्भूवो कथंमस्नुते ॥
अन्तिभील चांडालास्तेऽपि दुष्कर्मण बंध्यते ॥१५४॥

जो उच्च कुलों में उत्पन्न हुए हैं जो अपने कुल जाति धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं वे मांस को कैसे स्पर्श करते हैं। जब स्पर्श करने में ही दोष उत्पन्न होता है तब मांस खाने में क्या दोष उत्पन्न नहीं होगा ? अवश्य ही होगा। यदि भील चाण्डालादि नीच कुल जाति वाले खाते हैं तो वे भी पाप बंध से बच नहीं जाते हैं उनके भी पापों का बंध अवश्य ही होता है।

मांस खाने वाले के भावों में से दया क्षमा दूर भाग जाती है।

मातिष्ठेयुर्मनसि मृदुता क्रूरता शासनैवं
कामक्रोधोद्भूवममित माशक्तता मांसरक्ते ॥

यन्नारी मासिक सरजसाकिं च दृष्टं सुदूरं,
मृत्युं जातं जनकससुतौ पातकं द्वादशंद्यौ ॥१५५॥

मांस भक्षण करने वालों के हृदय में से दया निकल जाती है उनके हृदय में मृदुता नहीं रह जाती है। क्रूरता और कठोरता अपना पूर्णरूप से अधिकार जमा लेती है। क्रोध मान, माया और लोभ कषायें बढने लग जाती हैं। मांस के खाने से व रक्त के खाने से आसक्तता बढ़ जाती है और काम क्रीडा करने की इच्छायें अधिक मात्रा में बढ़ती जाती हैं। तथा शरीर में रक्त की वृद्धि अधिक हो जाने से रक्तचाप रोग उत्पन्न हो जाता है। जिससे वेहोशी बढ़ने लग जाती है। इसी प्रकार अण्डा भी एक मांस का ही पिण्ड है वह भी बिना रज वीर्य के उत्पन्न नहीं हो सकता है। जब उसमें जीव उत्पन्न हो जाता है तब ही वह माता के गर्भ गृह से बाहर आता है और उसको नर या मादा दोनों ही क्रम से अपने पंखों की गर्मी देते हैं तब वह अण्डा के भीतर रहने वाला जीव वृद्धि को प्राप्त होता है। और अण्डा की मर्यादा पूर्ण होते ही अण्डा फूट जाता है उसमें से एक जीव उत्पन्न होता है वह भी मांस के समान ही है। उसके फोड़ने पर उस अण्डे के अन्तर में रहने वाले जीव के प्राणी का नाश हो जाता है। यदि यह कहते हैं कि आज अण्डा तो विना वीर्य के ही उत्पन्न होने लगे है उनके लिये हम कहते हैं कि बिना वीर्य के अण्डा उत्पन्न होते हैं तो पत्थर या माटी में क्यों नहीं उत्पन्न किये जाते हैं। दूसरी बात यह है कि वीर्य दो प्रकार का होता है एक स्वजातीय पुरुष का एक क्रित्रिम जो सूई या नली के द्वारा उनकी योनिस्थान मे पहुंचाया जाता है जब तक उनके दोनों प्रकार के वीर्य में से एक प्रकार का वीर्य नहीं पहुचेगा तब तक मुर्गी या कबूतर हंस इत्यादि पक्षी गर्भाधान नहीं कर सकते हैं। यदि अण्डे और मांस खाने की भावना है तो तुम्हारे घर में वृद्ध माता-पिता भाई-वेटा मर जाने पर उनका सूतक क्यों वारह दिन तक मानते हो क्योंकि वह जो तुम दूसरे का शरीर काट कर तथा उसको पकाकर खाते हो वह क्या सब नहीं है वह भी तो एक जीव का मुर्दा ही है फिर उस मुर्दा को घर में लाकर आप स्वयं नहीं खाते हैं यह बड़े ही आश्चर्य की वात है। दूसरी वात यह भी है कि जब तुम्हारे घर में माता, बहन, स्त्री, पुत्री, इत्यादि मासिक धर्म से रजस्वला हो जाती हैं तब उनको देखना भी स्वीकार नहीं करते हो उनको दूर-दूर कहते हो और उसको छूत मानते हो। अशुद्धता मानते हो ? जब घर में कोई मर जाता है या सूर्य चन्द्र ग्रहण पड़ जाता है तब आप सूतक मानते हो तथा धर्म कार्यों का पालन करना वंद कर देते हो कहते हो कि अब हम मन्दिर व वेद को स्पर्श करने के योग्य नहीं है हमारे सूतक या पातक हो गया है। तब दूसरे देहधारी के शरीर को शव नहीं मानते हो क्या ? वह भी तो शव ही है क्या उसका पातक नहीं लगता है और उसको अपने मुख में या पेट में उतार लेते हो इसका तात्पर्य यह हुआ कि आपने अपने पेट को स्मशान बना लिया है। इस अविवेक की दशा को धिक्कार हो॥१५५॥

भ्रष्टं वा अभ्रष्टयं वा हिंसा सर्वत्र सति रक्तास्रवे
कथं स्वाधं न पलं दुराशयं च मरणान्ते वा ॥१५६॥

जो प्राणी अपनी आयु को पूर्ण कर मरा हो अथवा दूसरों के द्वारा मारा गया हो

उसके मांस को छूने व खाने पर सब जगह सब काल में हिंसा तो अवश्य ही होती है। उस मांस में तो हमेशा रक्त वहता ही रहता है विना रक्त मांस का नहीं रह सकता है रक्त और मांस में कोई अन्तर नहीं है एक ही है भिन्न नहीं है। वह मांस स्वादिष्ट नहीं हो सकता है। जो मांस खाते हैं उनका अंत समय में उनके भावों में आर्त रौद्र ध्यान की वृद्धि होती जाती है तथा आर्तरूप खोटे परिणाम हो जाते हैं जिसके कारण जीव दुर्गति को प्राप्त होते हैं। इसलिये भव्य जीवों के योग्य यह मांस खाना नहीं है। मांस भक्षण करने पर द्रव्य और भाव दोनों तरह की हिंसा होती है। और संकल्पी हिंसा होती है।

मात्र स्थूलं व्याधिविभवं क्रूरता सततं प्राप्तं ।
मांस भक्षकाः यान्ति नरकद्वारं किं धार्मिकाः ॥१५७॥
वक सौरसेनौ नृपौ मांसभक्षणे जातं सुप्रसिद्धौ ।
तेऽपि पातं नारके तव गति किं न मांस भक्षणात् ॥१५८॥

मांस खाने वाले का शरीर मोटा स्थूल हो जाता है तथा शरीर लाल हो जाता है परन्तु उसकी उष्णता शरीर को निर्वल वना देती है। जिससे वह खाने वाला निर्बलहो जाता और मांस खाने वाले के शरीर में अनेक प्रकार के रोग का निवास स्थान वन जाता है। एक तो शरीर कमजोर होता है दूसरे क्रूरता वढ़ जाती है तीसरे कामवासनायें वढ़ जाती हैं मांस खाने वाला नरक गामी होता है। हे भव्यो मांस को धार्मिक जनों को क्या खाना योग्य है? नहीं है। इस मांस के खाने के कारण वक राजा तथा सौर सेन राजा मांस खाने में प्रसिद्ध हुए थे वे मरण कर सातवें रौरव नामक नरक वासी वन गये तथा तैंतीस सागर की आयु को प्राप्त हुए थे। तो तुम भी विचार करो कि तुमको मांस खाने से क्या स्वर्ग मिलेगा? नहीं मिलेगा नरक ही मिलेगा यह आगम प्रसिद्ध है। इसलिये अपवित्र मांस को किसी के कहने पर या सोवत में आकरके भी कभी नहीं खाना चाहिये। अन्य वेद पुराणों में भी कहे गये श्लोक दिये हैं। १५७।१५८।

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वाला माला कुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥ १॥
मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥ २॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च विष्णुः सम्पूज्य भक्तितः।
मत्स्यादीना कथं मांसं भक्षितुं कल्प्यते वुधैः॥ ३॥
अल्पायुषो दरिद्राश्च नीचकर्मोऽपि जीविनः।
दुष्कुलेषु प्रसयन्ते ये नरा मांस भोजिनः॥ ४॥
योत्ति मनुष्यो मांसं निर्दयवेतताः स्वदेह पुष्टयर्थं।
याति स नरकं सततं हिंसा प्रवृत्त चित्तत्वात्॥ ५॥
नाभिस्थाने वसेद् ब्रह्मा विष्णुः कण्ठे समाश्रितः।
तालु मध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः॥ ६॥

नासाग्रे च शिवं विद्यात्तस्यान्ते च परोपरः।
परात्परतरं नास्ति इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ ७॥
अन्ये चैवं वदन्त्येके यज्ञार्थं योनिहन्यते (भावसंगृह)
तस्य मांसाक्षिनः सोऽपि सर्वे यान्ति सुरालयं ॥ १ ॥
यत्किं न क्रियते यज्ञः शास्त्रज्ञैस्तस्यनिश्चयात्।
पुत्रवध्वादिभिः सर्वे प्रगच्छन्ति दिवं यथा ॥ २ ॥
नाहं स्वर्ग फलोपभोग तृपितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया, (यशस्तिलक चंपू)
संतुष्टात्रण भक्षणेन सततं हंतु न युक्तं तव ॥
स्वर्गेयांति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो,
यज्ञं किं न करोषि मातृ-पितृभिः पुत्रैस्तथाबांधवैः ॥ १ ॥
नहि हिंसाकृते धर्मः सारम्भे नास्ति मोक्षता।
स्त्री संपर्के कुतः शौचं मांसभक्षे कुतो दया ॥ १ ॥
तिल सर्षप मात्रं वा यो मांस भक्षयेद्द्विजः।
स नरकान्न निवर्तेत यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ २ ॥
आकाश गामिनो विप्राः पतिता मांसभक्षणात्।
विप्राणां पतितं दृष्टवा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ३ ॥
आगोपालादि यत्सिद्धं धान्यं मांसं प्रथक् प्रथक्।
मांस मानये इत्युक्ते न कश्चिद्धान्य मानयेत् ॥ ४ ॥
स्थावराजंगमाश्चैव द्विधाजीवाः प्रकीर्तिताः।
जंगमेषुभवेन्मांसं फलं तु स्थावरेषु च ॥ ५ ॥
मांसं तु इन्द्रियं पूर्ण सप्त धातु समन्वितं।
यो नरो भक्षते मांसं स भ्रमेत्सागरान्तकं ॥ ६ ॥
न कर्दमे भवेन्मांसं न काष्ठेषु त्रणेषु च।
जीवशरीराद्भवेन्मांसं तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ७ ॥
सर्व शुक्रं भवेद् ब्रह्मा विष्णु मांसं प्रवर्तते।
ईश्वरोऽप्यस्ति संघाते तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ ८ ॥
मासं जीव शरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मासं।
यद्वन्निम्वो वृक्षो वृक्षास्तु भवेन्न व निम्मः ॥ १ ॥
कश्चिदाहेति यत्सर्व धान्य पुष्पं फलादिकं।
मासात्मकं न तत्किं स्याज्जीवांगत्व प्रसंगतः ॥ १ ॥
स्थानेऽन्तु पलेहेतोः स्वतश्चाशुचि कश्मला।
स्वादि लाला वदप्यधुः शुचिमन्याः कथंनुतत् ॥ ६ ॥

मांस की उत्पत्ति सात कुधातुओं से निर्मित अपवित्र शरीर के विनाश करने पर ही होती है तथा शिकारी कुत्ते वगैरह की लार भी जिसमें मिल जाती है इस प्रकार के

कारणों से तथा स्वभाव-से अपवित्र मांस को आचार विचार हीन नीच व्यक्ति ही खाते हैं तो उसके विषय में कुछ कहना व्यर्थ है। परन्तु अपने को श्रेष्ठ और पवित्र मानने वाले उच्च वर्ग के व्यक्ति उस मांस को खाते हैं यह वड़ा ही आश्चर्य है।

हिंसा स्वयं मृतास्यापि स्यादश्नन् वा स्पृशन पलं।
पक्वापक्वा हि ततो पेश्यो निगोदौघसुतः सदा ॥७॥

मांस पेशी के टुकड़े में अनन्त निगोदिया जीवों की हमेशा उत्पत्ति होती रहती है। यह मांस कच्चा हो अथवा पकाया हुआ हो सभी अवस्थाओं में वनस्पतियों की तरह प्रासुक नहीं हो सकता है क्योंकि उसमें भी निगोदिया जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। इसलिये अपने आप मरे हुए अथवा दूसरे के द्वारा मारे गये प्राणी के मांस के भक्षण और स्पर्शन से भी द्रव्य हिंसा होती है तथा खाने से भावों में क्रूरता उत्पन्न होती है इसलिये भाव हिंसा भी होती है ॥७॥

प्राणिहिंसार्पितं दर्पमर्थयन्तरसंतराम्।
ररयित्वा नृशंसः स्वः विवंतयति संसृतौ ॥८॥

मांस की प्राप्ति प्राणियों के घात करने पर होती है और उसमें हर समय जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। और मरते भी रहते हैं। इसलिये मांस भक्षण करने व कराने वाले का हृदय दयाहीन हो जाता है इसमें इसके द्वारा सदैव क्रूर कर्म किये जाते हैं इसलिये भक्षण में भाव हिंसा भी होती है मांस खाने वाले धर्म रहित होकर संसार में परिभ्रमण करते हैं।८॥

राजा सौरसेन की कथा

भगवान पुष्पदन्त के जन्मोतसव से पवित्र काकंदी नगरी में श्रावककुलोत्पन्न सौर-सेन नाम का राजा राज्य करता था। वह वड़ा विद्वान नीति न्याय व धर्म और कुल मर्यादा का जानने वाला था उसने मांस त्याग नाम का व्रत धारण कर लिया था पुनः वेद वादी वेदान्तियों के वहकावे में आ गया और मांस त्याग व्रत को छोड़ दिया परन्तु लोकापवाद के कारण जैसा का तैसा रहता था। वह लोकोपवाद से डरता था राज्य कर्मों में जिसका मन लगा रहता था यह भी कारण होने से। उसके रसोइया का नाम कर्मप्रिय था। एकान्त में विलों में रहने वाले तथा जमीन पर विचरने वाले व आकाश में उड़ने वाले प्राणियों को मारकर लाता था और उसका मांस पकाकर रख देता था परन्तु राज्य कार्य से समय न मिलने के कारण वह मांस को नहीं खा पाता था।

वह रसोईया राजा की आज्ञा के अनुसार रोज मांस पकाता था जव राजा नहीं खाता तो वह स्वयं ही उसको खा जाता था। एक दिन वह रसोईया जंगल में गया वहाँ हिरण आदि कोई जानवर तो मिला नहीं परन्तु एक सर्प दौड़ता हुआ दिखाई दिया और उस सर्प को रसोईया ने मारकर उसका मांस वनाया और राजा सौरसेन को रसोई घर तक अवकाश नहीं मिल पाया परन्तु उस मांस को रसोईया ने पकाकर खा लिया जिससे मरण को प्राप्त हुआ और मरकर स्वयंभूरमण नाम के समुद्र में महाकायका धारण करने वाला महामत्स्य

हुआ जिसका शरीर एक हजार योजन लम्वा तथा पाँच सौ योजन मोटा था। कुछ दिन के पीछे राजा सौरसेन भी मरण कर स्वयंभूरमण समुद्र में निमिगल मत्स्य के कान में तडुल नाम का मत्स्य मांस खाने के संकल्प मात्र से पैदा हुआ। उसका शरीर शालि चावल के समान था महामत्स्य जव अपने मुख को फारकर सोया करता था तव छोटे वड़े सव मत्स्य उसके मुख में प्रवेश करते और बाहर निकल जाते थे। वह तंदुल मच्छ कान में से देखा करता था। अरे यह कैसा मूर्ख है जो इसके मुख में आये हुए को भी नहीं खाता है। जितने जलचर आते हैं वे पहाड़ की कंदरा के समान निकल कर चले जाते हैं। यदि मैं इतने वड़े शरीर का धारी होता तो सब जीवों को खालेता। ऐसा अपने मन में विचार करता था कि मैं सव को ही खालेता एक को भी नहीं बचने देता। यह सालिशिक्य मच्छ उस विशाल काय मच्छ के कान के मैल को ही खाया करता था। विचार करता रहता था कि दैव वश मेरा इतना वड़ा शरीर नहीं हुआ। यदि इतना बड़ा शरीर हो जावे तो मैं सव समुद्र को सूना कर देता।

इस संकल्प को करके वह तंदुल मच्छ अल्पकाय सब मगर मच्छों की खाने की भावना के कारण मर कर सातवें नरक में तैंतीससागर की आयु का धारक नारकी हुआ। और समस्त मछलियों के खाने के कारण वड़ा मच्छ भी सातवें नरक की तेंतीश सागर की उत्कृष्ट आयु को बांधकर मरा और सातवें नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ उन दोनों को जाति स्मरण व भव प्रत्यय अवधि ज्ञान हुआ जिससे अपने पूर्व भवों का ज्ञान हो गया। वे दोनों आपस में कहने लगे कि तन्दुल मच्छ मैंने पूर्व भव में वड़ा भारी पाप उपार्जन किया। जिसके कारण में इस सातवें नरक में आया हूं। यह तो ठीक ही था परन्तु तुमतो मेरे कानका मैल खा कर गुजर करने वाले थे फिर तुम यहाँ कैसे आगये। यह सुनकर तन्दुलमच्छ कहने लगा कि भाई मैंने खोटी भावनायें की तुम सोते थे मैं जगता था तव मैं विचार करता रहता था यह वड़ा ही मूर्ख है कि कितने ही जीव आये और निकल कर चले गये यदि मैं ऐसा होता तो सव मीनों को खा जाता ऐसी मेरी खोटी भावना करने के कारण मैं नरक में आया हुआ हूँ। इस कथा का तात्पर्य यह है कि मांस खाने वाला तथा मांस खाने की भावना करने वाला उससे पहले नरक में चला जाता है इसलिए न मांस खाना चाहिए न खिलाना ही चाहिए खाने वाले तथा खिलाने वाले दोनों ही नरकवासी होते हैं जिससे अनंत संसार के दुःखों को प्राप्त होते हैं। न मांस खाने का संकल्प करना चाहिए। संकल्प करने वाला सौरसेन राजा सातवें नरक गया।

आगे वक राजा की कथा कहते हैं

श्रुतपुर नगर में वक नामक राजा रहता था। वह वड़ा ही चतुर प्रशासक था परन्तु धर्म हीन था। वह किसी कारण से मांस खाने लग गया था। वह अपना अधिकांश समय मांस खाने में ही लगा दिया करता था। तथा उसका रसोइया उसकी इच्छा के अनुसार ही मांस पका-पका कर खिलाया करता था। वह निर्दयी रसोइया नित्यप्रति जीवों का घात कर उनका मांस निकाल कर पकाता था और उस मांस को वक राजा वड़े प्रेम से खाया करता था। एक दिन रसोइया वाजार में से मांस लाया और उसको रसोई घर में रख गया और कार्य वश कहीं

दूसरी जगह गया था कि एक विल्ली वहाँ आगयी और उस मांस को खा गई। जव रसोइया रसोई घर में आया तो देखता है कि वहाँ रसोई घर में मांस नहीं है। यह देखकर वह वहुत हैरान हो गया अव क्या करना चाहिये ऐसा विचार करने लगा कि यदि राजा वक को मांस खाने को नहीं दिया तो वह नाराज होगा और दण्ड देवेगा तथा नौकरो से भी निकाल देगा। यह मन में विचार कर वहाँ से मांस की खोज में निकल पड़ा और इधर-उधर चारों ओर देखता जाता था कि कहीं कोई जीव का मांस मिल जावे परन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया। जव वह श्मशान भूमि में पहुंचा तो क्या देखता है कि कुछ आदमी मृतक वच्चे के शव को भूमि में गाड़ रहे हैं। मुर्दे को जमीन में गाड़ते हुए देखा। जव वे वच्चे के शव को गाड़ कर चले गये तव उसने उस वच्चे के शव को भूगर्भ से वाहर निकाला और कपड़ा के अन्दर लपेट कर राजमहल में पहुंच गया। उस रसोइया ने उस वालक के शव के टुकड़े कर मांस निकाला और उसको पकाया और राजा वक को खाने के लिये दे दिया। वह मांस खाने में वक को वहुत स्वादिष्ट लगा। वह विचार करने लगा कि ऐसा मांस तो मैंने कभी भी नहीं खाया है यह तो वड़ा ही स्वादिष्ट है। वक रसोई जीम कर चला गया और कुछ समय के पीछे वक ने रसोइया को वुलवाया तव रसोइया अत्यन्त भयभीत हुआ कांपता-कांपता वक के पास गया और नमस्कार करके रसोइया कहने लगा कि मेरा कसूर माफ हो आज जो पशु का मांस लाया था उसको विल्ली खा गई तव मैंने हतास होकर श्मशान की ओर गया कि एक किसी का वच्चा मर गया था लोग उसको दवा कर चले गये तव मैं उसको उखाड़ कर ले आया और उसके मांस को पकाकर आज आपको खिला दिया यह नर मांस था। तव वक राजा वोला कि आज से मुझको रोज नर मांस ही खिलाया करो। राजा को आज्ञा पाकर रसोइया निर्भय हो गया। अव तो वह शाम के समय जहाँ तहाँ गलियों में जाता था और वच्चों को लड्डू वाँटा करता था जव कोई एक वच्चा रह जाता था तव उसको ले आता था और राजा को उस वच्चे के मांस को निकाल कर खिला दिया करता था। इस प्रकार वह पापाचारी रसोइया नित्यप्रति यही कार्य करने लग गया। तव सारे शहर के वच्चे कम होने लग गये। यह देख नगर वासियों ने वक राजा से शिशु चोरों का पता लगाने के लिए कहा तव उसने कहा कि हम इसकी खोज शीघ्र ही लगावेंगे। इधर नगर वासियों ने शिशु चोर का पता लगाने के लिए कुछ गुप्तचर आदमियों को नियुक्त किया। एक दिन शाम का समय था कि वक राजा का रसोइया वच्चों को लड्डू वाँटता हुआ मार्ग से गुजरा। वच्चे भी उससे लड्डू ले लेकर खा रहे थे जव अंधेरा हो गया तव उस रसोइया ने एक वच्चे को घसीट लिया तव उन गुप्त लोगों ने रंगे हाथ उस रसोइया को पकड़ लिया तव सव लोग एकत्र हो गये और रसोइया की खूव मरम्मत की तव रसोइया वोला कि इसमें मेरा कोई दोष नहीं क्यों कि यह काम करते हुए मुझे वहुत दिन हो गये। यह कार्य मैंने स्वयम् की प्रेरणा से नहीं किया यह वक राजा की आज्ञा से ही किया गया है राजा की ऐसी दुष्टता पूर्वक वृत्ति जान कर सव लोग असंतुष्ट हुए वे विचार करने लगे कि यह दुष्ट राजा प्रजा का क्या हित करेगा जो प्रजा की होने वाली पीढ़ी को

आप ही खाये जाता है। जिस संतान के लिए हम अपना देश छोड़ कर परदेश गमन कर जाते तथा हजारों आपत्तियों का सामना करते हैं और धन अर्जन कर लाते हैं तथा धन धान्य संग्रह कर लाते हैं सब अपने वंश व बच्चों के लिए ही करते हैं ऐसी दशा में हम लोगों का यहाँ पर रहना ठीक नहीं यदि रहे तो सर्वनाश हो जायेगा।

सब जनता ने आपस में विचार विमर्श किया और निश्चय किया कि इस दुष्ट पापाचारी को अब शीघ्र ही राजधानी से निकाल देना चाहिए। हम इस पापाचारी राजा को कैसे रख सकते हैं और क्या सेवा कर सकते हैं। अगले दिन सब लोग एकत्र होकर वक राजा के दरबार में गये राज सिंहासन पर आरूढ वक राजा को प्रजाजनों ने गद्दी से नीचे उतार दिया और उसके पुत्र को राज सिंहासन पर बैठाया। राजा वक भी यत्र तत्र नर मांस की खोज में भ्रमण करने लगा। जब कहीं कोई मनुष्य उस वक को मिल जाता था तो वह नर मांस भक्षी एकान्त में पकड़ कर उसको मार कर खा जाता था। श्मशान भूमि में जहाँ कहीं मुर्दा मिल जाता था तो उसके वह कच्चे और पक्के मांस को खा जाता था।

इस प्रकार उसकी क्रिया देखकर लोग उसको राक्षस कहने लगे थे। वह यहाँ तक क्रूर हो गया कि कोई आदमी उसके सामने आ जाता था तो उसको जीवित नहीं छोड़ता था। ठीक ही है ऐसे खोटे विचार और भावनायें वैसी ही हो जाया करती है। एक दिन देशान्तर में भ्रमण करते हुए पांचों पाण्डव उस ही नगरी में जा पहुंचे वहाँ एक गरीब वृद्धा के घर पर रात्रि में ठहरे ही थे कि वृद्धा रो रही थी यह बात कुन्ती ने सुन पायी तब कुन्ती ने वृद्धा से पूछा माता जी आप रोती क्यों हैं यह सुनकर उसने अपनी दुखद कहानी कह सुनाई। उसकी सारी कथा भीमसेन से कह सुनाई भीमसेन कुन्ती माता की बात सुन कर वह भीम वक के पास जाने को तैयार हो गया और कुन्ती ने वृद्धा से कहा माँ जी मेरे पांच पुत्र हैं मैं अपने पुत्र को तुम्हारे पुत्र के एवज में भेज दूंगी मेरे चार पुत्र रह जायेंगे तो कोई हर्ज नहीं प्रभात होते ही भीमसेन वक के पास गया और वक के सामने जा खड़ा हुआ वक ने रोज प्रमाण आज भी समझा और दांत किटकिटा कर सामने मारने को दौड़ा। भीम और वक का घोर युद्ध हुआ अन्त में भीमसेन ने अपने गदा का प्रहार किया जिससे वक धरणी पर लोट पोट हो गया तब एक लात और मारी लात मारने पर हाय-२ कर रोने लगा तब भीमसेन ने उसकी छाती पर पैर रख कर बहुत धमकाया और मांस खाने का त्याग करवाया फिर भी पाप कर्म के कारण दुर्गतिगामी बन गया। इसलिये सज्जनों को मांस कभी भी नहीं खाना चाहिए। हे भव्यो तुम्हारे दांत भी मांस खाने के योग्य नहीं है। मांस खाने वाले सिंह बाघादि मांसहारी जीवों के दांत नुकीले नीचे-ऊँचे होते हैं। मांस स्वयं खाना खिलाना खाने वाले को अच्छा मानना ये सब ही समान पाप के भागीदार होते हैं।

इति मांस भक्षण करने की कथा समाप्त

मद्यपान व्यसन को कहते हैं

कुम्भेनीरेन परिभरितं जौ च गोधूममाशा-
वं मुक्तान्नं गलित समलं खाण्ड संयुक्त मद्यम् ।।
मासं पक्षं प्रविशत मलं भूमिगर्भे च तस्य
जीवोद्भूतं प्रभृत इति तद् द्रव्यमग्नौ क्षिपित्वा ।।१५६।।
मृयन्ते ते सर्वे क्षणेऽपि प्रज्वलितं तेषां गात्रं ।।
व्यषेन जलकणाः या नालिका द्वारेण प्रश्रवः ।।१६०।।
तस्मिन्नेवोद्भूताःबहु जीव राशि एकस्मिन् जलकणे ।।
पीते सर्वे रसांगा जीवा खिलाः मृयन्तेऽतदा ।।१६१।।

जब मद्य वनाने वाले एक घड़ा में पानी भरकर उसमें जौ और गेहूं ज्वार उड़दादि को उसमें गला देते हैं तथा उसमें शक्कर या गुड़भी डालदेते हैं एवं भूमि में गाड़ देते हैं और मास पक्ष दिन गाड़ कर रखते हैं तव वे वस्तुयें उसमें सड़ जाती हैं जिससे उसमें असंख्यात जीवों की उत्पत्ति हो जाती है वे सब त्रस दोइन्द्रियादि जीव होते हैं उसमें चलते फिरते हैं। उस पानी में से अत्यन्त दुर्गंध आने लग जाती है क्योंकि उस पानी में पड़े हुए धान्य सड़जाने के कारण से जव भूर्गभ से निकाल लेते हैं और उस घड़े को अग्नि के ऊपर चढ़ा देते हैं और उसका मुख वंद कर देते हैं। उसमें एक नली लगा देते हैं जिससे अव अग्नि जलती है तव उसमें से भाप निकलने लग जाती है उस भाप के साथ जो पानी की अंश वाहर निकलता है उनको वोतल या अन्य वर्तन में एकत्र कर लेते हैं। और जव वह पूर्ण-रूप से जल जाते तथा अग्नि की गर्मी से जो जीव उत्पन्न हुए थे वे सव मर जाते हैं और अधिक अग्नि जलने से सव जीव उस वर्तन के अंदर ही जलकर भस्म भी हो जाते हैं। इस प्रकार यह शराव की एक वूंद में भी असंख्यात त्रस जीवों की राशि उत्पन्न हो जाती है वे जीव उस शराब के पीने से मर जाते हैं।

विशेष—जव शराव वनाई जाती है तव उसमें मादक वस्तुयें डाल दी जाती हैं जौ चना गेहूं ज्वार वाजरा तथा महुआ मुनक्का किसमिस इत्यादि वस्तुओं को एकत्र करके एक घड़ा में पानी भरते हैं उसमें सव वस्तुयें भरकर जमीन के अंदर गाड़ देते हैं जव १० दिन पन्द्रह दिन या महीना होने पर्यन्त वह सव एकत्र की गई पानी में डाली हुए वस्तुयें जमीन में गाड़ दी जाती हैं, तव अन्न का अंश होने से सव वस्तुयें गल जाती हैं जिससे उस घड़ा के अन्तर असख्यात जीव विलविलाने लग जाते हैं। वे जीव इधर उधर पानी के अन्दर दौड़ लगाने लग जाते हैं। जव उसकी पचन की मर्यादा चूर्ण हो जाती है तव उस घड़े को जमीन में से निकाल लेते हैं और दूसरे वर्तन में परिवर्तन कर अग्नि पर चढ़ा देते हैं। और अग्नि की गर्मी लगने व उसमें उवाल आने से सव जीव एकदम मर जाते हैं। उस वर्तन को चारों तरफ से मुख वन्द करके एक नली लगा देते हैं। जिसमें हो करके भाप निकलने लग जाती है उसमें होकर भाप के साथ पानी की वूंदे आती हैं जैसी-जैसी अग्नि अधिक जलाई जाती है तैसी-तैसी भाप अधिक वनती जाती है जिससे अधिक मात्रा में पानी अथवा

जीवों के शरीर का पसीना उस भाप के साथ आने लग जाता है उसको एक वंद मुख के वरतन में लेते जाते हैं इस प्रकार यह शराव त्रस राशि के जीवों के शरीर का ही पसीना है जिसके पीने मात्र से व स्पर्शन मात्र से भी दोष उत्पन्न होता है अथवा उस शराव में भी असंख्यात जीवों की उत्पत्ति प्रति समय में होने लग जाती है। तथा वे जीव पीने व स्पर्शन मात्र में ही उसी समय मर जाते हैं तथा सूक्ष्म न दिखने वाले दोनों प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाया करते हैं। यहाँ तक देखा जाता है कि जीवों का कलेवर होने से ही उसमें जीवों की उत्पत्ति होती है यह शराव भी मांस पिण्ड के समान ही है। १५९। १६०। १६१।

जीवानां यद्वुक्कं मृतगात्राणां च श्वेदमशुद्धम्।
मादकं चित्तभ्राम्यं शठतार्विक्रान्तं गात्रे वा ॥१६२॥

यह शराव जीवों का कलेवर है जिसके पीने से मन में भ्रम उत्पन्न हो जाता है और बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है और अविवेकता (शठता) वढ़ जाती है। विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाने के कारण वह मूर्ख वन जाता है। जव शराव को पी लेता है तव उससे मस्तक में गर्मी वढ़ जाती है। गर्मी के वढ़ जाने व नशा के आने से वह अपने तन की भी सुध भूल जाता है तथा नशा हो जाने पर नालियों में गिरता पड़ता जाता है तथा कुछ वड़-वड़ करता है तथा कुछ गाली गलौज भी करता है। नशा में कुछ का कुछ चिल्लाने लग जाता है पैर कहीं रखता है और कहीं पड़ते हैं अथवा नाली या मार्ग या जमीन पर कहीं भी पड़ जाता है। तब कुत्ते मुख को चाटने लग जाते हैं तथा पेशाव भी कर देते हैं नालियों के दुर्गंध मय पानी को भी स्वाद से पी जाता है। शराव के पीने से गला खुस्क हो जाता है पानी की प्यास और खाने की भूख भी वहुत लगती है तव शरीर की आकृति विचित्र रूप सी हो जाती है। वह नीच ऊँच स्थान को विवेक से शून्य हो जाता है। यह दशा मद्य पान करने वालों की होती हुई देखी जाती है। १६२ ॥ पुनः इसी वात का स्पष्टीकरण कहते हैं।

ऐरेयं पिबन्ति ये तनु धराः भ्रष्टं रसाँगास्तदा।
कामक्रोध भयंप्रभूतमखिलाः सावद्यमुद्यन्ति वा ॥
वर्धन्ते भ्रमराग मोहमनसि क्रूरं विभावं तदा।
वैदुष्य खलु सत्यकाम विषदमानुष्य विनश्यन्ति ये ॥१६३॥

जो प्राणी शराव पीते हैं उनके पीने में जो शराव आती हैं उसमें उत्पन्न होने वाले सव जीव एक दम मर जाते हैं। जिनके पीते ही मन मोहित हो जाता है मूर्छा खाकर जमीन पर गिर जाता है तथा गिड़गिड़ाने लग जाता है पुनः पैरों को फैलाता हुआ गिर जाता है तथा नालियों में भी पड़ जाता है। तथा उसके कामवासनायें अधिक मात्रा में वढ़ जाती हैं कि वह अपनी मां वेटी वहन स्त्री के विवेक से शून्य होकर चाहे जिसको पकड़ने को दौड़ने लग जाता है तथा उसके साथ व्यभिचार करने लग जाता है। तथा क्रोध भी अधिक मात्रा में बढ जाता है जिससे नशा में हो दूसरे जीवों को गालियाँ भी देने लग जाता है तथा मार-पीट भी करने लग जाता है। तथा भयातुर हो जाता है और बुद्धि काम नहीं करती है कहां जाऊं कहां बैठूं खाना पानी करूं ऐसा बुद्धि में भ्रम हो जाता है। ये सव वातें उस मद्यपायी

के अन्दर में उत्पन्न हो जाती हैं। भ्रम से अपने घर द्वार को भी भूल जाता है घर व परिवार परिजनों पर भी वह विश्वास नहीं करता है। अब क्या करूं, कैसे करूं, अब क्या होगा ये मेरा क्या करेंगे, मैं कैसे रहूंगा, मेरी बुद्धि कैसी हो गई है, इस प्रकार भ्रमात्मक चिन्तवन चलता रहता है, नशा के आवेश में हंसता है, नाचता है, कूदता है, तथा कपड़ा भी उतार कर फेंक देता है, अपनी पेशाव को आप ही स्वादिष्ट मानकर पी जाता है, उसके राग की वृद्धि होने लग जाती है।

शराव के पीने से परिणामों में क्रूरता वढ़ जाती है विचार धारायें खोटी हो जाती हैं। शुभ भावनायें एक क्षण मात्र के लिये भी नहीं होती हैं। निश्चय से उनके विद्वत्ता व मर्यादा भी नहीं रह जाती है वचन भी सत्य नहीं वोल सकता है उकको यह सुध बुध नहीं रह जाती है कि मैं क्या वोल रहा हूं किसके साथ वोल रहा हूँ। मनुष्य को अपने का भी ध्यान नहीं रहता है। इस प्रकार दुर्गुणों की वृद्धि होती जाती है ॥१६३॥

निन्दासर्वत्रस्याद् वित्तक्षतिर्नाभिजात दैन्यात् तदा ॥
मद्यपार्हटग्राही चाण्डाल सादृशः शोभते ॥१६४॥

शराव पीने वाले की सव जगह निन्दा होती है उसका कोई भी विश्वास नहीं करता है। तथा धन का नाश हो जाता है वह निर्धन भिखारी वन जाता है और दूसरों की तरफ दृष्टि डालता है। अपनी दीनता दिखाता है व जाति कुल की व धर्म की मान मर्यादा नहीं रह जाती अपने पूर्वजों की कीर्ति को नाश कर देता है यह भी कहलवाता है कि अरे कुल में कंडेवा उत्पन्न हो गया कैसा उज्ज्वल धर्मात्मा कुल था कैसे वाप दादे धर्मात्मा थे उनकी सारी इज्जत को धूल में मिला दिया। पहले कितना मान था अब मारा मारा फिरता है। यह वड़ा ही हठग्राही है और इसका स्वभाव भी चाण्डाल के समान है अथवा चाण्डाल के समान शोभा को प्राप्त होता है इस मद्यपायी के दुर्गुणों को कहां तक कहा जाय उसके तो सव गुण ही नष्ट हो जाते हैं और दुर्वुद्धि अपना शासन जमा लेती है जिससे पापाचार की वृत्ति वढ़ने लग जाती है। राजा भी शराव पीने वाले को दण्ड देता है कैद खाने में बन्द करवा देता है। जव शरावी मनुष्य शराव पीकर शहर की गलियों में फुट पाथ पर गिर जाते हैं तव पुलिस की गाड़ी आती है और उनके दोनों हाथ पैर पकड़ कर लारी में पटककर थाने में ले जाकर दण्ड देते हैं और जुर्माना करते हैं यदि अधिक मात्रा में पी ली जाय तो यह हलाहल का भी काम करती है मरण भी हो जाता है। दिमाग फैल जाता है। आगे पुनः कहते हैं ॥१६४॥

उन्मादक द्रव्याणि वहुविधानि दीव्यन्ति न सेव्येयुः।
यद्गुणापहारेयुः उद्घाटयति नरक द्वारं ॥१६५॥
यद्कुमारोऽदीव्यत् ऐरेयमपिवन मत्तमव्रजन्।
सा संदग्धं द्वारिका कोपेन द्वीपायन मुनिना ॥१६६॥

उन्माद उत्पन्न करने वाली वहुत सी द्रव्ये हैं जैसे गांजा, भाँग, चर्स, सुलफा, कोकीन, अफीम सव ही शराव के समान ही हैं ये सव उन्माद को वढ़ाती हैं और शरीर को

नाकामयाव बना देती हैं। और मिष्ठान खाने की लालसा वढ़ जाती है तथा काम सेवन करने की इच्छायें वढ़ जाती हैं। तथा अफीम यह भी अधिक मात्रा में नशा करती है इसका दूसरा नाम अगल भी है इसका सेवन करने वाला इतना आसक्त हो जाता है कि अपनी धर्म पत्नी को भी वेच देता है तथा अपनी पुत्री से भी यह कह देता है कि वेटा मुझे अफीम लाकर दे वह कहती है कि पिता जी अफीम अमुक व्यक्ति के पास है उसके पास में गई तो वह कहने लगा कि मेरे साथ भोग करो तो मैं दे देता हूं नहीं तो नहीं दूंगा। यह सुन कर वह कहने लगा वेटी कुछ कर मेरे को अफीम लाकर दे? तव वह लड़की उस जमींदार के पास जाकर वोली अच्छा जो आप की इच्छा होय सो करो यह सुनकर जमींदार बड़ा ही लज्जित हो गया और उसने उसको अफीम दे दी और कहने लगा कि इस नशा को धिक्कार हो जो अपनी वेटी व धर्मपत्नी के शील धर्म की भी परवाह नहीं करता है। वीड़ी, तम्वाकू, सिगरेट व नीरा सेधू इत्यादि सव नशा करने वाली वस्तुयें हैं। जिनके खाने पीने व धुआँ के लेने से नशा उत्पन्न हो जाता है वे सव वस्तुयें भव्य जीवों को नहीं सेवन करना चाहिये। क्योंकि इनके सेवन करने पर लाभ तो रंच मात्र भी नहीं हैं परन्तु हानि कितनी है इसकी कोई मर्यादा नहीं रह जाती है। वुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है नशा जितने हैं वे सव ही दुष्परिणामों के ही कारण हैं और नरक को खोलने वाले हैं अथवा नरक के द्वार को खोलने वाले हैं। अथवा इनका सेवन करके दुर्गति का पात्र वनना पड़ता है। नरकों में ले जाने वाले मित्र के समान हैं ॥१६५॥

इस मद्यपान में यादव कुमार प्रसिद्ध हुए थे कि जिन्होंने मदिरा पान किया था और नशे में अतिविह्वल हो गये थे उनको यह होस हवास नहीं रहा था कि हम कौन हैं किसके पुत्र हैं हम क्या कर रहे हैं। शराब के नशा में उन्मत्त हो गये थे और द्वीपायन मुनि को देखकर यह द्वीपायन मुनि रोहिणी का भाई है इसको मारो भगाओ यह द्वारिका नगरी को भस्म करेगा। इस प्रकार चिल्लाते हुए वे सव के सव द्वीपायन मुनि के ऊपर पत्थरों की वर्षा करने लग गये। जव वहुत चोट लग चुकी थी कि द्वीपायन मुनि को एकदम क्रोधरूपी ज्वाला धधक उठी। उनसे कोप दवाया नहीं गया न उनसे उपसर्ग ही सहन हुआ वह क्रोधाग्नि बढ़ गई जिससे उनके वांये कंधे की तरफ से एक रत्नि प्रमाण लाल सिंदूर के रंग का पुतला निकला जो नौ योजन चौड़ी तथा १२ योजन लम्वी द्वारिका नगरी को जलाकर अंत में द्वीपायन मुनि को भी जला दिया यह मद्यपान करने का ही दुष्परिणाम है ॥१६६॥

आगे किसी कवि ने भी कहा है।

वैरूप्यं व्याधिपिण्डः स्वजन परिभवः कार्य कालातिपातो।
विद्वेषो ज्ञाननाश स्मृति मति हरणं विप्रयोगश्चसद्भिः
पौरुष्यं नीचसेवा कुलवल तुलना धर्म कामार्थहा
कष्ठं भोषोडशैते निरुपचय करा मद्यपानस्य दोषाः ॥१॥

मद्यपान करने वाले को शरीर की आकृति वदल जाती है यह एक दोष है। शराबी का शरीर रोगों का समूह वन जाता है। स्वजन का तिरस्कार करने लग जाता है। अपने घर सम्वन्धी व धर्म सम्वन्धी कार्यों को ठीक समय पर नहीं कर पाता है। अपने स्वजनों से

वैर द्वेष करने लग जाता है ज्ञान का नाश हो जाता है दुर्बुद्धि बढ़ जाती है, स्मरण शक्ति नहीं रह जाती है सद्गुणों का भी नाश हो जाता है। पुरुषपना भी नहीं रहता है नीच दुराचारियों की सेवा करनी पड़ती है। कुल की मर्यादा व बल की शोभा नष्ट हो जाती है बड़े ही दुःख की बात यह है कि ये सोलह दोष शराब पीने वाले के ही पाये जाते हैं।

सागारधर्मामृते उक्तम्

यदेर्कविदोः प्रचरन्ति जीवाश्चेतत् त्रिलोकमपिपूरयन्ति।
याद्विविक्ल वाश्चेमम मुंचलोक पस्यन्ति तत्कश्य मवश्यमश्येत् ।।४।।
पीते यत्र रसांग जीव निवहा क्षिप्रं म्रियन्ते खिला
काम क्रोध भय भ्रम प्रभृतयः सावद्य मुद्यन्ति च ।।
तन्यद्यं व्रतयन्न धूर्तिल परा स्कन्दीव यात्यापदं
तत्पायी पुनरेक यादिव दुराचारं चरन्मज्जति ।।५।।

यदि एक बूँद शराब में रहने वाले जीवों को उड़ाया जावे तो वे तीनों लोकों में न समायें। अथवा तीनों लोकों में जगह नहीं रहे। विंदुमात्र मद्यपीने से इतने प्राणियों के प्राण घात का दोष लगता है मद्य से मोहित प्राणी इस लोक और परलोक में दुःख पाता है। इस कारण आत्म कल्याण की इच्छा रखने वालों को इस मद्य का त्याग दूर से ही कर देना चाहिये।

मद्य के रस में असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं उनके पीने से सबका मरण हो जाता है। मद्यपान करने से शरीर व मन में एक प्रकार की अनुचित उत्तेजना होती है। इस उत्तेजना से मनुष्य अविचारी होकर गम्यागमन अभक्ष्य भक्षण अपेयपान आदि नाना प्रकार के अनुचित कार्यों में प्रवृत्त होता है। माता वहन आदि को भूल जाता है। गुरुजनों के प्रति कोप करता है भयातुर होता है तथा मूर्छित हो जाता है उस मद्य का त्यागी धूर्तिल नाम का चोर शुभगति को प्राप्त हुआ और एक यादव ब्राह्मण ऋषि शराब को पीकर दुराचार को प्राप्त हुआ, अन्त में मरण को प्राप्त कर दुर्गति को प्राप्त हुआ।

आगे कथा कहते हैं

एक समय श्री नेमिनाथ भगवान का समवशरण गिरनार पर्वत पर विराज रहा था उस समय द्वारिका पुरी निवासी लोग भगवान नेमिनाथ के दर्शन के लिये गिरनार पर्वत पर गये। वहाँ भगवान नेमिनाथकी तीन प्रदक्षिणा देकर समवशरणमें प्रवेश किया और भगवानके दर्शन कर पूजा भक्ति करी तथा जल चन्दन पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल लेकर पूजा कर और पूजा करके भगवान के समवसरण में बनी हुई बारह सभाओं जहां मनुष्यों की सभा थी उसमें जाकर वैठ गये तथा स्त्रिओं की सभा में स्त्रीयां वैठ गईं। तब श्री बलभद्र ने अपने पूर्वभवों का तथा श्री कृष्ण रूक्मिणी इत्यादि का भवान्तर पूछा। उनके पूछने के पीछे बलभद्र कहने लगे कि महाराज यह द्वारिका नगरी देवोपुनीत बनी हुई है यह कब तक रहेगी कब इसका विनाश होगा ? और कृष्ण की मृत्यु कब और किस प्रकार से होगी ? यह प्रश्न किये जाने पर श्री नेमिनाथ प्रभु की दिव्यध्वनि खिरने लगी कि हे बलभद्र यह द्वारिका नगरी रोहिणी के भाई

द्वीपायन के द्वारा भस्म होगी। वह भी जब यादव कुमार शराव के नशा में मस्त होंगे वे द्वीपायन मुनि के ऊपर कंकड़ पत्थरों की वर्षा करेंगे कंकड़ पत्थरों की चोट से घायल हो जाने पर द्वीपायन को क्रोध उत्पन्न हो जायेगा जिससे उनके वायें अंग से एक अग्नि का पुतला निकलेगा और वह सारे नगर को भस्म कर अन्त में द्वीपायन मुनि को भी भस्म कर डालेगा। तथा यह घटना आज के वारह वर्ष वाद होवेगी। और श्रीकृष्ण यादव कुमार जरद कुमार के इसी वाण से जिस वाण को अभी अपने हाथ में लिये हुए वैठा है। मृत्यु को प्राप्त होंगे एक नारायण दूसरा वलभद्र दो ही प्राणी उस अग्नि से वचेंगे।

यह सुनकर रोहिणी का भाई द्वीपायन अपनी द्वारिकापुरी को छोड़ पूर्व बंगाल व विहार देश की तरफ चला गया और मुनिव्रत धारण कर लिया। तथा अब उस ही देश में तपस्या करते रहे विचार करते रहे कि देखें द्वारिका कैसे जल जायगी। मैं नेमिनाथ भगवान की वात को भी झूठी करके वताऊँगा। जब ग्यारह वर्ष वीत चुके थे कि द्वीपायन मुनिराज भ्रमण करते हुए द्वारिका की ओर चले जा रहे थे। उधर श्रीकृष्ण ने जितने मादक पदार्थ थे उनको पहाड़ों में फिकवा दिया था तथा महुओं के वृक्ष भी वहुत थे जिसके पास में जो गड्ढे थे उनमें पानी भर गया था। मादक वस्तुयें मिल जाने व सड़ जाने के कारण वहाँ पर रुका हुआ पानी भी नशीला वन गया था। द्वीपायन मुनि ने जान लिया कि अब तो वारह वर्ष पूर्ण हो गये अब कोई वात का भय नहीं नेमिनाथ की वात निश्चय ही मैंने झूठी कर दी। परन्तु उस वर्ष में दो वैसाख मास थे जिसको वे भूल गये अब भी मर्यादा वाकी है है यह उनको ज्ञात नहीं हो पाया था। वे द्वीपायन मुनिराज एक छोटी-सी टेकरी पर ध्यान में नगर के वाहर वैठे थे। उधर यादव कुमार उस जंगल में क्रीड़ा करने के लिये गये हुए थे उन सव राजकुमारों को एकदम प्यास लगी जिससे सव ने वह खण्डों में भरा हुआ पानी पी लिया जिससे वे सव यादव कुमार शराव के नशा में मस्त हो गये नशा में आ जाने के कारण वे आपस में धूल फेंकते व नाचते-गाते हुए आ रहे थे कि एक टीले पर द्वीपापन को ध्यानस्थ वैठे हुए देखा और कहने लगे कि वही द्वीपायन आ गया जो हमारी नगरी को जलावेगा। इस प्रकार कहते हुए वे यादव कुमार द्वीपायन मुनि के ऊपर उपसर्ग करने लग गये उन राजकुमारों ने कंकण-पत्थर मारना चालू कर दिया जिससे द्वीपायन को वहुत चोट लगी जव वेहोश होने लगे तव द्वीपायन की क्रोधाग्नि भड़क उठी और राजकुमारों ने नारायण वलभद्र को भी समाचार दे दिया वे शीघ्र ही दौड़कर आये वहुत विनय की परन्तु उनकी क्रोधाग्नि इतनी वढ़ती चली गई कि जिससे उनके वायें हाथ की तरफ से तेजस पुतला निकला और सारे द्वारिका नगर को जलाकर अन्त में द्वीपायन मुनि के शरीर में प्रवेश करते हुए द्वीपायन को भी जला दिया यह मद्यपान के दोष के कारण ही द्वारिका नगरी भस्म हुई विशेष हरिवंश पुराण या पांडव पुराण से जान लेना चाहिये।

मद्यपान करने में एक पादिव सन्यासी की कथा

एक समय एक पादप नामक सन्यासी था वह जाति का ब्राह्मण तथा विद्वान भी था एक दिन वह गंगा स्नान करने के लिये निकला, चलते-चलते वह विन्ध्यातटी में जा पहुंचा।

वहां पर कुछ नीच लोग मदिरापान करके नाच-कूद और गा रहे थे और अनेक प्रकार की कुचेष्टायें कर रहे थे। अभागा संन्यासी इस टोली के हाथों में पड़ गया। चाण्डालों ने सन्यासी का वड़ा आदर किया और कहने लगे आइये महाराज आज हमारे वड़े खुशी की वात है और आजका दिन उत्तम है जो आप हमारे घर पर पधारे हैं आप सरीखे पूज्य महात्माजन के दर्शन मिले हैं। आप मांस खाइये शराव पीजिये और स्त्रीयों के साथ भोग क्रीड़ा कीजिये और हम लोगों के साथ में खेल-कूद क्रीड़ा कीजिये हमारे कार्य में शामिल होइये और नाच-कूद का मजा लूटिये। चाण्डाल भीलों की ऐसी वातें सुनकर वेचारे सन्यासी के तो होस उड़ गये। विचार करने लगा कि इन शरावियों से क्या कहें, कैसे समझावें, वेचारा वड़े ही संकट में पड़ गया। फिर कुछ सोच-समझकर वोला भाइयो एक तो मैं जाति का व्राह्मण हूं दूसरे उत्तम संन्यासी हूँ भला तुम ही कहो कि मैं शराव पीऊं या मांस खाऊं पर-स्त्री के साथ रमण करूँ यह कैसे हो सकता है। कृपा करके मुझे जाने दीजिये।

यह सुनकर वे चाण्डाल कहने लगे महाराज आप कुछ भी कहो परन्तु हम तो तुमको विना परसाद पाये नहीं छोड़ेंगे ? यदि आप अपनी राजी से खा लें तो अच्छा है नहीं तो हम जैसे वनेगा तैसे तुमको खिला पिलाकर छोड़ देंवेगे। हमारी प्रार्थना स्वीकार किये विना आप जीते-जी गंगाजी नहीं जा सकते हैं ? अव तो संन्यासी जी और भी घवरा गये और मन ही मन में सोचने लगे कि यदि मैं मांस खाता हूं या पर-स्त्री के साथ विषय सेवन करता हूं तो वड़ा भारी पाप लगेगा और इसका दण्ड भी वड़ा भोगना पड़ेगा। पर जो साधारण जौ गुड़ आवले आदि से वनी हुई शराव पीते हैं वह शराव पीना नहीं कहा जा सकता है। इसलिये जैसी शराव मुझे पिलाते हैं उसके पीने में न कुछ दोष है न उससे मेरा सन्यास ही विगड़ता है।

यह विचार कर उस मूर्ख ने शराव पी ली शराव पीने के थोड़ी देर वाद नशा चढ़ने लगा। वेचारे ने कभी शराव नहीं पी थी इसलिये उस पर शराव का और भी अधिक नशा चढ़ा। शराव के नशा में चूर हो गया और अपनी सारी सुध-वुध भूल गया। उसको अपने-पराये का भी कुछ ध्यान नहीं रहा अव वह वेहूदी वकवादें करने लगा। लंगोटी फेंक कर वह भी उनके साथ उन लोगों के समान नाचने लगा। सच है खोटी संगति कुल धर्म और पवित्रता आदि सव वातों को भूला देती है। वहुत देर तक तो सन्यासी नाचता-कूदता फांदता रहा पर जव थोड़ा-सा थक गया तो उसको वड़ी जोर से भूख लगी वहां एक मांस-ही खाने के लिये था दूसरी कोई वस्तु नहीं थी तव उसने मांस को खा लिया। संन्यासी नशे में तो था ही। पेट भर मांस खाते ही उसको काम विकार ने सताया। उसने एक चाण्डाल की स्त्री को वुरी दृष्टि से देखा और उसके प्रति अपनी वुरी वासना प्रकट की चाण्डाल लोग अपनी स्त्री का तिरस्कार देख कर उसको सहन न कर सके।

चण्डालों ने संन्यासी को पकड़ कर उन्होंने भुजाओं के वीच में रखकर इतना जोर से दवाया कि जिससे संन्यासी के प्राण पखेरू उड़ गये इस प्रकार आर्तध्यान कर मरकर वह दुर्गति में चला गया।

देखो यह सन्यासी कैसा विद्वान था और धर्मात्मा भी था परन्तु मदिरा पान करने से उसकी कैसी गति हुई। उसका सब धर्म कर्म नष्ट हो गया, विवेक जाता रहा अन्त में मदिरा पान करने के ही कारण अपने प्राण देने पड़े। शराब पीने वाले का विवेक जाता रहता है तथा सदाचार को भूल जाता है हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाप करने में लग जाता है। मदिरा पीने के कारण से कुछ भी लाभ नहीं होता किन्तु बहुत से शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन करने पड़ जाते हैं और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नशा हर तरह का बुरा है। नरक गति का कराण है।

आगे वेश्या व्यसन का स्वरूप कहते हैं।

पण्पका सारमेयसदृश रजकपट्टिका।
सकलजनवल्लभा दुकर्मभिः स्तितानित्यम् ॥१६७॥

यह वेश्या धोबी को कपड़ा धोने की पटिया के समान है जिस प्रकार धोबी नीच-ऊँच जाति कुल वाले लोगों के कपड़े पटिया के ऊपर धोता है। उसी प्रकार वेश्या के यहां पर भी चाण्डाल, कसाई, मुसलमान, नाई, धोबी, चर्मकार इत्यादि नीच व क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण भी जाते हैं उनके द्वारा उसका सेवन किया जाता है। तथा जिनका आचरण कुत्ते के समान है। वह वेश्या संपूर्ण पुरुषों की स्त्री कही जाती है यह वेश्या दुष्कर्मों में हमेशा विद्यमान रहती है।

विशेष—जिस प्रकार धोबी की पटिया पर अच्छे व बुरे सब प्रकार के कपड़े धोये जाते हैं तथा एक ही हड्डी के टुकड़े को अनेक कुत्ते खींचते है उसी प्रकार बाजारू स्त्रियां उच्चनीच कुल वाले सभी पुरुषों से सम्बन्ध रखती हैं। यह वेश्या एक की कभी नहीं होती है वह सब की लार चाटा करती है यह खोटे कर्म करने में सदा रत रहती है।

पण्यस्त्री विलाशिनी वीर्य वित्तं मानषित्वं चधीम्
चित्तं मदमोहिनी च हरति कीर्ति ददाति विषादम् ॥१६८॥

पण्य कहते हैं बाजार में दुकान को जिस प्रकार दुकान पर माल खरीदने के लिये क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्या, चान्डाल, मुसलमान, नाई, धोबी इत्यादि सब नीच उच्च जाति के लोग आते-जाते हैं। उसी प्रकार वेश्या के घर पर वेश्या के पास क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य व चाण्डाल मुसलमान, चमार, चूड़ा इत्यादि सब ही आते-जाते हैं और उसके साथ विषय भोग करते हैं इसलिये इसको पण्यका स्त्री अथवा बाजारू स्त्री कहते हैं। सब नीच ऊंच कुल वाले लोगों के साथ रमण करने की इच्छा रखती है इसलिये इसका दूसरा नाम विलासिनी भी है। तथा वह धोबी की शिला के समान होने से तथा सब लोगों के द्वारा सेवित होने के कारण इसका नाम सकल जन वल्लभा भी कहते हैं। यह वेश्या मनुष्य के वीर्य को हरण कर लेती है जिससे पुरुष नपुंसक के समान तथा लटे हुए घोड़े के समान नामर्द हो जाता है। अथवा नामर्द बना देती है। और धन को भी हरण कर लेती है जिससे मनुष्य निर्धन बन जाता है तथा मनुष्य के मनुष्यत्व को भी नाश कर देती है अथवा उत्साह को नाश कर देती है। इसकी संगति करने पर बुद्धि व विचार शक्ति नष्ट हो जाती है। यह बुद्धि को हरण कर लेती है। तथा मन

के ऊपर मोहनी माला डाल देती है तथा दूसरे के मन को हरण कर लेती है जिससे मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्री को भी भूल जाता है। इसका नाम मनमोहिनी भी है। यह वडे-वड़ों का मान मर्दन करने को सन्मुख होती हुई मन को मोहित करती है जो एक वार वेश्या के फन्दे में फंस जाता है उसका फिर निकलना ही दुष्प्राप्य हो जाता है तथा यह मनुष्य की कीर्ति का नाश करती है अथवा मानव की कीर्ति नष्ट हो जाती है। तथा विपदाओं के समुद्र में पटक देती है। अथवा नरकों के दूःखों में भेज देती है ॥१६॥

ऐरेयं पिवति पलं भक्षयति निवशति धूर्त चित्ते च
रशिकाणां प्राणं या दुष्कृतानांमूलं वेश्या ॥१६९॥

यह वेश्या शराव का पान करती है मांस का भोजन करती है और दुष्ट पापाचारी नीच दुरात्माओं के हृदय में निवास करती है। वेश्या व्यसन में आशक्त जीवों की प्राणप्यारी है तथा जितने प्रकार के संसार में दुष्कर्म हैं उन सव पापों की जड़ भी एक वेश्या है। वेश्या व्यसनासक्त मनुष्यों से धन लेकर शराव मंगवाकर आप पीती है और दूसरे व्यभिचारीजनों को भी पिलाती है तथा जव नशा में चकनाचूर हो विषय योग करती है तथा उनसे ही मांस मंगवाकर स्वयं खाती है तथा अपने यार-दोस्तों को खिलाती है। जव कभी देन-लेन में ही नाधिकता हो जाती है या धन नहीं मिलता है तव प्रसंग पाकर अन्य विषयाशक्तों के द्वारा मरवा भी डालती है। और पिटवा भी देती है वस्त्र और धन को छिनवा लेती है, तथा धक्का देकर निकाल देती है, तथा आप स्वयं भी चप्पल मारने लग जाती है और पान खाकर उसकी पीक उस निर्धन के ऊपर डालकर अपशव्द अथवा गालियां भी देती है अपने कपड़े भी धुलाती है चप्पलें भी साफ करवाती है। तथा व्याहिता धर्मपत्नी के जर-जेवर आदि को भी मंगवा लेती है। हिंसा करती और अपने सहवासियों से भी करवाती है तथा स्वयं मिथ्याभाषण करती है और करवाती है। तथा चोरी करवाती है और चोरी में लाये हुए माल को आप स्वयं ले लेती है तथा छिपाकर रख लेती है तथा व्याहिता स्त्री से पुरुष को विपरीत वना देती है। तथा व्यभिचारी पण्य स्त्री लम्पटी जन उस वेश्या की संगत से वैसे ही वन जाते हैं तथा शरावी मांस भोजी भी वन जाते हैं कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई खोटा कार्य दुनिया में नहीं रह जाता है कि जिसको वेश्या की संगत करने वाले न कर सके इसलिये वेश्या सव प्रकार के पाप रूपी वृक्ष की जड़ ही है ऐसा ग्रंथकार कहते हैं।

नष्टेतृ सुकृतानां च समूलं क्षपयति यशं दुःखं राति ॥
नारके धरति दासी स्वर्ग द्वारेऽर्गला साह्म ॥१७०॥

यह वेश्या पुण्यकार्यों को व धर्म को समूल नष्ट कर देती है अथवा पुण्य का नाश करने में कारण होती है और दुःख देती है यह वेश्या जीवों को नरक में ले जाती है तथा नरक के दरवाजे को खोल देती है और स्वर्ग और मोक्ष के दरवाजे के लिये अर्गला अथवा वैड़ा के समान है। जिस प्रकार किवाड़ वन्द कर उसके भीतर अर्गला वैड़ा लगा देने पर दरवाजे के किवाड़ खुल नहीं सकते हैं तथा स्वर्ग सुख वेश्या के साथ रमण करने वाले को नहीं मिल सकते हैं। तव मोक्ष सुख कैसे वेश्या सेवन करने वाले को मिल सकता है ॥१७०॥

सेवन्ति वराकानां चरतिवीर्यं च पौरुष्यं तथा ।
इच्छन्ति धनिकानां सा हिंसति च तनूधराणां प्राणान् ।।१७१।।

यह वेश्या नीच दुराचारी, पापी, व्यभिचारी जनों के साथ विषय भोग करती है तथा नीच मनुष्यों के द्वारा सेवन की जाती है और मनुष्यों के वीर्य को हरण कर लेती है तथा पुरुषार्थ को नष्ट कर देती है। तथा वीर्य के नष्ट हो जाने पर मनुष्य नपुंसक के समान हो जाते हैं। तथा वह वेश्या धनिक जनों को ही चाहती है यह विचारा करती है कि कोई धनिक जन फंसे तो अच्छा होगा। जब धन नहीं रह जाता है तब वह जीते जी निकाल देती है यह कहा ही नहीं जाता यहां तक देखा जाता है कि वह निर्दयता पूर्वक दुष्टों से पिटवाती है तथा मरवा भी डालती है। निर्दयता का व्यवहार शीघ्र ही करने लग जाती है और सज्जनों की इज्जत को धूल में मिला देती है जब तक पैसा रहता है और वेश्या को पैसा आता दिखाई देता है तब तक वह वेश्या बड़ा ही प्रेम दिखाती है और पैर दबाती है तथा आगे-आगे कार्य करने को दौड़ती है जब पैसा नहीं आता दिखता है तब उसका प्रेम-प्यार सब टूट जाता है वह एक क्षण भी उसकी तरफ नहीं देखती वह उसका बुरी तरह से तिरस्कार कर निकाल देती है। उसकी सभा में दुष्ट क्रूर कामी मांसाहारी शराबी जुआरी व पर-स्त्रियों के साथ रमण करने वाले चोर डाकू जन तथा नितांत असत्य भाषण करने वाले रहते हैं। तथा मनुष्यों की शारीरिक शक्ति को नाश कर देती है। जिसके संसर्ग से सुजाक, गर्मी, दमा, तपेदिक, भगंदर इत्यादि अनेक रोग होते हुए देखे जाते हैं जिनके कारण मरण पर्यन्त महादुःख भोगना पड़ता है जिनसे पिण्ड छूटना ही दुस्तर हो जाता है। रोग के हो जाने पर घर वाले भी नहीं चाहते वे कहने लग जाते हैं कि अब यहां क्या रक्खा है जिसके लिये यहां पर तुम आये हो? जाओ उस वेश्या अम्मा के पास जाओ कि जिसको सारे जन्म की कमाई खिला दी? हमारे से तुम्हारी टहल नहीं होती है? तब नहीं सोचा था कि जब तेरी जवानी थी। तब तो काम के मद में झूमता रहा अब हम क्या करें वहीं जाओ।

दुर्ध्याने विलसति सा अहोरात्रि पिशाचिनी सज्जनेभ्यः ।।
रत वेश्याभिलाषिकाः निर्वृन्त्तं यद्धन्ति पादुकाः ।।१७२।।

यह वेश्या दिन-रात इसी ध्यान में रहती है कि कोई धनी हो कोई नव यौवन से युक्त बलशाली पुरुष मिले और उसके माल असबाब पर मेरा अधिकार हो तथा उसके स्त्री बच्चे भूखे मरें और मैं देखूं। तथा दूसरों का घात करने में वह नित्यप्रति लगी रहती है वह सज्जनों के लिये पिशाचिनी के समान है। वह हमेशा ही खोटे ध्यान में रत रहती है तथा अन्य प्राणियों व निर्धन मनुष्यों का तिरस्कार करती है और तिरस्कार करने का ही भाव रखती है। उसका भाव पिशाचिनी के सदृश दिखाई देता है जिस प्रकार किसी के पीछे पिशाचिनी लग जाती है तब सब धन का नाश कर देती है व दाने-दाने को मोहताज कर देती है। उसी प्रकार यह वेश्या भी सज्जनों को एक-एक दाने को मोहताज कर देती है। तथा दुःख देती है शरीर में पीड़ा पहुंचाती है तथा बेहोश बना देती है। जो वेश्या के साथ में बैठते हैं तथा सब धन

रहित हो जाते हैं तव वह वेश्या गालियां देती है निर्लज्ज पापी दुरात्मा कहती है तथा अपने मुख की पीक तक उसके ऊपर ड़ाल देती हैं कहती है कि तूने ऐसा वायदा किया अब क्यों नहीं करता है इतना कह करके रोस में आकर वेश्या व्यसनी के वह चप्पल मारने लग जाती है तब भी वह वहां पर उसकी चप्पलें खाता है। १७२

येषां जातिर्न कुलं यशं धर्म्मं मर्यादा कारुण्यम् ।।
वित्तं कीर्तिं विद्या विलासिनिया सहवासे ।। १७३

जो रति क्रीडा में मग्न रहने वाली हैं वह दिन-रात का भेद नहीं करती हुई विषय भोगो में लीन रहती है उसकी संगति करने से जीवों के परिणाम कलुषित निर्दयता से युक्त हो जाते हैं भय बढ़ जाता है निर्लज्ज हो जाता है और जाति को मर्यादा व कुल की मर्यादा यश व धर्म की मर्यादा तथा दया कीर्ति तथा धन का नाश हो जाता है तथा विद्वान होकर भी मूर्ख वन जाता है।

जो वेश्या-व्यसन में आसक्त हो जाया करते हैं उनके किन-किन गुणों का नाश नहीं हो जाता है अर्थात सब गुण नष्ट हो जाते हैं। धनवान होकर भी निर्धन बन जाता है और उच्च जाति का होने पर भी नीच के समान आचरण करने लग जाता है। तथा उच्च कुल का होकर भी नीचाचरण करने लग जाता है अपना यश तथा पूर्वजों का यश नष्ट हो जाता है धर्म मर्यादा को भंग करके कुधर्म करने लग जाता है अथवा धैर्य शून्य हो जाता है यह सब वेश्या के संसर्ग का ही दोष है इसलिये भव्य जीवों को ऐसी नीच दुराचारिणी बाजारू स्त्रीयों के सहवास का दूर ही से त्याग कर देना चाहिये। १७३

शृंगारे सारम्भा प्रियवादने च भामिनी सादृशा ।।
उर्वसी संध्याकाले मध्ये च प्रभाते भट्टिका ।।१७४।।
उदरात्प्रवहति रक्तं मुखे भक्षणे रक्तं लाली तत् ।।
दुर्गंधं निःसरति च ऐरेयं पानं च सततम् ।।१७५।।
मायाधामं भृकुटि कुटिलं कटाक्षं वक्रता सत्यंगे ।।
पूतराशिजन्मस्थलं योनिमध्ये जाते मृते वहुः ।।१७६।।
चित्त हारिणी मधुर भाषिनी कामदा भाग्ये खला ।।
किं सेवन्त्य सेव्यं धिग् तान् खेदोऽस्मान् दुर्गतौ याः १७७।।

जब संध्या के समय वेश्या अपने शरीर का शृंगार करती है। तब वह स्वर्ग लोककी देवांगना रम्भा को भी मात करती है तथा कामी जन उसके शृंगार को देखकर मुग्ध हो जाते हैं वे अपनी व्याहिता स्त्री को भूल जाते हैं। जब वह वचन बोलती है तब ऐसी भाषती है कि मानो इसके समान दूसरा प्रियवचन बोलने वाला कोई संसार में है ही नहीं। तथा अपनी प्रियतमा से भी अधिक प्रिय वचन बोलती है कि हे स्वामी, हे मालिक, हे पतिदेव, कह कर पुकारती है और आप सेविका बनजाती है जब पैसा समाप्त हो जाता है तब सिंहनी बनकर उसको पीटने को सम्मुख हो जाती है। धन होने पर अपनी विवाहिता के समान आदर करती है तथा प्रिय मधुर वचन बोलकर रिझा लेती है तथा सेविका बन जाती है। शाम के समय वह अपने

बालों को कंघी करके मस्तक में सिंदूर (कुंकुम) भर लेती है तथा आंखों में काजल लगा लेती है होठों पर लाली लगा लेती है तथा अपने माथे पर वेंदी लगा लेती है तेल लगाकर व पान सुपाड़ी खा लेती है हाथों में मेहदी लगा लेती है गले में हार, हाथों में चूड़ियां पहन लेती है श्रृंगार कर स्वच्छ साड़ी पहन लेती है और घर के दरवाजे के पास बैठ जाती हैं तब ऐसी लगती है कि मानों श्रृंगार कर इन्द्र की सभा में जाने के लिये तैयार रम्भा ही है। संध्या के समय में श्रृंगार कर बैठ जाती है तब रम्भा के समान दिखाई देती है रात्रि के मध्य में व्यभिचारिणी के समान दिखाई देती है तथा सुबह को रात्रि में राक्षसी के समान दिखाई देती है। जब रात्रि के अन्त में उसका सारा श्रृंगार पुरुषों के साथ रमण करने से नष्टहो जाता है तब भट्टिनी के समान दिखाई देती है मुख की कान्ति व मस्तक की मांग तिलक सब नष्ट हो जाने के कारण ऐसी मालूम पड़ती है कि मानो जंगल में विचरने वाली भिल्लनी भटियारी हो जिसका मुख लार से भरा हुआ होने व दुर्गंध आने से अत्यन्त मलिन होती है।

उसके शरीर व योनि द्वार से हमेशा रक्त बहता रहता है तथा मांस खाने से उसका मुख भी लाल रहता है उसका मुख लाल-लाल होता है तथा लाली लगाने से भी तथा पान खाने से यह प्रतीत होता है कि मानों राक्षसी है। मांस खाने और शराब पीने के कारण से उसके मुख से दुर्गन्ध आती है। अथवा उसके मुख से दुर्गन्ध निकलती रहती है। यह वेश्या निरंतर शराब पीती रहती है तथा छलकपट मायाचारी करने में व दूसरे जीवों को ठगने में प्रवीण होती है उसकी आंखों की भौंहें अत्यन्त कुटिल होती हैं तथा कामी जनों को कटाक्ष मार कर आशक्त बना लेती है तथा कामी जन उस पर आशक्त हो जाते हैं। तथा अपने अंग उपांगो की भी कुचेष्टा करती हैं। तथा योनी-स्थान में उसके असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं और मरण को प्राप्त होते हैं। तथा इन क्षुद्र भवके धारक सम्मूर्छन लब्ध पर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति का एक मात्र स्थान है जिसमें असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं और स्पर्शन व मैथुन करने पर सब ही मर जाते हैं। तथा वेश्या सब काल में अपवित्र रहती है। तथा कामी पुरुषों के मन को मधुर वचन बोलकर हरण कर लेती है तथा काम को उत्पन्न कर देती है तथा कोई भी अवस्था में वह पवित्र नहीं होती है। ऐसी वेश्या की संगति सज्जन जन करते हैं यह बड़े ही खेद की बात है। पर सज्जनों व उच्च कुलोत्पन्न पुरुषों के सेवन करने योग्य नहीं जो इस वेश्या की संगति करते हैं वे स्वयं जान कर नरक कूप में कूदने के समान है। यह वेश्या की संगति नरक ले जाती है व्यवहार में लोग वेश्या व्यसनी को ऋण भी नहीं देते हैं न विश्वास ही करते हैं पास में बैठने भी नहीं देते हैं। उसके साथ खान पान भी नहीं करते यहां तक देखा जाता है कि गांव गली मुहल्ले में भी नहीं आने देते हैं उसको बदकार करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वेश्या व्यसन सेवन करके नरक तथा त्रियंचों में मरकर जीव उत्पन्न होता है। वहां सागरों की आयु पर्यन्त दुःख भोगते हैं तथा अनन्तकाल तक संसार रूपी समुद्र में गोता खाते रहते हैं ॥१७४—१७७॥

> प्रसिद्धचारूदत्तश्च श्रेष्ठीसुतश्च वेश्यायां ।
> किनाभवद्गतिः विज्ञः क्षिप्तागृहे धृतं तस्य ॥१७८॥

(इस वेश्या की संगत) श्रेष्ठ पुत्र चारूदत्त वेश्या की संगत में पड़ गया था जिसके कारण उसकी क्या गति हुई। यह चारुदत्त वेश्या व्यसन में प्रसिद्ध आगम में हुआ है। चम्पापुर में कलिंग सेना नाम की एक वेश्या थी उसकी लड़की का नाम वसंत सेना था वह रूप रंग व हाव भाव में रम्भा के समान थी उसको देखकर वह उसमें आसक्त हो गया और वह अपनी माता और अपनी धर्म पत्नी आदि सवको भूल गया। जव सारा धन वेश्या के घर आ गया तव उस वेश्या ने एक वोरी में वंद कर अपने शौचालय में डलवा दिया यह सव वेश्या संगत का ही असर है ॥१७८॥

इसकी कथा

चम्पापुर नगरी में श्रेष्ठी भानुदत्त रहता था, उसकी धर्म पत्नी का नाम सुभद्रा था पुण्योदय से एक पुत्र हुआ। उसका नाम चारूदत्त रक्खा गया चारूदत्त विद्या अध्ययन में वहुत प्रवीण था थोड़े ही काल में उसने गुरु के पास सव विद्या पढ़ ली। चारूदत्त स्वभाव से ही दयावान सुशील बुद्धिमान तथा परिश्रमी था तथा थोड़े ही दिनों में अनेक विद्यायें पढ लीं चारुदत्त दयालु और परोपकारी वालकथा, एक समय वह अपने मित्रों के साथ वग़ीचा में खेल रहे थे कि उनके कानों में कहीं से रोने की आवाज आई आवाज आते ही चारुदत्त का हृदय दया से उमड़ आया जिस ओर से आवाज आ रही थी वह उसी तरफ को चल पड़ा थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि कोई पुरुष कीलित होकर वांधा हुआ एक वृक्ष की डाली पर लटक रहा है। वह वड़े ही कष्ट में है। चारुदत्त उसके पास गया और उसी समय अपनी चतुराई से उसको वन्धन से मुक्त कर दिया। उसको धैर्य वंधाया और योग्य औषध तथा आहार पानी देकर सन्तुष्ट किया।

निज सुख की परवाह न कर पर दुख करते दूर।
जन्म सफल करते सदा वे दयालु वे सूर ॥

जब चारूदत्त पढ़ लिखकर निपुण हो गया तो उसके पिता ने उसका विवाह सिद्धार्थ सेठ की पुत्री मित्रवती नाम की कन्या के साथ कर दिया। मित्रवती भी वड़ी ही सुशिक्षिता तथा सुशीला धर्मपरायणा तथा सदाचारिणी थी। अर्थात् चारुदत्त का विवाह हो गया परन्तु विवाह का रहस्य चारुदत्त को अभी तक समझ में नहीं आया था इसे विषय-वासना छू भी नहीं सकी थी वह तो दिन रात पुस्तकों के पढ़ने में ही लगा रहता था। वह पुस्तकों के पढ़ने अभ्यास करने विचार व मनन करने इत्यादि में ही सदा रमा रहता था। इस ही चम्पापुरी नगरी में एक कलिंग सेना नाम की वेश्या रहा करती थी उसकी पुत्री का नाम वसंत सेना था, वह वसंत सेना अपने रूप सौन्दर्य या गुणों में अद्वितीय रूपवान थी। एक दिन चारुदत्त अपने चाचा रुद्रदत्त के साथ घूमने गया था। दोनों जव कलिंग सेना के मकान के पीछे पहुंचे ही थे कि राजा का हाथी विगड़ा हुआ वहीं पर आ पहुँचा उसके आने से सारा रास्ता वंद हो गया, तव रुद्रदत्त चारूदत्त का हाथ पकड़ कर कलिंग सेना के मकान में जा चढ़े। वह वेश्या रुद्रदत्त को तो पहले से ही जानती थी सड़क खुलने तक रुद्रदत्त कलिंग सेना के घर पर कलिंग सेना के साथ सार पांसा खेलने लगे तथा चारुदत्त वहीं वैठा हुआ देखता रहा। शतरंज खेलने में रुद्रदत्त कई

वार हारा चरूदत्त अपने चाचा को हारता हुआ देखकर स्वयं खेलने को उत्सुक हुआ। सतरंज खेलते हुए कलिंग सेना कहने लगी कि सेठ साहब मैं तो खेलते २ वृद्ध हो गई मेरी पुत्री नवयौवन से युक्त वसंत सेना है और आप भी नवयौवन संयुक्त है इसलिये मेरे साथ आपका सतरंज खेलना उचित नहीं मालूम होता। एक मेरी परम सुंदरी पुत्री वसंत सेना है आप उसके साथ खेल मैं उसको अभी बुलवाये देती हूं, चारुदत्त बोला जैसा आप उचित समझें मुझे कुछ भी इनकार नहीं है। वसंत सेना को बुलवा लिया और चारुदत्त भी उसके साथ शतरंज खेलने लगे और उसके साथ खेलते २ चारुदत्त उस वसंत सेना में आशक्त हो गया, अथवा मोहित हो गया। चारुदत्त तो वसंत सेना के घर ही रह गया परन्तु रुद्रदत्त निकल गया चारूदत्त ने अपना वहुत धन माल वेश्या को दे दिया और वह उस वेश्या के मकान पर ही रहने लग गया। उसको काम वासना के सिवा और कुछ नहीं दिखता था। वह वसंत सेना के यहां बारह वर्ष पर्यन्त रहा। वसंत सेना में अत्यन्त आसक्त होने के कारण ही चारुदत्त को अपनी माता व स्त्री कोभी याद नहीं आती थी तब दूसरा कर्तव्य क्या स्मरण आवेगा। इस बीच में कलिंग सेना के यहां चारुदत्त के घर से सोलह करोड़ दीनारें आ चुकी थी, तत्पश्चात जब कलिंग सेना ने मित्रावती के आभूषणों का आते देखा तो समझ गई कि अब चारुदत्त के घर पर कुछ नहीं बचा, सारा धन माल मेरे घर आ पहुंचा है। तब उसने अपनी लड़की बसंत सेना से कहा कि तू इस निर्धन चारुदत्त को छोड़ दे माता की बात सुनकर बसंत सेना को अत्यन्त दुःख हुआ, उसने कहा कि मैंने चारुदत्त को ही अपना जीवन का स्वामी बना लिया है मैं इसको छोड़कर इन्द्र कुबेर चक्रवर्ती हो उसको नहीं चाहती हूँ, मेरा पति है तो चारुदत्त ही है अन्य पुरुष मेरे लिये भाई बाप के समान हैं। कलिंग सेना ने अपनी पुत्री बसंत सेना के दुराग्रह को देखकर अन्य उपाय से चारुदत्त को घर से निकालने का प्रयत्न किया। एक दिन कुछ लोगों को शराब पिला कर बसंत सेना को न कहते हुए दुष्टता पूर्वक चारुदत्त को एक बोरी में बँधवा कर रात्रि में अपने शौचालय में डलवा दिया। प्रभात होते ही भंगी शौचालय को स्वच्छ करने को आता है तो देखता है कि एक बोरी में से कराहने की आवाज आ रही है उसने उस बोरी के मुख को खोल कर देखा तो उसमें चारुदत्त बेहोश पड़ा था उस बोरी को निकाल कर उसमें से चारुदत्त को पहचान लिया। चारुदत्त वहां से उठ कर अपनी माता व स्त्री के पास पहुँचा। माता तथा धर्म पत्नी चरखा कात कर तथा पीसना पीस कर अपनी गुजर करती थीं। उनके पास पहुँच कर स्नान किया और रोटी खाई कुछ दिन के पश्चात माता तथा धर्म पत्नी से आज्ञा लेकर परदेश को धन कमाने के लिये निकला। परदेश में भी वहुत दुःखमय दिन बीत रहे थे अब कुछ पूर्व पुण्य का पुनः उदय आता है जिससे चारुदत्त को धन लाभ हुआ। इस प्रकार यह वेश्या व्यसन अन्त में दुर्गति देने वाला है। अथवा यों कहना चाहिये कि यह वेश्या साक्षात रूप से दुःखों के कूप में डालने वाली है अथवा वेश्या के साथ जो व्यवहार करते हैं उनको भी कलंकी बना देती है। जो वेश्या के घर जाते हैं व लेन-देन व्यापार आदि करते हैं वे भी दुर्गति व निन्दा के पात्र अवश्य बन जाते हैं। वेश्या व्यसन के सेवन करने वालों की संगत भी दुर्गति में ले जाने वाली है। साक्षात् उस वेश्या के साथ रमण

करते हैं उनकी कीर्ति बढ़ेगी या अपकीर्ति बढ़ेगी ? नहीं अपकीर्ति ही बढ़ेगी। इसलिये वेश्या की तो संगत करना ही नहीं चाहिये परन्तु वेश्या व्यसनी मनुष्यों की संगत भी नहीं करनी चाहिए। उन व्यसनियों के साथ खान-पान लेन-देन करने से सज्जनों की भी अपकीर्ति हो जाती है। जिस प्रकार कलारन बोतल में दूध लेकर चले तो भी उस दूध से भरी हुई बोतल को भी संगत दोष से शराब कहते हैं उसी प्रकार खोटी संगत से खोटी बुद्धि होती है। इसलिए वेश्या व्यसन को त्याग कर देना ही आनन्द का कारण है।

इस प्रकार वेश्या व्यसन में प्रसिद्ध चारुदत्त की कथा समाप्त हुई।

आगे चोरी व्यसन का स्वरूप कहते हैं।

वित्तं श्रेयं जगति वपुषानां भ्रमन्त्यन्य देशे ॥
तस्यार्थं यान्ति खलु विपने निर्भयंप्राविसंत्ये ॥
को मृत्युं चिंतयति न तदा किं मृगेन्द्रस्य लाभं ॥
तद्वित्तं यैश्च विहरति चौरः न किं प्राणघातम् ॥१७९॥

सब देह धारियों को जगत में धन श्रेयस्कर है। जिस धन को प्राप्त करने व उपार्जन करने के लिये मनुष्य अपने ग्राम नगर देश को त्याग कर परदेश में जाता है जहां पर जिस जंगल में भयंकर क्रूर परिणाम वाले तथा मार कर खाने वाले सिंह वाघ तेंदुआ आदि दहाड़ रहे हैं तथा वाघ बोल रहे हैं तथा दौड़ रहे हैं ऐसे भयानक जंगल व पहाड़ों में प्रवेश करता है उस समय अपने जीवन की भी किंचित मात्र विचार नहीं करता हुआ निडर हो कर प्रवेश करता है। अपनी मृत्यु का भी विचार नहीं करता कि इसमें विचरने वाले सिंह, वाघ, तेंदुआ, भालू आदि मेरे को खा जावेंगे तो यह धन किसके काम आवेगा ? परन्तु यह धन का इच्छुक क्या भय करता है ? अथवा भय नहीं करता है जिस धन को अपने प्राणों की बाजी लगा कर उपार्जन किया जाता है उस धन को यदि चोर लोग ले जाने को आवें तो क्या उस धन को ले जाने देगा ? नहीं ले जाने देगा। जब जबरन कर ले जाते हैं तब उनके धन को ही नहीं ले जाते हैं परन्तु वे उनके प्राणों को ले ही जाते हैं। क्यों कि धन मनुष्य का ग्यारहवाँ प्राण है अथवा धनिक पुरुष के प्राण धन को हरण कर ले जाते हैं।

कोऽपि न राति वित्तं स्वेच्छा प्राणक्षये बिना कदापि ॥
तं वित्तं ये हरन्ति प्राणानां क्षति कृतं तदा ॥१८०॥

इस धन को अपनी इच्छा से कोई भी किसी को नहीं देता है परन्तु चोर लुटेरे धन के मालिक को पीट कर तथा हाथ पैरों को बांध कर डाल देते हैं या उसके प्राणों का नाश करके पीछे ही ले जाने देते हैं। क्यों कि धन प्राणों से भी मनुष्यों को प्यारा होता है परन्तु प्राणों से भी प्यारे धन को यदि चोरी कर ले जाते हैं या लूट कर ले जाते हैं तब वह धन के मालिक हाय-हाय कर चिल्लाते हैं कि वैरी मुझे मार गये हाय मैं मर गया इत्यादि करुणा जनक शब्द कहता है तथा चोर लुटेरों का पूर्ण रूप से सामना कर तिरस्कार करने को सन्मुख हो दौड़ता है। तब वे दुष्ट पापात्मा उस धन के मालिक को बंदूक तलवार या लाठी से मार कर उसके धन को ले जाते हैं तथा घर मालिक को घर में बांध कर डाल जाते हैं ॥१८०॥

स्तेयं कुर्वन्त्यधमाः तेऽपि यान्ति भूरिदुःखं तद्भवे।
दण्डयन्ति च नृपालाः कारागृहे पातयन्ति तान् ॥१८१॥

नीच दुराचारी चोर लोग जब चोरी करने को आते हैं वहां जब चोरी करते हुए घर मालिकों के द्वारा पकड़ लिये जाते हैं तब ग्रामवाले मिलकर धिक्कार देते हुए इस प्रकार से मार लगाते हैं कि जिसकी कुछ सीमा नहीं रह जाती है तथा कोई चाबुक बेंत लाठी, डण्डा इत्यादि व घूसा, थप्पड़, लात देकर मारते हैं। जब राजा को सौंप देते हैं तब हथकड़ी पहनाकर व पैरों में बेड़ियां डलवा देते हैं। जब थाने में व एकान्त स्थान में ले जाकर दोनों हाथों को रस्सी से बांध करके छत में लगे हुए कड़े में रस्सी बाँध कर बेंत या सोंटी लेकर मार लगाते हैं और कहते हैं बताओ इससे पहले कहां-कहां चोरीयाँ की हैं? तब वह चोर कुछ-का-कुछ गिड़गिड़ाता हुआ भय से बोलता है तब पुनः उसके पीठ या चूतड़ों में बेंत, चाबुक, हंटर की मार लगाते हैं। तथा नंगा उघारा कर देते हैं और चाबुक की मार लगाते हैं जिससे हाय-हाय चिल्लाता है, रोता है और हाथ जोड़ता तथा पैर छूता है कहता है कि मैं आइन्दा चोरी कदापि नहीं करूंगा। तत्पश्चात् उसको हत्यारा कह करके काल कोठरी में डाल देते हैं। काल कोठरी में जब डाल देते हैं तब वहीं पर खाना, वहीं पर सोना, वहीं पर शौच जाना व पेशाब करना इत्यादि सब क्रियायें करते हैं वह काल कोठरी नहो है अपितु नरकवास ही है कि जहां पर शौच व पेशाब की बदबू, वहीं पर भोजन करना, पानी पीना तथा मनुष्य का मुख भी देखने को नहीं मिलता है। तथा शौच के स्थान में ही पड़े रहते हैं उनको एक छिद्र में होकर रोटी-पानी दे दिया जाता है। इस प्रकार वे इस भव में भी कारागृह में पड़े हुए दुःखों का भोग करते हैं। इस प्रकार से चोरों को इस भव में संकटों का सामना करना पड़ता है। कई स्थानों पर चोर, डाकूओं व जेबकतरों को बंदूक की गोली से भी मार डालते हैं कई स्थानों पर राजा हत्यारा कहकर फांसी की सजा भी देता है। है इस प्रकार चोरों का जीवन ही बरबाद हो जाता है। तथा जिनके पास चोरी का धन रक्खा गया है या बेचा गया है खरीदने वाले का पता लग जाने पर उसको भी चोर साबित करके उसके धन माल जमीन जायदाद को जब्त करवा लेता है और उसको कारावास की सजा देता है। तथा देश निकाला भी दिया जाता है। जो चोरों के पास आते-जाते या बैठते-उठते हैं या जिनके पास चोर आते-जाते हैं व खाना-पीना करते हैं उनको भी उनमें सम्मिलित हुआ जानकर राजा दण्ड देता है और कैदखाने में डाल देता है। उनपर अन्य लोग भी सुबह करते हैं इत्यादि ॥१८१॥

न कश्चद्धानं कुर्यात् तस्कराणां भीमं दारुणं च।
क्षिपति च सून्यागारे मृगयन्ति नृपारक्षकाः तान् ॥१८२॥

वे चोर लोग अत्यन्त भयभीत होकर जंगलों में सून्य स्थान मकान में गुफा व कोट कन्दरा आदि में छिपकर रहते हैं उनका कोई भी विश्वास नहीं करता है। यहां तक देखा जाता है कि माता-पिता, भाई, स्त्री व रिश्तेदार या ग्रामवासी भी उस चोर का भरोसा नहीं करते हैं। और उन चोरों का पता लगाकर जहां पर जंगल में मकान व गुफा बीहड़

में रहते हैं वहां खोज लगाते हुए राजा के सैनिक जंगलों में प्रवेश कर चोरों को पकड़ने के लिए जाते हैं तब वे चोर लोग पता लगते ही उस स्थान को छोड़कर भाग जाते हैं। भय के कारण अनेक सून्य स्थानों में छिपते हैं। और रूप बदल कर जहाँ-तहां रहते हैं ॥१८२॥

स्वयार्थं ग्रामे वा तस्करा गंच्छन्ति तमरात्री वा ॥
दृश्यते यत्र-तत्र किं ध्वनितं तत्रैव मानवा: ॥१८३॥

चोर लोग रात्रि के अंधकार में चोरी करने के लिये ग्राम शहर राजधानी व कस्बा मटंबरण द्रोण मुख में जाते हैं। वे चोर चौकन्ने रहते, विचरते रहते हैं वे चारों ओर को कान लगाकर सुनते हैं कि यहां कोई जागता तो नहीं है। देखो उधर से आवाज कैसी आ रही है। जब चोर ग्राम में प्रवेश करते हैं तब चारों ओर कान लगाकर सुनते हैं कि कोई जाग तो नहीं रहा है। आपस में भी कहते हैं कि देखो आस्ते से प्रवेश करो कोई जानने न पावे। यदि ग्रामवालों को पता लग जाय तो वे सब सावधान हो जायेंगे और तुम्हारे को पकड़ लेंगे और मारेंगे तथा पीड़ा देवेंगे।

तान् तस्करान् धरन्ति ग्रामवासिनै: ताडयन्ति मुहुश्च ।
किं कथयामि तत्कालं कथा मृत्यु यातितान् व्याधि: ॥१८४॥

जब ग्रामवासी लोग उन चोरों को अपने ग्राम व घर में या घर के बाहर पकड़ लेते हैं तब ग्रामवासी लोगों के द्वारा पीटा जाता है वे इतनी बुरी तरह से मारते हैं कि चोरों की वहीं पर ही मृत्यु हो जाती है तथा जो देखता है वही बार-बार मारता है। जब वे लोग मारते हैं तब उस काल की व्याधि की क्या कथा कहूं। वह बेहोश होकर जमीन पर गिड़-गिड़ाता हुआ पड़ जाता है इस प्रकार पीड़ा देते हैं; और मसक बांध लेते हैं।

छेदन्ति हस्तपादौ कुरूवन्ति कृष्ण मुखं सूप वाद्यं ।
निस्सारयन्ति ग्रामात् धनंधान्यापकर्षयन्ति ॥१८५॥

जब ग्रामवासी लोग हाथ पैर तोड़ देते हैं तथा हाथ पैरों को छेदन करते हैं; और चोरों का मुख काला करके तथा गधे के ऊपर सवारी कराकर जूतों की माला पहनाकर सूप बजाते हुए ग्राम से बाहर निकाल देते हैं। तथा धन-धान्य को भी जबरन करके छीन डालते हैं तथा राजा के हवाले कर देते हैं ऐसी चोरों की गति होती है ॥१८५॥

पाप भारेणैव ये गच्छन्ति क्रूरा: सप्तमनारके ॥
पावन्ति घोर दु:खं जन्मजन्मान्तरे तस्करा: ॥१८६॥
मातापिता बांधवास्तेऽपि न इच्छन्तिजातं तस्करान्
तिरस्कारं दृश्यते तदपि न मुञ्चन्ति त्रिलोकेषु ॥१८७॥

जब चोर लोगों का पाप का घड़ा भर जाता है और सब लोगों में जहाँ कहीं जाता है वहीं पर उसकी निन्दा होती है। तथा घरवाले माता-पिता भाई सब कहने लग जाते हैं कि ऐसा कपूत तो हमारे घर जन्म लेते ही मर जाता तो हमको किसी प्रकार का दु,ख नहीं होता। आज यह कुल में कपूत उत्पन्न हो गया इसके कारण ही हमारी अपकीर्ति व अपयश चारों तरफ फैल रहा है। वे सब उसका तिरस्कार करते हैं। वे दुष्ट पापात्मा

मरण करके सातों नरकों में जहां कहीं भी उत्पन्न होते हैं। वहां पर घोर दुःख पाते हैं। तथा वहाँ से भी निकलकर त्रियंचगति में जन्म लेकर दुःख पाते हैं इस तरह जन्म जन्म में दुखों का अनुभव करते हैं। इतना जानते व देखते हुए भी वे मूढात्मा चोरी करना नहीं छोड़ते हैं। राजा लोग भी उनके अंग उपांगों का छेदन भेदन करते हैं तथा फाँसी व सूली की मौत से तथा शिकारी कुत्तों से चिथवा-चिथवाकर मरवा डालते हैं। इस प्रकार चोरी करने से दुस्सह दुःखों का भोग भोगना पड़ता है। इन दुःखों से व पापों से बचने के लिये आचार्य कहते हैं कि सज्जनों को चोरी करने का त्याग कर देना ही उचित है।

चोरी कर लाया गया धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है चोरी के धन की उपमा देते हुए कहते हैं कि चोरी का धन इस प्रकार नष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार फागुन महीने में रची गई होली। होली रचने वाले लोग चोरियाँ करके होली रचते हैं जब पूर्णिमा का दिन आ जाता है तब वहाँ आग लगा दी जाती है वह चोरी का सामान सब एक क्षण में जलकर भस्म हो जाता है उसी प्रकार जानना चाहिये।

शिखरणी—सहस्तेयैः द्वेषोऽपि सतिनियमैनेह बहुधा।
न इच्छन्ते तेषां भवन वहिवासी बहुखलान् ॥
पृतान्तेवैरंजायत पितरयोः लभ्र्यात सदा।
तदा कोरक्षिष्यंति नरकगतौ याष्यति दुःखम् ॥१८८॥

चोरी करने वालों के साथ में सब लोग द्वेष करते हैं व चोर भी परस्पर में द्वेष करते हैं तब वे एक-दूसरे को भी बैर बांधकर मार डालते हैं। और जिनके यहां से चोरी की गई है वे भी द्वेष करते हैं तथा बैर बाँधकर चोरों को मारने का स्वयं प्रयत्न करते हैं व अन्य जनों से मरवाने का प्रयत्न करते हैं। जिससे इस (लोक) व इस जन्म में तो बैर और द्वेष बढ़ ही जाता है मरण के पीछे भी जन्म-जन्मान्तर में भी बैर चला करता है इसलिए उन चोरो का मुख देखने को कोई सज्जन तैयार नहीं होता है, सज्जन तो दूर से बहिष्कार करने लग जाते हैं। यह बड़ा ही कमबख्त नीच दुराचारी है इसको निकालो यहाँ से यह इस घर में रहने के योग्य नहीं है। तथा पड़ोसी भी कहने लग जाते हैं कि इसको यहां से शीघ्र ही निकालो नहीं तो हमारे सब के ऊपर भी आपत्ति-विपदा आ जायेगी तथा चोर के धोखे में साहूकार मारा जायगा। इन दुष्टों को जल्द ही निकालो। दूसरे लोग भी वैर-द्वेष करने लग जाते हैं उनको कोई भी अच्छा नहीं कहता है बाहर वाले तो करेंगे ही क्या जबकि जन्म देने वाली माता भी उसका बहिष्कार कर देती है। ग्रंथकार कहते हैं कि हे भव्य जब इस नर पर्याय को छोड़कर नरक गति में जायेगा वहाँ पर तेरे को नारकियों द्वारा वेदना दी जायगी वहां तेरी कौन रक्षा करेगा जब तू जन्म-मरण व वेदना, रोग, शोक, वियोग छेदन-भेदन व तापन इत्यादि दुःखों को पावेगा ?

विशेषार्थ—जहां कहीं चोर लोग चोरी करने जाते हैं वहां पर यदि वहां के निवासी जनों को पता लग जाता है तब वे बंदूक लाठी लेकर उनका बहिष्कार करते हैं। जब कभी ज्ञात नहीं हुआ और चोरी कर माल को ले आते हैं तब भी धन माल के स्वामी द्वेष करते हुए

वैर पूर्वक उनकी खोज लगाते हैं जव पता लग जाता है तव उनका तिरस्कार कर मरवाने का या मारने का प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। कहीं कहीं यह भी देखा जाता है कि चोर आपस में वंटवारा करते हैं जव कोई अधिक या हीन ले लेता है तव वे आपस में वैर वांध कर मौका लगने पर स्वयं मारने का प्रयत्न करते हैं अथवा दूसरों के द्वारा मरवाने का प्रयत्न करते हैं। इस लोक और घर ग्राम नगर में उनकी रक्षा करने को कोई भी तैयार नहीं होता है यदि रक्षा हो जावे तो लोग रक्षा करने वाले का चोरों के समान ही वहिष्कार करते हुए देखे जाते हैं। चोरी करता है उसकी हृदय की गति वढ़ जाती है जिससे उसको रात्रि में व दिन में नींद भी नहीं आती है वह चिन्तातुर रहता है तथा उसका दिल घवडाहट में पड़ जाता है। चोरी करते समय आकुल रहता है और चोरी करने के पीछे भी भयभीत होकर इधर-उधर छिपते हुए रहता है। कभी कभी विना मौत के भी मार दिया जाता है। जहां कहीं जाता है वहीं लोग कहते हैं कि हमारे ग्राम या मुहल्ला में यह चोर कैसे आया, और कहने लग जाते हैं कि सव ग्राम वालो सावधान रहो यहां आज चोर फिर रहा है। जव किसी को पता लग जाता है तव उसको वंधवा कर पुलिस के सुपुर्द कर देते हैं। इसलिए भव्य जीवों को किसी का धन अपहरण नहीं करना चाहिए। जितनी वस्तुयें विना दी हुई हो उनको चोरी कहते हैं। किसी की जेव या थैला में से या भूल से मार्ग में गिर जावे उसका भी लेना या दूसरे को देना चोरी है। या कोई व्यक्ति अपनी वस्तु को भूल गया हो उसको लेना भी चोरी है। तथा किसी के खेत वाग वगीचा आदि में से फसल का तोड़ लेना काट लेना यह भी चोरी है। तथा किसी के द्रव्य को उठा कर लेना यह चोरी है तथा जिसके लेने से दूसरों से वैर विरोध उत्पन्न हो और लोग चोर कहें उसको भी चोरी कहते हैं। तथा माया जाल विछा कर किसी के द्रव्य को अपहरण कर लेना यह भी चोरी है जेव काट लेना व धोखा देकर रूपया पैसा छीन लेना यह भी एक प्रकार की चोरी है। डाका डालना व दूसरे के घर मकान दुकान की दीवार को तोड़ फोड़ कर जर माल को ले भागना यह भी चोरी है। किसी की गाय भैंस वैल घोड़ा इत्यादि को अपहरण कर ले जाना यह भी चोरी है इस प्रकार चोरी के और भी भेद कहते है। वे इस प्रकार कम दाम की वस्तु को अधिक दाम को वस्तुओं में मिश्रण कर देना यह भी चोरी है। तथा वस या रेल गाड़ी मे विना टिकट के यात्रा करना व हीनाधिक किराया देना भी चोरी है। व इनकम टैक्स सेल टैक्स का चुरा लेना या लाकर उसको वापस नहीं देना व धरोहर को दवा लेना इस प्रकार चोरी के भेद हैं। अथवा जिसके अपहरण मात्र से जीवों के प्राणों की विराधना होती है उसको चोरी कहते हैं। इसको कभी भी नहीं करना चाहिये।

अर्थादौ प्रचुर प्रपञ्च रचनैर्ये वञ्चयन्ते परान्,
नूनं ते नरकं व्रजंति पुरतः पाप व्रजादन्यतः॥
प्राणाः प्राणिषु तन्निवंधनतया तिष्ठन्ति नष्टे धने,
यावन् दुःख भरो नरे न मरणे तावानिह प्रायशः॥२८॥

पद्म नंदी पंच विंशतिका

जो मनुष्य धन आदि के कमाने में अनेक प्रपंचो को रच कर दूसरों को ठगा करते हैं

वे निश्चय से उस पाप के प्रभाव से दूसरों के सामने ही नरक में जाते हैं। कारण यह कि प्राणियों में प्राण धन के निमित्त ही ठहरते हैं धन के नष्ट हो जाने पर मनुष्य को इतना अधिक दुःख होता है कि जितना प्रायः उसे मरते समय भी नहीं होता ॥२८॥

बभूवुः प्रसिद्धास्तेत् स्तेये व्यसने सत्यघोष विप्रः।
श्रेष्ठी धनपालश्च धन मान धाम वेशात् ह्रासः ॥१८६॥

चोरी व्यसन में अनेक मनुष्य प्रसिद्ध हुए हैं परन्तु दृष्टान्त के लिए यहां पर सत्य घोस ब्राह्मण तथा सेठ धनपाल की कथा है। वे चोरी के कारण ही अपयश को प्राप्त हुए हैं। तथा अपने धन धान्य माल घर मकान व दुकान से भी हाथ धोने पड़े। चोरी के कारण ही राजा ने धन माल लुटवा लिया और कलंक लगा कर नगर व देश से निकलवा दिया।

उज्जयिनी नगरी में पहुपाल नाम के सेठ रहते थे उनकी पुत्री का नाम मनोरमा था बाल अवस्था में ही अनेक प्रकार के न्याय काव्य व्याकरण इत्यादि अध्यापक के पास पढ़ी थी जब वह सोलह वर्ष की हो गई तब माता पिता को चिन्ता हुई कि पुत्री अब ब्याह के योग्य हो गई अब इसका विवाह संयोग करना चाहिये। इस प्रकार इस पुत्री के अनुरूप सुन्दर वर देखकर दे देना चाहिये इस प्रकार मन में विचार कर पदुपाल सेठ ने सुन्दर रत्नों का एक करोड़ दीनार लगाकर एक हार बनवाया और अपने पुरोहित (ब्राह्मण) को बुलाकर उस पुरोहित को समझाकर कहा कि इस हार की जो कीमत करे उससे कीमत मत लेना यदि उसके अपनी पुत्री मनोरमा के योग्य वर होय तो उसके टीका में दे देना। यह सुनकर पुरोहित हार को लेकर चल दिया प्रथम ही वह मालवा को छोड़कर हस्तनापुर में पहुँचा पर वहां भी कोई सेठ नहीं मिला तब वह काशी देश में बनारस नगरी में पहुँचा फिर पटना (पाटली पुत्र) से चलकर पहुचा वहां पर बड़े-बड़े जौहरी थे उन सबको हार दिखाया और कीमत कही तो वे सुनकर बहरे सरीखे हो गये।

उस हार की कीमत जो सुन लेता है वह बहरा सरीखा हो जाता जब वहां भी उसकी कीमत नहीं हुई तब भ्रमण करता हुआ चम्पापुरी में जा पहुंचा उस नगरी में एक सेठ धनपाल रहता था, उसकी दुकान पर पहुंचा और उस कीमती हार को बेचने के लिये दिखाया। हार को देखते ही उसके मन में बेईमानी आ गई वह ब्राह्मण से बोला कि अभी आप यहीं पर बैठिये मैं हार को दिखाकर ले आता हूँ, पुरोहित जी ने उसके मन के छल को नहीं समझा, वह हार को लेकर अपने घर गया और उस असली हार को अपने घर में अलमारी तिजोरी में रख दिया, अपने स्त्री से बोला प्रिये विधाता ने लक्ष्मी घर बैठे भेजी है तब वह बोली कि हे देव पर धन से धन नहीं होता है जब अपने भाग्य का उदय होगा तब धन बहुत हो जायेगा। परन्तु उसके समझाने पर भी सेठ ने नहीं सुनी फिर वह बोली यह आपका कर्त्तव्य ठीक नहीं जिसकी जैसी वस्तु है उसको वैसी ही दे देनी चाहिये क्योंकि पर धन से धन नहीं हो सकता है।

सेठानी ने बहुत समझाया लेकिन उसनें एक बात नहीं सुनी और बनावटी खोटे रत्नों से निर्मित हार को ले जाकर पुरोहित को दे दिया और कहने लगा कि अरे ब्राह्मण

तुझको कोई और ठगने को नहीं मिला जो दो कोड़ी के हार की कीमत एक करोड़ दीनार मांगता है। जा भाग जा मैं तो तुझको छोड़ देता हूं यदि तू अन्य के पास इसको ले गया होता तो तेरे को आज राजा के हवाले कर दिया होता, इस प्रकार बोलते हुए पुरोहित को डाट फटकार कर निकाल दिया, पुरोहित ने देखा कि यह हार तो मेरा नहीं है यह तो हार खोटे रत्नों का है परन्तु मेरा हार तो सच्चे रत्नों का है तथा बड़े-बड़े कीमती रत्नों से बना हुआ है। वह बोला कि श्रेष्ठी जी यह हार मेरा नहीं है यह हार तो खोटा दिखाई देता है यह सुनकर धनपाल सेठ बोला कि झूठा हार लिये फिरता है और साहुकार को सरेयाम चोर बनाता है यह कहते हुए उस पुरोहित को वहां से निकाल दिया। वह पुरोहित रोता-रोता राजदरबार में गया। और राजा से फर्याद की तब राजा विचार करने लगा कि साहूकार को चोर कैसे कहा जा सकता है और ब्राह्मण को भी झूठा नहीं कहा जा सकता है। राजा ने मंत्रियों से बुलाकर कहा कि इस ब्राह्मण का न्याय करो, यह ब्राह्मण कहता है कि आप के नगर में धनपाल नाम का सेठ है उसने मेरा असली रत्नों का हार रख लिया ओर नकली रत्नों से बना हुआ हार मुझको अनभिज्ञ जान कर दे दिया है। यह सब सुनकर मन्त्री भी बहुत देर तक विचार करता रहा और बोला कि महाराज यह न्याय हमसे नहीं बन सकता है परन्तु सागर दत्त का पुत्र सुखानन्द इसका सच्चा फैसला कर सकता है उसमें इतनी बुद्धि है। राजा ने भी सुखानन्द को बुलवाने के लिये चार घोड़ों की बग्गी भेज दी सुखानन्द कुमार को आदर सहित बुलाकर ले आओ ? दूत सुखानन्द के पास उनके मकान पर पहुँचा और हाथ जोड़कर विनय पूर्वक बोला कि कुमार आप को राजा ने याद किया है सो दयाकर आप राजदरबार में चलें सो आप के लिये रथ दरवाजे पर खड़ा हुआ है आप उसमें बैठकर चलें।

सेवक की बात सुनकर तुरन्त ही सुखानन्द रथ में बैठकर राजदरबार में जा पहुंचा और राजा को यथायोग्य नमस्कार किया तब राजा ने भी कुमार का सन्मान किया और उसके योग्य आसन दिया और सुखानन्द कुमार उस चौकी पर जा कर बैठ गया। राजा ने सुखानन्द कुमार को अपने पास में बिठलाया और उस विप्र की बीती हुई सब कहानी कह सुनाई। उसको सुनकर सुखानन्द कहने लगा कि आप धनपाल सेठ को अपने पास बुलवा लीजिये, राजा ने भी शीघ्र ही धनपाल सेठ को बुलवाने के लिये राजदूत भेज दिया, राजदूत भी शीघ्र ही धनपाल के घर जा पहुँचा और जा कर कहा कि महाराज ने आपको याद किया है सो आप इसी समय चलिये। धनपाल राजकर्मचारी की बात सुनकर शीघ्र ही घर से चल दिया और राजदरबार जा पहुँचा राजा को प्रणाम किया राजा ने भी उसका आदर किया और कुर्सी बैठने को दी। तथा राजा ने सेठ से खुश खबरी पूछी। उधर सुखानन्द उस ब्राह्मण के नकली हार को लेकर अपने घर गया और धाय को बुलाकर कहा कि धनपाल की स्त्री के पास जाओ और कहो कि यह हार ले लो जो ब्राह्मण का हार है उसको मुझे निकाल दो मुझे सेठ ने भेजा है। वह दासी चतुर प्रवीण शीघ्र ही चल पड़ी और धनपाल के घर पहुँची और सेठानी से बोली कि यह हार ले लो और ब्राह्मण का हार मेरे को दे दो, सेठने मुझे भेजा है यह सुनकर सेठानी बोली कि वह हार तो उनके आने पर ही मिल सकता है यह सुनकर दूती वापस चली

गई। और सुखानन्द को सारा समाचार कह सुनाया ।

जब दासी वापस आ गई तब सुखानन्द कुमार ने दासी को समझाकर कहा कि कहना धनपाल सेठ को तो राजानेबांध रक्खा है वो नहीं आ सकते यदि उनके प्राणों को बचाने की इच्छा होय तो उस हार को दे दो नहीं तो राजा न जाने क्या दण्ड देगा। इस प्रकार कहकर दासी को भेज दिया। दासी धनपाल के घर जाकर धनपाल की सेठानी से कहने लगी हे सेठानी जीं सेठ तो नहीं आ सकते हैं उनको तो राजा ने बांध रक्खा है यदि तुम उनका जीवन कुशल चाहती हो तो उस ब्राह्मण के हार को मुझे दे दो और इस हार को ले लो। नहीं तो न जाने राजा क्या करेंगे। इस बात को सुनकर सेठानी का हृदय कांप गया उसने ब्राह्मण के हार को निकाल कर उसे दासी को सौंप दिया और अपने नकली हार को ले कर रख लिया। दासी उस हार को लेकर शीघ्र ही सुखानन्द कुमार के पास पहुँची और उस हार को सुखानन्द कुमार को दे दिया। कुमार भी उसको लेकर रथ में बैठ दरबार में पहुंचा और राजा को एकान्त में बुलाकर हार के प्राप्त होने का सारा समाचार कह दिया और हार राजा को सौंप दिया। राजा ने हार को देखकर अपने पास रख लिया। राजा धनपाल सेठ से पूछने लगा कि यदि कोई किसी के द्रव्य को अपहरण कर लेवे तो क्या दण्ड देना चाहिये। यह श्रवण कर धनपाल बोला कि महाराज उसको देश से निकाल देना चाहिये, उसकी सब संपत्ति को लुटवा लेना चाहिये, काला मुख करवा कर खरारूढ़ करते हुए काला मुख कर सूप का बाजा बजाते हुए नगर में घुमाकर सबको शिक्षा देते हुए निकाल देना चाहिये। ग्रन्थकार कहते हैं कि अपने घर का ही अपनें को पता नहीं कि मेरे पीछे मेरे ही घर में क्या हो गया मैं क्या कर रहा हूं। इतना सुनकर राजा ने ब्राह्मण का असली हार सबको दिखाया। ब्राह्मण देखकर अत्यन्त आनंदित हुआ। यह देखकर धनपाल के होस उड़ गये। राजा ने भी एक काला गधा मंगवाया और उस पर धनपाल को बिठाकर काला मुख करवाकर गले में जुतों की माला पहनाकर सूप का बाजा बजाते हुए सारे नगर में घुमाया और नगर से बाहर निकाल दिया। और उसका माल असबाब सब लुटवा लिया और मकान दुकान पर राजा ने कब्जा कर लिया। एक हार की चोरी के ही कारण से धनपाल को देश निकाला दिया गया। इसलिये चोरी करना सो महापाप का करना है चोर पापियों को सुख कहां मिल सकता है। अति दुःख ही दुःख मिलता है।

शिवभूति ब्राह्मण की कथा

प्रयाग नाम के देश में अनेक भोग और वैभव से समृद्ध सिंह के समान पराक्रमधारी राजा सिंहसेन राज्य करता था उस नगरी का नाम सिंह पुरी था। उस राजा सिंहरथ की अपने शरीरकी सुन्दरता से सब जनों के रूप को मात करने वाली राम दत्ता नाम की पटरानी थी। उस राजा के दो पुत्र थे जो अपनी सुन्दरता और धैर्यता पराक्रम में देवों के समान सिंह चन्द्र और पूर्णचन्द्र नाम के थे। अनेक विद्याओं में पारंगत शिवभूति पुरोहित था उसका दूसरा नाम सत्यघोष था, उसकी धर्म पत्नी का नाम श्री दत्ता था वह सदा पति का हित

चाहती थी। उसने एक बाजार बनवाया था उसमें अनेक गलियाँ तथा चौपड़ के आकार के बाजार बने हुए थे। उसमें जो भी दुकानें थी वे माल से भरी रहती थीं, उस बाजार में गोशालायें बनी हुई थी। पानी, घास व ईंधन बहुत सहुलियत से मिलता था, लड़ने में तत्पर ऐसे योधा लोग इस बाजार की रक्षा करते थे, दो कोप का उसका विस्तार था खाई कोटे कुआं बावड़ी व कूचा गली आदि से सुरक्षित था मार्ग में प्याऊ सदाव्रत शालायें बनी हुई थी। धूर्तजार और विलासी पुरूषों से रहित था, उस बाजार में नाना देशों से आकर व्यापारी व्यापार करते थे उनसे बहुत थोड़ा टैक्स लिया जाता था, एक दिन पद्मनीपुर का निवासी सुदत्ता नाम की सती का पति सुमित्र के पुत्र भद्रमित्र ने मन में धन और चरित्र में अपने समान जन्मे वणिक पुत्रों के साथ समुद्र की यात्रा करने का विचार किया।

पदमायां नभिकुर्यात् पादं वित्ताय कल्पयेत् ॥
धर्मोणभोगयो पादं पादं भर्तव्य पोषणे ॥

अपनी आमदनी का चौथाई भाग तो जमाकर लेना चाहिए एक चोथाई से व्यापार करना चाहिए एक चौथाई से धर्म कार्य करना चाहिए एक चौथाई से अपने आश्रित स्त्री पुत्र माता-पिता आदि का भरण पोषण करना चाहिये।

इस नीति का विचार कर भद्रमित्र ने अपने संचित धन को किसी एक सुरक्षित स्थान में रखने का विचार किया। सोचकर सब लोगों में विश्वसनोय माने जाने वाले उसपुरोहित शिवभूति के हाथों में उसकी धर्म पत्नी के सामने अत्यन्त सुन्दर बहुमूल्यवान सात रत्न सौंप कर जल यात्रा करने को चला गया। वहां जाकर व्यापार किया बहुत सा धन कमा कर और वहां से अपने मन पसन्द सामान खरीद कर जहाजों में लदवाकर चला जब चलते-चलते समुद्र का किनारा थोड़ी ही दूर रह गया था तब बड़े जोर का तूफान आया। जिससे उसका जहाज उलट गया। दैव वश आयुबाकी होने के कारण से वह बच गया वह जहाज के टूटे हुए एक लकड़ी के तख्ते की सहायता से समुद्र से किसी प्रकार से बाहर निकल आया समुद्र की लहरें सारी रात खाते खाते किनारा दिखाई दिया।

एक तो वणिक पुत्र जन्म से ही सुख में रहा दूसरे अपार समुद्र के खारे पानी ने उसे धन सून्य ही नहीं बनाया उसको विचार सून्य भी बना दिया, अतः किनारे पर पहुँचने पर वह बहुत देर तक बेहोश मूर्छित के समान पड़ा रहा। जब सूर्योदय हुआ तो उसकी आँख खुली-बधु जन के मर जाने तथा धन क्षय हो जाने से अत्यंत दुःखी था उसका मुख भी पीला पड़ चुका था, किसी प्रकार से फटे हुए कपड़ों से अपने शरीर को ढककर वह वहाँ से उठा। वहाँ से थोड़ी दूरी पर नगर था वहाँ पर किसी वणिक के यहाँ नौकरी करते-करते कुछ समय बीत गया तब उसका मन थक गया। अन्त में आजीविका के न होने के कारण जहाँ तहाँ घूमता हुआ वह सिंहपुर में पहुँचा और शिवभूति पुरोहित से अपने रखे हुए सात रत्न मांगे। वह समय था कि उसको दशा बिगड़ी हुई थी उसके पास कुछ भी उसको देने के लिए कोई सबूत नहीं था। वह दशा उसके स्वभाव से ही जानी जाती थी।

दूसरों को ठगने में प्रवीण शिवभूति ने सोचा कि यदि अच्छी तरह से छल का प्रयोग

किया जावे तो ब्रह्मा को भी वंचित किया जा सकता है और यदि दूसरे मनुष्यों में बड़ा ही परिवर्तन हो गया हो तो फिर कहना ही क्या। इस प्रकार शिवभूति मन में विचार कर वह लोलुपी वणिक पुत्र से इस प्रकार बोला कि अरे दुराग्रही नीच बनिये क्या तुझको किसी पिशाच ने तो नहीं छला है ? या मन को मोहित करने वाली किसी औषधि ने तेरी मति भ्रष्ट तो नहीं कर दी है। या जुआ में अपनी चित्तवृत्ति तो नहीं हार गया है ? या दूसरों के मन को ठगने वाली किसी दुराचारिणी ने तेरी दुर्गति कर दी है। फलवान वृक्ष की तरह किसी श्रीमान के विरुद्ध लगाया अभियोग विना फल दिये विना नहीं रहता है, इस विचार से किसी दुर्बुद्धि ने तुझको ठगा है। जिससे वे सिर पैर की वातें करता है। तू कहाँ मैं कहाँ हमारा तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या है ? छल करने में कुशल नगर चोर निंदनीय वणिक पुत्र सर्वत्र देशों में मेरी विश्वसनीयता की ख्याति है इस तरह असमय से मुझ से पूछते हुए तेरे को लाज नहीं आती है।

तत्पश्चात उस पिशाच शिवभूति से अपने रत्न प्राप्त करने के लिये चिल्लाते फिरते उस वणिक पुत्र को जवरदस्ती नौकरों के द्वारा राजमन्दिर में बुलवाकर राजा से कहा महाराज यह वणिक व्यर्थ ही सर्वत्र हमारा अपवाद करता हुआ फिरता है। विना नाथ के वैल की तरह सुख से वैठने ही नहीं देता है, इत्यादि वातों के द्वारा राजा का हृदय भी उसकी ओर से उत्तेजित कर दिया और राजा के द्वारा भी उसको महल से वहिष्कार कर निकलवा दिया।

यह देखकर भद्रमित्र विचारने लगा मेरे घर में वंशपरंपरा से लक्ष्मी का निवास चला आया है मैं असाधारण साहसी भी हूँ फिर भी आश्चर्य है कि वह पक्का ठग नगरों के वीच में ही मेरा माल हड़प लेना चाहता है। यह विचार कर उसको बड़ा क्रोध आया, उसे निश्चय हो गया कि शिवभूति मेरी धरोहर को कभी नहीं देगा तथा समझदारों और धर्माधिकारियों के सामने उसके अन्याय से कुछ लाभ नहीं होगा। तव उस सुवुद्धिशाली ने एक दूसरा उपाय सोचा।

राजा की पटरानी के महल के समीप एक इमली का वृक्ष था, रात के समय वह उसकी चोटी पर चढ़ जाता है और जैसे सारसी के वियोग में सारस चिल्लाता है उस तरह रात्रि के प्रथम पहर में और रात्रि के अन्तिम पहर में हाथ को ऊँचाकर वड़े जोर से चिल्लाता है कि मेरे पूर्व मित्र अव शत्रु शिवभूति पुरोहित मेरी अमुक रंग की पेटी में रखे हुए अमूक आकार और अमुक रंग के तथा अमुक संख्या वाले मेरे रत्नों को नहीं देता है। ये रत्न मैंने उसके पास धरोहर के रूप में रक्खे थे उसकी साक्षी उसकी धर्म पत्नी है। यदि मेरा कथन रंच मात्र भी गलत हो तो मुझे मरवा दिया जावे।

इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते उसको छह महीना वीत गये, एकवार अनाथ लोगों के लोचन रूपी चकोर के लिए चाँदनी के समान आचरण वाली दयावती राजमहिषी रामदत्ता कौमुदी महोत्सव देख रही थी। उसके पास में उसकी धाय निपुणिका वैठी थी। उस समय रामदत्ता ने उस वणिक पुत्र की आवाज सुनी और दया पूर्ण भाव से अपनी धाय से वोली हे धाय न तो यह मनुष्य पागल है, न पिशाच ही है, न ये पिशाच से ठगाया गया है, न ये पागल

ही जैसा है। उस दिन से लेकर आज दिन तक एक ही शब्द बोलता है। अतः सत्यघोष जो द्यूत क्रीड़ा का रसिक है उसके साथ द्यूत क्रीड़ा के बहाने से उसके मन की बात शीघ्र ही जाननी चाहिए। जुआ खेलते समय में उस अनाचारी बगुला भगत से जो जो (बात पूछूं और जो उसके कंकण अँगूठी वस्त्र जुआ खेलने में) जीतूं उन सबको प्रमाण रूप से उपस्थित करके तुम्हें उस मृगी के समान मुख किन्तु सिंहनी के समान आचरण वाली श्री दत्ता से इमली के वृक्ष पर चढ़े हुए इस वणिक के सात रत्न मँगवा लेना चाहिए।

इस प्रकार निपुणिका को समझाकर दूसरे दिन रानी ने हे मेरे हृदय को आनन्द देने वाले पास देवता ? यदि उस इमली के वृक्ष वाला मनुष्य सत्य है तो तुम्हें भी उसकी सहायता करनी चाहिए ऐसी प्रार्थना करके वैसा ही किया और बार-बार जुए में जीते हुए पदार्थों को प्रमाण रूप से उपस्थित करके शिवभूति की धर्मपत्नी से रत्न मँगवाने को भेज दिया, परन्तु उसने नहीं दिये कहा कि रत्न तो वे ही दे सकते हैं। जैसा सुना वैसा ही सब समाचार दासी ने रानी से कह दिया कि रत्न तो सत्यघोष ही दे सकते हैं।

तब पुनः जुआ खेलना जारी कर दिया रानी ने जनेऊ व कैंची को तथा हाथ की मुद्रिका को भी जीत लिया और एकान्त में जाकर दासी से कहा कि तू तुरन्त ही शिवभूति की धर्मपत्नी के पास जा और उसको ये सब वस्तुयें प्रमाण भूत देना और कहना कि बनिये के सात रत्न मंगाये हैं यह उन्होंने अपनी निशानी दी है सो तुम ले लो शिवभूति ने मुझको दी है वे अब नहीं आ सकते वे राज दरबार में बैठे हुए हैं। इतना सुनकर उसको विश्वास आ गया और उसने तिजोरी में रक्खे हुए बनिये के सातों रत्न उस दासी के हाथ में सौंप दिये। दासी शीघ्र ही रानी के पास राज महल में आई और बनिये के सातों ही रत्न रानी को सौंप दिये। रानी ने दासी को भेजकर राजा को राजमहल में बुलवा लिया और राजा भी राजमहल में आ गया तब रानी ने वे बनिये के सातों ही रत्न राजा को दे दिये। राजा उन रत्नों को देखकर चकित हो गया। राजा ने सभा में जाकर अपने भण्डारी को बुलाकर कहा कि अपने खजाने में से एक थाल भरकर रत्न लाओ राजाज्ञा पाकर भंडारी गया और एक थाल में बहुत से रत्न भरकर ले आया और राजा के पास रख दिये, राजा ने थाल को उठाकर बनिये के सात रत्न उसमें मिला दिये सब की जगमग ज्योति होने लगी। राजा ने बनिये को बुलवाकर कहा कि तुम्हारे कितने रत्न थे और कैसे थे तुम उनको पहचान सकते हो क्या। यदि पहचान सकते हो तो पहचान लो। राजा ने रत्नों से भरा हुआ थाल वणिक पुत्र के सामने रख दिया वणिक पुत्र ने सब बहुमूल्य रत्नों को छोड़कर अपने जो रत्न थे वे ही चुने अन्य सबको ज्यों का त्यों छोड़ दिया। उनसे अपना हाथ भी नहीं लगाया। वह बोला श्री महाराज मेरे ये सात रत्न हैं, यह देखकर राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और बोला कि आप ही सच्चे सत्यघोष हैं। वह बोला कि तुम ही निस्पृही हो क्योंकि तुम्हारे मन में वचन में और करने में एक ही भाव हैं उसकी राजा ने अपने वचनों से बहुत प्रशंसा की। तथा राज दरबारमें रहने वालों ने व रानी ने भी प्रशंसा की मंत्री विश्वमित्र ने

बहुत-बहुत प्रकार से आदर रूप वचन कहे। मेरे घर में मेरे पीछे क्या हुआ है और राजदरबार में क्या-क्या हुआ है उसका सत्यघोष को पता न चला। राजा ने शिवभूति को बुलाकर कहा कि पुरोहित जी यदि कोई किसी की धरोहर को हड़प लेवे और उसका पता लग जावे तो क्या दण्ड देना चाहिये। सत्यघोष बोलने लगा कि प्रथम तो गाय का ताजी गोबर भर पेट खिलाना चाहिये दूसरा पहलवान के सौ मुक्का तीसरे उसकी सब संपत्ति को लुटवा लेना चाहिये और देश निकाला दे देना चाहिए, चौथा काला मुख कर गधे पर बैठा कर सूप का बाजा बजाते हुए शहर से निकलवा देना चाहिए या प्राण दण्ड देना चाहिए। इस प्रकार वह दण्ड बता रहा था तब नीतिकार कहते हैं कि जिसको यह पता नहीं कि यह गति मेरी ही होगी।

नीतिकार कहते हैं कि (विनाश काले विपरीत बुद्धिः) जब विनाश काल आ उपस्थित होता है तब बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है।

अब क्या था कि शिवभूति ब्राह्मण के सामने वे सातों रत्न दिखाये और कहा कि ये सात रत्न तुम्हारे हैं या इस वणिक पुत्र के? यह देखकर सत्यघोष अत्यन्त घबड़ा गया और काँपने लगा और सारा शरीर काला पड़ गया सारे शरीर में से पसीना बहने लगा वह बेचैन हो गया और उसके शरीर की कान्ति फीकी हो गई वह तो लोहे की पुतली की तरह से काला पड़ गया तथा सुन्न खड़ा रह गया। जिसकी नेत्रों की दृष्टि जमीन को स्पर्श कर रही थी। उसके मुख पर अत्यन्त लज्जा बोल रही थी। अथवा वह अत्यन्त लज्जित हो रहा था। भय के मारे अत्यन्त काँप रहा था, उसको देखकर राजा तिरस्कार करता हुआ बोला हे ब्राह्मण कुल कलंक मूर्ख विश्वासघाती जुआ के द्वारा नये-नये रत्नों को अपहरण करने वाले बगुला भगत तुम्हारे यज्ञो-पवीत सज्जन पुरुषों के मन रूपी पक्षियों के फ़ंसाने के लिये बड़े भारी जाल के समान है, अरे दुराचारी वेदों के भार वाहक समीचीन धर्म रूप मन्दिर को मलिन करने वाले कुकर्म करने वाले दुष्ट पुरोहित क्या तुम वृद्धता के कारण भोज वृक्ष को छाल के समान शिथिल हुए और तेज हवा के झकोरों से बुझने के सन्मुख प्रातःकालीन दीपक की तरह अथवा अस्त होने के सन्मुख सूर्य की तरह अपने शरीर की दशा का विचार नहीं करते हो जिससे इस अवस्था में भी ऐसी चेष्टायें करते हो मानो तुम युवा हो। यदि अब तुमको जलती हुई अग्नि में डाल दिया जावे तो,तुम्हारे जैसे पापियों पर कौन अनुग्राही होगा क्योंकि उससे तुम थोड़ी सी देर दुख उठा सकोगे। हे नीच कुकर्मी ब्राह्मण! जो तुम तुम्हारे द्वारा निर्णीत किये गये चार दण्डों में से कौन-सा दण्ड अच्छा है उसको कहो वही दण्ड दिया जायेगा? यह सुनकर वह बोला कि पेट भर गाय का गोबर खाऊँगा। जब गोबर का ग्रास मुख में दिया तो पेट की तरफ नहीं उतरा तब बोला कि यह मुझसे नहीं हो सकता है मुझे तो मुक्का खाना स्वीकार है तब राजा ने एक पहलवान को आज्ञा दी कि इनके सौ मुक्का लगाओ? तब पहलवान ने एक मुक्का लगाया था कि वह घबड़ा गया और बोला कि यह मुक्का का दण्ड मुझसे सहा नहीं जाता। तब राजा ने उसका सारा जर माल मकान दूकानों पर अधिकार कर लिया और उसको उसके कथनानुसार ही काले गधे पर बिठाकर काला मुख करके जूतों की माला पहना कर फूटे ढोल को बजाते हुए सब नगरी में घुमाते हुए राज्य से बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात उसके शरीर में

कोढ़ का रोग हो गया जिससे मर कर दुर्गति को प्राप्त हुआ। चोरी में प्रसिद्ध शिवभूति की कथा समाप्त हुई। चोरी करने के ही कारण संसार में जन्म मरण के दुःख सहने पड़ेंगे।

आगे शिकार व्यसन का स्वरूप संक्षप से कहते हैं।

ह्नन्ति छलेन पांशुलाः वीणादिभिश्च वाद्यभिः ॥
ध्वंसं मोहित्त चित्तानां वहुविधः कुरंगाणाम् ॥१६१॥

पापी शिकारी जन वांसुरी अलगोजा व वीन महुअर तथा हरमोनियम वाजा वजाते हैं तथा उनके द्वारा वजाई गई वांसुरी की आवाज को सुनकर हिरण व सर्प व मोर इत्यादि अनेक जानवर उनकी ध्वनि सुनकर जिनका चित्त मोहित हो जाता है अथवा मुग्ध हो जाता है वे कीलित की तरह खड़े रह जाते हैं तव वहेलिया (शिकारी) लोग उनको अनेक प्रकार के आयुधों का प्रहार कर मार डालते हैं। अथवा जंगल में विचरने वाले दीन हीन विना वैर द्वेप व जो किसी को कोई भी हानि नहीं पहुँचाने वाले जो जंगल की हरी घास व झरना का पानी पीकर रहने वाले ऐसे हरिण, सावर, नील, रोज पाढ तथा जंगली सूकर आदि को मार डालते हैं। जो दूसरों की आवाज सुनते ही भय के कारण चौकन्ने होते हैं आवाज आने पर ही भागने लग जाते हैं उनको भी विना खता के ही मार डालते हैं। जो सर्प अपनी वामी में वैठा हुआ है वह जव महुअर या वाँसुरी की ध्वनि सुनता है तव महुअर वांसुरी वजाने वाले के पास आकर खेलने लग जाता है मोर नाचने लग जाते हैं तव शिकारी लोग वन्दूक लाठी या गिलोल व धनुष वाण से उनको धोखे में डालकर मार डालते है।१६१॥

धृतवान् वांसुरी जालं पाठीन मकराद्येव्रं ।
मृगया व्याधकैव कृत करुणाद् भ्रष्ट हिंसकाः ॥१६२॥

व्याध लोग एक पतली लकड़ी में डोरी वांध कर उसमें एक लोहे की वंसी वांध कर उसकी तीक्ष्ण नुकीली वंसो में आटा लगाकर तालाव नदी वावडी इत्यादि में डाल देते हैं। जिस आटा को खाने के लिये मछलियाँ दौड़ती हैं और उसको खा जाती हैं तथा निगल जाती हैं तव दुष्ट पापाचारी उस डोरी में लगे हुए उस काँटे को झटका देकर खींच लेता है तव वह कांटा मछली के गले में चूभ जाता है जिससे मछली उसके साथ में ही खींची चली आती है। तव वधिक जन उस मछली को जमीन पर जोर से पटक देते हैं जिससे वह मर जाती है। कहीं-कहीं मगर केकड़ा व काक्षप आदि जानवरों को जाल में फंसा कर दुष्ट निर्दयी उनकी शिकार करते हैं।१६२॥

भ्रमेयुः त्रण चारिणः विपने भक्षयन्ति निर्झरम् ।
मावाधयन्ति केषां तान् वहुधार्घ्नन्ति आरण्ये ॥१६३॥

जो मृग आदि खरगोश तथा अन्य जीव जंगल में भ्रमण करते हैं अथवा निवास करते हैं जो जंगल में रहते हुए हरे सूखे घास पत्तों को चरकर पानी पीते हैं जो दूसरों की आवाज से ही भयभीत होते हैं तथा भागने लग जाते हैं व जंगल में छुप जाने का प्रयत्न करते हैं वे किसी भी अवस्था मे किसी का कुछ भी विगाड़ नहीं करते हैं उनको भी मांस के लोलुपी शिकारी लोग वहुधा जंगल में ही मार डालते हैं।१६३॥

ये च सततं व्योमे च भ्राम्यमाणाः कापोदादि वहुखगाः।
खादन्ति पत्र पुष्पानि बीजांकुरान् विविध फलानि ये ॥१९४॥
व्यामोहितं च चित्तं मांसपेसीं नित्यं भक्षकेषु।
ते दयाविहीना नराः किं न हन्ति स्वात्मजानां ॥१९५॥

जो कबूतर चील, चिड़िया, बत्तक, बटेर, मयूर, तीतर, मैना, बाज, तोता, मुर्गा, मुर्गी, इत्यादि अनेक प्रकार के पक्षियों का आवागमन अथवा विचरना आकाश में होता रहता है। वे एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाते हैं और दूसरे स्थान से आते रहते हैं। वे पक्षी जंगलों व खेतों में कोपल फूल पत्तों व फलों को तथा घास के पत्तों को खाकर अपने जीवन का निर्वाह करते हैं तथा धान्य कणों को खा लेते हैं। खट्टे मीठे खारे कड़वे फलों को खाकर वृक्षों की डालियों पर वैठ कर अपना समय व्यतीत करते हैं। तथा किसी प्रकार की आवाज आने पर उड़ने लग जाते हैं उन पक्षियों को भी मांस पेशी के भक्षण करने वाले मांस आहारी जन उन पक्षियों को जाल में फंसाकर तथा गिलोल तीर कंकड़ गोली मारकर उनको मार डालते हैं। वे निर्दयी मनुष्य अपने पुत्रादि को क्यों नहीं मारते जैसे दूसरों के बच्चों के ऊपर बंदूक या तीर कमान से वार करते हैं और उनके वच्चों का वियोग करते हैं अथवा माता-पिता का वियोग करते हैं तथा उनका विनाश करते हैं।

किं निःस्वामिनामधिपत्यं युस्माकं वध वंधकादिनां।
सूलं शालयथ चैव यदा गात्रे किं न वेदना ॥१९६॥

जिस समय तुम उन पशु पक्षियों को मारते हो जिनका कोई स्वामी नहीं है अथवा उन पशु पक्षियों को मारने का क्या तुम्हारा अधिकार है जो उनको मारते हो ? उनको मारने का कोई तुमको अधिकार नहीं है। क्या उनके माता-पिता को बच्चों से वियोग नहीं होता है ? क्या वे मरना चाहते हैं कि जिनको तुम मार रहे हो ? जैसे तुम अनाथ पशु पक्षियों को दुःख पूर्वक नाश करते हो उसी प्रकार तुम्हारे ऊपर यदि कोई प्रहार करे तो तुम्हारी क्या गति होगी। जब जिस समय तुम्हारे शरीर में कांटा चुभ जाता है तब क्या तुम्हारे शरीर में वेदना होती है या नहीं ? वेदना होती है। उसी प्रकार उन जीवों के भी वेदना होती है कि जिन जीवों को तुम मार रहे हो या मारने का प्रयत्न कर रहे हो ? जिस प्रकार आप अपने शरीर को व अपने जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करना चाहते हो उसी प्रकार सब जीव अपने जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करना चाहते हैं। जिस प्रकार तुम वेदना नहीं चाहते हो वैसे ही अन्य जीव भी वेदना नहीं चाहते हैं। जब तुम्हारे शरीर में सूई चुभ जाती है तब नींद नहीं आती है उसी प्रकार अन्य जीवों को भी नींद नहीं आती है। जिस प्रकार तुम रोते हो वैसे ही वे भी रोते हैं ॥१९६॥

विरोधं परस्परे जन्मजन्मान्तरे रिपुत्वं तथा।
यानि हंसित्वं तेऽपि च सहोदराः कि न जातः ॥१९७॥

हे भव्य जिन प्राणियों का तू वध कररहा है वे प्राणी भी तुझको उसी प्रकार मारेंगे कि जिस प्रकार तू मार रहा है। वे जन्म जन्मान्तर में अपना वैर अवश्य ही चुकायेंगे जिससे

वैर की परंपरा चलती रहेगी। वे जीव हैं जिनको तू मार रहा है वे भी तेरे पूर्व भव के माता पिता चाचा चाची स्त्री पुत्री भाई अनेक वार हो चुके हैं। तथा तू भी उनका अनेक वार माता पिता चाचा चाची भाई वहन मामा मामी अनेक वार हो चुका है इसमें संदेह नहीं है। परन्तु जिन जीवों को तुम मार रहेहो वे जीव इस समय तुमसे इस भव में कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हैं परन्तु भवान्तर में वे तुमसे अवश्य ही वदला चुका लेने का प्रयत्न करेंगे। जिस से वैर की परंपरा चलती रहेगी। हे भद्र सुन जिन जीवों को वाण या रायफल को गोली का निशाना वना रहा है वे जीव तेरे सम्वंधी हैं क्या अपने सम्वंधियों पर ही गोली चला रही हो। तुझे धिक्कार हो।

आज हम एक सर्प के काटे हुए मनुष्य को देखने जाते हैं तो वहां पर एक विषवैद्य मंत्राधीश वैठा हुआ है। वहां पर वहुत से लोग एक मटका के ऊपर कांसे की थाली को रख कर वजा रहे थे तथा कुछ गारहे थे। हम भी उनके समीप पहुंच गये तमासा देखने का कौतूहल था। जव वे वजा रहे थे तव वह जिसको सर्प ने काटा था वह वोलने लगा कि मैंने इस दुष्ट पापचारी का क्या नुक्सान किया था कि इसने मेरे वंदूक की गोली मारी। मैं जिसके पासमें खड़ा था वह मुझ से अपने रुपया मांग रहा था मैं उसको कहरहा था कि कुछ ही दिनों में तेरे रुपया देदूंगा। तू मेरा वोहरा है मैं तेरी आसामी हूं कुछ समय की और छूट मांगता हूं इतना वोलने के पीछे वह वोलने लगा कि मैं इसको जिन्दा नहीं छोड़ सकता इतना कहने के पीछे चुप हो गया। ढांग वजाई गई मंत्र का उच्चारण किया सर्प उसके शरीर में भर आता है और वोलता है पुनः कि मुझ पर उस वच्चे के पांचसौ रुपया तो नगद हैं और पांचसौ रुपया व्याज के हो गये हैं उनको यदि यह चुका देवे तो मैं छोड़ सकता हूं। तव मंत्र धोस ने उस वालक के पिता व वालक को वुलाकर एक हजार रुपया दिलवाये। रुपया देते ही विष की वेदना क्षण मात्र में ही दूर हो गयी। यह कथा या दृष्टान्त नहीं परन्तु सत्य है। इस लिये किसी के ऊपर गोली चला कर शिकार खेलना उचित नहीं है ॥१९७॥

किं विश्वासं हन्सि मृगया दीर्घ दुःखं भवार्णवे।
तस्यान्मुंचं तां च किं मृगयायाः सुखंतु वदत्वम् ॥१९८

हे भव्य तू अपने विश्वास का आप कुठाराघात क्यों करता है जो शिकार खेलते हैं उनका कोई भी प्राणी विश्वास नहीं करता है। क्योंकि यह हिंसक हमारा विनाश कर सकता है। जव विल्ली निकलती है तव सव पक्षी उड़ने लग जाते हैं इसका कारण यह है कि विल्ली उन पक्षियों की शिकार करती है। परन्तु जो दयावान होते हैं वे जीवों से प्रेम करते हैं उनका सव प्राणी विश्वास करते हैं यह साक्षात भी देखते हैं कि जहां कहीं धर्मात्मा रहते हैं उन ग्रामों में मुहल्लों में तथा मकानों में कवूतर वैठे रहते हैं, तथा वे निर्भय होकर विचरते है। परन्तु निर्दयी हिंसक मुसलमानों के घर पर एक भी कवूतर नहीं वैठता है चुगा डालने पर चुगने नहीं आते हैं। इस शिकार खेलने वाले को संसार रूपी महाभयानक समुद्र के मध्य में भ्रमण करना पड़ता है। और उस भ्रमण काल में अनेक प्रकार के जन्म मरण करते हुए दुःख भोगने पड़ते है। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि उस शिकार खेलने का शीघ्र ही त्याग

कर क्योंकि शिकारी प्राणी को कहीं भी सुख प्राप्ति होने की संभावना ही नहीं। यदि सुख किसी शिकारी को हुआ हो तो बताओ। यह सुख कब और कहां पर होता है ? यह शिकार खेलना है सो भविष्य के लिये वैर बांधना है दूसरे हिंसा होने से नरक आयु बंधती है और अपयश की खान बैर रूपी वृक्ष की जड़ है। दुर्गति रूपी पिशाच की सहेली है इसलिए भव्य जीवों को कभी भी जीवों का घातनहीं करना चाहिये ॥ १९८॥

अघानांमूलं स्यात् भ्रमण भव बीजं च मृगया
अहिंसाभावानांक्षति विभव कीर्तीश्च समताः।
विरोधं प्राण-ह्रास कटुक रसायेऽन्य न रसा
ददाति प्राग्दुःखं मरणमपि वैरं च वधिकान् ॥ १९९॥

शिकार खेलना महापाप है और महापापों की जड़ है, संसार में भ्रमण करने वाले तथा संसार रूपी वृक्ष का बीज या अंकुर है। तथा शिकार करने वाले के हृदय में से अहिंसा दयामय भावों का, यश, कीर्ति, उपकार, मित्रता, समतादि भावों की क्षति हो जाती है। प्रथम में तो वैर व विरोध उत्पन्न हो जाता है तथा बढ़ने लग जाता है शिकार खेलने का अन्त में नतीजा खोटा ही निकलता है। जब इसका रस भोग किया जाता तब महाकड़ुआ लगता है इस तरह दूसरा कोई कड़ुआ रस नहीं। यह जीवों को दुःख रूपी समुद्र नरक में ले जाती है, जहां पर पुराने अनेक प्रकार के दुख तेंतीस सागर पर्यन्त आयु प्रमाण दुःख भोगने पड़ते हैं। जहां पर पुराने नारकी नये नारकी को देख कर पूर्व भव की याद दिलाते हुए चील, बाज, सिंह, भेडिया का रूप धारण कर चंचुओं से शरीर को रक्तमय कर देते हैं इतना ही नहीं वे उसके शरीर के टुकड़े तिल-तिल के बराबर कर देते हैं और कहते हैं कि चलो शिकार करो ! यह जो शिकार की थी उसका ही नतीजा है।

तूने भी इसी तरह से अनेक प्राणियों के शरीर के टुकडे किये थे इस प्रकार कहते हुए तपाये हुए लोहे को मुख में जबरन पिला देते हैं कहते हैं कि ले मांस खा इतना कहकर जले हुए पर नमक डाल देते हैं और कहते हैं कि तूने भी इसी प्रकार से जीवित या मरे हुए प्राणी के शरीर को अग्नि पर पकाते समय नमक मिर्चा डाली थी, उससे उसको वेदना हुई थी उसका अब तू स्वयं भी अनुभव कर इत्यादि हजारों प्रकार के दुःख देते हैं। तथा शिकारी को उस नरक में अनेक दुख भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार यह शिकार अत्यंत दुःख देती है। तथा परस्पर में वैर की परंपरा चलने लग जाती है। जिन जीवों का शिकारियों ने निशाना बनाया है वे जीव उनके बैरी बनकर अपना बदला चुकाने का प्रयत्न करते हैं। दुःखों का अनुभव कर मरण को प्राप्त करते हैं ।१९९॥

आखेटं वा जगति मनुजैः वासवानां चक्रिः
चित्ते जाते खल निरपराधे नृप ब्रह्मदत्तः ॥
यावज्जीवं भरति खलु येदुर्गतौ दुःखमास्वाद्
घोरोत्पातं कृत जगमतुर्नारिके स्याति भव्य ॥२००॥

हे भव्य राजा ब्रह्मदत्त बड़ा ही शासन प्रिय प्रतापी धर्मात्मा राजा था किसी कारण से

शिकार खेलने की आदत पड़ गई थी। वह इतना वक्र परिणामी वन गया था कि जिसके हृदय में दया का अंश भी नहीं बचा था। वह जंगल में जहाँ कहीं जाता वहां पर विचरने वाले हिरण, सावर, रोझ, खरगोस, इत्यादि निरपराधी पशु पक्षियों को मार कर लाता था। और उन जानवरों के मांसको पकाकर खाजाता था। निरपराध होने पर भी विचारे जीवों को सताता था उसका मन इतना कठोर हो गया था कि दया धर्म का निशान भी नहीं रह गया था। उसके परिणामों में क्रूरता ही क्रूरता भर रही थी जिस कारण से उसने अशुभ कर्मों का पूर्ण रूप से संचय कर लिया था। एक दिन ब्रह्मदत्त शिकार खेलने को जंगल की तरफ जा रहा था कि उसकी दृष्टि एक मुनिराज पर पड़ी। मुनिराज को देखता हुआ आगे चला गया और जंगल में इधर उधर भ्रमण किया, परन्तु शिकार उपलब्ध नहीं हुई। शाम हो जाने के कारण वह खाली हाथों ही घर वापस आगया। पुनः दूसरे दिन गया सो वे ही मुनिराज उसको वहीं पर बैठे पुनः दिखाई दिये दूसरे दिन भी जंगल में शिकार खोजी परन्तु नहीं पायी, तीसरे दिन भी नहीं पायी, तव वह विचारने लगा कि इस समय शिकार न मिलने का कारण हो न हो ये मुनिराज ही हैं। इस प्रकार मन में विचार कर जिस शिला पर मुनि ध्यान करते थे उसके नीचे अग्नि जलाने का निश्चय किया। जव मुनिराज आहार के निमित्त ग्राम में चले गये तव ब्रह्मदत्त ने उस शिला को अग्नि सेतपाकर एकदम लाल कर दिया जब मुनिराज आहार करके आये और शिला पर बैठ गये तव उनका सारा शरीर नीचे से जल गया। इस प्रकार उपसर्ग कर उसने और भी पाप संचय कर लिया जिससे मर कर दुर्गतियों अथवा नरक गति में दुःखों का आस्वादन करने लगा इस प्रकार राजा ब्रह्मदत्त शिकार खेलने में प्रसिद्ध हुआ है जो नरकों के दुखों को वहुत काल तक भोगेगा।२००॥

पद्मनंदी पंचविंशतिकामें भी कहा है।

या दुर्देक वित्ता वनमधि वसति त्रातृ संबंधहीना
भीतिर्यस्यां स्वभावाद्दशनधृततृणा नापराधं करोति॥
वध्यालंसापि यस्मिन् ननु मृगवनिता मांस पिण्ड प्रवोभा
दाखेटेऽस्मिन् रतानामिह किमुन किमन्यत्रनो यद्विरूपम्॥

जो जंगल में विचरने वाली हिरणी दुःखदायक शरीर मात्र धन को धारण करती और रक्षण के संवंध से रहित है अर्थात् जिसका कोई भी रक्षक नहीं है। जिसके स्वभाव से ही भय लगा रहता है तथा जो दातों के मध्य में तृण को धारण करती हुई अर्थात् घास को खाती हुई किसी भी प्रकार का अपराध नहीं करती है। आश्चर्य तो इस वात का है कि वह मृगकी स्त्री अर्थात् हिरणी मांसके लोभ से जिस मृगया व्यसन में शिकारियों के द्वारा मारी जाती है उस शिकार में अनुरक्त हुए जनोंके इसलोक में तथा मरण के पीछे परलोक में कौन सा पाप नहीं होता है ? सव ही पाप होते हैं।

विशेषार्थ—यह एक प्राचीन परंपरा रही है कि जो शत्रु दांतों के मध्य त्रण दबाकर सन्मुख आता था उसे वीर पुरुष क्षमाकर छोड़ देते थे उसके ऊपर अस्त्र शत्र का प्रहार नहीं करते थे। किंतु खेद तो इस वात का है कि शिकारी जन ऐसे भो निरपराधी दीन मृग आदि

प्राणियों का घात करते हैं जो घास का भक्षण करते हैं तथा जिनके मुख में त्रण लगा ही रहता है। यही भाव ग्रंथकार ने (दशन धृत तृणा) इस पद से प्रकट किया है ।।२०१।।

तनुरपि यदि लग्ना कीटिका स्याच्छरीरे
भवति तरलचक्षुर्व्याकुलो यः स लोकः ।।
कथमिह मृगया प्तानंद मुत्खात शस्त्रो
मृगमकृतविकारं ज्ञात दुःखोपहन्ति ।।२६।।

जब अपने शरीर में छोटीसी चीटी काट लेती है या लगजाती है तब मनुष्य व्याकुल होकर चपल होने से उसे इधर उधर ढूढ़ता है फिर वही मनुष्य अपने समान दूसरे प्राणियों के दुःखों का अनुभव करके भी शिकार से प्राप्त होने वाले आनंद की खोज में क्रोधादि विकारों से रहित निरपराध मृग आदि प्राणियों के ऊपर शस्त्र कैसे चलाता है और कैसे वध करता है।

यो येनैव हतः स तं हि बहुसो हन्त्येव पैर्वञ्चितो
नूनं वञ्चयते य तानपि भृशं जन्मान्तरे ऽप्यत्रच
स्त्रीवालादि जानदपि स्फुटमिदं शास्त्रादपि श्रूयते
नित्यं वञ्चनहिंसनोज्झन विधौ लोकाः कुतो मुह्यतः ।।२७।।

जो मनुष्य जिसके द्वारा मारा गया है वह मनुष्य अपने मारने वाले उस मनुष्य को भी अनेकों बार मारता है। इसी प्रकार जो प्राणी जिन दूसरे लोगों के द्वारा ठगे गये हैं वे निश्चय से उन लोगों को भी जन्मान्तर में और इसी जन्म में भी अवश्य ठगते हैं यह वात स्त्री एवं बालक आदि जन से तथा शास्त्र से भी स्पष्टतया सुनी जाती है। फिर लोग हमेशा धोखा देहो और हिंसा के छोड़ने में क्यों मोह को प्राप्त होते हैं। अर्थात् उन्हें मोह को छोड़ कर हिंसा और पर वचन का परित्याग सदा के लिए कर देना चाहिये ।।२७।।

राजा ब्रह्मदत्त की कथा

इस भरत क्षेत्र में मालव देश था वह अनेक प्रकार के धन धान्य से परिपूर्ण समृद्धशाली देश था। वहाँ पर प्रजाजनों में अत्यन्त वात्सल्य भाव था किसी प्रकार की ईति भीति नहीं थी। उस नगरी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था वह अनेक विद्याओं का भण्डार था राजाओं में शिरोमणि गिना जाता था। सब लोग उसकी आज्ञा का पालन करते थे, एक दिन ऐसा आया कि किन्हीं नीच दुराचारियों की संगत के कारण उसको शिकार खेलने की आदत पड़ गई अब क्या था नित्य प्रति जंगलों में जाकर दीन हीन शक्ति के धारक हिरण सावर खरगोश तथा अन्य जीवों को मार मार कर लाने लगा था। कुछ समय शिकार करते हुए बीत चुका था, एक दिन वह शिकार खेलने को निकला, मार्ग में एक शिला पर एक मुनिराज ध्यान कर रहे थे। वे मुनिराज उसकी दृष्टि में पड़े उनको देखता हुआ जंगल की ओर चला गया और जंगल में जाकर चारों ओर शिकार की खोज की परन्तु कहीं पर शिकार नहीं मिली। कोई भी जीव सामने दिखाई नहीं दिया इस प्रकार सुवह से शाम हो गयी तो निराश होकर राजधानी में लौट कर वापस आगया। दूसरे दिन प्रभात होते ही वह

ब्रह्मदत्त राजा शिकार के लिए निकला तो पुनः मुनिराज के दर्शन हो गये वे मुनिराज एक पत्थर की शिला पर ध्यानस्थ बैठे थे राजा उसी जंगल में पुनः गया वहाँ पर पुनः उन ध्यानस्थ मुनिराज को एक पत्थर पर बैठे देखा और शिकार करने के लिए उस वन में चारों तरफ भ्रमण किया परन्तु कोई भी पशु पक्षी सामने दिखाई नहीं दिया जिससे सारे दिन भ्रमण करते २ थक गया और हताश होकर घर चला आया। इस प्रकार उसको कई एक दिन बीत गये उस जंगल में उसको शिकार नहीं मिली, तब विचार करने लगा कि इस साधु के दर्शन हो जाने के कारण मुझे शिकार नहीं मिला है। इस प्रकार विचार कर धारणा की कि हो न हो इस साधु की ही वह करामात है। यह विचार कर एक दिन वह जंगल में गया और जहाँ जिस शिला पर मुनिराज ध्यान किया करते थे वहाँ गया और मुनिराज जब चर्या के लिए नगर में चले गये थे कि उसने उस शिला को अग्नि जलाकर गरम कर दिया। मुनिराज सदा की भांति आज भी शिला पर ध्यान लगा कर बैठ गये जिससे उनके नीचे का भाग दग्ध होने लग गया परन्तु मुनिराज ध्यानस्थ हो गये द्वितीय शुक्ल ध्यान तथा क्षपक श्रेणी में चढ़ने लग गये जिससे घातिया कर्मों को क्षय करके केवली बन गये। उनको केवल ज्ञान हो गया।

इन्द्रादिक देवों से उनके केवल ज्ञान की पूजा हुई तथा मुनिराज अब तीसरे व चौथे शुक्ल ध्यान में चढ़ गये जिससे अघातिया कर्मों का नाश कर अयोग केवली होने के साथ ही सिद्ध भगवान बन गये। वह ब्रह्मदत्त राजा शिकार व्यसन के कारण मरकर सातवें नरक गया, वहाँ वह तेंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु को बांधकर उत्पन्न हुआ। इस कथा का तात्पर्य यह है कि शिकार करना महानिंद्य है। परघात के साथ अपना भी घातक है इसलिए भव्य समीचीन धर्म के धारकों को तो कभी भी इस व्यसन का सेवन नहीं करना चाहिये। दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

इति मृगया व्यसन

आगे परस्त्री व्यसन का स्वरूप कहते हैं।

रागद्वेष विवर्धिनी शिवसुखात्सुदूरमाकर्शतिः।
स्वाधीनेऽपि पिशाचिनी च सदृशा यशं धनं हन्यते॥
सेव्यन्ते ऽपरभामिनीं च मनुजो भयस्य वृद्धिस्तदाः
ऐधन्तेऽऽकुलता सुकर्म विनतां सुखं कथं दायिनी॥२०१॥

पर स्त्री का जो सेवन करते हैं अथवा सहवास करते हैं व उनका हाव भाव देखते हैं व रमण करते हैं उनका और अपर महिला के घरवालों का बैर बढ़ जाता है उसके पति पुत्र देवर सास स्वसुर इत्यादि लोग द्वेष करने लग जाते हैं। और जिससे विशेष वैर भी बढ़ जाता है उस कामी पुरुष को मारने का उपाय सोचने लग जाते हैं। यह परस्त्री स्वाधीन होने पर भी धन और यश का नाश कर डालती है। यह पर महिला पिशाचिनी के समान है जिस प्रकार पिशाचिनी किसी के पीछे लग जाती है तब उसके शान्ति को दूर भगा

देती है उसी प्रकार यह स्त्री भी मुक्ति के मार्ग से अथवा समीचीन धर्म से मनुष्य को बहुत दूर ले जाती है। अथवा मोक्ष सुख से बहुत दूर ले जाती है। जब पर स्त्री के साथ रमण करता है तब उनका हृदय भय से कांपता रहता है कि किसी को पता न लग जावे कोई देख न लेवे वह छुपकर आता जाता है। आकुलता भी बढ़ जाती है जो परस्त्री में आशक्त व्यक्ति होते हैं उनके धर्म की भावनायें नहीं रह जाती हैं तब यह पर रामा कैसे सुख देती है ? सो कहो।

विशेषार्थ—जहाँ जिस पर रामा की संगत करने पर तथा पर स्त्री की तरफ दृष्टि डाल कर रुचिपूर्वक देखने पर भी सज्जन जन उसको दुराचारी कह कर पुकारते हैं। तथा परस्त्री के साथ में रमण करने वाले के तो भय अधिक मात्रा में बढ़ जाता है, यों कि इसका पति यदि देख लेगा या पकड़ लेगा तो मेरी इज्जत खाख में मिल जाएगी। तथा मारने भी लग जाएगा धिक्कारता भी देवेंगे। इसलिए यहाँ से शीघ्र ही निकल जाना चाहिए इस प्रकार भय रहता है। जिससे उस काम के अन्तरंग में व्याकुलता और अधीरता सदा बनी रह जाती है। कामी जन परस्त्री के साथ रमण करने में आनंद मानते हैं उनको हम पूछते हैं कि जहाँ पर भय लगा हुआ है और धैर्यता संग छोड़ चुकी है मन की शान्ति नष्ट हो चुकी है और चिन्ता की वृद्धि हो रही है तथा आकुलता अपना शासन जमा रही है, वहां पर कहो कि सुख कैसे हो सकता है ? सुख तो भय रहित आकुलता रहित शान्ति पूर्वक निराकुलता में ही हो सकता है यह कहना तो कुछ ठीक भी है। परन्तु हम देखते हैं कि जो परस्त्री लम्पटी लोग हैं, अथवा कामी पुरुष हैं, उनके शील कीर्ति यश और लज्जा विद्या धन तो नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार किसी को भूत व्यन्तर लग जाता है तब वह धर्म, कर्म, यश, कीर्ति को नष्ट कर देता है, बस उसी प्रकार यह पर रामा है उसके साथ सहवास करने वाले के सब उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं। अपकीर्ति अपना अधिकार जमा लेती है तथा शान्ति भंग हो जाती है मोक्ष सुख व मोक्ष मार्ग की तो बात ही दूर रह जाती है। इसलिए परस्त्री की संगत कभी भी नहीं करना चाहिए ॥२०१॥

बराकोऽपध्याने सततमभिलाषासनियमं
तिरस्कारंपादे नगरसपदे याति बहुधा ॥
कुलस्त्रीणां पश्यन्ति मदन मनाशक्तं च सभयं
न कोऽपीच्छन्ति स्वात्मजमपितु निस्सारणगृहात् ॥२०२॥

जो परस्त्री के साथ सहवास करते हैं उनके अपध्यान की वृद्धि होती रहती है। वे पर महिलाओं का अपहरण करने व पर पुरुष की हानि का चिन्तवन करते हैं तथा मारने का प्रयत्न करते हैं मरवा भी डालते हैं। कामी पुरुषों की इच्छायें बढती जाती हैं। जब कभी किसी भी घर, ग्राम, गली, बाजारों में जाता है, वहाँ पर उसका बहिष्कार ही होता है नियम से होता है। तथा जनता उसका तिरस्कार करती हुई लानत देती है। जिनका मन मदन्मत्त हो रहा है। वे नर जब कभी कुल स्त्रीयों पर दृष्टि डाल कर देखते हैं तब भी तिरस्कार ही पाते हैं। उनको देखने पर भय अधिक बढ़ जाता है तथा अपने घर वाले

अपने माता, पिता, मामा, दादा, दादी, भी उसको नहीं चाहते हैं यहाँ तक देखा जाता है कि पर स्त्री में आशक्त पुरुष को अपनी विवाहिता स्त्री भी नहीं चाहती है वह भी उसको घर में प्रवेश नहीं करने देती है इस प्रकार पर स्त्री के साथ सहवास करने वाले की दुर्दशा होती है।

विशेष यह है कि कामी पर स्त्री लम्पटी पुरुष सव जगह तिरस्कार को ही पाते हैं उनको कोई भी भला नहीं कहता है, उनको सव ही बुरा कहते हैं। जव पर स्त्री पर दृष्टि डाल कर देखता है तव मदन ज्वर चढ़ आता है, अपने हित और अहित के विचार से शून्य हो जाता है। तव वह पर स्त्री को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है उस स्त्री के प्राप्त करने के लिए आर्त ध्यान करता है, तथा रौद्रध्यान भी करता है, कि इसका पति मर जावे या मारा जावे तो मुझे यह महिला प्राप्त हो इस प्रकार रौद्रध्यान भी हो जाया करता है। उसकी संगत को भी कोई पसंद नहीं करता है खोटे पुत्र को माता पिता भी घर से निकाल देते हैं। कामी पुरुष यह नहीं देखता है कि यह किस जाति की या किस कुल की है या मेरी यह कौन है मैं इसका कौन हूँ। यह मेरी वहन है, या भतीजी है या पुत्री है या दादी है। जिस प्रकार एक कोई व्यापारी अपनी स्त्री की गोद में एक पुत्री को छोड़कर परदेश गया और वहाँ वहुत दिन तक रहा। जव उसकी लड़की युवा हो गई तो स्त्री ने अपनी लड़की की शादी करदी थी परन्तु उसको यह पता नहीं था कि मेरी पुत्री किस ग्राम में विवाही गई है।

वह परदेश से वहाँ आया जहाँ पर उसकी लड़की व्याही थी। अपनी लड़की के घर में ही वह आकर ठहरा, उसकी लड़की ने उसके लिये भोजन वनाया और जिमाया उसकी दृष्टि उस लड़की पर पड़ी वह कामासक्त हो गया। विचार करने लगा कि जो मैं अपने साथ अपनी पुत्री के लिये जेवर लाया हूं उनको इस स्त्री को दे दूं यदि यह मेरे साथ भोग करे तो ? एकान्त में वैठी हुई उस स्त्री को लालच दिया कि देख ये जेवर मेरे पास हैं ये तेरे योग्य हैं यदि तू मेरे साथ रमण करे तो तेरे को दे सकता हूं उसके अन्दर लालच आ गया और हां कह दिया रात्रि में रमण किया और प्रभात होते ही वहाँ से अपने घर को रवाना हो गया। मार्ग में चलते कुछ दिन वीत गये अपने घर पहुंचा तब अपनी पुत्री को वुलाने के लिए एक पुत्र व सेवक को पुत्री की ससुराल भेज दिया। पुत्री भी वड़ी प्रसन्न होती हुई आई कि मेरा पिता वहुत दिन का परदेश गया था सो अव लौट कर आया है सो मेरे लिए वढ़िया वस्तुयें लाया होगा। जव लड़की घर पहुंच गई तव उसके पिता ने उस जेवर को पहचान लिया कि यह तो वही जेवर हैं कि जिसको मैं ही वनवा कर अपनी पुत्री के लिए लाया था। इसका सारांश यह है कि पिता भी पुत्री के साथ रमण करता है यह पर स्त्री व्यसन की कथा है वह विचार सून्य हो जाता है ॥२०२॥

विशयासक्त चित्तानां को गुणो न विनश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभि जाति न सत्यवाक् ॥१॥
पराराधन जात्दैन्यात् पैशून्यात् पर वादतः।
पर भावार्तिकमन्यभ्यो न विभेति हि कामुकः ॥२

पाकं त्यागं विवेकंच वैभावं मान्यता मयि।
कामार्ताखलु मुञ्चन्ति किमन्यैःस्वञ्च जीवनम् ॥३॥

जिनका मन पंचेन्द्रियों के विषयों में आशक्त है उनके कौन-कौन से गुणों का नाश नहीं होता है अपितु सब गुणों का नाश हो जाता है। विद्वान पण्डित होकर के भी वह विवेक सून्य होता है विचार सून्य होने के कारण वह मूर्ख है। मनुष्य होकर के भी वह पशु के समान है उच्चकुल में पैदा होने पर भी वह नीच कुल वाला ही है सत्य बोलने पर भी असत्य भाषी कहा जाता है सगुण नहीं रह जाते हैं, जो मनुष्य कामान्ध हुआ विषयों में आशक्त होता है वह उसके कारण होने वाली अपनी दीनता, चुगली व बदनामी और अपमान होने पर भी उसकी परवाह नहीं करता है: वह तो दिनोदिन विषयों में आशक्त होता जाता है। कामासक्त प्राणी भोजन को भी छोड़ देते हैं, विवेक भी नष्ट हो जाता है, धन दौलत भी नष्ट हो जाती है बड़प्पन का भी विचार नहीं रहता है, और की तो बात क्या कहें वे अपने जीवन को भी नष्ट करने को सन्मुख होते हैं।

कामुकाः विचरन्तियत् किं सर्वालोकितं जनाः
आगच्छन्ति कु मानवः कुलकलंकमुद्भूतः ॥ २०३ ॥

कामी पुरुष जिस रास्ते से गमन करते हैं तब वहां के रहने वाले मनुष्य उसको देख विचार करने लग जाते हैं, कि यह दुष्ट दुराचारी हमारे मुहल्ले में क्यों आता है। इसका क्या कारण ? ऐसे मनुष्यों को यहां असमय और अकारण से नहीं आना चाहिए। यह कहते हैं, कि कुल में कपूत उपज गया जिसने सारे कुल की इज्जत को राख में मिला दिया यह तो कुल का कलंकी है।

सर्वजनाः बहिष्कारं कुर्वन्तियत् दिवारात्रौ ॥
तन्मुखं न दृशं कदा कुकर्मे संस्तितंनृणां ॥ २०४ ॥

जो कुकर्म में स्थित है अथवा परस्त्रीयों में जिन का मन स्थित है, उन मनुष्यों का कोई मुख देखने को भी तैयार नहीं होता है, परन्तु उनको लानत देते हैं बहिष्कार करते हैं। और कहते हैं कि ऐसे पापी का हम मुख नहीं देखना चाहते हैं, यहाँ से चले जाओ या अन्यत्र जाकर मर जाओ या कुछ करो इस प्रकार दिन रात उनको गालियां भी देते हैं।

ये पश्यन्ति खलानुद्भूतो विश्मयं च हारौत्वत् किम्।
अस्माकं पुनरप्यागच्छेत् न इह प्रयत्नैवम् ॥ २०४ ॥
आगारेधरन्ति यदा बहुविधस्ताड्यं क्रोडादि ग्रहीत्वा ॥
अवयवच्छेदयन्ति नृपाकर्श्यं तद्धस्ते रात् ॥ २०५ ॥

जब कभी व्यभिचारी गलियों में होकर विचरते हैं तब मुहल्ला वाले चिन्ता में पड़ जाते हैं कि यह क्यों और किसलिए हमारे मुहल्ला में आये हैं। आइन्दा नहीं आवें ऐसा प्रयत्न कर देना चाहिए तथा उसको हमारे मुहल्ले में कभी भी नहीं आना चाहिये। जब कभी ये कामी पर स्त्री लम्पटी किसी के घर पर जाते हैं तब वहां के लोग उसको पकड़ लेते हैंऔर अनेक प्रकार की गालियां व कुवचन कहते हैं तथा चाबुक बेंत आदि लेकर

उनको मार लगाते हैं तथा लोहे के सरिये गरम करके भी लगाते हुए देखे जाते हैं। उनके मुख में भिष्टा व पेशाब भी भर देते हैं, खिला पिला देते हैं, अंग उपांगों का भी छेदन भेदन कर डालते हैं, यहाँ तक भी देखा जाता है कि पर स्त्री लम्पटों को वंदूक की गोली से मार दिया जाता है, तलवार से मार दिया जाता है, कत्ल कर दिया जाता है। तथा जव वेहोश कर देते हैं और राज कर्मचारियों को वुलाकर उसको उनके सुपुर्द कर देते हैं।

स्वतालुरक्त किल कुक्कराधमैः प्रमीयते यद्वदिहास्थि चर्वणात् ॥
तथा विर्टैविद्धि वपुर्विडंवनैः निषेव्यते मैथुनसंभवं दुःखम् ॥२०६॥

जिस प्रकार नीच कुत्ता हड्डी को चवाता है, और चवाने मात्र से उसके गले मसूड़े फूल कर फूट जाते हैं और उनमें से रक्त वहने लग जाता है उस रक्त को चाट कर विचार करता है कि इस हड्डी में कितना रक्त भरा हुआ है पुनः पुनः उसका आस्वादन करता हुआ अपने को आनंदित मानता है। जव चवा लेता है पीछे मसूड़े-जवड़े में तथा होठों में दर्द होता है तव काँय काँय चिल्लाता है और मुख में कुछ आराम हुआ पुनः हड्डी चवाने लग जाता है। जिस प्रकार सूकर भिष्टा को खा कर आनंद मानता है उसी प्रकार कामी पुरुष भी सूकर की तरह भिष्टा और मूत्र से भरे हुए पर स्त्री के शरीर का आलिंगन करता है। तथा जहाँ से रक्त झरता है वह स्थान कैसे पवित्र हो सकता है, फिर भी कामीपुरुष उसका सम्वन्ध कर आनंद मानता है यह वड़े आश्चर्य की वात है। कुत्ते के जिस प्रकार अत्यन्त वेदना होती है उसी प्रकार पर स्त्री के साथ रमण करने के पीछे दुःख होता है॥ २०६॥

राजपुरुषानिरोधं कारागृहे पातयमन्नपानं।
ताडयति निरोधं तत् धनधान्यादिहरित्वा वहिः ॥२०७॥

कामी पुरुष को जव राज कर्मचारी वलपूर्वक पकड़कर ले जाते हैं उसको मार लगाते हैं और जेलखाने में वंद कर देते हैं। वाँधकर काष्ट में फंसा देते हैं जिससे महा संकट भोगना पड़ता है। यह भी देखा जाता है कि कामी पुरुष व स्त्री को राजा लोग वहुत कठोर दण्ड देते हैं साथ में उनके परिवार के लोगों को भी दण्ड देते हैं, व सारा घर माल जव्त करके देश निकाला भी देते हैं। और भी अनेक प्रकार के राजा उनको दण्ड देता है। इसलिए भव्य जीवों को पर स्त्री की ओर दृष्टि नहीं डालना चाहिए। कामी पुरुषों के साथ में अन्य सज्जन जनों को भी दुःख उठाना पड़ जाता है॥२०७॥

येषांगात्रात् च मूले निसरति रुधिरं किं पवित्रं कुधातु
भिष्टापात्रं पुरीशं भरित दूरभिगंधैः पल श्रोणितैर्वा।
योनिस्थाने च जीवोऽगणितमिति सूक्ष्मद्भूवन्त्यकाले ॥
सर्वांगात् स्वेद निर्घाण कफ निवाशं च गात्रेतथापि ॥२०७॥

जिन स्त्रियों पर यह कामी पुरुष मोहित होता है वह स्त्री प्रथम तो कौन है। जिनका गात्र तेरे को सुन्दर दिखाई दे रहा है वह देखने मात्र का ही सुन्दर है, जिसका तू आलिंगन व

जिनके साथ भोग करने की इच्छा कर रहा है उन स्त्रियों का अपवित्र जो शरीर है उसमें से हर समय पसीना निकलता रहता है। उनकी योनि द्वार में से महीने-महीने में रक्त स्राव होता है, अथवा रक्त बहता रहता है। जिनकी योनि स्थान में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति होती ही रहती है। जिनके सर्वांग से दुर्गन्ध आती रहती है। परन्तु यदि तू उस स्त्री के साथ भोगकर देखेगा तब तेरे को उसके साथ भोगे गये भोग से घृणा आप ही उत्पन्न हो जायेगी। वह योनि भी पेशाब रूप मल के निकलने का द्वार है। जिसका शरीर एक मात्र भिष्टा का ही घर है, तथा जिसके नाक से निग्घाण निकलती है, तथा कफ, वात, पित्त झरते रहते हैं मांस का ही पिण्ड है भिष्टा का भरा हुआ घड़ा है। इतना होने पर भी यह कामी पर स्त्री की ही इच्छा करता है ॥२॥

आचार्य स्त्री के शरीर की कथा कहते हुए कहते हैं कि हे भद्र जिस स्त्री का सहवास तू करके आनन्द की अभिलाषा कर रहा है, उस स्त्री के शरीर में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो अपवित्र न हो ? जिसमें से दुर्गन्ध न आती हो ? ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है कि जिसके शरीर व योनि स्थान में क्षुद्रभव के धारक लब्ध पर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति न होती हो ? जिसके स्पर्शन व मैथुन करते समय सब जीव मर जाते हैं जिनका शरीर लार रूप होकर तेरे उस अंक के साथ ही योनि द्वार में से निकल आता है। जिसका शरीर रक्त मांस हड्डियों से बना हुआ है जिसमें भिष्टा, मूत्र, कफ और पित्त भरा हुआ है वह ही सब शरीर के द्वारों में होकर बाहर निकलता है। जिसके संसर्ग से अनेक प्रकार आपत्तियां उत्पन्न होती हैं ॥२०८॥

> सुता दारादीनां स्वगुणगणशीलं प्रियतव।
> तदा कोप्यालोकं भवसि नच कोपंयदभयम् ॥
> यथात्वां शीलं श्रेय ततदपिपरा छ्रे यमपि च।
> परान् कोपं मा याति जननिसुताऽलोक बहुधा ॥ २०९॥

जब तुम्हारी पुत्री, स्त्री व माता व बड़ी बहन या छोटी बहन अथवा पुत्र-वधू के ऊपर कोई कुदृष्टि डालता है, या बुरी निगाह से देखता है, तब तुमको क्रोध क्यों आता है। जिस प्रकार आपको अपनी माता, बहन, भौजाई या माता, पुत्र-वधू का शील प्यारा है, प्रिय हैं उसी प्रकार सबको अपनी-अपनी माता, बहन, बेटी, वधू का शील प्यारा है। जब तुम उनकी स्त्रीयों को बुरी दृष्टि से देखोगे तो क्या तुमको क्रोध नहीं आवेगा ? अवश्य ही आवेगा। बहुधा करके जो पर स्त्रियों के ऊपर दृष्टि डालते हैं तब जिनकी स्त्रीयों को देखा गया है या छेड़ा गया है, या स्पर्श किया गया है, उनके स्वामी या रक्षक उसी प्रकार क्रोध करते हैं, कि जिस प्रकार तुमको तुम्हारी मातादि के छेड़ने, देखने व स्पर्श करने पर क्रोध आता है। उसी प्रकार अन्यों को भी क्रोध आता है, वे भी दुष्ट निगाह से देखने वाले को मारते हैं तथा धिक्कार देते हैं। इसलिए पर स्त्री को कभी भी बुरी दृष्टि से देखना नहीं चाहिए न छेड़ना चाहिए न स्पर्श करना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार तुम अपनी माता, बहन, पुत्री का शील कायम रखना चाहते हो उसी प्रकार सब लोग अपनी-अपनी माता, सुता आदि

का शील कायम रखना चाहते हैं।

साक्षात् नरकद्वारं दुष्कर्म वर्धिनी रामा।
धनं बलं च वीर्य च विनश्यन्ति तदा कीर्तिम् ॥२१०॥

यह पर स्त्री साक्षात् रूप से नरक का द्वार ही है। जो पर नारी पर ग्राशक्त हो जाते हैं उनके हमेशा ही ग्रार्त ध्यान रह जाता है भय बढ़ जाता है जिससे मन में ग्राकुलता बनी रहती है। तथा यह पर स्त्री हिंसा, भूठ, चोरी इत्यादि व क्रोध, मान, माया लोभ व राग-द्वेष, मोह, ईर्षा को बढ़ाने वाली है ग्रथवा पर स्त्री के साथ सहवास से परस्पर में वैर बढ़ जाते हैं। यह धन को भी नष्ट करतो है बल को भी नष्ट करती है तथा वीर्य को भी क्षय कर देती है यह मर्द को नामर्द बना देती है। तथा कीर्ति का नाश कर देती है, सब जगह अपवाद फैल जाता है जिससे चारों तरफ निन्दा होने लग जाती है इसलिए भव्य जीव यदि ग्रापको ग्रपना धन बल वीर्य ग्रौर कीर्ति को कायम रखना है तो पर स्त्री की तरफ को दृष्टि नहीं डालना। यह पर स्त्री तीक्ष्ण धारवाली छुरी के समान है इसकी कोई भी संगत मत करो। छुरी के पड़ते ही तरबूज के खण्ड हो जाते हैं वैसे पर स्त्री के सहवास से घर बाहर में विग्रह फैल जाता है, वैर-विरोध बढ़ जाता है, मान-मर्यादा सब नष्ट हो जाती है।२१०
किसी ग्रंथकार ने भी कहा है :

स्त्री या सा नरकद्वारं दुःखानां खानि रेव च।
पापबीजं कले मूलं कमालिंगनादिकम् ॥१॥
वरमालिंगताक्रुध्वा चलल्लोलाऽत्र सर्पिणी।
न पुनः कौतिकेनापि नारी नरक पद्धतिः ॥२॥
किंपाक फल संभोग सन्निभं वृद्धि मैथुनं।
ग्राघातमात्र रम्यंस्यात् विपाकेऽत्यन्त भीतिदं ॥३॥
ग्रनंत दुःख संतान निदानं तद्धि मैथुनं।
तत्कथं सेवनीयं स्यान्महानारक कारणम् ॥४॥

पर स्त्री नरक का द्वार ही है ग्रौर दुखों की खान है मूल में यह पाप का बीज है कलह की जड़ है फिर ऐसी स्त्री के साथ ग्रालिंगन करना कैसे संभव हो सकता है ? ग्रपितु नहीं हो सकता है। ग्राचार्य कहते हैं यदि कोई क्रोधित हुई सर्पिणी को पकड़ लिया जावे तो वह एक बार ही काटेगी यदि मृत्यु होगी तो एक बार ही होगी। यदि उस पर विषवैद्य का इलाज करवाया जावे तो वह ठीक भी हो सकता है, परन्तु पर स्त्री के द्वारा डँसा गया जन्म-जन्म में नरक में दुःख भोगने पड़ते हैं यह पर नारी ही नरक की पद्धति है उसका सेवन करना उचित नहीं है।

यह मैथुन पर स्त्री के साथ कामसेवन करना जिस प्रकार है किंपाकफल देखने में सुन्दर खाने में मीठा और कोमल होता है परन्तु उसमें विष भरा होता है जो खाता है उसके प्राणों का नाशक होता है। यह भोग भी भोगते समय तो अच्छा प्रतीत होता है, ग्रन्त में उसका परिणाम ग्रत्यन्त भयंकर होता है। ग्रनंत दुःख परंपरा का मूल है, नरक का कारण है

इसलिए सज्जन जन इन विषयों को दूर ही से छोड़ देते हैं। मैथुन भयों का कारण है। उस मैथुन का सेवन कैसे करना चाहिए ? अथवा नहीं करना चाहिए।

येषां च भामिनीं ये कामुकाः पश्यन्ति च यदाकाले।
तत्कोपं वर्धन्ते कामुकानां भ्रष्ट्यन्ते तदा ॥२११॥

जब किन्हीं की स्त्री को कोई कामी जन देखते हैं या इच्छा करते हैं व जिस समय उस स्त्री से मिलने की चेष्टा करते हैं उस समय उसके पति या पुत्र को ज्ञात हो जाता है तब उनको उस समय इतना क्रोध बढ़ जाता है कि जिसकी सीमा नहीं रह जाती है। तब वे उन दुराचारी कामी जन को तलवार बन्दूक या लाठी का प्रहार कर मार डालते हैं। यहाँ तक देखा जाता है कि बड़े भाई की स्त्री के साथ छोटा भाई कुदृष्टि से व्यवहार करता था जब तक भाई को पता न लगा तब तक कुछ नहीं एक दिन पता लग गया तब भाई ने समझाया कि तू अपनी भाभी को मत छेड़ा कर पर वह कामी कहाँ सुननेवाला था, तब बड़े भाई को क्रोध आया और बड़े भाई ने छोटे भाई को तलवार से कत्ल कर दिया। जब अपना निज भाई भी यह बात स्वीकार नही कर सकता है तब अन्य की स्त्री छेड़ने पर वह कैसे सहन कर सकता है। व्यभिचारी पुरुष को माता पिता भी कह देते हैं, कि यदि कोई इसको मार डालेगा तो हम इसका पक्ष नहीं लेवेंगे। एक जागीरदार का लड़का व्यभिचारी हो गया था तब गांव वालों ने उसके माता पिता से कहा कि तुम्हारा पुत्र हमारी माता वहिनों को छेड़ता है तब माता पिता बोले कि वह हमारे से नहीं रुक सकता है जो तुम सबको अच्छा लगे सो करो ? तब ग्राम वालों ने एक दिन उस कामी को बन्दूक की गोली का निशाना बना दिया अथवा मरवा डाला। इसलिए भव्य जीवों को पर स्त्री का स्मरण स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए।

पद्म नन्दी पंच विंशतिका में कहा है—

चिन्ताव्याकुलता भयारति मतिभ्रंसा तिदहभ्रम।
क्षुत्तृष्णा हति रोग दुःख मरणान्येतान्य हो शासताम् ॥
यान्यत्रैव परांगनाहित मन्ते तस्तद्भूरि दुःखं चिरं।
श्वभ्रे भावि यदग्नि दीपित वपुर्लो हांगना लिङ्गनात् ॥२६॥

परस्त्रीयों में अनुराग बुद्धि रखने वाले व्यक्ति को जो इस जन्म में चिंता, आकुलता, भय, द्वेष भाव वृद्धि का विनाश अत्यन्त संताप भ्रान्ति भूख प्यास आपत्ति, रोग वेदना और मरण रूप दुःख प्राप्त होते हैं ये तो दूर रहें। किन्तु परस्त्री सेवन जनित पाप के प्रभाव से जन्मान्तर में नरक गति के प्राप्त होने अग्नि में तपायी हुई लोहमय स्त्रीयों के अलिंगन से जो चिरकाल तक वहुत दुःख प्राप्त होने वाला है, उसकी ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता है यह कितने आश्चर्य की वात है। २६

धिकतत्पौरुष मासता मनुचितास्ता बुद्धयस्तेगुणाः ॥
माभून्मित्र सहाय संपदपि सा तज्जन्म यातुक्षयं ॥
लोकानामिह येषु सत्सु भवति व्यामोह मुद्रांकितं ॥
स्वप्नेऽपि स्थिति लंघनात्परधन स्त्रीषु प्रशवत्तं मनः ॥३०॥

जिस पौरुष आदि के होने पर लोगों का व्यामोह को प्राप्त हुआ मन मर्यादा का उलंघन करके स्वप्न में भी पर धन एवं पर स्त्रीयों में आशक्त होता है उस पौरुष को धिक्कार है। वे अयोग्य विचार और वे अयोग्य गुण दूर ही रहें, ऐसे मित्रों की सहायता रूप सम्पत्ति भी न प्राप्त हो तथा वह जन्म भी नाश को प्राप्त हो जाय। अभिप्राय यह है कि यदि ऊपर की सामग्री के न होने पर लोगों का मन लोक मर्यादा को छोड़कर पर धन; पर स्त्री में आशक्त होता है तो वह सब सामग्री धिक्कार के योग्य है ॥

आगमेद्रव्यतकण्डारः गतिर्बभूव किं तस्य ॥
धनं धान्यं यशं क्षयात् नारके लभते दुःखम् ॥२१२

इस पर स्त्री व्यसन में प्रसिद्ध आगम में कण्डार पिंग मन्त्री का पुत्र हुआ है। उसकी कौन सी गति हुई थी। धन धान्य यश का नाश हो गया और मरकर नरक गति में दुःखों को प्राप्त हुआ।

आख्यान

इस भरत क्षेत्र के काशी देश में वाराणसी नाम की नगरी थी उसमें धरसेण नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सुमंजरी नाम की पटरानी थी और उग्रसेन नाम का मंत्री था उसकी धर्म पत्नी का नाम सुभद्रा था तथा पुत्र का नाम कण्डार पिंग था। वह बड़ा दुरभिलाषी था। तथा जो निर्दोष विद्या का अध्ययन कराने वाला राजा का पुरोहित पुष्पक था उसकी अत्यन्त रूप कला गुण सम्पन्न धर्म पत्नी का नाम पद्मावती था। मंत्री पुत्र कंडारपिंग कुलीन पुरुषों के न करने योग्य काम करता था। एक दिन धन और जवानी के मद से मस्त होकर भिन्न वचन बोलते हुए कामी जनों के साथ उन गलियों में घूमता था जहाँ स्त्रियों के निवास से आमंत्रित होकर विलासी जन आतिथ्य ग्रहण करते हैं। उसने महल के ऊपर अपने नयनों से कमलों को तिरस्कार करने वाली ऐसी सुन्दर पद्मावती के ऊपर कण्डार पिंग की दृष्टि पड़ी।

उसके सौन्दर्य को देख कण्डार पिंग विचार करने लगा कि यह स्त्री कौन है क्या यह इन्द्रानी तो नहीं है यह इन्द्रिय रूपी वृक्ष की वृद्धि के लिये पानी की वर्षा है। अथवा मृग रूपी मन के विनोद के लिये क्रीड़ा भूमि ही है काम रूपी हाथी को बांधने के लिये सांकल के समान यह कौन है। यह विद्याधर की पुत्री है क्या यह देवांगना है।

क्या यह कामदेव की प्रियकारिणी रति है, ऐसा मन में विचार करते हुए काम के वशीभूत होकर उसने मन में दुष्ट संकल्प किया कि बलात्कार से अपने कार्य की सिद्धि नहीं होगी, अथवा मनोरथ को सिद्धि नहीं होगी। यह जानकर उसने दूसरे के अभिप्राय रूपी पर्वत को भेदने में बिजली की तरह कुशल तडिल्लता नाम की धाय को उसके पास भेजने का विचार किया। और एकान्त घर में नीतिवानों का मार्ग भ्रष्ट करने वाले पैरों में गिरना आदि दुर्जनों के द्वारा आश्रय की जाने वाली विनय के द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिएतैयार किया। उसके आग्रह से उस का भार लेकर धाय सोचने लगी कि प्रथम तो पर नारो

है किसी के प्रेम को जोड़ना अत्यन्त मुश्किल का कार्य है अथवा यह कार्य सरल ही हो सकता है क्योंकि तपे हुए और बिना तपे हुए लोहे के समान दो चित्तों को मिलाने के लिए पण्डित जन जो कुछ प्रलाप करते हैं वही तो वास्तव में दैत्व है अथवा वेग से बहने वाले दो जलों की तरह दो तरल हृदयों को मिलाने में क्या बुद्धिमत्ता है। तथा वह दूती वचन पटुता से दूसरे के मन में तिष्ठे हुए पदार्थ को भी बाहर निकाल लेती है अथवा चुम्बक पत्थर जिस प्रकार कचड़े में छिपे हुए लोहे को बाहर निकाल लेता है वही चतुर दूती कहलाती है जो चुम्बक का कार्य करे।

अतः इस कार्य में अब देर नहीं करना चाहिये जैसे समय बीत जाने पर पका फल भी सरस नहीं रह जाता वैसे ही समय बीत जाने पर सरलता पूर्वक होने वाला कार्य समय निकल जाने पर दुस्तर हो जाता है। किन्तु यह कार्य बड़ ही साहस का है भाग्यवश यह कार्य हो या न हो किन्तु दूसरे के अभिप्राय को जानने में सर्वज्ञ विद्वान भी यदि ऐसे कार्य को बहुत से मनुष्यों के करे तो दूत निन्दा का पात्र तो बना ही है साथ में मुशीवत में भी पड़ जाता है। इसलिये यह कार्य केवल एक ही पुत्र वाले मंत्री से कह देना चाहिये। कहा भी है कि स्वामी से निवेदन किये बिना दूत को कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। हाँ यदि कोई आपत्ति आ जावे तो उसका प्रतिकार स्वामी से बिना कहे भी किया जा सकता है। ऐसा मन में विचार धाय मंत्री से कहने लगी।

धाय—मन्त्री जी एक तो आप का इकलौता पुत्र है आप भी इस समय में ऐसे ही थे अब पुत्र के जीवन को बचाने के लिये कोई शीघ्र ही उपाय करना चाहिये।

मंत्री—आर्ये मेरे और मेरे पुत्र के जीवन को बचाना आप के ही हाथ में है।

धाय—सो तो है ही परन्तु फिर भी आपकी प्रतिभा हम स्त्रियों को बुद्धि से अधिक है इसलिये आप को भी प्रयत्न करना चाहिए। इतना कह कर धाय ने वृद्धा का रूप धारण किया वह स्त्री जनोचित्त सब बातों में बड़ी हो चतुर थी। उसने दूसरे के चित्त को आकर्षण करने वाले वचनों द्वारा और आँखों तथा मन को प्रसन्न करने वाली वस्तुओं से कुछ ही दिनों में ही पद्मावती को प्रसन्न कर लिया। एक दिन प्रेम का जाल फैलाने का अवसर आया यह देखकर धाय ने बड़े हर्ष के साथ एकान्त में पद्मावती को लक्ष्य कर एक काव्य पढ़ा उसका भाव यह था कि जगत की सब स्त्रियाँ ही गंगा नदी की तरह श्रेष्ठ हैं जिसका भोग सब प्राणी करते हैं। अथवा मृत्यु को प्राप्त हुए प्राणियों को भी पवित्र करती हैं जिसको महादेव जी अपने सिर की जटाओं में रत्नों की माला के समान धारण किये हुए हैं। इस श्लोक को सुनकर पद्मावती मन ही मन विचार करने लगी कि इस स्त्री की यह प्रस्तावना तो दुराचारिणी स्त्रीयों के समान है तथा स्त्रियों के योग्य दुराचार का महल बनाने के लिये पहली ताया खोजी है। फिर भी जो कुछ इसने कहा है उसके अभिप्राय को पूर्णरूप जानने का प्रयत्न करना चाहिये। यह सोच विचार कर धाय से बोली माता इस सुभाषित का क्या तात्पर्य है। धाय—परम सौभाग्यवती देवि यदि आप का हृदय वज्र का नहीं है तो सुभाषित का अर्थ तुम जानती ही हो। पद्मावती—यदि तुम्हारे इस काव्य के सुनने से मेरा

मन पिघलता नहीं तो तुम समझ लेना कि वज्र से बना हुआ है माता मैं वर्तमान में इसका अर्थ जानना चाहती हूं किन्तु समझदार और स्वाभिमानी मनुष्य को दो के ही सामने अपने मन की बात कहना चाहिये। एक तो जो प्रार्थना करने पर प्रार्थना को अस्वीकार न करे, दूसरे उसमें जो अपने मन के अनुकूल हो। पद्मा—मन ही मन में—देखो इसकी धृष्टता आकाश की तरह निर्लिप्त वस्तु को भी यह कीचड़ से लीपना चाहती है। माता! मैं उक्त दोनों बातों में समर्थ हूं। न मेरे लिये यह कोई नई बात है और न इसमें तुम्हारा ही कुछ प्रयत्न है। धाय (मन में) यदि कोई तूफान न आ पहुंचे तो तट के निकट आये हुए जहाज की तरह यह कार्य सिद्ध है। पुत्री! इसलिए पुराणकारों ने कहा है कि प्राचीन काल में चन्द्रमा ने अपनी गुरु पत्नी तथा इन्द्र ने गौतम की स्त्री अहिल्या के साथ और महादेव ने संतनु राजा की पत्नी के साथ संगम किया था।

पद्मा—माता आपका कहना ठीक है क्योंकि बन्धु बांधव अग्नि की साक्षी पूर्वक स्त्री का शरीर दूसरे को सौंप देते हैं परन्तु मन को नहीं। उसका पति तो वही भाग्य शाली होता है जिससे उसे विश्वास के साथ ही साथ सूरत भी मिलती है।

धाय—हे पुत्री तो सुन एक दिन तू अपने महल के ऊपर घूमती थी, फूल की पंखुड़ी की तरह कोमल और नगर की स्त्रियों के नयन कुमारों के विकसित करने के लिए चन्द्रमा के तुल्य किसी युवा की दृष्टि तेरे ऊपर पड़ गयी।

जैसे वसंत के समागम होने पर भौंरा आम की मंजरी के रस का पान करने के लिए लालायित होता है वैसे ही उस दिन से कामदेव की तरह सुन्दर व युवा तेरे रस का पान करने के लिये लालायिल रहता है। उसी दिन से उसका चित्त तेरे लिये चिन्तित है सदा तेरे गुणों का ही चिन्तन करता है, तेरी सुन्दरता का बखान करता है विलास के योग्य अन्य स्त्रियों के पास आने पर उनकी तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता है वह भूताविष्ट की तरह एक स्थान पर नहीं बैठता है। पागलों की तरह विचित्र काम करता है। बस रोगी के समान दिनों दिन कृष होता जाता है। इन्द्रियां ऐसी क्षीण हो गयी हैं मानों कामदेव की आराधना के लिए उसने ध्यान लगाये हुए हों, आजकल में ही उसके प्राण पखेरू उड़ जाने वाले हो रहे हैं। तथा सदा जल से भींगे हुए पंखे से मन्द-मन्द हवा के किये जाने से और अत्यन्त सरस कमलों के डोडों के चन्दन के रस में भिगो कर उनका लेपन करने से चांदनी रात्रि में तेरे प्रेमी को कुछ होस आता है।

पद्मावती—माता तो अब तक यह बात तुम क्यों छुपाये रहो? धाय—इस प्रकार। पद्मावती—इसमें क्या बुराई? तो कब? जब तुम चाहो।

इधर धाय का प्रयत्न जारी था उधर मंत्री प्रतिदिन अपने पुत्र के हित कामना से राजा के पास जाता था और राजा के महल में रहने योग्य पक्षियों के गुणों का वर्णन किया करता था। एक दिन अवसर पाकर राजा के सामने एक श्लोक पढ़ा। कि जिस राजा के घर में किंजन्य पक्षी होता है उस राजा का राज्य वृद्धि को प्राप्त होता है। और उस राजा के

बैरी भी नष्ट हो जाते हैं। सिद्ध किये गये चिन्तामणि रत्न के समान उसकी चिन्तायें पूर्ण हो जाती हैं।

राजा—मन्त्री वह किजन्य पक्षी कहाँ पर उत्पन्न होता है? और उसकी कैसी आकृति होती है! मन्त्री—स्वामी भगवान महादेव के श्वसुर हिमालय पर्वत की रत्न शिखंडी नाम की चोटी के समीप में एक गुफा है उसमें सब प्रकार के पक्षी उत्पन्न होते हैं। जटायु वैनतेय वैसापयन आदि पक्षी उसी गुफा में पैदा हुए थे उसी गुफा में किजन्य नाम का पक्षी उत्पन्न होता है। उस गुफा को मैं और पुष्पक पुरोहित दोनों अच्छी तरह से जानते हैं। क्योंकि हम दोनों भगवती नन्दा की यात्रा करने गये थे। उसका आकार मनुष्य के समान ही होता है। और वह अनेक रंगों वाला होता है।

राजा (कुतूहल से) मन्त्री उस पक्षी के दर्शन करने की मेरी बड़ी अभिलाषा है वह कैसे सफल हो। मन्त्री—आप—स्वामी मेरे या पुष्पक के जाने से आप की अभिलाषा पूर्ण हो सकती है।

राजा—मन्त्री तुम तो वृद्ध हो पुष्पक को भेज दो? मन्त्री—तो पुष्पक के लिए कंकण पुरस्कार दीजिये। और मार्ग में जाने के लिये योग्य द्रव्य दीजिये। राजा—अच्छा। राजा की आज्ञा पाकर पुष्पक घर में आया उसका मत था कि राजा की आज्ञा में संकल्प विकल्प नहीं करना चाहिये। अतः जाने की तैयारी करनी चाहिये। तैयारी करने लगा तब धर्म पत्नी पद्मावती ने पूछा कि स्वामी असमय में आप कहां जाने की तैयारी कर रहे हैं। पुष्पक—वस्तुतः बात को कहता है। तब पद्मावती बोली यह सब कपटी मन्त्री का जाल है। पुष्पक—ऐसा करने का क्या कारण है पद्मावती ने बीती हुई बातें कह सुनाई। फिर अब क्या करना चाहिये। पद्मा—यही करना चाहिये कि दिन चढ़ते ही नगरी से प्रस्थान करना चाहिये और रात्री के मध्य में चुपचाप लौट कर अपने घर में आकर मकान के किसी भाग में विश्राम करना चाहिये। आगे जो कुछ करना है वह मैं कर लूंगी। पुष्पक ठीक है। दूसरे दिन जब सब लोग सो गये तब वह ठगिनी धाय उस दुराचारी कंडारपिंग को लेकर आई। उधर पद्मा ने यह सोचकर कि ये दोनों नरक गामी जीव हैं नरक जाने के पहले यहीं पर नरक गति क्यों न भोगें। अपने घर में एक बहुत गहरा गड्ढा खुदवा कर उसके ऊपर बिना बुनी खाट बिछा दी तथा जहाँ तहाँ सड़ी डोरी बांध दी उसके ऊपर सुन्दर चादर बिछवा दी। जब ये दोनों उस पर बैठने लगे तो दोनों के दोनों उस खड्ढे में गिर गये और छह माह तक जूठा दाल भात खा कर नरक के समान दुःखों को भोगते रहे।

एक दिन सारे नगर में यह बात फैल गई कि स्वामी को आज्ञा का पालक पुष्पक एक पिंजरे में किजल्य पक्षी को और इस प्रकार के पक्षी को जन्म देने वाली उसकी माता पक्षिणी को भी साथ में लायेगा वह अब तीन या चार दिन में आजावेगा और नगरी में प्रवेश-करेगा। इधर पद्मावती ने उन दोनों के शरीर को अनेक रंगों से रंगा और चिड़िया चकोर नीलकंठ चातक आदि पक्षियों के पंख चिपका दिये। तथा पिंजरे में बंद करके उन दोनों के साथ अपने पति पुष्पक के चिर प्रयास के योग्य वेष बनाकर वहां से नगर के बाहर स्थित उपवन में

भेज दिया। और आप विरहिनी स्त्री का भेप वना कर पुरोहितके अद्भुत कार्य के संवंध में वात चीत करने के लिये आतुर सहेलियों के साथ पति से मिलने के लिये गई। दूसरे दिन गुणी पुष्पक राजमहल में आकर वोला महाराज यह किंजल्प पक्षी है और यह उसको जन्म देने वाली पक्षिणी है। राजा इकटकी लगाये हुए वहुत देर तक देखता रहा और पहचान गया कि यह किंजल्प पक्षी नहीं है न ही यह पक्षिणी है यह तो मंत्री का पुत्र कण्डार पिंग तथा तडिल्लता धाय है कुट्टिनी है।

राजा ने पद्मा को वुलाकर कहा कि यह क्या मामला है पद्मा ने भी आदि से अंत तक सव समाचार सुना दिया वृतान्त सुनते ही राजा नट की तरह प्रसन्न होता था कभी क्रोध से तमतमा उठता था कभी क्रोधित हो उठता था। सव सुन कर अंतपुर की स्त्रीयों ने पद्मा के पैर पकड़े और राजा ने सती स्त्रीयों के योग्य आनंददायक वचनों से और आदर सूचक वस्त्राभरण प्रदान करके पद्मा को सम्मानित करके पालकी में वैठा कर उसके घर पहुंचा दिया। फिर कुट्टिनी और कंडार पिंग का तिरस्कार करते हुए वोला अरे नीच क्या इस नगरी में वेश्यायें नहीं थी जो तूने ऐसा आचरण किया। अरे दुराचारी ऐसा करते हुए मर क्यों नहीं गया ? अतः यदि इसी समय मैं तुझे तिनके की तरह नष्ट कर डालूं तो यह तेरा वहुत अपकार नहीं कहलायेगा। इस प्रकार वुरी तरह से तिरस्कार करके दुराचारी कंडार पिंग का और कुट्टिनी के साथी उग्रसेन मंत्री को सव लोगों के सामने फटकार देते हुये देश से निर्वासित कर दिया। इस प्रकार व्यभिचार करने के कारण प्रजा के सामने तिरस्कृत होकर कामी कण्डार पिंग वहुत समय तक इस पाप का फल भोगता रहा फिर मर कर नरक में चला गया।

इस विपय में एक श्लोक है जिसका भाव इस प्रकार है काम से पीड़ित और परस्त्री संभोग के लिये उत्सुक कण्डारपिंग परस्त्री गमन के संकल्प से मर कर नरक गया।

क्रीडन्ति द्यूत काराः खलुधन मिव संग्राहितार्थं च द्यूतं ॥
वित्तंह्लासं यदायान्ति तदपि न च मुञ्चन्ति कुर्वन्ति चौर्यं।
चौर्येलब्ध्वा च वित्तं पुनरपि विजयन्तिप्रियेछन्ति वेश्यां।
सेव्यन्तेमद्यमासं तदपि च मृगयार्थं न मासंलभन्ते ॥२१२॥

जुआरी लोग जुआ को धन इकठ्ठा करने के लिये खेलते हैं जव जुआ खेलते-खेलते हार जाते हैं तव भी जुआ खेलना नहीं छोड़ते हैं और चोरी करने लगते हैं अव चोरी कर धन लाते हैं तव पुनः जुआ खेलने लग जाते हैं, पर स्त्रीयों की तरफ दृष्टि डालते हैं, अथवा वेश्या की संगत करने लग जाते हैं। और वेश्या के सहवास व जुआरियों के सहवास में रहने से मांस खाना और शराव पीने की आदत पड़जाती है। पीछे धन क्षय हो जाने पर वेश्या वुरी तरह डाट फटकार कर निकाल देती है, मांस खाने की इच्छा होती है तव शिकार खेलने के लिये यत्र तत्र जंगलों में पशु पक्षियों व मीन मगर इत्यादि को मार मार कर उनके मांसको खाते हैं। तथा शराव वनाकर पीते हैं जिससे उनके काम वासनायें वढ़ जाती हैं तव वे पर स्त्रीयों की तरफ दृष्टि डालते हैं, व पर स्त्रियों को छेड़ते हैं।

विशेष—धन की प्राप्ति की इच्छा व धनवान बनने की भावना से लोग जुआ खेलते हैं। जुआ खेलने पर जब हार जाते हैं तो भी उस जुआ को खेलने वाले जुआ खेलना नहीं छोड़ते हैं। जब जुआ में हार जाते हैं तब इधर उधर ग्रामों में, नगरों में जाकर चोरी करते हैं और उस धन को प्राप्त कर पुनः जुआ खेलते हैं जब जुआरी जुआ में जीत जाते हैं तब वेश्या के यहां जाने लगते हैं और वेश्या की संगति करने लगते हैं तब जैसे वेश्या ने कहा वैसा ही खान पान करते हैं तथा माँस खाने व शराब पीने लग जाते हैं। अब पैसा तो वेश्या को खिला पिला दिया और जो बचा उसको जुआ में हार गये तब वेश्या ने कान पकड़ कर निकाल दिया। तब मांस-खाने शराब पीने व वेश्या सेवन करने की आदतें पड़ी हुई थी अब क्या था कि धन नहीं रह गया तब माँस खाने की इच्छा से जहां कहीं कोई भी पशु-पक्षी या मीन मगर इत्यादि जीवों को मार कर उनके माँस को निकाल कर उसको पकाकर खाने लग जाते हैं। जब मांस खाने से काम वासना बढ़ जाती है वेश्या के लिये पैसा नहीं रह जाता है तब इधर उधर पर नारीयों के ऊपर दृष्टि डालते हैं। इस प्रकार एक जुआरी जुआ खेलने वाला क्रमानुसार सातों ही व्यसनों का सेवन करने लग जाता है इसलिये ये व्यसन नरक की सीढ़ी है। अथवा नरक की पद्दत है।

इस पंचम दुस्सम काल में आज के युग में (लोग) मनुष्य धर्म यश कीर्ति व जाति कुल के स्वाभिमान से रहित हो गये हैं। वे हमेशा ही दूसरों की पुत्री व बहुओं माता बहनों पर कुदृष्टि डालते हैं। जगह जगह यही सुनने में आता है कि आज प्रोफेसर की पुत्री को कोई हरण कर ले गया। आज अमुक जगह लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार करते हुए पकड़ लिया ये अफवायें आकाश में फैली हुई रहती हैं। कोई भी जाति पांति का भेद नहीं करते हुए स्कूलों में से कालेजों में से जबरन पकड़ कर ले जाते हैं और उनके साथ दुराचार करते हैं। आज पांसे का जुआ नहीं रहा परन्तु अनेक जुआ खेलने के तरीके चालू हैं। जैसे घोड़ों की रेस साइकिलों बैल गाडियों की रेस व माटका दड़ा बादल आदि अनेक प्रकार से खेलते हैं यह जुआ सब व्यसनों का सरदार है। तथा जगत में जुआरी की दुर्गति ही होती है। जब कभी जुआरी हार जाता है तब पास में धन नहीं रह जाता है तब किसी के पास कर्जा लेने को जाते हैं तब कर्जा देने वाला विचार करता है कि यह तो जुआरी है ये पुनः हमारे धन को वापस नहीं दे सकेंगे। ऐसा विचार कर के जुआरी को कर्ज नहीं देते। जब कर्जा मिलता नहीं तो जुआरी चोरी करने के सन्मुख होता है जब चोरी कर के धन ले आता है तब पुनः जुआ खेलता है जब जुआ खेलने में जीत हो जाती हैं तब वह जुआरी वेश्या की संगत करने लग जाता है। उसकी संगत में रहकर माँस भक्षण करता है तथा वेश्या के कहे अनुसार शराब पीने लग जाता है। जब जुआ में आया हुआ धन (नष्ट) समाप्त हो जाता है और शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है तब मांस खाने व शराब पीने की भी आदतें पड़ने के कारण अब बाजार से मांस खरीदने व शराब खरीदने के लिये पास में पैसा नहीं रहा तब इधर उधर घूम कर दीन हीन निरपराध जिनका कोई स्वामी नहीं हैं उन जीवों को मार कर खाते हैं तथा मांस प्राप्त करने के लिये दूसरे जीवों के मांस को खाने के लिए शिकार करते हैं उनके

शरीर को छेदन भेदन कर माँस निकाल कर पका कर खाते हैं। जब मांस खाने के कारण काम वासनायें बढ़ने लग जाती हैं तब पूर्व में वेश्या का सेवन किया था परन्तु अब वह वेश्या बिना पैसा के कैसे प्राप्त हो ? तब वह पापी कामासक्त दुराचारी अपनी व पराई स्त्रियों बहनों पर दृष्टि डालते हैं तथा बहका कर उनके साथ रमण करने का प्रयत्न करते हैं। जब उसके दुराचार का लोगों को पता चल जाता है तब सब लोग उस पापिष्ठ का बहिष्कार करते हैं जिससे दुर्गति का पात्र बन जाता है।

जब कोई हमारी माता बहन बेटी व धर्म पत्नी इत्यादि को बुरी निगाह से देखता है तब हम उसका बहिष्कार करते हैं बैर विरोध करते हैं। जब हम दूसरों की बेटी बहन माता व बहू पोती इत्यादि पर कुदृष्टि डालेंगे तो क्या वे उनके भाई पुत्र पिता आदि हमारा बहिष्कार नहीं करेंगे ? अवश्य करेंगे। क्योंकि सब स्त्री पुरुषों को अपनी बहनादि का शील धर्म प्यारा है इसलिये हे भव्य प्राणियो इन सप्त व्यसनों में प्रसिद्ध हुए अनेकानेक राजाओं की कथा आगम में पाई जाती हैं तो सामान्य लोगों की तो बात ही क्या है। प्रत्येक व्यसन का कथन करने के पीछे कथा भी कही गई हैं। जहाँ पर पाप बुद्धि रहती हैं वहां पर सम्यक्त्व रत्न जीवों को प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि व्यसनों का सेवन करने वाला पाप रूप गठरी को लेकर दुर्वासनाओं से युक्त होकर मरण करता है जिससे जीव नरक गति में जाता है। परन्तु सम्यकत्व होने के बाद सम्यग्दृष्टि जीव मरण करके नरक नहीं जाता है। इसलिये आत्म हितैषियों को इन सातों व्यसनों को त्यागकर सम्यकत्व उपार्जन करना चाहिये ।।इति।।

आगे जीव अजीव तत्वों का स्वरूप कहते हैं।

जीवाजीवद्रव्ये आलोके निवसन्ति निश्चलैव।
सलोकाकाशं तथा जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च ।। २१३ ।।

इस लोकाकाश के अन्त तक द्रव्यों का निवास क्षेत्र है वे द्रव्य अनादिनिधन हैं पराश्रय से रहित निवास करती हैं। ये द्रव्यें अपने-अपने अस्तित्व को लिए हुए हैं। अस्तित्व से रहित कोई द्रव्य नहीं है ये द्रव्यें जीव और अजीव की अपेक्षा कर के दो हैं। जीव द्रव्य एक तो वे हैं जो चेतना मात्र से जीवित हैं जिनके चेतना पाई जाती है वे जीव हैं। चेतना जानना देखना हलन-चलन रूप क्रिया भावों में अनुरक्त हैं। दूसरी अजीव द्रव्यें हैं। जो देखने जानने व चेतना से रहित हैं रूपी और अरूपी हैं। रूपी एक पुद्गल द्रव्य है जो अनेक भेदों वाली हैं। पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल। ये द्रव्य अविनाशी साश्वत ध्रुव रूप से विद्यमान रहती हैं। जिनका कभी भी अभाव नहीं होता है। जो बौद्ध मत वाले जीव को क्षण भंगुर मानते हैं। तथा एक समय में एक जीव है दूसरे समय में दूसरा जीव होता है पहले वाला जीव नष्ट हो जाता है इस नियम का निराकरण करने के लिए सास्वत कही गई हैं। द्रव्य का सदा अस्तित्व न मानने वाले बौद्धों का मत खण्डन हो जाता है। अस्तित्व कहने से शून्य वादी कहते हैं कि संसार सब शून्य ही हैं संसार में कोई द्रव्य है ही नहीं उसका निराकरण करने के लिए कहते हैं कि द्रव्यें अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। इतना कहने से शून्य वाद मत समाप्त हो जाता है। सब लोक में कहने से यह बताया गया है कि एक ब्रह्म मानने वाले या ब्रह्मा ने

लोक को तथा पदार्थों की व सृष्टि की या ये द्रव्यें ब्रह्म में से ही उत्पन्न होती हैं और विनाश होने पर ब्रह्म में ही मिल जाती हैं। ऐसी मान्यता का निराकरण करने के लिए सास्वत और हमेशा विद्यमान रहती हैं। निवसंति अथवा एक ब्रह्म की मान्यता का निराकरण करने के लिए द्रव्यें ऐसा दो वचन का निर्देश किया गया है कि द्रव्य एक नहीं दो हैं। जो मत वाले यह मानते हैं कि एक पुरुष ही द्रव्य है अन्य सब एक पुरुष के ही अंश हैं इससे भिन्न कोई नहीं हैं इसका निराकरण करने के लिए निवसन्ति यह बहुवचनात्मक क्रिया पद दिया है कि एक पुरुष नहीं द्रव्यें छह हैं वे लोक में निवास करती हैं। सब लोक में द्रव्यें भरी हुई हैं तथा सब लोक द्रव्यों के निवास करने का क्षेत्र है। तथा कहने का तात्पर्य यह है कि सत्ता रहित पांच भूतों से अथवा पाँच भूतों के मिलने पर जीव की उत्पत्ति मानते हैं उनका निराकरण किया गया है कि जीव द्रव्य अनादि निधन है यह पांच भूतों के मिलने से इनकी उत्पत्ति नहीं हैं क्योंकि पांच भूत जड़ हैं जड़ से चेतना रूप जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। सब द्रव्यें अपने गुण और पर्यायों से संबंधित हैं वे अपने-अपने द्रव्य गुण और गुणों के विकार पर्यायों से युक्त हैं। इन द्रव्यों को नाग या काश्यप आदि ने धारण नहीं किया है जीव दो प्रकार के हैं एक संसारी दूसरे मुक्त। संसारी जीव जो जन्म-मरण रूपी रहट में भूला भूलते हैं अथवा चारों गतियों में भ्रमण करते हैं। जो जन्म-मरण रूपी रहट के चक्कर से रहित हो गये हैं वे सिद्ध आत्मा मुक्त जीव हैं॥ २१३॥

नष्टाष्टकर्मणां ये लब्ध्वाऽऽष्टगुणाः कृतकृत्य नित्यम्॥
चरम देहा न्न्यूनाश्च लोकाग्रे निवासिनाः सिद्धाः॥ २१४॥

जिन्होंने ज्ञानावरण, दशनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय इन आठ कर्मों का नाश कर दिया है तथा औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, आहारक रूप नौकर्मइन सब का नाश कर दिया है। तथा जिन्होंने अनंत दर्शन अनंतज्ञान सुख और अनंत वीर्य अगुरुलघु, अव्याबाध, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व ऐसे आठ गुणों को प्राप्त किया है। जिन के अब अन्य अवस्था शेष नहीं रही है। अथवा अनेक पूर्ण गुणों को प्राप्त होने से वे कृत कृत्य हो गए हैं। नित्य हैं जिनको चार गति रूपी योनियों में जन्म-मरण धारण करना पड़ता था संसार अवस्था में अब वे उस भ्रमण से रहित हो गये इसलिए नित्य हैं वे पुनः संसार में नहीं आवेंगे। वे अन्तिम शरीर की अवगाहना से कुछ कम अवगाहना वाले हैं। सिद्ध भगवान के क्षेत्र विपा की गत्यानुपूर्वी नाम कर्म का क्षय हो गया जो आकार में परिवर्तन करता रहता था इस लिये जिस अवगाहना वाले शरीर से मोक्ष प्राप्त किया है उस ही आकार के आत्म प्रदेश विद्यमान रहते हैं। जो लोक के ऊपरी भाग में अथवा लोक शिखर पर विराज मान हो रहे हैं ऐसे सिद्ध भगवान हैं। वे मुक्तात्मा कहलाते हैं।

विशेषार्थ—जीव और पोद्गलिक कर्म नौकर्म समूह का संबंध अनादि काल से चला आ रहा है जिस प्रकार वंश परंपरा चलती रहती है कि पूर्वजों का विनाश और नवीन-नवीन पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति होती जाती है वे संसार का कार्य सम्हालते जाते हैं। उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म फल दे देकर खिरते जाते हैं और नये-नये कर्मों का आस्रव बंध होता रहता

है। पुराने-पुराने कर्मों की प्रति समय निर्जरा होती रहती हैं।

उसी प्रकार कर्मों की उत्पत्ति और निर्जीर्ण होने की संतान प्रति संतान क्रम अनादि काल से चला आ रहा है उन कर्म समूह का नाश करने के लिए प्रयत्न शील होकर आत्मा का साधन किया तथा सर्व कर्म समूह को भस्म कर दिया तव उपमारहित अनंत गुणों को प्राप्त किया।

इस आत्मा के सर्वोकृष्ट गुण अनंत दर्शन ज्ञानादिक हैं जो अन्य द्रव्यों में नहीं पाये जाते हैं। जिस ज्ञान में पदार्थों का स्वरूप यथार्थ प्रकाशित हो ऐसे दर्शन ज्ञानादि आत्मा में सर्वोत्कृष्ट गुण हैं इन गुणों का समुदाय ही आत्मा है अथवा अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यादि गुण आत्मा में ही हैं। आत्मा में सम्यक्त्व है, आत्मा में ज्ञान है, आत्मा में सुख है, आत्मा में वीर्य है, आत्मा में योग है, आत्मा में चरित्र है, आत्मा में प्रत्याख्यान है। संसारी आत्मा के साथ घातिया कर्मों का समूह अनादि काल से लगा हुआ है, जो कर्म जीव के निज स्वाभाविक गुणों को प्रकट नहीं होने देते हैं, इसलिए इन कर्मों को दोष कहते हैं उन समस्त सर्व घातिया और देश घातिया तथा अघातिया कर्मों के अभाव हो जाने पर आत्मा में अनंत ज्ञानादि गुण प्रकट होते हैं, तव उस आत्मा को सिद्धात्मा कहते हैं, जिनको इस शुद्ध आत्म तत्त्व की प्राप्ति हो गई है उनको सिद्ध कहते हैं। वे सिद्ध भगवान कर्मों की प्रकृतियों से सर्वथा भिन्न रहते हैं, संसार में ऐसे वहुत से मानव हैं, जिनको अंजन गुटका सिद्ध हो जाता है, वे एक प्रकार का सिद्ध अंजन वनाते हैं, जिसको आँखों में लगाते ही वे दूसरों को दिखाई नहीं देते हैं, परन्तु वे सव आने जाने वालों को देखते हैं, उसको अंजन गुटका सिद्ध कहते हैं, वे सिद्ध भगवान अंजन गुटका सिद्ध नहीं है जिन्होंने अपने आत्म वल से सव कर्मों का नाश कर दिया है उनको सिद्ध कहते हैं, वही सूचित करने के लिए ग्रन्थकार ने सिद्धों का स्वरूप समस्त कर्मों की प्रकृतियों से रहित वतलाया है।

आगे संसारी जीवों का स्वरूप कहते हैं।

संसारिणो द्विविधैष नित्यं स्थावरा स्त्रशाश्च पंच चतुः ॥
पृथ्वीतोयंज्वलनः पवनः वनस्पति चदुधास्तः ॥ २१५ ॥

संसारी प्राणी दो प्रकार के हैं एक स्थावर दूसरे त्रस जीव हैं वे स्थावर कायक जीव पाँच प्रकार के हैं और त्रस जीव चार प्रकार के हैं। वे पांच प्रकार के स्थावर पृथ्वी पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति के भेद से जानना चाहिए। वनस्पति के चार भेद होते हैं वे इस प्रकार के हैं कि साधारण वनस्पति दूसरी प्रत्येक-प्रत्येक में भी दो भेद होते हैं सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित, प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं सूक्ष्म वादर पर्याप्त और अपर्याप्त। त्रस जीव दो इन्द्रिय, व तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इस प्रकार त्रस चार भेद वाले हैं। जिन जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है उनको स्थावर जीव कहते हैं। जिनके स्थावर नाम कर्म का तथा मतिज्ञानावरण वीर्यान्तराय कर्म के उदय आने पर जीव स्थावर होते हैं। तथा त्रस नाम कर्म के उदय में आने पर त्रस जीव होते हैं। जो स्पर्शन इन्द्रिय आयुवल स्वासोच्छवास तथा काय वल इन चार प्राणों से जीते हैं जीते थे और भविष्य में भी जीवेंगे

उनको जीव कहते हैं। आगे पंच स्थावरों के अन्य प्रकार के भेद हैं उनको कहते हैं ॥२१५॥

पृथ्वी कायकः कायःपृथ्वी जीवाश्च चतुर्धैव
अयेन्षु स्थावरेषु वा संयोजितव्य एकैके ॥२१६॥

शुद्ध भूमि जिसको जीव कभी भी स्पर्श नहीं करते हैं। जिस पृथ्वो में जीव विराजमान है, उसको पृथ्वी कायक कहते हैं। जिस पृथ्वी को जीव ने अपना शरीर वना कर छोड़ दिया हो उसको पृथ्वीकाय कहते हैं। जो जीव स्थावर नाम कर्म व पृथ्वो आयु को वांध कर विग्रह गति में हैं जव तक वह अपने उत्पत्ति के स्थान पर नहीं आ पहुंचा है तव तक उसको पृथ्वी कायक जीव कहते हैं। इसी प्रकार अन्य चारों शेष स्थावरों में लगा लेना चाहिये ॥२१६॥

तेऽपि चतुः प्राणयुक्ताः इन्द्रिय बलमायुः स्वासोच्छवासैः ॥
जीवन्ति जीविष्यन्ति भूत काले जीव्यचक्रुश्च ॥ २१७ ॥
तेऽप्युपयोगेयुक्ता ज्ञानदर्शनेऽष्ट चतु भेदाः।
दर्शनोपयोग चतुर्धाऽचक्षु अचक्ष्वावधि केवलानि ॥ २१८ ॥

जो इन्द्रिय वल, शरीर बल, आयु बल और स्वासोच्छवास इन चार प्राणों से पहले भूत काल में जीते थे, और भविष्य काल में आने वाले काल में भी जीवंगे, व वर्तमान काल में भी जीवित हैं। तथा एक जीव के कम से कम चार प्राण होते हैं, और अधिक से अधिक दस प्राण होते हैं, इससे अधिक प्राण नहीं होते। एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन इन्द्रिय और काय बल स्वासोच्छवास तथा आयु ये चार प्राण होते हैं वे एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के वतलाये हैं उन पांचों ही प्रकार के जीवों के ये सब प्राण होते हैं। दोइन्द्रिय जीव के छह प्राण होते हैं स्पर्शन रसना वचन बल, काय वल, आयु वल, स्वासोच्छवास ये होते हैं, इन जीवों के औदारिक काय बल होता है, तीन इन्द्रिय के एक घ्राण इन्द्रिय की वृद्धि हो जाती हैं इसलिए सात प्राण होते हैं चार इन्द्रिय के एक चक्षु इन्द्रिय और अधिक वढ़ जाने से चार इन्द्रिय के आठ प्राण होते हैं असैनी पंचेन्द्रिय के कर्ण इन्द्रिय और अधिक वढ़ जाती जिससे उनके ९ प्राण हो जाते हैं, सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के एक मनोवल और अधिक वढ़ जाता है, तब सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के दस प्राण होते हैं। इससे अधिक प्राण किसी भी संसारी जीव के संसार अवस्था में नहीं होते हैं कहे हुए जितने त्रस और स्थावर जोव हैं वे सव ही ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग सहित होते हैं। वे दोनों एक दूसरे को छोड़ कर नहीं उन दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग में तादात्म्यक सम्बन्ध है दर्शनोपयोग के संसारो जीव की अपेक्षा से चार भेद हैं और ज्ञानोपयोग के आठ भेद होते हैं, इन दोनों के वारह भेद हो जाते हैं। दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवल दर्शनोपयोग यह दर्शनोपयोग निराकार है। महासत्ता मात्र वस्तु को ग्रहण करता है। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है वह साकार है तथा क्रिया और लक्षण आकार भेद पूर्वक जानता है इसलिये वह साकार है। दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर होता है। चक्षुदर्शनादि जो चक्षु दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षुइन्द्रिय से होने वाले सत्ता सामान्य का अवलोकन होता है वह चक्षुदर्शन है। चक्षुइन्द्रिय से भिन्न अचक्षुदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर शेष इन्द्रियों से सत्ता मात्र पदार्थ का सामान्य अवलोकन होता है उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधिज्ञान

के पूर्व में होने वाले अवधि दर्शनावर्ण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो दर्शन होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं अथवा अवधि ज्ञान के पूर्व में वस्तु सामान्य का अवलोकन होता है उसको अवधि दर्शन कहते हैं। केवल दर्शन जो केवल ज्ञान के होने के साथ महासत्ता रूप पदार्थों का सामान्य से अवलोकन होता है वह केवल दर्शन है। यह केवल दर्शनावरण कर्म के पूर्ण रूप से क्षय होने पर होता है। जिसके तीन लोक व तीन कालवर्ती जितने द्रव्य पर्याय गुण और गुणों की पर्यायें हैं वह सब सामान्य से अवलोकन होती है उसको केवल दर्शन कहते हैं ॥२१७।११८॥

ज्ञानोपयोगद्विविधे मतिश्रुतावधिः कुसुज्ञानं च।
मनः पर्ययं केवलं प्राक्चतुः क्षयोपशमिकं वा ॥ २१६ ॥

मति श्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान कुज्ञान और सुज्ञान के भेद को लिए हुए हैं। जिस ज्ञान के साथ में दर्शन मोह को मिथ्यात्व प्रकृति के सत्ता व उदय के रहते हुए उससे सम्बन्ध रहता है तब तक जो जीवों को ज्ञान होता है वह ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाता है। यह मिथ्या मति ज्ञान मिथ्या श्रुत ज्ञान व विभंगा वधि ज्ञान होता है। जब जीव के सम्यक्त्व हो जाता तब जो मिथ्या ज्ञान था वह बदल कर मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान ये पांच ज्ञान ये सब मिलकर ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है। जब मति ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान होता है वह मति ज्ञान तथा श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान होता है। जो अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर क्षेत्र द्रव्य काल की मर्यादा पूर्वक रूपी पदार्थों को बिना मन इन्द्रिय का सहायता के होता है जो ज्ञान होता है उसको अवधि ज्ञान कहते हैं। जिस मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर जो दूसरे के मन में तिष्ठते हुए पदार्थों को जानने की शक्ति का प्रकट होना यह मनः पर्यय ज्ञान है। जो ज्ञानावरण कर्म के पूर्ण रूप से क्षय होने पर जो ज्ञान होता है वह केवल ज्ञान है केवल ज्ञान को छोड़कर शेष सात ज्ञाना-वरण कर्म के क्षयोपशम होने पर तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर होते हैं उनको क्षयोपशमिक ज्ञान कहते हैं तथा जो आवरण के व वीर्यान्तराय कर्म के क्षय होने पर होता है, उसको क्षायक केवल ज्ञान कहते हैं इसी प्रकार आगे के तीन दर्शन दर्शनावरण कर्म के क्षयो-पशम तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर होते हैं इसलिए इनको क्षयोपशमिक ज्ञान दर्शन कहते हैं। केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय होने पर तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षय होने पर जो दर्शन होता है उसको केवल दर्शन कहते हैं ॥ २१६ ॥

स ज्ञानोपयोगे द्विधे परोक्षप्रत्यक्षे सांव्यवहारिकम्।
प्रत्यक्ष सकल विकले त्रिकलमवधिमनःपर्ययम् ॥ २२० ॥

वह सम्यज्ञान दो प्रकार का है प्रथम तो मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान परोक्ष हैं क्योंकि ये दोनों ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायतापूर्वक होते हैं क्योंकि इस मति ज्ञान में इन्द्रिया वरण ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम व इन्द्रिय नाम कर्म का क्षयोपशम तथा वीर्यातराय कर्म के क्षयोपशम होने पर उत्पन्न होते हैं इसलिए परोक्ष हैं। इनको प्रत्यक्ष भी कहते हैं। क्योंकि इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर एक देश प्रत्यक्ष आत्मा पदार्थों

को पर निमित्त से जानता है। दूसरा परमार्थिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है विकल परमार्थिक और सकल परमार्थिक के भेद होने से। विकल परमार्थिक प्रत्यक्ष जो अवधि ज्ञानावरण व मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मों के क्षयोपशम होने पर रूपी पदार्थों को मर्यादा पूर्वक इन्द्रिय और मन की विना सहायता के जो आत्म प्रत्यक्ष कर जानता है उसको अवधि ज्ञान कहते हैं। तथा जो मनः पर्यय ज्ञान है वह विना इन्द्रिय और मन की सहायता के मर्यादा पूर्वक रूपों पदार्थों को दूसरे के मन में तिष्ठे हुए हैं उनको जान लेता है। यह मनःपर्यय प्रत्यक्ष है। यह भी एक देश आत्म प्रत्यक्ष कर पदार्थों को जानता है। सकल प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है जो ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने पर ही होता है। जिससे वह लोक और अलोकाकाश सहित सब द्रव्य और उनकी भूत भविष्यत और वर्तमान में होने वाली अनंत पर्यायों को युगपत जानता है (दर्शन देखता है) वह सकल प्रत्यक्ष है अथवा सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है ॥२२०॥

व्यवहारेकथितं मा अष्टौ चतुर्भेदानि परमार्थे।
ज्ञानदर्शने शुद्धं शुद्धनया सर्वजीवानां ॥ २२१ ॥

जो दर्शनोपयोग चार प्रकार का और ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का कहा गया है यह व्यवहार नय की दृष्टि से कहा गया है। तथा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक सकल विकल प्रत्यक्ष ये सब भी व्यवहार नय की दृष्टि से कहे गये हैं, किन्तु शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से शुद्ध दर्शन शुद्ध ज्ञानोपयोग सब जीवों के कहा गया है। दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग में जो विकल्प उपलब्ध है वे सब क्षदमस्त जीवों की अपेक्षा से कहे गये हैं। जैसा जिस जीव के ज्ञानावरण कर्म का उदयसत्व में से क्षयोपशम होता है वैसे ही जीव के ज्ञानोपयोग से जानने की शक्ति प्रकट होती है, तथा जैसा जिस समय जीव के दर्शनावरण कर्म का उदय सत्व में क्षयोपशम प्राप्त होता है, वैसा ही महासात्ता सामान्य रूप से पदार्थ का अवलोकन होता है। उदय तथा सत्ता में विराजमान ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म का जैसा क्षयोपशम जीवों के पाया जाता है वैसा ही तीव्र मंदता को लिए हुए पदार्थों को तारतम्य रूप से जानता है। जब मतिज्ञानावरण कर्म का तीव्र उदय होता है तब जीव को कुछ भी (सूझता नहीं) पदार्थों का ज्ञान नही होता है। उसकी जानी हुई देखी हुई रक्खी हुई भी स्मरण में नहीं आती है जब जान लिया कि यह वह पदार्थ मेरे योग्य है परन्तु मतिज्ञानवरण कर्म के उदय में होने के कारण एक समय वाद ही भूल जाता है। जिन वस्तुओं को पहले जाना था देखा था और प्रत्यक्ष में भी दिखाई दे रही है तो भी यह भान नहीं होता कि यह क्या है कैसी है यह मतिज्ञानावरण कर्म के उदय का कार्य है। जब अनेक प्रकार से अनुमान किया गया लेकिन उसमें कोई आस्था नहीं हो पाई तब वहां पर भी मतिज्ञानावरण कर्म का उदय है। जब जिस काल में ज्ञानावरणकर्म का तथा वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम हो तब मनन करने की शक्ति प्रकट होती है मनन पूर्वक पदार्थ एक देश जाने जाते हैं। जिन पदार्थों को जाना था उनका पुनः स्मरण में आने को स्मृति मतिज्ञान कहते हैं। जिन वस्तुओं को पहले देखा था और प्रत्यक्ष में भी देखने पर पूर्व का स्मरण हो जाना यह मतिज्ञान का प्रत्यभिज्ञान भेद है। वह प्रत्यभिज्ञान तीन प्रकार का होता है एक सादृश प्रत्यभिज्ञान दूसरा विदृश प्रत्यभिज्ञान तीसरा एकत्व प्रत्यभिज्ञान। जिस पदार्थ को पहले देखा था उसको ही

प्रत्यक्ष में देखना और देखे हुए पदार्थ का स्मरण होना यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान मतिज्ञान है. जो जिस पदार्थ को पहले देखा था उसके समान ही अन्य वस्तु को देख कर पूर्व में देखे हुए पदार्थ का स्मरण हो आना कि यह उसके ही समान है यह सादृश प्रत्यभिज्ञान मतिज्ञान का भेद है। जैसे यह गो रोझ के समान बालों वाली है इसमें स्मृति प्रत्यक्ष में सादृशता दिखाई गई है यह भी मतिज्ञान के क्षयोपशम का ही भेद है। तर्क लगाकर पदार्थ को जानना कि जहाँ धूम होता है वहाँ अवश्य अग्नि होती है जहाँ जहाँ धुआँ वहाँ-वहाँ अग्नि है क्योंकि साधन से साध्य का ज्ञान होना तथा नदी में पानी देखकर तर्क करना कि आज अमुक स्थान पर पानी वर्षा है जिससे नदी में बाढ़ आ गई वहाँ बिजली भी चमक रही थी इससे यह प्रतीत होता है कि वहाँ पर पानी वर्षा है व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं, यह तर्क पदार्थ और हेतु दोनों को ग्रहण करके साधन से साध्य का ज्ञान करता है, क्योंकि जहां पर साधन नहीं वहां साध्य भी नहीं हो सकता। साधन से ही साध्य की सिद्ध हो सकती है, क्योंकि साधन और साध्य का अविनाभावी सम्बन्ध है। जिसके विना पदार्थों का ज्ञान नहीं उसको साधन कहते हैं जैसे अग्नि का साधन धुआँ है क्योंकि विना धुआँ के अग्नि नहीं जानी जाती है क्योंकि इस पर्वत पर अग्नि है इसलिए धुआं दिखाई दे रहा है यह निश्चय हो जाता है कि जहाँ पर धुआँ होता है वहाँ अग्नि अवश्य ही होती है। जहाँ जानने देखने वाला कोई जीव अवश्य है अजीव नहीं। विशेष आगे ज्ञानाधिकार में कहेंगे यहाँ निश्चय नय के अभेद से एक दर्शन और एक ज्ञान है अथवा चित्स्वभाव है॥ २२१ ॥ ज्ञान का कथन उत्तर में कहेंगे। यहाँ पर सम्यक्त्व का अधिकार है।

चेतनात्मको जीवः नविद्यन्ते स्पर्श रस गंध वर्णाः ।
भूतार्थेनामूर्तिकः व्यवहारे साकार मूर्तिकः ॥२२२

निश्चय भूतार्थ द्रव्यार्थक नयकी अपेक्षा से जीव के हलका, भारी, कोमल कठोर स्निग्ध रूक्ष और शीत व उष्ण ये आठ प्रकार के स्पर्शादि नहीं हैं खट्टा, मीठा, खारा, कडुआ और कषैला ये पाँच रस नहीं हैं। सुगंध और दुर्गध भी नहीं हैं। काला, अरुण, पीत, नीला और धवल ये पाँच वर्ण भी नहीं है इसलिये जीव अमूर्तिक है। क्योंकि ये सब रूपी पुद्गल द्रव्यें हैं अथवा पुद्गल द्रव्य के विशेष गुण हैं। व्यवहार नय की अथवा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से जीव साकार और मूर्तिक है यह भी असद्भूत व्यवहार की दृष्टि से कहा जाता है। शरीर पुद्गल द्रव्यों से बना हुआ है जब तक इस शरीर के आश्रय जीव है तब जीव का शरीर कहा जाना स्वाभाविक है। जब शरीरों से रहित हो जाता है तब वही आत्मा चेतनात्मक अमूर्तिक पदार्थ है। संसारी अवस्था में तथा चारों गतियों में रहने वाले जीव हैं। वे सदेह होने से मूर्तिक कहे जाते हैं। अथवा व्यवहार नय से सदेह जीव मूर्तिक हैं।२२२।

ज्ञानावरणादीनां जीवविभाव भावेन च कर्ताः ॥
बंधनै र्बधन्ति वा तस्माद् व्यवहार नयेनोक्तः ॥२२३॥

जीव अपने विभाव भावों के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठों (कर्मों का तथा नो कर्म तथा द्रव्य पुद्गल कर्म) पोद्ग-

लिक कर्मों का कर्ता व्यवहारनय की अपेक्षा से कहा गया है। तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंध के भेद से चार प्रकार का बंध कहा गया है यह भी व्यवहार का आश्रय लेकर कहा गया है। जीव का जो ज्ञान गुण है वह मिथ्यात्व रूप से परिणमन कर रहा है यह जीव का मिथ्यात्व तथा ज्ञान का असंयम कषाय व नव नो कषाय रूप से परिणमन होना यह असंयम है। तथा परिणामों में संक्लिष्टता का होना। वह संक्लिष्टता तीव्र मध्यम या जघन्यता को लिये ज्ञान का होना (भाव का होना) वे भाव पर संयोगी हैं जिन भावों से पंच स्थावर काय एक त्रस कायक जीवों को विराधना तथा पाँच इन्द्रिय तथा मन की होनें वाली कुत्सित क्रियाओं को न रोकने रूप असंयम है तथा कषाय और योगों के द्वारा पोद्गलिक द्रव्य कर्म वर्गणायें आती हैं वे आत्म प्रदेशों में एक मेक होकर मिल जाती हैं, तथा आठ कर्म रूप से बँट जाती हैं। आठ विभागों में बँट जाती है, यह प्रकृति बंध है तथा उन कर्मों की फल देनें के काल की मर्यादा का बंध होना यह अनुभाग बंध कर्मों के फल देनें की शक्ति का काल आवे उसको अनुभाग बंध कहते हैं तथा जितने द्रव्य कर्म वर्गणायें और वर्गों के समय प्रवद्ध आस्रव हुआ है उनका आत्म प्रदेशों में सम्बन्ध का होना परस्पर में मिलकर एक रूप हो जाना यह प्रदेश बंध है इन चारों ही प्रकार के बंध के कारण जीव के शुभ तथा अशुभ संक्लिष्ट परिणामों का जीव कर्ता है तब यह जीव उन कर्मों का कर्ता व्यवहार नय की दृष्टि से कहा जाता है। निश्चय नय की अपेक्षा से जो पोद्गलिक वर्ग वर्गणायें परस्पर में बंध को प्राप्त होती हैं वे अपने गुण व पर्यायों को नहीं छोड़ती हैं जीव अपने चैतन्य भाव में स्थित है वह अपने भावों का कर्ता है न पुद्गल कर्मों का कर्ता। यह निश्चय नय से हुआ कि शुद्ध नय से अपने भावों का कर्ता है। पर द्रव्य का कर्तापना अशुद्ध नय से कहा गया है। निश्चय नय से न कोई ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म है न मोहनीय कर्म है न अन्तराय कर्म है। आत्मा अपने चित्त स्वभाव का कर्ता है और भोगता है।

असंख्यातप्रदेशजीवेषु संकोच विस्तार गुणैर्युक्तैश्च।
समुद्धाते काले लोकेव स्वदेहं प्रमाणं जिनोक्तः॥ २२४॥

जीवों में असंख्यात प्रदेश वाले लोक के बराबर प्रदेश होते हैं। परन्तु संकोच विस्तार गुण वाले होने के कारण जहाँ जिस पर्याय में जाते हैं वहाँ उस ही पर्याय के अनुकूल छोटे से छोटे सूक्ष्म निगोदिया के शरीर जो घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण सूक्ष्म अवगाहना को लेकर उत्पन्न होते हैं और वे अनन्त जीव उस शरीर में ही समा जाते हैं। यह संकोच गुण है कि जिससे सूक्ष्म निगोदिया शरीर में रहने लग जाते हैं। जब ये जीव महामत्स्य के शरीर को प्राप्त होते हैं उस महामत्स्य की अवगाहना एक हजार योजन लम्बे और पांच सौ योजन मोटे ऐसे स्थूल शरीर में भी निवास करते हैं तब विस्तार गुण के कारण से ही उस शरीर के प्रमाण जीवों के आत्म प्रदेशों का विस्तार करते हैं वे महामत्स्य के सर्व शरीर में भी निवास करते हैं। जब केवल ज्ञानी मुनियों की आयु कर्म की स्थिति कम रह जाती है और वेदनीय नाम गोत्र इन तीनों आघातियाँ कर्मों को स्थिति अधिक रह जाती है तब उन कर्मों की स्थिति कांडक घात करने के लिये समुद्घात होता है। प्रथमतः मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना और प्रथम समय में दण्डाकार चौदह राजू लम्बा होता

है दूसरे समय में कपाट रूप तीसरे समय में लोक प्रतर चौथे समय में लोक पूर्ण करना। लोक पूर्ण में कोई लोकाकाश का प्रदेश शेष नहीं रह जाता कि जहाँ पर आत्म प्रदेश न पहुंचे हो इस प्रकार समुद्‌घात अवस्था में लोक के बराबर विस्तार वाला है। जब शंकोच को करता तब प्रथम समय में लोक पूर्ण से लोक प्रतर दूसरे समय में लोक प्रतर से कपाट रूप होता है। तीसरे श्रमय में कपाट ये दण्डाकार होकर मूल शरीर में पहुच जाता है इस प्रकार छह समय की केवली समुदघात कहा है। समुद्‌घात के सात भेद होते हैं वेदना समुद्‌घात, मरणान्तिक समुद्धात, कषाय समुद्‌घात, तैजस समुद्‌घात, आहारक और केवल समुद्‌घात ये जीव संकोच विस्तार के कारण स्वदेह प्रमाण हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है।

पौद्‌गलिक कर्माणां च विपाके फलं मुक्तः व्यवहारे।
कर्ता भोक्ताश्चात्मा मा भूतार्थे सुद्धनयेन्ः ॥२२५॥

यह जीव व्यवहार नय की अपेक्षा व पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से तो यह जीव कर्मों के उदय का फल भोगता है पूर्व में बाँधे हुए कर्म अपना फल देखकर खिरते रहते हैं उनका फल शुभ अशुभ दो प्रकार का जीव भोगता है। कर्म जब अशुभ रूप में होकर उदय में आते हैं तब संसारी जीव के शरीर में वेदना तथा रोग होना व पुत्र का वियोग धन हानि मान हानि व चोट का लगना फोड़ा होना, तथा प्राणघात का होना इत्यादि सब अशुभ कर्म का फल है। नरक गति में जाना तिर्यञ्च गति का पाना वहाँ पर हजारों प्रकार असंख्यात व संख्यात वर्षों तक दुःखों का अनुभव होना ये सब अशुभ कर्मों का फल भोगता है। तथा शुभ कर्म जब उदय में आते हैं तब निरोग शरीर का होना तथा राजा होना धनवान बनना योग्य स्त्री पुत्र माता पिता का मिलना सर्वत्र आदर का होना। भाई मित्र परिजनों का अपने योग्य मिलना व सदाचारी धर्मात्मा जनों का मिलना व धर्म के साधनों का मिलना। देवगति की प्राप्ति होना उच्च पद इन्द्रादिक का मिलना तथा त्रियंच व नरक गति से निकल कर आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होना ये सब शुभ कर्म व पुण्य कर्म के उदय में आने पर ही जीवों को मिलते हैं। तथा पुण्य कर्म के उदय में ही जीवों को भोग और उपभोग की योग्य वस्तुओं की प्राप्ति होती है व वैर को छोड़ कर मित्रता का करना जहाँ जावे वहीं के लोग आदर सत्कार करने लग जावें यह सब शुभ कर्म का ही फल समझना चाहिये। इस प्रकार जीव संसारी अवस्था में दोनों प्रकार के कर्म के फल को भोगता रहता है। परन्तु निश्चय नय की दृष्टि से जीव कर्म का फल भोगने वाला नहीं। वह अपने शुद्ध भावों के फल का भोगने वाला है न जीव शुभाशुभ कर्मों का कर्ता ही होता है क्योंकि कर्म हैं वे आत्मा की स्वजाति के नहीं हैं इस प्रकार व्यवहार नय और निश्चय नय से आत्मा भोगने वाला कहा गया है। जब सब कर्म रहित अवस्था को प्राप्त हो जाता है उस काल में आत्मा को अपने शुद्ध भाव का फल भोगना ही होता है। क्योंकि शुभ भाव और अशुभ भाव ये दोनों चेतन और अचेतन पुद्‌गल द्रव्य के संयोग सम्बन्ध से प्राप्त होते हैं। परन्तु उस शुद्ध अवस्थामें पर चेतन अचेतन पदार्थ का संयोग संबन्ध का अभाव ही है।२२५।

कुल योनि मार्गणा गुण समास स्थानेषु विभक्तजीवाः।
ते सर्वे संसारिणः ज्ञातव्याश्च जिनोपदिष्टेः ॥२२६॥

कुल १९९½ लाख कुल कोटि तथा चौरासीलाख योनि चौदह मार्गणा, चौदह

गुणस्थान ,चौदह जीव समास में जीव वँटे हुए हैं, वे सब संसारी जीव जानना चाहिये ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने उपदेश दिया है।

विशेष—पृथ्वीकाय जीवों की २२ लक्ष कुल कोटी हैं, जल कायक जीवों की सात लाख कुल कोटी हैं अग्निकाय जीवों की ३ तीन लाख कुल कोटी हैं। वायुकाय जीवों की सात लाख कुल कोटी हैं। वनस्पति कायक के २८ लाख कुल कोटी है, दो इन्द्रिय जीवों के सातलाख कुल कोटि कहीं हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के ८ लाख करोड़ कुल हैं, चार इन्द्रिय के ९ लाख कोटि कुल है, जलचर जीवों के १२ लाख कोटि कुल हैं, सीर्सप के ९ लाख कोटि कुल है। दश करोड़ लाख अन्य थल चर जीव हैं, नभ चर जीवों की १२ लाख कोटि कुल तथा २२ लाख करोड़ कुल नारकी जीवों के है, २६ लाख कुल कोटि देवों के हैं, चौदह लाख कोटिकुल मनुष्यों के हैं। गोमट्टसार जीव कांड में १२ लाख करोड़ कुल कोटि मनुष्य के कहे गये हैं। योनियाँ नो प्रकार की हैं शीत योनि, उष्ण योनि, सचित्त योनि, अचित्त योनि, संवृत योनि, विवृत योनि, मिश्र योनि तीन प्रकार की होती हैं। शीत, उष्णसंव्रत, विव्रत, सचित्त, अचित्त ये तीन मिश्र। तथा नित्यनिगोद, इतर निगोद, पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनकी प्रत्येक की सात सात लाख योनि तथा वनस्पति काय की १० लाख, दो इन्द्रिय, तीन, चार, इन्द्रिय जीवों की दो-दो लाख तथा देव नारकी पंचेन्द्रिय त्रियंच इनकी चार चार लाख योनियाँ होती हैं। तथा मनुष्यों की चौदह लाख योनि स्थान हैं। जन्म स्थान को योनि कहते हैं, विविक्त स्थान या रहने के स्थान के सम्बन्ध को कुल कहते हैं। मार्गणायें चौदह होती हैं।

गति देव, नरक, तिर्यंच तथा मनुष्यगति के भेद, चार प्रकार की हैं। इन्द्रिय पांच होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण, चक्षु ये हैं। काय छह हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, और त्रस के भेद से कहीं हैं। योग पंद्रह है सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्य वचन योग, असत्य वचनयोग उभय वचन योग, अनुभय वचन योग, औदारिक काय योग, औदारिक औदारिक मिश्र, वैक्रियक वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र काय योग, और कर्माण योग। वेद स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद के भेद से वेद तीन प्रकार के होते हैं। कषायें पच्चीस होती हैं अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन ये चार इन चारों में प्रत्येक-प्रत्येक के क्रोध मान, माया, लोभ, चार-चार भेद होने से सोलह भेद हो जाते हैं। नव नोकषायें हैं, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, और नपुंसक वेद कुल पंचविंशति कषायें होती है। ज्ञानमार्गणा, कुमति, कुश्रुति, विभंगावधि, मति, श्रुतावधि, मनः पर्यय और केवल ज्ञान मार्गणा ये आठ भेद हैं। संयम मार्गणा के मुख्य में पांच भेद हैं विवक्षा के अनुसार सात भी होते हैं। जैसे सामायिक संयम, छेदोपस्थापन संयम, परिहार विशुद्धि संयम, सूक्ष्मसांपराय संयम, यथाख्यात संयम, ये पाँच तथा संयमासंयम असंयम। दर्शन मार्गणा के चार भेद हैं, चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन, केवलदर्शन। लेश्यायें छह होती हैं कृष्ण लेश्या, नील, कापोत, तथा पीत लेश्या पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। भव्य मार्गणा दूसरी अभव्य मार्गणा। सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद है सासादन, सम्यक्त्व मिश्र, सम्यक्त्व मिथ्यायत्व उपसम सम्यक्त्व, वेदक

सम्यक्त्व, क्षायकसम्यक्त्व। संज्ञी मार्गणा दो प्रकार की है एक सैनी जीव दूसरे असैनी, आहारक मार्गणा के भी दो भेद हैं एक आहारक दूसरी अनाहारक जिनमें जीव खोजे जाते हैं उनको मार्गणा कहते हैं जिन में जीव निमग्न रहते हैं।

गुणस्थान चौदह होते हैं मिथ्यात्व गुण स्थान, सासादन, मिश्रगुणस्थान, असंयत सम्यक्त्व गुण स्थान, देश संयत, प्रमत्त संयत, अप्रमत्त संयत गुणस्थान अपूर्वकरण गुणस्थान, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सांपराय, उपशान्तमोह, क्षीण मोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली के भेद से जानना चाहियें। जीव समास के भी चौदह भेद होते हैं—एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और स्थूल (वादर) वे दोनों पर्याप्तक और अपर्याप्तक दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, ये पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से ६ तथा पंचेन्द्रिय जीव सेनी और असेनी पंचेन्द्रिय दोनों प्रकार के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के मिलाने पर चौदह भेद हो जाते हैं। इन सब से रहित सिद्ध परमात्मा हैं।

विशेष—यहां जीवों के निवास स्थानों का अथवा जहां जीव पाये जाते हैं उनका संक्षेप यह है कि योनियाँ व कुलकोटि जिस प्रकार जीवों के जन्मस्थान व जन्म लेने के स्थान हैं उन स्थानों के नाम को सक्षेप से योनि कहते हैं कुल कोटि जिन पुद्गलों को ग्रहण कर स्थित होता है उसको कुल कहते हैं। जहां जिस गति आदिक में जीव मगन हो रहे हैं उनको खोजा जाता है उसको मार्गणा कहते हैं। गति नाम कर्म के उदय होने पर जिस जाति व पर्याय के योग्य शरीर धारण करे उसको गति मार्गणा कहते हैं। देवगति, नरक गति, त्रियंचगति और मनुष्य गति। इन्द्रिय मार्गणा-जब इन्द्रिय नाम कर्म के उदय के अनुसार इन्द्रियों की रचना हो और इन्द्रिय को मति ज्ञानावरण का क्षयोपशम प्राप्त हो, पुद्गल इन्द्रिय रूप परिणमन करें और अपने-अपने विषय व कार्यों के करने में कुशल हो जावें। जिनसे जीवों की पहचान होती है उनको इन्द्रिय कहते हैं वे इन्द्रियाँ पाँच होती हैं। जिसके द्वारा जीव रस का आस्वादन करे वह रसना इन्द्रिय है, जिससे वर्ण का ग्रहण किया जावे वह चक्षु इन्द्रिय है। जिससे आठ प्रकार के स्पर्शों का ज्ञान किया जावे या आस्वादन किया जावे वह स्पर्श इन्द्रिय हैं। जिसके द्वारा दो प्रकार के गंधों का ज्ञान किया जावे वह घ्राण इन्द्रिय है। जिस इन्द्रिय की सहायता से सात प्रकार के स्वरों का आस्वादन किया जावे वह कर्ण इन्द्रिय है। काय मार्गणा-काय छह प्रकार की हैं जिस पर्याय के अनुसार जीव के शरीर की रचना होती है उसको काय कहते हैं। जिन जीवों के स्थावर नाम कर्म का उदय होता है उनको स्थावर कहते हैं उन स्थावरों के योग्य जीव को शरीर की प्राप्ति होती है वे स्थावर हैं, वे स्थावर काय पांच प्रकार के होते हैं, पृथ्वी जल अग्नि वायु और वनस्पति काय जिनके त्रस नाम कर्म का उदय होता है उनको त्रस काय कहते हैं।

विशेष—जिनका शरीर पृथ्वी है वे पृथ्वीकाय। जिनका शरीर जल है वे जल कायक, जिनका शरीर अग्नि हैं उनको अग्नि कायक कहते हैं, जिनका शरीर वायु है उनको वायु कायक, जिनका शरीर वनस्पति है उसको वनस्पति काय कहते हैं। जिनका शरीर स्थूल है जो चलते फिरते खाते पीते हैं दो इन्द्रिय तीन, चार, पाँच, इन्द्रिय अनेक प्रकार के आकार विकार को लिये हुए शरीर को धारण करते है उनको त्रस काय कहते हैं।

योग—जिन बाह्य और अभ्यन्तर कारणों के मिलने पर आत्म प्रदेशों में परिस्पन्द होता है उनको योग कहते हैं, वे योग मन वचन काय के भेद से पंद्रह प्रकार के होते हैं। चार मन के, चार वचन के, सात काय के। वेद—जो स्त्री रूप वेदन करे उसको स्त्री वेद कहते हैं, जो पुरुष रूप वेदन करे उसको पुरुष वेद कहते हैं जो न स्त्री वेद न पुरुष रूप ही वेदन करे उन दोनो से भिन्न रूप वेदन करे उसको नपुंसक वेद कहते हैं। कषाय मार्गणा जो आत्मा को तथा आत्मा के गुणों को कसे पीड़ा देवे वाधा पहुंचावे स्वभाव में व शरीर में वक्रता उत्पन्न करती हैं उनको कषाय कहते हैं। तथा आत्मिक गुणों का घात करें उनको कषाय कहते हैं, वे कषाय पच्चीस कह आये हैं। जैसे अनंतानुबंधी क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्जलन, क्रोध, मान, माया, लोभ। नवनों कषांये। जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का आवरण करता है प्रकट नहीं होने देता है तथा विघ्न डालता है उसको ज्ञानावरण कर्म कहते हैं उस कर्म के क्षयोपशम प्राप्त होता है वैसा ही यह जीव पदार्थों के स्वरूप को जानता है। तथा क्षय होने पर जानता है। यह ज्ञान मार्गणा है। उसके भी दो भेद हैं जो मिथ्यात्व सहित ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होता है उसको कुज्ञान कहते है। जिसका सम्यक्त्व के साथ क्षयोपशम या क्षय होता है उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। मिथ्यात्व से युक्त जीव के कुमति, कुश्रुत, विभंगावधि ये तीन और सम्यक्त्व के साथ होते है वे मति श्रुत, अवधि, मनः पयर्य, क्षायक, केवल ज्ञान ये ज्ञान मार्गणा के भेद हैं।

संयम के सात भेद हैं असंयम, संयमासंयम-जिसमें त्रस जीवों की विराधना नहीं होती है उसको संयमासंयम कहते है जिनमें छह काय तथा पंचेन्द्रिय और छठा मनका संयम पाया जाता है ऐसे संयम, सामायिक क्षेदोपस्थापना इत्यादि पहले कहे समान ही हैं। (दर्शन) कषायों के उदय मेंजीव स्व, पर के प्राणों के विराधनारूप परिणाम होते थे वे ही असंयम कहे गये है, जब जीव के अनंतानुबंधी कषाय का उदय रहता है तब तक कोई भी प्रकार का संयम नहीं होता है। जब जीव के अप्रत्याख्यान कषाय का उदय होता है तब देश संयम नहीं होता है। जब जीव के प्रत्या ख्यान कषाय का उदय रहता है तब सकल संयम नहीं होता है। जब जीव के संज्वलन कषाय का उदय होता है तब जीव के सामायिक संयम तथा छेदोपस्थापन व परिहार विशुद्धि संयम होता है। जब संज्वलन की लोभ कषाय सूक्ष्म रह जाती है। तब सूक्ष्म सांपराय सयम होता है जब सूक्ष्म लोभ कषाय का क्षय या उपशम हो जाता है तब यथाख्यात चारित्र जीव के होता है यह संयम मार्गणा है। दर्शन मार्गणा-जो आत्मा के दर्शन गुण को घाते आवर्णित करे अथवा प्रकट न होने देवे उसको दर्शनावरण कर्म कहते हैं। जब जीव के आवरण का क्षयोपशम होता है तब चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन तथा अवधि दर्शन केवल दर्शन केवल दर्शनावरण कर्म क्षय होने पर होता है वह केवल दर्शन गुण प्रकट होता है।

लेश्यायें छह होती हैं कषाय अनुरंजित परिणामों को लेश्या कहते हैं। जो अनंतानुबंधी कषाय के उदय में आने पर जीव के जो सक्लिष्ट परिणाम होते हैं। जो अपने क्रोध कषाय को न छोड़ने वाला क्रूर परिणामों का करने वाला दया क्षमा रहित हो तथा हिंसा भाव द

दूसरों को नष्ट करनेवाला व समूल नष्ट करने के भाववाला भाव होता है उसको कृष्ण लेश्या कहते हैं। जो कार्य करने में मन्द हो तथा स्वच्छन्द विचरण करने वाला वर्तमान कार्य करने में विवेक रहित हो स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों के विषयों में लम्पट होता है तथा जो मान व माया कषाय वाला हो आलसी हो दूसरे लोग जिसके अभिप्राय को न जान सकें तथा अत्यन्त निद्रालू हो। धन धान्य की तीव्र लालसा रखने वाला होता है तथा वैर विरोध करने के परिणाम होते हैं उसको नील लेश्या कहते हैं। दूसरों पर क्रोध करना दूसरों की निन्दा करना अनेक प्रकार से दूसरे जीवों को दुःख देना। या वांधना अधिकतर शोकाकुल करना भय करना दूसरों की वढ़ती को देख कर सहन नहीं करना। अपनी प्रशंसा करना दूसरों का तिरस्कार करना इत्यादि भावों के होने को कापोत लेश्या कहते हैं। पीत लेश्या कषायों की मंदता हो कार्य अकार्य को समझनेवाला होता है हिताहित के विवेक से मुक्त होता है सवके विषयमें समदर्शी तथा दया और दान में तत्पर रहता है ऐसे परिणामवाला जीव पीत लेश्यावाला होता है।

पद्मलेश्या—कषायों की मंदता का होना तथा परोपकार की भावना का होना अपने अवगुणों को देखकर छोड़ने वाला होना तथा गुणीजनों की सेवा करना व धार्मिक कार्यों में आगे रहना कष्ट रूप तथा अनिष्ट रूप उपद्रवों को सहन करते हुए वैर द्वेष नहीं वांधने वाला ऐसे परिणाम को पद्म लेश्या कहते हैं। शुक्ल लेश्या-पक्षपात को न करना निदान को न वाँधना सव जीवों में समता भाव रखना इष्ट में राग अनिष्ट से द्वेष नहीं करना सरल परिणामी होना ये शुक्ल लेश्या के परिणाम हैं। जिनके आत्मा में सम्यक्त्व प्राप्त करने की शक्ति है उसको भव्य कहते हैं जिस आत्मा में सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता नहीं है उनको अभव्य कहते हैं। सम्यक्त्व के मार्गणा-सम्यक्त्व के छह भेद हैं जो दर्शन मोह के उदय में जीव के भाव अतत्व में रूचि यथार्थ तत्वों में अरुचि का होना व जिसके उदय में रहते हुए जीव के समीचीन धर्म में रूचि उत्पन्न नहीं होती है तथा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट पदार्थों में रुचि नहीं होती। तथा मिथ्या दृष्टि के द्वारा कहे गये न कहे गये कुतत्वों पर श्रद्धान का होना सो मिथ्यात्व है। मिश्र सम्यक्त्व जिसके परिणाम न मिथ्यात्व रूप होते हैं न सम्यक्त्व रूप ही होते हैं। वह समीचीन धर्म को भी स्वीकार करता है और असमीचीन पर भी विश्वास करता है ऐसे परिणाम जैसे दही गुड़ मिश्रित; न मीठा ही है, न खट्टा ही है। ऐसे परिणामों का होना ही मिश्र गुणस्थान है। उपशम जव मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति अनंतानुवंधी कषायें दव जाती हैं तव जीव के उपशम सम्यक्त्व होता है। उस उपशम का काल वीतने पर कोई कषाय का उदय आजाता है तव जीव सम्यक्त्व रूपी रत्नागिरी से गिरता है और मिथ्यात्व कर्म का उदय नहीं आता है तव तक जीव सासादन सम्यग्दृष्टि होता है। जव मिथ्यात्व का उदय प्राप्त हो जाता है तव वह भी मिथ्यादृष्टि हो जाता है। पूर्व में कही गई सात प्रकृतियों का क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व होता है। देश घातिया सम्यक्प्रकृति के उदय होने पर तथा कषाय और मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व के उदयाभावी क्षय होना तथा सदवस्थारूप उपशम का होना ये सव कार्य होने पर वेदक सम्यक्त्व होता है। संज्ञी मार्गणा—जिन जीवों में हेय उपादेय की विचार

करने की शक्ति होती है उनको समनस्क तथा जिन के यह शक्ति नहीं है उनको असैनी कहते हैं। आहारक-जिन जीवों ने अपने तीन शरीर व छह पर्याप्तियों के योग पुद्गल नो कर्मों का ग्रहण कर लिया है वे आहारक इससे विपरीत अनाहारक होते हैं। अनाहारक संसारी जीव जव एक शरीर को त्यागकर नवीन शरीर को धारण करने को गमन करता है जब तक वह अपने जन्म स्थान को प्राप्त नहीं हुआ है तव तक उसको अनाहारक कहते है वह अनाहारक जीव एक समय दो समय या तीन समय रहता है चौथे के पहले ही आहारक बन जाता है। सिद्ध-भगवान हमेशा ही अनाहारक हैं। गुण स्थान चौदह हैं ये गुणस्थान जीवों के परिणामों के अनु-सार ही हुआ करते हैं। वे पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तो दर्शन मोह के उदय या उप-शम क्षयोपशम या क्षय होने पर होते हैं। आगे के पांच वैसे बारहवें तक चरित्र मोह के उदय में रहने पर तथा उपशम क्षय या क्षयोपशम होने पर होते हैं, तेरहवां गुणस्थान योगों से होता है चौदहवां गुण स्थान योगों के अभावस्वरूप में होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान इस गुण स्थान वाले जीव को जिन वचन कदापि रूचिकर नहीं होते व सच्चे परमार्थ रूप धर्म व देव शास्त्र, गुरुओं पर विश्वास व श्रद्धान नहीं होता है। वह गृहीत, अग्रहीत मिथ्यात्व रूप ही भाव करता है। जिस प्रकार कोई अज्ञ मनुष्य पटना जाने को उत्सुक हुआ और चलकर चौराहे पर पहुंच गया वहां उसने एक व्यक्ति से पूछा कि पटना का मार्ग कौन-सा है तव उसने कहा कि सूर्य उदय में आ रहा है उसी तरफ का रास्ता पटना जावेगा। इतना सुनकर भी उसको संतोष नहीं हुआ तब अन्य व्यक्ति से पूछा तो वह स्वयं नहीं जानता था तव वह बोला कि ये लोग आ रहे हैं यही तो रास्ता है यह सुनकर उस कुमार्ग से चला पर पाटलिपुत्र को नहीं प्राप्त हुआ। यह मिथ्यात्व गुण स्थान है। सासादन गुणस्थान सम्यक्त्व से गिरने की अपेक्षा से है। तीसरा गुणस्थान सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोनों के मिश्र परिणामों की अपेक्षा है। चौथा गुणस्थान सम्यक्त्व की अपेक्षा है इसमें चारित्र मोह की प्रथम चौकड़ी तथा मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्व सम्यक्त्वप्रकृति इनके उपशम या क्षयोपशम या क्षय होने पर होता है। देश संयम यह अप्रत्याख्यान चौकडी के उदय के अभाव में होता है। यह जीव त्रसकाय की विराधना से विरक्त है परन्तु स्थावर काय की विराधना करता है इसलिये विरताविरत कहते हैं। छठवां प्रमत्त जिसके संयम में प्रसाद से दोष उत्पन्न होता है यह गुणस्थान संज्वलन कपाय व नव नोकषायों के उदय में रहते हुए होता है। तथा अप्रमत्त गुणस्थान इन कपायों की मंदता में होता है। अपूर्वकरण में इन तेरह कपायों की मंदता होने पर जीव के अपूर्व भाव एक समय से दूसरे समय में श्रेणीचढ़ने वाले के नहीं मिलते हैं उनको अपूर्व कहते हैं इसलिये इसका नाम अपूर्वकरण कहते हैं। अनिवृत्तकरण इस गुणस्थान में कपाय व नोकपायें एक दम मंद होती हैं परिणामों में अत्यन्त विशुद्धता होती है प्रथम दूसरे समय वालों के परिणाम प्रायः समान ही होते हैं। जिसमें एक लोभ कषाय ही रह जाता है वह सूक्ष्म होता है उसको सूक्ष्म सांपराय कहते हैं। जहां पर चारित्र मोह व दर्शन मोह का उपशम करता है अथवा दवा देता है उसको उपशाँत मोह कहते हैं जिन में मोह कर्म की २८ प्रकृतियां क्षय होने पर जो गुण स्थान होता है उसको क्षीण मोह गुण स्थान कहते हैं यहाँ तक के जीव सव ही छदमस्थ कहे जाते

हैं। चौथे में जघन्य अन्तर आत्मा पांचव से दशवें तक मध्यम अंतरात्मा, ग्यारहवें तथा बारहवें में उत्तम अन्तर आत्मा होता है। घातिया कर्मों की ४७ तथा तीन आयु शेष १३ नाम कर्म की प्रकृतियों के क्षय होने पर जो गुणस्थान होता है वह सयोगी गुण स्थान कहलाता है। जो गुण स्थान योगों के अभाव में होता है उसको अयोगी गुणस्थान कहते हैं। सयोग अयोग केवली के क्षायक सम्यक्त्व क्षायक यथाख्यात चरित्र क्षायक, अनंत ज्ञान क्षायक, अनंत दर्शन, अनंत दान लाभ, अनंत भोग, अनंत उपयोग, अनंतवीर्य और अनंत सुख, ये गुण आत्मा में प्रकट होते हैं। इन गुण स्थानों से अतीत सिद्ध भगवान हैं।

पांच प्रकार के स्थावर काय एकेन्द्रिय जीव है वे दो प्रकार के होते हैं एक तो सूक्ष्म दूसरे वादर। सूक्ष्म वे जीव हैं जो हमारी चरम चक्षुओं से नहीं देखें जा सकते हैं, वे किसी जीव को वाधा नहीं देते हैं, न उनको ही कोई वाधा देता है ऐसे सूक्ष्म जीव हैं। ऐसे जो प्राणी दूसरों को रोकते हैं और दूसरों के द्वारा रोके जाते हैं वे स्थूल देहधारी जीव हैं। वे दोनों ही प्रकार के जीव पर्याप्त निवृत्तपर्याप्त व लव्धपर्याप्तक के भेद को लिये हुए हैं। त्रसकाय के विकलेन्द्रिय जितने जीव हैं वे सव ही वादर होते हैं वे भी पर्याप्त निवृत्तिपर्याप्त लब्धि पर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय सैनी असेनी के भेद से भी पर्याप्त निवृत्ति पर्याप्त, लव्धपर्याप्तिक के भेदों को लिये हुए हैं वे सैनी संसारी जीव चौदह जीव समासों में स्थित हैं। ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। २२६॥

आगे अचेतन द्रव्यों को कहते हैं

अचित्तानिद्रव्याणि पुद्गल धर्माधर्मनभकालानि ॥
रूपीपुद्गलद्रव्यं शेषानि द्रव्याण्यपरूपिणम् ॥२२७॥

अचेतन द्रव्य पांच हैं—वे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पांच द्रव्य हैं जिनमें एक पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है तथा रूपि है शेष द्रव्य अरूपि हैं। ये सव द्रव्य सर्वत्र लोक में देखी जाती हैं तथा इनके निवाश स्थान को लोक कहते है (लोकयन्तीतिलोकः) इन द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य के छह भेद हैं वे इस प्रकार हैं—

रूपिणस्यषट् भेदानि अतिस्थूलं स्थूलं सूक्ष्मसूक्ष्म स्थूलं ॥
स्थूलं सूक्ष्मसूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्म जिनोपदिष्टैः ॥२२८॥

रूपि पुद्गल द्रव्य के स्कन्धों के मूल में छह भेद हैं वे स्कन्ध, अतिस्थूल, तथा स्थूल सूक्ष्म, सूक्ष्म स्थूल, स्थूल सूक्ष्म, और सूक्ष्मसूक्ष्म इस प्रकार छह भेद होते हैं। अतिस्थूल उन स्कन्धों को कहते हैं जिसमें असंख्यात और अनंत परमाणुओं के समूह हैं पृथ्वी पर्वतादि जिन स्कंधों में असंख्यात तथा संख्यात परमाणुओं के समूह को स्थूल स्कंध कहते है वेजल तेल रसादि तथा सूक्ष्म स्थूल जिनमें असंख्यात परमाणु हो कर पकड़ में न आवे उसको सूक्ष्म स्थूल कहते हैं। अन्धेरा व छाया सूक्ष्म सूक्ष्म जिन में असंख्यात व संख्यात परमाणु के स्कन्ध हैं जो देखने में वड़ा भारी होता है परन्तु पकड़ने में आता नहीं उनको सूक्ष्म स्थूल कहते है। भाषा-वर्गणायें असंख्यात वर्गों के समूह रूप वर्गणाओं के समूह को कहते हैं वे वर्गणाओं के समूह दिखाई नहीं देते हैं। तथा द्रव्य कर्म वर्गणायें असंख्यात वर्गों का समूह होने पर भी दिखाई नहीं देते हैं। मनोवर्गणायें तथा कर्माण वर्गणायें हैं। जो एक परमाणु व वर्ग को सूक्ष्म

सूक्ष्म है अविभागी परमाणु है या वर्ग है। इस प्रकार पुद्गलों के छह भेदों को कहा।

अब आगे वे कौन कौन से हैं उनको कहते हैं।

> अति स्थूल स्थूलं, पृथ्वी पर्वताः स्थूलं पुनः सर्पितैफादि ॥
> जलदुग्धं रसादि सूक्ष्मस्थूलं क्षायोद्योते ॥ २२८ ॥
> सूक्ष्मं कर्मवर्गणा सूक्ष्म सूक्ष्मं वर्ग परमाण्वखण्डः ॥
> सर्व लोके व्यवस्थितां पुद्गल द्रव्यं त्रिविधानि ॥ २२९ ॥
> शब्दं बंधं सूक्ष्मं स्थूलं च संस्थानं तम् छायाश्च ॥
> आतपोद्योत शीतं भेदानि पुद्गलस्य पर्यायम् ॥ २३० ॥

जो बड़े-बड़े दिखाई देते हैं, जैसे पर्वत, पृथ्वी, मकान ये सब स्थूल-स्थूल स्कंध हैं, जो तेल, घी, दूध, रस, आदिक हैं, वे सब स्थूल स्कंध हैं। सूक्ष्म स्थूल जैसे हवा यह सर्व शरीर में टकराती है तथा शीत व गर्मी आदि हैं, वे सूक्ष्म स्थूल-स्थूल स्कंध हैं। स्थूल सूक्ष्म छाया, अंधकार इत्यादि हैं वे सब सूक्ष्म स्थूल स्कंध हैं। तथा जो वर्गणायें हैं तथा वर्गणाओं का द्रव्य कर्म ज्ञानावर्णादि हैं वे सब सूक्ष्म स्कंध, हैं इनमें असंख्यात और अनंत वर्गों का समूह है सूक्ष्म सूक्ष्म जो अविभागी वर्ग या परमाणु अथवा अविभागी परिच्छेद है उसको सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं। सर्व लोक में पुद्गल द्रव्य भरे हुए हैं वे पुद्गल द्रव्य हैं।

जो हमको हमारे चर्म चक्षुओं से दिखाई देते हैं पृथ्वी पर्वत वादल ये सब स्थूल-स्थूल स्कंध हैं। जो पानी, घी, तेल, रस, इत्यादिक हैं, वे अपने हाथों से वा अन्य प्रकार से रोके जा सकते हैं, इन स्कंधों को स्थूल स्कंध कहते हैं। जो चर्म चक्षुओं से देखे जाते हैं ऐसे स्कंध जैसे छाया अंधकार शीत उष्ण इत्यादि स्थूल सूक्ष्म स्कंध हैं, क्यों कि वे देखने में तो स्थूल हैं, परन्तु पकड़ने में नहीं आते हैं। जो स्कंध चर्म चक्षुओं से नहीं जाने जाते हैं परन्तु स्पर्शन इन्द्रिय के विषय होते या कर्ण इन्द्रिय के विषय होते हैं, वे स्थूल सूक्ष्म हैं जैसे हवा शब्द वर्गणायें। मेघों का गर्जना विजली के तड़तड़ाट की आवाज का होना। जो स्कंध किसी भी इन्द्रिय के विषय न वनें वे स्कंध वहुत परमाणुओं से वने हुए होने पर भी नहीं जाने जाते न देखे जाते हैं ऐसे द्रव्य कर्म असंख्यात अनंत वर्गों का समूह व वर्गणायें सारे लोक में भरी हुई होने पर नहीं देखने में आती है उनको सूक्ष्म स्कंध कहते हैं। जो अविभागी पुद्गल द्रव्य हैं वे दो प्रकार के होते हैं एक वर्ग दूसरा परमाणु दोनों ही सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं। ये मनः पर्यय व केवल ज्ञान के विषय गोचर होते हैं, इस प्रकार पुद्गल द्रव्य का कथन किया गया हैं। इतना विशेष है कि पुद्गल द्रव्य तीन प्रकार का संख्यात असंख्यात और अनंत परमाणु वाले स्कंध है। संसारी वहिरात्मा इन स्कंधों को देख आनंदित होता जाता है, पंच रस पांच वर्ण दो गंध आठ स्पर्श ये सब इस द्रव्य के स्वाभाविक गुण हैं। इन गुणों को छोड़कर कोई पुद्गल द्रव्य नहीं और पुद्गल द्रव्य को छोड़ कर ये नहीं रह जाते हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है। शब्द यह सात प्रकार का होता है (अतत विनत घन)पंचम धेनव, षटज, वृषभ, गांधार, मध्यम, निपाद ये सात प्रकार के शब्द होते हैं।

एक-एक परमाणु में दूसरे-दूसरे द्विगुण परमाणुओं की स्निग्ध और रूक्ष इन दोनों

का मिलकर एक मेल हो जाना यह वंध है। यह वंध रूक्ष से चौगुणे स्निग्ध परमाणु हों या स्निग्ध से रूक्ष परमाणु चौगुणे हों तव उनका वंध होता यदि इस प्रकार के परमाणु नहीं मिले तो वंध नहीं होगा। जघन्य गुण वाले परमाणुओं का परस्पर में वंध नहीं होता है। एक यह भी पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय है क्योंकि परस्पर में परमाणुओं का मिलन होकर वंध होने पर स्कंध वनता है। स्वभाव से आपस में वंध होना उस स्कंध की स्थिति का वंध होना उस स्कंध का विखरने की मर्यादा का होना तथा परस्पर में एक समय में संख्यात परमाणुओं का मिलना असंख्यात परमाणुओं का मिलना अनंत परमाणुओं का मिलना यह वंध चार भेद वाला है। जो स्कंध दिखाई नहीं देते न पकड़ने में ही आते हैं वे सूक्ष्म हैं। जो दिखाई भी देते हैं, और रोके भी जाते हैं, दूसरों को रोकते हैं, वे स्थूल हैं। जो चारों ओर समानता से मिले हों उनको संस्थान कहते हैं, यह भी पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय हैं। अंधेरा जिसके होते हुए रक्खे हुए पदार्थ दिखाई न देवे। छाया वृक्षादि की परछाई गर्मी सर्दी तथा एक स्कंध महास्कंध के टुकड़े होकर लघु स्कंध का होना तथा परमाणुओं का भिन्न-भिन्न हो जाना यह भेद नामक पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय हैं। प्रकाश जहाँ जो वस्तु रक्खी वहां वह देखी जाती वह प्रकाश है यह भी पर्याय पुद्‌गल द्रव्य की ही पर्याय है। इन पुद्‌गल द्रव्य की पर्यायों से ही संसारी जीवों का व्यवहार चलता है। संसाररूपी नाटकों की यह ही स्टेज है जिस पर संसारी जीव मोह राग कर संसार रूपी नाटक को खेला करते हैं, राग करते हैं, अपनी मानते हैं जिसे पाकर हर्ष होता है, मद युक्त होता है, कि जो मेरे पास है, वह किसी के पास नहीं यह वही पुद्‌गल द्रव्य हैं, जो अनेक प्रकार रंग रंगीला, रस रसीला गंध गंधवान रूपी रूपवान स्पर्श-स्पर्शवान दिखाई दे रहे हैं, यही तो पुद्‌गल है अन्य नहीं। अचेतन द्रव्यों में विकारी विभाव रूप से परिणमन करने वाला पुद्‌गल द्रव्य है परन्तु धर्म-अधर्म आकाश और काल ये अपने स्वभाव में ही परिणमन करते हैं पर भाव में नहीं वे विकार रहित हैं, और अपने स्वभाव में ही स्थित रहते हैं। (इस प्रकार अजीव तत्व का) जो सुख दुःख हैं ये सव पुद्‌गल द्रव्य हैं।

जीवाजीवेद्रव्ये स्वभाव विभावेन संयुक्तं च।
स्वभावे माऽास्रव वंधरजसं किंचित् कथंचित्॥२३१॥

जव जीव और अजीव द्रव्य ये दोनों विभाव रूप से परिणमन करती हैं तव तक आस्रव वंध को प्राप्त होती हैं परन्तु जिस काल में ये द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में परिणमन करती हैं तव आस्रव और वंव का अभाव होता हैं। (जव विभाव रूप से परिणमन करती हैं जैसा) तथा कर्म रज का आना व वंध रूप से परिणमन होना वनता ही नहीं है, वे अपने गुण और पर्यायों में ही मग्न रह जाती हैं। जिस समय जीव और पुद्‌गल ये दोनों द्रव्यें विभाव रूप पर संयोग संवन्ध से परिणमन करती हैं, तव द्रव्यकर्म पुद्‌गल वर्गणायें आस्रव को प्राप्त होती हैं, जीव के विभाव, भाव, राग, द्वेष, मोह, माया, क्रोध, मान, माया, लोभ, नव नो कषाय तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, ये पांचों इन्द्रियां तथा इनके विषय असंयम मिथ्यात्व अज्ञान ये सव विभाव भाव जीव के हैं इन ही भावों के द्वारा ही आस्रवक होता हैं ये ही मुख्य आस्रव के कारण हैं ये सव द्विद्रव्य संयोगी हैं इसलिये इनको ही विभाव कहते हैं इन विभावो से ही

कर्म रूपी रज का आस्रव होता है। परन्तु आस्रव विभाव भाव से ही होता है, स्वभाव भाव में आस्रव का कारण दूसरा कोई द्रव्य नहीं होने से आस्रव का अभाव कहा गया है, यह परमार्थ परमागम से सिद्ध है। वे कर्मों का आस्रव किंचित् कथंचित् भी और नहीं होता है।

विभावभावे व्यवस्थितोऽहं तत्कर्ता क्रोधाद्यसंयमम्।
भावानाकर्ताऽहं यत्पुद्गलानां माऽऽस्रवामि ॥२३२॥

मैं अपने विभाव भावों के द्वारा उन पोद्गलिक कर्मों का आस्रावक हूं। जो क्रोधादिक कषायें हैं व असंयमादिक भाव हैं, जिन भावों का मैं कर्ता हूं वे भाव ही द्रव्य कर्मों के आस्रव के कारण होने से मैं ही आस्रवक हूं, जब मैं ही विभाव भावों में लवलीन होता हूं, तव यह कहता हूं, कि मैंने क्रोध किया, मैंने मान किया, मैंने मायाचारी की, मैंने लोभ किया मैं ही इनका कर्ता हूं। मैं ही असंयम रूप भावों का कर्ता हूं, मेरे भावों से ही असंयम रूप भावों की उत्पत्ति हुई है। मैं कषाय व राग द्वेष रूप भावों का कर्ता हूं, तथा कषाय भाव मेरे ही हैं इनसे मैं भिन्न नहीं ये मेरे से भिन्न नहीं। इस प्रकार मैं ही अपने भावों के द्वारा जो कार्माण वर्गणायें लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं, वे वर्गणाये मेरे भावों से मेरी तरफ को खचि आती हैं यही आस्रव है।

अशुभ भावयुक्तानामास्रव वहुविधकर्मवर्गणाम्।
परिणमन्तिकर्मभावे यत्पुद्गल द्रव्यस्वभावैः ॥२३३॥

अशुभ भावों से युक्त जीवों के वहुत प्रकार के कर्मों का आस्रव होता है। जिन भावों से पुद्गल द्रव्य और वर्गणायें आई हैं, वे वर्ग और वर्गणायें कर्म भाव रूप से स्वयम् ही परिणमन कर जाती हैं।

विशेष—जव जीव आर्त रौद्र रूप ध्यान व क्रोधादि कषायों से युक्त होता है, तथा संक्लिष्ट परिणामों वाला होता है तव यह समय प्रवद्ध पुद्गल वर्गणाओं का (ग्रहण करता है) आस्रव करता है, वह आस्रव एक समय में सिद्ध राशि से अनंतवे भाग और अभव्य राशि से अनंत गुणे पुद्गल वर्गों का आस्रव करने वाला होता है, असंख्यात वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं वे स्पर्धक आठ कर्मो के रूप में स्वयम् ही परिणमन कर जाते हैं ॥२३३॥

मिथ्यात्वाविरते च योगाः कषायानि प्रमादश्च।
सकषायं सांपरायं इर्यापथ निष्कषायं पुनः ॥२३४॥

आस्रव के मूल में पांच कारण हैं, मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय, और प्रमाद आस्रव दो प्रकार का है प्रथम सांपराय आस्रव दूसरा ईर्यापथास्रव। जिस आस्रव का कारण मिथ्यात्व और असंयम कषायें तथा योग प्रमाद ये कारण हैं, उसको सांपरायक के आस्रव कहते हैं। यह आस्रव प्रथम गुण स्थान से लेकर चौथे के पूर्व में तो मिथ्यात्व सहित होता है पांचवे में स्थावर असंयम योग कषायें और प्रमाद रह जाता है। छठवें गुण स्थान में कषाय योग प्रमाद के कारण से आस्रव होता है। सातवें अप्रमत्त गुण स्थान में योग कषायों के कारणों को पाकर आस्रव होता है। अपूर्वकरण गुणस्थान में योघ काषायों से आस्रव होता है तथा नो वे अनिवृत्त करण में। नौवे गुण स्थान के अन्त में सांपराय आस्रव समाप्त सरीखा

हो जाता है। क्योंकि वहां तक कषायें रह जाती हैं दशवे गुण स्थान में एक सूक्ष्म लोभ और योग रह जाते हैं। इसलिये दसवें गुण स्थान में सूक्ष्म सांपराय आस्रव होता है। अब आगे चार गुण स्थान बाकी रह जाते हैं। उन गुण स्थानो में मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषायों का तो अत्यन्त अभाव हो जाता है। अब शेष योग रह जाते हैं, योगों से होने वाला आस्रव ईर्यापथ होता है। वह इस प्रकार का आस्रव होता है कि जिस प्रकार हवा के चलने से धूल उड़ी और कोरे घड़े से टकरा गई और उसके ऊपर पड़ी और नीचे झड़ गई, वहां पर उसके ठहरने की सामग्री नहीं होने से घड़ा जंसा का तैसा रहता है। इसी प्रकार जोवों के योगों के द्वारा कर्मो का आस्रव होता रहता है परन्तु कषाय रूप स्निग्ध पना के अभाव होने के कारण उसको रोकने वाला कोई नहीं तब वे पुद्गल वर्गणायें आती हैं। और निकली चली जाती हैं; क्योंकि जीव के जो मिथ्यात्व और कषायें थी वे ही तो स्निग्धपना थीं, सो उनका तो अभाव हो गया है दसवें गुण स्थान में। इसलिये आगे के गुण स्थानों में यथाख्यात चारित्र के धारक मुनियों के कपाय स्निग्ध भाव के अभाव होने के कारण स्थिति बंध नहीं होता है। क्योंकि स्थिति बंध कषायों के उदय में ही होता है इसलिये उपशांत-मोह, क्षीणमोह और संयोग केवली इन गुण स्थानों में योगों के कारण से आस्रव हीता है वह ईर्यापथ आस्रव है। चौदहवें गुण स्थान मे योगों का भी अभाव हो जाने से वहां वह ईर्यापथ आस्रव भी नहीं रह जाता है। मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर नौवें गुण स्थान तक तो स्थूल सांपराय आस्रव होता है दशवें में सूक्ष्म सांपराय आस्रव होता है। आगे के गुण स्थानों में ईर्यापथ आस्रव होता है ॥२३४॥

वहुवारम्भ ग्रन्थयुक्ताना मास्रव नारकायुर्वैव।
मायात्रियग्गतेः सकषाय संक्लिष्टैर्भावैः ।२३५॥

मिथ्यात्व भाव तथा कषायों से संयुक्त वहुत प्रकार के आरम्भों में तथा परिग्रह में आसक्त संक्लिष्ट परिणाम वाला जीव ही नरक गति का आस्रवक होता है। तथा मिथ्यात्व और मायाचारी करने वाला संक्लिष्ट परिणाम वाला जीव त्रियंच गति का व त्रियंच आयु का आस्रव करने वाला होता है। इन दोनों प्रकार के आस्रवों में जीव के तीव्र संक्लिष्ट परिणाम ही हैं। जीव जव परिग्रह में आसक्त होता हुआ तथा परिग्रह संग्रह करने की भावना से वहुत आरम्भ करता है, वह उस परिग्रह की प्राप्ति के लिये एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणियों की विराधना रूप आरम्भ करता है जिसमें लोभ कषाय का तीव्र उदय होता है जिससे नरक गति और आयु का आस्रव करता है छल कपट मायाचारी जीव अपनी कीर्ति की इच्छा से या लोभ और परिग्रह की इच्छा से तथा मिथ्यात्व और माया कषाय के उदय में आने पर जीव त्रियंच गति और आयु का आस्रव और वंध करता है। इस गति का आस्रवक भी मध्यम संक्लिष्ट परिणामी जीव करता है ॥२३५॥

ये कुर्वन्त्यिवर्णवादभृष्टं साधनोपकरणानां वा।
दर्शनमोहास्रवैवं ज्ञानाश्रवमिच्छन्ति नित्यम् ॥२३६॥

जो प्राणी देवों व धर्म और गुरुओं का अवर्णवाद करते हैं, कि केवली भी कवलाहार करते हैं तथा देव अरहंत भगवान भी औषधी का प्रयोग करते हैं, व डगें भर कर चलते हैं, औ

देव हैं वे भी वलियां चाहते हैं। तथा स्वर्ग के देव हैं वे भी कवलाहार करते हैं। तथा धर्म का अवर्णवाद कि शास्त्रों में लिखा है कि वेद यज्ञ में पशुओं की आहुति देने से धर्म होता है देवताओं को नरबलि व पशुबलि देने पर धर्म होता है कुआं वावड़ी व तालाव खुदवाने में धर्म होता है व धर्म के निमित्त पशुवलि करने में कोई दोष नहीं, वे जीव तो धर्म के निमित्त से मरकर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। नदी समुद्र तालाब आदि में धर्म मान स्नान करना व बालू का ढेर लगाने व दान देने में धर्म होता है यह धर्म अवर्णवाद है। इनको करने पर दर्शन मोह का तीव्र आस्रव होता है। तथा सब कर्मों का आस्रव होता है।

विशेष--अरहंत भगवान के दर्शन मोह व चरित्र मोह का क्षय हो गया है तथा ज्ञानावरण दरसनावरण अंत राय कर्म का भी क्षय होता है। जो कि आहार संज्ञा का कारण था, उस कारण के अभाव होने से कार्य का भी अभाव हुआ, तव भूख कैसे लग सकती है। यदि भूख लगी तो अनंत सुख और अनंत वीर्य का होने का क्या सार और भगवान के क्षुधादि अठारह दोष नही हैं? जव भगवान के क्षपोपशम ज्ञान का अभाव हो गया और केवल ज्ञान हो गया जिससे उनके ज्ञान में सम्पूर्ण वस्तुयें प्रति समय में शुद्ध और अशुद्ध सभी दिखाई देती ही हैं। तब अपवित्र पदार्थ को ग्रहण कैसे कर सकते हैं। जब कि एक क्षयोपशम ज्ञान के धारी मुनिराज होते हैं वे भी आहार के समय पर अवधि ज्ञान का प्रयोग नहीं करते हैं, क्योंकि श्रावक के घर पर अनेक प्रकार की गलतियां हो जाया करती हैं, वे उनके ज्ञान में दिखाई दे जाती हैं, पंचसून होते हैं तव आहार कैसे कर सकते हैं? परन्तु केवली भगवान के तो सकल प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। जो स्वर्गवासी देव देवियां होती हैं, वे भी कवलाहार नहीं करती हैं। क्योंकि उनके तो इच्छाहार है जिस समय उनके भूख की सुध होती है उसी समय उनके कण्ठ से अमृत झरता है और भूख की तृप्ति हो जाती है। उनको मांसाहारी कहना यह देवावर्णवाद है और दर्शन मोह के आस्रव का कारण हैं।

ज्ञानोपार्जन के साधनों का विनाश करना पुस्तकों को फाड़ कर फेंक देना व पढ़ने से रोक देना व कोई पढ़ रहा हो वहां पर हल्ला करने लगना, शोर मचाना, व शास्त्रादिक में विघ्न डालना, पाठशाला आदि की द्रव्य को नष्ट कर देना व द्रव्य को खा जाना व पुस्तकों को नहीं देने देना व अन्य प्रकार से विघ्न उत्पन्न करना, ईर्षा करना इससे ज्ञानावर्ण कर्म का आस्रव होता है कषायों की तीव्रता से ही चरित्र मोह का आस्रव होता है। इन सब प्रकार के कारण मूल में अपने अशुभ भाव ही हैं अन्य कोई नहीं ॥२३६॥

चारित्र मोहक आस्रव के कारण

तीव्रकषायोदये बहिष्कारोऽपमाने चानन्दाः।
स प्रमादेन युक्ताः चारित्र मोहास्रवकश्च। २३७॥

कषायों को तीव्र रूप से उदय में आने पर ही धर्मात्मा जनों का बहिष्कार करता है व निरादर और निन्दा करता है स्वयम संयम से दूर रहता है। तथा प्रमाद के वशीभूत होकर अनेक जीवों की विराधना करने वाला जीव ही चारित्र मोह का आस्रवक होता है। निष्क्रिय होकर यंत्र तत्र उन्मत्त के समान भ्रमण करता है। तथा अपध्यान दुश्रुति का चिन्तवन करने वाला ही चारित्र मोह का आस्रवक होता है।

आर्त्त ध्यानेन निद्रालू दिवशेशयनं दर्शन निरोधं ।
धर्मार्थं च निरोधं दर्शनावर्णस्यास्रवकः ॥ २३८ ॥

जो आर्तध्यान तथा रौद्र ध्यान से युक्त हो तथा अधिक नींद लेने वाला व दिन में सोने वाला और दूसरे जीवों के दर्शन करने में विघ्न करने वाला जीव दर्शनावर्ण कर्म का आस्रवक होता है । मंदिर में दर्शन करने का निषेध करना तीर्थ यात्रा में विघ्न डाल देना तथा उनके अन्य धार्मिक कार्यों में विघ्न करने वाला जीव ही दर्शनावर्ण कर्म का आस्रव करने वाला होता है । दृष्टान्त राजा का द्वारपाल ॥ २३८ ॥

अशुभशुभ भावैः युक्ताः संयमसम्यक्त्वं माङाचारम् ॥
आस्रवको मनुष्यायुः पुण्यपापे सश्रितं च यदा ॥ २३९ ॥

अपने शुभ तथा अशुभ भावों के द्वारा यह जीव पुण्य पाप का आस्रवक होता है । जब देवपूजा, तीर्थयात्रा, वंदना गुरु की पूजा दान, मान, सम्मान, करता है संयम सम्यक्त्व और शीलों का पालन करता है तथा जीवों पर करुणा रखता हुआ आचरण करता है । पंच अणुव्रत व सात शील व्रतों का निर्दोष पालन करता है, व पंचमहाव्रत पांच समिति, तीन गुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करता है तब शुभ भाव होते वे शुभ भाव ही पुण्यास्रव के कारण हैं । तथा कषायों की मन्दता आर्तरौद्रध्यान से रहित होना तथा अशुभ लेश्याओं से रहित होने वाला पुण्यास्रवक होता है । जो तीव्र संक्लिष्ट परिणाम वाला हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह में आसक्त रहने वाला तथा बहुआरम्भ करने वाला आलसी व जीवों की दया से रहित कषायों से युक्त मिथ्यात्व युक्त पापास्रवक होता है । अपनी कीर्ति का इच्छुक व अपने गुणों का प्रकाशक व मायाचारी करने में प्रवीण तथा आर्त्तरौद्र ध्यान से युक्त होता है । निदान करने वाला कृष्ण, नील, कापोत, लेश्या का धारक पापास्रवक होता है । जिनके इन दोनों प्रकार के मिले हुए परिणाम होते हैं वे मनुष्य आयु के आस्रवक होते हैं । तथा अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के धारक जीव मनुष्य आयु के आस्रव करते हैं ॥ २३९ ॥

वेदयन्ति बहिष्कारं माक्रन्दनं हा च दुःख निवेदनं येत् ॥
मरणमिच्छन्ति सहसा आस्रवकः वेदनीयस्य च ॥ २४० ॥
अपरगुणानामाच्छादन्ति विशेष गुणानां प्रकाशकः
इच्छति स्वात्म कीर्तिनीय गोत्रस्याऽऽस्रवकश्च ॥२४१॥

जो दूसरों के मन को तोड़ता है तथा उनको दुःख पहुँचाने की चेष्टा करता है, व उनके कार्यों में विघन डालता है । कि ये सुखपूर्वक कहीं नहीं रहने लग जावें । ऐसे भावों का करने वाला । तथा दूसरे के शरीर व मन में होने वाली वेदना को देखकर कहना कि हम जानते हैं यह दिखावटी करता है इस प्रकार करके उसका बहिष्कार करता है । जब अपने ऊपर कोई प्रकार का कष्ट आजावे तब जोर से रोना चिल्लाना कि अरे मर गया, अरे मर गया कोई रक्षा करो अरे कोई वैद्य ही बुला लाओ हाय मेरा शरीर फटा जाता है, हाय मेरे वेदना हो रही है, अरे मेरी कोई सुन लो रे भइया इस प्रकार शोर मचाता है । जिस से दूसरों के मन में करुणा भाव उत्पन्न हो जाता है । रोना कराहना चिल्लाना कि मुझे बचाओ इत्यादि । तथा

दूसरों को वेदना देना किसी का नाक छेदना तथा लकड़ी में आरगाढ़ कर बैलों के व भैसा घोडादि के शरीर के कोमल भाग में चुभाना व कानों को काट देना उनके अण्डकोश को काट देना फोड़ देना। नस निकाल देना व लाठी आदिक से पीटना व छूरी तलवार कटारी इत्यादि व बन्दूक इत्यादि हथियारों से दूसरे जीवों के प्राणों का नाश करने वाला वेदनीय कर्म का आस्रवक होता है। ऐसा भी विचार करता है अव तो मरण हो जावे तो अच्छा हो वेदना भी सहीं नहीं जाती है। तिरस्कार भी नहीं सहा जाता है। इस प्रकार के भावों वाला मिथ्यादृष्टि जीव तीव्र वेदनीय कर्म का आस्रवक होता है। जो मनुष्य अपनी कीर्ति व प्रशंसा की इच्छाकर के दूसरों के प्रकट गुणों को ढकने की इच्छा करता है। व अपने में गुण नहीं है फिर भी अपने गुणों को प्रकट करता है। कि मैं इन सब बातों को भली प्रकार जानता हूं। वे तो मेरे सामने कभी भी कोई काल में नहीं हो सकते। उनका क्या हो सकता है, जो वे जान सकें उनमें मेरे समान कोई गुण नहीं है इत्यादि भावों कर के दूसरों के गुण और सुख देने वाले गुणों का तिरस्कार कर अपनी प्रशंसा करने वाला जीव नीच गोत्र का आस्रावक होता है ॥१४१॥

सर्वकार्मास्रवस्य संरंभं समारम्भ मारम्भं च।
सकषायै स्त्रियोगैश्च कृतकारिता ऽनुमोदैरास्रवं ॥२४२॥

सब प्रकार के आस्रवों के कारण समरम्भ समारम्भ और आरम्भ (इन तीनों से युक्त प्राणी) इन तीनों को मन से, वचन से, काय से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से करता है व क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होकर करता है। तब इनके एक सौ आठ भेद हो जाते है। वे इस प्रकार है मन, वचन, काय तथा समरम्भ, समारम्य, आरम्भ इन तीनों का परस्पर गुणा करने पर प्रत्येक के तीन-तीन भेद हो जाते है। जैसे मन कृत संरम्य मनकृत समारम्भ मनकृत आरम्भ। वचनकृत संरम्य, बचनकृत समारम्भ, आरम्भ। कायकृत संरम्भ काय कृत समारम्भ कायकृत आरम्भ। इसी प्रकार मनकारित संरम्भ मनकारित समारंभ मनकारित आरम्भ इसी प्रकार वचन कारिता के तीन। मन अनुमोदि मन से अनुमोदित संरम्भ मन से अनुमोदित समारम्भ। इसी प्रकार वचन से अनुमोदित संरम्भादि इन का परस्पर गुणा करने पर २७ भेद हो जाते है मन वचन काय ये ३ संरम्भ समारम्भ आरम्भ ये तीन कृतकारित अनुमोदना ये तीन। ३×३×३=२७ कुल हुए इनका चार गुणी कषाये जब प्रत्येक के साथ में चार चार कषायें रह जाती है वे इस प्रकार हैं जैसे मनकृति सरम्भ को क्रोध से किया मान से किया माया से किया लोभ से किया तब एक एक साथ चार चार कषायें प्रवृत्त हुई तब सब के साथ कषायों का सम्बन्ध किया २७×४।१०८ भेदों की प्राप्ति हो जाता है। जिन कर्मों के करने में पांच सून होते हैं तथा जीवों की विराधना होती है उनका करने का भाव मन से होना वचन से होना काय से होना तथा कृतकारित अनुमोदना पूर्वक होना यह संमरम्भ है। समारम्भय-उन आरम्भादि कार्यों के करने के साधनों का स्वयं एकत्र करना दूसरों से करवाना व कोई कर रहे हैं उनकी प्रशंसा करना। आरम्भ-हिंसादि पाप कार्यों को करने में तल्लीन होना व दूसरों को उपदेश देकर तल्लीन करना व जो तल्लीन हो रहे हैं उनकी प्रशंसा करना। इन सब कार्यों के करने पर नीच सब प्रकार के नीच कर्मों का आस्रव

होता है ।

शुभाशुभौ च भावैर्वा सकषायौ सतिद्वेषौ ।
तीव्रमंदास्रवंय्यति नाऽन्यरास्रवस्यकोऽपिहेतु ।।२४३।।

जो शुभ अथवा अशुभ अपने भाव हैं। वे भाव ही जब कषाय सहित होते हैं उस समय रागद्वेष रूप होते हैं तीव्र व मंदता को लिए ज्ञानावर्णादि द्रव्य कर्मों के योग्य आस्रव नियम से ही होता है। अपने कषाय रूप जो परिणाम हैं वेही अशुभ कर्म रूप होते है जब शुभ भाव होते हैं तब शुभास्रव होता है जो शुभास्रव हैं वहीं पुण्यास्रव है।२४३

जिनपुजा मुनिदानं संयम शीलं सम्यक्त्वादि कार्येषु ।।
विघ्नं करोति मूढधी रास्रवकोऽन्तरायस्य ।।२४४।

यह प्राणी अज्ञानता वस होकर जिन पूजा विधान तथा रथ यात्रा महोत्सव तथा मुनियों को लिये दिये जाने वाले दान में विघ्न डालता है। तथा जिन्होंने भोग उपभोग आदि की वस्तुओं का त्याग कर दिया है।वशीलो का पालन कर रहे हैं। जिन्होंने अपने जीविका के योग्य द्रव्य किसी के पास जमा कर रख दी है। उस द्रव्य को नष्ट कर देना या दवा लेना। व मन्दिर प्रतिष्ठा व जीर्णोद्धार के लिये दान दिया है, उस द्रव्य को खाजाना इत्यादि धार्मिक कार्यो में विघ्न डालने पर पांच प्रकार के अन्तराय कर्म का आस्रव होता है। जिस समय कोई भगवान की पूजा करने व कराने के लिए उत्सुक हो रहा है उसको कहना कि आज तुम नहीं जा सकते हो वड़े भगत हो गये ? इस प्रकार भगवान की पूंजा में विघ्न डालना। यह कहना कि चलो अभी नहीं फिर कर लेना। जब यात्रा करने की सब सामग्री एकत्र कर ली तब उसके वस्त्राभूषणों को छिपा दिया व खर्चा के लिये जो द्रव्य एकत्र करली थी उसको अपहरण करलिया जिससे उसकी यात्रा रुक गई। जब मुनियों के चतुर्विध संघ को आहार औषध व ज्ञान दान व अभय दान करने के भाव हुए तब कहने लगा कि भाई इन महाराज के संघ में दान अभी देना ठीक नहीं है। वहां पर धर्म की प्रभावना हो रही है वहीं देना ठीक है। ऐसा कहकर रोक देना यह अंतराय कर्म का आस्रव है।

मिथ्यात्वाविति सन्ति कषाया योगा-पंच द्वादशः ।।
पंचविंशति पंचदश प्रत्ययाः केवली भणित्यैव ।।२४५।।

मिथ्यात्व के पांच भेद हैं। उनका कथन पूर्व में कर आये हैं, सशम, विपर्यय एकान्त विनय और अज्ञान ये पांच हैं। तथा पंचेन्द्रिय व मन संयम नहीं और पृथ्वी आदि पंच स्थावर काय तथा त्रसकाय सयम नहीं इस प्रकार असंयम के तथा अविरत के बारह भेद होते हैं। कषायें पच्चीस हैं। अनंतानुवन्धी क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानी, क्रोधमान माया, लोभ, तथा, प्रत्याख्यान, क्रोधमान, माया, लोभसं, ज्वलन, क्रोधमान, माया, लोभ, तथा हास्य रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, नपुंसक व पुरुष वेद, ये सब कषायें है। योग पंद्रह है मन योग के चार सत्यमनोयोग असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग। वचन योग के सत्यवचन योग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग, अनुभय वचनयोग, औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र योग आहारक, आहारक मिश्र, और कर्माण योग,

जानने। आस्रव के सत्तावन भेद केवली भगवान के शाशन में कहे गये हैं। वे निश्चय आस्रव के कारण हैं।

मिथ्यात्वं सासादान मिश्राऽसंपत देशाविरते विता।
द्वौपंच चतुर्दशैकादश विंशति सदाऽऽस्रवा भवन्ति ॥२४६॥
प्रमत्ताप्रमत्तो ऽपूर्वऽनिवृत्ति सूक्ष्योपशान्तेष्वास्रवा ॥
चर्तुविंशं द्वा विंशद्वौ षोड़श दश नवास्रवाश्च ॥२४७॥

प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में पाँच मिथ्यात्व, बारह अविरति, कषायें पच्चीस, चार मन, चारवचन, काययोगों में से औदारिक, औदारिकमिश्र वैक्रियक वैक्रियक मिश्रऔरकार्माण योग ये पांच योग मिलकर पचपन आस्रव होते हैं। ५+१२+२५+१३=५५। मिथ्यात्व गुण स्थान में आहारक आहारक मिश्र दो योग नहीं होते हैं। सासादन गुण स्थान में पांच मिथ्यात्व और आहारक आहारक मिश्र इन सात प्रकृतियों का आस्रव नहीं होता है पचास प्रकृतियों का ही आस्रव होता है। मिश्र गुण स्थान में चौदह प्रकृतियों का आस्रव नहीं होता है। ये हैं पांच मिथ्यात्व, औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण ये योग तथा अनंतानुवंधी क्रोध मान, माया लोभ, ये चार कषाये इनका आस्रव नहीं, आस्रव वारह अविरति इक्कीस कषायों का और दश योगों का होता है। असंयत नामक चौथे गुण स्थान में पांच मिथ्यात्व चार अनंतानुवंधी कषायें आहारक आहारक मिश्र को छोड़कर शेष रहे वे सव आस्रव होते है वे इस प्रकार हैं वारह अविरति २१ कषायों का व आहारक आहारक मिश्र को छोड़कर शेष तेरह योगों का आस्रव कुल ४६ का होता है। देशविरत गुण स्थान में वीश आस्रव नहीं होते है, पाँच मिथ्यात्व, अनंतानुवंधी और अप्रत्याख्यान उन दो चोकड़ी तथा एक असंयम त्रसवध नहीं। अविरति ११ प्रत्याख्यान संज्वलन ये आठ और नव नो कषायों का व मन के चार, वचन के चार काय का एक औदारिक इन सैतीस का आस्रव होता है। ये आस्रव सव देश संयत जीवों के होते ही रहा करते हैं।

प्रमत्त गुणस्थान में २४ आस्रव होते हैं, चार संज्वलन व नोकषायें इन तेरह का व औदारिक आहारक आहारक मिश्र, चार मन, चार वचन इन ग्यारह योगों का आस्रव होता है। यहाँ पर पांच मिथ्यात्व वारह अविरति, १२ वारह कषायों, का तथा औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, कार्माण योग इनका अभाव है। कुल तैंतीश का आस्रव नहीं। अप्रमत्त गुणस्थान में भी प्रमन्त के समान ही आस्रव कहे हैं इतना विशेष है कि यहाँ पर अप्रमत्त और अपूर्वकरण इन दो गुणस्थानों में आहारक, आहारक मिश्र, इनका आस्रव न होने के कारण कुल वाईस का ही आस्रव होता है। अनिव्रतकरण गुणस्थान में चार संज्वलन कषायें तथा तीन वेद तथा नोयोग चार मन के, चार वचन के, एक औदारिक, काय योग कुल १६ का आस्रव होता है। सूक्ष्म सांपराय में एक सूक्ष्मलोभ तथा चार मन के चार वचन के औदारिक काय योग कुल दस का आस्रव होता है। उपशांत मोह में केवल नोयोगों का ही आस्रव होता है। तथा क्षीणमोह में संयोग केवली के सात योगों का ही आस्रव होता है। औदारिक काययोग सत्य और अनुभय मनोयोग, सत्य और अनुभय वचन योग तथा औदारिक

मिश्र व कार्माण योग इन सात का ही आस्रव है। अयोग केवली गुण-स्थान में आस्रवों का अभाव है। इस प्रकार गुणस्थानों में यथा क्रम से आस्रवों का कथन किया है। अब आगे मार्गणाओं की अपेक्षा से आस्रवों का कथन करते हैं ॥ २४६ ॥ २४७ ॥

नरक त्रियंच

नरक तिरश्च देवनृगतिषु षट् चतु पंच द्वौ विहीन।
अष्टात्रिंशैकेन्द्रिय चत्वारिंश द्वीन्द्रियेषु ॥२४८॥
त्रितिरिन्द्रिये सप्त दशषोडशोनपंचाक्षुषु सर्वे।
त्रशकाये सर्वैकेन्द्रियेऽष्टात्रिंशाऽऽस्रवाःसन्ति ॥२४६॥
त्रिचत्वारिंशं योगेषु आहारकयुगले द्वादशास्रवाः।
स्त्री पुं नपुंसक त्रिषुचतुः द्वौ चतुर्हीना वेदे ॥२५०॥

नरक गति, त्रियंचगति, देव गति, मनुष्यगति, नरकगति मार्गणा में सामान्य से इक्यावन आस्रव होते हैं। औदारिक, औदारिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, स्त्रीवेद तथा पुरुषवेद इन छह का आस्रव होता नहीं शेष पाँच मिथ्यात्व कषायें २३ तेवीश योग, ग्यारह अविरत, बारह का आस्रव होता है। सम्यग्दृष्टि नारकी जीव के पांच मिथ्यात्व अनंतानुवन्धी चार कषायें (स्त्रीवेद पुरुषवेद) इनका तथा औदारिक औदारिक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र, इनका आस्रव नहीं होता है। त्रियंच गति में सामान्य से ५३ आस्रव होते हैं। वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, बिना सब पाँच मिथ्यात्व बारह अविरति, कषाय सत्र,योग ग्यारह का आस्रव होता है। देवगति में औदारिक, औदारि मिश्र, आहारक आहारक मिश्र कषाय नपुंसक वेद बिना शेष ५२ का आस्रव होता है। मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषायें २४ योग ग्यारह। मनुष्यगति में वैक्रियक वैक्रियक मिश्र बिना पचपन का आस्रव होता है।

विशेष—त्रियंचगतिगति में कहे गये मिथ्यात्व की अपेक्षा से हैं, मिथ्यात्व रहित जीवों के चवालीस आस्रव होते हैं। यहाँ पर पाँच मिथ्यात्व चार अनंतानुबंधी, चार कषायें, वैक्रियक वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र, इनका आस्रव नहीं होता है। देश संयत में ३६ का आस्रव होता है। इस त्रियंच गति में गुणस्थान पाँच हैं, मनुष्य गति में गुणस्थान की चर्चा के समान जानना। इति गति मार्गणा।

एकेन्द्रिय जीवों के ३८ प्रकृतियों का आस्रव नहीं होता है। पाँच मिथ्यात्व सात अविरति, तथा मन अविरति रसना घ्राण, चक्षु, कर्ण ये तो होती ही नहीं वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार मनोयोग, चार वचन योग, नहीं होते हैं १६। पांच मिथ्यात्व, एक स्पर्शन इन्द्रिय, और षट्काय संयम नहीं, कषायें स्त्री पुरुष वेदक बिना २३ होती हैं। औदारिक औदारिक मिश्र और कार्माण इन सब को जोड़ने पर कुल ३८ आस्रव होते हैं। ५+६+२३+३=३७+१=३८॥ पृथ्वी से लेकर वनस्पति तक होते हैं। दो इन्द्रियजीवों के पांच मिथ्यात्व आठअविरति, मन, प्राण, चक्षु, कर्ण, बिना शेष छहकायजीव संयम नहीं। कषायें स्त्री पुरुष वेद बिना शेष का आस्रव होता है। वैक्रियक वैक्रियक मिश्र

आहारक, आहारक मिश्र चार मन, तीन वचन, बिना शेष का आस्रव होता है। कुल ४६ का आस्रव होता है।

तीन इन्द्रिय जीवों के पांच मिथ्यात्व ६ अविरति पुरुष स्त्री वेद को छोड़कर २३ कषायें दो इन्द्रिय के समान चार योग इनका आस्रव होता है। ५+६+२३+४=४१ आस्रव होता है। चक्षु कर्ण और मन तो होता ही नहीं। चार इन्द्रिय जीवों के ४२ का आस्रव होता है। पांच मिथ्यात्व मन और कर्ण इन्द्रिय के बिना १० (का आस्रव) असंयम कषायें २३ स्त्री पुरुष वेद बिना योग पहले कहे प्रकारचार होते हैं। ५+१०+२३+४=४२ पंचेन्द्रिय जीवों के सब आस्रव होते हैं। क्योंकि त्रस कहने से दो इन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेन्द्रिय तक सब ग्रहण कर लिये जाते हैं। गतिमार्गणा तथा इन्द्रिय मार्गणा के अनुसार यहाँ पर भी जान लेना चाहिए। (स्थावर काय में एकेन्द्रिय के ३८ आस्रव) स्थावर काय में पहले कहे गये एकेन्द्रिय के समान ३८ आस्रव होते हैं इति। कायमार्गणा। कायमार्गणा—औदारिक काय योग में एक औदारिक काय को छोड़कर शेष योग नहीं, पाँच मिथ्यात्व, पंचविंशति कषायें और बारह अविरति ४२ तथा औदारिक मिश्र में पांच मिथ्यात्व, १२ अविरति, पच्चीस कषायें योग एक औदारिक मिश्र इसी प्रकार वैक्रियक काययोग में पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति २५ कषायें तथा एक वैक्रियक काययोग। वैक्रियक मिश्र में भी योगों में एक योग वैक्रियक मिश्र काययोग पहले के समान ही आस्रव होते हैं। तथा कार्माणयोग में भी अपने-अपने योग को रखकर पहले के समान ही ४३ का आस्रव होता है। आहारक काययोग में बारह आस्रव होते हैं। चार संज्वलन कषायें तथा स्त्री नपुंसक वेद बिना सात हास्यादिक योग एक आहारक उसी प्रकार आहारक मिश्र योग में जानना। इति योग मार्गणा। स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेद में ५३ का आस्रव होता है। पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति कषायें तेवीस नपुंशक और पुरुष वेद बिना योग १३, आहारक आहारक मिश्र बिना तेरह। ५+१२+२३+१३ =५३। नपुंसक वेद में मिथ्यात्व सब, अविरति सब कषायें स्त्री पुरुष वेद को छोड़कर सब आहारक आहारक मिश्र बिना योग तेरह कुल ५+१२+२३+१३ कुल ५३ आस्रव होते हैं। पुरुष वेद में पहले के समान स्त्री नपुंसक वेद के बिना सब कषाय पांच मिथ्यात्व अविरति सब कषायें २३ योग पंद्रह कुल आस्रव ५५ होते हैं इति वेदमार्गणा ॥२५०॥

कषाय मार्गणा

अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्यख्यान संज्वलनं।
कषाये चत्वारिंश पंचत्रिंश त्रिंशतं कविंशति ॥२५१॥
हास्यादि षट् कषाये मिथ्यात्वाऽविरति कषाययोगाः
पंचद्वादशैकविंशति पंचदश प्रत्ययपयाऽऽस्रवाश्च ॥२५२॥

अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया,लोभ, इन चार कषायों में पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति एक क्रोध, नवनो कषायें,तेरह योग,आहारकआहारकमिश्र बिना ४० का आस्रव होता है,तथा अनंतानुवंधी मान कषाय में पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति एक मान नव नो कषायें योग तेरह कुल ४० का आस्रव होता है इसी प्रकार अपने-अपने कषायें समझना चाहिए माया लोभ कषाय में समझना चाहिए।४०। अप्रत्याख्यान कषाय में बारह अविरति कषाय एक अप्रत्त्यान क्रोध व

नो कषायें तथा आहारक आहारक मिश्र विना १३=३५ का आस्रव होता है। इसी प्रकार मान माया, लोभ कषाय में समझना चाहिये, प्रत्यख्यान चौकडी में अविरति ग्यारह कषायें १० एक प्रत्याख्यान क्रोध नव नो कषायें तथा योग औदारिक मिश्र, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण योग विना दस योग ३१ का आस्रव होता है। इसी प्रकार मान, माया, लोभ के साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिये। संज्वलन कषायों में एक संज्वलन क्रोध नव नो कषाये १० योग चार मन, चार वचन, काय में एक औदारिक, आहारक, आहारक मिश्र, कुल २१ होते हैं। इसी प्रकार अन्य क्रोध के स्थान पर मान, माया, लोभ लगा लेना चाहिये। हास्यादि छह नोकषायों में ५२ का आस्रव है। पांच मिथ्यात्व बारह असंयम कषायें १६ तीन वेद एक हास्य तथा योग सब होते हैं। सामान्य से ४५ आस्रव कहते हैं। क्रोधादि चार कषायों में मिथ्यात्व ५ अविरति १२, अनंतानुबंधी चार, नव नो कषायें, पंद्रह योग इस प्रकार कुल आस्रव बाईस कषायों में सामान्य से कहे हैं यही क्रम मान माया लोभ के साथ कर लेना चाहिए। अनंतानुबंधी में आहारक, आहारक मिश्र का आस्रव नहीं अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन का भी आस्रव नहीं होता है। कषायें कुल एक एक में दस-दस होती हैं। अप्रत्ख्यान में पांच मिथ्यात्व तथा आहारक द्विक विना शेष तेरह स्व चतुष्टय में कोई एक। हास्यादिक नों अविरति कुल। प्रत्याख्यान में पांच मिथ्यात्व, एक त्रस वध को छोड़कर शेष असंयम ग्यारह कषायों में से स्व चौकड़ी में से कोई एक नव नो कषायें नो योग वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र आहारक आहारक मिश्र कार्माण और औदारिक मिश्र विना ९ योग होते हैं। इसी प्रकार भिन्न भिन्न करने पर विशेष और एक रूप में करके तब सामान्य कहते हैं। हास्य रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, इन छह नोकषायों में पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति, बीस कषायें अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन ये १६ तीन वेद एक स्व नो कषाय कुल २० कषाय योग सब होते हैं। इति काय मार्गणा। २५१। २५२॥

कुमतिश्रुते द्वेहीनं विभंगावधे पंचोन मतिश्रुते॥
अवधिज्ञाने नव-नव मनःपर्ये विंशति सप्त॥२५३॥

कुमति व कुश्रुत ज्ञान में पचपन आस्रव होते हैं— पाँच मिथ्यात्व, बारह असंयम कषायें २५ तथा योग, आहारक, आहारक मिश्र, विना शेष १३ का आस्रव होता है। विभंगावविज्ञान में औदारिक मिश्र, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण योग के विना ५२ का आस्रव होता है। वे इस प्रकार हैं, पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति कषायें २५ औदारिक काय योग वैक्रियक काय योग, चार मन के, चार वचन के, ये कुल दस योग मिलने पर ५२ आस्रव होते है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानों का कारण सम्यक्त्व है। पाँच मिथ्यात्व एकान्त विनय विपरीत संसय और अज्ञान तथा अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन नो का अभाव होने पर तथा मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति इन तीन के अभाव होने पर ही मतिज्ञान श्रुत ज्ञानों में तथा अवधि ज्ञान में ४२ आस्रव होते हैं। मनः पर्यय ज्ञान में पांच मिथ्यात्व बारह अविरति बारह कषाय तथा स्त्री और नपुंसक वेद औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और

कार्माण योग विना शेष वीस का आस्त्रव होता है। केवल ज्ञान में सत्य मनोयोग, अनुभय मनोयोग, सत्य बचन, अनुभय वचन, योग, औदारिक, काय योग औदारिक मिश्र, और कार्माण योग ये सात का आस्त्रव होता है। इति ज्ञान मार्गणा ॥ २५३ ॥

संयम मार्गणा

सामायिक युगलयोः परिहारविशुद्धौ सूक्ष्मलोभे च।
यथाख्याते चतुर्विंश विंशति दशैकादशयथाक्रमः ॥ २५४ ॥

सामायिक और छेदोपस्थापन इन दोनों संयमों में २४ आस्त्रव होते है। वे इस प्रकार हैं, संज्वलन चार, कषायें नव, नोकषायें, चार, मनोयोग, चार वचन योग तथा औदारिक काय योग तथा आहारक आहारक मिश्र काय योग। परिहार विशुद्धियाँ वीस का आस्त्रव है वह इस प्रकार है संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार तथा स्त्री वेद नपुंसक वेद के विना सात नोकषायें हैं। तथा सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, मनोयोग तथा चार वचन, योग, एक औदारिक योग कुल २० का आस्त्रव होता है। परन्तु सिद्धान्त सार ग्रन्थ में वाईस का आस्त्रव लिखा है वह इस प्रकार है। कषायें चार, नवनो कषायें तथा चार मन के चार वचन के एक एक औदारिक काय योग कुल २२ का आस्त्रव होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि तीनों वेद वाले जीवों को परिहार विशुद्धि संयम हो सकता है। सूक्ष्म सांपराय में मन वचन के आठ औदारिक काय योग एक सूक्ष्म लोभ कुल दस का आस्त्रव होता है। यथाख्यात चारित्र में मिथ्यात्व असंयम कषायों का उपशांत हो चुका है अथवा क्षय हो चुका है इसलिये यहाँ पर चार मनोयोग, चार वचन योग, एक औदारिक काय योग, एक औदारिक मिश्र तथा कार्माण योग इस प्रकार ग्यारह योगों का अस्त्रव होता है। यथाख्यात चारित्र के धारक केवली भगवान की अपेक्षा से समुद्घात कालमें औदारिक मिश्र और कार्माण योगों का आस्त्रव होता है ।२५४॥

देश संयते सप्तत्रिंशत्यसंयमे पंचपंचासत्र
सर्वे चक्ष्वचक्षुयुगलवधिदर्शने नवोनसप्त ॥२५५॥

देश संयत गुण स्थान में मन के चार वचन के चार एक औदारिक काय योग ९ प्रत्याख्यान संज्वलन नव नो कषायें १७ अविरति ११ असंयत गुणस्थानों में आहारक आहारक विना १३ योग और वारह अविरति २१ कषायें कुल मित्थात्व में आहारक आहारक मिश्र विना ५५ का आस्त्रव होता है। सासादन में ५२ का तथा मिश्र में।

चक्षु और अक्षुदर्शनों में सब आस्त्रव होते हैं। अवधिदर्शन में ४८ आस्त्रव होते हैं पांचमिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी चोकड़ी का आस्त्रव नहीं होता है शेष वारह अविरति २१ कषायें १५ योग। केवल दर्शन में सात का ही आस्त्रव है केवल दर्शन में केवल ज्ञान के समान ही जानना चाहिये। इति दर्शन मार्गणा।

लेश्या मार्गणा

कृष्णादित्रिलेश्यासु नद्वौ पीतापद्मशुक्लेषु सर्वे ॥
भव्ये सर्वेऽभव्ये आहारक युगलं विना शेषाः ॥२५६॥

कृष्ण लेश्या नील तथा कापोत लेश्या इन तीनों लेश्या वाले जीवों के पचपन

आस्रव होते हैं। वे इस प्रकार हैं;. मिथ्यात्व पांच, अविरति, सब कषायें, सब योग, आहारक आहारक काय मिश्र विना तेरह योग होते है। पीत पद्म और शुक्ल लेश्या वाले जीवों में लेश्याओं में सब ही आस्रव होते हैं। इ ति लेश्या मार्गणा (भव्य जीवों का) भव्य मार्गणा में सब आस्रव होते हैं अभव्य में पचपन का आस्रव होता है आहारक आहारक मिश्र विना ।५५।

सम्यक्त्व मार्गणा

मिथ्यात्वं सपसादन मिश्रे चोपशम क्षयोपशमेषु ।।
द्वौसप्तैव चतुर्दश द्वादश नव नव विना क्षायके ।।२५७।।

मिथ्यात्व में आहारक, आहारक मिश्र, योग, विना सर्व आस्रव होते हैं। स्यसादन में पांच मिथ्यात्व आहारक, आहारक मिश्र, योग, विना पचास का 'आस्रव होता है मिश्र सम्यक्त्व में ४३ का आस्रव होता है पांच मिथ्यात्व चार अनंतानुवंधी औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र, और कार्माण योग इन चौदह का आस्रव नहीं। उपशम सम्यक्त्व में वारह का आस्रव नहीं होता है। पाँच मिथ्यात्व चार अनंतानुवंधी औदारिक मिश्र आहारक पुगल विना शेष ४५ का आस्रव होता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व में पांच मिथ्यात्व चारकषायें अनतानुवंधी इन नो का आस्रव नहीं होता है। शेष प्रकृतियों का आस्रव होता है। क्षायक सम्यक्त्व में पांच मिथ्यात्व अनंतानुवंधी इनका क्षय होने से इनका आस्रव नहीं शेष का आस्रव होता हैं। इनका विशेष कथन कर आये हैं। इति सम्यक्त्व मार्गणा।

संज्ञिनिः सर्वाऽऽस्रवाश्चा ऽसंगिनि चोनमेकादश योगाश्च ।।
आहारके कार्माण विना ऽनाहारके चतुर्दश ।।२५८।।

सैनी में सब आस्रव होते हैं। असैनी अवस्था में पाँच मिथ्यात्व अविरति सब कषायें सब योग औदारिक औदारिक मिश्र और कार्माण, काय योग एक वचन योग, अनुभय शेष योग नहीं होते हैं। इस प्रकार ४६ का आस्रव होता है। इति संज्ञी मार्गणा। आहारक मार्गणायें आहारक में कार्माण योग विना ५६ आस्रव होते हैं। तथा अनाहारक अवस्थायें पाँच मिथ्यात्व वारह अविरति कषायें सब एक कार्माण योग तेतालीश का आस्रव होता है।

गुणयोग मार्गणासु जीवसमासेषु कथितं यथा क्रमं
आस्रवाभवन्ति सदा सर्व जीवानां चतुर्गतिष्वेव ।।१५९।।

चौदह मार्गणा स्थानों में व गुणस्थानों में जीव आस्रवों के भेद कहे गये हैं। ये आस्रव चारों गति वाले सभी जीवों के निरन्तर होते रहते हैं। ऐसा कोई भी समय नहीं आता कि संसारी जीव के आस्रव न होता हो ? आस्रव के दो भेद हैं। एक भवास्रव दूसरा द्रव्यास्रव, जो द्रव्यास्रव का कारण होता है उसको भावास्रव कहते हैं। भावास्रव भी दो प्रकार के होते हैं शुभ भावास्रव दूसरा अशुभ भावास्रव। अशुभ भावास्रव इस प्रकार हैं पांच मिथ्यात्व, वारह अविरति रूप है। अवस्तुओं में वस्तुत्व मानना हिंसादि दुष्कर्म करने में धर्म मानना तथा पर स्त्रियों के साथ रमण करना रासलीला खेलने में मगन रहना और कहना कि यह रासलीला तो भगवान श्री कृष्ण ने भी की थी इसके करने पर अवश्य ही स्वर्ग मिलता है। भगवान भी स्त्री के साथ रमन करते है जो शिव वन चुके हैं वे भी स्त्री साथ में रखते हैं। देवी व देवताओं के निमित्त व अपनी उन्नति की इच्छा करके पशु वध करना

व करवाना। करते हुए को भला मानना। विचारना कि ये भी पुण्य के कारण हैं। तथा आशारूप पिशाच के जाल में फंसे रहना, कि पुत्र मित्र आदि मिलने की आशा करना व अन्य प्राणियों को मारने विदारण करने व दुःख देकर अपने को सुखी बनाने की भावना होना ये सब अशुभ भावास्रव हैं। तथा मिथ्यात्व व कषाय युक्त संक्लिष्ट परिणामों का होना ही अशुभ भाव आस्रव का कारण हैं। देव पूजा करना, चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान देने में प्रवृत्ति का होना। सात तत्वों में यथार्थ रुचिका होना जीवों पर करुणा का होना, रागद्वेष का दूर करना, गुरुओं की सेवा सुश्रुषा करना, विनय करना, मद्य, मांस, मधु, पांच उदम्बर फलों का त्याग करने के भावों का होना। रात्रि भोजन व विना छाना पानी का त्याग करने के भाव होना, तथा हिंसादि पांच पापों का त्याग करना व सात व्यसनों का त्याग कर बारह अव्रतों का त्याग करने के भाव होना व पंच महाव्रतों व पांच समितियों का पालन करना व तीन गुप्तियों का पालन करना व पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छाओं का निरोध करना व छह आवश्यक क्रियायों का यथा कालमें पालन करना ये सव शुभभाव हैं। इन शुभ भावों से शुभ द्रव्य आश्रव होता है। व्रतादि में परिस्थित होना ये शुभभाव है वे शुभ द्रव्य आस्रव है। अव यहां एक भेद और प्रकार वह यह हैं कि एक ओर शुभ और दूसरी ओर अशुभ ये दोनों भाव एक साथ होते हैं वे पापानुवंधी पुण्य रूप द्रव्य आश्रव के कारणहैं। जिनमें अशुभ भाव का कारण असंभव भी नहीं, देखा जाता है। उसको पुण्यानुवंधी पुण्य आस्रव कहते है। यह आस्रव प्रायः कर सम्यग्दृष्टि जीवों के ही होता तथा देश संयमी व सकल संयमी निकट भव्य समीचन धर्म के धारक प्राणी को ही प्राप्त होता है। ये भी संयम सामायिक छेदोपस्थापना परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सांपराय, और यथा-ख्यात चारित्र विना पुण्यानुवन्धीपुण्य वालों के नहीं होते हैं। इन पांचों प्रकार के संयमों में भी पुण्यानुवंधी पुण्यास्रव होता है उसको स्थिति और अनुभाग वंध कम होते है। मिथ्यात्व अविरति कषायों सहित जीवों के जो आस्रव कोटाकोटी की स्थिति और अनुभाग को लेकर वंधता है यह पापानुवंधी पापास्रव है इसलिये तत्वार्थ सूत्र पापानुवंधी पाप के कारण भावास्रवों का कथन छठवें अध्याय में कहकर सातवे अध्याय में पुण्यानुवंधी पुण्यास्रवों का कथन उमा स्वामी महाराज ने किया है। साथ ही प्रमाद से होने वाले दोपों का कथन किया है उनमें सव से प्रथम में सम्यक्त्व के पांच अतिचारों को कहकर पांच अणुव्रतों के अतीचारों का कथन करते हुए सात शीलों के अतीचार कहे हैं।

इन अतीचारों का कहने का कारण यह है कि ये दोष पापास्रव के कारण है इस-लिये इनको अतिचार कह दिया है प्रथम में पांच व्रतों की पांच पाँच भावनाओंका कथन किया है। तत्पश्चात संसार शरीर भोगों से विरक्त भावों का होना कहा है। उसके पीछे इन व्रतों की विशुद्धि के लिये मैत्री भाव प्रमोदभाव कारुण्य भाव मध्यस्थ भाव और माध्यस्थ भावों का कथन किया है इसलिये ये सव भाव तीन शल्यों से रहित होंगे तव तो पुण्यानुवंधी पुण्य के कारण होंगे। जव शल्य सहित होंगे तव वे सम्यक्त्वादि गुणों से रहित होगे जिससे व्रती ऐसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होंगे (निसल्पो व्रती) चाहे वह गृहस्थ हो या अनागार हो वे दोनों निशल्य होंगे तभी उन व्रतनियमों का यथार्थ फल मोक्ष है अथवा सव प्रकार के दुःखों का क्षय होने पर मोक्षपद संसारी जीवों को प्राप्त होता है। इन शुभ भावों की जितनी वृद्धि होती जाती है। तव

विशुद्ध भावों की प्राप्ति कालान्तर में अवश्य ही प्राप्त हो जाती हैं। इन शुभ और शुद्ध भावों में यथा क्रम से साँपराय और ईर्यापथ आस्रव होता ही रहता हैं। शुभ भाव तो कषाय योग सहित होते हैं परन्तु शुद्धभाव कषाय रहित जीवों के ही होते हैं उनके जो आस्रव होता है वह ईर्या पथ आस्रव होता है जिसकी स्थिति अनुभाग नहीं होता है जैसे कोरे घड़े पर पडी हुई धूल आपोआप नीचे झर जाती हैं इसलिये इन सब द्रव्यास्रव और भवास्रव से रहित एक मात्र सिद्ध अवस्था है उसे प्राप्त करने का उद्योग (प्रयत्न) करना चाहिये क्योंकि पुण्य और पाप ये दोनों ही जन्म मरण रूप दुःख के ही कारण हैं। और जड़ पुद्गल मयी हैं। इनको प्राप्त होकर हर्ष विषाद मतकरो। यहाँ पर अपनी भक्ति की अपेक्षा से आस्रवों का कथन किया है।

सम्यक्त्वं व्रत समितिः गुप्तिः शीलानि निर्मल माचरन्ति।
देव तीर्थंकर नाममास्रवको भवति जिनोक्तः॥ २६०

सम्यक्त्व के ४४ चवालीश दोष रहित श्रद्धान का होना पांच महाव्रत या अणुव्रतों का निरतिचार पालन करना व पांच समितियों का निःप्रमाद होकर पालन करना तथा मन-गुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन का पालन करता है। तथा मनोदण्ड वचनदण्ड कायदण्ड इन का त्याग करता है। तथा पंच व्रतों की पच्चीस भावनाओं सहित पालन करता है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव देव गति के योग्य उच्च पदों का आस्रवक होता है। बाल तप करने वाला मिथ्यादृष्टि भी देव गति का आस्रवक होता है। अथवा देवगति और आयु का बंध करता है। परन्तु दर्शन विशुद्धिसहित जीव षोड़श कारण भावनाओं की बार-बार चितवन करता है। अपने आचरण में लाने वाला पुण्यात्मा भव्य जीव तीर्थंकर नाम कर्म और देव गति नाम कर्म व देव आयु का आस्रवक होता है। इन दोनों ही प्रकृतियायें पुण्यवान सुकृती जीवों को ही प्राप्ति होती है। जो सम्यक्त्व तथा व्रत समिति गुप्ति शील सोलह कारण, भावनायें ये सब पुण्य प्रकृतियां हैं इनसे ही कल्पवासी कल्पातीत देवों की आयु गति का आस्रव व तीर्थंकर नाम कर्म का आस्रव होता है संक्लिष्ट जो अपने परिणाम है वे परिणाम जब तीव्र संक्लेश भाव सहित होते हैं। तब तीव्रआस्रव होता है। तीव्रतर हों। तब तीव्रतर जब मध्यम संक्लिष्टता को लिए हुए होवें। तब मध्यम पापास्रव होता है। जब मन्द व जघन्य संक्लिष्टता को लिए हुए परिणाम होते हैं। तब पापास्रव जघन्य होता है। विशेष यह है कि मिथ्यात्व और आर्त रूप व रौद्र ध्यान रूप कषायों सहित परिणामों को संक्लिष्ट परिणाम कहते हैं। धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान सहित मिथ्यात्व और कषाय रहित जब परिणाम होते हैं, अथवा कषायों के क्षयोपशम होने पर जो देश संयम, सकल संयम, शील, समिति गुप्ति तथा आवश्यक क्रियाओं का पालन करता है तब पुण्यास्रव होता है। तथा दान देना मंदिर निर्माण कराना तीर्थ क्षेत्रों की वंदना करना, जिन बिंब प्रतिष्ठा करना क·ाना, व विद्यालय बनवाना, औषधालय बनवाना व बने हुए का संर-क्षण करना, व जीर्णोद्धार करना, चार प्रकार के मुनियों के संघ को अपनी शक्ति के अनुरूप आहार, औषधी, अभय ज्ञान दान देना तथा उनको संरक्षण करना उनको धर्म के आयतन मानना ये सब पुण्यास्रव के ही कारण हैं। इस प्रकार यथा काल व शक्ति के अनुसार आस्रवों के भेदों का कथन किया है। इति आस्रव तत्त्व।

आगे बंध तत्व कथन प्रथम में कर्मकांड के अनुसार करते हैं।

बंध के योग्य कुल १४६ प्रकृतियां हैं। जिनमें से चार वर्ण एक गंध चार रस सात स्पर्श इन १६ का बंध नहीं होता है। क्योंकि ये बोस हैं, इनमें से बंध चार का ही होता है शेष का एक साथ बंध नहीं होता है। नाम कर्म की पांच संहनन पांच, संस्थान इनका बंध एक साथ नहीं होता, क्योंकि छह संहनन और संस्थानों में से एक-एक कोई का बंध एक जीव के होगा तब अन्य का बंध नहीं होगा इन १० के बिना शेष ये दोनों प्रकार से मिलकर २६ हो जाती है इनका बंध नहीं है, शेष १२० रह जाती हैं, उनका बंध यथाकाल होता है। मिथ्यात्व गुण स्थान में आहारक-आहारक मिश्र तथा तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं होता है। शेष ११७ का बंध होता है। सासादन गुण स्थान में बंध १०१ प्रकृति का होता है। जब मिथ्यात्व को छोड़कर सासादन के सन्मुख होता है तब १६ प्रकृतियायें बंध से रहित होती हैं। जब सासादन को छोड़ने के सन्मुख होता है तब २५ बंध से रहित होती हैं। जब मिश्र को प्राप्त होता है, उसके ७४ का बंध होता है, असंयत गुण स्थान के अंत में १० का बंध नहीं होता है, तब ७७ का बंध होता है पांचवें में ६७ का बंध है, प्रमत्त गुणस्थान में ६३ का बध होता है अप्रमत्त में ५९ का बंध होता है, अपूर्वकरण गुण स्थान में ५८ अनिवृत्त करण में २२ का बंध होता है सूक्ष्म सांपराय गुण स्थान में १०, उपशांत मोह में १, क्षीण मोह गुण स्थान में एक व सयोग केवली के एक साता का बंध होता है चौदहवां गुण स्थान बंध रहित है।

मिथ्यात्वा विरतिश्चैव योगप्रमादसंयुक्तः।
यत्कषायनिबंधस्य पंचहेतुर्जिनेन्द्रोक्तः ।। २६१ ।।

मिथ्यात्व पांच प्रकार व बारह अविरति, पंद्रह योग और पंद्रह प्रमाद तथा २५ पच्चीस कषायें ये पांच बंध के कारण भगवान जिनेन्द्रदेव कहे हैं। मिथ्यात्व के एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व। बारह अविरति स्पर्शन इन्द्रिय, संयम नहीं, रसना इन्द्रिय संयम नहीं, घ्राण इन्द्रिय संयम नहीं, चक्षु इन्द्रिय संयम नहीं, श्रोत्र इन्द्रिय, संयम नहीं, मन संयम नहीं। पृथ्वी काय अविनाश रूप संयम नहीं, जल-कायक अविराधना रूप संयम नहीं, अग्नि कायक जीव अविराधना रूप संयम नहीं वायुकायक जाव अविराधना रूप संयम नहीं, वनस्पति कायक जीव अविराधना रूप संयम नहीं, तथा दो इन्द्रिय तीन, चार, पांच इन्द्रिय जीव अविराधना रूप संयम नहीं, इस प्रकार बारह अविरति हैं। योग पंद्रह मन के चार, वचन के चार, काय के सातयोग, प्रमाद के पंद्रह भेद हैं चार विकथा स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, व चोर कथा पांच इन्द्रिय तथा चार कषायें व निद्रा और प्रचला ये सब भेद प्रमाद के हैं। पच्चीस कषायें अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ सोलह तथा नवनो कषायें। कुल पच्चीस ।। आस्रवों के ये सत्तावन भेद कहे गए हैं।

संयुक्ततैश्च विभावैः आत्मनोऽज्ञानेना संयमेन।
योमिथ्याभावे बंधं करोत्यनिश्चितेकाले ।। २६२ ।।

यह अज्ञानी मोही प्राणी अपने मिथ्यात्व और अज्ञान भावों से युक्त होता नित्य ही मिथ्यात्व असंयम क्रोधादि कषाय व योगों से पर द्रव्य. जो पुद्गल की स्कंध द्रव्य कर्म

वर्गणाओं को अपनी तरफ खींच कर बांधा करता है जो असंयमादि व मिथ्यादर्शन कषायें है वे सब ही विभाव हैं, जो पूर्व में बांधी गई कर्म वर्गणायें उदयावली में आ आकर प्रति समय खिरती रहती हैं, उन विभाव भावों से होने वाले भावों से ही यह जीव पुनः नवीन नवीन कर्मों से बंध को प्राप्त होता है। ये मिथ्यात्व असंयम कषायें और योग ये सब ही विभाव भाव हैं क्योंकि ये जीव के निज स्वाभाविक भाव नहीं हैं, पर द्रव्य के सम्बन्ध से प्राप्त हुए हैं। इन के संयोग या सम्बन्ध के द्वारा ही कर्मों का आस्रव हुआ है। जो समय प्रबद्ध हैं वे ही द्रव्य कर्म वर्गणायें कर्म रूप होकर आत्म प्रदेशों में एकी-भाव को प्राप्त होती रहती हैं। अथवा आत्म प्रदेशों में एक मेक होकर बंध को प्राप्त होती हैं। २६२।

आगे बंध के भेदों को कहते हैं

वंधश्चतुर्विधैव प्रकृति स्थित्यनुभाग प्रदेशैव।
प्रकृति प्रदेशयोगैः अनुभाग स्थितोसकषायैः ॥२६३॥

वंध के चार भेद हैं प्रकृति, स्थिति, अनुभाव, और प्रदेश वंध के भेद से चार प्रकार का है। प्रकृति और प्रदेश वंध योगों से होता है तथा स्थिति और अनुभाग वंध मिथ्यात्व असंयम और कषायों से होता है। यह प्रकृति वंध स्वभाव से ही हुआ करता है, कि एक समय में मोही अज्ञानी वहिरात्मा रागद्वेष से युक्त प्रति समय में प्रकृति वंध को करता है। जो द्रव्य कर्म रूप पोद्गलिक द्रव्य कर्म वर्गणायें आकर्षित हुई हैं। वे कर्म रूप होकर परिणमन कर जाती हैं। और आत्म प्रदेशों में दूध पानी की तरह एकमेक होकर मिल जाती हैं यह ही वंध है। उस वंध की फल देने की शक्ति होती है उसको अनुभाग वंध कहते हैं। इस प्रकार वंध के चार भेदों को कहा है ॥२६३॥

प्रकृतिर्वन्धोऽष्टविधो ज्ञानदर्शनवेदनीयगतिश्च मोहः।
आयुनामगोत्राणि अंतराय प्रकृतिर्मूलंम् ॥२६४॥

प्रकृति वंध के मूल में आठ भेद हैं। वे इस प्रकार हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जो आत्मा के निजी गुणों का घात करें या आच्छादन करें वह आवर्ण करने वाला आवर्णक है। जो आत्मा के ज्ञान गुण को अवरण करता है, वह ज्ञानावरण कर्म है। जो आत्मा के दर्शन गुण को आवरण करे, वह दर्शनावरण कर्म है। जो आत्मा में दुःख सुख, सुख दुःख का अनुभव कराता है व आत्मा के अव्यावाधगुण को प्रकट नहीं होने देता है उसको वेदनीय कर्म कहते हैं। जो जीव को मूर्छित करे व आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करे वह दर्शन मोहनीय है। जो आत्मा के चरित्र गुण का घात करे वह चरित्र मोह है चरित्र मोह की अनंतानुवंधी क्रोधादि कषायों आत्मा के सम्यक्त्व गुण को स्थिर नहीं रहने देती हैं। अप्रत्याख्यान क्रोधादि चारों कषायें आत्मा के संयमा संयम भावों को नहीं होने देती हैं। प्रत्याख्यान की चारों आत्मा के सकल संयम गुण को प्रकट नहीं होने देती हैं। सज्वलन व नो कषायें आत्मा के यथाख्यान रूप स्वरूपाचरण चरित्र को प्रकट नहीं होने देती हैं। अथवा यथाख्यात रूप चारित्र का नाश करती हैं। आयु कर्म जीव एक गति व एक शरीर में रोक रखता है। तथा आत्मा के अवगाहन गुण का घात

करता है। अथवा देव शरीर, नारक शरीर, त्रियंच शरीर और मनुष्य शरीर में रोक रखता है। नाम कर्म अनेक प्रकार का होता है समूह रूप से ४२ भेद हैं विशेष रूप से ९३ भेद हैं। यह नाम कर्म जीव के अनेक प्रकार के शरीर की रचना करता है। जिस प्रकार कुम्हार अनेक प्रकार के छोटे बड़े अनेक आकार के वर्तन बनाया करता है। वही कार्य नाम कर्म का है। और जो आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण का घात करता है। आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण को प्रकट नहीं होने देता है। गोत्र कर्म जीवों को ऊँच व नीच दो विभागों में बांटा करता है, जिस प्रकार चित्रकार चित्र वनाते समय यह चित्र राजा का है, यह दरिद्री का है, इस प्रकार ऊँच (नीच) कुल व जाति का है। तथा आत्मा के अगुरुलघुत्व गुण का घात करता है। अन्तराय कर्म अनेक प्रकार के कार्यों में विघ्न डालता है। जिस प्रकार राजा विचार करता है कि संयमी के लिये दान देना है तव भन्डारी रोक देता है. कि अभी नहीं एक माह व एक वर्ष बाद देना, क्योंकि वे व्रती उस समय में आवेंगे इत्यादि कहकर रोक लगा देता है। वह अंतराय कर्म पाँच प्रकार का होता है दानन्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय। जो दान देते समय में दान नहीं देने देता है वह दानान्तराय कर्म है। जो लाभ होने वाला था परन्तु लाभ नहीं हो सका उसमें विघ्न उत्पन्न हो गया। जब सुन्दर मिष्ठान भोज्य वस्तुयें खाने को प्राप्त थी कि दूसरे ने सामने से भोजन को उठा लिया या मांखी आ पड़ी तव भोज्य पदार्थ सब वहीं पड़ा रह गया यह भोगान्तराय है। उपभोगान्तराय—यह उपभोगान्तराय कर्म उपयोग की वस्तुओं का उपभोग नहीं करने देता है जिस प्रकार किसी की शादी हो गयी तव उसके शरीर में रोग उत्पन्न हो गया और स्त्री के साथ उपभोग न कर सका। वीर्यान्तराय—जो शारीरिक शक्ति को प्रकट नहीं होने देता है तथा आत्मिकशक्ति को प्रकट नहीं होने देता है उसको वीर्यान्तराय कर्म कहते हैं। इन आठ कर्मों के वंध से वंधे हुए संसारी जीव संसार में दुःख सहा करते हैं। इन आठों की काल मर्यादा का वंध होना ही स्थिति वंध है। जैसे ज्ञानावरण वेदनीय कर्म की स्थिति ३० कोटा कोटी दर्शनावर्ण अन्तराय कर्म की स्थिति है। मोहनीय कर्म की स्थिति ७० कोटा कोटी. सागर, की है। नाम और गोत्र कर्म की २० कोटा कोटी सागर की स्थिति है आयुकर्म की स्थिति ३३ सागर की है। इन कर्मों की जघन्य स्थिति वेदनीय कर्म की १२ मुहूर्त की है और गोत्र की ८ मुहूर्त की शेष कर्मो की स्थिति अंतरमुहूर्त की है। जितनी काल मर्यादा को लेकर वंध हुआ है जितने काल तक उन कर्मों के फल देने की शक्ति प्रकट नहीं होती है तव तक के काल को अवाधा काल कहते हैं। जव ये कर्म उदय में आ आकर फल देने लग जाय तव उसको अनुभाग वंध कहते हैं। जिन द्रव्य कर्म वर्गणाओं को जीव समय प्रवद्ध कर (वांधता है) आस्रवित करता है और वे वर्गणायें कर्म रूप होकर आत्म प्रदेशों से सम्वन्धित हो जाती हैं यह प्रदेश वंध ॥२६४॥

पंच नव द्वावाष्टाविंशति चर्तुर्द्विचत्वारिंश द्वौ।
पंचसंग्रह्रं खलु अष्टाचत्वारिंशाधिकशतं ॥२६५॥

इन आठों कर्मों के क्रमशः पांच ज्ञानावरण—मतिज्ञानावर्ण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण, केवल ज्ञानावरण दर्शनावरण के नौ भेद हैं, निद्रा, निद्रा, निद्रा, प्रचला, प्रचला, प्रचलास्त्यानगृद्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण अवधि

दर्शनावरण और केवल दर्शनावरण, वेदनीय कर्म के दो भेद हैं, एक साता वेदनीय, दूसरा असाता वेदनीय। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं एक दर्शन मोह, दूसरा चरित्र मोह दर्शन मोह की मिथ्यात्व मिश्र तथा सम्यक्त्व प्रकृति ये तीन कषाय, वेदनीय—अनंतानुबंधी अप्रत्यख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इस प्रकार चारों के १६ तथा नो नव कषायें, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद इस प्रकार २८ भेद हैं। आयु कर्म की चार हैं, देव आयु, नरक आयु, मनुष्य आयु और त्रियंच आयु। गोत्र कर्म की दो हैं उच्च गोत्र, नीच गोत्र। नाम कर्म की ९३ प्रकृतियां हैं, गति चार देव, नरक, त्रियंच, मनुष्य गति, जाति पाँच एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय पांच इन्द्रिय जाति। पाँच शरीर औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। तीन अंगोपांग, औदारिक, वैक्रियक आहारकअंगोपांग। एक निर्माणकर्म पाँचबंधन, औदारिक, वैक्रियक-आहारक तैजस कार्माण बधन। औदारिक संघात, वैक्रियक संघात, आहारक, संघात तैजस संघात, कार्माण संघात। छह संस्थान, समचतुरसंख्यान स्वस्तिक संस्थान न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, वामन संस्थान, कुब्जक संस्थान तथा हुण्डक संस्थान। संहनन छह हैं, वृज्र वृषभ नाराच, वज्र नाराच, नाराच, अर्ध नाराच, कीलित, संसृपाटिका संहनन। पाँच वर्ण, नीला, काला, लाल, पीत, और सफेद, दो गंध सुगंध, दुर्गन्ध। रस पांच—खट्टा, मीठा, खारा, कषायला, कडुवा, आठ प्रकार का स्पर्श, शीत, उष्ण, कोमल, कठोर हल्का, भारी, स्निग्ध, रूक्ष। चार आनुपूर्वी—देवगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, त्रियंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी। एक अगुरुलघु एक उपघात, दूसरी परघात, एक आतप, एक उद्योत दो विहायोगति शुभ और अशुभ। एक उच्छवास, एक त्रस, एक बादर, एक सूक्ष्म, एक पर्याप्त, एक अपर्याप्त, एक प्रत्येक, एक साधारण, एक स्थिर, एकअस्थिर, शुभ, अशुभ, दो सुभगदुर्भग, सुरस्वर, दुस्वर, दो आदेय, अनादेय, दो, यशकीर्ति अपयश कीर्ति दो तीर्थंकर नाम कर्म कुल ९३ हैं। गोत्र कर्म के दो नीच गोत्र, उच्च गोत्र। अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं दान, लाभ, भोग उपभोग और वीर्यान्तराय के भेद से १४८ भेद होते हैं।२६५।

कर्म निमत्तंभावो कर्म निमित्त कर्म विपाककाले।
भवति जीवस्य भाव वंधति दुष्टाष्टकर्माणाम्॥२६६॥

कर्मों के आने में जीव के शुभाशुभ भाव ही हैं उन भावों का ही जीवकर्ता होता है उन भावों से ही द्रव्य कर्म वर्गणायें आती हैं, तथा जिन कर्मों की जैसी उदयावली में कर्म आ आकर फल देकर खिरते हैं, तत्काल में जीव के भाव भी कर्मों के अनुसार ही हो जाते हैं इसलिए कर्मों का कारण कर्म भी है। कर्मों के कारण को पाकर जीव के शुभाशुभ भाव होते हैं। उन भावों से ही कर्म वर्गणायें आती हैं। और उनका बटवारा आठ कर्मों में हो जाता हैं व उन दुष्टाष्ट कर्मों का बंध जीव स्वयं करता है। जब जीव के भाव अशुभ रूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान व संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ में प्रवृत्त होते हैं व क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप परिणाम होते हैं, व हिंसा, असत्य, चौर्य, व अब्रह्म व परिग्रह में आशक्ति का होना पंचेन्द्रिय और मन व छह कायक जीवों की विराधना रूप संक्लिष्ट परिणामों से युक्त होता है। तब अशुभ द्रव्य कर्म आकर आत्मा के प्रदेशों के साथ एकमेक हो जाते हैं। वह अशुभ बंध

है, तथा जब दया क्षमा सहित और (आरम्भ परिग्रह) आरम्भ रहित व परिग्रह से मर्छा रहित तथा धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान रूप व अणुव्रत महाव्रत समिति गुप्तिइ त्यादि की भावना का होना शुभ भाव हैं, तथा क्रोधादि कषाय रहित असंयम रहित सम्यक्त्व पूर्वक संयम का धारण करना दान देना पूजा करना ये भाव तथा क्रोधादिकषाय रहित असंयम रहित सम्यक्त्व पूर्वक संयम का धारण करना ये भाव शुभ हैं। इनसे होने वालाबंध शुभ बंध हैं। इस प्रकार बंध के व आस्रव व पुण्य और पाप रूप बंध के कारण अपने शुभाशुभ भाव ही हैं। शुभभाव सम्यक्त्व पूर्वक और अशुभ भाव मिथ्यात्व पूर्वक ही होते हैं। ये ही दोनों पुण्य और पाप हैं ॥२६६॥

यत्कर्मबंधयोग्यं विभागं सर्वाधिक वेदनीयस्य।
तद्धीनं मोहस्य हीनंधीर्दर्शनान्तराये ॥२६७॥
तद्धीनं नामगोत्रयोरायुवस्य स्तोकोऽत्यम्।
प्राप्त विषाककाले वेदकोऽनुभवति कर्मफलम् ॥२६८॥

जो समय प्रवद्ध का आस्रव हुआ है उसका आठों कर्मों में हिस्सा अथवा वटवारा हो जाता है। प्रथम तो सब कर्मों का वटवारा समान रूप से होता है। शेष जो बहुभाग रह जाता है उसमें से वेदनीय कर्म को बहुभाग देकर शेष रह जाता है उसमें से भी बहुभाग मोहनीय का होता है। उसमें से जो शेष रह जाता है, वह ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय कर्म को दिया जब कुछ शेष रह गया उसमें से भी बहुभाग नाम और गोत्र को दे दिया जब उसमें से अन्य शेष रहा, उसको आयु कर्म को दिया इस प्रकार आठों कर्मों के विभाग होते हैं।

वेदनीय कर्म में अधिक बहु भाग देने का कारण यह है कि वेदनीय कर्म शुभ साता वेदनीय अशुभ असाता वेदनीय रूप होकर वेदन करता है, तब वे वेदनीय कर्म वर्गणायें खिर जाती हैं। वेदनीय, कर्म की वर्गणायें प्रति समय असंख्यात असंख्यात खिरती रहती हैं।

उससे कम मोहनीय कर्म का भाग कहा इसका कारण यह है, कि मोहनीय कर्म की स्थिती सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर की है। इस कर्म की वर्गणायें बहुत काल तक खिरा करती हैं। परन्तु वेदनीय की अपेक्षा मोहनीय कर्म की वर्गणायें असंख्यात भाग हीन खिरती हैं। ज्ञानवरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों कर्मों की स्थिति तीस कोटा कोटी सागर की है इसलिए मोहनीय से उनको बहुभाग कम दिया उसमें से तीनों का समभाग वटवारा किया अब शेष बहुभाग रहा उसमें से भी बहुभाग नाम और गोत्र को बराबर वटवारा करने के पीछे, जो कुछ शेष रह गया वह आयु कर्म को दिया। अथवा सबसे थोड़ा हिस्सा आयु कर्म का रह जाता है। इसका कारण यह है कि आयु कर्म की स्थिति सब से स्तोक है।

जो समय प्रवद्ध द्रव्य कर्म वर्गणायें अथवा वर्गणाओं के समूह स्पर्धक जीवन ने अपने भावों के द्वारा ग्रहण किए हैं। उनका आठों कर्मों में वटवारा होता है। प्रथम सब कर्मों का समान भाग में वटवारा किया, तत्पश्चात जो शेष द्रव्य बची उस द्रव्य में से बहुत सा हिस्सा वेदनीय कर्म को दिया। शेष रहा उसमें से जिनकी स्थिति अधिक उनको अधिक द्रव्य दिया, जिनकी कम है, उनको कम दिया जिनकी समान है उनको समान दिया। जब सब का हिस्सा दे दिया गया अब शेष रहा वह सब द्रव्य आयु कर्म को दिया, इस प्रकार

कर्मों में वर्गणाओं का बटवारा यथा क्रम से हुआ करता है। इन कर्मों का जब विपाक समय आ जाता है। तब जीव ही फल भोगता है। इतना विशेष है कि आयुकर्म का बंध सात कर्मों की तरह निरंतर नहीं हुआ करता है क्योंकि मनुष्यों व त्रयञ्चों का आयुकर्म का बंध भुक्तायु के विभाग में ही पड़ता है जब मनुष्य व त्रियंच की आयु का दो भाग व्यतीत हो जावें तब आयु का बंध होता है ऐसे बंध का काल जीवन में अधिक से अधिक आठ वार आता है यदि उसमें उत्तर आयु का बंध नहीं हो तो मरणान्तकाल में होता है। देव और नारकीयों की भुक्तायु का जब छह महीना शेष रह जाते हैं तब उत्तर आयु का बंध होता है।२६७।२६८।

वंध को वंध युक्तः दीर्घकालात् कृत्कर्मानुसारैः
रसयित्वाद् विपाकं च वंधतिं वहुवोधोभावेन ॥२६९॥

(वंध सहित यह) अनंत काल से यह जीव कर्मों का वंधक होकर कर्मों को बांधता चला आ रहा है। पूर्वोपार्जित कर्म फल दे देकर खिरते जाते हैं। जीव कर्मों के फल को भोगता हुआ भी नवीन नवीन कर्मों का वंध करता रहता है। उदयावली के अनुसार ही जीव के भाव हो जाते हैं उन भावों से ही कर्मास्रव व वंध होता रहता है। वे सब भाव शुभ तथा अशुभ ही अपने वंध के कारण होते हैं ॥२६९॥

वंधति नारकस्यायु स्तीव्र संक्लिष्टो मिथ्यात्वेन सह ॥
देवः संक्लिष्टैर्वात्रिर्थश्च एकेन्द्रियायुश्च ॥२७०॥
नारकस्त्रियश्चनरायुश्देवनारक स्व स्व वंधोया ॥
त्रिश्चाश्च मनुष्याः चतुरायुश्च नित्यं वंधन्ति ॥२७१॥

तीव्र संक्लिष्ट परिणाम वाला मिथ्यादृष्टि जीव ही नारक आयु का वंध करता है। तथा मिथ्यादृष्टि संक्लिष्ट परिणाम वाला ही एकेन्द्रिय की आयु का वंध करता है। अथवा त्रियंच गति का वन्ध करता है। नारकी जीव त्रियंच मनुष्य आयु का वंध करता है परन्तु देव आयु व नरकायु का वंध नहीं करता है, नारकी नरक आयु व देव आयु का वंध नहीं करता है। त्रियंच मनुष्य चारों ही आयु का वंध करते हैं। यह वंध मिथ्या दृष्टि संक्लिष्ट परिणाम वालों की अपेक्षा कर सामान्य से कहा है। २७० । २७१ ॥

आगमन द्वारेण यत सरम्यच्छति सरोवरे च नित्यंम् ॥
संग्रहनीरमेव च वंध भवति जीवानां यत् ॥ २७२ ॥
सप्रसन्न चिन्त्तेयत् कोऽपि करोन्युपसंहारं वृक्षम्
स्निग्धलिप्त गात्रेन रजसा लिपतितच्चकाले ॥ २७३ ॥
संमोहे प्रीत्यायत् वहुविधः करोति स्वाभावान् नित्यम्
वंधंति कर्म रजसा यत्शुभाशुभैर्भावैश्च ॥२७४॥

जिस प्रकार तालाव में पानी जिन मोरियों में होकर आता है और तालाव में

पानी आ-आकर एकत्र हो जाता है अथवा भर जाता है। उसी प्रकार जीव के द्वारा किये गये मिथ्यात्व व क्रोध, मान, माया, लोभ व पंचेन्द्रिय भोगों में अत्यन्त गृद्धसा तथा रागद्वेष मात्सर्य पर निन्दा और असंयमादि सब भाव हैं वही कर्मों के आस्रव के दरवाजे हैं। जिनमें होकर कर्मों का आस्रव होता है, और आत्मप्रदेश रूपी तालाब में भर जाते हैं यही बन्ध है। इन भावों से संसारी जीव हमेशा ही आस्रव व बन्ध कर्मों को किया करता है।

जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने शरीर पर तेल चुपड़कर जंगल में जाता है, वहाँ हरे व सूखे अनेक वृक्षों को काटता है जिससे वृक्ष में से धूल झरती है और उसके शरीर पर गिरकर चिपक जाती है। उस काल में ही उसके बन्ध कहा जाता है। तब यह संसारी प्राणी रागयुक्त होता है तब अनेक प्रकार के अपने भावों को करता है, उन भावों के द्वारा आई हुई कर्म रज आत्म प्रदेशों में मिलकर तदरूप हो जाती है। अथवा आत्म प्रदेशों में लिपट जाती है। जब जीव अपने पर निमित्त से होने वाले शुभ या अशुभ अनेक प्रकार के भाव करता है, किये हुए भावों के द्वारा जो आस्रव हुआ यह भाव बन्ध है। और आत्म प्रदेशों के मिलने रूप सन्मुख हैं यह द्रव्य बंध है। जो वर्गणायें कर्म रूप होकर एकमेक हो गई। अथवा आठ कर्म रूप हो गई है, यह द्रव्य बंध है। वह चार प्रकार का है प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध। ज्ञानावरणादि रूप में परिणमित होती है यह द्रव्य बन्ध अनेक प्रकार का है।

क्षिप्त्वाबंधं चतुर्धाः शिवपुरमिति वासश्चयत्संग्रहीतम्।
सिद्धानंताश्चलोकाग्रयनुपम गुणाः संयताकंप भावे॥
अन्तातीताश्च कृत्कृत्यमविचलमकर्माष्टधर्मंसयुक्ताः।
जानन् पश्यन्समस्तं स्वतनुरिवमहात्मा निरंजनमस्तान्॥२७५॥

अनंतकाल से जीव और कर्मों का संबंध चला आ रहा था। जीव कर्मों का संचय करता ही रहता था। उन कर्मों के फल को भोगता और नये-नये कर्मों का संचय कर पुनः बांध लेता था परन्तु संचय किये हुए द्रव्य कर्मों को जब नाश कर दिया व चार प्रकार के बंधन को नष्ट कर दिया, तब लोक के अग्रभाग में जा विराजमान हुआ। अथवा शिव पुर में वास करने लगा। अविचल है, निरंजन है, अनुपम अनंत गुणों का धारक है। अकम्प है तथा अन्तातीत है, जिनके काल का अंत नहीं, कि कितने काल तक निवास करेगा। वे शिवपुरी में निवास करते अपने अनंत गुणों का अनुभव करते रहते हैं। तथा ज्ञानावरणादि आठ द्रव्य व रागद्वेषादि भाव कर्म औदारिकादि नो कर्म इनसे रहित हैं। तथा सम्यक्त्वादि आठ गुणों से सहित अपने पूर्व शरीर की अवगाहना से युक्त तथा आकार वाले हैं वे सिद्ध भगवान सम्पूर्ण पदार्थो व उनकी पर्यायों को एक समय में ही देखते हैं और जानते हैं, वे पर्यायें अनंत अनंत होती हैं उन महात्माओं को मैं ग्रन्थकार नमस्कार करता हूं।

जिन महात्माओं ने पूर्वोपार्जित अनेक प्रकार के रस, वर्ण गंध स्पर्शन व शक्ति के धारक ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्मो को अपने साहस और धैर्यता व चरित्र तप व ध्यान रूपी तलवार से नष्ट कर दिया। उसी समय तीनों लोक व अलोकाकाश में जितने द्रव्यों और

उन सब द्रव्यों की होने वाली व वर्तमान व बीती हुई अनन्त पर्यायें, भविष्य में होने वाली अनंत पर्यायें जिनके ज्ञान में जाने जानी लगी व दर्शन में देखी जाने लगी इसलिए अनंत सिद्ध भगवान ज्ञाता द्रष्टा हैं। कर्म रूपी अंजन के क्षय होने के कारण वे सिद्ध भगवान निरंजन हैं। ये सिद्ध भगवान अन्तिम शरीर के आकार से युक्त अवगाहना को लिए हुए शिवपुरी में विराजमान हैं। उर्ध्व स्वभाव होने के कारण ही वे भगवान लोक के अन्तिम भाग में विराजमान हो गये हैं। क्योंकि आगे धर्मादि द्रव्यों का अभाव है। उन सिद्ध भगवान के जो गुण हैं वे उपमा से रहित हैं। उनको उपमा के योग्य संसार में कोई वस्तु ही नहीं है कि जिसकी उपमा दी जा सके। वे अनुपम गुण अनंत और स्वाभाविक हैं व अपने स्वभाव में ही प्रकट हुए हैं। जिन गुणों को कर्मों ने अच्छादन कर लिया था जब वे कर्म क्षय हो गये तब वे सब गुण प्रकट स्वभाव में ही हुए हैं। वे अकम्प हैं अचल हैं, कल्प काल की मारुत चलने पर भी वे चलायमान नहीं होते हैं। और वे संसार में पुनः जन्म मरण या पोषण या विध्वंसन करने को नहीं आते हैं। अनेक मतावलम्बी यह कहते हैं कि जब देवताओं पर संकट आता है तब भगवान अवतार लेते हैं और दैत्यों का नाश कर पुनः मोक्ष चले जाते हैं। इस मान्यता को यहां पर विचार कर के कहा गया है कि सिद्ध भगवान अचल हैं। वे सिद्ध भगवान अन्तातीत गुणों के धारक हैं, जिन के गुणों का अन्त नहीं होने से वे अन्तातीत हैं अथवा लोकाग्र में ही अनंतकाल तक निवास करेंगे वे संसार में पुनः नहीं आवेंगे। कोई कहता है कि विशेष गुणों का क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है यह भी बात उन सिद्धों में नहीं बनती है। क्योंकि वे तो ज्ञाता दृष्टा हैं वे अपने केवल दर्शन से देखते हैं केवल ज्ञान से जानते हैं। ऐसा संसार अवस्था में कौन मूर्ख होगा कि अपने आत्मिक विशेष गुणों का नाश कर मोक्ष की याचना करेगा? अपने गुणों को नाश करने को गृहवास छोड़कर जंगल में एकान्त में वास और संयम तपस्या को करेगा? जब जीव के गुणों के घातक व उपघातक द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि भाव कर्म रागद्वेष ईर्षा मत्सर व औदारिकादि शरीरों का अत्यन्त क्षय हो जाता है कि जब जीव की अन्तिम अवस्था हो जाती है। उसके पीछे कोई अवस्था नहीं रह जाती है (तब जीव को मोक्ष) उसका ही नाम मोक्ष है। इन सब गुणों से युक्त जो शिवपुर व लोकाग्रवासी सिद्ध हैं वे सब प्रकार के बंधन से रहित हैं उनको हम बार-बार मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं।

यद्भावेनाऽऽयाति कर्माणि तद्भावस्य निरोधं॥
संवर याति सुदृढः भावकर्म द्रव्यस्य रोधम्॥२७६॥

जिस अपने भाव के द्वारा भाव कर्मों का आस्रव होता था तथा द्रव्य कर्मों का आस्रव होता था उन भावों का निरोध करने पर भाव कर्म और द्रव्य कर्म इन दोनों का अवश्य ही निरोध हो जाता है और सम्वर होता है। जब कर्मों का आना रुक जाता है उसी समय ये द्रव्य कर्मों का आना भी बंद हो जाता है। क्योंकि द्रव्य कर्म भाव कर्म के आश्रित हैं। परन्तु भाव कर्म द्रव्य कर्म के आधीन नहीं वे जीव के शुभाशुभ परिणामों के ही आधीन हैं। जब जैसे जीव के शुभभाव होवेंगे तो शुभास्रभ होगा और अशुभभाव होंगे। तब अशुभ द्रव्य कर्म आवेंगे जब ये शुभाशुभ भाव नहीं होंगे तब भाव कर्म व द्रव्य कर्म दोनों ही रुक जायेंगे।

और संवर हो जायगा। भाव भी दो प्रकार के होते हैं, एक शुभ भाव एक अशुभ भाव। राग द्वेष कषाय रूप परिणामों का होना तथा दुश्रुति अपध्यान हिंसादान प्रमाद चर्या अनर्थ दण्ड समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ तथा अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार, अनाचार, रूप हैं मिथ्यात्व कषाय युक्त संक्लिष्ट परिणाम हैं, व हिंसानंदी मृषानंदी चौर्यानंदी, परिग्रहानंदी ये चार रौद्रध्यान व इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वेदना, अनुभवनिदान, वन्ध ये कुध्यान है, व्यसन सात, सात भय असंयम परिणाम ये सब अशुभ भाव हैं (इन अशुभ भावों को) कृष्ण, नील, कापोत, लेश्यायें तथा मनोदण्ड, वचन दण्ड, काय दण्ड ये सब अशुभ भाव हैं पंचेन्द्रिय के विषयों में अत्यन्त मृदुताका होना तथा षट् काय जीवों की विराधना के भावों का होना सव अशुभ भाव हैं इन सव का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति होने पर अशुभ भाव व द्रव्य आस्रव का संवर हो जाता है। तथा वन्ध का भी संवर हो जाता है। द्रव्य संवर और भाव संवर दोनों एक साथ ही हुआ करते हैं। क्योंकि द्रव्य कर्मों का साधन तो भाव कर्म है, क्योंकि साधन और साध्य का तादात्मिक संवंध है, क्योंकि विना साधन के साध्य की सिद्धि नहीं होती है जैसे अग्नि का साधन धूम है धुआं के होने पर अग्नि जानी जाती है उसी प्रकार भाव कर्म द्रव्य कर्म का साधन है।२७६।

यदशुभ भावोद्भूतं तन्निरुद्धं शुभभावेषु प्रवृत्तिः॥
व्रत समितिगुप्तिः सम्यक्त्वेशीलस्वभावैः। २७७॥

जिन कारणों से अपने अशुभ भाव होते हैं, उन कारणों का त्याग करना सोही संवर है। जो अपने आत्मा में अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों का रोकथाम करना यह सम्वर है। अथवा अशुभ भाव जो आस्रव और वंधतत्व के प्रकरण में कहे गये भावों का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति का होना सो अशुभ भाव संवर है। अहिंसा से हिंसा की रोक लगाना व संयम से असंयम, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहरूप भावना व इच्छाओं का रोकना संवर है। पांचसमितियों से पापोपदेश रूप पांच अनर्थदण्डों का रोकना व मनोदण्ड, वचनदण्ड कायदण्डों का मनगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति से निरोध करना सो त्रिदण्ड संवर है। हिंसा का अहिंसा से व असत्य का सत्यव्रत से, चौर्य का अचौर्य व्रत से, अब्रह्मचर्य, का ब्रह्मचर्य से व परिग्रह का सन्तोष से व भोगोपभोग परिमाण कर रोकने पर संवर होता है। ईर्या समिति से प्रमाद का निरोध करना भाषा समिति से पापोपदेश व दुश्रुती का निरोध करना संवर है। तथा हिंसादान का संवर तथा सप्त शीलों से सात व्यसनों का (सम्वर) निरोध करना संवर है। सम्यक्त्व के निशांकित अंग से सप्त भयों का निरोध, सम्यक्त्व से मिथ्यात्व का वहिष्कार कर देने पर संवर होता है। सव प्रकार के आस्रवों का अपने शील स्वभाव से सम्वर करना चाहिए। क्योंकि शील स्वभाव से सव प्रकार के आस्रवों का सम्वर होता है। शील आत्मा का निश्चय सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र रूप है व शक्ति है यह शील ही द्रव्यास्रव और भावास्रव का निरोध स्वभाव रूप आत्मा ही है वही निजी आयुध है॥२७७॥

क्रोधादि कषायाणां निरोधोत्तयक्षमादि दश धर्मः।
असंयमस्य संयमेन मिथ्यात्वं च सम्यक्त्वेन॥ २७८॥

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य इन दस धर्मों के द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों का निरोध करने पर सम्वर होता है। असंयम भाव को संयम भाव से निरोध करने पर संयम भाव होता है। विशेष यह है अशुभ क्रियाओं व भावों का प्रतिपक्षी शुभ भाव व शुभ क्रियायें हैं वे शुभभाव क्रियायें परम्परा मोक्ष का कारण हैं। २७८ ॥

यदार्तरौद्रध्याने शुभभावेन गुप्ति समितिभिः सह ॥
अनुप्रेक्षा परीषहजयैः उद्भवति संवरणेद्विविधे ॥ २७९ ॥

आर्तध्यान व रौद्र ध्यान ये दोनों ही अशुभ हैं, इनका कुध्यान ऐसा भी नाम है। इन दोनों ध्यानों का निरोध करने के लिए तीन गुप्ति व पाँच समितियां हैं। जव जीव गुप्तियों में संलग्न होगा तभी आर्त के चार रौद्र के चारों अशुभ ध्यान रुक जायेंगे। और शुभ धर्म ध्यान व शुद्ध शुक्ल ध्यान की प्राप्ति होगी। वारह अनुप्रेक्षाओं का वार-वार चिन्तन करने से इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग वेदनानुभव और निदानवंध नाम के आर्त ध्यान नहीं आ सकते हैं। न राग और द्वेष की ही वृद्धि व आगमन होगा। क्योंकि जहाँ रुचि नहीं, वहां अरुचि होती है। जहाँ शीतलता है वहाँ उष्णता नहीं रह सकती है, जहाँ पर वारह भावनायें वैराग्य को जन्म दे रही हैं, सव संसार व शरीर व योग सम्वन्धों से विरक्त भाव जाग्रत है वहाँ अविरक्त रूप आर्त व रौद्र ध्यान कैसे रह सकते हैं। वावीस परीषहों के जीतने पर अथवा समभाव धारण करने पर सव प्रकार का सम्वर होता है। २७९ ॥

अशुभभाव निवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिर्ज्ञातव्यश्चारित्रम् ॥
व्रत समिति गुप्ति रूपं चरित्रश्य त्रयोदशभेदम् ॥ २८० ॥

अशुभ क्रियाओं का त्याग करना और शुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति का होना ही चारित्र है। वह चारित्र अहिंसा महाव्रत सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत, परिग्रह त्याग, महाव्रत, तथा ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, उच्चार प्रस्रवण समिति तथा मनोगुप्ति वचोगुप्ति कायगुप्ति के भेद से तेरह प्रकार का है वह सम्वर का कारण है।

मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्त में मिथ्यात्व हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद असंप्राप्त सृपाटि का सहनन, एकेन्द्रिय स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय ३ नरकगति नकगत्यानुपूर्वी, और नरक आयु इन सोलह प्रकृतियों का सम्वर होता है। सासादन के अन्त में अनन्ता नुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यान. गृद्धि निद्रा, प्रचला निद्रा, निद्रा प्रचला, प्रचला दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध, परिमण्डल, संस्थान, स्वस्तिक, कुब्जक, वामन संस्थान। वज्र-नाराच, नाराच अर्धनाराच, कीलित, संहनन, अप्रशस्त, विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, त्रियंच-गति त्रियंच गत्यानुपूर्वी, उद्योत, त्रियंच आयु ये पच्चीस का सम्वर होता है। मिश्रगुण स्थान में देव आयु का वन्ध नहीं है सम्वर शून्य है। अव्रति चौथे गुण स्थान में तीर्थंकर देववमनुष्य आयु का वन्ध है। चौथे के अन्त में अप्रत्याख्यान क्रोध, मान माया लोभ वज्र वृषभ नाराच संहनन औदारिक अंगोपांग. मनुष्यगति और गत्यानुपूर्वी इन दस की विच्छुत्ति है। देश संयत में प्रत्याख्यान चोकडी का ही सम्वर है। प्रमत्त गुणस्थान के अन्त में अस्थिर अशुभ असात-

वेदनीय अयशकीर्ति, अरति, शोक, इन छः का सम्वर होता है। अप्रमत्त गुण स्थान के अन्त में देव आयु का सम्बर है। अपूर्व करण के सप्त भाग हैं जिनमें से प्रथम भाग में निद्रा और और प्रचला दूसरे से लेकर पाँचवें भाग तक सम्वर नहीं होता है छठवें भाग के अन्त में तीर्थकर निर्माण शुभ विहायोगति, पंचेन्द्रिय तैजस, कार्माण, आहारक, अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देवगति देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियक, अंगोपाँग, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरु लघु उपघात परघात, उच्छ्वास, त्रसवादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, शुभग, सुस्वर, आदेय इन तीस का सवंर है। सातवें भाग में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन चार का संवर है। अनिवृत्त करण के पांच भाग हैं—पहले भाग में पुरुषवेद, दूसरे भाग में संज्वलन, क्रोध, तीसरे भाग में मान चौथे भाग में माया, पांचवें भाग में संज्वलन लोभ का सम्वर है। सूक्ष्म सांपराय में मति ज्ञानावरणादि पाँच चक्षुदर्शनावरणादि ४ दानान्तरायादि पांच यशकीर्ति और उच्चगोत्र का सम्वर होता है। उपशांत मोह क्षीण मोह संयोग केवली में सम्वर नहीं है। परन्तु तेरहवें सयोग के अन्त में वेदनोय कर्म का सम्वर हो जाता है। इस प्रकार गुणस्थानों में सम्वर का कथन किया है ॥२८०॥

> यत्संक्लिष्टेन भवति च भावेन आ स्रवेवम्।
> हेतुर्विज्ञाय शुभमुपयोगे निरोधेन नित्यम्॥
> द्रव्याणां सम्वर भवति युग्मं च जीवस्य योगैः।
> इच्छानां रोधनमशुभभावात् विशेषर्भवेयुः॥ २८१॥

जिन संक्लिष्ट परिणामों से हमेशा आस्रव होता था, वे ही परिणाम जीव के वन्ध के कारण थे। उन कारणों को दूर करके समभाव में प्रवृत्ति का होना ही सम्वर है। जिस समय भावास्रव रुक जाता है, उसी समय द्रव्यास्रव भी रुक जाता है। इस प्रकार द्रव्य सम्वर और भाव सम्वर एक साथ ही होते हैं। इच्छाओं का रोकना विशेष सम्वर का कारण है, क्योंकि इच्छायें ही आस्रव व वन्ध का कारण होती हैं। जिन योगों के द्वारा कर्मास्रव होता था। तथा असंयम मिथ्यात्व और कषायें प्रमाद व इच्छायें कहीं गई हैं उनका निरोध कर सम्यकत्व संयम समिति गुप्तियों का भली प्रकार आचरण में लाना तथा आर्त रौद्र ध्यानों का त्याग कर धर्म, ध्यान, देवपूजा, गुरुपास्ति, संयम, स्वाध्याय, दान व महाव्रत अणुव्रत व छः आवश्यक व देशधर्म का पालन करना। इस लोक पर लोक भय मिथ्या माया निदान ये तीन शल्प आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञा तथा कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्या तथा अन्तरंग परिग्रह, चौदह प्रकार व वाह्य परिग्रह दस प्रकार की इच्छाओं का त्याग करना सो सम्वर का कारण है। स्त्री कथा, राजकथा, भोजन कथा चोर कथा इत्यादि का त्याग करने पर सम्वर होता है। यह विशेष होता है। जहां पर मनोगुप्ति रहती है वहाँ पर आर्तध्यान व रौद्रध्यानव इसलोकसंज्ञा परलोकआहरादि संज्ञायें तथा क्रोधादि कषायें नहीं ठहर सकती हैं। जहां पर वचन गुप्ति होती है अकथा और विकथायें नहीं रह सकतीं हैं। जहां पर काय गुप्ति रहती है वहां पर आरम्भादि हिंसामय क्रियायें नहीं होती हैं। सम्वर इस प्रकार है कि तालाब की जिन मोरियों में होकर पानी आता था उन को वन्द करना है। भाव

सहित भक्ति दान स्वाध्याय एवं नियम ये सव सम्वर के हेतु हैं इनसे ही कर्मों का आस्रव नहीं होता है । इति सम्वर तत्व । २८१ ॥

आगे निर्जरातत्व का स्वरूप कहते हैं ।

सविपाकमविपाकञ्च उदयेफलरसं दत्त्वा निर्जीणम् ।
प्रयत्नेन न क्षिप्यं कर्मागम समये शीलम् ॥२८२ ॥
कर्माणां स्थितिः पूर्णः प्रतिसमये विकरन्ति सम्वन्धम् ॥
उत्कृष्ट मध्यम जघन्यं विपाके रसं निर्जीणः । २८३ ॥

निर्जरा दो प्रकार की है एक द्रव्य निर्जरा एक भाव निर्जरा तथा सविपाक और अविपाक निर्जरा के भेद से । सविपाक निर्जरा उसको कहते हैं– कर्म उदयावली में आकर अपना रस देकर निर्जीर्ण हो जाते हैं परन्तु नवीन कर्मों का आस्रव जिसमें निरन्तर होता रहता है । कर्मों के उदय काल में जीव को जैसा रस देते हैं उस रस के अनुसार दुखी व आर्तध्यानी होता है व रौद्र ध्यानी होकर अनेक भेद वाले उत्तम, मध्यम, जघन्य, संक्लिष्ट भावों से तत्काल में कर्मों का आस्रवक होता है जिससे पुनः कर्मोंका आस्रव और वन्ध को प्राप्त होता है यह सविपाक निर्जरा कही गई है । जो सव संसारी जीवों के प्रति समय होती है, परन्तु यह वहुत कर्मास्रव और वन्ध का कारण भी है । प्रत्येक प्राणी के होती है भव्य और अभव्य दोनों के होती है । जो ज्ञानावरणादि कर्मों की स्थिति का वंध किया था उनकी अवाधा काल व्यतीत होने पर रस देने की शक्ति प्रकट होती है । जो कर्म समय प्रवद्ध से वाँधे थे वे ही उदयावली में आकर अपना रस असंख्यातकाल में दिखाते हैं, क्योंकि कर्मों की स्थिति उत्तम, मध्यम, जघन्य, रूप से तीन प्रकार की होती है । जैसे ज्ञानवरणादि कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटी सागर की है और जघन्य अंतरमुहूर्त की है मध्यम के असंख्यात भेद हैं । और मध्यम काल में व उत्कृष्ट व जघन्य काल में फल देकर निर्जीण होते हैं यह सविपाक निर्जरा है । जिस निर्जरा में प्रयत्न पुरुपार्थ का कोई कार्य नहीं पाया जाता है ।२८२।२८३॥

वाह्यभ्यन्तरोपाधिश्च संसार शरीरं भोगेभ्यः
विरक्तेः चित्ते मुनिः निर्जरन्ति वद्धकर्माणम् ॥२८४॥
सम्वर पूर्वकं यद् गृहीत्वा सुनिश्चिते चारित्रे ।
घोरंतपाचरन्ति सुनिश्चितं भवति निर्जरा ॥२८५॥

जव योगी वाह्य में तो हिंसादि पापों का तथा अभ्यन्तर में राग द्वेष मोह कपायों का त्यागकर चारित्र में लवलीन होता है । वाह्य में वास्तु, धनधान्य, दास, दासी, वस्त्र, आभूषण क्षेत्र तथा वर्तन सोने या चांदी के पीतल या तावा के उनका त्याग करते हैं । तथा आभ्यन्तर में विराजमान हुए मिथ्यात्व और क्रोध, मान, माया, लोभ, तथा हास्य, रति, अरति, शोकभय जुगुप्सा, स्त्री वेद, नपुंसक वेद पुरुष वेद, रूप कषायों का त्याग करते हुए व शरीर से भी ममता भाव का त्याग कर देते है । तथा संसार शरीर और पंचेन्द्रियों के विषय व्यापारों से रहित होते हुए संवर पूर्वक चारित्र धारण करके संयम तप में लीन होते है तव वे कर्मों की निर्जरा करने में समर्थ होते हैं । तथा चारित्र के द्वारा कर्मास्रवों का सम्वर करते हुए घोर

तप करके कर्मों की स्थिति व फल देने की शक्ति विशेष को नष्ट करते हैं उस समय उनके अविपाक निर्जरा नियम से होती है।

विशेष यह है कि जबतक जीव के ऊपर उपाधिरूपी बोझा लदा रहता है तब तक वह उठ नहीं सकता है और उसके निश्चय सम्यक्त्व और चरित्र नहीं होते हैं। व्यवहार और निश्चय सम्यक्त्व चरित्र है वही कर्मों का अस्रव रोकने में समर्थ होता है। तथा चारित्र से ही कर्मों की विशेष निर्जरा कही है, जब योगी जब दोनों प्रकार के चरित्र से युक्त होते हुए प्रमाद से रहित हो जब-तप और ध्यान करते हैं तब उनके प्रति समय असंख्यात असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। जिस प्रकार आम पर बौर आया हुआ है और उसमें आम आवेंगे वे काल-पाकर पकेंगे। परन्तु अभी बौर आया मेघों की गर्जना होने लगी बिजली कड़कड़ाने लगी तो वह बौर तथा फल खिर जाते हैं उस बौर के स्थान में फल देने की व रस देने की शक्ति नही रह जाती है। उसी प्रकार यहाँ पर अविपाक निर्जरा समझना चाहिये। जबतक जीव संसार भ्रमण के कारणों को जानकर उनकारणों से होनेवाले आस्रव बंध और उनका रसरूप दुःख है ऐसा जान कर विरक्त होता है व पंचेन्द्रिय सम्बन्धी योग और उपयोगों से अरुचि होती है तथा शरीर की अवस्था विशेष को जानकर शरीर से ममत्व त्यागकर संयमाचरण चारित्र धारण करने को समर्थ होता है। चारित्र धारण करने वाला भव्य जीव ही निर्जरा करने वाला होता है। २८४।२८५॥

इच्छानिरोधस्तपः पंचेद्रियविषयनिग्रहं नित्यम्
सिखण्डीध्वनिंश्रुत्वा पन्नगाः गोशीरं विहायं ॥२८६॥
जिन भक्तौ संसक्ताः सम्यक्त्वादि विशेष गुणलीनाः।
प्राज्ञः संतुष्टश्चेत निर्जरा बहु प्रदृश्यते ॥२८७॥

जिससमयजीवसंसारकी आगामी वृद्धि के कारणपंचेन्द्रियों के विषय भोगों में गृद्धता व इच्छाओं का निरोध करता है। शील संयम तप आदि कर आगामी फलस्वरूप राज्य वैभव व सुखों कीइच्छाओं का त्याग करता है तब पूर्वोपार्जित कर्म इस प्रकार ढीले पड़ जाते हैं कि जिस प्रकार जंगली मोर की आवाज श्रवण कर चंदन के वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प उस चन्दन के पेड़ को छोड़कर भागने लग जाते हैं। अथवा बंधन ढीले पड़ जाते हैं। उसी प्रकार सम्यक्त्व पूर्वक संयम तप व ध्यान की हुंकार सुनकर कर्म रूपी सर्पों के बंधन ढीले हो जाते हैं। अथवा जो पूर्वोपार्जित कर्म रूपी जल तालाब में अधिक ताप पड़ने पर सूख जाता है उसी प्रकार कर्मों की गति जानना चाहिये। जो सम्यक्त्वादि विशेष गुणों में लीन हैं तथा जिनके हृदय जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में संसक्त हैं सब प्रकार की इच्छाओं व चिन्ताओं का नाश कर दिया है तथा संतोष को प्राप्त हो रहे हैं तथा जो सुख व दुःख में समता भाव को धारण किये हैं ऐसे बुद्धिमान संवर निर्जरा आस्रव बंध इनके कारणों को जानने वाले संतोषी हैं उनके सतत निर्जरा की वृद्धि होती है। वह निर्जरा प्रति समय असंख्यात गुणी होती है। यह निर्जरा जिन भक्त सम्यग्दृष्टि संयमी वीतरागी मुनियों के ही होती है २८६।२८७

सर्वशास्त्रज्ञोऽर्थं संयमेतपे लीनं विगतरागः ।।
सुखदुःखे समभावं विशेषो निर्जराजिनोक्तः ।।२८८।।

जिन्होंने प्रथमतः शास्त्रों से निश्चय व्यवहार रूप पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जान लिया है। और रागरहित है अथवा शरीर और शरीर से सम्बन्धित चेतन व अचेतन पदार्थों से मुख मोड़ लिया है वे विगतराग योगी जब सुख व दुःख में समभाव के धारक संयम और तप ध्यान में लीन होते हुए वे शुद्धोपयोग रूप को प्राप्त करते हैं तब उनके शुक्ल ध्यान व शुद्धोपयोग व यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है। उस यथाख्यात चारित्र के होने से ही उन वीतरागी योगियों के दशवें गुण स्थान तक के जीवों की अपेक्षा असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है। सूक्ष्म सांपराय से उपशान्त मोह में निर्जरा विशेष है, उससे भी क्षीण मोह में अनंत गुणी निर्जरा है, तथा इन दोनों गुणस्थानों में उपशान्त मोह वाले की अपेक्षा व क्षीणमोहवाले के बहु विशेषता है, कि क्षीणमोहवाले ने तो सत्ता की निर्जरा की है परन्तु उपशान्तमोह, वाले ने सबको दबा दिया है इन दोनों गुण स्थान वाले जीवों के भाव समान ही उज्ज्वल होते हैं।२८८।

मिथ्या दृष्टि संसारी जीवों की निर्जरा

माङ्कोऽपि जगति जीवः समयप्रवृद्धोनिर्जरा न सन्ति
भुक्तः स्थिति निर्जीर्ण सविपाकं नागस्नानवद् ।।२८९।।

इस संसार व पृथ्वी पर ऐसा कोई भी प्राणी नहीं हैं कि जिसके प्रति समय कर्मों की निर्जरा न होती हो ? सब जीवों के नियम से निर्जरा होती ही रहती है। कर्म अपना रस दे देकर खिरा करते हैं परन्तु संसारी मिथ्या दृष्टि जीव के सम्वर का अभाव हैं क्योंकि निर्जरा के साथ ही नवीन नवीन कर्मों का आस्रव और बंध हुआ करता है। जिससे वह निर्जरा पुनः संसार की वृद्धि का ही कारण बन जाती है। जिस प्रकार हाथी नदी या तालाब में जाकर अपनी सूड़ में पानी भर कर अपने शरीर को धोता है, व तालाब में खूब स्नान कर बाहर आता है, तब वह किनारे पर पड़ी हुई धूल को अपनी सूड़ में भर कर उछालता है, कीचड लिपट जाती है तब वह पहले के समान ही हो जाता है, इसी प्रकार अज्ञानी मिथ्या दृष्टि बहिरात्मा जीवों के निर्जरा कही गई है। २८९।

संयमैस्तपो नियुज्य सम्यग्भावसम्पन्नो वीतरागः
संक्लिष्ट भावोन्मुखः विशेषस्तस्य भवति निर्जरा।।२९०।।
प्राग्ध्यानेमुक्तञ्च धर्मशुक्लाध्याने व्यवस्थितः ।।
प्रतिसमये ऽनन्तगुणितः कर्माणामविपाक निर्जरा ।।२९१।।

जो मुनिराज साम्यभाव से युक्त हैं तथा राग रहित हैं वीतराग हैं और कषाय रूप संक्लिष्ठ भावों से रहित हैं। जिन्होंने प्रथम में होने वाले आर्त ध्यान व रौद्र ध्यानों को छोड़ दिया है। तथा धर्मध्यान शुक्ल ध्यान से युक्त हैं, उनके विशेष निर्जरा होती है पूर्व गुणस्थानों की अपेक्षा उत्तर उत्तर गुणस्थानों में क्रम से असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। तथा अनंत गुणी निर्जरा कर्मों की होती है परन्तु वह सम्वर के साथ होने के कारण बंध का कारण नहीं

यह निर्जरा मोक्ष का ही कारण है इसको अविपाक निर्जरा कहते हैं। २९०॥२९१॥

मुक्तिः रमायाः सखी प्राग्निर्जरा न कार्यं कर्तुं समर्थम् ॥
अन्तरे कार्यकुशलं तस्मात् भजनीयमुत्तरः ॥२९२॥

यह निर्जरा मुक्ति रूपी स्त्री को मिलने में सखी के समान है, मोक्ष लक्ष्मी की सहेली है। परन्तु पहले कही गई सविपाक निर्जरा कोई कार्य करने में समर्थ नहीं है। इसलिये दूसरी अविपाक निर्जरा ही कार्य करने में कुशल है उसका ही सेवन करना चाहिये। उसकी ही भावना करनी चाहिये। यह दूसरी अकाम निर्जरा है उसके होने पर ही जीव को मुक्ति रमा के साथ नियम से पाणिग्रहण होता है। अथवा मोक्ष को प्राप्ति होती हैं। जिसके होने पर चार गति रूपी वेश्या के यहाँ ठोकरें नहीं खानी पड़ती हैं। इसलिये सम्वरपूर्वक तप कर कर्मों को खिपाना चाहिये अथवा कर्मों को एक देश क्षय करना चाहिये।२९२॥

सिद्धापुरे प्रदेश द्वारं ध्यान योगेषुस्थितं यत् ॥
कुभावान्विध्वंसिनी कर्मरिपुदलदलने समर्थः सा ॥२९३॥

वह निर्जरा मोक्ष रूपी नगरी में प्रवेश करने का दरवाजा है यह निर्जरा ध्यान और आत्मयोगों में स्थित है। और कुभावों का नाश करती है जो राग द्वेष मोह ममता क्रोध, लोभ, माया, मान तथा ईर्षा, मत्सर और पंचेन्द्रियों के विषयों व आर्त ध्यान रौद्र ध्यानों का समूल नाश करने वाली है। अथवा इन विभाव भावों का नाश करने वाली है। कर्म रूपी वैरी के सैन्य दल को दलन करने में समर्थ है। तथा संसारी जीवों को होने वाले दुःख व सुखा भावों का भी नाश करने में समर्थ हैं अथवा अविनाशी मोक्ष सुख है उसको भी प्राप्त कराने में समर्थ हैं। २९३॥

व्रतसमितिगुप्तियुक्ताः समसुखदुःखे वीतरागमोहाः ॥
ध्याना ध्ययनेयोःरताः जितोपर्शगेंद्रिय विषयाः ॥२९४॥
अध्ययनेन ध्यानं ध्यानेन कर्मनिर्जीणः स सम्वरैः।
तस्मान्निर्जरा हेतुरध्ययनं करेयुः नित्यम् ॥२९५॥

शास्त्रों का मनन व स्वाध्याय और अध्ययन करने पर तथा स्वाध्याय करते समय मन, वचन, काय तीनों योग उसमें रत हो जाते हैं। मन इधर-उधर को नहीं दौड़ता है। शास्त्रों का अभ्यास करने से सम्यक्त्व का श्रद्धान होता है श्रद्धान होने परही ज्ञान में समीचीनता प्राप्त होती है।तब वह ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान हो जाता है। सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो क्रिया की जाती है वह चारित्र सम्यग्चारित्र कहा जाता है। जब शास्त्र के द्वार पर भाव और स्वभाव को भली विधि जान लिया तब परभाव की ओर से दृष्टि हट कर निज स्वभाव की ओर झुक जाती है। तब पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्तिओं का पालन करने के सन्मुख होता है। उसी काल में उसके समताभाव जाग्रत होता है। तब सुख व दुःख में जन्म व मरण में मित्र व वैरी में महल या श्मशान में कांच व कंचन में समभाव को धारण करता है। तथा पर वस्तुओं में राग मोह ममता भाव का अभाव हो जाता है। इसका कारण यह है कि जब तक पर पदार्थों में रुचि रहती है तब तक एक से प्रीति तो दूसरे से द्वेष की उत्पत्ति अवश्य होती ही है। परन्तु

समभाव के होते ही जीव की परिणति वदल जाती है। वह वीतराग मोह हो जाता है। और ध्यानाध्ययन में रत होता है। तव पंचेन्द्रियों के विषयों की सामग्री सुलभता पूर्वक मिलने पर भी उसको रुचिकर नहीं लगती वह इन इन्द्रिय विषयों को जहर के सेवन के समान मान कर त्याग देता है। और शरीर से भी राग ममत्व त्याग कर तप ध्यान में स्थित होता है। उस समय कोई भी प्रकार का देव मनुष्य त्रियंच व अकस्मात उपसर्ग आजाने पर उसको धैर्यता-पूर्वक साहस के साथ अच्युत होता हुआ, विजय की ध्वजा को फहराता है। और उस योगी के ही सम्वर पूर्वक निर्जरा कही गयी है। अविपाक निर्जरा का कारण सम्यग्चारित्र और तप है। उस ध्यान तप की सिद्धि शास्त्र का वार-वार अध्ययनं करने पर होती है। ध्यान से कर्मों की निर्जरा होती है, इसलिए आचार्य ने स्वाध्याय व अध्ययन को भी तथा ज्ञान को निर्जरा का हेतु कहा। इसलिए शास्त्राध्ययन निरन्तर करना चाहिए २९५ ॥

यत्कालेयातिनिजरसमावेदनीयं च दातुं।
तत्काले क्रोधरूपशममुत्तमत्यमायाःनिमित्ते ॥
मिथ्यामोहोदयविचलंमानमावच्छतं वा ॥
वाह्यस्तंरागमकुटिलतायश्चिमा आजवैवम् ॥ २९६।

जिस समय जीव के अन्तरंग कारण तो असाता वेदनीय का उदय को प्राप्त होवे। और उसी के अनुसार वाह्य में भी कारण मिलने पर कि वैरी दुष्ट के द्वारा आक्रोषमय मर्मभेदक कठोर वचन वोलने व छेदन भेदन मारण ताड़न करने व धन मान हानि करने रूप प्रसंग आने पर भी उस काल में क्रोध रूपी अग्नि को दवा देना उसको भड़कने नहीं देना। तथा अपने पूर्वोपार्जित वेदनीय कर्म का फल जान समभाव धारण करना तथा इस प्रकार राग द्वेष की वृद्धि नहीं होने देना। व क्रोधादिक के करने पर भी वेद-नीय कर्म तो अपना फल अवश्य ही देगा वह अपना फल दिये विना नहीं रहेगा। ऐसी भावना होने पर जो रस भोगा गया है। वह तो निर्जरा हुई समभाव हुआ यह संवर हुआ इन का कारण उत्तम क्षमा है। मिथ्यात्व कर्म तथा चारित्र मोह कषाय वेदनीय मान के अतंरंग में उदय में आना वाह्य पदाधिकार रूप वलादि को प्राप्ति होने पर भी अपने से हीन धन वल रूप वालों का तिरस्कार करने की इच्छा का न होना व उनकी विनय व आदर सत्कार करना तथा अन्यत्र जाने पर वहां के निवासियों द्वारा सत्कार विनय पूजा न करने पर तिर-स्कार व वदला लेने के भावों को जाग्रत नहीं होने देना। गोवरधन ने मेरा अपमान तिरस्कार किया उसको देख लूंगा ऐसी भावना को दूर कर उनका विनय तारीफ करना यह उत्तम मार्दव धर्म है। राग की अधिकता तथा माया कषाय वेदनीय के उदय में तथा लाभान्तराय कर्म के उदय में आने पर भी मायाचारी करने के भाव नहीं करना अपने सरल भाव रखना। अंतरंग और वहिरंग एक रूप परिणामों को रखना यह मार्दव धर्म है यह धर्म भी अनेक कोटि के दुष्ट कर्मों की संवर व निर्जरा का कारण है पूर्व के कर्म उदय में आकर फल देखे जाते हैं परन्तु भविष्य के लिए वंध नहीं इसलिये निर्जरा ही हुई।२९६॥

संज्ञाग्रन्थोदययसति मूर्क्षाः परिग्रन्थ लोभः ।
कृत्वा संतोषविभवबलैर्निर्जरस्यास्ति हेतुः ।
मुञ्चाऽपध्यानमिति विकथा दुःश्रुतिः सत्यभाषा ।।
दुष्कृद्धिंसा विहितकरणं प्राणसंयत् प्रसिद्धाः ।।२६७।।

अभ्यन्तर ऐसे लोभ कषाय वेदनीय और परिग्रह नाम की संज्ञा का उदय वाह्या परिग्रह में मूर्छा भाव का होना तथा लोभ कषाय का कारण मिलने पर भी अधिक परिग्रह संग्रह करने की इच्छा न करके संतोष धारण करना। दूसरों के लाभ को देख खेद खिन्न नहीं होना कि मेरे को लाभ नहीं यदि मैं भी ऐसा करता तो मुझको भी लाभ हो जाता। इस प्रकार की भावनाओं का त्याग करके संतोप धारण करना तथा संतोष करके लोभ कषाय को जीत लेना यह शौच धर्म महोपकारी है। इस शौच धर्म के पालन करने से अशुभ हिंसादिक पापों (भावों) का आना रुक जाता है। तथा परिग्रह नाम की संज्ञा और लोभ कषाय ये सव वहुत आरम्भ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन सव पापों की जन्म देने में माता के समान है। संतोष के धारण करने पर पापास्रव नहीं होता है और अनेक कोटि में सम्वर ही होता है तथा लोभ कषाय उदय में आकर फल देकर खिर जाती है इसलिये वंध के अभाव में कर्मों की निर्जरा ही हुई। अपध्यान तथा कषायों का त्याग विकथा श्रवण करने व चिन्तवन करने का त्याग तथा खोटे मिथ्यादृष्टियों के रचे गये हिंसादि पापों के पोषक तथा पंचेन्द्रियों के विषयों के पोषक शास्त्र कादम्वरी, प्रेमसागर इत्यादि काल्पनिक रचे गये शास्त्रों का त्याग करना। इनके त्याग करने से अपने अशुभ भाव नहीं होते वचन भी प्रमाणवद्ध विश्वसनीय होते हैं यह सत्य प्रायः वहुत से पापास्रवों से जीव की रक्षा करता है तथा अनेक प्रकार से कर्मों की निर्जरा होती है। जो पापों का कारण हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पापों से निवृत्ति होने के लिए इन्द्रिय संयम और मन संयम तथा प्राण संयम, छह काय जीव संयम जिससे कोई भी प्रकार से जीवों की विराधना नहीं इस प्रकार से प्रवृत्ति का होना तथा दया भाव का होना यह संयम है। यह संयम सब हिंसादि पापों का त्याग रूप है तथा जीवों की रक्षा रूप है जिससे कर्मों का संवर व निर्जरा होती है। यह संयम धर्म सब धर्मों में प्रधान धर्म है तो एक संयम ही है। यह संयम धर्म कहे गये उत्तम क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच, संयुक्त है इस एक के पालन करने पर सब धर्मों का समावेश हो जाता है यह उत्तम संयम धर्म है।२८७।।

(शिखरणी)

तपो यद्बाह्याभ्यन्तररूभय षट्-षट् च विविधः ।
तथा तत् कृत्वा संवर दहति कर्मेन्धननिव ।।
ददेयुः दानं लोभमिति न विविक्तं सगुणदा ।।
वशीलोकैवं शत्रुरशुभ छृतिमुञ्चतितदा ।।२६८।।

तप अंतरंग और वाह्य के भेद से दो प्रकार का है। वाह्य तप के छह भेद हैं और अन्तरंग के भी छह भेद हैं। वाह्य तप के अनशन, ऊनोदर रस परित्याग, व्रत परिसंख्यान, विविक्त सैयासन, काय क्लेश ये छहों तप वाहर से जाने जाते हैं इसलिये इनको वाह्य

तप कहते हैं। अंतरंग के भी छह भेद प्रायश्चित, आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय विवेक, व्युत्सर्ग, ध्यान व स्वाध्याय ये सब अंतरंग तप दूसरे के द्वारा जाने नहीं जाते हैं। इन तपों को संवर पूर्वक करने पर कर्म रूपी ईंधन जल जाता है। यह तप भी एक चरित्र का ही भेद है चरित्र के बिना तप नहीं होता है इस तप से ही कर्मों का नाश किया जाता है बाह्य तप कारण और अभ्यन्तर तप कार्य रूप है। सम्यक्त्व पूर्वक तप करने से बहुत निर्जरा होती है। यह उत्तम तप धर्म है। सब प्रकार की इच्छाओं का रोक देना ही तप है। दान के मुख्य चार भेद हैं आहार, औषधी, अभय और ज्ञान दान इन चारों के करने से वैर द्वेष को छोड़कर मित्र बन जाते हैं। तथा दाता की कीर्ति फैल जाती है और दाता के पास अनेक गुण स्वभाव से ही आ जाते हैं। जब दाता दान देता है। उस काल में एक गृहस्थ भी क्षमा दया निर्लोभ तथा विनय सम्पन्न हो जाता है तथा भक्ति भी उसके हृदय में उमड़ आती है। वह अपने हृदय में अत्यन्त प्रसन्न होता है, उसके उस दान के काल में आर्त रौद्र ध्यान दूर हो जाते हैं तथा धर्म ध्यान रूप शुभ ही ध्यान होता है। तथा जो मिथ्यादृष्टि व क्रोध, मान, माया या लोभ कषाय से सम्पन्न है वे भी वैर व अभिमान मायाचारी को छोड़कर दाता की शरण में आ जाते हैं। यहां त्याग को भी दान कहा है सबसे प्रथम में मिथ्यात्व कषाय और असंयम का त्याग करना सो दान हैं यह दान वैर विरोध और द्वेष को नाश करने वाला होता है। सब जीवों में प्रेम वात्सल्य भाव व मैत्री भाव करुणा भाव माध्यस्थ भाव तथा प्रमोद भाव प्रगट करता है। मुनिराज भी त्याग करते हैं वे अपने कषाय व राग, द्वेष, माया, मत्सर, क्रोध, मान, माया, लोभ, असंयम व विकथा पंचेन्द्रियों के विषय और ईर्षा का त्याग कर क्षमा मैत्री भाव करुणा भाव व प्रमोद भाव व माध्यस्थ भाव को प्राप्त होते हैं। तथा गृहस्थ व मुनि दोनों ही त्याग से ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। बिना त्याग के क्या साधु क्या श्रावक दोनों ही बोधि को प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार चार प्रकार का दान व त्याग अवश्य ही करना चाहिये। दाता के कषाय भाव व असंयम भाव अप्रमोद भाव व मिथ्यात्व भाव रुक जाते हैं जिससे उनके संवर होता है, और उदयावली में आये हुए कर्म फल देकर खिर जाते हैं यह तो निर्जरा हुई और भविष्य के लिये कर्मास्रव नहीं।

किञ्चित्मया भवति भूधन राशिपुत्राः।
भार्या सुतान्मया बांधव गोत्र वंशा।
गात्रोऽपि सास्वत कदापि विनस्यते ये।
धर्मोगुणस्यखलुरक्षतु मात्माघातात् ॥२६९

इस संसार में जितनी विभूतियां दिखाई दे रही हैं वे सब सास्वत रहने वाली नहीं हैं। वे शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो रही हैं। यह पृथ्वी भी मेरी नहीं है यह राज वैभव सेना माल, खजाना, स्त्री, पुत्र, मित्र, पौत्र, ये भी मेरे नहीं हैं। ये तो एक संयोग से आकर मिले हैं जिस प्रकार कोई धर्मशाला में यात्री आकर रात्रि में विश्राम करते हैं और भोर हुई कि वह अपने देश व मार्ग को चले जाते हैं। जिस धन को देश विदेशों में जाकर बड़े कष्टों व संकटों को प्राप्त होते हुए कमाया था वह धन मेरा कदापि नहीं हो सकता है। पृथ्वी, मकान, दुकान

खेत, कुश्रां, वापी, तालाव श्रादि तथा गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी इत्यादि धन मेरे नहीं हैं। ये सब मेरे से बहुत दूर हैं जिनका संयोग हुआ है उनका वियोग अवश्य होगा। ये सब देखते-देखते नष्ट होते चले जाते हैं। जिन वस्तुओं को मैंने ही बड़े प्रयत्न पूर्वक उपार्जन किया था वे वस्तुयें भी मेरी नहीं तब अन्य की तो क्या कथा। क्योंकि जब जिस शरीर को माता के गर्भ से जन्म लेते समय साथ लाया था वह शरीर भी मेरे साथ नहीं वह भी मेरा नहीं वह भी अपनी स्थिति पूर्ण होते ही अवश्य विनाशको प्राप्तहोने जा रहा है। तब पुत्र, स्त्री, मित्र, माता-पितादि अपने से अत्यन्त भिन्न हैं वे मेरे कैसे हो सकते हैं इस प्रकार सब पर वस्तुओं से ममत्व भाव का त्याग करना यह आकिंचन्य धर्म है। इस लोक में मेरा एक धर्म है वही धर्म माता है, पिता है, पति है, पुत्र है, मित्र है, वही मेरा धन सम्पत्ति है व मित्र है तो एक धर्म ही है इस प्रकार पर भाव का त्याग कर निज स्वभाव रूप धर्म में स्थिर होना ही आकिंचन्य धर्म है इस धर्म के सेवन व धारण करने पर परभाव से होने वाले पापास्त्रव रुक जाते हैं। यह तो संवर हुआ तथा कर्म उदयावली में आकर अपना रस देकर खिरते हैं यह निर्जरा हुई और बंध नहीं होने से बोझा ही उतरा।

स्यान्निर्जरा ससमये सह संवरैश्च ।
ब्रह्मात्मनो विमल भास्कर वच्चदीप्तः ॥
किं स्त्रीवपुश्च मलपुंजकुसप्त धातुः ।
रक्तो श्रवन्ति सततं (सहसा) विचिन्त्यमुञ्चेत ॥३००॥

जिसको अपना सुख का साधन व सुख देने वाली मान रहा है, उस स्त्री के शरीर से निरंतर मल झरते रहते हैं। एक भी क्षण ऐसा प्राप्त नहीं कि जिसमें मल नही बहता हो उसके उस अपवित्र गात्र में से तथा योनि में से रक्त पात होता ही रहता है। शरीर तो मल का ही ढेर हैं और सात कु धातुओं से निर्माण हुआ है। रक्त, माँस, मज्जा, मूत्र, विष्टा तथा कृमि इन सातकुधातुओं से निर्मित है। इन स्त्रियों का मन कुटिल होता है तथा देखने में कमनीय मालूम होती हैं। जिनके रूप रंग व हास्य विनोद को देखकर काम रोगी आसक्त हो जाते हैं। उन स्त्रियों की मस्तक की वेड़ी भुजंगी के समान होती हैं काली होती है। यह कामी जनों के चित्त को उकसाती है। जिससे विष उनके सर्वांग में फैल जाता है और काम रोगी वेदना से अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। पुनः उनकी प्राप्ति करने को प्रयत्न शील होते हैं वे उनके लिये आर्त ध्यान करते हैं, जिससे उन कामियों के बहुत कर्म बंध हो जाता है। इस प्रकार स्त्रियों के स्वरूप का विचार उनके हाव भाव रूप रेखा आकृति नृत्य गीत आदि देखने का त्याग कर पूर्व भोगे हुए भोगों का भी चिन्तवन नहीं करना व प्रशंसा नहीं करना, अपने शरीर का शृंगार जो कामोद्दीपन करने वाला गरिष्ट भोजन का त्याग कर अपने निज शुद्ध चिदानद धन चैतन्य के अवलम्बन लेकर अपने शुद्ध आत्मा में लीन होना यह आत्मा ही ब्रह्म है उस आत्म ब्रह्म में आचरण करना यह ही ब्रह्मचर्य है। सब पापों का खण्डन करने वाला व सर्व धर्मों का यह मूल है। कर्मों के शुभाशुभ आस्त्रव व बंध का निरोधकरने वाला व कर्म रूपी रज को उड़ाने के लिये पवन के समान है। तथा यह ब्रह्मचर्य संवर व निर्जरा का मूल कारण है। चिद्रूपब्रह्म में

रमण करने वालों के पूर्वोपार्जित कर्म फल देकर और विना दिये ही खिर जाते हैं तथा काम वैरी को वश में करने का यही विशेप उपाय है। यही संवर व निर्जरा का मूल हेतु है। आत्मा ही व्रह्म रूप एक है कर्म फल कलंक से भी रहित सूर्य के समान तेज पुञ्ज का धारक है उस अनंत शक्तिशाली का भी यह स्पर्शन इन्द्रिय काम भोगों की तरफ ले जाती है। इसलिये इन इन्द्रियों के विषयों का त्याग कर अपने स्वभाव में स्थिर होना यही व्रह्मचर्य है यही शील है या स्वभाव है। यह प्रति समय कर्मों का संवर व निर्जरा करता है। ३००॥

क्रोधादिभाव नृतु नः स्वविभवविज्ञिः।
मुञ्चन्तु तान् स्वविवात् न तु पश्य किंचित्॥
सानिर्जरा युतसंवर पूर्वकं च।
किं वंधमास्रवमतिप्रभ भूरि दुःखम्॥ ३०१॥

जो अपने क्रोधादि अशुभ भाव हैं वे अपने नहीं हैं परन्तु अचेतन द्रव्य के विभाव हैं पुद्गलमय हैं पुद्गद्रव्य की पर्यायें हैं। ऐसा अपने स्वभाव के भिन्न सर्वज्ञ वीतराग ने कहा है। उन क्रोधादि परभावों का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि वे अपने स्वभाव से अत्यन्त भिन्न हैं और अपने किंचित भी नहीं है। यदि वे क्रोधादि भाव अपने हो जाते तो भी चेतनामय हो जाते। परन्तु ऐसा है नहीं जो कोई भी वस्तु होती है वह अपने निज गुणों का परित्याग नहीं करती न पररूप ही परिणमन करती है। इसलिए अपने देश की रक्षा करने के लिए स्वानुभव रूप अपना आत्मा ही साध्य व साधन है उसके साधन वे दश धर्म हैं अथवा उस आत्मा के द्योतक ये उत्तम क्षमादिक दश धर्म हैं ये दश धर्म ही संवर व वहुत निर्जरा के कारण हैं। ३०१।

सुद्धात्म वस्तु खलु नित्य सुख स्वरूपं।
ग्राह्योऽन्यवस्तु न तु भिन्नतया विचिन्त्यम्॥
सर्वो विभाववहुदुःखमवेतिनित्यम्।
धर्माक्षमोत्तमरसं खलु भीवनीयं॥३०२॥

एक निश्चय नयकर अपनी आतमा कर्म मल कलंक ते रहित शुद्ध वस्तु है वही सव प्रकार की चेतन अचेतन वस्तुएं हैं। वे सव जो वस्तुयें हैं वे सव इससे भिन्न हैं वे वस्तुयें अपने ग्रहण करने योग्य नहीं। जितने परवस्तु के संयोग से अपने में होने वाले विकार हैं वे सव ही विभाव हैं उन विभावों को करके यह आतमा आप सुख की इच्छा करता है। वे विभाव भाव ही कर्मों के आस्रव और वंध के करण होते हैं। तथा उनके विपाक काल में होने वाले दुःख का अनुभव करने वाला यह जीव ही है। इससे विपरीत जो सरस मोक्ष तत्व है उसको प्राप्त करने के लिए विभाव भावों का त्याग करे तव अपने स्वभाव भाव में रुचि हो। वे विभाव भाव आत्मा के क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, राग, द्वेप, अज्ञान, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन पांचों इन्द्रियों के विपय और आर्त ध्यान व रौद्रध्यान ये सव विभाव भाव हैं वे विभाव भाव ही जीव के दुःख के कारण हैं। जव तक इन विभाव भावों का आप कर्त्ता व स्वामी वना रहता है तव तक अज्ञान संज्ञा को पाता है तथा संसार भ्रमण का अंत नहीं आ सकता है। जव कुभाव विभीवों

को त्याग कर अपने शुद्ध वस्तु स्वरूप एक चित्स्वभाव जो पर भाव से जुदा भिन्न है वही उपादेय है उस चित्स्वभाव में कर्मों का आस्रव बंध नहीं होता है। उदय उदीरणा भी नहीं हैं (इसलिए संवर पूर्वक निर्जरा करनी चाहिए।) पर भाव से निर्वृत्त होकर उस चित्स्वरूप परमात्मा का ध्यान करने पर संवर और निर्जरा विशेष होती हैं। ३०२ ॥

उपमेऽनुरक्तार्थे संज्ञानसंयुक्ताः विभावन् मुक्ता ॥
(शुद्धोपयुक्ताः) शुद्धोपयोगे न युक्तः निर्जरा साधोः सुनिर्दृष्टाश्च ॥३०३॥

जो सम्यक्त्व पूर्वक प्रयत्नशील हैं संयम तथा तप में लवलीन हैं। तथा ध्यान और अध्ययन में लीन हैं मुनियों में प्रधान संयम योगों से युक्त अपने स्वभाव सहित शुद्धोपयोग को प्राप्त हुए हैं उन साधुओं के विशेष निर्जरा होती है। उनके ही निश्चय निर्जरा होती है परन्तु शुद्धोयपोग से रहित सविकल्प व प्रमाद सहित संयम के धारक हैं वे संवर व निर्जरा के करने वाले नहीं। जो सम्यक्त्व भाव व विरक्त भाव से रहित संयमी हैं वे संयमी निर्जरा के करनेवाले न होकर बंध करनेवाले ही होते हैं। क्योंकि उनकी बाह्य और अन्तरंग परिग्रह ग्रहण करने की इच्छा होने के कारण ही आस्रव और बंध होता है। वे विभावों के ही ग्राहक हैं वे स्वभाव भाव सम्यक्त्वादि गुणों से सून्य बहिरात्मा है उनके निर्जरा नहीं कही गई है।

जो प्रमादों से रहित संयमी सम्यक्त्व ज्ञान व चरित्र से युक्त निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने में उद्यमी हैं। तथा जिनके विभाव भाव सब दूर हो गए हैं ऐसे वीतरागी संयम तप के धारक मुनि ही शुभोपयोग व शुद्धोपयोग से संयुक्त कर्मों को उदय रूप फ़ल देते हुए भी निर्जरा होती है तथा बिना उदय में आये भी कर्मों को विशेप उदीरणा हो जाती है यही मुख्य निर्जरा कही गई है। उनके ऊपर कर्मोदय जनित परीषह भी आ रही हैं या कोई उपसर्ग भी आ रहा है तत्काल में उपयोग की निश्चल दशा होने के कारण ही उदय व उदीरणा दोनों प्रकार की निर्जरा प्रति समय असंख्यात गुणी होती है। वह निर्जरा उदय उदीरणा, संक्रमण, विसंयोजन, कर चार प्रकार से होती है। यह निर्जरा शुद्धोपयोगी साधुओं के ही सत्यार्थ रूप से होती है। ३०३।

(पूर्व संग्रहीत कर्माणाम्)
(पूर्वे) पूर्वस्मिन् संकलितान् कर्माणां शुभशुद्धभभावैःतान् ॥
ध्यानाग्निना च दग्धैव चितत्स्वभावैव ज्ञानादि ॥३०४॥

अपने अशुभ भावों के द्वारा पहले जिन कर्मो का संचय कर रक्खा था उन एक किये हुए ज्ञानावरणादिक कर्मो को सम्यक् चरित्र को धारण कर निर्ग्रन्थ होकर शुभभाव रूप जो धर्म ध्यान है उसकी वृद्धि कर शुक्ल ध्यान में प्रवेश करने वाले योगी के निर्जरा विशेष कही गई है। सम्यक्त्व के धारक श्रावक के जो निर्जरा होती है वह तो दर्शन मोह और चरित्र मोह की अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इनकी तथा दर्शन मोह की मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति, इन सात प्रकृतियों से आने वाले जो कर्म थे वे आते भी नहीं और सत्ता से निर्जरा हो गई तब संयमासंयम में अप्रत्याख्यान चौकड़ी शान्त हो जाती है तब सकल संयम होता है उस काल संयम के साथ ही सामयिक चारित्र होता है तथा परिहार विशुद्धी छेदोपस्थापना इनमें विशेप विशेप उत्तरोत्तर निर्जरा होती

है तब सूक्ष्म सांपराय नामक चरित्र होता है जीव शुद्धोपयोग में प्रवेश कर कषाय और नौ कषाय की निर्जरा कर यथाख्यात चारित्र व शुद्ध शुक्ल ध्यान को प्राप्त करता है उस काल में पूर्व एकत्र किये हुए कर्मों की ढेरी को जलाता है और गुण श्रेणी निर्जरा करता हुआ क्षीण मोह में स्वरूपाचरण विशुद्ध यथाख्यात चारित्र होता है। वहां अशुभोपयोग का अत्यन्ताभाव हो जाने से निर्जरा ही निर्जरा होती है चैतन्य भाव का आवरण था जो ज्ञानावरण दर्शनावरण वह भी क्षीण वृत्ति को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार गुणस्थानों में निर्जरा का विधान है। इस प्रकार की निर्जरा का मूल हेतु सम्यक्चारित्र है यथाख्यात चारित्र के होने पर ही क्षीण मोह गुण स्थान होता है तथा क्षीण मोह गुण स्थान के अन्त में ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय इनकी विशेष निर्जरा होती है तथा संयोग गुणस्थान में उससे भी अधिक निर्जरा होती है ॥३०४॥

प्राक्क्षयं दर्शनमोहं चरित्रमोहस्यानन्तानु बन्धिः।
नरक त्रियंचायु धीति कर्म निर्जीर्णे मुनेः ॥३०५॥

पहले मिथ्यात्व, सासादन व मिश्र गुण स्थानों में निर्जरा कही गई है वह सविपाक ही है वहाँ पर दर्शनमोह, चरित्र मोह का आस्रव और बंध निरंतर होता रहता है। चौथे गुण स्थान में क्षायक सम्यग्दृष्टि के जो निर्जरा कही गई है वह निर्जरा क्षयोपशम वाले के नहीं जो क्षयोपशम वाले के निर्जरा कही है वह उपशम सम्यग्दृष्टि के नहीं कही गई है। परन्तु क्षायक सम्यग्दृष्टि के ही यथार्थ चारित्र होता है जिस से पुनः बन्ध नहीं सब जगह सम्वर ही संवर व यह शुद्धोपयोग मुनि के निर्जरा है।

शुद्धोपयोगनिरताः शुक्लध्यान चारित्रै र्युक्ताः ॥
निर्जीर्ण कर्माणां शुद्धोपयोगस्यनिश्चलवृत्तिः ॥ ३०६ ॥

जब चारित्र धर्म में लीन शुद्धोपयोगी योगों की वक्रता व चंचलता से रहित निश्चल वृत्ति होती है। तब शुक्लध्यान में स्थित मुनि के नयों का विकल्प व आलम्बन भी नहीं रह जाता है। तथा ध्यान ध्येय और ध्याता का भी विकल्प मिट जाता है। तब शुद्ध अप्रतिपाती ध्यानमुनियों के होता है। वह दृढ़ चारित्र के धारक व चरित्र की वृद्धि को प्राप्त होने वाले के ही होता है। अन्य एक ज्ञान या दर्शन के नहीं परन्तु सम्यग्ज्ञानी के चरित्र में ही उसकी स्थिति चरित्र के विना नहीं रह जाती है चरित्र के विना शुद्धोपयोग या शुक्लध्यान की स्वतंत्र सत्ता नहीं रह जाती है शुद्धोपयोग रूप चारित्रयोग की निश्चल अवस्था विशेष को प्राप्त आत्मा के होती है तभी विशेष कर्मों की निर्जरा होती है। इसका तात्पर्य यह है कि विशेष निर्जरा चरित्र से ही होती है ॥३०६॥

बाह्ययोगं विहाय व येऽभ्यान्तर ध्यान योगे स्थितः।,
सर्व कर्म निर्जराश्च अचिरेन पावन्ति मोक्षम् ॥३०७॥

जो बाह्य योगों को छोड़कर (रोक दिया है) अध्यात्म योग में रत होकर कर्म रूपी ईंधन को जला रहे हैं वे योगी सब कर्मों का नाश कर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। बाह्य योगों में स्थिति रहने पर द्रव्य योग भाव योग के कारण है जब द्रव्य मन

बचन काय की प्रवृत्ति होने पर आत्म प्रदेशों में परिस्पंद नहीं होता परिस्पन्दका कारण तो कषाय रूप अपने परिणाम है। परिस्पन्दका अभाव हो गया तब द्रव्य कर्म जनित योगों के द्वारा (द्रव्यास्रव कर्माश्रव नहीं होता)। भाव योग ज्ञानात्मक हैं जीव ज्ञानात्म योग में स्थिर हो तब ही तप और ध्यान की सिद्धी होवे और संवर पूर्वक निर्जरा होगी। इससे यह शीर्षक निकला कि तप ध्यान से ही निर्जरा और संवर होता है। ऐसी अवस्था विशेष जब प्राप्त होती है तब ही साधन, साध्य, साधक, व ध्यान, ध्याता, ध्येय का विकल्प शान्त हो जाता है तब ही शुद्धोपयोग रूप अभ्यन्तर योग ध्यान में स्थिति भोगी के कर्मों का क्षय होता है। तथा कर्म रूपी जंगल भस्मभूत होता है तथा सब कर्मों की निर्जरा कर के मोक्ष की प्राप्ति शीघ्र ही होती है ॥३०७॥

निशंकश्च मानवः सप्तभयेभ्यः परिमुक्तोनित्यम् ॥
संशयं न करोत्यात्मस्वभावे तद्भवति निर्जरा ॥३०८॥

जो मानव निशंक है मरण वेदना, इस लोक, परलोक, अनरक्षक, राज भय, आकस्मिक इन भयों से रहित निर्भय होता है वही स्वात्मस्वभाव में स्थिर होता है। तब उसके इस लोक सम्बन्धी भय नहीं होता है वह विचार करता है कि इह लोक तो मेरा आत्मा ही है, इससे भिन्न दूसरा कोई लोक नहीं है तब इसलोक भय क्या है? परलोक भय मेरा आत्मा ही कर्म मल के विभाव विकारी भावों से रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। इस परलोक विभाव रूप कर्म मेरा लोक नहीं वह ही परलोक है। वह परलोक मेरा नहीं इसलिये मुझे परलोक का कैसा भय! जितने मोह रागद्वेष क्रोधादि कषायें हैं तथा पंचेन्द्रियों के विषय हैं वे सब पर भाव हैं वे ही मेरे विनाश करने वाले हैं वे मेरे ही द्वारा किये गये हैं उनको मैं भली प्रकार से जानता हूं तब वे मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं क्योंकि मेरी आत्मा ही मेरे लिये गुप्ति, समिति संयम का कोट किला व खाई है उनमें कर्म कृत भावों का प्रवेश करने को सुराक नहीं तब मुझे अगुप्ति भय कैसा। अनरक्षक भय ज्ञानावर्णादि व वेदनीय मोहनीय कर्म दुःख देतेहैं उनसे रक्षा करने वाले मेरे आत्मा में जो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच इत्यादिक धर्म हैं वे ही रक्षा करने में समर्थ हैं तब वे सब मेरे स्वभाव में स्थित हैं तब मुझे अनरक्षा भय कैसा। क्योंकि वे दश धर्म इतने बलवान हैं कि उनके सामने शत्रु का बल काम नहीं करता है वे अजय हैं। इसलिये मैं अनरक्षक नहीं संरक्षक हूं। फिर मुझे कैसा भय पोद्गलिक कर्मों का उदय में आना ही आकस्मिक भय है जहाँ पर मेरा आत्मा अपने स्वभाव से ही सूर्य के तेज से भी अधिक तेज को लिये हुए उदय हो रहा है उसकी किरणें चारों ओर बिखर रही हैं जिसके प्रभाव से कर्म की लड़ियाँ तितर बितर हो जाती हैं। इसलिए मुझे आकस्मिक भय नहीं है। रोग भय यह वेदनीय और मोहनीय कर्म का ही विशेष उदय का फल है वह भी शरीर के योग में है क्योंकि मेरे स्वभाव में इसका कोई स्थान व प्रवेश ही नहीं क्योंकि ये सब जड़ अचेतन हैं जब कि मेरा आत्म चेतन और अरूपी है वे मेरा कुछ भी बिगाड़ करने में समर्थ नहीं इस प्रकार ज्ञानी के रोगभय भी नहीं क्योंकि बल पना यौवन वृद्धावस्था ये सब अवस्थायें पुद्गल के साथ ही हैं ये मेरे साथ नहीं तब कैसे वेदना या रोग

भय। जब सात भयों से रहित हो आत्मा निशंक होती है तब चाहे अरण्य में निवास करे चाहे अटवी में, वहां पर उसके पास भय नहीं वेदन करते हैं भय दूर ही भाग जाते हैं। आत्मिक गुणों में प्रतीता होती है और अनुभूति होती है उस काल में पुद्गल कर्मों को निर्जरा ही होती है आस्रव और वन्ध का अभाव रूप संवर और निर्जरा होती है तब उपसर्ग या परिषहों पर विजय पाता है ॥३०८॥

भोग विर्भवयोवांच्छा मुंचन्ति तपध्यानेऽनुरक्तः।
संयमे चिन्ताशक्ति भवति निर्जरा जिन शासने ॥३०९॥
मा पश्यति खलु दोषान् नापिनिन्दा गर्हाः किंचदपि परस्व।
गुणार्ज्जने भावेषु सति निर्जरा च जिन शासने ॥३१०॥
यो गृहण भावं त्यजति उद्भवेत् निन्दा वालेभ्यो वहुविधैः
स्वपर भव्यानां गोपयेत् भवति निर्जरा जिन शासने ॥३११॥
ध्यानतयो चारित्रेभ्यो विचलित मलिनं कालुस्यं चिन्त्ते।
स्वपरोः स्थापनो वा भवति निर्जरा जिन शासने ॥३१२॥

ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव संसार के वनावटी क्षण में विनाश होने वाले वभव राज्य लक्ष्मी व देव पद आदि तथा पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की वस्तुओं की इच्छा नहीं करता है। वह विचार करता है कि ये जो भोग वैभव हैं वे सव संसार के वढ़ाने वाले हैं, संसार की वृद्धि के कारण हैं तथा पुत्र स्त्री माता पिता वन्धु वान्धव सव मोह के वढ़ाने वाले और दुर्गति के कारण हैं। पंचेन्द्रियों के विषयों में आशक्त सुभोम चक्रवर्ती भी सातवें नरक गया था उसने पूर्वभव में मुनिव्रत धारण कर वहुतप किया मरण काल में विद्याधर की विभूति देख निदान किया कि मैं भी ऐसी विभूति का स्वामी होऊँ यही मेरी तपस्या का फल मुझे प्राप्त हो। निदान कर मरा और (देवगति को प्राप्त कर स्वर्ग के सुख भोग) एक क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुआ तव परशुराम के अपसगुन होने लगे सपने भी खोटे आने लगे, तव परशुराम ने निमित्त ज्ञानी से पूछा कि मुझे खोटे सपने क्यों दिखाई देते हैं। तव निमित्त ज्ञानी ने कहा कि आपका वैरी आपको मारने वाला कहीं पर उत्पन्न हो गया है। उसकी परीक्षा यदि करनी है तो इस प्रकार होगी कि जो तुमने क्षत्रियों के दांत तोड़ रक्खे हैं उन दांतों को वह देखेगा और वे दांत चावल के भात के रूप में परिणत हो जायेंगे तव जान लेना कि यह ही मेरा वैरी है परशुराम ने दान शाला खुलवा दी, लोग ज्योनार जीवने को आते थे तव सव को वे दांत दिखाये जाने लगे परन्तु पता नहीं चला एक दिन सुभोम भी भोजन शाला में आ गया और एक थाली में भोजन परोस दिया गया जव वे दांत दिखाये गये तव चावल के भात रूप से परिणित हो गये यह देख परशुराम ने द्वन्द्व मचा दिया कि मारो-मारो वचने नहीं पावे तव पूर्वोपार्जित तप ध्यान का पुण्य उदय में आता है। थाली ही चक्ररत्न वन जाती है जिससे परशुराम को सुभोम मार डालता है। आप चक्रवर्ती वन जाता है रसना इन्द्रिय का लम्पटी होने के कारण एक मायावी देव की वातों में आ जाता है जिससे मर कर सातवें नरक में गया। इसका विस्तार आगम से जानना चाहिए। परन्तु सम्यग्दृष्टि स्वयम्

आगामी भोगों व राज्य वैभव की इच्छा से रहित होता हुआ तप और ध्यान में लीन होता है तथा निर्वाञ्छक होने से प्रति समय कर्मों को निर्जरा होती है यह निर्जरा निदान बंध रहित सम्यग्दृष्टि योगी के ही कही गई है।

विशेषः—निदान बन्ध करने वाले के तो पापास्रव विशेष रूप से होता है जिस तप के प्रभाव से जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्या उस तप के प्रभाव से संसारिक ऐहिक सुख सामग्री नहीं मिल सकती है ? इसलिए भव्य जीवों की इच्छाओं का निरोध करके अपने मन और इन्द्रिय को संयम में लाकर उग्र तप ध्यान कर कर्मों को निर्जरा जिन शासन के धारकों के ही होती है (ऐसा ज्ञानियों के) जिनेन्द्र भगवान के शासन में है अन्य के यहां पर अविपाक निर्जरा नहीं कही गई है।

यह भव्य सम्यग्दृष्टि अपने अवगुणों का तो प्रकाशक होता है परन्तु दूसरे के गुणों का भी प्रकाशक होता है वह पर अवगुणों के ऊपर दृष्टि नहीं डालता है यदि देख लेता है तो भी उनका चिन्तवन नहीं करता है। वह देखे हुए दोषों को प्रकट नहीं करता है लेकिन उनके छिपे हुए गुणों को प्रकट करता है तथा अपने दोषों की निन्दा व गर्हा करता है परन्तु अन्य संयमी गुण विशेष धारकों के गुणों को प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा वैयावृति व विनय करता हुआ अपने को धन्य मानते हैं उनके ही निर्जरा होती है ऐसा जिन शासन में कहा गया है।

जो अपने सम्यक्त्व पूर्वक संयम, चारित्र, तप, यम, नियम, रूप से धारण किये गये हैं व अन्य के द्वारा धारण कराये गये हैं उनका तिरस्कार व ग्लानि नहीं करता है तथा लौकिक अज्ञानी जन जिनका बहिष्कार अनेक प्रकार से करते हैं तो भी धारण किये हुए व्रतादिकों से ग्लानि नहीं करता है। जिस भाव से ग्रहण किये थे उन भावों को नहीं छोड़ता है। परन्तु अपने पर के दोषों को दवा देता है और व्रतादिक की रक्षा करता है उनके जिन शासन में निर्जरा कही है।

जिनने पूर्व में सम्यक्त्वादि शील, संयम, चारित्र व तप को धारण कर लिया है उनके कोई वाह्य कषायों का कारण मिलते हुए भी मन में किसी प्रकार की वक्रता का न होना व संयम क्षमादि धर्मों के द्वारा रोक थाम कर देना तथा अपने पर को उन सम्यक्त्वादि में दृढ कर देना व दृढ हो जाना ही वन्ध की निर्जरा होती है ऐसी निर्जरा जिन शासन में है। क्योंकि सब विकल्पों के जाल को तोड़कर स्व को अपने आत्म ध्यान में लीन करता है। कर्म उदय में आकर खिर जाता है वही निर्जरा जिन शासन में कही गई है।

> मिथ्यामार्गेन याति प्रशंसन्ति तपोऽसंयमीनां च ॥
> सम्यक्त्वाराधनैव भवति निर्जरा च जिनशासने ॥ ३१३ ॥

जो कुलिंगी मिथ्या दृष्टियों के द्वारा कुसंयम और कुनय, कुतप, कुतपस्वियों की प्रशंसा व विनयादि नहीं करता है। न उनकी स्तव वंदना करता है आदर सत्कार भी नहीं करता है। परन्तु सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप को व तप के धारक व दर्शन, ज्ञान, तप और चारित्र

रूप चारों आराधनाओं में मगन होता है तथा निरतिचार पालन करता है वह निर्मोही ज्ञानी ही निर्जरा का विशेष पात्र है। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के शासन में निर्जरा कही गयी है॥ ३१३॥

संयमतपात्माभिःसह धर्म धार्मिकः धर्मात्माभिश्च ॥
तत्त्यजति मात्सर्थ भावेन भवति निर्जरा जिन शासने।३१४॥

सम्यग्दृष्टि जीव संयम धर्म और संयम धर्म के धारक साधर्मियों के प्रति मात्सर्य द्वेष, कषाय, अविनय व निन्दा कलह नहीं करता है। उन संयमियों से प्रीति विशेष करता है। तथा अपने आत्मा का जिन कारणों से घात होता हैं उन कारणों को दूर करता है। यह स्वात्म वात्सल्य है। असंयम व कषायों की उदयावलीं में आजाने पर तथा बाह्य में भी अनेक कारणों का मिलन होने पर भी संयम तथा उत्तम क्षमादि बल से उदयागत कर्मों के फल को भोग कर निर्जीर्ण कर देना व विचलित नहीं होना परीषहों का जीत लेना भावों में विकृता नहीं होने देना यही आत्म वात्सल्य हैं। परम तपके तपने वाले हैं उनको किसी दुष्ट निर्दयी के द्वारा वेदना दी जा रही हो उस वेदना को सम-भाव से धारण कर अपनी आत्म विभूति व शान्ति भाव से दूर करना यह वात्सल्य सम्यग्ज्ञानी की प्रति समय निर्जरा है ऐसी सम्यक्चारित्र के धारियों की निर्जरा जिनेन्द्र भगवान के शासन में कही गई है।३१४।

सम्यग्ज्ञान संयमैस्तपो ध्यानाभ्यामात्मनः प्रकाशनम्।
(मिथ्यात्वांधकर) मोहांन्धकारस्य क्षिप्ते भवति निर्जरा जिनशासने ॥३१५॥

सम्यग्ज्ञान व संयम के द्वारा अपने आत्म वैभव को प्रकट कर दिखाना व तप और ध्यान के द्वारा अज्ञानियों की दुर्भावनाओं अज्ञानान्धकार का निराश करना तथा जिनेन्द्र भगवान के मार्ग के प्रभाव का महातम प्रकट करना तथा शंसय विभ्रम को दूर करना तथा मोह फ़ांस की वेदना को दूर करना यह अनेक प्रकार से कर्मों की निर्जरा का कारण है ऐसी निर्जरा जिनेन्द्र भगवान के शासन में कही गई है।३१५॥

ज्ञात्वा पुद्गल कर्माविपाकं मुञ्चन्ति रागद्वेषादीन्।
मायानिदानमिथ्या त्रिशल्यानि गरवादि भावान् ॥३१६॥
मैत्री प्रमोद कारुण्यं समभावमापद्यते सुखदुःखे।
मोहतिमिरं हन्ति यः भवति निर्जरा जिन शासने ॥३१७॥

जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी आत्मा जब जान लेता है कि मेरे पूर्वोपार्जित पुद्गल कर्म सत्ता में से उदय को प्राप्त हुए हैं जिससे नाना प्रकार के उपद्रव सन्मुख आ रहे हैं और एक के पीछे एक वेदना दे रहे हैं परन्तु जितने लोग यहां (दिखाई) कारण रूप दिखाई देते हैं वे तो वाह्य कारण मात्र निमित्त हैं ये मेरा कुछ भी विगाड़ नहीं रहे हैं इनका मेरा कोई वैर भी नहीं है ये तो विना कारण ही हैं ये जो वेदना दे रहे हैं वे मेरे परम प्रिय उपकारी हैं जिनके सहयोग से जिन कर्मों को करोड़ों वर्षो में नाश करता था उन कर्मों को इनकी सहायता से आज अभी नष्ट किये देता हूं ये ही मेरे परम उपकारी मित्र हैं इनका मेरा कोई वैर विरोध

नहीं है सम्भवत: हो क्योंकि मैंने इनका पूर्व भव में अवश्य अपकार किया होगा। जिसके कारण मुझ को देख कलुषित परिणाम करते हैं तथा वेदना देते हैं नहीं नहीं मेरे वेदना ये नहीं देते हैं ये तो मेरे परम उपकारी हैं मेरी परीक्षा कर रहे हैं। मेरे कर्मों का नाश अब शीघ्र ही हो जायेगा। अभी तक तो मैं अकेला ही तप करता था अब ये साथी मिल गये अब शीघ्र ही मार्ग तय हो जायेगा और मैं अपनी मंजल पर पहुँच जाऊंगा। इस प्रकार भावों की उत्कृष्टता से युक्त होता हुआ सबसे क्षमा याचना कर राग द्वेष रूप भावों का त्याग करता है तथा समता भाव को धारण करता है। माया मिथ्यानिदान शल्य त्रय का व रस ऋद्धि सात गौरव त्रय का त्याग कर समभाव पूर्वक उत्तम क्षमादि भावों में दृढ़ प्रतीति पूर्वक आचरण करता है तथा सब जीवों से राग विरोध कषायों तथा वैर भाव का त्याग कर सबसे मैत्री भाव को धारण करना व सबसे अपने किये हुए अपराधों की क्षमा मांगना तथा सबको क्षमा करना इन भावों के धारण करने पर कर्मों की विशेष निर्जरा होती है जो सब प्रकार की भोग काम व वैभव की इच्छाओं को त्याग कर रत्नत्रय में लीन होता है तथा समाधि में स्थित होता है उसके प्रति समय विशेष निर्जरा होती है। जो अन्य विद्वान सम्यग्ज्ञानी शील संयम के धारण करने वालों के गुणों में अनुराग करता है तथा उनकी वैयावृत्ति सेवा करता है तथा अपने दोषों की निन्दा करता है पर के गुणों को ग्रहण करता है ऐसे भव्य जीव के निर्जरा विशेष होती है। जो दयावान क्षमादि गुणों से दृढ है अपने ऊपर आये हुए उपसर्ग और परी षहों को जीत रहा है उसके विशेष निर्जरा होती है। जो सब जीवों से प्रेम करता हुआ सब के हित की कांक्षा करता है सम भाव पूर्वक मोहान्धकार व अज्ञान अन्धकार व असंयम भाव का त्याग करता है उसके विशेष निर्जरा कही गई है। ३१६-३१७।

ये पश्यन्त्यन्त्मन' चात्मनिखलुसततं ध्यान वोधौ समाधौ।
वाह्य गात्रस्य सम्वन्धं मविसरति भुक्तं फलं प्राचि दुःखम्॥
वाच्छा कुर्वन्ति किं चिन्नमम भवभवे दर्शने ज्ञानयोगे।
प्रत्याख्याने चरित्रे निसरति च मलाच्छादितं धोत लाम्वोः॥३१८॥

जो भव्यात्मा शरीर से सम्वन्धित स्त्री, पुत्र, माता, पिता, परिजन व वस्त्र आभूषण अहंकार तथा मकान व हाथी घोड़ा, गाय, भैंस, इत्यादि अनेक प्रकार के सम्बन्धों को यह जान कर छोड़ देता है कि मैंने पूर्व में अनेक भव धारण किये थे उन सब भवों में इस शरीर और शरीर से प्रेम करने वाले व सम्वन्ध रखने वालों के ही कारण मैंने पूर्व में बहुत बार अनेक प्रकार से दुःख सहे इसलिये इस शरीर और शरीर से सम्बन्धित पदार्थ मेरे नहीं मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं। ऐसा विचार कर भविष्य में होने वाले इन्द्रियजनित सुखों की इच्छाओं का त्याग कर निर्ममत्व होकर अपने आत्मा को अपने आत्मा में ही अवलोकन करता है और अपने आत्मा को निश्चय कर ज्ञान ध्यान समाधी में स्थित देखता है अनुभव करता है। जब निज स्वरूपमें स्थित होता है ? क्या देखता है। मेरा आत्मा ज्ञान में स्थित है, मेरा आत्मा दर्शन में स्थित है मेरा आत्मा योगों में स्थित है, मेरा आत्मा प्रत्याख्यान में स्थित है, मेरा आत्मा चारित्र में स्थित है, इस प्रकार पर भावों से क्रमक्रम कर रहित होता जाता है यह विशेष निर्जरा

कही गई है वह इस प्रकार है कि जब तूमड़ी के ऊपर कीचड़ लिपटी रहती है तब तक वह तूमड़ी पानी के नीचे पड़ी रहती है जब तूमड़ी के ऊपर लगी हुई माटी धीरे धीरे धुलती जाती है उतनी उतनीवह हलकी होती जाती है और वह पानी के ऊपर आने लग जाती है। इसी प्रकार अपना आत्मा कर्ममल कीचड़ से आच्छादित हो रहा है जैसे कर्ममल कीचड़ सम्यक्त्व संयम तप ध्यान व परीषहो के जीतने व बारह भावनाओं का चिन्तवन कर परम वीतराग भाव के आने पर कर्मरज धुलने लग जाती है तब आत्मा का भी बोझा हलका होने लग जाता है। यही निर्जरा श्रेयष्कर कहीं गई है।

विशेष—भव्य प्राणी अपने. पूर्व भव में भोगे हुए दुःखों का बार बार चिन्तवन करता है आज तो मेरे को इतना दुःख नहीं कि जितना मैंने इस शरीर के सम्बन्ध से पूर्व में भोगें हैं। जिनकी सीमा नहीं और वे दुःख कहे भी नहीं जा सकते हैं उन दुःखों को तो एक केवली ही जान सकते हैं अन्य के ज्ञान गोचर नहीं हो सकते हैं शरीर और शरीर के सम्बन्ध में मैंने रोग वेदना शरीर के टुकड़े होने व छेदने भेदने व अन्नपान निरोध करने बांधने पीटने नाक कान छेदने रूप दुःख व मारने भक्षणे व पकावने उबालने शीत व धूप में बाँधने ढोने व अन्न पानी के न मिलने रूप अनंत प्रकार के दुःख इस शरीर के सम्बन्ध से ही सहे इसलिये अब मैं अपने से भिन्न शरीर से सम्बन्ध रखने वालों से ममत्व का त्याग करता हूं अब में निर्ममत्व होकर व निश्चिन्त्य होकर अपने आत्म स्वरूप जो बोधि समाधि में ध्यान में स्थित होता हूं मैं ही ज्ञान में व दर्शन में, चारित्र में, प्रत्याख्यान में, भोगों में, संवर में स्थित हूं इस प्रकार भावना करता हुआ अपने आत्मा को अपने आत्मा में देखता है तथा अनुभव गोचर करता है तब कर्म मल कुछ फल देके खिरते हैं कुछ विसंयोजना कर के निर्जीर्ण होते हैं कुछ उदीरणा कर शक्ति रहित होकर खिर जाते हैं। जिस प्रकार पानी की लहरों के उठने पर तूमड़ी के ऊपर लगी हुई माटी क्रम क्रम से धुलती जाती है और जब तूमड़ी हलकी हो जाती है तब पानी के ऊपर आ जाती है उसी प्रकार निर्जरा जानना चाहिये ।३१८॥

मिथ्यात्वे निर्जरानास्ति नास्ति सासादने मिश्रे।
भवति चोत्तरोत्तरे भव्यानामभव्यानां न किंचितम् ।३१९॥

मिथ्तात्व, सासादन और मिश्र इन तीनों गुणस्थानों में जीवों के निर्जरा नहीं होती है। भव्य जीव के तो चौदह गुण स्थान होते हैं परन्तु अभव्य जीव के एक मिथ्यात्व गुण-स्थान होता है। भव्य जीवों के चौथे से आदि लेकर चौदहवें गुणस्थान तक विशेष निर्जरा होती है परन्तु अभव्य जीवों के आगे के गुणस्थान हीनहीं तब निर्जरा किसके हो। इसलिये सविपाक निर्जरा भव्य तथा अभव्य सभी जीवों के होती है। परन्तु अविपाक निर्जरा भव्य सम्यक्दृष्टि संयमी के ही होती है ।३१९॥

(इति निर्जरा तत्व)

मोक्षतत्त्व

द्रव्य भावौ च मोक्षौ शुद्धोपयोगयुक्तेन ॥
पूर्वे भवति वृत्तिश्च उत्तरे द्रव्य मोक्षैव ॥३२०॥

मोक्ष दो प्रकार का है एक तो प्रथम में होने वाला भाव मोक्ष है दूसरा द्रव्य मोक्ष है भाव मोक्ष वह है कि जिन्होंने अपने विभाव भाव और संयोग सम्वन्ध से होने वाले मिथ्यात्व अज्ञान असंयम प्रमाद और क्रोध, मान, माया, लोभ और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील वपरिग्रह में आशक्ति थी उस आशक्ति का परिहार कर सब विभावों से होने वाले राग द्वेष माया मत्सर तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और करण इन पंचेन्द्रियों के विषय शक्तियों का त्याग कर अंतरंग और वाह्य परिग्रह तथा शरीर से भी ममत्व त्याग कर निर्मोह होता हुआ शुद्धोपयोगी होता है तब भाव मोक्ष होता है। द्रव्य मोक्ष उसके पीछे होता है वह द्रव्य कर्मों के क्षय होने पर होता है। जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्म तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चार प्रकार के वंध का अभाव होने पर होती है । औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण इन पाँच नो कर्मों का क्षय हो जाने पर मोक्ष होता है । यह द्रव्य मोक्ष संसार के वृद्धि के कारण शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के भाव वंध जो द्रव्य वंध का विशेष कारण था उसके अभाव होने पर भाव मोक्ष तथा शुद्धोपयोग में स्थिर रह जाना जिससे समय-समय पर कर्म फल देकर खिर जावें और भविष्य के लिये वंध का अभाव होता जाय अब पूर्ण रूप से कर्म क्षय हो जाय यह भाव मुक्ति द्रव्य भक्ति का कारण है भाव भक्ति से ही द्रव्य मुक्ति होती है । विना भाव के द्रव्य मुक्ति नहीं हो सकती है ॥३२०॥

> किं दण्डयति गात्रं-गात्रं दण्डेन भवति न मुक्तिः ।
> किं न दण्डयसि कषायानि चेदिच्छति मोक्षसौख्यमेव ॥३२१॥
> दण्डयसि न कषायानि शरीरं दण्डयसि कृतोपवासैः ।
> किं सर्पोमृयते वा बाल्मीकं कुट्टने तदा ॥३२२॥

हे अज्ञानी वहिरात्मा तू नित प्रति मात्र शरीर को सुखाता रहता है क्या प्रयोजन शरीर के सुखाने उपवास करने से सिद्ध हो जायेगी ? शरीर मात्र को जीर्ण करने से मुक्ति की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है । यदि तू मोक्ष सुख की अभिलाषा रखता है तो उस मिथ्यात्व और क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायों को पीट जिससे कषायें तेरे पास ही न आ सकें ।

एक, दो, चार, दश, पक्ष, मास के उपवास करता है जिससे शरीर सूख कर खंखर वन जाता है परन्तु शरीर के खंखर वनने मात्र से आस्रव और वध का अभाव नहीं होगा क्योंकि आस्रव और बंध का तो मूल कारण तेरे कषायें हैं इनकषायों को तू रोकना ही नहीं चाहता है । जो कषायें तेरे को अनन्त काल से संसार में जन्म मरणके दुखों को देती हुई भी तेरे अंतर में जमी हुई वैठी हैं । जिसप्रकार कोई अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव सर्प को मारने के लिये सर्प के बिल वामी को डण्डा लेकर कूटता है क्या ? वामी के कूटने से सर्प मर सकता है ? नहीं मर सकता । इसी प्रकार शरीर मात्र को कृश वनाने से मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं, इस लिये शीघ्र ही हमको अपनी कषायों का त्याग कर देना चाहिये । अपने भीतर में वैठी हुई कषायें ही हमारी मुक्ति में बाधा डाल रही हैं ॥३२१।३२२॥

संवरैः सह निर्जरा क्षयं कृतं च मिथ्यात्वम् ।
असंयते कषायानि क्षये सावकसम्यक्त्वम् ॥३२३॥

(सम्वर के साथ) संवर पूर्वक निर्जरा ही उत्तम है। सम्वर रहित निर्जरा कोई कार्यकारी नहीं। मिथ्यात्व गुण स्थान के अन्त में मिथ्यात्व का संवर होता है। मिश्र के अन्त में सम्यग्मिथ्यात्व का संवर होता है। असंख्यात गुण स्थान में सम्यक्प्रकृति का किन्हीं के उपशम किसी के उदय होता है, किसी के क्षय होता है, जिनके उदय होता है उनके संवर निर्जरा दोनों होती हैं। जिनके उपशम होता है उनके संवर मात्र ही है परन्तु जिनके इन तीनों का क्षय हो गया है उनको दर्शन मोह से मोक्ष हो जाता है तथा अनन्तानुबंधी चोकड़ी का अभाव हो जाने से अनंत संसार का कारण भूत जो मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायों का क्षय होने से अब संसार अन्त सहित हो जाता है मिथ्यात्व भाव को तो भाव मोक्ष प्रथम गुण स्थान के अंत में ही हो गया। परन्तु द्रव्य मोक्ष आगे के गुण स्थानों में होता है। अंनतानुबंधी का संवर सासादन के अन्त में हो जाता है। परन्तु सत्व सत्ता में रह जाता है जिनका उदय चौथे गुण स्थान में उपशम सम्यग्दृष्टि के आता है। जिससे सम्यक्त्व से च्युत होता है आगे के गुण-स्थानों में इनका उदय नहीं है। क्षायक सम्यग्दृष्टि इनका क्षय करता है। परन्तु उपशम सम्यक्त्व वाला दबाता है। और वेदक वाला जीव विसंयोजन करता है उसके नरक त्रियंच आयु का बंध नहीं होता है। जिससे सम्यक्त्व होने के पूर्व में आयु बांध रक्खी है वह भी पहले नरक में व भोग भूमि के त्रियंचों में ही नियम से उत्पन्न होगा अथवा मनुष्य होगा तो उत्तम भोग भूमि का मनुष्य होगा ॥३२३॥

देश सकल संयमेऽप्रमत्तेऽपूर्वकर्णे मा कोऽपि।
भागाऽनिवृत्ते नवैवं षोडशाष्टैकैक षट् पुंस ।३२४॥

देश संयम, सकल संयम प्रमत्त गुण स्थान में तथा अप्रमत्त और अपूर्व करण गुण स्थान में कोई प्रकृति का क्षय नहीं है। अनिवृत्त करण के नौ भाग हैं परन्तु चौथे गुण स्थान में त्रियंच आयु व नरक आयु का बंध नहीं तथा देश संयत में मनुष्य आयु का बंध नहीं अप्रमत्त गुणस्थान में देव आयु का बंध नहीं। आगे के अपूर्वकरण गुणस्थानादि में किसी भी गुणस्थान में चारों आयु में से कोई भी आयु का बंध नहीं है। इसलिये बंध के अभावस्वरूप इनका क्षय ही समझना चाहिये। अनिवृत्त करण गुणस्थान के नो भाग हैं। जिनमें से पहले भाग में सोलह प्रकृतियों का सत्व से क्षय है दूसरे भाग में आठ छह भागों में एक-एक की सत्ता से विच्छुति रूप क्षय है वे इस प्रकार हैं नरक गति और नरकगत्यानुपूर्वी २ त्रियंच गति त्रियंच आनुपूर्वी २ विकल त्रय ३ निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, उद्योत, आतप, एकेन्द्री, साधारण, सूक्ष्म स्थावर इन सोलह की सत्ता शान्त हो जाती है। अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान दो चोकड़ी ८ ये मध्यम कषायें आठ दूसरे भाग में क्षय होती हैं। तीसरे भाग में नपुंसक वेद चौथे भाग में स्त्री वेद तथा छह नौ कषायें व पुरुष वेद तथा संज्वलन क्रोध, मान माया इन तीन को अन्त में क्षय करता हैं इस प्रकार मोक्ष जाने वाले जीव के कर्मों की प्रकृतियाँ नवे गुण-स्थान में ३६ का क्षय करके आगे गुण स्थान को प्राप्त होता है ॥३२४॥

सूक्ष्मसांपरायान्ते च सूक्ष्मलोभश्च क्षयं कृत्वा।
नोपशान्तमोहे क्षीणमोहे क्षयं षोडशचरये ॥३२५॥

सूक्ष्म सांपराय गुण-स्थान के अन्त में संज्वलन सूक्ष्म लोभ को नाश करके उपशान्त मोह को छोड़कर क्षीण मोह गुण स्थान में जा पहुँचता है वहाँ पर यथाख्यात चरित्र व स्वरूपाचरण व अप्रतिपादी शुक्ल -ध्यान में स्थिर होकर उसके अन्त में १६ प्रकृतियों का क्षय करता है वे इस प्रकार हैं। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अंतराय तथा निद्रा और प्रचला इन सोलह का क्षय करके केवली बन जाता है। इस प्रकार त्रेसठ प्रकृतियों का नाश कर केवली बन जाता है ॥३२५॥

आयुस्त्रयोदशनाम सर्वघातिनां क्षयात्केवलम् ।
ज्ञानंदर्शनमनंतदान लाभ भोगाश्च वीर्यम् ॥३२६॥

देव, नरक, त्रियंच, गति और तीन आनुपूर्वी छह तथा अन्य सात का क्षय होता है। ज्ञानावरण की पांच दर्शनावरण की ६ मोहनीय की २८ और अन्तराय की पांच इन ४७ प्रकृतियों के क्षय होने पर केवल ज्ञान को प्राप्त होता है। तथा तेरहवें गुण स्थान में अनन्त ज्ञान दर्शन क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चारित्र तथा क्षायक दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा अनन्त-वीर्य को प्राप्त होता है ॥३२६॥

लोकालोकविभक्तं सर्वद्रव्यपर्यायानि सदा ।
जानीतेयुगपच्च सर्वज्ञ इत्युच्यते - जिनः ॥३२७॥

जिनके ज्ञान में लोक और अलोक का विभाग करते हुए सब द्रव्य और उनकी सर्व होने वाली भूत भविष्य और वर्तमान काल में होने वालो द्रव्य पर्याय और गुण पर्याय होती हैं जो अनन्त होती हैं उन सबको एक समय में ही देखते हैं और जानते हैं। वे पर्यायें प्रति समय में क्षय और उत्पन्न होती हैं उन सब पर्यायों सहित द्रव्यों को देखते हैं और जानते हैं, उनको सर्वज्ञ कहते हैं। अथवा उनको जिन कहते हैं। अथवा योग सहित होने से उनको सयोग केवली कहते हैं ॥३२७॥

माऽौपशमिक भावाः क्षयोपशमिक ज्ञान दर्शनानि ।
नास्त्यौदयकाः भव्याऽभव्यौ चायोग केवलिने ॥३२८॥

औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र तथा क्षयोपशमिक तीन दर्शन चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन तथा क्षयोपशमिक कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान, तथा मति-श्रुतावधि और मनः पर्याय ये ज्ञान नहीं होते हैं। तथा संयमासंयम तथा क्षयोपशमिक संयम क्षयोपशमिक सम्यक्त्व तथा क्षयोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, क्षयोपशमिक वीर्य ये क्षयोपशमिक भावों का भी अभाव हो गया है। औदायिक के तीन गति, चार कषाय तथा तीन लिंग अज्ञान, अदर्शन व पांचलेश्यायें (छह लेश्याये) अभव्यत्व ये परिणामिक भाव भी केवली भगवान के नहीं होते हैं। अयोग केवली के जो तेरहवें गुणस्थान में कहे गये भाव हैं वे नहीं होते हैं साथ में जो लेश्या औदायिकी थी उसका भी क्षय होता है तथा मनुष्य गति औदायिकी थी उसका भी क्षय होता है तथा भव्यत्व का भी अभाव अयोग केवली गुण स्थान हो जाता है ॥३२८॥

औदारिक वैक्रियको आहारमिश्रामिश्रो पापं ।।
पुण्यं सुख दुखेयाङिन्द्रिय भोगोपभोगानि ।।३२९।।

अयोग केवली के अंतावस्था में औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक आहारक मिश्र तथा तैजस और कर्माण व नो कर्म नहीं रह जाते हैं। तथा उनके पुण्य रूप सुकृत भी नहीं है और पाप रूप दुष्कृत भी नहीं है। तथा पंचेन्द्रिय जनित भोग और उपभोग नहीं होने से इन्द्रिय जनित भोगों तथा उपभोगों से होने वाले सुख दुःख भी नहीं है इन्द्रिय जनित भोग विलास नहीं है। जो संसारी जीव संयोग रूप इष्ट, पुत्र, स्त्री, धन, आभूषण आदि पदार्थों के प्राप्त होने पर अपने को सुख का अनुभव करते थे वे सुख भी उनके नहीं है। तथा वेदनीय कर्म जनित वेदना व साता रूप शारीरिक तथा मानसिक दुख भी नहीं हैं ।।३२९

संक्रमण विसंयोजनं काण्डक नास्तिस्थितिः खण्डस्मर्यादा ।।
द्रव्य भाव नो कर्माणि संहननं संस्थानं नैव ।।३३०।।

उन अयोगी भगवान के कोई संक्रमण नहीं है। विसंयोग भी नहीं है काण्डक भी नहीं है न कर्मों की स्थिति ही शेष रह जाती है न उसके खण्ड की कोई मर्यादा ही है द्रव्य कर्म भाव कर्म, नो कर्म, वज्रवृषभादि संहनन तथा समचुतरस्र संस्थानादि कोई संस्थान भी जिनके नहीं है। इस जीव ने पहले अनन्त काल से जिस अवस्था विशेष को कभी नहीं पाया था न आगे कोई अवस्था शेष ही रह जाती है ऐसी अन्तिम अवस्था को प्राप्त किया है ।।३३०।।

क्षिपित्वा प्रकृति बंधं स्थिति चानुभाग प्रदेश बन्धम् ।
औदारिकादि योगाः मासन्ति पंचदश योगाः ।।३३१।।

जिन्होंने प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश बंध इन चारों बंधों का समूल क्षयकर दिया है। तथा जिनकी औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण इन सात काय योग तथा चार मन के चार वचन के इन पंद्रह योगों से रहित मुक्तात्मा हो जाती है तथा औदारिकादि बंधनों से मुक्त होती है ।।३३१।।

शुद्धचैतन्य चिदात्मा सम्यत्क्वं ज्ञान दर्शन वीर्यानि ।
अगुरुलघु मव्यावाधं सूक्ष्मोऽवगाहनागुणाः ।।३३२।।

उन मुक्तात्मा का स्वरूप शुद्ध चैतन्य तथा चिदात्मा है तथा क्षायक सम्यक्त्व एक क्षायक दर्शन एक, क्षायक ज्ञान, क्षायक वीर्य तथा अगुरुलघु, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अव्यावाधत्व इन गुणों से युक्त होते हैं। वे अनंत गुण हैं। तथा वे सिद्ध भगवान गुण स्थान से रहित हैं तथा अविनाशी हैं अनंत काल तक मुक्ति में ही रहेंगे। वे अपने अनंत दर्शन और अनंत ज्ञान से सव त्रिकाल व त्रिलोक व अलोकाकाश को अपना ज्ञेय वना लिये हैं अथवा सवको जानते हैं। वे भूत काल में हो चुकी और भविष्य काल में होगी और वर्तमान काल में हो रही हैं उन सव पर्यायों को जानते हैं और देखते हैं अथवा सव द्रव्य गुण पर्यायों को जानते हैं देखते हैं ।।३३२।।

अतिसयमव्याधं विषयातीतंमनुपम मनंतं च ।
शुद्धोपयोगस्य च सौख्यं सिद्धानां सास्वतं ।।३३३।।

उन सिद्ध भगवान के शुद्धोपयोग रूप सुख है और वह सुख अतिशय स्वरूप है

उनमें हीनाधिकता नहीं है जैसे संसारी जीवों के इन्द्रिय जनित सुख होते हुए कभी हीन कभी अधिक कभी भी दुःख होता है परन्तु यह सुख पराश्रित है कर्माधीन है सिद्धों के जो सुख है वह पराश्रित नहीं वह हीनाधिकता से रहित होने से अतिशय सुख है। अव्याबाध-संसारी जीवों के वेदनीय कर्म सुख में बाधा उत्पन्न किया करता था परन्तु सिद्ध भगवान के वह बाधक वेदनीय कर्म क्षय हो गया है इसलिए उन सिद्ध भगवान के जो सुख है वह अव्याबाध है। सिद्ध भगवान के जो सुख है वह उपमारहित अथवा उपमातीत हैं। उपमातीत उसको ही कहा जा सकता है कि जिसकी जगत में कोई उपमा नहीं हो। इसलिए सिद्ध भगवान के उपमा रहित सुख है वह अनुपम है। विषयातीत उन सिद्ध भगवान के पंचेन्द्रियों के द्वारा स्पर्श नहीं किया जाने वाला ज्ञानमय सुख है व सिद्ध भगवान का ज्ञान ही सुख रूप से परिणमन करता है इसलिए जो उनके सुख है वह विषयातीत है तथा अनंत है क्योंकि जिस सुख का अंत नहीं उस ही सुख को अंतातीत व अनंत कहा जाता है जो आत्मा का ज्ञान और दर्शन है वही सुख रूप से परिणमन करता रहता हैं इसलिए अंतरहित है। सिद्ध भगवान के अविनाशी अनवर्तक सुख है उसका कारण दूसरा संयोग या सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ नहीं है वह तो आत्मा के शुद्धोपयोग से आत्मा में ही प्रकट हुआ है ॥३३३॥

इति मोक्ष तत्वम् ॥

आगे सम्यक्त्व के कारणों को कहते हैं।

तव चरण युगलममररतिमिरं हरति विविधरिपुचमु दलनममित् ।
विहितरज सकल मिलित कलुशान्क्षिपतु नम महदरि जगति अमतिम् ॥३३४॥

जिन भगवान अरहंत व सिद्ध भगवान ने अपने ज्ञानावरण और दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय तथा वेदनीय, नाम, गोत्र, आयु इन कर्मो रूपी वैरी को नाश कर दिया है अथवा मदन के मद को व मर्दन कामदेव को वल को नाश कर दिया है तथा पाप पुण्य रूप पौधाओं को व क्रोध, मान, माया, लोभादिक जो अपने परिणामों में क्षोभ उत्पन्न करने वाले थे उनको नाश कर दिया है। उन शिवपुर वासी भगवान के चरणयुगल हमारे अज्ञान मिथ्यात्व मोह रूपी तिमिर (अन्धकार) की नाश करें। जो अज्ञान मिथ्यात्व रूपी तिमिर भ्रमर से भी अधिक काली है उसको शीघ्र ही दूर करें। पापों को नाश करें। जो संसार में संसारी प्राणियों का महावैरी है जिसके कारण ही हम संसारी आत्मा दुःख भोगते चले आ रहे हैं। उन कर्मों को दूर कर हमारी रक्षा करें।

नारके प्रावतुर्यं त्रयादि बाह्य साधनमघोर्धाद्वि सप्ततेषु ॥
त्रिपक्षु स्याच्चतुर्विद धर्मश्रवणं वेदनातिश्च ॥ ३३५ ॥

पहले नरक वासी देवों के तीन सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण हैं एक तो जाति स्मरण व (विभंगावधि) धर्मोपदेश और वेदना अनुभव ये पहले से लेकर तीसरे नरक तक के नारकियों के होते हैं। तथा वहां तक स्वर्गवासी देव अपना नियोग पाकर जाते हैं और उनको धर्म का उपदेश देते हैं। जिससे उनको सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। उससे आगे के नरकों में देवागमन नहीं है, इसलिए उनमें दो ही साधन हैं एक जाति स्मरण दूसरा वेदना अनुभव

त्रियंचों में चार साधन हैं देवदर्शन, धर्मोपदेश, जाति स्मरण और वेदनानुभव इस प्रकार चार साधन हैं ।।३३५।।

जातिस्मरणंजिनविम्वदर्शनं (देवार्द्धि) देवेषु चतुर्हेतुः ।
धर्मश्रवणं नित्यं देवार्द्धिप्रदर्शनं तथा ।।३३६।।

देव गति में सम्यक्त्व प्राप्त करने के चार-चार साधन हैं एक जाति स्मरण, जिन विम्ब दर्शन, देवों की ऋद्धि देखना और धर्मश्रवण ये चार साधन सोलहवें स्वर्ग तक के देवों में पाये जाते हैं। परन्तु नवग्रीवक अनुदिष और अनुत्तरविमानों वासी देवों के भी इसी प्रकार हैं परन्तु देव ऋद्धि दर्शन का अभाव है वहाँ पर सब ही एक समान ऋद्धि के धारक हाते हैं। तथा अनुदिष और अनुत्तर विमान वासी देवों में उत्पन्न होने वाले जीव सम्यक्त्व साथ लेकर ही उत्पन्न होते हैं। उनके यह कल्पना नहीं है।

मनुष्येषु चतुर्धर्मश्रवणं गुरुणाँ जातिस्मरणम्
जिन भक्तिः जिनविम्वः सम्यक्त्वोपार्जनस्यसदा ।।३३७।।

मनुष्यों के सम्यक्त्वो पार्जन में वाह्य साधन जिन भक्ति, जिनविम्व दर्शन, धर्मो पदेश श्रवण तथा गुरुओं के दर्शन व दानादि क्रियायें हैं। तथा जाति मरण होने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। तथा गुरुओं की अतिशय प्रभावना देखकर श्रद्धान होता है ।।३३७।।

अभ्यन्तरे सर्वेषां दर्शनमोहस्योपशमं सदा ।।
क्षय न क्षयोपसम च चरित्र मोहस्य कषायाः ।३३८।।

अतंरंग साधन सब जीवों के समान ही है किसी के हीनाधिक नहीं है दर्शन मोह की मिथ्यात्व सम्य मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति इन तीन तथा चारित्र मोह की अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात के उपशम होने पर उपशम सम्यक्त्व तथा क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व तथा सर्व घातिया प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय तथा सदवस्थारूप उपशम तथा सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो सम्यक्त्व होता है वह क्षयोपशम कारण है तथा सम्यक्त्व तीनों ही भव्य से पर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों के ही उत्पन्न होता है तथा साकार निराकार अनुपयोगों से युक्त जीवों के होता है ।।३३८।।

आगे सम्यक्त्व के निशाँकित अंग को कहते हैं।

अविचलोगंभीरश्च जिनाज्ञा प्रतिपालकोनिःसंकः ।।
खड़ग धारायांपयं तच्छ्द्धानं निशांकितांगः ।।३३९।।
नाभूवन् भवतारः सांप्रते भवन्ति जिनवचोन्यथा ।।
इत्यकंपायमनेच मा शंसयारुचिः परिपक्व ।।३४०।।

संसारावस्था में जो भी कार्य देखे जाते हैं वे भय युक्त ही रहा करते हैं परन्तु जब वे भगवान जिनेन्द्र के द्वारा कहे गये सत्पथ को प्राप्त होने वाले भव्यात्मा किसी भी कारण के मिलने या कुमार्ग में चलने वाले मिथ्यादृष्टियों के वैभव व पुण्य और लक्ष्मी की समृद्धि देखते हुए उनके बताये हुए मिथ्यामार्ग मिथ्याधर्म की प्रभाव व प्रभावना को देखते

हुए जो अपने ग्रहण किये हुए सन्मार्ग से चलायमान नहीं होते हैं वे ही बड़े गंभीर होते हैं। मिथ्यामार्ग की परीक्षा करने के व सन्मार्ग को परीक्षा कर उन्मार्ग का त्याग कर देते हैं। वे निशंकित व निर्भय भव्य जिन वचन में रंचमात्र भी शंका नहीं करते हैं वे यह कहते हैं कि अहिंसामय ही धर्म है तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ही निश्चय और व्यवहार धर्म है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ मार्ग है। इस से भिन्न अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है। क्योंकि अन्य मार्ग में जिनेन्द्र द्वारा प्रज्ञप्त मार्ग के समान समतुलना नहीं है। मोक्ष का साक्षात् मार्ग यह जिनलिंग है वह जिनलिंग निर्ग्रन्थरूप है। इस निर्ग्र थलिंग से ही सिद्ध गति प्राप्ति होती है, यह निर्ग्रन्थलिंग ही सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है, यह निर्ग्रन्थलिंग ही साक्षात् मोक्ष मार्ग हैं, जितने अन्य मार्ग हैं वे सब उन्मार्ग हैं। जिन मार्ग ही निर्वाण में ले जाने का व सब दुःखों के कारणों को नष्ट करने वाला वज्र के समान हैं। जिस प्रकार वज्रके पड़ने पर पर्वत के पर्वत चूर्ण हो जाते है तथा गिर जाते हैं। यह निर्ग्रन्थ जिनलिंग सब प्रकार के पाप वासनाओं से रहित माता के गर्भ से उत्पन्न हुए बालक के समान निर्विकार तथा जात रूप है। यह सम्यक्त्व का निशंकित अंग है।

जैसा कि तलवार की धार के ऊपर रक्खा गया पानी जैसा का तैसा अचल रहता है वह पानी चलायमान नहीं होता है। उसके जिन वचन में संदेह नहीं होता है अथवा कोई विकल्प भी नही होता है। संशय—दो वस्तुओं का एक वस्तु में निर्णय नहीं जैसाकि दिगम्ब निर्ग्रन्थ अचेलत्व से मोक्ष होगा या वस्त्र धारण किये हुए होगा। वह वस्त्र सहित जिनमार्ग है या वस्त्ररहित है। यह सर्व प्रकार के परिग्रह के त्याग रूप है या परिग्रह सहित के जैन धर्म है। जिनका समाधान हो नहीं सकता है उनको संशय कहते हैं, परन्तु जिनेन्द्र भगवान के वचन में जो शंका नहीं करता है, उसके ही निशंकित अंग होता है।

सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय करता है कि जिनाज्ञा भूतकाल में भी मिथ्या नहीं हुई वर्तमान में भी मिथ्या नहीं हो रही है और भविष्य में भी मिथ्या नहीं हो सकती है कोई अज्ञानी विचार करता है कि सर्वज्ञ तीर्थंकर को बताई बात मिथ्या हो जायेगी या मैं मिथ्या कर के बताऊंगा ऐसा गर्व करने वाले रोहिणी के भाई द्वीपायन ने प्रयत्न किया। एक दिन नेमिनाथ भगवान का समोशरण गिरनार पर्वत पर आया हुआ था कि यादव सब दर्शन करने के लिये गिरनारी पर्वत पर पहुचे और प्रदिक्षणा कर पूजा वंदना करी और मनुष्यों के कोठा में आ विराजे और बलभद्र ने भगवान से कुछ प्रश्न किये कि हे भगवान जो द्वारिका नगरी देवों कर रची समुद्र के बीच में है यह नगरी कबतक ज्योंकि त्यों स्थित रहेगी ? और किसके कारण और कब विनाश को प्राप्त होगी ? श्री कृष्ण की मृत्यु कैसे और किसके हाथ से होगी ? यह सुनकर भगवान नेमिनाथ की दिव्य ध्वनि खिरी कि हे बलभद्र जो तूने प्रश्न किये हैं सो सुन, तेरे पास में बैठे हुए रोहिणी का भाई द्वीपायन के बायें हाथ से पुतला निकलेगा जिससे द्वारिका का दहन होगा। और तेरे भाई जरद कुमार का तीर श्रीकृष्ण के पद्म को फारेगा जिससे श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। उस समय जरद कुमार के हाथ में जो इषु है उसी से मारे जायेंगे। तथा जो दीक्षा लेकर निकल जायेंगे वे रह जायेंगे व तुम दोनों भाई अग्नि से बचोगे। इन सब बातों को श्रीकृष्ण व रोहिणी के भाई ने मिथ्या करना चाहा परन्तु वह

मिथ्या हुई नहीं। इसकी कथा हरिवंश पुराण में से जानना चाहिये। तथा पहले भी कह आये हैं। यह जिन वाणी कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती है न हुई थो न होगी ऐसादृढ़ श्रद्धान का होना ही निशाँकित अंग है तथा संशय और अरुचि का न होना ही सम्यक्त्व का निशाँकित अंग है। ऐसा ही है अन्यथा नहीं हो सकता है। भय और अरुचि संशय का निराश करना यह निशाँकित अंग हैं जिन के सात भयों में से एक भी भय वनी रहती है वे निशांकित निर्भय नहीं इस लोक भय, परलोक भय, मरण भय, वेदना भय, अनरक्षक भय, अगुप्ति भय, अकस्मात् भय। जिन कारणों से अपने कुटुम्व परिवार धन आजीविकादि विगड़ जाने की आशंका होती है उसको इस लोक भय है जो सव संसारी जीवनिके हैं। परलोक में मरण के पीछे कौन गति कौन क्षेत्र को प्राप्त होऊंगा ऐसी अंतरंग भावना का होना परलोक भय है। और मेरा मरण होगा ऐसी आशंका होने पर भय होता है जो मेरा नाश होवेगा न जानें कैसा दुःख भोगना पड़ेगा अव मेरा अभाव होवेगा ऐसा मरण भय है। मेरे वेदना होयेगी ऐसी आशंका की उत्पत्ति का होना सो हो वेदना भय है, अपना यहाँ पर कोई रक्षक नहीं ऐसा जान कर भय करना सो अनरक्षक भय है। और अपनी वस्तु को कोई चुरा ले जावे नहीं सो हो अशंका का होना सो चोर भय या अगुप्ति भय है। जो अकस्मात् में दुःख आ उपलव्ध हुए यह आकस्मिक भय है। जो स्वपर के स्वरूप का संवेदक होता है उस सम्यग्दृष्टि के ये भय नहीं होते हैं। जो पैर के नख से लेकर मस्तक की चोटी पर्यन्त चैतन्य ज्ञान धन है वह ही आत्मा हमारा तो धन है इससे भिन्न परमाणु मात्र भी हमारा धन नहीं है शरीर और शरीर से संवंधि स्त्री पुत्र धन धान्य राज्य वैभवादिक हैं वे मेरे स्वरूप स्वभाव से विलकुल भिन्न हैं। संयोग से उत्पन्न हुए हैं। इन पर द्रव्यादिका और हमारा क्या संवन्ध ? संसारावस्था में ऐसे सम्वन्ध संयोग अनंतानंत वार प्राप्त हुए हैं। और वियोग को प्राप्त हुए हैं। स्वभावतः जिनका संयोग हुआ है, उनका नियम से वियोग होगा ही। जो उपजा है वही विनशेगा मैं ज्ञान स्वरूप उपजा नहीं न विनाश ही होऊंगा ऐसा जिसके दृढ निश्चय है उसके देह रूप परिग्रह के विनाश रूप इस लोक परलोकादि भय नहीं है। उसके ही निशाँकित अंग होता है। उसके परलोक भय भी नहीं है। जिसमें छह द्रव्यें देखी जाती हैं वही लोक है इसलिये हमारा लोक तो हमारा दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग ही है जिसमें द्रव्यें दिखाई देती हैं जानी जाती हैं।

जिसमें समस्त वस्तु झलकती है वही हमारे ज्ञानदर्शन में अवलोकित होते हैं ज्ञान के वाह्य किसी वस्तु को मैं नहीं देखता हूं नहीं जानता हू यदि हमारा ज्ञान है तो निद्रा से युक्त हो जाता है अथवा रोगादि के होने के कारण मूर्छित मुद्रा में हो जाता है तव सव लोक विद्यमान होते हुए भी अभाव रूप ही हुआ इसलिये हमारा लोक तो हमारा ज्ञान धन आत्मा ही है हमारा ज्ञान किसी वस्तु में देखने में नहीं आता है न जानने में ही आता है ज्ञान से भिन्न जो लोक है वह नाना भेद को लिये हुए हैं वह स्वर्ग नरक त्रियक् ये सव सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष भूत हैं वे भी मेरे स्वभाव से भिन्न हैं। जो पुण्य का उदय है वही स्वर्ग है और पापका उदय है जिससे नरक गति अशुभ गति को देने वाला है और पाप पुण्य दोनों ही विनाश युक्त है तथा स्वर्ग नरक ये दोनों ही पाप पुण्य का फल है वह भी विनाशी है। परन्तु मेरा आत्मा अनंतदर्शन

ज्ञान सुख वीर्य रूप अविनाशी है मोक्ष का नायक है मेरा लोक तो मेरे में ही विद्यमान है उसमें ही समस्त वस्तुओं को देखता हूं। जानता हूं, इस प्रकार सम्यग्दृष्टि के परलोक का भय नहीं है। यह निशाँकित अाग है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान ये पांचइन्द्रिय मन स्वाच्छोच्छ्वास मन वचन काय बाल और आयु ये भी कर्म जनित हैं और पुद्गल प्रश्रयरूप हैं इनका नाश होना ही संसार में मरण है। परन्तु आत्मा के ज्ञान दर्शन सुख वीर्य कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते हैं अवश्य ही अविनाशी भाव प्राण हैं उनका विनाश किसी भी काल में नहीं है।

इसलिये जिसकी उत्पत्ति हुई है वही विनाश को पावेगा। मेरा सुख ज्ञान दर्शन वीर्य की सत्ता सदा काल विद्यमान रहती है कदाचित भी विनाश को प्राप्त नहीं होती है। इन्द्रियादिक जो प्राण हैं ये पर्याय के साथ में उपजते हैं। और पर्याय के साथ विनाश को प्राप्त होते हैं परन्तु चैतन्य तो मैं अविनाशी हूं। इस प्रकार निश्चय का धारक सम्यग्दृष्टि जीव मरण के भय की शंका नहीं करता है। इसलिये उसके वेदना भय भी नहीं है निशांकित है। वेदना का नाम अनुभव करने का है सो अनुभव करने वाला तो मैं ही हूं मैं जीव हूं मैं अपने ज्ञान दर्शन का अनुभव करने वाला हूं मैं अविनाशी हूं। वह ज्ञान का अनुभव शरीर गोचर नहीं है शरीर में नहीं है। वेदनीय कर्म जनित जो वेदना है वह सुख दुख रूप है वह वेदना मोह कर्म के अधीन है वह मेरा नहीं है। और मेरा रूप भी उस प्रकार नहीं है वह तो शरीर के साथ में है। मैं इनसे भिन्नज्ञाता दृष्टा हूं इस प्रकार ज्ञानीवेदना को शारीरिकवेदना को भिन्नजानता हूं। सम्यग्दृष्टिवेदना के भयसे निशंकहोता है। सम्यग्दृष्टि जीव के अनरक्षक भय भी नहीं होता है। वह विचारता है कि जो उपजा है उसका ही विनाश होगा जिनका संयोग हुआ है उनका ही वियोग होगा। जो मेरे स्वभाव से भिन्न वस्तुयें हैं वे धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, राज्य, वैभव व शरीर तो पुण्य पापाधीन हैं, जब पुण्य का उदय होवे तब आन मिलें जब पाप का उदय हो तब बिछुड़ जाती हैंतथा हरण करली जावें परन्तु इससे भिन्न मेरा आत्मा अनन्तधनवाला तो सत्ता स्वरूप विद्यमान है असहाय सत् स्वरूप है। इसका हरण करने व विनाश करने वाला कोई भी देव दानव नहीं और रक्षा करने वाला भी नहीं, जिसका कोई विनाश करने वाला हो उसका रक्षक भी अवश्य चाहिये। सम्यग्दृष्टि अविनाशी स्वात्म स्वरूप का ही अनुभव करता है इसलिये उसके अनरक्षक भय नहीं निशांकित है। और अगुप्ति भय जो कपाटादिक की रक्षा बिना हमारा धन नष्ट हो जायेगा ऐसा चोर का भय भी नहीं है जो वस्तु का स्वरूप है वह तो अपने स्वभाव में ही है अन्यत्र नहीं है। तथा अपना स्वरूप अपने से भिन्न नहीं है इसलिये चैतन्य स्वरूप जो मैं और मेरा आत्मा का चैतन्य स्वरूप मेरे में ही है। परका प्रवेश नहीं जो हमारा अनन्त दर्शन ज्ञान ही हमारा रूप है वही हमारा अप्रमाण अविनाशी धन है उसमें चोर का प्रवेश नहीं है और चोर का भय भी नहीं है इसलिये सम्यग्दृष्टि अगुप्ति रहित निशंक है।

सम्यग्दृष्टि के आकस्मिक भय भी नहीं है अपना आत्मा निश्चय नय की दृष्टि से मेरा आत्मा तो सदा शुद्ध है ज्ञाता दृष्टा और अचल अनादि अनंत है, स्वभाव से सिद्ध है अलक्ष चैतन्य प्रकाश रूप सुख का स्थानक है इसमें अचानक कुछ भी नहीं बिगाड़ होता। इस प्रकार दृढ़ भाव सहित सम्यग्दृष्टि निशांकित है। सम्यग्दृष्टि जीव हिंसादि पाप कार्यों के

करने व उसके फल की प्राप्ति में धर्म नहीं मानता है। तथा दूसरे मिथ्यादृष्टियों के कहे हुए धर्मों पर ही विश्वास नहीं करता है। जिन वचन का ही गाढ़ श्रद्धा न करता है ऐसा निशांकित सम्यग्दृष्टि का प्रथम अंग है ॥३४०॥

निकांक्षित अंग का स्वरूप

भोगोपभोगयो माङ्‌काञ्छा सम्यक्त्व संयम तपैः।
यद्धर्मोरातिमुक्तिः किं तन्नराति संसार वैभवं ॥३४१॥
यत्कृषकइच्छति फलं माङ्फलालार्थं च करोति कृषिं।
सदृष्टोच्छति राज्येन्द्राद्युच्च पदानिरा दुष्कृत् ॥३४२॥

इस धर्म के धारण करने से मुझको भोग और उपभोग की वस्तुयें प्राप्त होने से धन धान्य का स्वामी होऊं। जो मैंने सकल विकल संयम धारण किया है तथा उपवासादिक तप किये हैं, अनेक प्रकार से मुनियों के लिये दान दिये हैं, उनके प्रभाव से मुझे राज पद की प्राप्ति होवे विद्याधर होऊं, ऐसी इच्छायें सम्यग्दृष्टि नहीं करता है। जिस सम्यक्त्व के होते ही संसार का विच्छेद हो जाता है तथा संयम के धारण करने से अनेकों भावों के उपार्जन किये हुए दुष्ट कर्म क्षय हो जाते हैं। व जिस तप के करने से मोक्ष सुख मिल सकता है तव अन्य की तो कथा ही क्या जिस सम्यक्त्व संयम तप की पूजा चक्रवर्ती व इन्द्रादि देव करते हैं जिससे मोक्ष रूपी अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है। जिस धर्म के धारण करने से त्रिलोक का अधिपत्यपना प्राप्त होता है क्या वह धर्म संसार की विभूतियाँ नहीं देख सकता है? जिस धर्म के धारण करने से सव प्रकार के विभाव और विनाशक दुःख देने वाले पापकर्मो का नाश हो जाता है भोग और उपभोग की जितनी वस्तुयें हैं वे सव ही विनाश युक्त हैं कर्म से उत्पन्न हुई है और अपना फल देकर नाश हो जाने वाली हैं। पुण्य का जव उदय होता है तव ये विभूतियाँ चमकती हैं जव पाप का उदय होता है तव ये विभूतियां नाश हो जाती हैं। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि जो विनाशिक पराश्रित भोगोपभोग की वस्तुयें जितनी दिखाई देती हैं वे मेरी नहीं मैं भी इनका स्वामी नहीं। मेरे स्वरूप का मैं स्वामी हूं मेरा भोग और उपभोग तो मेरा ज्ञान दर्शन अनंत सुख अनंत वीर्य ही है जिसका कभी भी शस्त्र से नाश कोई कर नहीं सकता है कोई भी विद्याधर व राजा चोर भी जिसका अपहरण नहीं कर सकता है वह एक चिदानंद ज्ञान धन स्वरूप शुद्ध है। वह मेरा स्वभाव अन्य द्रव्य के संयोग संबंध से डूवता नहीं है न विनाश ही होने वाला है। जो पराश्रित होते हैं वे अपने को कैसे सुख की सामग्री दे सकते हैं? क्योंकि पराधीनता में सुख कदापि नहीं हो सकता है ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार कर आगामी भोगोपभोग व लौकिक वैभव राज्यादि विभूतियों की कभी भी वाञ्छा नहीं करता है। जव तक पुण्य का उदय नहीं आया है तव तक करोड़ों उपाय करने व पुरुषार्थ करने पर भी इन्द्रिय भोगो की वस्तुयें प्राप्त नहीं होती है जो हैं वे भी अनिष्ट को प्राप्त होती हैं जिससे इष्ट वियोगादि अनेक प्रकार के दुःख सन्मुख आ जाते हैं। कदाचित् पुण्य का भी उदय आ जाय तो वह भी विनाशीक हैं। और इष्ट इन्द्रिय जनित हैं सो भोगते ही दुख का देने वाले है। जो इष्ट का संयोग हुआ है वह भी विनाशिक है आकाश में चमकती हुई विजली के समान क्षण में नाश हो जाता हैं, तथा पराधीन है, तथा शरीर को निरोगता के अधीन है, धन व

स्त्री के अधीन है, पुत्र के आधीन, आयु के आधीन. जीविका और क्षेत्र के आश्रित है। काल और इन्द्रियों के अधीन है, तथा इन्द्रिय विषयों के अधीन है, इत्यादि अनेक प्रकार से पराधीन है। और विनाश के सन्मुख है वे भोग और उपभोग कितने काल तक भोगने में आते हैं। इसलिये इन्द्रिय जनित भोग हैं सुख हैं वे सव अन्तसहित हैं और जो अन्तसहित हैं तो भी धारा प्रवाह रूप नहीं है बीच-बीच में अनेक प्रकार के दुख बीच-बीच में आ जाते हैं कभी रोग हो जाने से कभी पुत्र व स्त्री व माता-पिता का वियोग होने रूप दुख कभी अनायास में ही अपमान का होना कभी धन हानि का होना कभी अग्नि का संयोग होना तथा वैरियों के द्वारा धन कीर्ति का नाश करने रूप अनेक प्रकार के दुःख आ जा है। दुख सहित है, और पाप वृद्धि का कारण बीज रूप है। इन्द्रिय जनित सुख में मगन होने पर अपने अपने आत्म जन्य सुख को भूल जाता है और महाघोर आरम्भ करने में लग जाते हैं। परन्तु उनका जैसे-जैसे सेवन करते जाते हैं वैसे ही पाप बढ़ता जाता है और पाप बंध विशेष होता जाता है। इसलिये ये इन्द्रिय जनित सुख हैं ये सब पाप के कारण और नरक गति त्रियंच गतियों में भ्रमण कराने वाले हैं। ऐसा पराश्रित क्षणभंगुर दुखों कर व्याप्त जो इन्द्रियजनित सुख हैं वे सम्यग्दृष्टि उसको सुख नहीं मानता वे तो सुखाभास ही मानता है। तब सुख में आस्था रूप श्रद्धान कैसे हो सके ? जव श्रद्धान होता नहीं है तव इच्छा कैसे करे ? तात्पर्य यह है कि जो सम्यग्दृष्टि है उसके आत्मा का अनुभव होता ही है जब आत्मा का अनुभव हो जावे तव आत्म स्वभाव को अतीन्द्रिय निराकुल अनंत ज्ञान अविनाशी सुख का अनुभव होता है। इसलिये संसारी जीव के जो इन्द्रिय जनित सुख हैं वे सुख नहीं सुखाभास ही दिखाई देते हैं और वेदना का इलाज हैं। जिसके क्षुधा की वेदना उत्पन्न होगी वही भोजन की अभिलाषा व भोजन कर सुख मानेगा। जिसको प्यास लगेगी वही शीतल पानी पीने की इच्छा करेगा, जिसको शीत की वेदना होगी वही रजाई व चादर कम्वलादि वस्त्रों को ओढने के सन्मुख होगा, जिसको गर्मी की वाधा होगी वही शीतल पवन की इच्छा करेगा इसलिये विना वेदना के इलाज कौन करे ? विना नेत्र रोग के वकरी की पेशाव नेत्र में कौन डाले ? कर्ण रोग विना कौन वकरी का मूत्र तैलादि को कौन कान में डाले ? शीतज्वर की वेदना विना कौन अग्नि की गर्मी व सूर्य की गर्मी की इच्छा करेगा ? तथा वात रोग विना दुर्गंध मय तेलों का कौन मर्दन करेगा ? इसलिये सांसारिक पंचेन्द्रियनिके विषय चाह रूप तीव्र आताप उपजता है तो भी विषयनकी पुनः इच्छा होती है। विपय भोग की इच्छा से उत्पन्न वेदना तो स्वल्प काल ही रहकर सेवन करने से पुनः अधिक-अधिक वेदना उत्पन्न करते हैं। इसी कारण इन्द्रियों से उत्पन्न हुए सुख सुख नहीं दुख रूप ही हैं। जिस प्रकारा सूर्य अस्त के समय गगन में जो पीलापन छा जाता है जिसके पीछे अंधेरा लगा आता है वैसे ही ये सांसारिक विषय वासना से होने वाले सुख हैं कि जिनके पीछे महा दुःख का अनुभव करना पड़ता है। वाह्य इन्द्रिय व शरीर व शरीर से सम्वन्ध रखने वाले पदार्थो को अपने मानता है वह वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। इन्द्रिय विषयन की वेदना पूर्वक इलाज को ही सुख मानता है यह भी दर्शन मोह के कारण भ्रम वृद्धि है सुख तो वह है जिसमें वेदना का अंश भी नहीं है निराकुल स्वानुभवरूप है। विषयन के आधीन सुख मानना मिथ्या श्रद्धान है। इसलिये

सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्र और महेन्द्र चक्रवर्ती आदि के सुख को भी नहीं चाहता है। वह विचारता है कि यह सुख पराश्रित पुण्य कर्म के आधीन है। और विनाशीक केवल दुख रूप ही भाषता है। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव के इन्द्रिय जनित सुख की कभी इच्छा नहीं होती है। इस जन्म में भी धन वैभव राज्य पदादि नहीं चाहता है और पर भव में भी इन्द्र चक्रवर्ती धरणेन्द्र इत्यादि पदों की इच्छा नहीं करता है। इन्द्रिय जनित सुख हैं वे अल्पकाल है आगे इनका फल रूप दुःख काल असंख्यात काल नरकों का दुःख तथा त्रियंच गति में दुःख असंख्यात व अनंतकाल तक भोगना पड़ेगा। तथा कभी दीन दरिद्र महारोगी इत्यादि दुःख भोगने व सहने पड़ेंगे। इस संसार में जीव आशाकर जीवित होय रहा हैं। जिस आशा की पूर्ति कभी नहीं होती हुई देखी जाती है अपितु दुःख ही देखा जाता हैं। अज्ञानी मोही जीव व्रत शान्ति तप संयम धारण करते हैं परन्तु इच्छा करके पुण्य का घात कर डालते हैं पुण्य बंध तो निर्वांच्छक के ही होता है इसीलिये शुभ तथा अशुभ कर्म फल में ही संतोषी होकर तथा निराकुल होता हुआ विषय सुखों की इच्छा नहीं करता है।

जिस प्रकार किसान खेत को खोदना, जोतना खाद डालनाऔर पानी देना पुनः जोतना पानी देकर बीज को बोआ करता है जब उसमें अंकुर आ जाता है पौधा हो जाता है तब वह खुरपी लेकर खराब पौधों को निकाल कर बाहर फेंकता जाता है और उसका लक्ष्य उस फसल के धान्य फल की तरफ रहता है वह पलाल की तरफ दृष्टि नहीं डालता है वह तो विचारता है कि जब मेरे धान्य आवेगा तो पुआल भूसा तो आप ही प्राप्त हो सकता हैं मैं पुआल की क्यों इच्छा करूँ ? मैं पुआल के लिये इतना कष्ट क्यों सहन करूँ इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि चिन्तवन करता है कि जिस सम्यक्त्व संयम तथा धर्म का फल तो मोक्ष सुख व तीन लोक का अधिपत्य प्रदान करता है। बाकी जो संसार के सुख व वैभव ऐश्वर्य व पंचेन्द्रियों के भोग उपभोग व धन धान्य सब वस्तुयें हैं वे सब पुआल के समान ही हैं तथा चक्रवर्ती इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, नारायण, प्रति नारायण, बलभद्र, राजपद, मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर कामदेव इत्यादि पद तो पुआल के समान ही हैं। जिस धर्म के प्रभाव से तीन लोक की उत्तम से उत्तम विभूतियाँ पैरों में पड़ती हैं अथवा मोक्ष सुख तीर्थंकरादि पद तीन लोक के द्वारा वंदनीय ऐसा अरहंत सिद्ध पद प्राप्त हो सकता है क्या उस धर्म को धारण कर लौकिक इन्द्रिय जनित सुख के लिये बेच दूं ? नहीं कदापि नहीं। जितने वैभव हैं वे सब वैभव पापास्रव और पापबंध के कारण हैं, इसलिये उनकी इच्छा नहीं करता है यह निकाँक्षित अंग सम्यग्दृष्टि का है ॥३४१।३४२॥

निर्विचिकित्सा अंग का स्वरूप

> यत्पश्यति पराऽवगुणानां न करोति निन्दा च तेषाम् ।
> आलोक्यं बहुगुणान् समभावमापद्य त्सदा ॥३४३॥
> यत्सदृष्टि गुणार्विशेषोत्कण्टं निर्विचिकित्साऽऽपद्यते ।
> जल्ल मललिप्तगात्रे न स्पर्धा कदापि सदृष्टिः ॥३४४॥

भव्य सम्यग्दृष्टि दूसरों के अवगुणों को नहीं देखता है तथा देखे हुए अवगुणों को भी प्रगट नहीं करता है न होने ही देता है। न उनकी निन्दा ही करता है वह तो उनके अन्दर में छिपे हुए गुणों को ही देखता है, परन्तु बाहर में शरीर पर लगे हुए मैल और

पसीना से निकलने वाली दुर्गन्ध को नहीं देखता है न उसके प्रति द्वेष ही करता है वह तो स्वभाव को ही प्राप्त होता हुआ उनके गुणों में अनुराग करता है यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अंग है।

जहां घोर कठोर तप चारित्र के धारण करने वाले व परीषह और उपसर्गों को जीतने वाले हैं जो अंतरंग में चौदह प्रकार का परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, राग, द्वेप, चौदह प्रकार के परिग्रह रूप भार से रहित हो गये हैं तथा जिन्होंने क्षेत्र वस्तु, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण तांवा, दासी स्त्री, पुत्र, आभूषण, वस्त्र और मोती पीतल इत्यादि के वर्तन रूप परिग्रह का त्याग किया है। जो मुनियों के मूलगुण व उत्तर गुणों के धारक हैं वे मूलगुण पंचमहाव्रत पांच समिती पंचइन्द्रिय निरोध छह आवश्यक तथा केश लोच करना, स्नान न करना व खड़े होकर आहार करना व एक बार अन्न पान करना जमीन पर सोना ये मूलगुणों का निर्दोष पालन करते हैं तथा ये मुनिराज तालाव, कुंवा, वावडी, नदी आदि में स्नान नहीं करते हैं न वे नीम, कीकर, शीसम आदि की दातोन लेकर दातोन ही करते है न मंजन व बुरुप आदि से भी दांतों का घर्सन ही करते हैं, तथा धूप के लगने से जिनके शरीर में स्वेद वहने लगा है हवा के चलने से माटी व धूल उड़कर शरीर पर आकर लग जाने से सब शरीर जिनका मैला हो गया है उनको देख मूर्खअज्ञानी उनकी निन्दा करते हैं। तथा घृणा की दृष्टि से देखते हैं वे उनके गुणों को नहीं देखते हैं।

परन्तु सम्यग्दृष्टि उनके शरीर मात्र को देखकर घृणा नहीं करता है न दुर्भावनायें ही करता है वह विचार करता है कि यह शरीर तो स्वभाव से ही दुर्गन्ध मय है इसके सर्वांग से मल सतत निकलते ही रहते हैं वे मल अत्यन्त दुर्गन्धमय हैं जिन मलों का नाम लेने पर भी घृणा उत्पन्न हो सकती है तथा यह शरीर सप्त कुधातुओं से निर्माण हुआ है और वे कुधातुयें सब दशाओं में ही अपवित्र हैं। जिस शरीर का संवंध पाकर के शुद्ध सुगंधित वस्तुयें भी अपवित्र और दुर्गधमय हो जाती है तथा यह शरीर तो रोगों का ही एक मात्र स्थान है यह शरीर जितना ऊपर से दुर्गधमय हो जाती है उससे भी अधिक अन्तर में दुर्गधमम है। यदि इस शरीर को करोड़ों समुद्रों के पानी से धोया जावे तो भी यह शरीर पवित्र नहीं हो सकता है ऐसे शरीर से क्या प्रयोजन है ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार करता है। तथा वह यह भी विचार करता है कि इस शरीर में जो विद्यमान आत्मा है वह अनंत गुणों का समूह है उसमें ही रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र, विराजमान हैं उनसे ही यह शरीर पवित्र कहा गया है। इस शरीर से रत्नत्रय धारण करने व व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय से युक्त आत्मा इसमें विद्यमान है उससे ही यह पवित्र हो रहा है। रत्नत्रय के धारण करने व पालन करने के कारण ही इन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, वलदेव, वासुदेव, इत्यादि महान महान पुरुष मस्तक झुका कर वंदना व नमस्कार करते हैं। इस प्रकार मन में संतोष कर उनके गुणों में अनुराग करता है तथा उनकी सेवा वैयावृत्ति करता है तथा आहार दान, औषधी दान देता है। तथा रोगी या वेदनीय कर्म के उदय में आने के कारण कोई भयंकर रोग हो गया है व दुर्गन्ध आ रही व वेदना हो रही हो या शीत उष्णता के

कारण घवड़ाहट उत्पन्न हो गई हो उस समय उनकी सेवा तन मन धन लगाकर करता है तथा हाथ पैर की सेवा वैयावृत्ति करता है। तथा उपकरण शास्त्र वस्तिका चटाई फलक आदि देकर उनका मान सत्कार करता है। इत्यादि प्रकार से सेवाकर अपने को कृतार्थ मानता है यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अंग है। इसलिये पुद्गल द्रव्य के नाना स्वभाव जानकर मलमूत्र रुधिकर माँस सहित दरिद्र रोगादिक सहित मनुष्य त्रियंचनिके शरीर मलिनता व दुर्गंधादि को देख कर व सुनकर ग्लानि नहीं करता है। जो कर्मों के उदय करि अनेक क्षुधात्रषा रोग दारिद्रादि कर दुःखित होना तथा पराधीन वंदी गृहादिक में पड़ना नीच कुलादिक कुलों में उत्पन्न होना तथा नीच कर्म कर मलिन भोजन करना महामलिन वस्त्र धारण करना, खोटा रूप अंग उपाँगादिका मिलना होता है सम्यग्दृष्टि इनमें, ग्लानि कर अपने मन को नहीं विगाड़ता है। तथा निंद्य कर्म करने वाले व कषायों के अधिक निंद्य आचरण करते हुए देखकर भी अपने परिणामों को नहीं विगाड़ता है उसके निर्विचिकित्सा अग होता है तथा मलिन क्षेत्र मलिन ग्राम तथा गृहादिक में मलीनता दरिद्रता देखकर ग्लानि नहीं करता है। तथा अंधकार, वर्षा, ग्रीष्म, शीत, वेदना से युक्त काल को देख कर ग्लानि नहीं करता है। और अपने दरिद्रता व रोग आता हुआ वियोग होता तथा अशुभ कर्म के उदय को प्राप्त होने पर भी अपने परिणामों में ग्लानि नहीं करता है। जो मैंने पूर्वभव में जैसा कर्म किया है उसका विपाक आज प्राप्त है सो मुझे ही भोगना पडेगा इन अशुभ कर्मो का तो ऐसा ही स्वाभाव है। इस प्रकार जानकर मन में खेद खिन्न नहीं होता है। उस पुरुष के निर्विचिकित्सा अंग होता है। सम्यग्दृष्टि जीव गुणवानों के गुणों को ग्रहण करता हुआ अपने अवगुणों का त्याग करता है और उनकी सेवा वैयावृत्ति करता हुआ अपने को धन्य मानता है और तत्पर रहता है। यह सम्यग्दृष्टि तो गुणों का ही ग्राहक होता है वह लाखों करोडों अवगुणों को नहीं देखता है। वह तो गुणोंका ही पारखी होता है उसका हृदय करुण से भीगा हुआ होता है और निर्दयता से भिन्न रहता है तथा सव जीवों को अपने समान मानता है यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अंग है ॥३४३।३४४॥

आगे अमूढ दृष्टि अंग को कहते हैं।

यज्ज्ञानान् मायाया वर्जन्ति सत्पथात् धार्मिकान् यदा।
माड्पूजा खलु स्पार्धा तदाज्ञाधर्म स्वीकुर्वन्ति ॥३४५॥
श्रद्धान जिनकथितं वाक्षु माञ्चलन्ति सद्धर्मात् किंचिदपि ॥
तत्सामूडदृष्टिश्च भवघातो हेतु भव्यानाम् ॥३४६॥

जो अज्ञानी लेकिन मिथ्यादृष्टि मायावीजन धर्मातमाओं को ठगने की चेष्टा करते हैं। जो कुधर्म को ही सच्चामार्ग धर्म और कुचारित्र को ही सुचारित्र मानते हैं और अपनी पूजा प्रतिष्ठा दिखाने की चेष्टा करते हैं। वे वहिरात्मा आत्मस्वभाव व धर्म के स्वरूप से विपरीत लौकिक धर्मो को ही धर्म कहते हैं उस धर्म को ही जगत जीवों का उद्धारक व कल्याण का पथ कहते हैं। लौकिक मूढ लोग यज्ञों में पशुवलि चढ़ाकर व पशुओं को अग्नि कुण्ड में झोंक कर कहते हैं कि देखों धर्म का प्रभाव कि सव जीव स्वर्ग वासी वन गये वे वैकुण्ड में आनंद करते हैं। इन्द्रजालिया मायावी लोग अनेक प्रकार की विभूतियें दिखाकर

सद्धर्म से वंचित॥ करने की चेष्टा करते हैं तथा भोले भाले संसारी अज्ञानी जीव उनके जाल में फँस भो जाते हैं।

परन्तु उनके बताये हुए धर्म मार्ग में रुचि न रखकर जो जिनेन्द्र भगवान ने सद्धर्म का जैसा उपदेश दिया है वही सत्य मार्ग है अन्य नही कैसे दृढ़ रहना यह अमूढ़ दृष्टि सम्यग्दृष्टि का अंग है। वह मायावी हिंसादि पापों में अनुरक्त रहने वाले कुटिल कुमार्गगामी जनों की प्रशंसा व कीति भी नहीं करता है। यदि करे तो मिथ्यामार्ग का ही पोषक हुआ उनकी कीर्ती व गुणानुवाद व प्रशंसा विनय पूजा भी नहीं करता है। उनकी निन्धा व धर्म के धारक मानकर उनकी सेवा वैयावृत्ति विनयाचार भी नहीं करता है। परन्तु जिन वचन पर ही अचल अकम्य विश्वास श्रद्धान रखता है, विश्वास रखता है, कि जगदीश ने जैसा वस्तु का स्वभाव कहा वैसा ही है अन्य प्रकार नहीं है अन्यथा कदापि हो नहीं सकता है अज्ञानी मोही कहते हैं कि स्त्री भी पुरुष रूप हो जाती है व ब्रह्मचारी भी विवाह करने पर ब्रह्मचारी ही रहता है वह अब्रह्मचारी नहीं होता है। घर साफ करते हुए भी केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है ऐसा कहकर लोगों को ठगते हैं, इस प्रकार उनके बताये हुए धर्म को मिथ्या रूप जान कर त्याग करता है। और जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म और धर्म के विषय में श्रद्धान करके सद्धर्म से रंचमात्र भी चलायमान नहीं होता है यह भव्य सम्यग्दृष्टि का अमूढ दृष्टि अंग है।

यह अज्ञानी मोही संसारी प्राणी मिथ्यात्व के प्रभाव व रागी द्वेषी देवन की पूजन प्रभावना देखकर प्रशंसा नहीं करता है देवों के मठ मन्दिरों में होने वाली हिंसा की प्रशंसा तथा देवों के लिये दी गई जो पशु-पक्षियों की वलि उसकी प्रशंसा करता है तथा दस प्रकार के दान को देकर उसको ही अच्छा मानता है। यज्ञ होमादि को व खोटे मंत्र तंत्र मारण उच्चाटनादिक खोटे कर्मों की प्रशंसा करता है। कुआ वावड़ी तालावादि खुदवाने की प्रशंसा ही करता है। न कंद मूल शाक पत्रादिक भक्षण करने वाले को श्रेष्ठ जानकर उनकी प्रशसा करता है तथा पंचाग्नि तप करने वाले वाघम्बर चर्म ओड़ने वाले भस्म रमाने वाले ऊर्ध्ववाहु रहने वालों को महान ऊंचा मानता है। गेरु से रंगे हुए वस्त्र तथा रक्त वस्त्र तथा श्वेत वस्त्रादिकों के धारणकरने वालों को श्रेष्ठमानता है। कुलिंगी भेषधारी जटाधारियों की प्रशंसा करता है। तथा खोटे तीर्थों की और रागी द्वेषी मोही व कुपरिणामियों व शस्त्र धारक देवों को पूज्य मानते हैं योगिनी यक्षिणी क्षेत्रपालादिकों को धन पुत्र के दाता मानता है रागादिक के मेंटने वाले मानता है। देवी देवताओं को कवलाहारी मानकर तेल, लपसी, पूवा, वड़ा, अतर पुष्पमालादि चढ़ाकर देवताओं को प्रसन्न करता है तथा देवताओं को रिश्वत देकर पूछता है कि हे देव मेरी मुकद्दमा में जीत हो जावे तो छत्र चढ़ाऊं या मेरी जीत हो जावे, पुत्र हो जावे, वैरी मर जावे तो तेरे मन्दिर में छत्र चढ़ाउँ मन्दिर वनवाऊं ध्वजा चढ़वाऊं व बकरा, मैंढा, मुर्गा आदि जीवों की वलि चढाऊं रोट व चूरिमा चढ़ाऊं तथा वालकन की चोटी चड़ूला उतरवाऊं इत्यादिक वोली वोलना सो सव तीव्र मिथ्यात्व के ही उदय का प्रभाव है। पर जीवों की विराधना की जाती है वहाँ ही महापाप होता है इसलिए देवता के निमित्त

है। जहाँ गुरुओं के निमित्त की गई हिंसा संसार सागर में डुबोने वाली है किन्हीं दुष्टजनों के भय से तथा लोभ के वशीभूत होकर व लज्जा के कारण भी हिंसा करने की भावना कदाचित भी मत करो क्योंकि दयावान धर्मात्मा की तो देव बिना विचारे ही रक्षा करते हैं जो किसी भी जीव की विराधना नहीं करते हैं उनकी देव भी विराधना नहीं करते हैं। रागी द्वेषी वस्त्रधारी जितने देव हैं वे सब आप भी दुःखी है तब वे दूसरों को सुखी कैसे बना सकते हैं। जो स्वयं ही भयभीत है असमर्थ है इसीलिये वे शस्त्र धारण करते हैं क्योंकि उनको भी मरण रूप विनाश का भय लगा हुआ है। जिनको भूख लगी होती है वही भोजन की इच्छा करते हैं इसलिये जितने खोटे मार्ग हैं वे तो सबके सबही संसार में पतन के कारण हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टियों के द्वारा किये गये त्याग व्रत उपवास भक्तिदानादि की मन वचन काय से प्रशसा नहीं करना यही अमूढ़ दृष्टि नाम का सम्यक्त्व का अंग है ॥ ३३३ ॥ ३३४ ॥

आगे उपगूहन अंग कहते हैं

अज्ञानात् प्रमादाच्च उद्भूतदोषानि स्वसामर्थ्यात्
विगलत सर्व दोषान् मानिन्दाकिंचत्कुर्वन्ति ॥३४७॥
चलतां धर्म वत्सलैः तद्दोषां क्षेपणंस्व विभवेन
उपगूहनं च संज्ञा याथा तथ्यं करणीयम् ॥ ३४८ ॥

जो अज्ञानता से व प्रसाद से व मिथ्यात्व कषायों की तीव्रता के कारणों से व चरित्र-मोह दर्शन-मोह के उदय में आने के कारण जो सम्यक्त्व व चरित्र से चलायमान हो रहा है व सम्यक्त्व और संयम को छोड़ने के सन्मुख हुआ है व दोष उत्पन्न हो गये हैं उन दोषों को बाहरी लौकिक मिथ्यादृष्टियों के ज्ञात न हो ऐसी क्रियाकर उन सब दोषों को दबा देना जैसी अपनी सामर्थ्य हो वैसा ही प्रयत्न करना तथा साम, दाम, दण्ड, भेद बनाकर इन चारों में से किसी एक का प्रयोग कर दोषों को दबा देना। तथा दूसरों के देखे हुए दोषों को अन्य को नहीं कहना न दोषों को करने वालों की निन्दा ही करता है। परन्तु उत्पन्न हुए दोषों को प्रयत्न पूर्वक दबाने की चेष्टा करता है। तथा जो बुद्धिमान ज्ञानी धर्म के धारकों के द्वारा गोपन कर उनको पुनः प्रायश्चित आदि देकर शुद्ध कर आदर विनय करना व धन मान आजीविका आदि की व्यवस्था कर देना यह उपगूहन अंग है। तथा उनको उपदेश भी देते है कि जो बालक होता है वह अनेक बार खड़ा होता है और गिर जाता है चोट भी लग जाती है। तो भी वह बच्चा अपने पुरुषार्थ को कदापि नहीं छोड़ता है एक दिन खड़ा होकर दौड़ने लगता है जो तुमने सम्यक्त्व व संयम धारण किये हैं, वही तुम्हारे अमूल्य रत्न हैं। इन रत्नों के समान जगत में कोई भी रत्न नहीं है। अज्ञानता से प्रमादस दोष उत्पन्न हो जाय तो उनको दूर कर पुनः शुद्ध कर लेना ही सम्यग्दृष्टियों का कार्य है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा विचार करता है कि इस मूर्ख ने सद्धर्म में दोष लगाया है इसके दोषों को यदि बाहर निकाल दिया जाय तो सच्चे सम्यग्दृष्टि संयमी धर्म के धारकों की बड़ी निन्दा होगी जिससे धर्मात्माओं के मन में बड़ी ठेस पहुंचेगी और धर्मात्मा की व धर्म की निन्दा जगह जगह होने लग जायेगी।

यदि यह दोष बाहर निकल जायेगा तो धर्मात्मा धर्म के धारकों की बड़ी ही निन्दा होगी और लौकिक जन यही कहेंगे कि जैनियों के त्यागी भी चाहे जो हुआ करते हैं पापाचारी होते हैं इससे धर्म और धर्मात्मा जनों को वड़ा धक्का लगेगा। कि अमुक जगह एक जैन साधू ने व धर्मात्मा ने मायाचारी करी चोरी करी परवस्तु का [अपहरण किया ऐसे निन्दा करेंगे उपहास करेंगे जिससे धर्म की बड़ी हानि होगी इसलिए भविष्य में कभी भी ऐसा खोटा कार्य मत करो जिससे तुम्हारी और धर्म व धर्मात्माओं को हंसी हो इस प्रकार समझाकर उसके दोष को दबा देना बाहर नहीं निकले देना यह सम्यग्दृष्टि का उपगूह्य सम्यक्त्व का अंग है। उसको यथार्थ धर्मात्मा बना देना यह सम्यक्त्व का अंग है ॥३४७।३४८॥

स्थितिकरण अंग

सम्यक्त्व संयमाभ्याँ च यत्कोऽपि चलतां धर्मं वत्सलैश्च।
प्रति तत्स्थापने प्राज्ञैः जिनौक्तः स्थितिकरणमुच्चते ॥३४९॥
दर्शन चारित्र मोहोदये विगलितेः श्रद्धासंयमात् ॥
शेवाविनयोपचारैः तत्स्थापने स्थापनं तदा ॥३५०॥

जो दर्शन मोह तथा चारित्रमोह की मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति तथा अनन्तानुवंधी और अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय में आने पर जिन का चित्र उद्विग्न व चलायमान हो गया है। धारण किये हुए देव शास्त्र व गुरु और जीवादितत्त्वों के श्रद्धान संयमासंयम या सकल संयम से विचलित हो रहे हैं। बुद्धिमान विवेकी धर्मनिष्ठावान उन को सम्बोधन कर व दिलासा देते हुए कि भाई आप घवड़ायें नहीं हम सब आपके ही हैं हमारा धन वैभव है वह आपका ही है। हम आपको कोई प्रकार की वेदना या अपमान नहीं होने देवेंगे ? । आप न घवड़ायें क्योंकि आपके अभी वेदनीय कर्म का उदय है। यह भी नहीं रहने वाला है कर्म अपना फल देकर अवश्य खिर जायगा। दूसरी वात यह है कि यदि श्रद्धान सहित सयम पूर्वक मरण करोगे तो शुभगति की प्राप्ति होगी और श्रद्धान संयम को विनाश करके मरण करोगे तो दुर्गति की प्राप्ति होगी, इसलिए सम्यक्त्व श्रद्धान व संयम पूर्वक ही रहना श्रेष्ठ है। इस प्रकार दिलासा देकर श्रद्धान और चारित्र में पुनः स्थिर व दृढ़ कर देना यही सम्यग्दृष्टि का स्थापना अंग है।

धर्मात्माओं के द्वारा सेवा वैयावृत्ति व उपचार कर व धन मान देकर व सन्मान करके उनको दिलासा देकर कि आप घवड़ायें नहीं हम आपके ही हैं आप हमारे ही हैं जो कुछ आपकी आज्ञा होगी उसको हम उसी प्रकार करेंगे। आपका जो श्रद्धान है धर्म में व धर्म के ऊपर है वही आपका उपकार करने वाला है। जो जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ सम्यक्त्व चरित्र है कि जिसको तुमनें ग्रहण किया है वह चरित्र आपके सव पापों को नाश करने वाला है। सब संसार के दुःखों से छुड़ाकर मोक्ष सुख देने वाला प्रधान दाता है। इस चरित्र को प्राप्त करने के लिए सर्वार्थसिद्धि के देव लालायित हो रहे हैं परन्तु उनको मिलता नहीं तुम्हारे पुण्य की वड़ी ही महिमा है कि जिसके प्रभाव से तुम संसार के दुःखों से भरे हुए कूप से पार हो जाओगे। उस सम्यक् चरित्र को आप छोड़कर क्या मिथ्यादृष्टि असंयमी वनकर नरक जाना चाहते हो ? या त्रियंच गति में जाना चाहते हो ? मिथ्यादृष्टी असंयमी

जीव ही अनन्त संसार में भ्रमण करते हैं। आपने नहीं सुना कि सुभौम चक्रवर्ती जब तक पंचपरमेष्ठी की आराधना की विराधना कर मिथ्या दृष्टि बना और मरकर सातवें नरक चला गया क्या तुम भी नरक जाना चाहते हो? इस प्रकार उपदेश देकर उनको पुनः धर्म में स्थिर करना यह सम्यग्दृष्टि का स्थिति करण अंग है।

विशेष—कोई भव्य पुरुष संयमी सम्यग्दृष्टि या कोई कषाय के उदय वश या दुर्जनों की संगति के कारण व रोग की तीव्रवदेना के कारण तथा दरिद्रता के कारण या व्यापार रहित होने के कारण तथा मिथ्यात्व का उपदेश व मिथ्यादृष्टियों का वैभव व चमत्कार मन्त्र तन्त्र चेटक विद्याओं को देखकर सधर्म सम्यक्त्व व चरित्र से डिग रहा हो या उसको धैर्यता देकर प्रेमकरना वात्सल्य दिखाकर धर्मात्मा प्रवीण पुरुष उनको भली प्रकार उपदेश देकर सत्यार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञानकराकर सम्यक्त्व व चारित्र में स्थापन कर दृढ़ करे यह सम्यग्दृष्टि का स्थिति करण अंग है। यहाँ कोई अव्रत सम्यग्दृष्टि है व व्रती संयमी सम्यग्दृष्टि है जिसका परिणाम रोग की वेदना होने के कारण व दरिद्रता आ जाने व इष्टवियोग होने के कारण व चोर डाकुओं के द्वारा पीटे जाने व धन का अपहरण करने के कारण व वैरी के द्वारा पीड़ा देने व जीविका नष्ट करने के कारणों को पाकर सम्यग्दर्शन व चारित्र का उपदेश देकर पुनः उसमें स्थित करना यह स्थितिकरण सम्यक्त्व का अंग है। हे धर्म के इच्छुक! धर्मानुरागी होकर मनुष्य भव और उत्तम कुल इन्द्रियन की शक्ति और धर्म का लाभ मिलना अत्यन्त दुर्लभ है एक वार वियोग व छूटने के वाद इनका मिलना अत्यन्त दुर्लभ हैं इसलिए कर्म के उदय से प्राप्त हुई रोग की वेदना वा वियोग दरिद्रता का दुःख गिनकर कायर होकर आर्त रौद्र परिणामी होना योग्य नहीं दुःखी होने पर और कर्मों का तीव्र वन्ध होवेगा कायर होकर भोगोगे, वो भी भोगने अवश्य ही पड़ेंगे, और धैर्यतापूर्वक भोगोगे व हंस-हंस कर भोगोगे तो भी अवश्य ही भोगने पड़ेगे। उन भोगों में विशेषता यह है कि आर्तध्यान कर आकुलतासहित भोगों के तीव्र कर्मों का आस्रव और वंध पड़ेगा और हर्ष सहित भोगोगे तो कर्मों का आस्रव नहीं होगा न वंध होगा वे कर्म अपना रस देकर खिर जायेंगे, इसलिए दोनों प्रकार भोगना ही पड़ेगा। कायरता सहित भोगोगे तो पाप वंध विशेष रूप से होवेगा। व्रत शील सहित भोगोगे तो भी भोगना पड़ेगा और व्रत शील रहित होकर भोगोगे तो भी भोगना पड़गा दोनों ही प्रकार से भोगना पड़गा विना फल दिये कर्म का उदय खिर नहीं सकता यदि शील व्रतादि रहित होकर भोगोगे तो विशष पापास्रव और कर्मों का वंध होवेगा। माने दुर्गति का कारण तो कायरता ही है उस कायरता को वार-वार धिक्कार होवे। मनुष्य जन्म का फल तो धैर्यता और संतोष व्रत सहित धर्म का सेवन कर आत्मा का उद्धार करना है। जो मनुष्यों का शरीर है सो रोगों का ही घर है इसमें रोग उपजने का क्या भय है। आश्चर्य है इसमें तो सम्यग्दर्शन ज्ञान सम्यक्चारित्र और तप संयम ही शरण होते हैं। रोग तो उपजेगा ही संयोग हुआ है उसका वियोग नियम कर होगा ही यामें सन्देह कुछ भी नहीं। किन-किन पुरुषो के रोग की वेदना नहीं हुई किस को दुख नहीं हुआ? इसलिए अपना साहस धारण कर के एक धर्म ही की शरण गहो। और जितनी वस्तुयें

उत्पन्न हुई हैं व सब वस्तुयें अवश्य ही विनाश को प्राप्त होंगी। जहां पर देह का विनाश देखा जाता है जितने जीव हैं वे कर्मों के आधीन हैं वे सब उत्पन्न होते हैं और मरते हैं उन का वियोग का खेद करना वृथा है बन्ध का कारण है।

इस दुःषम पंचम काल के मनुष्य हैं वे अल्प आयु अल्प बुद्धि लिये हुए उत्पन्न होते हैं। इस काल में कषायों को वृद्धि तथा पंचेन्द्रियों के विषयों में अधिक गृद्धता बुद्धि की मंदता रोग की विशेष अधिकता ईर्षा की बहुलता दरिद्रता को लेकर उत्पन्न होते हैं। इसी कारण सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर कर्मों के जीतने का उद्यम करना ही श्रेष्ठ है। कायर मत बनो इस प्रकार का उपदेश देकर परिणामों को स्थिर करना। यदि रोगी होवे तो औषधी व भोजन पथ्यादिक देकर उपचार करना व बारह भावनाओं का बार-बार स्मरण कराना शरीर की टहल मल मूत्रादिक विकृति को दूर करने कर जैसे तैसे परिणामों को स्थिर करना व धर्म में दृढ़ करना ही स्थितिकरण सम्यक्त्व का अंग है। अथवा किसी को रोग की वेदना अधिकता कर ज्ञान चलायमान हो जावे व व्रत भंग करने लग जाय अकाल में भोजन पान करने लग जावे या देखने लग जावे व त्यागी हुई वस्तु को पुनः भोगने की इच्छा करने लगे, तब उसको मीठा-मीठा प्रिय उपदेशादि करके जिससे पुनः सचेत हो जावे उसकी अवज्ञा भी नहीं करनी चाहिए। कर्म बलवान है निर्धनपना के कारण आहार पानी व औषध आदि की व्यवस्था न होय तब अपनी शक्ति प्रमाण उपदेश तथा आहार पान वस्त्र आजीविका व मकान व पत्रादिक की व्यवस्थाकर जैसे स्थंभन हो जाय तैसे ही दान सम्मान विनय कर व्रत संयम में स्थिर करना यह स्थितिकरण अंग है। तथा अपना आत्मा यदि न्याय व सत्यार्थ मार्ग सम्यक्त्व व चारित्र है उससे डिग रहा होवे अथवा काम, क्रोध, मद, लोभ के कारणों को पाकर चलायमान तथा अभक्ष्य भक्षण में प्रवृति हो जाय अभिमान के वशीभूत हो जावे संतोष से डिग जावे या स्त्री पुत्र माता पिता आदि से अधिक राग बढ़ जावे अन्य और भी कारण आकर उपस्थित हो जावे तब अपने को धैर्यता पूर्वक संतोष पूर्वक स्थिर करे अथवा रोगादिक के कारण भी यदि अपने मन में आकुलता हो रही हो होवे, तो यही विचार करे कि ये रोग है सो कर्म जनित है। कर्मो के सत्ता में से उदय में आकर फल दे रहे हैं वे सब फल देकर खिर जायेंगे तब तू ही तू तरह जायगा इसलिए कर्मों का तो फल अवश्य ही अपने को भोगना है रोकर या हंसकर भोगना यदि संक्लिष्ट परिणाम कर भोगा तो भी भोगना अवश्य ही होगा यदि संक्लिष्टता रहित धैर्यता पूर्वक भोगा तो अवश्य भोगना अपने को है। जितनी बाह्य वस्तुयें चेतन अचेतन जितनी हैं वे सब ही संयोग सम्बन्ध रूप हैं चेतन स्त्री पुत्र माता सेवकादि अचित्त मकान धान्य सोना चांदी खेत इत्यादि ग्राम नगर इत्यादि वस्तुओं का मिलना और बिछुड़ना सब कर्माधीन है। इनके वियोग में क्या ? संयोग में क्या राग करना ऐसा मन को समझाकर व्रत संयम सम्यक्त्व में स्थिर हो व अपने को चलायमान नहीं होने देना यह सम्यग्दृष्टि का स्थितिकरण नाम का अंग है। बुद्धिमान धर्मात्मा जनों के द्वारा सेवा वैयावृत्ति व उपचार कर के धन, मान, सन्मान करके उनको दिलासा दें आप घबड़ावें नहीं हम और हमारा धन सब आपका ही है जो कुछ आपको आज्ञा होवेगी

एकान्तकर संसार परिभ्रमण का कारण पाप कर्म ही बंध के कारण हैं। और राग भाव है। वह दो प्रकार का है एक अशुभ राग एक शुभ राग। जिनमें अरहंत परमेष्ठी व सिद्ध परमेष्ठी तथा दशलक्षण धर्म में तथा स्याद्वाद रूप जिनेन्द्र भगवान के मार्ग में तथा वीतराग का कहा हुआ आगम वीतराग प्रतिबिम्ब वीतराग के प्रतिबिम्ब के आयतन में अनुराग का होना सोशुभ राग है। तथा देश संयम व सकल संयम में प्रीति का होना सो भी शुभ राग है। सो स्वर्गादिक का साधक पुण्यानुबंधी पुण्यबंध का करने वाला है व परंपरा मोक्ष का कारण है। तथा सम्यग्दृष्टि के द्वारा दिया गया दान व आचार्य, उपाध्याय, साधुओं की वैयावृत्ति का करना, दान, पूजा, विनय करना यह भी शुभ राग है। ये संसार के उत्तमोत्तम सुखों को देता है। तथा परंपरा मोक्ष का कारण है। पंचेन्द्रियों के विषयों में अनुराग का होना कषायों में अनुराग तथा मिथ्यात्व और मिथ्यामार्ग व हिंसादि आरम्भ व परिग्रहादि पंचपापों में अनुराग का होना सो मोह भाव और द्वेष भाव है। वे नरक निगोदादिक में अनंत काल परिभ्रमण के कारण हैं इसलिये जो सम्यग्दृष्टि जीव अन्य अज्ञानी मिथ्या दृष्टि-पातकियों में भी द्वेष नहीं करता है, समस्त ससारी जीव मिथ्यात्व कर्म के तथा ज्ञानावरणादिक के आधीन होने से ही आप अपने स्वभाव को भूल रहे है यह अज्ञान की महिमा है वैर करने व द्वेष करने से कुछ भी साध्य नहीं है।

इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव विचार करता है कि मेरे स्वभाव में रागद्वेष वैर-विरोध नहीं है। रागद्वेष रहित माध्यस्थ भाव रखता है वह तो वस्तु के स्वभाव में सत्यार्थ जानकर एकेन्द्रियादिक जीवन में करुणाभाव धारण करता है। प्रीति करता है समस्त मनुष्यों में भी वैर रहित होकर किसी जीव की विराधना व अपमान मान हानि नहीं करता है। मिथ्यादृष्टियों के द्वारा किये गये उत्पाद् व देवों के मंदिरों से द्वेष वैर बिगाड़ भी नहीं करता है। तथा सराग देव व देवों की मूर्ति व मूर्तियों के रखने के स्थान मठ मन्दिरादिक तथा योगिनी भैरव काली केला आदि की रचना करते हुए भी रचना करने वालों से विरोध वैर नहीं करता है, ये देव मूर्ति व मंदिर तो अनेक जीवन के अभिप्राय के आधीन पूजन व आराधना के लिये बनाये हैं। अन्य का अभिप्राय अन्य प्रकार बदलने को कौन समर्थ है सब ही मनुष्य अपना-अपना धर्म मानकर ही देवताओं की स्थापना करते हैं जिसको जैसा सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व रूप जैसा उपदेश मिला है वह वैसा ही करता है। वस्तु का जैसा स्वभाव है उसको वैसा ही जानना, समस्त में साम्यभाव करना सम्यग्दृष्टि किसी मनुष्य को रेकार व तूकार नहीं देता है तब अन्य के मन्दिर व देव व धर्म के प्रति अवज्ञा के वचन गाली-गलौज कैसे कहेगा ? नहीं कहेगा। समस्त जीवों में मैत्री भाव को धारण करता हुआ विचरता है कि यह अपने अचेतन मकान सुवर्ण इत्यादि भी विनाश युक्त हैं परन्तु धर्म ही एक शाश्वत और शुद्ध है। यदि धर्मात्मा होवेंगे तो धर्म चलता रहेगा यदि धर्मात्मा ही नहीं रहेंगे तो धर्म कहां ठहरेगा ! इस भावना से धर्म और धर्मात्मा साधर्मी भाईयों की रक्षा करने के लिये यदि अपने प्राणों की बाजी लगा दी जाय वह श्रेष्ठ है कि जिस प्रकार निष्कलंक राजकुमार ने धर्म और धर्मात्माओं की रक्षा करने के निमित्त अपना शिर कटवाया था और अकलंक देव ने धर्मात्मा

और धर्म की रक्षा की बौद्धमतावलम्वी का गाढ़ मतखंडन कर धर्म की रुचि प्रकट की यह वात्सल्य सम्यक्त्व का सातवां अंग है ।।३३८, ३३९।।

आगे प्रभावना अंग को कहते हैं ।

श्रीचतुर्मुखाऽष्टान्हिकेन्द्रध्वजा पंचकल्याणपूजाः ।
जलयात्रा रथोत्सवैः श्रीजिन मार्गस्य प्रकाशनम् ।।३४०।।
व्याप्ताऽज्ञानमिथ्यातममपाकृत्यं तपोवलात्मशक्तिभिः ।
उपवासे सन्मानैः प्रभवन्तु लौकिकार्जनाश्च ।।३४१।।

संसार में संसारी जीवों के हृदय में मोह अज्ञान रूपी महा अंधकार भरा हुआ है । अंधकार सर्वत्र व्याप्त हो रहा है । उस मोह महांधकार को दूर करने के लिये तथा भगवान जिनेन्द्र देव के चतुर्मुख विम्व की पूजा विधान कर अथवा अष्टान्हिका पर्व के समय पर नंदीश्वर द्वीप के चारों दिशाओं में स्थित जिन वावन चैत्यालयों की भक्ति सहित पूजा विधान कर व सिद्ध चक्र विधान कर प्रभावना करे तथा पूजा के प्रथम दिन वहु, कुमारी या सुहागिन स्त्रियों के समूह सहित कुआं, वावडी, तालाव, नदी इत्यादि पर गाजे-वाजे सहित मंगल गीत, भजन गाते हुए जावें । और जल लाकर पूजा अभिषेक भगवान का गाजे-वाजों के साथ करे, तथा रथयात्रा निकलवावे और दान देवे इत्यादि प्रकार करके जैन धर्म का प्रभाव और प्रभावना दिखावे जिससे लौकिक जन भी यह देख आर्कापित हों कि धन्य है जैनी जो इन्होंने इतना उत्सव किया इतना द्रव्य खर्च किया । तथा अकाल या दुर्भिक्ष की सम्भावना हो तव इन्द्र-ध्वज का विधान यथोक्त विधि से कर प्रभावना करे जैन धर्म की पूजा का महात्म्य कितना है कि सव जीवों पर आनन्द छा रहा है । पानी नहीं वरसा था पूजा के करने पर देखो कितनी वर्षा हुई । अरहंत भगवान के पंचकल्याणक करके धर्म की प्रभावना करना तथा प्रभावना करने के लिये रथोत्सव जलयात्रा कर धर्म की प्रभावना करना चाहिये । तथा व्रत उपवास कर जगत के जीवों को यह दिखाना चाहिये कि जैन धर्मावलम्वी कितने दिन तक बिना जल और भोजन के पंद्रह दिन आठ दिन चार दिन तीन दिन महीना इत्यादि तक किस प्रकार वने रहते हैं । वे वड़े धन्य हैं हमसे तो एक घड़ी भी भूखा नहीं रहा जा सकता है । वे तो इतने दिन उपवास करके भी स्वस्थ्य वने हुए हैं उनके चेहरे पर ग्लानि का अंश भी नहीं है जैनों के छोटे-छोटे बच्चे भी दो-दो उपवास करके भी दृढ़ रहे वे चलायमान नहीं हुए उनको पालकी या हाथी, घोड़ा गाड़ी या रथोत्सव के साथ नगर, ग्राम में प्रभावना के लिये गाजे-वाजे के साथ घुमावे और जैन मन्दिर में दर्शनार्थ ले जावे और उनको दान-मान देकर आदर, विनय व सत्कार करे । प्रभावना वांटे इस प्रकार धर्म की प्रभावना करके सवको जैन धर्म के प्रति सद्भावना का करना यह प्रभावना अंग है । अपने आत्मवल से धर्म की प्रभावना कर फैले हुए अज्ञान मिथ्यात्वांधकार को दूर करना तथा जैन धर्म के प्रति अरुचि को दूर करना यह प्रभावना अंग सम्यग्दृष्टि का है । तथा अतिथियों के आने का समाचार मिलने पर कि मुनि, उपाध्याय, आचार्य संघ के आने पर गाजे-वाजे सहित आदर-सन्मानपूर्वक नगर, ग्राम में प्रवेश करवाना, गुरूजनों को आगे जाकर नमस्कार करना, हाथ जोड़ना, उनके

पीछे-पीछे चलना और उच्चासन पर वैठाकर पाद प्रक्षालन करना सेवा वैयावृत्ति करना तथा मुनियों के जीवन चरित्र को सब जन-समूह के सामने प्रकट करना तथा व्रत उपवासों की कीर्ति को वार-वार लौकिक-जनों के सामने कहना कि इनकी तपस्या महान् हैं कितने परीषहों व संकटों को सहते हुए भी खेद-खिन्न नहीं होते हैं, ये जैन साधु हैं इनका जितना महात्म्य कहा जाये उतना ही थोड़ा है। ये वड़े-ही ज्ञानी-ध्यानी योगी हैं वड़े ही शांत प्रसन्न मुद्रा के धारक निस्परिग्रही निर्भीक हैं। तथा कामदेव को इन योगियों ने ही जीता है। ये प्रवल इन्द्रिय विषयों के विजेता हैं। इनके समान अन्य नहीं हो सकते हैं। उनका शरीर मात्र कृश है परन्तु इनकी शक्ति महान् है ये मासोपवास पक्षोपवास चातुर्मासोपवास करते ही रहते हैं। इनके ज्ञान की उपमा को कौन कह सकता है, 'ये सव प्रकार' की शंकाओं का समाधान करने में समर्थ हैं। ये उच्चकोटि के उत्कट विद्वान हैं इत्यादि कर जैन धर्म का प्रकाश करना यह सम्यग्दृष्टि का प्रभावना अंग है। अथवा जहाँ पर कोई धर्म के साधन का आयतन नहीं होवे वहां पर आयतन वनाकर प्रतिष्ठा, पूजा कर सव जीवों को धर्म मार्ग में लगवाना यह प्रभावना अंग है।

अनादिकाल से संसारी जीवों के हृदय में अज्ञान रूपी अन्धकार व्याप्त हो रहा है उनको अभी तक सर्वज्ञ वीतराग का दिया हुआ उपदेश प्राप्त नहीं हुआ जिससे सत्यार्थ रूप धर्म को नहीं जानता है। इसी कारण यह नहीं ज्ञात हुआ कि मैं कौन हूँ मेरा स्वरूप कैसा है कहाँ पर जन्म नहीं लिया, कैसा था, कौन था, यहाँ पर मेरे को किसने उत्पन्न किया, अव रात्रि दिवस व्यतीत होने के साथ ही आयु कर्म भी व्यतीत हो रहा है, अव मेरे करने योग्य क्या है, मेरा हित कहाँ है, अराधना के योग्य कौन है। नाना प्रकार जीवों के दुःख और सुख कैसे हैं तथा देव, शास्त्र, गुरुओं का स्वरूप कैसा है। मरण और जीवन का क्या स्वरूप है। तत्त्व अतत्त्व का क्या स्वरूप है, हेय उपादेय क्या है, धर्म और अधर्म कैसे हैं, पुण्य और पाप कैसे हैं, भक्ष्य और अभक्ष्य का स्वरूप क्या है सुनय कुनय क्या हैं एकान्त व अनेकान्त क्या है प्रमाण और प्रमाणाभाव क्या है। इस पर्याय में कौन कार्य करने योग्य है मेरा कौन है मैं कौन हूं, इत्यादि विचार रहित मोह कर्म कृत अन्धकार से आच्छादित हो रहे हैं। उनके अज्ञान रूप अन्धकार को स्याद्वाद रूप परमागम के प्रकाश से दूर कर स्वरूप और पररूप का प्रकाश करना फल प्रकट करना सो प्रभावना अंग है। वाहर में अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का आत्मा की प्रभावना प्रकट करना तथा दान करके, तप करके, शील संयम निर्लो-भता विनय प्रिय हितमितवचन वोलकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके तथा अष्टाह्निकाओं में सिद्धचक्र विधान, इन्द्र ध्वज पूजा, विधान, पंचकल्याणक पूजा करके गुणों का प्रकाश करना जिन धर्म का प्रभाव प्रकट करना सो प्रभावना अंग है। जिनका उत्तम परिणामों से उत्तम दान को तथा अनशनादि घोर तप कर निर्वांछिकता को देखकर मिथ्यादृष्टि भी प्रशंसा करने लग जावे कि अहो जैनियों के वात्सल्यता सहित वड़ादान है। निर्वाञ्छक ऐसा घोर तप करना तो जैनमत में ही वन सकता है। अहो जैनियों के वड़े व्रत और तप हैं जो प्राण जाने पर भी व्रत भंग कदापि नहीं करते हैं। अहो जैनियों के वड़ा अहिंसा व्रत है जो प्राण जाने पर भी दूसरों के प्राणों का घात कदापि नहीं करते हैं। तथा जिनके असत्य का त्याग, चोरी का

त्याग, परमहिला का त्याग, परिग्रह का त्याग कर सब अनीतियों से पराङ्मुख हैं तथा रात्रि में भोजन न करना अभक्ष्य भक्षण नहीं करना। प्रमाण सहित दिन में अन्न पान शुद्ध आहार करना, देख शोध कर भोजन करना, इस प्रकार जैनियों का बड़ा ही धर्म है। जिनके महाविनयवंतपना है। मधुर, प्रिय हित मित रूप वचन कर सब को आनन्द उत्पन्न करते हैं। अतिशय रूप जिनके बड़ी भारी क्षमा है और अपने इष्टदेव में अगाढ़ भक्ति है आगम की बड़ी भक्ति व श्रद्धा है। बड़ी प्रबल विद्या है जिनका आचरण भी बड़ा उज्वल है वैरभाव से रहित जिनको बड़ा ही मैत्री भाव हैं ऐसा आश्चर्य रूप धर्म इनसे ही बन सकता है। ऐसी प्रशंसा जिन धर्म की जिनके निमित्त से लौकिक जनों में भी प्रकट हो जिससे प्रभावना होती है। जो अनीति का धन नहीं चाहते हैं, और अन्याय अनीति के विषय भोग स्वप्न में भी नहीं चाहते हैं, कि हमारे कारण जैन धर्म की निन्दा हो जाय। यदि हो गई तो हमारा यह जन्म बिगड़ गया और परलोक भी बिगड़ गया, दोनों लोक नष्ट हो गये इसलिए सम्यग्दृष्टि पापाचरणों से बहुत दूर रहता है। तथा भगवान का रथ यात्रा महोत्सवादि करके तथा जल यात्रादि अनेक प्रकार से धर्म का प्रकाश फैलाना ही प्रभावना अंग है। तथा जिन कारणों से धर्म का अपवाद हो उन कारणों की रोक देना और शील, संयम, दान, पूजा, दयादि का महात्म्य प्रकट कर दिखाना जिससे विधर्म मिथ्यादृष्टि भी प्रसन्न हो। धर्म और धर्मात्माओं के प्रति रुचि को प्राप्त हों व जैन धर्म का अंगीकरण कर लेवें व द्वेष वैर अभिमान छोड़कर विनय युक्त होते हुए अपना हितकारी व सत्यार्थ, धर्म, मान स्वीकार कर आचरण में लावें यही सम्यग्दृष्टि का आठवां प्रभावना अंग है ॥३४०।३४१॥

निशांकितं निकाङ्छा निर्विचिकित्सोपगूहनामूढ़ाः।
स्थिति करणं वात्सल्यं प्रभावनाऽष्टांग सम्यक्त्वे ॥३४२॥

सम्यक्त्व का पहला अंग निशांकित, दूसरा निष्कांछित अंग है, तीसरा निर्विचिकित्सा चौथा अमूढ़दृष्टि, पांचवा स्थिति करण अंग है, छठवां उपगूहन, सातवां वात्सल्य अंग है अठवां अंग प्रभावना है ये आठ अंग ही आठ गुण कहलाते हैं। जिस प्रकार शरीर के आठ अंग हैं इनके बिना सम्यक्त्व शोभा को नहीं प्राप्त हो सकता है ॥३४२॥

आगे भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के सम्यक्त्व

प्राक् त्रिकाय देवदेवीषु विनाक्षायकं कल्पवासिनीषु ॥
कल्पदेवेषुत्रि नवग्रेवेयकेषु क्षायकं च ॥३४३॥

भवनवासी देव और देवियों में तथा व्यन्तर देव और देवियों व ज्योतिष्क देव और देवियों में तथा कल्पवासी देवियों के क्षायक सम्यक्त्व का धारक जीव उत्पन्न नहीं होता हैं न उनमें क्षायक सम्यक्त्वी ही उत्पन्न होता है। कल्पवासी देवों में उपशम सम्यग्दृष्टि, क्षयोपशम क्षायक सम्यग्दृष्टि, जीव मरकर उत्पन्न होते हैं। परन्तु इतना विशेष हैं कि उनमें सब सम्यक्त्व के धारक जीव उत्पन्न होते हैं। तथा उनके सम्यक्त्वों की उत्पत्ति होती है। नवग्रेवेयक देवों के तीनों सम्यक्त्व उत्पन्न होते हैं। अनुदिश विमानों में जीव क्षयोपशम और क्षायक सम्यक्त्व को लेकर उत्पन्न होते हैं। तथा पांच पुष्पोत्तर विमानों में भी क्षायक व क्षयोपशम सम्यक्त्व

को लेकर उत्पन्न होते हैं। तथा सर्वार्थ सिद्धि के देवों में एक क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं। देवों के तीनों सम्यक्त्व पर्याप्त और अर्याप्त दोनों अवस्थाओं में होते हैं।

कोई प्रश्न करता है कि आप पहले यह निर्णय कर आये हैं कि उपशम सम्यक्त्व पर्याप्तक अवस्था में ही होता है। अपर्याप्तक अवस्था में नहीं। फिर अपर्याप्त अवस्था में देवों के उपशम सम्यक्त्व कैसे हुआ? उत्तर—इसका समाधान यह है कोई द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को लेकर उपशम श्रेणी से चढ़ा और बीच में ही मरण को प्राप्त हो देव गति में देवों में उत्पन्न हुआ और अपर्याप्त अवस्था में भी उपशम सम्यक्त्व रहा क्योंकि उपशम का काल अधिक है देवगति की अपर्याप्त अवस्था का काल स्तोक होने से अपर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। काल बीत जाने पर सासादन को प्राप्त हो छूट जाता है या प्रकृति का उदय आकर क्षयोपशमिक सम्यक्त्व हो जाता है। कल्पवासी देवांगनाओं में क्षायक सम्यक्त्व नहीं होता है ।।३४३।।

प्राग्वर्ज्यं क्षायकं न क्षयोपशमिकं च औपशमिकंव ।
त्रियंश्चावां त्रयं न त्रियश्चीनां क्षायकं कदा ।।३४४।।

त्रियंचिनी व त्रियंच जीवों के औपशमिक और क्षयोपशमिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं। ये भी त्रियंच त्रियंचिनी के पर्याप्तक अवस्था में ही होते हैं। वे भी साकार निराकार उपयोग सहित सैनी पंचेन्द्रिय के होते हैं। असैनी और अपर्याप्तक अवस्था में नहीं होते हैं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मरण करके त्रियंच जीवों में उत्पन्न नहीं होते हैं। यदि किसी ने त्रियंच आयु का वंध करके पीछे सम्यक्त्व प्राप्त किया हो तो वह जीव भोग भूमि का त्रियंच होगा परन्तु कर्म भूमि का त्रियंच नहीं होगा। त्रियंच गति में त्रियंचियों के क्षायक सम्यक्त्व नहीं परन्तु त्रियंचों के क्षायक सम्यक्त्व होता है वह भी पर्याप्त अवस्था में ही होता है। सम्यग्दृष्टि त्रियंच मरण कर देवगति में ही उत्पन्न होते हैं यह नियम है ।

मनुष्यानां त्रयः न च द्रव्यस्त्रीणां क्षायकं तथा ।।
औपशमिकं नोऽपर्याप्तकानां पर्याप्तापर्याप्ते ।।३४५।।

मनुष्यों के पर्याप्त अवस्था में औपशमिक क्षायक क्षायोपशमिक तीनों ही होते हैं। परन्तु औपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्त अवस्था में ही होता है। क्षायक क्षायोपशमिक दोनों सम्यक्त्व पर्याप्त अपर्याप्त दोनों ही अवस्था में होते हैं। यदि मनुष्य आयु का बंध कर लिया है तत्पश्चात् सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ जीव कर्म भूमिका मनुष्य नहीं होगा वह नियम से भोग भूमिका मनुष्य ही होगा और यदि नहीं किया हो तो वह मरण कर नियम से देवगति को प्राप्त होगा। मनुष्यनी द्रव्य स्त्रियों के क्षायक सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती है। परन्तु उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वों को प्राप्त होती है, वह भी पर्याप्त अवस्था में ही होती है। विशेष यह है कि भाव स्त्रियों के तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं ।।३४५।।

घर्माया त्रिप्राक्पंच उपशमं क्षयोपशमं सम्यक्त्वं ।
क्षयोपशमं क्षायकं पर्याप्तऽपर्याप्तकानाम् ।।३४६।।

घर्मा नामके पहले नरक में नारकी जीवों के तीनों सम्यक्त्व होते हैं। दूसरे तीसरे और चौथे नरक वासी नारकियों के औपशमिक क्षयोपशमिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं, आगे के

नरकों में नारकियों के उपशम सम्यक्त्व की सम्भावना है परन्तु अपर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यक्त्व नहीं होता हैं क्षायक और क्षयोपशम सम्यक्त्व दोनों ही अवस्था में पाये जाते हैं। इसका कारण भी यह है कि किसी संक्लिष्ट परिणामी भव्य मिथ्यादृष्टि ने हिंसादिक पापों की प्रवृत्ति कर नरक गति और आयुका वंध किया और उसके पीछे केवली या श्रुत केवली गुरुओं का उपदेश श्रवण कर उपशम या क्षयोपशम अथवा क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरण किया जिससे प्रथम नरक घर्मा में जाकर उत्पन्न हुआ। क्षायक को न कर उपशम सम्यक्त्व को या क्षयोपशम को प्राप्त किया। तव रत्नप्रभा सर्करा प्रभा या वालुका प्रभा में उत्पन्न हुआ। इससे आगे के नरकों में कोई भी सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता है। लेकिन आगे के नरकों के नारकियों के पर्याप्त अवस्था में क्षयोपशम चौथे या पांचवे छठवें तक औपशमिक सातवें नरक में नारकीयों के उत्पन्न होना सम्भव है ॥३४६॥

मनुजानां च क्षायकं केवलि श्रुतकेवलि पाद मूले ॥
नान्यथा खलु क्षायकं लोकेष्वन्योत्पत्तिर्न च ॥३४७॥

भव्य मनुष्यों के क्षायक सम्यक्त्व होता है वह केवली भगवान अथवा श्रुत केवली के पाद मूल में ही होता है अन्यत्र नहीं। यह निश्चय लोक में प्रसिद्ध है। जिन जीवों ने मिथ्यात्व कर्म के उदय काल में नरक गति का वंध कर लिया है पीछे भगवान सर्वज्ञ का उपदेश श्रवण किया धारण किया तव मिथ्यात्व कर्म का नाश कर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त होता है। पुनः मरण काल में भी उसके तीव्र संक्लिष्ट परिणामों का होना नरक गति और आयु के सम्वन्ध का उदय है। जिस से अन्य समय में आर्त्त या रौद्र परिणाम कर प्रथम नरक में जीव उत्पन्न होता है। वह वंशा आदि छह पृथ्वीयों में उत्पन्न नहीं होते है। परन्तु क्षायक सम्यक्त्व के योग्य मनुष्य का ही द्रव्य है देह है यहां से लेकर किसी भी गति में जा सकता है वहां से एक भव या दो भव मनुष्य के प्राप्त कर मुनिव्रत धारण करके अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ॥३४७॥

शुशिक्षा सुजातिर्वा सुकुलं वैभव सुगुण चारित्रम्
सुदेशं सुग्रामं च सुशीलं पावन्ति सुदृष्टिः ॥३४८॥

सम्यग्दृष्टि के पुण्य के प्रभाव से ही उसके योग्य सुशिक्षा-देव पूजा करना, दया जीवों पर करना स्वाध्याय करना, देश व्रत धारण करना व जिसमें सदाचार को व धर्म का पालन गुरुजनों की विनय करना, पूजा का फल दान के महात्म्य का उपदेश मिलना, तथा कुमार्ग और कुमार्ग में चलने से होने वाली हानि को प्रकट कर दिखाया गया है। जिसमें हेय उपादेय का कथन है जिसमें सुकृत और दुष्कृत का स्वरूप वता कर दुष्कृतों का परिहार करने का उपदेश दिया गया है। तथा जिसमें सम्यक्त्वाचरण और मिथ्यात्वाचरण का यथार्थ उपदेश दिया गया है। कल्याण और अकल्याण का स्पष्टीकरण किया गया हो? तथा जो असंभव दोष से रहित है, तथा अव्याप्ति अतिव्याप्ती आदि दोष नहीं है ऐसी शिक्षा मिलती है जो प्रमाण नय और निक्षेपों से भली प्रकार प्रभावित है ऐसी शिक्षा का मिलना। जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण वासुदेव, वलभद्र आदि महापुरुषों का जिनमें कथन किया गया हो उसको सुशिक्षा कहते हैं। वह सुशिक्षा सम्यग्दृष्टि जीव को प्राप्त होती है। तथा संयम और

संयम के धारण करके जीव कहाँ किस गति में जन्म लेते हैं। ऐसी सुशिक्षा सम्यग्दृष्टि को मिलती है सम्यग्दृष्टि नीच जाति में उत्पन्न नहीं होता है सुजाति में हीं उत्पन्न होता है। सुजाति किसको कहते हैं ? सुजाति माता के वंश की परंपरा को कहते है।जिस माताके वंश में विधवा हैं। परजाति सम्वंध विवाह, जिसकी परंपरा में नहीं हुआ है। उसको शुद्धजाति कहते हैं ऐसी सुजाति में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होता है। जिस कुल में जाति में कहे प्रमाण हीनाचरण व धरावना, परजाति वंश की स्त्री व विधवा दुराचारिणी वेश्या की जाति से उत्पन्न हुए नीच कुलों में सम्यग्दृष्टि का जन्म नहीं होता है, सम्यग्दृष्टि का जन्म तो उच्चकुल क्षत्रिय वैश्य ब्राह्मण कुल में ही होता है। इक्ष्वांकु वंश कुरुवंश उग्रवंश ऐसे वंशों को उत्तम वंश कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव दरिद्री भिखारी निर्धन व कुमार्ग गामियों में यह जन्म नहीं लेता है वह तो वैभवशाली, राजा, महाराजा, राणा, छत्रपति, मण्डलीक, महामण्डलीक, चक्रवर्ती आदि के घर जन्म लेता है। उसमें जन्म से स्वभाव से ही सुगुण होते हैं। जीवों पर दया करना विनय करना वड़ों का आदर सत्कार, भूखों को रोटी देना, देव पूजा, गुरुपास्ती, स्वाध्याय करना अतिथियों को कालानुसार आहार, औषधी, दान देना सव प्राणियों की रक्षा करने के भावों का होना, अपने समान ही सव संसारी प्राणियों को जानना देखना तथा उनके सुख दु:ख में धैर्य व शुभभावना इत्यादि सुगुण सम्यग्दृष्टि के जन्म से प्राप्त होते हैं।

जव सम्यग्दृष्टि जीव अपनी माता के गर्भ में आता है, तव माता के ये भाव होने लग जाते हैं कि मुनियों के लिये चार प्रकार का दान दूं, व मन्दिर वनवाऊँ, या तीर्थ यात्रा करूं, या भगवान ने विम्व को मंगवाकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाऊं, या शास्त्र श्रवण करूं, ऐसे भाव माता के हो जाते हैं। जव कोई मिथ्यादृष्टि पापी जीव माता के गर्भ में आ जाता है तव माता के भी खोटे भाव हो जाते हैं। कि उसको माटी खाने की व ईंट खप्पर खाने के भाव होते हैं कभी यह भाव होते हैं कि किसी को मार डालूं नष्ट करदूं या अपने पति के मांस को काट कर खा जाऊं शराव पीऊं, इत्यादि भाव माता के हो जाते है। इन भावों का कारण वह जीव ही है जो माता के गर्भ में आया हुआ है। जव सम्यग्दृष्टि जन्म लेता है तव माता के घर में आनद का वाजा वजाता है। सव घर वाहर के लोग प्रसन्न चित्त होते हैं और जन्म का उत्सव मानते हैं। तथा दान, पूजा, मान, भक्ति आदि शुभक्रियाओं में प्रवृत्त होते हैं। स्वपरिपार व अन्य परिवार के लोगों को वह सुख का स्थान वन जाता है तथा सव को सुख का मार्ग प्रदर्शक वन जाता है सव गुण स्वभाव से ही आ जाते हैं। तथा देश चारित्र व सकल चारित्र को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है, तथा पंचमहाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति और उत्तम क्षमादिक व दिग् देश व्रत अनर्थ दण्डों का त्याग कर सामायिक, प्रौपधोपवास, भोगोपभोग प्रमाण तथा अतिथी संविभाग ऐसे सव प्रकार चारित्र को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है। तथा अन्य शुभ गुण उसमें स्वभाव से ही उत्पन्न हो जाते हैं जिस प्रकार तालाव में पानी चारों ओर से वहकर एकत्र हो जाता है वैसे ही यहाँ पर जानना। सम्यग्दृष्टि जन्म से ही शुभाचरण करने वाला होता है सुदेश जहां पर सव जनता अपने शुभ कर्मों को करते हुए पाप और विरोध के कारणों से डरती हो तथा जहां पर चोरी, हिंसा, असत्य भाषण दुराचार करने वाला राजा नहीं होता है।

उसको सुदेश कहते हैं। जहां पर नीच वृत्ति के धारक चण्डाल, भील, नाई, धोबी, चमार मेहतर शिकारी चोर वेश्या व्यसन के सेवन करने वाले व जुआ खेलने वाले, मांस खाने वाले, शराब पीने वाले, परस्त्रीयों में रत रहने वाले, लोगों का निवास नहीं होता है, ऐसे ग्राम में सम्यग्दृष्टि का जन्म होता है। सम्यग्दृष्टि जीव के स्वभाव से ही सुशील होता है वह जन्म से ही हित मित वचन बोलता प्रिय वचन बोलता हुआ सब को आदर की दृष्टि से देखता है और आचरण भी करता है तथा ब्रह्मचर्य से रहना ऐसा सुशील सम्यग्दृष्टि को प्राप्त होते हैं। वह दूसरों के दुःखों को देख दुःखी होता है और उन दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करता है यदि कोई उसका तिरस्कार करता है उसका वह वहिष्कार भी नहीं करता है। जहां जाता है वहीं सम्यग्दृष्टि की आदर विनय की जाती है इन सब यशों को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है। वहुत गुणों का पुँज वह सम्यग्दृष्टि होता है ॥३४८॥

नव निधि चतुर्दशरत्नाः षट्खण्ड महीषडाँगवलम्
षट् नवति सहस्रस्त्रियः आपद्यतेसम्यग्दृष्टिनः ॥३४६॥

सम्यग्दृष्टि जीव मरण के पश्चात उत्तर जन्म में चौदह रत्न, नव निधियों को प्राप्त होता है तथा छह खण्ड पृथ्वी जिसका घर वन जाती है और वह छह वलों को प्राप्त करता है व छयानवै हजार रानिओं का स्वामी होता है। चौदह रत्न जिनमें सात चेतन और सात अचेतन रत्न होते हैं, चेतन रत्न, पुत्र रत्न, स्त्री रत्न, भाण्डागार रत्न, प्रोहित रत्न, सेनापति रत्न, हाथी रत्न, घोड़ा रत्न, ये सात रत्न चेतन होते हैं। चक्ररत्न, छत्र रत्न, दण्डरत्न खड्ग रत्न, धनुष, काकणी, रत्न, कापुरोधा, चर्मरत्न, ये सात अचेतन रत्न हैं। कालनिधि पांडुकनिधि नैसर्ग निधी, माणवक निधि, पिंगला निधि, शंख निधि, पद्मनिधि, सर्वरत्न। एक आर्य खण्ड है पाँच म्लेक्ष खण्डों का राजा ग्रामाधिपति जनपद दुर्ग भण्डार षडंगवल तथा मित्र ये सप्त अंग और छहवल चौरासी लाख हाथी ८४ लाख रथ, अठारह करोड़ घोड़े ८४ करोड़ योद्धा देव बल विद्याधर ये षडांगवल होते हैं। तथा अनेक प्रकार के इच्छित भोगों का भोग करते थे। तथा ३२ हजार मुकुट बद्ध राजा जिसकी सेवा करते हैं ऐसा चक्रवर्ती होता है। जिसकी वल की सीमा नहीं होती है वह अपने पराक्रम से देवों को भी जीत लेता है ॥३४६॥

देवेन्द्रो भूत्वैवं दिव्य सुखमनुभवति वहुकालम् ॥
अष्टार्द्धि धरादेवामर्द्धिकाः भवन्ति सदृष्टिनः ॥३५०॥

जो सम्यग्दृष्टि जीव हैं वे महर्द्धिके धारक देवों में उत्पन्न होते हैं, तथा इन्द्र होते हैं। जिसकी आज्ञा का पालन असंख्यात देव करते हैं। वह कल्पों में तथा कल्पातीत देवों में उत्पन्न होते हैं और अणिमा गरिमा लघिमा इत्यादि ऋद्धियों के स्वामी होते हैं। और वहां के सुखों का चिरकाल अनुभव करते हैं। तथा अष्ट ऋद्धियों के धारक प्रभावशाली होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव ही उच्च देव इन्द्र सामानिक आदिक देवों में उत्पन्न होते हैं वहां पर भी देवों की उत्कृष्ट आयु का भोग करते हैं। सम्यग्दृष्टि देवों में हीन देव नहीं होते हैं। वाहन गंधर्व किल्विशक असुर इत्यादिक नीच देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं। जिनके कम से कम ३२ देवांगनायें होती हैं। उनके साथ सागरों की आयु तक सुख का अनुभव करते हैं वावीस सागर की स्थिति का भी पता नहीं लगता कि कब निकल गयी। नव ग्रैवेयक व नव अनुदिश

व पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होकर तेतीस सागर की आयुतक सुख का अनुभव करते हैं। वे देव धर्म चर्चा करते हुए काल व्यतीत करते हैं।३५०॥

सम्यक्त्वेसम्पन्नं मुक्त्वा कममीयं सुखं देवलोके ॥
च्युतो भूत्वा भवन्ति मनुष्ये महापुण्डरीका: ३५१॥

सम्यक्त्व सहित सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्गों के सुखों का वहुत काल तक भोग कर के वहां से च्युत हो कर मनुष्यों में जन्म लेकर महापुण्डरीक राजा होता है जिसकी आज्ञा में अनेक राजा लोग रहते हैं व उनकी सेवा व आज्ञा का पालन करते हैं।३५१॥

यत्सम्यक्त्वेन युक्तौ विचरतिजगतीशो विनष्टं न काले।
दीव्यन्ते च त्रिलोके प्रभवति विभवतोऽस्याविरुद्धम् तथपि ॥३५२॥
सेवाकुर्वन्ति देवा: वहुविधरुपकारं न वैरं कदापि
भुक्त्वा सौख्यं च दिव्यं परिषदमचिरेलाति मर्त्ये शिवंव ॥३५३॥

सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व सहित संसार में चाहे जिस गति में जावे और वहाँ पर रहे परन्तु उसका विनाश कदापि नहीं होता है। अथवा दुःखों का भोग करने पर भी कलुषित परिणाम वाला नहीं होता है। इसलिये उसका पतन नहीं होता है संसार में रहता हुआ भी कितना काल व्यतीत हो जाया करता है परन्तु वह काल उसके लिये थोड़ा ही है वह विनाश को प्राप्त नहीं होता है। वह सम्यग्दृष्टि तो ऐसी शोभा को प्राप्त होता है जैसे ताराओं के मध्य में स्थित चन्द्रमा। वह अपने प्रभाव वैभव से तीनों लोकों के प्राणियों को प्रभावित करता है तथा सव के लिये शरण भूत होता है। उसके प्रति कोई भी वैर विरोध नहीं करता है। परन्तु वैर भाव अभिमान छोड़ कर उसकी शरण को प्राप्त होते हैं। जिन सम्यग्दृष्टियों की सेवाकार्य स्वर्गों में निवास करने वाले भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देव करते हैं। तथा सम्यग्दृष्टि जीव वहुत काल तक देवों की सभा का अधिपति इन्द्र होता है उनको सेवाकार्य करने की आज्ञा नहीं करनी पड़ती तो भी देव स्वयं आकर आज्ञा मांगते हैं कि हे प्रभो ! हमको कुछ सेवाकार्य करने की आज्ञा दीजिये ? और सेवा करते हैं देवगति के सुखों का चिरकाल अनुभव कर देव आयु का अंत करके मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तीर्थंकर व चक्रवर्ती होकर संयम धारण कर कर्मों का नाश कर के अंत में मोक्ष को ही प्राप्त करते हैं। कोई तो पदों को प्राप्त करते हैं कोई नहीं भी करते हुए मोक्ष सुख को अवश्य ही प्राप्त होते हैं यह सव सम्यक्त्व की महिमा है ॥३५२।३५३॥

नोकाया: नाविकेन विनातर्या करोत्युद्धारं यात्रिन् ॥
सम्यक्त्वंकर्ण धारस्तद्विना चरनं भवोत्तीर्णः ॥३५४॥

जिस नदी में गहरा पानी है और वेग से वह रही है जिसके किनारे पर नाव रक्खी हुई है उसमें वहुत से यात्री भी वैठे हुए हैं वे यात्री विना मल्लाह खेवटिया के न होने के कारण, नाव मात्र में वैठने से नाव पार नहीं करेगी। उसी प्रकार सम्यक्त्व के अभाव में संसार रूपी नदी को पार करने के लिये चारित्र रूपी नौका में वैठे हुए यात्रियों को पार करने में नाव समर्थ नहीं है। जहां पर ज्ञान और चारित्र दोनों स्थित हैं परन्तु एक सम्यक्त्व के

विना ज्ञान और चारित्र कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं है। आचार्य ने सम्यक्त्व को खेवटिया कहा है (जिस) जहाँ घाट पर नाव रक्खी हुई दिखाई देती है यात्रीगण भी बैठ गये हैं परन्तु उस नाव को चलाने वाला मल्लाह न होने के कारण नाव दूसरी पार पर जा नहीं सकती न यात्रीगण ही पार हो सकते हैं। उसी प्रकार यहां पर समझ लेना चाहिये कि यात्री जहां के तहां ही रह जायेगें अपने यथेष्ठ स्थान को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। न अपने इष्ट मित्रों सम्बधियों से ही मिल सकते हैं। नाव और नाव का चलाने वाला खेवटिया जब मिल जावेगा तभी नदी को पार कर यात्री अपने अपने स्थान को सुलभता पूर्वक प्राप्त कर सकेंगे इस लिये सम्यक्त्व प्रधान है ज्ञान चारित्र प्रधान नहीं है क्योंकि ज्ञान और चारित्र मिथ्या भी होते हैं ।।३५४।।

सवितु र्जननी पुत्राः सखा स्त्री धन धान्ये वास्तु विषये ।।
संसारसारसौख्यं जानीहि सम्यक्त्वफलम् ।।३५५।।

सुयोग्य पिता दयावान संयमी गुणवान जिनकी कीर्ति चारों ओर फैल रही है जो दानादि शुभ क्रिया करने में तथा जिन भक्ति पूजा स्वाध्याय और सामायिक करने में जिनका मन भ्रमर की तरह आशक्त है ऐसे पिता का मिलना। सरल स्वभाव वाली शीलवान दयावान पृथ्वी के समान क्षमा धारण करने वाली चतुर गृह व धार्मिक कार्य करने में निपुण और लज्जावान तन्वी पापों से डरने वाली तथा देव शास्त्र और गुरु सज्जनों की सेवा पूजा करने वाली तथा जानी हुई बात को न भूलने वाली हंसमुख रहने वाली जिसके मुख पर ग्लानि का अंश नहीं सब को प्रसन्न करने वाली प्रियमधुर वाणी बोलने वाली माता का मिलना। रूपवान गुणवान दया धर्म परायण शीलवान पूजादान आदि क्रियाओं के करने में दत्तचित्त तथा दुर्गुणों को निकाल दिया है जो एक पतिव्रत को धारण करने वाली विनयवान स्त्री का मिलना तथा पति आज्ञा को शिराधार्यकर मानने वाली तथा मधुर बोलने वाली स्त्री का मिलना। निर्व्यसनी दयावान पापभीरू आज्ञाकारी सब गुणों करि अलंकृत देव गुरु धर्म भक्त परायण पुत्र का मिलना। तथा नित्य क्रिया करने में लीन माता-पिता की आज्ञा पालन ही जिनका धर्म है जो सप्त व्यसनों से रहित सदाचारी गरीबों पर दया दृष्टि रखने वाले परस्पर विग्रह से रहित सबसे व्यवहार कुशल पुत्र का मिलना। मित्र जो अपने मित्र का सदा हित का चाहने वाला खोटी लौकिक जनों की संगत से बचाने वाले मित्र का मिलना। गाय, भैंस, हाथी, घोडा, इत्यादि अपने योग्य मिलना वस्त्र आभूषण, मकान, क्षेत्र, राज्य, वैभव का योग्य मिलना संसार के उत्तमोत्तम सुखों की प्राप्ति का होना। चक्रवर्ती तीर्थंकर बलभद्र आदि पदों का मिलना यह सब सम्यक्त्व की ही महिमा है ।।३५५।।

बिना मिथ्यात्वेन ये शिव मजर ममरमक्षयं विभवं ।।
व्यपगत कषाय वायुः काष्टागत सुख विद्यां यान्ति ।।३५६।।

जिसका मिथ्यात्व कर्म व अनंतानुवन्धी चार कषायें नष्ट हो गई हैं ऐसा भव्य सम्यग्दष्टि जीव बुढ़ापा से रहित जिसका विनाश नहीं होता है जिसका अंत नहीं है जो

कषाय रूपी वायु के झकोरों से रहित है छैनी के द्वारा लकड़ी में छिद्र किये गये के समान हीनाधिकता से रहित ऐसे अविनाशी अनन्त ज्ञान सुख वीर्यादि गुणों को सम्यग्दृष्टि ही प्राप्त होते हैं।

मिथ्यात्व कषायों के विना सम्यग्दृष्टि जीव रागद्वेप रूपी वायु से रहित मोक्ष सुख को प्राप्त होता है उस मोक्ष में अक्षय विद्या प्राप्त होती है जो मोक्ष सुख वृद्धावस्था से रहित जिसमें वाल अवस्था वृद्धावस्था यौवन नहीं पाया जाता है अनंत ज्ञान, वैभव, को प्राप्त होता है जिस प्रकार छैनी से किया गया साल छिद्र लकड़ी में ज्यों का त्यों बना रहता है न घटता है न वढ़ता है उसी प्रकार मोक्ष में स्थित आत्माओं के अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य तथा अगरु लघुत्व अव्यावाध अवगाहनत्व सूक्ष्मत्वादि सव गुण हीनाधिकता से रहित होते हैं। इसी प्रकार कल्प काल वीत जाने पर भी ज्ञान सुख का वैभव हीनाधिकता को प्राप्त नहीं होता इन सव गुणों को मिथ्यात्व से रहित ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है। यह सम्यक्त्व का महात्म्य है।।३५६।।

भुवनत्रिय नारक स्त्री नपुंसक त्रियश्चोकुलदरिद्रिषु ।।
हीनांगाल्पायुषु चाव्रत्यपि न जातं सदृष्टिनः ।।३५७।।

सम्यग्दृष्टि जीव मरने के पीछे भवनवासी देव देवियों में व्यन्तर देव देवियों में ज्योतिष्क देव देवियों व नारकियों में तथा त्रियंचों में त्रियंचिनियों में तथा नपुंसकों में नीच कुलों में दरीद्रियों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा अंग उपांग हीन भी नहीं होता है। अल्प आयु वालों में उत्पन्न नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि असंयमी होने पर भी नीच कुल व स्त्रियों में पांच स्थावरों में व विकलेन्द्रिय अपनी पंचेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होता है। यह सम्यक्त्व का ही महात्म्य है।।३५७।।

संसारस्थ मूलं च महार्घदुःखस्य हेतुः मिथ्यात्वं ।
रिपुः स एव च लोके नान्यथा कोऽपि भवतोऽद्वितीयम् ।।३५८।।

संसार रूपी अंकुर का वीज है तो यह मिथ्यात्व ही है। संसार वृद्धि का कारण तथा पंचपरावर्तन की जड़ यह मिथ्यात्व ही है। जिसके कारण जीव संसार परावर्तनों को करता हुआ चारों गतियों में भ्रमण कर जन्म मरण के महाघोर दुःखों का भोग करता है। कहीं इष्ट वियोग का दुःख, कहीं अनिष्ट योग का दुःख, कहीं विना पुत्र के दुःख, कहीं पुत्र मरण वियोग का दुःख, कहीं स्त्री न होने के कारण दुःख, कहीं कर्कशास्त्री के होने का दुःख, कहीं स्त्री के मरण होने पर वियोग का दुःख, कहीं धन के न होने व नष्ट होने रूप दुःख, कहीं धन के होने पर दुख। कोई दीन दरिद्री होने के कारण दुःखी, कोई दुराचारी व्यसनी पुत्र पुत्री होने के कारण दुःख किसी के पुत्री विधवा होने से दुःख कहीं दुराचारिणी, व्यभिचारिणी स्त्री के कारण दुःख। कहीं पृथ्वी छूने का दुःख, कहीं शीत, कहीं, उष्णता का दुख कहीं मारने छेदने भेदने पीटने पानी अन्न के न मिलने रूप दुःखहै। जहाँ पर भूख व प्यास की ऐसी वेदना होती है। कि मुझे तीन लोक का पानी और अन्न मिल जावे तो सवको एक वार में ही खा जाऊँ परन्तु एक भी दाना मिलता नहीं। कहीं पर परस्पर में लड़कर एक दूसरे के गात्र के छोटे-छोटे तिल के

वराबर टुकड़े करने व जीवित ही तैल मिर्चा नमक मिला कर अग्नि में राधनां छोंकना छेदना काटना पकवाना रूप महाघोर दु:ख जीव को मिथ्यात्व के ही कारण मिलते हैं। कहीं त्रियंच गति में भूख का प्यास का दु:ख अतिभार लादने पर व अन्न पान का निरोध करने पर व अपने से वलवान के द्वारा मारने छेदने के कारण अतिशय भयानक दु:ख जीव को मिथ्यात्व के ही कारण भोगने पड़ते हैं। स्वर्ग में भी देव मानसिक दु:ख से ही दु:खी रहते हैं और आर्त्त ध्यान कर मरते हैं तथा अत्यन्त अधीर होकर मरणकर स्थावरों में उत्पन्न होते हैं। होन अंग दरिद्री नीच कुल कुदेश इत्यादिक स्थानों में उत्पन्न होकर दुखों को प्राप्त कर भोगते हैं। संसार के दुखों का दूसरा कोई कारण नहीं दू:खों का कारण एक मिथ्यात्व ही है। यह मिथ्यात्व ही जीव का वैरी है ।।३५८।।

सम्यक्त्व सादृशं च न त्रिलोके त्रिकाले सखाकोऽपि।
दातारोयत्सौख्यं क्षतं दु:खं खलु दुष्कृतानां ।।३५६।।

सम्यक्त्व के समान ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक इन तीनों लोकों में तथा भूत भविष्य व वर्तमान तीनों कालों में कोई भी परम उपकारी मित्र नहीं हैं। यह सम्यक्त्व ही पहले कहे गये सव दु:खों का नाशकरने वाला ही नहीं है अपितु सव प्रकार के पापों का क्षय करता है। सम्यक्त्व के होने पर पंचपरावर्तन रूप संसार का भी अन्त आ जाता है तथा नरक गति त्रियंच गति, देव गति और मनुष्य गति के दु:खों से छुड़ाकर स्वर्ग और मोक्ष सुखों को देने वाला है। संसारी जीवों का उपकार करने वाला है तो एक सम्यक्त्व है वही कल्याण कारी है मोक्ष सुख में पहुंचाने वाला मित्र है ।।३५६।।

जातोनीचकुलेषुयत् भवति खलु सुदृष्टि: ।
पूज्यतेचांगार वल्लोके भस्माक्षादितमात्मनम् ।।३६०।।

यदि कोई भव्य जीव नीच कुलों में उत्पन्न हुआ हो और सम्यक्त्व को प्राप्त हो जावे तो वह श्रेष्ठ माना जाता है। जिस प्रकार राख के अन्दर छिपी हुई अग्नि के समान हो उत्कृष्ट आत्मा माना जाता है। यदि उसका आत्मा चारित्र मोह के उदय के कारण से संयम को नहीं धारण कर सकता है जैसे अग्नि की उष्णता छिप नहीं सकती तत्प्रमाण सम्यक्त्व कहीं छिपाने पर छिप नहीं सकता है ।३६०।।

सम्यक्त्वं मोक्षमूल: मूलविना न परिवार परिवृद्धि: ।
मूलविनष्टे द्रुमस्य न वृद्धिस्तथा, सम्यक्त्वम् ।।३६१।।

सम्यक्त्व मोक्ष रूपी वृक्ष की जड़ हैं अथवा चारित्र रूपी वृक्ष को जड़ है मूल के बिना चारित्र रूप की साखायें व पिण्ड टहनो पत्ते फूलों की उत्पत्ति वृद्धि नहीं हो सकती है। जिस वृक्ष में जड़ नहीं है क्या वह वृक्ष वृद्धि को प्राप्त हो सकता है? नहीं। चाहे जितना पानी या खाद दिया जावे कितनी ही रक्षा की जावे तो भी वह अवश्य ही सूख जाता है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के अभाव में ज्ञान और चारित्र की स्थिति नहीं रह जाती है ।३६१।।

व्रत संयमोपवासा: शीलतपश्चवहुविधः कृत्वापि ।।
सम्यग्युतोमोक्षसुख: सम्यक्त्वं बिना दीर्घ भवोदधि: ।।३६२।।

अहिंसा अणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचोर्या णुव्रत, ब्रह्मचर्या णुव्रत, परिग्रह परमाणुव्रत तदा ये ही पंच महाव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक प्रोपषोपवास भोगोपभोग प्रमाण, अतिथिसंविभाग, तथा मद्य, मांस, मधु, त्याग रूप व्रतों का धारण कर पालन करना तथा पंचेन्द्रिय संयम व मन संयम, त्रस संयम, स्थावर संयम, तथा अन्न जल का त्याग करना व अन्न का त्याग करना शीलों का पालन करना अनशन ऊनोदर व्रत परिसंख्यान व्रत रसों का त्याग विवृत्त शैय्यासन और अनेक प्रकार के काय क्लेशों को सहन करना तथा (पंचाग्नि तप करना शूलों की सैया पर सोना खड़े ही रहना) इत्यादि तपों का निरंतर करना ये सब किये गये हैं वे सम्यक्त्व सहित किये गये हैं तो मोक्ष सुख के कारण होते हैं यदि सम्यक्त्व रहित होकर किये गये हैं तो अनंत संसार की वृद्धि के ही कारण हैं।

(आचार्य कहते) ग्रन्थकार कहते हैं कि इस जीव ने सम्यक्त्व सहित होकर कभी भी व्रतों को धारण नहीं किया न संयम को ही पालन किया न कर्मो की जड़ को नाश करने वाले उपवासों को ही धारण किया। इस जीव ने अनेक वार रोहणी व्रत चारित्र शुद्धि के उपवास कनकावली के उपवास सर्वतोभद्र कर्मदहन के उपवास मालारोह व्रत के उपवास अनेक वार किये शीलों का पालन किया, उपवास व ऊनोदर आदि तप भी अनेक वार किये परन्तु एक सम्यक्त्व के न होने के कारण ही यह जीव दीर्घ संसारी ही वना रहा पंचपरावर्तनों में भ्रमण करता रहा। इन व्रतादिक को जीव जव सम्यक्त्व रूप भाव से पालन करता है तव जीव को संसार के जन्म मरण के दुःखों से शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है। इसलिए ये सम्यक्त्व सहित के लिए तो मोक्ष सुख के कारण हैं। नहीं तो दीर्घ संसार वृद्धि के कारण हैं।।३६२।।

पूजा दानं सेवा बहुगुण चारित्रं सर्वं जानहु।
सम्यक्त्वेन मोक्षः सम्यग्विना दीर्घ भवार्णवः ।।३६३।।

अष्टान्हिका पूजा सिद्ध चक्र पूजा, इन्द्र ध्वज पूजा, सर्वतोभद्र पूजा, त्रिलोक पूजा नित्य पूजा, तथा मुनि आर्यिका क्षुल्लक, क्षुल्लिका चार प्रकार के संघ को दान देना मन्दिर निर्माण करने में दान देना विद्यालयों के लिए दान देना तथा सेवा ,चाकरी करना और भी विनयादिक अनेक गुणों का होना तथा व्रत समिति गुप्तियों का पालन करना तथा अरहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा जिन वाणी की पूजा भक्ति यदि सम्यक्त्व पूर्वक की गई है तो वह मोक्ष का कारण होती है यदि मिथ्यात्व सहित की गई है तो अनन्त संसार का कारण भी होती है।।३६३।।

विवेक रहित ही मिथ्यादृष्टि है

पुण्यापुण्ये धर्मोऽधर्मौ हेयोपादे शुभाशुभौ ।
पात्रापात्रौ संयताऽसंयतौ भव्याभव्यौ ।।३६४।।
कार्याकार्ये च हिताऽहितो नात्मानात्मनौ न जानाति ।।
कृत्याकृत्यौ लाभालाभौ स्वभावश्चविभावः ।।३६५
तत्त्वातत्त्वे दुखं सुखे मोक्षोऽमोक्षश्चाविवेकिनः ।
यच्चमिथ्यादृष्टिनः सत्यासत्येषु विहीनश्च ।।३६६।। त्रिलंका

अज्ञान मोह रूप अन्धकार जिसके घर में विद्यमान है ऐसा भव्य विवेक शून्य होता हुआ यह नहीं जानता है कि पुण्य किस कार्य का होता है और पाप किस कार्य को करने में होता है पुण्य पाप का विवेक नहीं करता है वह मिथ्यादृष्टि है। धर्म जीव का उपकारी और अधर्म जीव का कितना अपकारी है। धर्म किसको कहते हैं। अधर्म किसको कहते हैं। इन दोनों का स्वरूप कैसा है ऐसा नहीं जानता है वह मिथ्यादृष्टि है। क्या छोड़ना चाहिये क्या नहीं छोड़ना चाहिये क्या मेरे प्राप्त करने योग्य है, क्या मेरे छोड़ने योग्य है, ऐसे हेयोपादेय के विवेक से रहित है वे ही मिथ्यादृष्टि जीव हैं।

किसका परिहार करूं किसको ग्रहणकरूं क्या मेरे लिए शुभ काम है ? क्या अशुभ है ? कौन पात्र है किसको अपात्र कहते हैं ? पात्र और अपात्र के विवेक से शून्य है। संयम क्या है किस प्रकार का है इसके धारण करने पर मुझको क्या लाभ होगा। और क्या हानि होगी। तथा असंयम क्या चीज़ है और इसके धारण करने पर मुझे क्या हानि उठानी पडेगी। जो भव्य और अभव्य के विवेक से सून्य है कि भव्य क्या है ? अभव्य कौन और क्या है ? मेरे करने योग्य कौन सा कार्य है न करने योग्य कौन सा कार्य है। कार्य अकार्य के करने पर क्या मुझे हानि उठानी पड़ेगी या मुझे लाभ होगा ? आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जो है कि आत्मा क्या किसका नाम है अनात्मा क्या, किस का नाम है। आत्मा को जानने से व समझने से मेरी क्या हानि होगी अनात्मा के जानने व देखने से क्या हानि होगी ? आत्मा अनात्मा के विवेक से जो शून्य है वह वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। करने योग्य क्या है न करने योग्य क्या है किस कार्य के करने पर मुझे सुख शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। किस कार्य करने पर मुझको दुःख मिलेगा ऐसे अहिंसा और आरम्भ हिंसा में विवेक न करता हुआ विचरता है वह मिथ्यादृष्टि है। अपने लाभ का और हानि के विवेक से विहीन है तथा मेरा स्वभाव क्या है विभाव क्या है। स्वभाव को जानने व देखने व मनन करने पर क्या लाभ हो सकेगा ? विभाव के देखने जानने पर या अनुभव करने पर क्या मुझको विशेष वस्तु की प्राप्ति हो जायेगी ? स्वभाव क्या है ? विभाव क्या है कैसा है ? तत्त्व क्या है कितने हैं कौन-कौन से हैं ? अतत्त्व क्या है ? कौन-कौन से हैं ? इन तत्त्वों के जानने व देखने परिचय में लाने पर मुझे क्या हानि उठानी पड़ेगी ? अतत्त्वों को जानने देखने समझने के पीछे क्या मेरी हानि होगी ? क्या मुझे विशेष लाभ होगा ? दुःख किस कारण से होता है किस प्रकार का होता है कैसे जाना जाता है इसका भोगने वाला स्वामी कौन है ? इसकेभोगने से मेरे को क्या हानि होगी ? तथा सुख किस कारण से होता है सुख का साधन क्या है सुख के साधन व सुख से क्या लाभ और हानि हो सकेगी ? क्या नहीं हो सकेगी ? मोक्ष क्या है, कैसी है, कैसा परिणाम है। किस प्रकार होती है ? मोक्ष का स्वरूप क्या है ? किसने मोक्ष को प्राप्त किया है उसका फल क्या है ? संसार क्या है क्या वंधन है, कर्म कौन-कौन से हैं। इनका फल क्या है, इनका स्वभाव कैसा है। इनके रहते और न रहते हुए मुझे क्या लाभ है क्या हानि है ? संसार किसको कहते हैं संसार कितना वड़ा है इसका कारण क्या है ? संसार वंध कहां पर होता है, किस प्रकार होता है, इसके विवेक से रहित है मिथ्यादृष्टि है। संसार में सत्य क्या वस्तु है असत्य क्या वस्तु है सत्य किसका

साधन है, किसके आधार पर स्थित है, कहां पर रहता है, क्या उसका कार्य है ? असत्य क्या है कैसा है इससे क्या हानि है ? क्यों नहीं कहना चाहिए ? इस प्रकार जो विवेक से रहित है वही मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व कर्म का उदय होता है तब जीव अपने पुण्य पाप का फलभोगता हुआ भी दुःखी होता है, रोता है, चिल्लाता है, परन्तु विवेक शून्य होने के कारण ही एक तरफ से छूटता है तो दूसरी तरफ से बंधता जाता है जिस प्रकार मथान (रई) एक तरफ से छूटती है तो दूसरी तरफ से बंधती जाती है यही गतिमिथ्यादृष्टि अविवेकी की कही गई है।

विशेष—मिथ्यात्व अंधकार में फंसे हुए प्राणियों को विवेक का अभाव होने के कारण भूतावेश के समान (उसका) वह मूढ हो जाता है। उसकी विचार करने की शक्ति नष्ट हो जाती है तब किंकर्तव्यं ऐसा मूढ हो जाता है। उस समय में उसको अपना पराया नहीं सूझता है चाहे जिसकी पूजा स्तवन करता है, किसी का विनाश करता है आप कहीं गिरता है कहीं भी कुछ भी करता है यह दशा मिथ्यात्व के कारण ही जीव की होती है। जब विवेक जाग्रत होवे तब सुधरे और सम्यक्त्व को प्राप्त हो तब पुण्य और पाप का फल जाने तब पापों का त्याग कर पुण्योपार्जन करने के भाव होवें कि पाप क्या है ? पुण्य क्या है ? पाप तो अज्ञान मिथ्यात्व है। पुण्य सुज्ञान और सम्यक्त्व है। पाप तो संसार की वृद्धि का कारण है तथा पुण्य है वह संसार के दुःखों से जीव को छुटाने वाला है, तथा परंपरा मोक्ष का भी कारण है। मिथ्यात्व और सासादन ये दोनों गुण स्थान हैं पाप रूप हैं आगे के गुणस्थान पुण्य रूप हैं क्योंकि तीसरे गुण स्थान से लेकर १३ तेरहवें गुण स्थान तक पुण्य का उदय जीव के पाया जाता है। पाप है वह संसार में होने वाले जन्म मरण वेदना, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग रूप दुःख देने वाला है तथा नरक गति त्रियंचं गतियों में ले जाने में प्रेमी मित्र के समान है ऐसा जानकर अशुभ भाव जो पाप रूप हैं उनका त्याग करके पुण्य रूप होवे। धर्म ही दुःखों से संसारी जीवों को छुड़ा कर उत्तम से उत्तम मोक्ष सुख में ले जाकर धरता है और सब प्राणियों का हित करने वाला है। सुख देने वाला है धर्म से ही धन, धन से भोगोपभोगों का वैभव, राज्य पद, चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद, इन्द्र पद, माहेन्द्र पद मिलते हैं। तथा धर्म से ही मोक्ष मिलता है धर्म का मूल तो अपने आत्मा के घातक मिथ्यात्व कषायों का अभाव का होना है। तथा दया रूप सम्यक्त्व आत्मा का गुण है ऐसा जाने तब यह प्रतीति होवे कि अधर्म ही अनंत संसार का बीज पाप मूलक दुःखों का हेतु पाप ही है, ऐसा जान पाप रूप मिथ्यात्व का त्याग करें। तथा अधर्म हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परस्त्री और परिग्रह में अशक्तता का होना, अदया, असंयम की प्रवृत्ति, जहाँ पर होती है वहां ही मिथ्यात्व है। उसका ही नाम अधर्म है। जब वह जाने कि यह मिथ्यात्व मेरा अहित करने वाला है और सम्यक्त्व मेरा हित करने वाला है। अहितकारी जाने तब मिथ्यात्व का त्याग करे। इस मिथ्यात्व रूप पदार्थ के सेवन करने मात्र से मुझे नरक गति में जाना पड़ेगा और वहां पर अनेक प्रकार से हजारों दुःख भोगने पड़ेंगे। तब मिथ्यात्व का वमन करे परन्तु विवेक सून्य होने के कारण जानते हुए भी उसका त्याग नहीं करता है। जिनोक्त धर्म और धर्म का स्वरूप जान श्रद्धापूर्वक धारण करना यह धर्म दुःखापहारक है। ऐसा माने तब मिथ्यामार्ग व हिंसादि

पापों में धर्म की कल्पना की गई थी उसका त्याग करे ? तब अशुभ भाव का त्याग करने पर शुभभाव में प्रवृत्ति हो । यह अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टि कुपात्र सुपात्र के विवेक से सून्य होने के कारण कुपात्र को ही सुपात्र मान कर उनके लिए दान देता है । उनसे प्रति उपकार की इच्छा करता है तथा भांग, धतूरा, गांजा, मद्य आदि द्रव्यें दान में देता है । धन देकर अपने को सुखी बनाने की इच्छा करता है । जो पात्र गांजा, अफीम, भाँग, धतूरा खाता है, मद्यपान करता है, तथा पर महिलाओं के साथ विषयकाम सेवन करता है, तथा हिंसा आरम्भ में रत रहता है, जो माया पाप प्रवृत्ति में लवलीन रहते है, उनको ही पात्र मानता है । जो हिंसा, आरम्भ, परिग्रह, नशीली वस्तुओं से वहुत दूर हैं और ध्यानाध्ययन में लीन है । जिन्होंने आशारूपी बेल को जड़ को उखाड़ के फेंक दिया है वे सच्चे पात्र हैं उनकी तरफ दृष्टि भी नहीं डालता है । परन्तु उपकारी होने पर भी उनको अपकारी मान कर द्वेष करता है । इस प्रकार पात्रापात्र के विवेक रहित होने के कारण ही अपात्रों की आराधना व दान मान पूजा करता है । जीव विराधना रूप असंयम है और जीवों की अविराधना रूप संयम है । इन दोनों के विवेक से सून्य मिथ्यादृष्टि जीव की विराधना व रात्रि भोजन व देवी देवता व धर्म के नाम पर पशु पक्षियों की विराधना करता है । और उससे होने वाले असंयम को ही महत्व देता है तथा धर्म मान करता है । किस प्रकार कैसा कौन-सा कार्य करने से मुझको सुख मिलेगा तथा हित होगा ? अथवा किस कार्य के करने से मेरा अहित होगा ! इन दोनों के विचार से सून्य होता हुआ अहित को ही अपना हितकर मानता है । शुभोपयोग रूप जो पुण्य है उसको त्याग कर पाप रूप दुःखों के कारणों को बड़ी चतुराई पूर्वक करता वह विवेकहीन मिथ्यादृष्टि है । क्या कार्य है क्या अकार्य है ? इन में भी विवेक नहीं करने वाला आत्मा और अनात्मा के विवेक से सून्य शरीर और शरीर से सम्बंधित अपने से भिन्न, स्त्री, पुत्र, ग्राम, देश, राज्य, मकान, नौकर, आदि को व गाय भैंस, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, इत्यादि तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, पुण्य, पाप, के फल को भोगता हुआ उनको अपना आत्मिक वस्तु मानता है । यह मेरा मकान मैंने बनवाया है मेरे पुत्र हैं मैंने उत्पन्न किये हैं यह मेरी स्त्री है इस प्रकार पर वस्तुओं में अधिक ममत्व भाव रखता है । चेतन अचेतन पर पदार्थों को ही अपना व अपने रूप मानता है परन्तु निज आत्म स्वभाव का जिसको भान ही नहीं है ऐसा मिथ्यादृष्टि वहिरात्मा जीव है ।

यह करने योग्य न करने योग्य को भी नहीं जानता है न करने योग्य कार्यों को बड़े उत्साह पूर्वक करता है । करवाता है अनुमोदना भी करता है जो हिंसा आरंभ और असत्य भाषण, छल कपट, दगाबाजी, जुआ खेलना, मांस मदिरा का सेवन करता है । कुदेव देवियों के लिए जानवरों की बलि चढ़ा कर अपने कल्याण की इच्छा करता है तथा उसको ही मंगल मानता है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जो शुभ क्रियायें हैं । जैसे अणुव्रत, महाव्रत, शील, देव, पूजा, स्तवन दानादि व परोपकारादि को त्याग कर देता है । उनकी तरफ दृष्टि नहीं डालने वाला विवेक सून्य अयोग्य को कर योग्य को छोड़ देता है । तथा करने योग्य शुभ कर्मों से घृणा कर छोड़ देता है करता भी है प्रमादपूर्वक करता है यथा काल में भावनापूर्वक नहीं करता है ।

किस कार्य करने में मुझे हानि उठानी पड़ेगी और किस कार्य करने में मुझको लाभ

होगा इन दोनों के विवेक से सून्य होने के कारण जिन कार्यों को करने से अत्यधिक गुणों का ह्रास होता है उन कार्यों को विधिपूर्वक करने में समर्थ होता है। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव है वह अज्ञानी मोही विवेक सून्य मिथ्यादृष्टि आत्म लाभ के कारणों को व साधनों को नष्ट कर अनात्म पदार्थों की वृद्धि करने में लवलीन होता है। जिसके कारण नाना प्रकार के संकट इसको भोगने पड़ते हैं। दुःखों को भोगता हुआ भी सचेत नहीं होता है कि ये दुःख मुझे क्यों कर प्राप्त हुए ? संकटों को दूर करने के लिए शनि देव की पूजा करता है, राहु केतू के लिए पशु मार वलि चढ़ाता है सूर्य चन्द्रमा नाग देव खंडोवा (कुत्ता) को देव मान कर पूजा करता है। जिससे पुनः दुःखों के भयानक समुद्र में जा पड़ता है ऐसा लाभ और अलाभ के विवेक से सून्य मिथ्यादृष्टि वहिरात्मा है जिन से सुख की प्राप्ति होती है उन मैत्री भाव दया भाव अहिंसादि धर्मों का त्याग कर व सच्चे देव शास्त्र गुरु व संयम से वहुत दूर चला जाता है ऐसा जीव ही मिथ्यादृष्टि है।

वस्तु का क्या स्वभाव है, क्या विभाव है इसके विपय में विवेक रहित ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव है जो यथार्थ वस्तु स्वभाव है उसको तो जानता ही नहीं कि सम्यक्त्व क्या है सम्यग्ज्ञान क्या है सम्यक् चारित्र क्या है, दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग किसका स्वभाव है या चित्स्वभाव किसका है इसको न जानता हुआ स्त्री पुत्र मकान वस्त्र पंचेन्द्रियों के विपय राग द्वेप मोह क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं को तथा ईर्ष्या डाह इन को ही अपना स्वभाव व धर्म मानता है ऐसा वहि-रात्मा मिथ्यदृष्टि है। शरीर की उत्पत्ति को अपनी उत्पत्ति मानता है। शरीर के नाश होने को ही अपना नाश मानता है शरीर की कमजोरी को ही अपनी कमजोरी व निर्वलता मानता है शरीर के वल को ही अपना वल मान कर कहता है कि मैं वलवान हूँ यदि चार अक्षर पढ़ लेता है तव अपने को विद्वान मानता है, और चार अक्षर नहीं पढ़े तो अपने को मूर्ख मानता है तथा अपनी उत्पत्ति पाँच भूतों से मानता है ऐसा स्वभाव विभाव को न जानने वाला ही वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

भव्य क्या है, अभव्य क्या है इसके विवेक से सून्य है वह मिथ्यादृष्टि है। जिनमें होने की शक्ति विशेष है उसको भव्य कहते हैं। जिसमें होने की शक्ति नहीं है उसको अभव्य कहते हैं। होनहार का विचार नहीं करता है। क्या तत्त्व है क्या अतत्त्व हैं ? जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहेग ये पदार्थ व तत्त्वें द्रव्यें और अस्तिकाय इनको न मानकर स्त्री, पुत्र, माता, पिता हाथी, घोड़ा, गाय, वैल, शरीर को तत्त्व मानता है। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनको तत्त्व मानता है तथा रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, ताँवा, लोहा, मकान, घर क्षेत्र को तत्व मानता है और चर्चा भी यही करता है कि इससे भिन्न कोई तत्त्व है ही नहीं। जीव, अजीव, आस्रव वंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप, ये नौ तथा पाप पुण्य को निकाल देने पर येही सात तत्त्व होते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल। काल को द्रव्य छोड़कर शेष द्रव्यें पंचास्तिकाय हैं इन तत्त्वों को तत्त्व न मान कर अतत्त्वों को ही तत्त्व मानने वाला अज्ञानियों के द्वारा कहीं गई मछली, कच्छप, सूकर, नरसिंह, वामन इत्यादि को ही तीर्थ कर्ता मानता है।

और उनको ही मार कर खा जाता है। परन्तु जिन धर्म में कहे गये वृषभादि तीर्थंकरों को तीर्थंकर नहीं मानता है मिथ्यादृष्टि पाखंडी आड़म्बर से युक्त भेष धारी आरम्भादिक पापों में रत रहने वालों की सेवा करता श्रद्धाभवित करता है ऐसा मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है सत्यासत्य के विवेक से सून्य सत्यार्थ परमार्थ भूत जो जीवादिक तत्त्व या पदार्थ कहे गये हैं उनको न जानता हुआ जो सत्यता से रहित हैं अथवा दुःख के कारण हैं उनको सेवन कर अपने में सुखों की इच्छा करता है ऐसा वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव है ॥ ३६७।३६८।३६९॥

न जानाति जिनसिद्ध स्वरूपं त्रिविधाऽऽत्मनो भूतार्थे ॥
किमस्ति सम्यग्दृष्टि यात्मजरममरमविचलपदम् ॥३७०॥

जो भव्य आत्मा अरहंतों के स्वरूप तथा सिद्ध परमात्मा के स्वरूप को निश्चय और व्यवहार नय करके नहीं जानता है वह अपने आत्मा के तीन भेद से युक्त है उस आत्मा को भी नहीं जान सकता है कि वहिरात्मा क्या है कौन सा भाव वहिरात्मा का है अन्तरात्मा कौन कैसा है क्या उसका स्वभाव और लक्षण है। तथा परमात्मा कैसा है, क्या उसका स्वरूप है ऐसा नहीं जानने वाला किसका श्रद्धान करेगा। जब सम्यक्त्व की प्राप्ति ही नहीं हुई तब ज्ञान और चारित्र से भी मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। तथा जो मोक्ष सुख वृद्धावस्था के दुःखों से रहित अविनाशी हैं वह सुख ही अविचल है अथवा हीनाधिकता से रहित अतीन्द्रिय है ऐसे पद को प्राप्त कैसे होगा ? सबसे पहले अरहन्त सिद्ध स्वरूप को जिसने जान लिया है और उसपर श्रद्धान किया तब अपने आत्मा के भेदों को जान लिया कि आत्मा के तीन भेद हैं वहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा उसमें से वहिरात्मा भाव का त्याग करना तथा अन्तरात्मा होकर परमात्मा की ओर दृष्टि डाले तब मोक्ष पद को अवश्य पावेगा ऐसा श्रद्धान करेगा तब अवश्य सुख के साम्राज्य मोक्ष पद को पावेगा।३७०॥

भुक्त्वा सुखं नृदेव लोकयोरऽक्षयपदं लभते भव्यः
शरणागतः सर्व लोके ऽपरमितमन्ते याति सौख्यम् ।३७१॥

भव्य सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा देव लोक अथवा स्वर्ग लोक के दिव्य सुखों का भोग करता है देवों का स्वामी इन्द्र होता है वहाँ के दिव्य सुखों को भोग सागर की स्थिति से लेकर तेंतीस सागर की स्थिति पर्यन्त सुख भोगता है। अथवा जितने देव हैं उन पर हुकम चलाने वाला देवेन्द्र होता है देवों के समूह के साथ रहकर सुख भोगता है। जब देव आयु पूर्ण हो जाती है तब बहुतविभूति का धारी चक्रवर्ती होता है। और चक्ररत्न को धारण करके छह खण्ड पृथ्वी को अपना घर बना लेता है। जिसकी ३२ हजार नृप और देव सेवा करते हैं। जब सर्वविभूति को जीर्ण त्रण के समान त्यागकर जिन दीक्षा धारण करके शुक्ल ध्यान में स्थित होता है और कर्मो का नाश कर अनंत दर्शन ज्ञानादि वैभव को प्राप्त होकर संसारी जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देता है और अघातिया कर्मों का नाश करके मोक्ष सुख को सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त होता है ॥३७१॥

श्रेयं ज्ञानार्जनं च नृणां श्रेयं तच्छ्रद्धानैव
श्रद्धाने चारित्रं यल्लभते श्रेयससुखम् ॥३७२॥

मनुष्यों [को सबसे श्रेयस्कर तो यह है कि जिनागम का अभ्यास करके ज्ञानार्जन करें जो ज्ञानार्जन किया गया है उसमें श्रद्धान का होना श्रेयस्कर है और जिसका श्रद्धान हुआ है उसका ही यथार्थ ज्ञान होना है जिसका ज्ञान हुआ हैं उनका ही क्रिया रूप से परिणमन होना सो हो चारित्र है वह चारित्र ही मोक्ष का कारण है। श्रद्धान के विना जाने न जाने हुए पदार्थ व चारित्र सव ही निरर्थक ही होते हैं।

विशेष—जो ज्ञान उपार्जन किया गया है वह ज्ञान श्रद्धान रूप से परिणत हो जावे तो सम्यक्त्व होवे और जिस ज्ञान का श्रद्धान हुआ है उसका ही विवेक रूप यथार्थ ज्ञान हो जावे तव सम्यग्ज्ञान होता हैं और सम्यग्ज्ञान जो हुआ है वह चारित्र रूप परिणमन करे तव वह कर्मों का आस्रव वंध रुक कर सम्वर निर्जरा होवे तथा सर्व कर्मों का क्षय हो जाना ही मोक्ष है इसलिये सवसे श्रेष्ठ सम्यक्त्व ही गुण है ॥३७२॥

अक्षरमात्रा हीन मंत्रं न विषवेदनां विहन्यतां ॥
सम्यक्त्वांगहीनं दुष्कृतान मा जन्मसंतति ॥३७३॥

जो मंत्र अक्षर पदमात्रा हीन होता है, वह मंत्र विषकी वेदना को दूर करने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार निशांकितादि आठ अंगों में यदि एक अंग भी कम होगा तो वह सम्पक्त्व जन्म जन्म में किये गये मिथ्यात्व के द्वारा पाप कर्मों का नाश करने में समर्थ नहीं होता है।३७३

पापमूलं यत्स्यादन्यं लाभालाभे किं प्रयोजनं ॥
पापं विनाशोऽन्यं लाभालाभे किं प्रयोजनम् ॥३७४॥

पाप का कारण मूल में दूसरा ही है तव धन के लाभ या अलाभ से क्या प्रयोजन है। जहां पर पापों का निरोध व नाश का कारण अन्य हो है तो धन का लाभ से क्या प्रयोजन है। पापों का मूल कारण मिथ्यादर्शन जिसके रहते लक्ष्मी मिले न मिले कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है। पापों का आस्रव और वंध का निरोध करने व क्षय करने वाला सम्यक्त्व है जब सम्यक्त्व मिल गया तव अन्य संपति से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा।३७४॥

सम्यक्त्व सम्पन्नोयत् भवति पशुर्वहु श्रेयस्करं मानः ॥
नरत्वेऽयि पशूयाति मिथ्यात्व युक्तो मानवाश्च ॥ ३७५ ॥

यदि सम्यक्त्व सहित पशु भी हो तो वह श्रेष्ठ है परन्तु मिथ्यात्व सहित मनुष्य श्रेष्ठ नहीं। सम्यक्त्व सहित पशु भी मिथ्यादृष्टि मनुष्य से वहुत अच्छा है क्योंकि उसका संसार भ्रमण का अन्त नजदीक ही है इसलिए वह पशु नहीं वह मनुष्यों से श्रेष्ठ है क्योंकि पशुओं में आत्म अनात्म वस्तु का विवेक नहीं परन्तु मनुष्यों में सव प्रकार का विवेक है वह अनात्मिक वस्तुओं को ग्रहण करने का पूर्ण विचार करने में समर्थ है। यदि अविवेक सहित भोग और उपभोग भोगे तो मनुष्य में और पशु में क्या अन्तर है ? कुछ भी नहीं।

विशेषार्थ—सव जीवों की अपेक्षा मनुष्य विशेष विचारवान होता है। मिथ्यात्व के उदय से विपरीताभिनिवेश युक्त होने पर जव मनुष्य भी हिताहित के विचार से रहित होकर पशु के समान हो जाता है। तव पशु की वात ही क्या कहना है। तथा अविचार प्रधान पशुके भी कदाचित काललब्धि आदि कारणों के निमित्त से सम्यग्दर्शन को प्राप्त हो जावे

तो सम्यक्त्व के महात्म्य से पशु भी जब हेयोपादेय तत्त्व का वेत्ता हो जाता है। तो फिर मनुष्य की तो अब बात ही क्या कहना है सम्यक्त्व सहित पशु ही श्रेष्ठ है मिथ्यात्व युक्त मनुष्य नहीं ॥३७५॥

किंश्रेयशामरसुखं लब्ध्वायाति निगोदे दुःखंयत् ॥
श्रेयं नारक दुःखं निवशति सम्यक्त्वेन युक्तः ॥३७६॥

मानव दर्शन मोह अज्ञान अंधकार में फँसा हुआ विचार करता है कि स्वर्ग में जीवों को देवगति में उत्तम सुख भोगने को मिलते हैं वे देव गति के उत्तम सुख किस काम के हैं कि जिसको प्राप्त कर अन्त समय में निगोद में जाना पड़े। देवगति तो मिथ्यात्व रूप बाल तप से भी प्राप्त होती है तथा अकाम निर्जरा से भी प्राप्त होती है जब देवगति भी प्राप्त हो गई वह भी बिना सम्यक्त्व के समभाव आया नहीं और बड़े ऋद्धि के धारक देवों के वैभव देख देख नित प्रति संक्लिष्ट परिणाम किया बड़े वैभव के धारक देवों की आज्ञा के अनुसार गमन करना पड़ता है। ऋद्धि के धारक देवों की देवांगनायें वैभव अणिमा गरिमादि विभूतियां हैं वैसी हमको हाय नहीं मिली। हमको इनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है तथा इन की सवारी या वाहन का काम हमको करना पड़ता है। हाय हम इन्द्र कीभी सभा में नहीं जा सकते हमको बाजे बजाने का काम करना पड़ता है। इन्द्र तथा सामानिक पारिषद देव अपने-अपने वैभव व परिवार सहित जहां कही जाते है तब हमको अपना नियोगी वाहन मान कर व बाजे बजाने वाले, गान करने वालों को जैसी आज्ञा देते हैं वैसा ही हमको करना पड़ता है। जब कभी नंदीश्वर द्वीप मेरुओं के अकृत्रिम चैत्यालयों को वंदना करने को सपरिवार जाते हैं तब हमको ही इनका विमान बनकर जाना पड़ता है ये हमारे ऊपर बैठ कर जाते हैं। वे वाहन, देव, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बलद, सूकर, कुत्ता का रूप धारणकर विमान बनना पड़ता है इनके इतनी सुन्दर देवांगनायें है हमारी देवांगनायें इनके समान सुन्दर नहीं हैं। जब छह महीना आयुके शेष रह जाते हैं तब मिथ्यादृष्टि देवों की गले में पड़ी हुई मंदारमाला मुरझा जाती है तब वे देव रुदन मचाते हैं हाय अब हमारा सब वैभव छूट जायेगा हाय देवांगनायें छूट जायेगी मुझे ऐसे सुख कहां भोगने को मिलेंगे ? हाय अब मेरा विनाश होगा इस प्रकार तीव्र आर्त ध्यान उनके छह महीने तक निरंतर वेदना करता रहता है जिसके कारण देव मरकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं। परन्तु नरक में गया हुआ सम्यग्दृष्टि जीव वहाँ के दुःखों का भोग कर कर्मों की निर्जरा करके मनुष्यों में उत्पन्न होता है और संयम को धारण करके कर्मों की संवर पूर्वक निर्जरा करके तथा सब कर्मों को क्षय कर के अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं। इसलिये मिथ्यात्व सहित स्वर्ग में जाना देवगति को पाना श्रेष्ठ नहीं परन्तु सम्यक्त्व सहित नरक गति को पाना श्रेयस्कर है। मिथ्यात्व सहित देवगति का पाना सो भी अनंत संसार का कारण है जिस प्रकार हरी घास खिलाने वाला कषाई और सूखा घास खिलाने वाला वणिक् में कितना अन्तर है उतना हीदेवगति व नरकगति में अंतर है। कषाई पहले बकरे को हरी हरी घास डालता है पीछे उसी के गले पर छुरा चलाता है परन्तु बनिया जैसा सूखा घास डालकर गाय के जीवन की रक्षा करता है उसी प्रकार

मिथ्यात्व के कारण जीवों को दुःख भोगने पड़ते हैं। सम्यक्त्व से युक्त जीव सुखों का अनुभव करता है ।३७६॥

आगे सम्यक्त्व के आठ अंगों में प्रसिद्ध महापुरुष

नृप पुत्री ललितांगोऽनंतमती चोद्यायनो रेवती ।
जिनेन्द्र भक्तो वारिसेनो विष्णु वज्रकुमारौ ॥ ३७७॥

सम्यक्त्व के आठ अंगों में प्रसिद्ध हुए महापुरुष हैं उनके ये नाम हैं प्रथम अंग में राजपुत्र ललितांग प्रसिद्ध हुआ है। दूसरे निकांछित अंग में सेठ की पुत्री अनन्त मती वाला प्रसिद्ध हुई है। तीसरे निर्विचिकित्सा अंग में उपायन राजा प्रसिद्ध हुआ है। अमूढ़ दृष्टि अंग में रानी रेवती प्रसिद्ध हुई। उपहगुन अंग में जिनेन्द्र भक्त सेठ प्रसिद्ध हुआ, स्थिति करण अंग में वारिसेन राजकुमार प्रसिद्ध हुआ है वात्सल्य अंग में मुनि विष्णूकुमार प्रसिद्ध हुए और प्रभावना अंग मे व्रजकुमार मुनि विख्यात हुए हैं ॥ ३७७ ॥

राजकुमार ललितांग की कथा (अंजन चोर)

इस जम्बूद्वीप के उत्तर में भरत क्षेत्र है उसमें काश्मीर नामक सुप्रसिद्ध देश है। उस देश में विजयपुर नामक वड़ा विशाल नगर है उस नगर के राजा का नाम अरिमथन था वह वल विद्या में निपुण था सत्यवादी धर्म परायण शील संयमी सज्जन वृन्द से सदा घिरा रहता था। वह सभा के मध्य ऐसा सोभायमान होता था जैसे तारा गणों के वीचों वीच चन्द्रमा शोभायमान होता है। शत्रु दल का दमन करने वाला था। मत्त हाथियों के मदको निरास व तितर-वितर करने वाला केहरी के समान पराक्रमी था। उसकी पट्ट महिषी का नाम सौदरी देवी थी, उनके कोई सन्तान नहीं थी। राजा व रानी की यह भावना थी कि हमारे पीछे राज्यकार्य कौन सम्भालेगा। इस प्रकार मन में चिन्तातुर रहते थे। भाग्य उदय से वृद्धावस्था में उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ललितांग रक्खा गया था। परन्तु वृद्धावस्था में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता का वहुत प्यारा था। वाल अवस्था में उसको विद्या अध्ययन व धर्म शिक्षा कुछ भी नहीं दी गई थी। जो कुछ कार्य करता उसको ही देखकर माता-पिता प्रसन्न होते थे। अव क्या था कि कुमार ललितांग यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ और दुष्ट दुराचारी लौकिक जनों की संगत करने लगा था। जिससे वह भी सात व्यसनों का सेवन करने लगा था। वह जुआ खेलना, मांस खाना, शराव पीना, चोरी करना, वेश्या के घर जाना, शिकार खेलना पर स्त्री के साथ दुराचार करना इत्यादि। एक तो राजकुमार दूसरे वलवान तीसरे यौवन और दुराचारी नीच जनों की संगत मिल जाय तव उसकी वात ही क्या कहनी है इस प्रकार ललितांग अत्यन्त दुराचारी वन गया था। सात व्यसनों में पारंगत हो गया था। धर्मात्मा सज्जनों की स्त्री माता वहन पुत्रियों का शील धर्म नष्ट करने लगा तथा इज्जत को लेने लगा था। व लूटखसोट भी करने लगा। किसी को मारता था किसी को वांध लेता था किसी का धन छीन लेता था इस प्रकार सारे नगरवासियों को दिन-रात पीड़ा देता रहता था। जिससे नगर वासी अपनी-अपनी इज्जत आवरुह की रक्षा करनें की चेष्टा करते थे। सव जनता ललितांग के दुराचार से घवड़ाने लगी और दुःखी होने लगी जव ज्यादा उपद्रव करने लगा तव प्रजाजन

एकत्र होकर राजा के पास राज दरबार में तसरीफ लेकर पहुँचे और सब मिलकर राजा से निवेदन करने लगे कि हे राजन आप के राज्य काल में हमने बहुत सुख भोगे परन्तु अब हम आप के पास प्रार्थना करने आये हैं कि हमको आज्ञा दी जाय परदेश जानेका। ताकि हम दूसरे देश में जाकर रहें और अपने धन धर्म का पालन करें ? यह सुनकर राजा अरिमथन बड़े प्रेम के साथ पूछने लगा कि तुम्हारे ऊपरक्या आपत्ति आ उपस्थित हुई है सो क्यों नहीं कहते ? तब प्रजा ने ललितांग कुमार की सारी कथा कह सुनाई कि वह हमारे धन धर्म को व इज्जत को स्वयम् नष्ट करता है तथा अन्य दुराचारी जनों से नष्ट करवाता है वह नीच व्यभिचारी दुराचारी पुरुषों की संगतकरता है जिससे सबके साथदुष्टता का ही व्यवहार करता है। यह सुनकर राजा ने धैर्यता बंधाते हुए कहा कि वह ललितांग तुमको दुःख देता था तो तुमने अभी तक क्यों नहीं कहा ? हम उस ललितांग का आज ही इंतजाम कर देते हैं सब प्रजा जन अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। राजा ने भी ललितांग को बुलवाकर कहा कि बेटा आप रोज कहां जाते हो ? क्या कार्य करते हो कहां रहते हो ? इतना पूछे जाने पर ललितांग कुछ भी उत्तर नहीं देता है। तब राजा ने बहुत प्रकार से समझाया वह भी राजा के सामने हां करता गया और राजा के पास से चला गया। और अपने मित्रों में जाकर मिल गया और पुनः वह पहले के समान ही आचरण करने लगा। बुरे व्यसनों का सेवन करने लग गया।

जब चारों तरफ द्वन्द्व मचाने लगा तब पुनः जनता के मुखिया लोगों ने राजा के पास जाकर फरयाद की कि महाराज ललितांग कुमार हमको बहुत पीड़ा देने लगा है वह पहले के समान ही दुष्टों को साथ लेकर विचरता है। यह सुनकर राजा ने ललितांग कुमार को बुलाया और कहा कि अरे पुत्र तेरे को मैंने कितना समझाया परन्तु तूने उसपर बिलकुल ही अमल नहीं किया। इसलिए आज से अपना मुख नहीं दिखाना हमारे राज्य को छोड़कर अन्यत्र चले जाओ! यदि इस बात का उल्लघन किया तो तेरे को प्राण दण्ड दिया जायेगा। यह सुनकर ललितांग अपनी माता बरसुन्दरी के पास पहुँचा। और बोला माता जी मुझको पिता जी ने राज्य से निकाल दिया है अब मैं क्या करूं ? तब माता बोली बेटा पहले ही तेरे को अनेक बार समझाया था पर तेरे समझ में एक नहीं आई। मैं अब क्या करूँ ?

माता का ऐसा वचन सुनकर ललितांग राजमहल से बाहर निकला और राज्य छोड़कर बाहरी देश में चला गया। और राजगृह नगरी में पहुँचा वहां उसने एक मिथ्या साधू की संगत की साधु ने उसको अंजन गुटका सिद्ध करने का एक मंत्र दिया जिसको ललितांग ने बड़े प्रयत्नपूर्वक सिद्ध कर लिया जिससे वह कहीं भी रात्रि के मध्य में जाकर चोरी कर ले आता था। उसको सब दिखाई देते थे परन्तु वह किसी को दिखाई नहीं देता था। उस गुटिका को पाकर और अधिक चोरी करने लग गया। वहां राजगृह नगर में भी उसको दुष्ट दुराचारी सप्त व्यसनों में रत रहनेवाले बहुत से साथी मिल गये अब क्या था कि अंजन गुटिका के कारण उसको कोई देख नहीं पाता था वह मनमानी चोरी करने लगा। उसी नगर में एक अनंगसेना वेश्या थी उसके पास जाने लगा था। जितना चोरी कर धन लाता था उस द्रव्य को अनंग सुन्दरी को

ही दे देता था। इस प्रकार करते-करते कुछ दिन बीत गये थे कि एक दिन राजा और रानी दोनों हाथी पर बैठकर बड़े ठाटबाट धूम-धाम से निकले। महारानी के गले में एक रत्न हार था वह सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था उसको देखकर अनंग सुन्दरी वेश्या विचार करने लगी कि यह हार मेरे गले की शोभा नहीं बना तो मेरे जीवन को धिक्कार है। शाम का समय आता है तब वह वेश्या अनंग सुन्दरी अपना त्रिया चरित्र दिखाती हुई वेश भूषा बिगाड़े हुई पलंग पर पड़ी हुई थी कि ललितांग (अंजन चोर) आया और उसके कृत्य को देखकर दंग रह गया और सोचने लगा कि यह आज क्या देख रहा हूँ? यह ऐसे कैसे पड़ी है भीतर पलंग के पास जाकर कहने लगा कि हे प्यारी आप ऐसे क्यों पड़ी हो? क्या किसी ने तुम से कुछ कहा है? तब वह कुटिला रोना सा मुख कर बोली कि अब मैं तब आपको सच्चा अपना प्रिय समझूंगी जब आप रानी के गले का हार मुझे लाकर देवेंगे और मैं उस हार को पहन कर अपने गले की शोभा करूंगी। यह सुनकर ललितांग बोला कि यह मेरे लिये कोई बड़ी बात नहीं है परन्तु वह हार रात्रि में प्रकाश मान होने से भय है आप सारिखी सुन्दरी को बात मैं जमीन पर डालने को असमर्थ हूँ पर क्या करूँ? उस हार को कहीं पर छिपाया जाय पर वह छिप नहीं सकता है? राज कर्मचारी शीघ्र ही उसकी खोज करके तुम को भी पकड़ कर कष्ट देवेंगे। यदि राजा क्रोधित हो गया तो वह सारी सम्पति को लुटवा लेगा और प्राण दण्ड भी देवेगा? इतने समझाने पर उस वेश्या के मन में कुछ भी असर नहीं हुआ। वह कहने लगी कि तुम लाना नहीं चाहते हो इसलिए बातें बना रहे हो? यह सुनकर ललितांग बोला कि अभी शुक्ल पक्ष है इसमें मेरी विद्या कार्य नहीं करती है कृष्ण पक्ष आने दो तब तुम्हारी इच्छा पूरी की जाएगी यह वचन देता हूँ?

यह सुनकर वह वेश्या उठ खडी हुई और शृंगार करके पहले के समान वार्तालाप करने लगी। जब कृष्ण पक्ष आया तो ललितांग अंजन लगाकर रात्रि में राजमहल में प्रवेश कर रानी के गले में से हार को लेकर महल से बाहर निकला ही था कि कोतपाल ने देख लिया और जान गया कि यह कोई चोर है जो रानी के गले का हार लेकर जा रहा है यह मालूम होता है कि कोई अंजन गुटिका वाला चोर है। तब उसने उसका पीछा किया। कोतवाल को पीछे से आता हुआ देखकर वह ललितांग जोर से दौड़ने लगा परन्तु कोतवाल ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। यह देख कर अंजन चोर ने उस रत्न हार को वहीं छोड़ दिया और आप परकोटा को उलंघ कर श्मशान भूमि में जा पहुँचा जहां पर जिनदत्त श्रेष्ठी का मित्र वरसेन जहाँ आकाश-गामिनी विद्यासिद्ध कर रहा था। उसको देख कर अंजन चोर पूछने लगा कि आप यह क्या कर रहे हो? ऐसा पूछे जाने पर वह वरसेन बोला कि मेरे मित्र जिनदत्त ने वह विद्या साधन की विधि कही है आकाश गामिनी विद्या सिद्ध करने के लिए ये जमीन में अस्त्र गढे हुए हैं छींके पर चढकर इन धागाओं को क्रम से काटने पर आकाशगामिनी विद्या सिद्ध होगी। यह सुन कर अंजन चोर विचार करने लगा कि जिनदत्त श्रेष्ठी सत्यवादी जिनेन्द्र भगवान का भक्त और धर्मात्मा है वह मिथ्यावचन कभी भी बोल नहीं सकता है। ऐसा विचार कर मन में उससे पूछा कि उसकी सिद्ध करने का मंत्र कौन सा है सो भी हमको बतला दीजिए?

उसने भी पूरा मंत्र णमोकार बता दिया। अंजन चोर उस छींके में जा बैठा और उच्चारण करने लगा कि ताणं ताणं न जाणं सेठ वचन प्रमाणं इस प्रकार मंत्र का उच्चारण करते हुये छींके के सभी तारों को एक साथ काट दिए जिससे आकाश गामिनी विद्या सिद्ध हो गई। विद्या आकर कहने लगी कि मुझे क्यों याद किया है ? तब अंजन चोर कहने लगा कि मुझे वहाँ पहुँचा दो जहाँ पर मेरे गुरु जिनदत्त श्रेष्ठी हैं ? तब उस आकाश गामिनी विद्या ने शीघ्र हो सुदर्शनमेरु के चैत्यालयों को वंदना करने को गये हुए जिनदत्त के पास ले जाकर छोड़ दिया। चैत्यालय में प्रवेश कर जहाँ जिनदत्त श्रेष्ठी थे वहाँ जाकर सबसे प्रथम में जिनदत्त को प्रणाम किया। तब जिनदत्त कहने लगा कि यहाँ पर भगवान की अकीर्तम् मूर्तियां हैं तथा मुनिराज हैं उनके दर्शन करने का था तूने मेरे को पहले क्यों नमस्कार किया ?यह श्रवण कर अंजन चोर कहने लगा कि आप ही तो मेरे गुरु हैं। यह सब होने के पीछे जिनदत्त ने जान लिया कि पहले तो यह तस्कर था इसको आकाश गामिनी विद्या सिद्ध हो गई परन्तु णमोकार मंत्र तो आता ही नहीं। जिनदत्त ने भी नाना प्रकार से धर्मोपदेश दिया और णमोकर मंत्र को सिखाया इस प्रकार निशंकित अंग में अजन चोर राजकुमार ललितांग प्रसिद्ध हुआ।

इति निशंकितांग में अंजन चोर की कथा।

लज्जागारव भयेन दर्शनहीनान् न नमेयुः सद्दृष्टिभिः।
चेन्नमति यत्कोऽपि च मिथ्यादृष्टि भवतिनियमात् ॥३७८॥

सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टियों की पूजा व नमस्कार विनय व सेवा वैयावृत्ति कदापि न करें। यदि भय से लज्जा स्नेह व यंत्र तंत्र मंत्र के लोभ से नमस्कार करता है तो वह निश्चय से मिथ्यात्व का पोषक होने के कारण वह भी मिथ्यादृष्टि होता है। अथवा उसका सम्यक्त्व गुण नष्ट होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो जायेगा इसलिए अनेकानेक कारणों के मिलने पर भी सम्यग्दृष्टि जीव लौकिक जनों की व कुदेव धर्म गुरुओं को नमस्कार नहीं करे।

विशेष—जो भव्य सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं वे यदि सम्यक्त्व से हीन हैं उन मिथ्यादृष्टियों को जानते हुए यदि पैरों में पड़ते हैं स्तवन करते हैं प्रशंसा करते हैं यदि इनको हम नमन नहीं करेंगे तो लोग नामोसी देवेंगे तथा हमारी इनके यहाँ इज्जत नहीं रहेगी और हमारी कीर्ति में धव्वा लग जायेगा। बडे-वड़े राजा लोग इनकी सेवा करते हैं इसलिए नमस्कार करना चाहिए। इस प्रकार लोक लाज के लिए भी यदि मिथ्यादृष्टियों को नमस्कार करने वाला भी मिथ्यादृष्टि है। तथा अपने को वर की इच्छा व धन पुत्र की इच्छा कर व विवाह सम्वन्ध की इच्छा कर कुलिंगी भेषधारियों की पूजा स्तवन करना व आहार दान दे मान सम्मान करना कि हे गुरु देव आप ही हमारे लिए भगवान हैं हमको कोई ऐसा इलाज वताइये ताकि हमारा वंश न डूवे हम निर्धनी हैं हमारे पुत्र का विवाह नहीं हो रहा है हमारे मुकद्दमा चल रहा है जिससे बड़े परेशान हैं सो आप हम पर दया कर कुछ

साधन वताने की कृपा करें। आप तो दीन दयाल परोपकारी हैं इस प्रकार कह कर स्तवन वंदना करना और मंत्र तंत्र यंत्र की याचना करता है सो भी मिथ्यादृष्टि ही है। अपनी मान बड़ाई व कीर्ति की इच्छा कर भगवान जिनेन्द्र के कहे हुए सप्त क्षेत्रों के लिए दान न देकर मिथ्यात्व के पोषक कुदेव कुगुरु के मंदिरों के लिए धन का दान देना व वनवाना और उसमें अपनी कीर्ति की इच्छाकर इस प्रकार करने वाले भी मिथ्यात्व के पोषण करने वाले होने के कारण मिथ्यादृष्टि ही हैं। यहाँ पर लज्जा तो इस प्रकार कही गई है यदि हम नमस्कार नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे कि यह बड़ा मानी है हमको तो सवका समाधान करना है इस प्रकार लज्जा से मिथ्यादृष्टि कुलिंगीयों की विनयादिक करना। तथा भय इस प्रकार है कि यह राज्य मान्य हैं व मन्त्रादिक की सामर्थ्य संपन्न है यदि इनका विनय नहीं किया तो कुछ विघ्न खड़ा कर देगा इस प्रकार विचार कर नमस्कारादि करना यह भय से विनय है। ये तो हमारे पुराने मित्र हैं इनका हमारा तो वहुत पुराना संवन्ध है यदि हम इनकी विनयादिक नहीं करेंगे तो उनके मन में खेद होगा कि मेरा मित्र भी देखो मेरे को नमन नहीं करता है। यह खेद है इससे नमस्कार करना सो स्नेह नमस्कार है गौरव तीन प्रकार का है रसगौरव, ऋद्धि गौरव, सात गौरव के भेद से यहाँ रसगौरव तो इस प्रकार है कि मिष्ट इष्ट पुष्ट भोजनादिक मिलता रहे तब उससे प्रमादी रहता है। ऋद्धिगौरव इस प्रकार है कुछ तप आदि के प्रभाव से ऋद्धि की प्राप्ति होने पर उसका गारव आ जाता है उससे उद्यत प्रमादी रहता है। सातगौरव ऐसा है शरीर निरोग हो कुछ भी क्लेश का कारण न आये तव सुखीपना आ जाता है उसमें मग्न रहते हैं इत्यादिक गौरवादि की मस्ती से वुरे भले का विचार (विवेक) न करते हुए मिथ्यादृष्टियों को भी विनय करने लग जाता है वह भी निश्चय से मिथ्यादृष्टि ही है क्योंकि पापों का ही पोषक है इसीलिये सम्यग्दृष्टि अन्य कुलिंगी मिथ्यादृष्टि देव धर्म गुरु की प्रशंसा करे न नमस्कार करे।। ३७२ ॥

हेयाहेयं वेद्युः द्रव्यगुणपर्याये तत्त्वपदार्थानि ॥
श्रद्धानं तद्भावेन सम्यग्दृष्टिनो भूतार्थे ॥ ३७६ ॥

जव हेय और उपादेय का विवेक हुआ तव अतत्त्व मिथ्यादृष्टियों के द्वारा कहे गये तथा माने गये एक तत्त्व दूसरों के द्वारा पांच तीसरों के द्वारा नौ तत्त्व किसी के द्वारा माने गये २५ तत्त्व इत्यादि का त्याग कर द्रव्य और गुण की विकार रूप पर्यायों को जानकर तथा सात तत्त्व नौ पदार्थ पंचास्तिकाय छह द्रव्यों को जान कर भूतार्थ नय से श्रद्धान करता है तव व्यवहार सम्यग्दृष्टि हो जाता है तथा निश्चय सम्यग्दृष्टि होता है। जव अंतरंग में आत्म ख्याति रूप श्रद्धान का होना आत्म तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान का होना कि जितने अन्य द्रव्य गुण पर्याय हैं वे स्वात्म द्रव्य गुण पर्यायों से विलकुल भिन्न हैं वैसा अत्यन्ता भाव से इनमें आस्ता रूप निश्चय करता है तव जीव के परिणामों की विशुद्धता होती है। विशुद्धता के साथ ही द्रव्यों को व पर्यायों को विनाशीक जान आत्मद्रव्य एक अविनाशी है जिसका कभी कोई अवस्था में विनाश नहीं ऐसा पदार्थों में रुचि रूप श्रद्धान का होना कि आत्मा अनादिकाल से कर्मों से वंध हुआ है ये औदारिकादि शरीर हैं वे सव तादात्मिक सम्वन्ध से रहित संयोग

सम्बन्ध से हैं। ये शरीरादिक हैं वे सब कर्माधीन हैं उनकी जाति के हैं तथा पुद्गल द्रव्य की विभाव पर्यायें हैं इनकी उत्पत्ति और विनाश दोनों ही कर्माधीन हैं। परन्तु आत्मा चित् सत् स्वरूप है उसका विनाश नहीं और उत्पत्ति भी नहीं आत्मा पुद्गल द्रव्य कर्म रूप से परिणमन भी कभी नहीं करता है न कर्म ही चेतना रूप परिणमन करते हैं। यदि परिणमन करते हैं तो अपने गुण और पर्यायों में ही करते हैं। स्वभाव में परिणमन करते हैं। यह जीव स्वयं ही अपने परिणामों से परिणमन करता है कभी शुभ रूप से कभी अशुभ रूप से कभी शुद्ध रूप से जब अशुभ रूप से परिणमन करता है तब अशुभ कहा जाता है जब शुभ रूप से परिणमन करता है तब शुभ भाव कहे जाते हैं जब शुद्ध रूप से परिणमन करता है तब शुद्ध भाव रूप होता है। अशुभ भाव हों तब द्रव्य कर्म वर्गणायें समय प्रवृद्ध रूप से पाप रूप अशुभ आती हैं वे ही अशुभ कर्म रूप होकर स्वभाव से परिणमन करती हैं ऐसी जिसकी श्रद्धा प्राप्त हुई वह निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव है। तब अशुभ भावों को जानकर उन विभावों तथा कुभावों का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति रूप प्रसम संवेग आस्तिक्य और अनुकंपादि वाह्य चिन्ह भी सम्यग्दृष्टि के देखे जाते हैं। जब सम्यक्त्व होवे तब ही हेय और उपादेय का ज्ञान कर श्रद्धान में लावे यह निश्चय व्यवहार सम्यग्दृष्टि होता है। इन दोनों में अंतरंग मिथ्यात्व कषायों का अभाव ही कारण है ॥ ३७९ ॥

यत् सम्यक्त्वं भ्रष्टं सजिन मार्गात् भ्रष्टा न पावन्ति।
कदापीच्छितं स्थानं भ्रमति यत्र तत्र कुदृष्टिनः ॥ ३८० ॥

जिनका सम्यक्त्व नष्ट हो गया है वे जीव अरहंत मार्ग से भी भ्रष्ट हैं जो सुमार्ग को भूल कर कुमार्ग में गमन करते हैं वे अपने इच्छित स्थान को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं व जहाँ तहाँ चारों गतियों में ही भ्रमण करते रहते हैं तथा जन्म मरण के दुःखों का भोग करते ही रहते हैं। जो जिनमत के श्रद्धा न से भ्रष्ट है उनको ही भ्रष्ट कहा गया है। जो सम्यक्त्व च्युत हो गये हैं उनको अपनी इच्छित अविनाशी अनंत निर्वाण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। मिथ्यादृष्टि जीव जितना भी ज्ञान उपार्जन कर लेवे कितना ही घोर तपस्या या तपश्चरण करे या चारित्र का पालन करे तो भी संसार के अन्त को प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि संसार वृक्ष का बीज या जड़ तो एक मिथ्यात्व ही है जिस प्रकार कोई सन्मार्ग को छोड़ के विपरीत मार्ग में गमन करके अपने घर पहुंचना चाहता है और विचार करता है कि यह मार्ग ही अच्छा है चलता जाता है कितने ही काल तक चलता गया परन्तु उसको वह स्थान नहीं पाया यह दिशा भ्रष्ट होने के कारण संसार रूपी जंगल में भटकता फिरता है जहाँ तहाँ दौड़ लगाता हुआ भी सही मार्ग न होने के कारण ही भ्रमण कर दुःख ही उठाता है। सुख की प्राप्ति नहीं। सम्यक्त्व से भ्रष्ट जीव निर्वाण सुख को कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है।

जो जिन शासन की श्रद्धा से भ्रष्ट है और न्याय अलंकार छन्दालंकार काव्य कुशलता विनोद काव्य का जानकार होने पर भी विना सम्यग्दर्शन के चारों गतियों में ही

भ्रमण करता हुआ जन्म मरण के दुःखों को ही भोगता है परन्तु मोक्षसुख को प्राप्त नहीं हो सकता है ।। ३८० ।।

ज्ञानं तपश्चारित्रं सम्यक्त्वेन सह राति मोक्ष सुखम् ।।
मिथ्यातवेन सह भव दुःखो यत्द्रुच्येत्स्तत्त्वं कुरु ।। ३८१ ।।

शास्त्र बहुत पढ़ लिए और ज्ञान बहुत उपार्जन कर लिया तथा व्याकरण छंद सब जान लिए करोड़ों वर्ष गृहवास को छोड़ कर जंगल ही अपना घर बना लिया और खड़ेश्वरी होकर लम्बे हाथ लटका दिए और वस्त्र भी गल गये शरीर भी शुष्क हो गया तप करते हजारों वर्ष भी बीत गये इस प्रकार आतापन योग धारण किया । सकल संयम विकल संयम को भी धारण किया और उसका आचरण किया । तथा उपदेश काव्य पढ़ने की चतुरता भी प्राप्त करली ये सब एक बार ही नहीं अनेकों बार प्राप्त की तो भी अपने आत्म स्वरूप का बोध प्राप्त नहीं हुआ आत्मा तो बहिरात्मा ही रहा फिर वह ज्ञान और चारित्र तप तो अनन्त संसार का बढाने वाला ही हुआ । कोई पुण्य के उदय में अनेक कारण से नित्य निगोद में से निकल आया और पुण्य के उदय से पंच स्थावरों में से भी निकल कर त्रस कायक में दो इन्द्री तीन चार असैनी पंचेन्द्रिय भी हुआ । जब कुछ अकाम निर्जरा हुई और कुछ शुभ कर्म का उदय हुआ जिससे मनुष्य पर्याय प्राप्त की । मनुष्य पर्यय में भी द्रव्य लिंगी होकर दिगम्बरी दीक्षा को धारण कर अनेक प्रकार तपस्या करी और चारित्र का भी पालन अच्छी तरह निर्दोष रूप से पालन किया परन्तु (सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई) भाव की प्राप्ति नहीं हुई । द्रव्य लिंग को धारण कर केतेक बार देवगति को प्राप्त भी हुआ केतेक बार नैवेग्रेवेयक में भी उत्पन्न हुआ । केतेक बार नीच भवन वासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों में भी उत्पन्न हुआ तथा केतेक बार नीच देवों में उत्पन्न हुआ और दूसरों के वैभव को देख झूर-झूर मरा हाय-हाय मेरे ऐसे भोग नहीं मुझे अब वाहन बनना पड़ेगा इत्यादि भाव कर मरण कर पुनः चतुर्गति निगोत में पुनः जा विराजमान होता है जो नवग्रेवेयक वासी (द्रव्य लिंगी) देव मरण कर मनुष्यों में राजा होता है तब वह नाना प्रकार के पंचेन्द्रियें भोगों के लिए अनेकप्रकार के पापों को कर नरक में चला जाता है इस प्रकारज्ञान और तप चारित्र का फल संसार की वृद्धि का ही कारण है । वही तप सम्यक्त्व सहित ज्ञान वैराग्य चारित्र मोक्ष का कारण है इसलिये हे भव्य जो तेरे को अच्छा प्रतीत हो सो कर हमने तो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों का स्वरूप कह दिया है ।। ३८१ ।।

सम्यक्त्वरत्नसारं मोक्ष महावृक्षमूलं मणितं ।।
तज्ज्ञातव्यो निश्चय व्यवहार स्वरूपे द्विभेदं ।। ३८२ ।।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इन चारों रत्नों में श्रेष्ठ सम्यक्त्व रत्न है जैन धर्म में प्रथम में रत्न की उपमा दी है जिनेन्द्र भगवान के मार्ग में तीन रत्न माने गये हैं प्रथम सम्यक्त्व दूसरा ज्ञान तीसरा चारित्र इनको रत्नत्रय कहा है । उनमें भी सम्यक्त्व श्रद्धान को ही सबमें श्रेष्ठ कहा है क्योंकि सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान में यथार्थता या समीचीनता आ जाती है तब वह ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है तब ज्ञान से हेय और

उपादेय की यथार्थ प्रतीति हो जाती है इसलिए न्याय शास्त्र में भी कहा है कि अहित परिहार्थं हित गृहणार्थ सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं। जिस ज्ञान से अहित का परिहार किया जावे और हित ग्रहण किया जावे वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही ग्रहण करने योग्य होता है। यह सामर्थ्य सम्यग्ज्ञान में ही होती है। जो क्रिया संसार के वृद्धि के कारणों को तथा बंध आस्रवों को रोकने में समर्थ होती है वह सम्यग्ज्ञान पूर्वक होती है तभी वह सम्यग्चारित्र कहा जाता है। जिसमे अशुभ राग और द्वेष कषायों का निरोध तथा व्रत संयम शील समिति और गुप्तियों का पालन किया जाता है उसको सम्यक्चारित्र कहते हैं। ज्ञान तप चारित्र इन तीनों में समीचीनता आ जाती है इसलिए सम्यक्त्व को सबसे प्रधान रत्न कहा गया है। सम्यक्त्व के अभाव में यथार्थता नहीं आती है न सम्यग्ज्ञान चारित्र यथार्थ को प्राप्त होते हैं। यहाँ पर सम्यक्त्व ही मोक्ष वृक्ष की मूलमाना है। सम्यक्त्व गुण उत्कृष्ट है। उस सम्यक्त्व को व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार का जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। निश्चय सम्यक्त्व सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों से भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान पूर्वक श्रद्धान का अकंप रूप स होना क्षायक सम्यक्त्व है यह वीतराग सम्यक्त्व भी कहलाता है। व्यवहार सम्यक्त्व है। तथा सराग सम्यक्त्व है इसमें चल मल दोष उत्पन्न होते रहते हैं यह कारण पाकर नष्ट भी हो जाता है परन्तु वीतराग क्षायक सम्यक्त्व अविनाशो आत्मा के गुणों में से एक प्रधान गुण है। सम्यक्त्व होते ही मोक्ष मार्गपना चालू हो जाता है जिस मकान की नींव कच्ची है या विना नींव का मकान विना जड़ के वृक्ष की स्थिति नहीं रह सकती है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जिस वृक्ष के जड़ नहीं है वह वृक्ष कितने दिन तक खड़ा रह सकता है? वह तो हवा लगते ही जमीन पर पड़ जाता है जड़ के अभाव में वह पनपता नहीं पत्ते को पल सखायें फूल फल कंसे आवेंगे? कंसे वृद्धि को प्राप्त होंगे? नहीं होंगे। सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान और चरित्र को वृद्धि होती है॥ ३८२॥

व्यसनभयमतिचारं च यद मूढताऽनायतनः मंसांनि चाष्टौ।
यत् चतुश्चत्वारिंश दोषा न संति ते सद्दृष्टिनः॥ ३८३॥

सात भय सातव्यसन सम्यक्त्व के पांच अतीचार आठ मद तीन मूढता छह अनायतन आठसंकादिक (दोष) चवालीश दोष नहीं होते हैं वे सम्यग्दृष्टि हैं इन कहे गये दोषों में से एक भी दोष प्राप्त होवे तो सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं। जहां पर सात भय रहते हैं वहां निशांकितादि अंग सम्यक्त्व के नहीं रहते हैं। जहां पर सात व्यसन निवास करते हैं वहां पर सम्यक्त्व का होना ही नहीं सम्भव है। जहां देव मूढ़ता धर्म मूढ़ता गुरु मूढ़ता रहती है वहां पर सम्यक्त्व नहीं होता। जहां पर छह अनायतनोंसे एक भी अनायतनकी आराधना होती हैं वहां पर भी सम्यक्त्व नहीं, जहां पर संका कान्छा चिकित्सा आाद सम्यक्त्व के दोष रहते हैं वहां पर भी सम्यक्त्व नहीं हो सकता है। ज्ञान मद तप वल राज्यकादि आठ मद निवास करते हैं वहां भी सम्यक्त्व को उत्पत्ति नहीं हो सकती। शंकाकान्छा सच्चेधर्म देव गुरुओं के दोषों को देखना निर्दोषियों को दोष लगाना व मिथ्यादृष्टि कुमार्गगामियों का विनय स्तवन करना ये पांच सम्यक्त्व के अतीचार है इनमें से यदि एक अतीचार रहता है तो भी

सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है। आचार्य कहते है कि इन चवालीश दोषों में से यदि एक दोष भी बांकी रह जाता है तो सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती। दोषों से रहित होने पर ही यथार्थ सम्यक्त्व शुद्ध होता है।। ३८३।।

सम्यक्त्वाद्धीनं ये उग्रोगमाचरन्ति तपोनित्यम्
तेऽपिन पावन्ति वोधिः वर्षः सहस्र कोटि चारित्रं ।। ३८४ ।।

जो भव्य हैं परन्तु सम्यत्व से रहित होकर उग्र-उग्र तप करते है। कभी अनसन तप करता है तभी पक्षोपवाश कभी मासोपवास श्रेणी रोहण तथा सर्वतो भद्र के उपवास करता है कभी ऊनोदर कभी रसपरित्याग कभी व्रत परिसंख्यान कभी-कभी एक आसन से छह मास व वर्ष तक खड़े ही रहता हैं कभी बैठे ही रहता है। इस प्रकार अनेक कायक्लेशों को सहन करता हैं। तथा परीषहों को सहन करता है व उपसर्ग आने पर भी रंचमात्र भी चलायमान नहीं होता है। तथा पंचमहाव्रत और पांचसमिती तथा गुप्तियों का भी पालन कर हजारो वर्ष व्यतीत कर दी तथा करोणों वर्ष हाथ भुलाकर तप किया गया तव चारित्र भी मोक्ष का कारण नहीं वना वह तव पुण्य का कारण ही होता है पुण्य से देवगति को प्राप्त होता है मोक्ष को नही। जव भाव सम्यक्त्व के अभाव के कारण मिथ्यात्व कर्म का विशेष वंध हो जाता है जिससे केवल ज्ञान केवल दर्शन रूप वोधि की प्राप्ति नहीं होती है इसलिए ज्ञान तप चारित्र इन सवमें सम्यक्त्व ही प्रधान है।।३८४।।

शुष्कं जातं गात्रं घोरंतपश्चरन्ति समिथ्यात्वेन ।।
किवाल्मीकं कुट्ठे जगति मरति सर्फो न मुक्तिः।। ३८५ ।।

घोर तप करके शरीर को सुखा दिया कभी कभी वेला का उपवाश तेला का चौलाका व पक्षमांस का उपवाश किया जिससे सारा शरीर कृप हो गता। तथा रसों का त्याग कर नीरस भोजन भी वहुत किया। मासोपवास पक्षोपवास भी वहुत वार किये जिससे शरीर सूख कर लकड़ी वनादिया परन्तु अन्तरंग में वैठी हुई कषायें व मिथ्यात्व की तरफ दृष्टि ही नहीं डाली। मिथ्यात्व क्रोधमान माया लोभ इन कषायों को सुखाया नहीं केवल शरीर मात्र के सुखाने से हे भव्य तेरे को मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होगी। जिस प्रकार कोई अज्ञानी जीव सर्फ को मारने के लिये वाम्बी को दण्डा लेकर कूटता है क्या वाम्बी कूटनें मात्र से सर्फ मर जावेगा ? नहीं मरजावेगा। इसी प्रकार अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के द्वारा किया गया तप समझना चाहिये। इस प्रकार तप करने से मोक्ष की प्राप्ति कभी भी नहीं होगी। जव सम्यक्त्व पूर्वक मिथ्यात्व और कषायों का नाश किया जाय वह श्रेष्ठ है भोजन करके भी सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया यही महा तप है। जव मिथ्यात्व और कषाओं का नाश कर स्वतन्त्र होगा तव ही ध्यान के वल से कर्मों का नाश करने में समर्थ होगा ? ३८५।

सौभाग्यं विना नारी भावविना संयमस्तपश्चरणं ।।
भाति गृहं सुपत्रेण विना कुणयविमानवत्सर्वः।। ३८६ ।।

जिन स्त्रियों के प्रथम पुत्र नहीं तथा पति भी नहीं माता पिता सास ससुर नहीं वे स्त्रियां शोभा को नहीं पाती है। सुपुत्र के विना घर की शोभा नहीं यदि कुपुत्र हजारों

की संख्या में होवें तो भी कोई काम के नहीं क्योंकि दु:राचारी व्यसनी पुत्रों से घर को शोभा है विना सम्यक्त्व के (संयम) वा वैराग्य के नहीं व्रत चारित्र संयम तप सब ही शोभा को नहीं पाते हैं। भाव विना जो संयम चारित्र व तप धारण किया है वह सब शोभा को प्राप्त नहीं जिस प्रकार मुरदा को ले जाने के लिये रचा गया विमान शोभा को प्राप्त होता है वैसी ही व्रतादि को शोभा जानना चाहिये क्योंकि विमान के साथ तो रोना शोक दु:ख ही होता है।३८६।

विना नृपेन देशंस्व सचिवेनास्थिति: राज्यम् ।।
पतिर्विना च कामिनी भावविना चारित्रम् ।। ३८७।।

देश की स्थिति विना राजा के नहीं रह सकती है विना मन्त्री का राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता है तथा विना मन्त्री के राजा के राज्य की स्थिति नहीं रह जाती है। यदि पतिव्रता स्त्री है वह स्वतंत्र विचरती है वह भी शील सम्पन्न नहीं रह सकती है वह पति धर्म से अवश्य नष्ट हो जायेगी और अपवाद को प्राप्त होती है। उसी प्रकार भाव के विना चारित्र कोई कार्य कारी नहीं हो सकता है। सम्यक्त्व के विना चारित्र कर्म मलों को नाश करने में समर्थ नहीं हो सकता है परन्तु कर्म बन्ध का कारण ही होता है। जिससे संसार में ही प्राणी भ्रमण करता है। यह चारित्र पुण्य का कारण है पुण्य से राजपद प्राप्त कर अन्त में दुर्गति को प्राप्त होता है। विना भाव के क्रिया फल को प्राप्त कराने में समर्थ नहीं। ३८७।।

ससौभ्याग्येन भामिनी स सुपुत्रेण गेहं च।
ससचिवेन राज्यं च सम्यक्त्वेन चारित्रं।। ३८८ ।।

जिस भामिनी के प्रथम तो पुत्र उत्पन्न हो दूसरे सास ससुर माता पिता पति से युक्त हो वह भामिनी सोभा को प्राप्त होती है। दूसरे माता पिता का अधिक प्यार सास ससुर भी मन में हर्षित होते हैं कि हमारी पुत्रवधू एक रत्न है हमारी सेवावैया वृत्ति बहुत करती है। पति सोचता है कि मेरा बड़ा ही सौभाग्य है कि ऐसी स्त्री रत्न की मुझे प्राप्ति हुई है। सुपुत्र से ही घर की शोभा होती है क्योंकि सुपुत्र से ही कुल की मर्यादा व धर्ममर्यादा चलती रहती है तथा धर्माचरण करने वाले विनयवान दयावान पुत्र से ही घर की कीर्ति माता-पिता के यश की वृद्धि होती है। जिस राजा के राज्य में प्रधान योग्य धर्मनिष्ठ सदाचारी होता है उस राज्य की अधिक वृद्धि होती है उस राजा का यश चारों ओर फैल जाता है और प्रजा बढ़ जाती वह राज्यों का शृंगार बन जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व सहित चारित्र की वृद्धि होती है वह सम्यक्त्व चारित्र यथा काल में घातियाकर्मों का नाश करने में समर्थ होता है। तथा सम्यक्त्व चारित्र की सब देव दानव यक्ष भूत इन्द्र तथा चक्रवती आदि महापुरुष पूजा करते हैं चारित्र के पालने पर अभीष्ट फलकी प्राप्ति अनिवार्य रूप से हो जाती है। इसलिये यह सम्यक्त्व गुण ही श्रेष्ठ है। ३८८ ।।

स्वच्छन्देन भामिनी महाव्रष्टया क्षेत्रक्यारी च ।।
निरंकुशोयोगी विनासम्यक्त्वेन चारित्रं ।। ३८९ ।।

स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने वाली (आचरण करनेवाली) पतिव्रता स्त्री हो तो वह भी अपने पद से भ्रष्ट हो जाती है तथा धर्म से भ्रष्ट हो जाती है। जिस प्रकार अति वर्षा जब होने

लग जाती है तब खेत और खाई फूट जाती हैं जिससे खेत क्यारी में पानी नहीं ठहरता है तथा खेत भी कट जाता है। जिस शिष्य तथा साधू के ऊपर आगम व गुरु का अंकुश नहीं रहता है वह निरंकुश हुआ स्वच्छन्दाचारी बन जाता है और धर्म से भ्रष्ट होता है तथा धर्म तीर्थ का विराधक भी होता है व लौकिक जनों के द्वारा निन्दा अपवाद को प्राप्त होता है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र मात्र व ज्ञान मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती वह चारित्र निरर्थक ही होता है। इस लिये तीनों में सम्यक्त्व ही श्रेष्ठ है। ३८९।

प्रावट् काले पत्रं न तिष्ठन्त्यर्कं जवासयोः कदापि ॥
सम्यक्त्वोदये मा मिथ्यात्व ज्ञान चारित्राणि ॥ ३९० ॥

वर्षाकाल के आने पर अकौवा व जवासे के पेड़ों पर पत्ते नहीं रह जाते हैं सब पत्ते वर्षा ऋतु को पाकर झड़ जाते हैं एक देखने मात्र को पत्ता नहीं मिलते हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व के प्रकट होने पर मिथ्यात्व और मिथ्याज्ञान चारित्र और तप इनकी स्थिति समाप्त हो जाती है। जहाँ सम्यक्त्व रूपी सूर्य का उदय होता है उसी समय मिथ्यत्व अज्ञान और मिथ्याचारित्र व मिथ्यातप का नाश होकर सम्यग्ज्ञान चारित्र तप की प्राप्ति होती है। इसलिये सम्यक्त्व गुण मोक्ष मार्ग में प्रधान है। ३९०।

मारुतवेगेन यदा मेघो विनश्यन्ति क्षणमेके ॥
सम्यक्त्वोदयेतथा विनश्यन्ति मिथ्याज्ञान चारित्रे ॥ ३९१ ॥

जब आकाश में काले-काले मेघों की घटायें छाई हुई होती हैं और बिजली चमकती है काला-काला मोर के समान अन्धकार फैला होता है उस समय पवन के जोर से चलते ही काले-काले बादल क्षण मात्र में इधर उधर फटकर भाग जाते हैं अथवा नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व अज्ञानरूपी काले अन्धकार रूपी बादल छाये थे वे सब क्षण मात्र में नष्ट हो जाते हैं। और सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश हो जाता है ऐसा सम्यत्व का महात्म्य कहा है। ३९१।

नीलकंठध्वनिं श्रुत्वा पन्नगाः प्रपलायन्ते ॥
युक्त्वागोशीरं ते सम्यक्त्वोदयेऽज्ञानं तपः ॥ ३९२ ॥

जो सर्प चन्दन के वृक्ष से दिन रात लिपटे रहते हैं यदि उन सर्पों को फर्सालेकर टुकड़े-२ भी कर दिये जावें तो भी वे चन्दन के वृक्षको छोड़ नहीं सकते परन्तु वे ही जब जंगली मोर बोलता है मोर की बोली सुनकर ढ़ीले पड़ जाते हैं और चन्दन को छोड़कर भागने लग जाते हैं। उसी प्रकार सम्यक्त्व के होते ही मिथ्यात्व अज्ञान और कुतप सब नष्ट हो जाते हैं। तथा ज्ञानावरणादि कर्मों की स्थिति व अनुभाग बन्ध भी क्षीण हो जाता है। फल देने की शक्ति भी कमजोर हो जाती है। जिस प्रकार वृद्ध मनुष्य के स्पर्शन इन्द्रिय विषय विष को पान करने में समर्थ नहीं होती है उसी प्रकार सम्यक्त्व का प्रभाव जानना चाहिये। ३९२ ॥

और भी कहते हैं।

प्रावट् काले प्रजाः नीरज सरदसुकाले तथा कोकिलायाः
केदं दृष्ट्वा किलंकानि विविधविधमात्रे विचित्रं ॥३९३॥

स्वराज्यं प्राप्तजीवो विचरयति खलु निर्बाध सौख्यं लभन्ते ।।
सम्यक्त्वं पाति लब्धः विरमति च तपो ज्ञान चारित्रमैधम् ३८७

वर्षाकाल आने पर जीवों की वृद्धि अधिकाधिक होती है और शरदऋतु को पाकर तालाब का पानी निर्मल हो जाता है अथवा पानी में मिली हुई कीचड़ पानी के नीचे बैठ जाती है जिससे निर्मल पानी हो जाता है जिससे जलजन्तु मीन आदि वृद्धि को प्राप्त होती हैं जब आम के वृक्ष पर कलियां आने लग जाती हैं। तब कोकिल उनकी सुगन्ध लेकर खाकर स्वयं किलकिल करने लग जाती है। अथवा अनेक प्रकार के मीठे-मीठे बोल सुनाती है। तथा नाच उठती है तथा सदाचारी नीति निपुण राजा को पाकर प्रजा बढ़ जाती है। नाना प्रकार के शुभ उद्योग करने लग जाती है तथा दुष्ट जनों का व्यापार शान्त हो जाता है जिससे धर्म की वृद्धि होती है और जीव इधर-उधर सुख पूर्वक विचरते हैं। नाना प्रकार के भोगों व उपभोग के सुखों का अनुभव करते हैं उसी प्रकार भव्य सम्यक्त्व को पाकर ज्ञान पूर्वक अनेक प्रकार के चारित्र की वृद्धि होती है व तप की वृद्धि करके कर्मों का नाश करके अविनाशी अक्षय इन्द्रिय व्यापार से रहित परम सुख है उसको प्राप्त करते हैं। इसलिये मोक्षाभिलाषियों को चाहियें कि वे सर्व कार्यों को छोड़कर सदासुख देने वाले सम्यक्त्व को उपार्जन करें ।। सम्यक्त्व व संयम के फल की इच्छा नहीं करनी चाहिये। ३८८

आगे अनंतमती की कथा निकांक्षित अंग में प्रसिद्ध

इस ही जम्बूद्वीप के उत्तर में भरत क्षेत्र के पूर्व में वंगनाम का विशाल देश है उस देश में चम्पापुर नामकी अत्यन्त सुन्दर नगरी है। जिसके चारों ओर बाग बगीचे लगे हुए थे। उस नगरी में चोपड़ के बाजार बने हुए थे उस नगरी की स्त्रियां अपनी शोभा से देवांगना के वैभव को तिरस्कार कर रही थीं। जहां के लोग धर्मात्मा व शीलवान् स्व स्त्री व्रती थे उस ही नगर में सर्व गुण सम्पन्न राज्यमान्य प्रिय दत्त नामका श्रेष्ठी निवास करता था। उसकी धर्म पत्नी का नाम अंगवती था। अंगवती अपनी शरीर की लावण्यता रूप गुणों से युक्त थी उसकी कुक्ष से एक सुन्दर कन्या रत्न उत्पन्न हुई थी जिसका नाम अनन्तमती रक्खा गया था। वह बाला बालापन में ही अपने रूप सौन्दर्य से देवांगनाओं की सुन्दरता को भी मात करती थी। बालावस्था में वह बच्चों के साथ गुड्डा-गुड्डी खेला करती थी। एक दिन अनन्तमती अपनी सहेलियों के साथ गुड्डा-गुड्डी खेल रही थी। उसमें एक पुतला का दूसरे की पुतली के साथ विवाहोत्सव मनाया जा रहा था कि कहीं से घूमते हुए प्रियदत्त श्रेष्ठी अनन्तमती के पास आ पहुंचा और उन्होंने कहा बेटी तू अभी विवाह का उत्सव मना रही है हम तो तेरी शादी बड़े ठाट-बाट से करेंगे। इतना कह कर अनन्तमती के शिर पर हाथ फेरा और अनन्तमती को आशीर्वाद दिया और बड़े प्रेम के साथ गोद में उठा लिया तथा अनन्तमती को गोदी में लेकर प्रियदत्त जिनमन्दिर में गये। वहाँ पर भगवान के दर्शन भक्ति करके मुनि महाराज के दर्शन किये और भक्ति व विनय से गुरु की स्तुति वन्दना की। तत्पश्चात् मुनिराज ने धर्मोपदेश दिया उपदेश सुनने के बाद प्रियदत्त ने अष्टाह्निकाओं में आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत लिया था तब अनन्तमती बोली कि महाराज

मुझे भी व्रत दीजिए तब मुनिराज ने अनन्तमती को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिया और अनन्तमती ने भी ब्रह्मचर्य व्रत को बड़े हर्ष के साथ धारण किया।

अब क्या था कि अनन्तमती दोज के चन्द्रमा के समान दिन रात बढ़ने लगी और सोलह वर्ष की हो गयी। अथवा यौवन के सन्मुख हुई। एक दिन अनन्तमती अपनी सहेलियों के साथ बगीचे में झूला झूलने को गई थी हिंडोला झूलते समय विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में अमरावती नगरी का स्वामी विद्याधर सुकेतु अपनी धर्म पत्नी सुकेती के साथ वन क्रीडा करने के लिए निकला था वह भ्रमण करता हुआ चम्पापुरी के उद्यान में आया वहां उसने अनंतमती को हिंडोला झूलते हुए देखा और अनंत मती के रूप और सौंदर्यता को देखकर वह कामासक्त हो गया। और शीघ्र ही अपने देश को लौट गया और अपनी धर्मपत्नी को रनवास में छोड़कर चम्पापुर में आया जहां अनंत मती सहेलियों के साथ हिंडोला झूल रही थी। हिंडोला पर से एकाएकी अनन्तमती को अधर उठा लिया और विमान में बैठकर अपने देश को लौटा। यहाँ सुकेती ने विचार किया मेरा पति कहाँ किस कारण से इतना शीघ्र ही चला गया वह भी उसके पीछे चम्पापुरी की तरफ को चल पड़ी जब सुकेतु लौट रहा था कि उसकी दृष्टि सुकेती के ऊपर पड़ी उसके मन में बड़ा भय उत्पन्न हो गया और उस सुकेतु ने अपनी विद्या से कहा कि इस बाला को कहीं जंगल में शीघ्र ही छोड़ आओ विद्या आज्ञा पाकर अनन्तमती को एक भयानक बीयाबान जंगल में छोड़ आई। अब अनंतमती बीयाबान जंगल में रोती-रोती भटक रही थी। हाय माता पिता मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है कि जिसके कारण मुझको अकेली बीयाबान जंगल में पटक दिया। साथ ही यह भी विचार करती है कि जीव ने जैसे पूर्व में शुभ और अशुभ कर्म किए हैं उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। बिना फल दिए वे कर्म नहीं जा सकते हैं, कर्म बड़े ही बलवान हैं, इन कर्मों के अधीन सारा जगत होकर नाच रहा है इनके ऊपर सूर्य चन्द्रमा का भी कुछ बल नही चल सकता है तब मनुष्य की तो कहानी ही क्या है। आज मेरे पूर्वोपार्जित कर्म का उदय आया है जिससे मुझ को मेरे माता-पिता से भिन्न कर बीयाबान जंगल में लाकर पटक दिया है। ये कर्म बड़े ही बलवान हैं, ये तीर्थंकर को भी नहीं छोड़ते तब हम सरीखों की तो बात ही क्या है। कर्मों के उदय का फल अवश्य ही भोगना चाहिए इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि भीमराज जो भीलों का राजा था उसके सेवक गण उस ही जंगल में आ पहुचे जिस जंगल में अनन्तमती भ्रमण कर रही थी अनन्तमती को देखकर विचार करने लगे कि यह कोई देवी है या कोई विद्याधरी है या रम्भा है या वन देवी ही प्रकट हुई हैं। वे सब जंगल के अच्छे-अच्छे फल तोड़ कर लाये और अनन्तमती के पास रख कर नमस्कार किया और वहां से सोच विचार करते हुए अपने स्वामी भीमराज के पास पहुंचे और बोले कि प्रभो आप के पुण्य प्रभाव से पास के जंगल में एक देवी आई हैं उसके दर्शन करो विनय करो ?

यह सुनकर भीमराज अनन्तमती के पास जंगल में गया और अनन्तमती के सुन्दर शरीर और नव योवन को देखकर कामाशक्त हो गया और अनन्तमती से कहने लगा कि आप बड़ी

पुण्यवान हैं। जिससे मुझ सरीखा राजा तुमको मिला है। चलो राजमहल में चलो सब्र शृंगार करो राज भोग का भोग करो मेरी पटरानी पद स्वीकार करो यह कह कर वह भीलराज अनन्तमती को अपने घर ले गया और मान आदर सत्कार किया तब अनन्त मतीपंच परमेष्ठीयों का ध्यान करने लगी तब भीमराज बोला कि या तो मुझको स्वीकार करो नहीं तो तुम को बहुत कष्ट उठाने जरूर पडेंगे। आप मेरे तेज व पराक्रम को नहीं जानती कि मैं कौन हूं मेरे सामने बड़े-बड़े बलवंत राजा भी कांपते हैं तुम मेरी आज्ञा को यदि उलंघन करने का साहस रखती हो तो मैं तुमको देखता हूं कि कौन बचायेगा। अनन्तमतो विचार करने लगी कि मैंने माता-पिता के सामने गुरु से ब्रह्मचर्य व्रत लिया है उस व्रत को नहीं छोडूंगी यदि प्राण जायेंगे तो पुनः मिल जायेंगे पर ब्रह्मचर्य पुनः अनंतकाल बीत जाने पर भी नहीं मिलेगा ? इस प्रकार मन में विचार कर अपने शीलव्रत के पालन करने में दृढ़ थी।

भीमराज जो भीलों का राजा था उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि इस हठग्राही नादान अवला को नाना प्रकार से कैष्ट दो कहा कि जब तक यह मुझे स्वीकार न करे तब तक दो। वह कर्मचारी अनंतमती को पीड़ा देने लगे पीड़ा दे रहे थे कि भीमराज ने आकर कहा अब तो हमारी बात मान लो और मेरी ओर जरा दृष्टि उठाकर तो देखो ? मेरा सौंदर्य कामदेव से कुछ कम नहीं मेरे को देख व मेरा नाम सुनकर ही बड़े-बड़े राजा लोग कांप उठते हैं। यदि तुम अपने हठाग्राह को नहीं छोड़ेगी तो वहुत दुःख तुमको उठाने पड़ेंगे ? भीमराज के सेवकों ने अनंतमती को बहुत मार लगाई परन्तु वह धैर्यतापूर्वक उस मार का सामना करती रही उसने कोई भी प्रकार से भी पटरानी पद को स्वीकार करने में समर्थ नहीं हुई। उसी समय वहाँ पर अनंतमती के शील के प्रभाव से वन देवता का आसन कम्पायमान हुआ और वह देवी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँची कि जहाँ अनंतमती को वेदना दी जा रही थी। वन देवी ने भीमराज को पकड़ कर मार लगाना चालू कर दिया कि भीमराज एक दम कांपने लगा और घवराकर चिल्लाने लगा तव वन देवी ने कहा कि यदि तू जहाँ से इस वाला को लाया है वहाँ इस अवला को छोड़ आयेगा तो मैं तेरे को छोड़ दूंगी दूसरी बात यह है कि जा सती से क्षमा माँग यह सुन कर भीमराज ने अनंतमती से क्षमा माँगी (और अनंतमती को) सव लोग कहने लगे कि यह नारी तो सामान्य नारी नहीं है यह तो कोई महान है तभी तो इसकी रक्षा करने के लिए देवी देवता तत्पर हैं। तत्पश्चात यक्षनी बोली कि वेटी तेरे को कहां जाना है वहाँ में तेरे को पहुँचा देती हूं तब अनंतमती बोली कि मुझे अयोध्या पहुंचा दो यह सुनकर यक्षिनी अनंतमती को अयोध्या के समीप मार्ग में छोड़ आई और आप अंतर्ध्यान हो गयी। वहां पर एक सेठ का पड़ाव था वह दूसरे देश से लौटकर आ रहा था कि अनंतमती को अपनी पुत्री बनाकर सार्थ में ले ली और अनंतमती की रूपरेखा देखकर उसने अनंतमती से सारा समाचार पूछा कि किस की तू पुत्री है कौन सा गाम है भीमराज के यहाँ कैसे आई यह सुन कर अनंतमती ने उत्तर में कहा कि मेरे साथ में मेरा सारा परिवार है मैं अकेली नहीं हूं। (यह वात सुनकर पुष्पक वणिक) मेरे पास क्षमारूपी नौकर है तथा शीलरूपी पुत्र है सदाचार मेरा धन है दया मेरी माता सत्य मेरा पिता है गुण मेरा भाई है तत्व मेरी पुत्री है सम्यक्त्व

मेरा मित्र है संयम मेरा भवन है मेरा देश मोक्ष है भगवान जिनेन्द्र प्रणीत आगम मेरा नगर है यह बात सुनकर वणिक पुष्पक अनंतमती को साथ ले गया। कुछ दिन बाद वह पुष्पक अनंतमती से कहने लगा कि मेरी तुम धर्मपत्नी बन जाओ उसने अनंतमती को बहुत सा लालच दिखाया परन्तु अनन्तमती ने अपने मन के किये हुए फैसला को ही स्वीकार किया सेठ के बार-बार कहने पर भी अपने ब्रह्मचर्य को बेचनेके लिए सन्मुख नहीं हुई। वह सेठ ने अनंतमती को बहाना बनाकर एक वेश्या के हाथ कुछ द्रव्य लेकर बेच दिया। अब अनंतमती को एक वेश्या के घर जाना पड़ गया था परन्तु अनन्तमती अपने शील ब्रह्मचर्य पालन करने में दृढ़ दत्त चित्त थी। वेश्या ने अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि खाओ पियो यार दोस्तों से चार चार बातें करो इस यौवन का मजा लूटो चलो उठो ? यह सुनकर अनन्तमती अत्यन्त क्रोधित हुई। वेश्या ने बहुत प्रकार से अनन्तमती की विषय भोगों में रत करने का प्रयत्न किया पर कामयाबी नहीं हुई। यह देख कर कुटिनी विचार करने लगी कि यह न तो बोलती है न हँसती है न खाती है न पीती है न बिस्तर बिछाकर ही सोती है मौन सहित रहती है किसी की ओर आंख खोलकर भी देखती नहीं है। यह विचार कर वेश्या ने निर्णय किया कि इस सुन्दर अबला को अपने राजा के पास ले चलूं और राजा इसको देखकर हमको इनाम भी देगा ? वह वेश्या अनन्तमती को साथ में लेकर राज दरबार में गई। राजा को अनन्तमती सौंप दी, राजा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वेश्या को बहुत सा धन दिया। और अनन्तमती को रनिवास में भेज दिया तथा रहने की खान-पान की सारी व्यवस्थायें राजाज्ञा से कर दी गई। शाम के समय राजा राज महल में गया और अनन्तमती से कहने लगा कि मैंने तुम को अपनी पटरानी बनाने का निश्चय किया है तुम मेरे साथ पाणिग्रहण करो तब अनन्तमती ने विवाह करने से इनकार कर दिया। राजा ने भी अनन्तमती को शाम दाम दण्ड भेद बना कर समझाया परन्तु अनन्तमती विवाह करने को किसी हालत में तैयार नहीं हुई। वह अपने ब्रह्मचर्य धर्म की रक्षा करने में दत्त चित्त थी वह भोगों से अत्यन्त भय-भीत थी वह विचार करती थी ये भोग सास्वत रहने वाले नहीं हैं ये तो क्षणभंगुर हैं इन क्षणभंगुर भोगों की इच्छा कर अपने अमूल्य रत्न जो साश्वत मोक्ष सुख को देने वाला है उसको कोड़ी की बदले कैसे बेचा जाय। क्षणभंगुर भोग और उपभोग व राज्य वैभव से क्या प्रयोजन वह अपनी प्रतिज्ञा में अटल रही।

जब अनन्तमती राजा की पटरानी बनने को तैयार नहीं हुई तब राजा ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि जब तक यह अबला यह न कहे कि मैं राजा को अपना स्वामी स्वीकार करती हूं तब तक इसको मार लगाओ सेवक भी राजाज्ञा के अनुसार मार लगाने लगे तथा वेदना देने लगे। जब मार लगा रहे थे। उस मार को खाकर अनन्तमती कभी बेहोश होकर जमीन पर पड़ जाती थी कभी उठ बैठी होती थी इस प्रकार वे राजा के सेवक निर्दयता का व्यवहार कर रहे थे और पुनरपि-पुनरपि यही कहते जाते थे कि राजा के साथ पाणिग्रहण करो। उसी समय वहाँ के नगर देवता का आसन कम्पायमान हुआ और उसे देख मन में चिन्ता हुई कि मेरे आसन के हिलने का क्या कारण है ? देवता ने उसी समय अपनी अवधि

लगा कर देखा तो उसको ज्ञात हुआ कि इस ही नगरी में एक बाला शीलवती को महाकष्ट दिया जा रहा है। वह देव तुरन्त ही वहाँ पहुंचा कि जहाँ पर अनन्तमती को राज कर्मचारी मार लगा रहे थे वहाँ जाकर देव ने उसमार को राजा की पीठ पर डाल दिया उधर राज कर्मचारी अनन्तमती पर प्रहार करते हैं उधर वह प्रहार राजा के ऊपर हो रहा है। इस प्रकार राजा के ऊपर मार पड़ने लगी राजा घबड़ा कर ज़मीन पर गिर गया और हाय-हाय चिल्लाने लगा रोने लगा कभी जमीन पर लोट-पोट होता है कभी उठता है परन्तु मार देने वाला कोई दिखाई नहीं देता जब राजमहल के सब लोग एकत्र हो गये परन्तु मार ही मार दिखाई दे रही थी। मारनेवाला कोई भी दिखाई नहीं देता था तब सब लोग हाथ जोड़ कर बोले मार देने वाला देव तू कौन है हमको दिखाई तो दे तब देव दिखाई दिया सब ने प्रार्थना की कि राजा को क्षमा करो तब देव ने कहा कि मैं एक क्षण भी क्षमा नहीं कर सकता हूं यदि यह अपना जीवन चाहता है तो सती से क्षमा मांगे यदि सती क्षमा कर देगी तो मैं क्षमा कर दूंगा ? तब राजा ने उठकर अनन्तमती के चरण में नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे देवी ! मैंने तो बिना जाने ही आपको महान कष्ट दिया मेरी भूल को क्षमा करो ? इस प्रकार कहा तब अनन्तमती ने क्षमा कर दिया। इस प्रकार अनन्तममती के ऊपर का उपसर्ग दूर हुआ। देवता ने कहा कि जहाँ इसकी जाने की इच्छा हो वहाँ पहुँचा दो ? अनन्तमती के कहे अनुसार राजा ने अनन्तमती को भेज दिया अनन्तमती अयोध्या में जिन चैत्यालय में जा पहुंची वहाँ पर भगवान के विधिपूर्वक दर्शन किए और वहीं पर कमश्री नामकी आर्यिका के दर्शन किए। और अनन्तमती माता जी के पास ही चैत्यालय में रहने लगी।

इधर चम्पापुर में अनन्तमती की सखियों ने अनन्तमती के अपहरण का समाचार उसके माता-पिता को दिया कि हम सब गीत गाते हुए बगीचा में झूला झूल रहे थे कि एक कोई आकाश से आया और अनन्तमती को चील झपट्टा कर ले गया। अनन्तमती के अपहरण का समाचार प्रियदत्त सेठ ने तथा अनन्तमती की माता ने व परिवार के जनों ने भी सुना तब सबके सब अनन्तमती के वियोग में आंसू बहाने लगे। अब प्रियदत्त श्रेष्ठी राजा के पास गये और राजा से कहा कि मेरी पुत्री अनन्तमती को कोई दुष्ट हरण कर ले गया है राजा ने प्रियदत्त को संबोधन किया कि धैर्य धरो आपकी पुत्री की खोज की जायेगी। प्रियदत्त सेठ ने भी अपने कई एक आदमियों को अनन्तमती की खोज लगाने के लिए भेज दिये। अनन्तमती की माता रुदन करती हुई हाय बेटी अनन्तमती तेरे को कौन दुष्ट दुराचारी हरण कर ले गया हा बेटी अब तू हमको कैसे मिलेगी। सब परिजन पुरुजनों में अनन्तमती के अपहरण का शोक छाया हुआ था। तथा राजा ने भी शोक किया, दिलाशा देते हुए समझाया फिर भी परिवार के लोग ऐसे रोते थे की मानो पति के वियोग के विरह में चकवी रोती है शोक करती है। उसी प्रकार अनन्तमती के वियोग में उसका परिवार दुःखी हो रहा। अनन्तमती की माता इस प्रकार रो रही थी। कभी मूर्छा खाकर जमीन पर गिर जाती तब परिजन लोग चन्दनादि का छिड़कावा करके सचेत करते थे तब वह होश में आ जाती पुनः हाय बेटी अनन्तमती कह कर रोने लग जाती थी ऐसी दशा माता की हो रही थी। इस

प्रकार दिन रात वीत रहे थे।

एक दिन प्रियदत्त श्रेष्ठी अनन्तमती की खोज करने के लिए अयोध्या नगरी की तरफ को निकले अयोध्या में प्रियदत्त की बहन रहती थी वहाँ पर पहुंचे। और अपनी वहन से अनन्तमती के अपहरण की सारी बात कह सुनाई यह सुन कर वह भी शोकातुर हो उठी। प्रिय दत्त जिन मन्दिर के दर्शन करने के लिए रास्ते में जा रहे थे कि एक मकान के सामने दरवाजे पर चौक पूरा हुआ देखा उसको देखकर प्रियदत्त रोने लगे कि ऐसा चौक तो हमारी अनन्तमती ही अपने दरवाजे पर पूरा करती थी। मन्दिर के दर्शन कर वहन के घर वापस आये और कहा कि यहाँ कोई वाला तो नहीं आई है यह सुनकर एक स्त्री कहने लगी कि चैत्यालय में कमल श्री आर्यिका विद्यमान हैं उनके पास एक रूपवती वाला है तव प्रियदत्त को विश्वास हो गया कि हो न हो अनन्तमतो ही हो तव उसको वहन ने एक सखी को भेजकर अनन्तमती को अपने घर वुलवा लिया और प्रियदत्त अनन्तमती को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए कि जिस प्रकार सूर्य के उदय को पाकर कमल खिल जाते हैं तथा चन्द्रमा को देखकर कुमुद खिल उठता है। तथा वर्षा के बादलों को देखकर मोर नाच उठते हैं व स्वाति नक्षत्र को आया जान चातक पक्षी प्रसन्न होता है। और आकाश में जहाँ तहाँ उड़ता है और बोलता है उसी प्रकार प्रियदत्त अनन्तमती को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। और गोद में लेकर उसके मस्तक पर हाथ फेरा पुचकारा और किस प्रकार तेरे को कौन अपहरण कर ले गया और क्या पीछे मुसीबतें आईं सब समाचार पूछा और कहा वेटी घर चलो तुम्हारी माता तेरे बिना धैर्य नहीं धारण कर रही है जिस दिन से तेरा अपहरण हुआ है उस ही दिन से अन्न पान का त्याग किए हुए दिन रात रोती ही रहती है यह सुनकर अनंतमती और प्रियदत्त श्रेष्ठी चम्पापुरी को चल दिये। और अपने घर पहुँच गये साथ में अपनी वहन को भी ले गये थे। अनन्तमती का आगमन सुनकर माता व परिजन आनन्दित हुए और सब घरों में मंगलमय गीत हुए प्रियदत्त ने भी अनेक प्रकार से दान पूजा करवाई। कुछ ही दिनों में प्रियदत्त का विचार हुआ कि अब अनन्तमती विवाह योग्य हो गई अब इसका विवाह संम्बन्ध करना चाहिए। तव अपनी वहन के जेष्ठ पुत्र के साथ विवाह करने का निश्चय किया। तथा विवाह महोत्सव की तैयारियां चलने लगीं तव अनन्तमती ने प्रियदत्त से पूछा कि पिता जी ये किसके विवाह की तैयारियां चल रहीं हैं? यह सुनकर प्रियदत्त बोला कि वेटी तेरे ही विवाह की तैयारियां चल रही हैं यह सुनकर अनन्तमती कहने लगी कि आपको पता नहीं कि आपने ही तो ब्रह्मचर्य व्रत मुझे गुरु से दिलवाया था। आप क्या मेरी शादी करना चाहते हैं। यह सुनकर प्रियदत्त सेठ बोला कि वेटी हमने तो आठ दिन की अष्टान्हिकाओं के व्रत लिए थे। तव अनन्तमती बोली कि उसी समय क्यों नहीं कहा था कि हमने तो आठ ही दिन के लिए व्रत लिये हैं अब मैं अपने अमूल्य ब्रह्मचर्य रूप रत्न को नहीं बेचूंगी न मैं शादी करूँगी। इतना कहकर अनन्तमती कमल श्री आर्यिका के पास गई और विनयपूर्वक वंदना करके कहा कि आप मुझे आर्यिका व्रत की दीक्षा दीजिए यह सुनकर कमल श्री आर्यिका ने अनन्तमती को आर्यिका के व्रत दिये।

अब अनन्तमती आर्यिका व्रत को धारणकर उग्र तप करती हुई समाधि पूर्वक मरण कर स्वर्ग को गई।

इति अनन्तमती कथा।

सम्यक्त्वोपपत्ते च नैसर्गिकोऽधिगमः खलु नित्यम्।
स्वभावेन परोपदेश पूर्वकोपप्रतीतिश्रद्धा ॥३८९॥

सम्यक्त्व की उत्पत्ति में दो कारण हैं एक नैसर्गिक दूसरा (परोपदेश) अधिगमज। नैसर्गिक जो आत्मा में स्वभाव से ही उत्पन्न हो जिसमें बाह्य कोई भी कारण न बना हो स्वभाव से ही आत्म रुचि व देव शास्त्र गुरुओं में श्रद्धान व सात तत्त्वों, नव परार्थों व छह द्रव्य, नव पदार्थों में श्रद्धान हुआ हो, वह नैसर्गिक सम्यक्त्व है। जो सम्यक्त्व परोपदेश पूर्वक जीवादि तत्त्वों व द्रव्यों, देव शास्त्र गुरुओं में श्रद्धान का होना तथा ज्ञान पूर्वक जो सम्यक्त्व होता है उसको अधिगमज सम्यक्त्व कहते हैं। शंका—यदि उपदेश नहीं सुना तो पदार्थ का श्रद्धान कैसे हुआ ? यदि सुना और सुनने से हुआ तो वह भी अधिगमज ही हुआ ? समाधान—आपका यह कहना ठीक है परन्तु निसर्गज सम्यक्त्व में परोपदेश कारण नहीं वह पूर्व संस्कार के अनुसार ही दर्शन मोह व अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात का उपशम या क्षयोपशम होना ये अन्तरंग कारण मिलने पर जो तत्त्व श्रद्धान होता है वह नैसर्गिक अथवा निसर्गज सम्यक्त्व है। दोनों सम्यक्त्व होने में अन्तरंग कारण समान ही है। जब दर्शन मोह का उपशम हो या क्षयोपशम हो तब अधिगमज और निसर्गज दोनों ही सम्यक्त्व जीवों के होते हैं। जब तक अन्तरंग में दर्शन मोह तथा चरित्र मोह की अन्तानुबन्धी चार कषायों का उपशम क्षयोपशम क्षय नहीं होता है तब तक दोनों ही सम्यक्त्व नहीं हो सकते। ३८९।

उद्यायन राजा की कथा निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध।

कच्छ देश में रोरव नामक नगर था वह नगर अनेक प्रकार के बाग-बगीचे तथा सज्जनों से परिपूर्ण था जहाँ के बाजार चोपड़ के बने हुए थे और जहाँ पर हीरा जवाहरात के व्यापार होते थे। जहां की स्त्रियायें अपनी शोभा से देवाँगनाओं की शोभा का बहिष्कार करती थी अनेक देश-देशान्तर से आने वाले वणिक लोग व्यापार किया करते थे। सब व्यापारी धन में कुवेर के समान धनवान थे। उस देश के राजा का नाम उद्यायन था और उनकी पट्ट महिषी का नाम प्रभावती था। एक दिन सौधर्म इन्द्र की सौधर्म सभा में निर्विचिकित्सा अंग में प्रधान है तो उद्यायन राजा है यह श्रवण कर वासव नाम का देव उद्यायन राजा तथा प्रभावती रानी की परीक्षा करने को चल दिया। वासवदेव ने अपना रूप एक मुनि का धारण किया और अत्यन्त दुर्बल पीड़ित हुए की तरह उठता बैठता राजा उद्यायन के महल के पास जा पहुँचा। उद्यायन राजा ने मुनिराज को महल की तरफ आता देखकर शीघ्र ही महल से उतरा और बोला हे स्वामी अत्र तिष्ठ-तिष्ठ-तिष्ठ कह कर पड़गाहन किया और अपने महल में ले गया, उच्चासन दिया और पाद प्रक्षालन किया, पूजाकर नमस्कार किया, और आहार जल शुद्ध है मन, वचन, काय शुद्ध है ऐसा कह कर

आहार देना चालू कर दिया तब वासवदेव ने चारों तरफ दुर्गंध ही दुर्गंध फैला दी । और आहार कर चुकने के पीछे राजा उद्यायन के ऊपर वमन कर दी जिससे सारा रसोई घर दुर्गंधमय बन गया था । सब सेवक लोग दुर्गंध के आने से भाग गये । राजा और रानी प्रभावती दो ही रह गये । राजा विचार करने लगा हाय हमारा धन खोटा है जिससे महाराज को हजम नहीं होकर वमन हो गई वे दोनों ही अपनी निन्दा करते हुए मुनिराज के शरीर को गरम पानी से धोने लग गये उन्होंने दुर्गंध का विचार नहीं किया कि दुर्गंध आ रही है न उनसे ग्लानि ही की, न उनके प्रति वहिष्कार की भावना ही की । अपितु सेवा वैयावृत्ति करने की भावना की, यह देखकर वासवदेव विचार करने लगा कि जैसा इन्द्र ने कहा था की वैसा ही देख रहा हूँ । वासवदेव ने तुरन्त ही अपना असली रूप धारण किया और राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा कि हे राजन् ! मैंने इन्द्र की सभा में जैसी आप की कीर्ति सुनी वैसी ही साक्षात रूप से में भी परीक्षा कर देखी । इस प्रकार परीक्षा करने के पीछे राजा उद्यायन को नमस्कार कर देव बोला, आप धन्य हैं आप ही सच्चे सम्यग्दृष्टि हैं । इस प्रकार कह कर वासवदेव अपने स्थान को चला गया ।

इति उद्यायन प्रभावती रानी की निर्विचिकित्सा अंग की कथा

आगे अमूढ़ दृष्टि अंग में प्रसिद्ध रेवती रानी की कथा

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नाम का नगर था उस नगरी के राजा का नाम चन्द्रप्रभ था उनको अनेक विद्यायें सिद्ध थीं । एक दिन राजा अपने पुत्र को राज्य देकर आप यात्रा के लिए निकला और दक्षिण मथुरा में गुप्ताचार्य मुनिराज जहां रहते थे वहां जा पहुँचा । गुप्ताचार्य से मुनि दीक्षा मांगी तब गुप्ताचार्य ने कहा कि अन्तरंग व वहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करो जितनी विद्यायें हैं उन सब का त्याग करो ? तब चन्द्रप्रभ विद्याधर बोला हे भगवन् ! एक आकाश गामिनी विद्या रख कर शेष का त्याग कर देता हूँ । मेरा विचार उत्तर मथुरा के चैत्यालयों के दर्शन करने का है । यह श्रवण कर गुप्ताचार्य ने कहा कि तुम क्षुलुक दीक्षा ले सकते हो, मुनि दीक्षा नहीं, क्योंकि मुनि दीक्षा में सबका त्याग करना होगा । तब चन्द्रप्रभ विद्याधर ने उत्तम श्रावक में व्रत धारण किये और गुप्ताचार्य के पादमूल में रहने लगा । एक दिन वह चन्द्रप्रभ क्षुल्लक उत्तर में मथुरा जाने को तैयार हुआ और गुरु के पास जाकर आज्ञा मागीं गुरु से आज्ञा लेकर चला तब उसने कहा महाराज किसी को कुछ कहना हो वह कहो में कह दूंगा । तब महाराज ने कहा कि सुव्रत मुनि महाराज को हमारा नमोस्तु कहना और रानी रेवती को धर्म वृद्धि आशीर्वाद कहना, पुनः क्षुल्लक जी ने कहा और किसी को तो कुछ नहीं कहना है ? यह सुनकर गुप्ताचार्य ने कोई उत्तर नहीं दिया । भव्यसेन को कुछ भी नहीं कहा ।

अब क्या था कि विद्याधर विद्या वल से उत्तार मथुरा के दर्शन करने को पहुंचा और मुनिसुव्रत मुनिराज को धर्म वात्सल्य देखकर क्षुल्लक जी ने वार-वार नमोस्तु कहते हुए गुरु के कहे अनुसार गुरु का नमोस्तु नमोस्तु कहा ।

मुनि सुव्रत मुनि महाराज से आशीर्वाद लेकर जहाँ पर भव्यसेन महाराज रहते थे

वहां गया परन्तु नमस्कार नहीं किया और पास में बैठ गया। भव्यसेन मुनिराज शौच क्रिया करने को बाहर जाना ही चाहते थे कि क्षुल्लक ने भव्यसेन का कमण्डल अपने हाथ में ले लिया और अपनी विद्या बल से कमण्डल का पानी सुखा दिया और कहने लगा कि महाराज कमण्डल में तो पानी ही नहीं है। तथा मार्ग में हरा-हरा घास विद्या बल से बना दिया। तथा तालाब बना दिया और कहने लगा कि श्री महाराज सामने तालाव दिखाई देता है उसमें शौचादि की शुद्धि कर लीजिये उसका पानी अत्यन्त निर्मल है? यह सुनकर भव्यसेन ने तालाब में जाकर शौचादि क्रिया की? भव्यसेन भी हरे घास को रोंदते चले गये कहते थे कि घास में एकेन्द्रिय जीव होते हैं ऐसा आगम में लिखा है तथा जल भी एकेन्द्रिय जीव का जन्म स्थान है तथा त्रसकायक जीव भी उत्पन्न होते हैं ऐसा शास्त्र में लिखा है। यह देखकर क्षुल्लक विचार करने लगा कि इसी कारण गुप्ताचार्य ने इनके प्रति मौन धारण किया और विचार करना चाहिए कि रेवती रानी को ही क्यों आशीर्वाद कहा अन्य को क्यों नहीं? इसकी परीक्षा अवश्य करूंगा।

वह क्षुल्लक मथुरा की पूर्व दिशा में चतुरमुखी ब्रह्मा का रूप धारण कर बैठा जिसको देख नगर वासी लोग देखने को आने लगे। शहर व घर-घर में ब्रह्मा जी के प्रकट होने की चर्चा चल पड़ी यह खबर चारों ओर फैल गयी, कि शहर की पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी सक्षात् विराजमान हैं। प्रजा विचार करने लगी कि हम लोगों का बड़ा ही भाग्य का उदय है कि ब्रह्मा साक्षात आ विराजमान हुए हैं। सब नगर के स्त्री-पुरुष बाल-बच्चे वृद्ध सब ही ब्रह्माजी के दर्शन करने जाते थे और अपने को धन्य मानते थे। राजा को यह भी समाचार मिला कि पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी आये हुए हैं राजा ने भी ब्रह्मा के दर्शन करने की तैयारी कर रानी रेवती से कहा कि चलो नगर के पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी आये हैं चारों मुखों से वेदों की कथा कह रहे हैं यह सुन रेवती रानी कहने लगी कि हे राजन जिनागम में ब्रह्मा चौवीस होते हैं पच्चीस नहीं सो चौवीस-के-चौवीस तो हो चुके फिर ये पच्चीसवां कहा से आ गया? यह कोई छलिया है। इन्द्र जालिया है। रानी नहीं गई, राजा को दर्शन करते हुए देखा और भव्यसे को भी देखा परन्तु रेवती को नहीं देखा।

दूसरे दिन प्रभात होते ही उस विद्याधर क्षुल्लक ने विष्णु भगवान का रूप धारण किया गरुड़ पर सवार नाग शैय्या पर लेटे हुए लक्ष्मी जी पैर दबा रही थी एक हाथ में शंख था एक हाथ में चक्र था इस प्रकार मथुरा की दक्षिण श्रेणी में (दिशा में) विष्णु भगवान अपने वैभव सहित पधारे हैं उनको देखने के लिए नगर के नर-नारी बाल वृद्ध आने लगे और दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानने लगे। यह समाचार राजा ने भी प्राप्त किया और राजा भी दर्शन करने के लिए जाने को उत्सुक हुआ और रानी के महल में गया कहने लगा कि हे प्रिये विष्णु भगवान साक्षात अपने नगर की दक्षिण दिशा में विराज रहे हैं सब लोग दर्शन कर आनन्द की लहर ले रहें हैं तुम भी चलो पहले भी नहीं गयी अब तो चलो? यह सुन कर रेवती रानी बोली कि राजन आपनहीं जानते कि शास्त्रों में लिखा है विष्णु नौ होते हैं और नौ प्रति विष्णु होते हैं सो वे दोनों ही प्रकार के विष्णु तो चौथे काल में हो चुके

इतना कह कर वह सूर्यवर्मा चोर एक पीतल का कमण्डल लेकर हाथ में ब्रह्मचारी का रूप धारण कर चल दिया और ताम्रपुर में जिनेन्द्र भक्त सेठ के यहां चैत्यालय में जा पहुँचा और दर्शन किये। जिनेन्द्र भक्त सेठ ने विचार किया कि कोई ब्रह्मचारी महाराज आये हुए हैं ऐसा जान कर उसकी रहने की व्यवस्था कर दी। वह ब्रह्मचारी भी देखा देखी करने लग गया। जब वहां रहते हुए बहुत दिन बीत गये परन्तु ऐसा अवसर नहीं पाया कि छत्र में से उस वैडूर्यमणि की चोरी की जा सके। एक दिन जिनेन्द्र भक्त सेठ ने परदेश जाने का विचार किया और शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया तब वह तस्कर विचार करने लगा कि अब अपने को अच्छा अवसर मिल जाएगा और अपना कार्य अवश्य बन जाएगा। जिनेन्द्र भक्त सेठ ने गांव के बाहर जाकर एक सुन्दर बाग में रात्रि को मुकाम किया। इधर उस तस्कर ने वैडूर्य मणि को छत्र में से तोड़कर एक वस्त्र में लपेट ली ताकि किसी को दिखाई न दे सके। अब क्या था कि ब्रह्मचारी भेषधारी उस मणि को लेकर चला जब दरवाजे पर आया त्यों ही पहरेदारों ने भाप लिया और रंगे हाथों से पकड़ लिया और बहुत मार लगाई यह समाचार किसी सेवक ने जिनेन्द्र भक्त सेठ को दे दिया कि ब्रह्मचारी भगवान के छत्र में लगे हुए मणि को लेकर भाग रहा था। जब दरवाजे पर आया तब द्वार पर रहने वाले पहरेदारों ने पकड़ लिया और मार लगाई। और उनको बांध रक्खा है। यह सुनकर जिनेन्द्र भक्त शीघ्र ही सुनकर उन्हीं पैरों चल दिया और अपने मकान पर पहुंचा और देखा कि चोर को द्वारपालों ने बांध रक्खा है। जिनेन्द्र भक्त ने द्वारपालों को बहुत डांटा और कहने लगा कि यह मणि तो मैंने ही मँगाई। इस ब्रह्मचारी का कोई दोष नहीं तुमने बिना विचारे ही क्यों उसको मार लगाई। और कहने लगा कि आप को ऐसा व्यवहार नहीं करना था। उस रत्न को लेकर हाथ में उस तस्कर को भी अपने महल के भीतर ले गया और समझाया कि यदि तुझ को चोर कहकर राजा के हाथ सुपर्द कर दूं तो राजा आज ही तुमको सूली पर चढ़ा देगा। तथा अन्य प्रकार का भी दण्ड बहुत देगा जिससे तुझको जीवन आशा भी छोड़नी पड़ेगी। तथा और अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि यदि मैं चाहूँ तो तेरे को अभी मरवा डालूं पर इस प्रकार करने व दण्ड देने से व दिलवाने सच्चे धर्मात्मा ब्रह्मचारी क्षुल्लक मुनियों का कोई विश्वास नही करेगा और लौकिक जन कहेंगे कि जैनों के ब्रह्मचारी क्षुल्लक आदि त्यागी भी चोर होते हैं इस प्रकार लोक में जैन धर्म और धर्म के धारक जैनो का अपवाद होगा। यदि नौकरों के हवाले कर दूं तो वे इसको बिना प्राण लिए छोड़ेंगे नहीं। उस तस्कर को धर्म का स्वरूप समझाया और चोरी करने का त्याग करवा दिया और उसको सन्मार्ग में लगाकर पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी बना दिया।

इति उपगूहन अंग

इति जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा समाप्त

सम्यक्त्वमेकं द्वित्रिदश श्रद्धानं श्रंद्धाति तया।
असंख्यातविकल्पं जिन प्रज्ञप्तं परमागमे ॥३९०॥

वहां गया परन्तु नमस्कार नहीं किया और पास में बैठ गया। भव्यसेन मुनिराज शौच क्रिया करने को बाहर जाना ही चाहते थे कि क्षुल्लक ने भव्यसेन का कमण्डल अपने हाथ में ले लिया और अपनी विद्या बल से कमण्डल का पानी सुखा दिया और कहने लगा कि महाराज कमण्डल में तो पानी ही नहीं है। तथा मार्ग में हरा-हरा घास विद्या बल से बना दिया। तथा तालाब बना दिया और कहने लगा कि श्री महाराज सामने तालाब दिखाई देता है उसमें शौचादि की शुद्धि कर लीजिये उसका पानी अत्यन्त निर्मल है? यह सुनकर भव्यसेन ने तालाब में जाकर शौचादि क्रिया की? भव्यसेन भी हरे घास को रोंदते चले गये कहते थे कि घास में एकेन्द्रिय जीव होते हैं ऐसा आगम में लिखा है तथा जल भी एकेन्द्रिय जीव का जन्म स्थान है तथा त्रसकायक जीव भी उत्पन्न होते हैं ऐसा शास्त्र में लिखा है। यह देखकर क्षुल्लक विचार करने लगा कि इसी कारण गुप्ताचार्य ने इनके प्रति मौन धारण किया और विचार करना चाहिए कि रेवती रानी को ही क्यों आशीर्वाद कहा अन्य को क्यों नहीं? इसकी परीक्षा अवश्य करूंगा।

वह क्षुल्लक मथुरा की पूर्व दिशा में चतुरमुखी ब्रह्मा का रूप धारण कर बैठा जिसको देख नगर वासी लोग देखने को आने लगे। शहर व घर-घर में ब्रह्मा जी के प्रकट होने की चर्चा चल पड़ी यह खबर चारों ओर फैल गयी, कि शहर की पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी सक्षात् विराजमान हैं। प्रजा विचार करने लगी कि हम लोगों का बड़ा ही भाग्य का उदय है कि ब्रह्मा साक्षात आ विराजमान हुए हैं। सब नगर के स्त्री-पुरुष बाल-बच्चे वृद्ध सब ही ब्रह्माजी के दर्शन करने जाते थे और अपने को धन्य मानते थे। राजा को यह भी समाचार मिला कि पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी आये हुए हैं राजा ने भी ब्रह्मा के दर्शन करने की तैयारी कर रानी रेवती से कहा कि चलो नगर के पूर्व दिशा में ब्रह्मा जी आये हैं चारों मुखों से वेदों की कथा कह रहे हैं यह सुन रेवती रानी कहने लगी कि हे राजन जिनागम में ब्रह्मा चौबीस होते हैं पच्चीस नहीं सो चौबीस-के-चौबीस तो हो चुके फिर ये पच्चीसवां कहा से आ गया? यह कोई छलिया है। इन्द्र जालिया है। रानी नहीं गई, राजा को दर्शन करते हुए देखा और भव्यसे को भी देखा परन्तु रेवती को नहीं देखा।

दूसरे दिन प्रभात होते ही उस विद्याधर क्षुल्लक ने विष्णु भगवान का रूप धारण किया गरुड़ पर सवार नाग शैय्या पर लेटे हुए लक्ष्मी जी पैर दबा रही थी एक हाथ में शंख था एक हाथ में चक्र था इस प्रकार मथुरा की दक्षिण श्रेणी में (दिशा में) विष्णु भगवान अपने वैभव सहित पधारे हैं उनको देखने के लिए नगर के नर-नारी बाल वृद्ध आने लगे और दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानने लगे। यह समाचार राजा ने भी प्राप्त किया और राजा भी दर्शन करने के लिए जाने को उत्सुक हुआ और रानी के महल में गया कहने लगा कि हे प्रिये विष्णु भगवान साक्षात अपने नगर की दक्षिण दिशा में विराज रहे हैं सब लोग दर्शन कर आनन्द की लहर ले रहे हैं तुम भी चलो पहले भी नहीं गयी अब तो चलो? यह सुन कर रेवती रानी बोली कि राजन आपनहीं जानते कि शास्त्रों में लिखा है विष्णु नौ होते हैं और नौ प्रति विष्णु होते हैं सो वे दोनों ही प्रकार के विष्णु तो चौथे काल में हो चुके

इतना कह कर वह सूर्यवर्मा चोर एक पीतल का कमण्डल लेकर हाथ में ब्रह्मचारी का रूप धारण कर चल दिया और ताम्रपुर में जिनेन्द्र भक्त सेठ के यहां चैत्यालय में जा पहुँचा और दर्शन किये। जिनेन्द्र भक्त सेठ ने विचार किया कि कोई ब्रह्मचारी महाराज आये हुए हैं ऐसा जान कर उसकी रहने की व्यवस्था कर दी। वह ब्रह्मचारी भी देखा देखी करने लग गया। जब वहां रहते हुए बहुत दिन बीत गये परन्तु ऐसा अवसर नहीं पाया कि छत्र में से उस वैडूर्यमणि की चोरी की जा सके। एक दिन जिनेन्द्र भक्त सेठ ने परदेश जाने का विचार किया और शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया तब वह तस्कर विचार करने लगा कि अब अपने को अच्छा अवसर मिल जाएगा और अपना कार्य अवश्य बन जाएगा। जिनेन्द्र भक्त सेठ ने गांव के बाहर जाकर एक सुन्दर बाग में रात्रि को मुक़ाम किया। इधर उस तस्कर ने वैडूर्य मणि को छत्र में से तोड़कर एक वस्त्र में लपेट ली ताकि किसी को दिखाई न दे सके। अब क्या था कि ब्रह्मचारी भेषधारी उस मणि को लेकर चला जब दरवाजे पर आया त्यों ही पहरेदारों ने भाप लिया और रंगे हाथों से पकड़ लिया और बहुत मार लगाई यह समाचार किसी सेवक ने जिनेन्द्र भक्त सेठ को दे दिया कि ब्रह्मचारी भगवान के छत्र में लगे हुए मणि को लेकर भाग रहा था। जब दरवाजे पर आया तब द्वार पर रहने वाले पहरेदारों ने पकड़ लिया और मार लगाई। और उनको बांध रक्खा है। यह सुनकर जिनेन्द्र भक्त शीघ्र ही सुनकर उन्हीं पैरों चल दिया और अपने मकान पर पहुंचा और देखा कि चोर को द्वारपालों ने बांध रक्खा है। जिनेन्द्र भक्त ने द्वारपालों को बहुत डांटा और कहने लगा कि यह मणि तो मैंने ही मँगाई। इस ब्रह्मचारी का कोई दोष नहीं तुमने बिना विचारे ही क्यों उसको मार लगाई। और कहने लगा कि आप को ऐसा व्यवहार नहीं करना था। उस रत्न को लेकर हाथ में उस तस्कर को भी अपने महल के भीतर ले गया और समझाया कि यदि तुझ को चोर कहकर राजा के हाथ सुपर्द कर दूं तो राजा आज ही तुमको सूली पर चढ़ा देगा। तथा अन्य प्रकार का भी दण्ड बहुत देगा जिससे तुझको जीवन आशा भी छोड़नी पड़ेगी। तथा और अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि यदि मैं चाहूँ तो तेरे को अभी मरवा डालूं पर इस प्रकार करने व दण्ड देने से व दिलवाने सच्चे धर्मात्मा ब्रह्मचारी क्षुल्लक मुनियों का कोई विश्वास नही क़रेगा और लौकिक जन कहेंगे कि जैनों के ब्रह्मचारी क्षुल्लक आदि त्यागी भी चोर होते हैं इस प्रकार लोक में जैन धर्म और धर्म के धारक जैनों का अपवाद होगा। यदि नौकरों के हवाले कर दूं तो वे इसको बिना प्राण लिए छोड़ेंगे नहीं। उस तस्कर को धर्म का स्वरूप समझाया और चोरी करने का त्याग क़रवा दिया और उसको सन्मार्ग में लगाकर पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी बना दिया।

इति उपगूहन अंग

इति जिनेन्द्र भक्त सेठ की क़था समाप्त

सम्यक्त्वमेकं द्वित्रिदश श्रद्धानं श्रद्धाति तया।
असंख्यातविकल्पं जिन प्रज्ञप्तं परमागमे ॥३९०॥

निश्चय रूप से सम्यक्त्व एक है तथा सराग और वीतराग के भेद से दो प्रकार का होता है उपक्षम क्षयोपशम क्षायक के भेद से तीन प्रकार का होता है। आज्ञा सम्यक्त्व मार्ग सम्यक्त्व, उपदेश सम्यक्त्व, सूत्र सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व, संक्षेप सम्यक्त्व, विस्तार सम्यक्त्व, अर्थ सम्यक्त्व, अवगाढ सम्यक्त्व, परमावगाढ संम्यक्त्व के भेद से दश प्रकार का है श्रद्धान और श्रद्धान करने वाले की अपेक्षा से अनेक भेद होते हैं।

पूर्व में कहे गये जीवादिक द्रव्य पदार्थों सात तत्त्वों पर श्रद्धान का होना सम्यक्त्व एक है। निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व के भेद से दो प्रकार का है। सराग सम्यक्त्व और बीतराग सम्यक्त्व के भेद से भी दो प्रकार का है। उपशम सम्यक्त्व जिसमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यग्प्रकृति और अनंतानुबंधी क्रोधमान माया लोभ इन सात का उपशम होनेपर जो हो वह उपशम सम्यक्त्व है इनके क्षय होने पर जो हो वह क्षायक सम्यक्त्व है। इन ही सातों के सर्व घातिया प्रकृति मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुवंधी कषायों की उदयाभावी क्षय सदवस्था रूप उपशम तथा सम्यक्प्रकृति का उदय ही में आने पर जीव के जो सम्यक्त्व होता है उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। इस प्रकार सम्यक्त्व के तीन भेद होते हैं। क्षायोपशमीक सम्यक्त्व को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं कृत-कृत वेदक भी इसी का नाम है परन्तु इतना विशेष है कि जब क्षायक सम्यक्त्व करने को जीव सन्मुख होता है तब ही जीव के कृतकृत वेदक अंतर्मुहूर्त पहले केवली के पादमूल में होता है उसके पीछे क्षायक सम्यक्त्व नियम से होता है। आज्ञा सम्यक्त्व केवली भगवान के द्वारा जैसा कहा गया है वही सत्य है अन्यथा नहीं हो सकता। पदार्थ व द्रव्य की व्यवस्था भगवान के आगम में जिस प्रकार से कही गई है वैसी ही है अन्यथा नहीं है ऐसा श्रद्धान होना सो आज्ञा सम्यक्त्व है।१। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों की एकता होना तथा तीनों रूप एक आत्मा में परिणमन होना ही मोक्ष मार्ग है अन्यथा मोक्ष मार्ग नहीं। ऐसा श्रद्धान का होना सो मार्ग सम्यक्त्व है ॥२॥ अरहंत केवली व श्रुत केवली अंगधर आचार्य उपाध्याय और मुनियों का उपदेश सुनकर आत्म रुचि या श्रद्धान का होना सो ही उपदेश सम्यक्त्व है। तथा तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव आदि महापुरुषों ने संयम धारण कर समाधि पूर्वक केवल ज्ञान प्राप्त किया थाऐ सा सुनकर सच्चे धर्म और धर्म के धारकों में रुचि का होना सो उपदेश सम्यक्त्व है। तथा नारक त्रियंच मनुष्य गति के दुःखों को श्रवण कर संसार को दुःखों का समुद्र जान कर जो तत्त्व पर श्रद्धान होता है उसको उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं।३। मुनियों के आचार विचार के कथन करने वाले सूत्र को सुनकर आत्मा में जाग्रति का होना सो सूत्र सम्यक्त्व है।४। जिस पद में आगम सूत्र के एक अक्षर को पढ़ने या जानने पर जो तत्त्वों का श्रद्धान होता है वह अथवा श्लोक का प्रथम अक्षर पढ़ने पर पूरे श्लोक का अर्थ समझ लेना यह बीजाक्षर है जिसके पढ़ने पर आत्मा की तत्त्वों में जो रुचि होती है अथवा श्रद्धान होता है वह बीज सम्यक्त्व है। वीज अक्षर को समझ कर सूक्ष्म पदार्थों के स्वरूप को जानने पर पदार्थों में जो श्रद्धान होता है वह वीज सम्यक्त्व है ॥५॥ संक्षेप से पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान होने पर जो आत्मा में पदार्थों पर रुचि उत्पन्न होती है

सम्यग्दष्टि के क्षायक सम्यक्त्व होता है। इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि के तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं ॥ ३९१ ॥

अप्रमत्ते त्रयह्वि स्वस्थाने सातिशये प्रज्ञप्तम् ॥
अपूर्वकरणेऽपिह्वि चोपाशान्त मोहे सम्यक् ॥३९२॥

अप्रमन्त गुथ स्थान में दो भेद हैं प्रथम स्वस्थान दूसरा सातिसय। प्रथम स्वस्थान में तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते हैं। परन्तु सातिसय (सम्यग्दृष्टि) अप्रमत्त वाले जीवों के दो ही सम्यक्त्व होते हैं उपशम श्रेणी को चढ़ने वाला जीव द्वितियोपश सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व ये दो ही होते हैं क्योंकि क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव के इतनी परिणामों की निर्मलता नहीं होती कि जिससे श्रेणी चढ़ सके। इस कारण क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्रकृति दबा देता है और द्वितियोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर श्रेणी से चढ़ता है। अपूर्व करण अतिवृत्ति करण और सूक्ष्म सांपराय इन तीनों गुणस्थानों में औपशमिक और क्षायक दोनों ही सम्यक्त्व होते हैं उपशम श्रेणी से चढ़ने वाले जीवों के औपशमिक व क्षायक दोनों ही सम्यक्त्व होते हैं परन्तु क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव के एक क्षायक ही सम्यक्त्व होता है। उपशांत मोह में भी दोनों सम्यक्त्व होते हैं परन्तु विशेष यह है कि उपशम श्रेणी चढ़ने वाले क्षायक सम्यग्दृष्टि व उपशम सम्यक्त्व वाले जीव उपसम श्रेणी से चढ़ने के काल में चारित्र मोह की अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन नव नो कषायों का उपशम कर चढ़ते हैं जव उपशांत मोह में कोई संज्वलन कषाय लोभ का उदय आ जाता है तव उससे च्युत होता है क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव तो क्रम से उतर कर छटवें गुण स्थान में आकर रुक जाता है परन्तु उपशम श्रेणी से चढ़ने वाला गिरकर छठवें में नहीं ठहरता है वह मिथ्यात्व में भी पहुँच जाता है।

क्षीणमोहादित्रिषु क्षायकं सम्यक्त्वं च सिद्धानाम ॥
अभव्यानामेकं सास्वतं निवसति मिथ्यात्वम् ॥३९३॥

क्षीण मोह सयोगी और अयोगी इन तीनों गुणस्थानों में एक क्षायक सम्यक्त्व होता है तथा अनन्त सिद्ध भगवान के भी एक क्षायक सम्यक्त्व होता है। सम्यक्त्व के जितने भेद कहे गये हैं वे सब भव्य जीवों की अपेक्षा से कहे गये हैं अभव्य जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान विद्यमान रहता है उसका आदि अन्त नहीं हैं ॥ ३९३ ॥

आगे स्थिति करण अंग में प्रसिद्ध वारिसेन मुनि की कथा

विहार प्रान्त में राजगृह नाम का नगर है उसमें राजा श्रेणिक राज्य करता था उसकी रानी का नाम चेलना था। महारानी चेलना की कुक्षि से वारिसेन नाम का पुत्र हुआ वह महा प्रतापी परक्रमी धैर्यवान था। एक दिन वारिसेन राजकुमार श्मसान भूमि में चतुर्दशी की रात्रि को ध्यान करने को गया और प्रतिमायोग धारण कर स्थिति हुआ था कि एक चोर चोरी कर रत्न जड़ित हार लेकर राजमहल में से निकल रहा था कि कोतवाल ने उस चोर का पीछा किया तव वह चोर श्मसान भूमि की तरफ भागा और वारिसेन राजकुमार के सामने पास में ही रत्नहार को डाल कर भाग गया और कहीं जाकर छिप गया। जव कोतवाल वहाँ पहुंचा और राजकुमार वारिसेन को खड़ा हुआ देखा और विचार

निश्चय रूप से सम्यक्त्व एक है तथा सराग और वीतराग के भेद से दो प्रकार का होता है उपक्षम क्षयोपशम क्षायक के भेद से तीन प्रकार का होता है। आज्ञा सम्यक्त्व मार्ग सम्यक्त्व, उपदेश सम्यक्त्व, सूत्र सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व, संक्षेप सम्यक्त्व, विस्तार सम्यक्त्व, अर्थ सम्यक्त्व, अवगाढ सम्यक्त्व, परमावगाढ सम्यक्त्व के भेद से दश प्रकार का है श्रद्वान और श्रद्वान करने वाले की अपेक्षा से अनेक भेद होते हैं।

पूर्व में कहे गये जीवादिक द्रव्य पदार्थों सात तत्त्वों पर श्रद्वान का होना सम्यक्त्व एक है। निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व के भेद से दो प्रकार का है। सराग सम्यक्त्व और बीतराग सम्यक्त्व के भेद से भी दो प्रकार का है। उपशम सम्यक्त्व जिसमें मिथ्यात्व, सम्यगमिथ्यात्व, सम्यग्प्रकृति और अनंतानुबंधी क्रोधमान माया लोभ इन सात का उपशम होनेपर जो हो वह उपशम सम्यक्त्व है इनके क्षय होने पर जो हो वह क्षायक सम्यक्त्व है। इन ही सातों के सर्व घातिया प्रकृति मिथ्यात्व सम्यग्मि-थ्यात्व, अनंतानुबंधी कषायों की उदयाभावी क्षय सदवस्था रूप उपशम तथा सम्यक्प्र-कृति का उदय ही में आने पर जीव के जो सम्यक्त्व होता है उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। इस प्रकार सम्यक्त्व के तीन भेद होते हैं। क्षायोपशमीक सम्यक्त्व को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं कृत-कृत वेदक भी इसी का नाम है परन्तु इतना विशेष है कि जब क्षायक सम्यक्त्व करने को जीव सन्मुख होता है तब ही जीव के कृतकृत वेदक अंतर्मुहूर्त पहले केवली के पादमूल में होता है उसके पीछे क्षायक सम्यक्त्व नियम से होता है। आज्ञा सम्यक्त्व केवली भगवान के द्वारा जैसा कहा गया है वही सत्य है अन्यथा नहीं हो सकता। पदार्थ व द्रव्य की व्यवस्था भगवान के आगम में जिस प्रकार से कही गई है वैसी ही है अन्यथा नहीं है ऐसा श्रद्वान होना सो आज्ञा सम्यक्त्व है।१। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों की एकता होना तथा तीनों रूप एक आत्मा में परिणमन होना ही मोक्ष मार्ग है अन्यथा मोक्ष मार्ग नहीं। ऐसा श्रद्वान का होना सो मार्ग सम्यक्त्व है ॥२॥ अरहंत केवली व श्रुत केवली अंगधर आचार्य उपाध्याय और मुनियों का उपदेश सुनकर आत्म रुचि या श्रद्वान का होना सो ही उपदेश सम्यक्त्व है। तथा तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव आदि महापुरुषों ने संयम धारण कर समाधि पूर्वक केवल ज्ञान प्राप्त किया थाऐ सा सुनकर सच्चे धर्म और धर्म के धारकों में रुचि का होना सो उपदेश सम्यक्त्व है। तथा नारक त्रियंच मनुष्य गति के दुःखों को श्रवण कर संसार को दुःखों का समुद्र जान कर जो तत्त्व पर श्रद्वान होता है उसको उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं।३। मुनियों के आचार विचार के कथन करने वाले सूत्र को सुनकर आत्मा में जाग्रति का होना सो सूत्र सम्यक्त्व है।४। जिस पद में आगम सूत्र के एक अक्षर को पढ़ने या जाननें पर जो तत्त्वों का श्रद्वान होता है वह अथवा श्लोक का प्रथम अक्षर पढ़ने पर पूरे श्लोक का अर्थ समझ लेना यह बीजाक्षर है जिसके पढ़ने पर आत्मा की तत्त्वों में जो रुचि होती है अथवा श्रद्वान होता है वह बीज सम्यक्त्व है। बीज अक्षर को समझ कर सूक्ष्म पदार्थों के स्वरूप को जानने पर पदार्थों में जो श्रद्वान होता है वह बीज सम्यक्त्व है ॥५॥ संक्षेप से पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान होने पर जो आत्मा में पदार्थों पर रुचि उत्पन्न होती है

सम्यग्दष्टि के क्षायक सम्यक्त्व होता है। इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि के तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं॥ ३६१॥

अप्रमत्ते अयद्वि स्वस्थाने सातिशये प्रज्ञप्तम्॥
अपूर्वकरणेऽपिद्वि चोपाशान्त मोहे सम्यक्॥३६२॥

अप्रमन्त गुण स्थान में दो भेद हैं प्रथम स्वस्थान दूसरा सातिसय। प्रथम स्वस्थान में तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते हैं। परन्तु सातिसय (सम्यग्दृष्टि) अप्रमत्त वाले जीवों के दो ही सम्यक्त्व होते हैं उपशम श्रेणी को चढ़ने वाला जीव द्वितियोपश सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व ये दो ही होते हैं क्योंकि क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव के इतनी परिणामों की निर्मलता नहीं होती कि जिससे श्रेणी चढ़ सके। इस कारण क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्रकृति दवा देता है और द्वितियोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर श्रेणी से चढ़ता है। अपूर्व करण अतिवृत्ति करण और सूक्ष्म सांपराय इन तीनों गुणस्थानों में औपशमिक और क्षायक दोनों ही सम्यक्त्व होते हैं उपशम श्रेणी से चढ़ने वाले जीवों के औपशमिक व क्षायक दोनों ही सम्यक्त्व होते हैं परन्तु क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव के एक क्षायक ही सम्यक्त्व होता है। उपशांत मोह में भी दोनों सम्यक्त्व होते हैं परन्तु विशेष यह है कि उपशम श्रेणी चढ़ने वाले क्षायक सम्यग्दृष्टि व उपशम सम्यक्त्व वाले जीव उपसम श्रेणी से चढ़ने के काल में चारित्र मोह की अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन नव नो कषायों का उपशम कर चढ़ते हैं जव उपशांत मोह में कोई संज्वलन कषाय लोभ का उदय आ जाता है तव उससे च्युत होता है क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव तो क्रम से उतर कर छटवें गुण स्थान में आकर रुक जाता है परन्तु उपशम श्रेणी से चढ़ने वाला गिरकर छठवें में नहीं ठहरता है वह मिथ्यात्व में भी पहुँच जाता है।

क्षीणमोहादित्रिषु क्षायकं सम्यक्त्वं च सिद्धानाम॥
अभव्यानामेकं सास्वतं निवसति मिथ्यात्वम्॥३६३॥

क्षीण मोह सयोगी और अयोगी इन तीनों गुणस्थानों में एक क्षायक सम्यक्त्व होता है तथा अनन्त सिद्ध भगवान के भी एक क्षायक सम्यक्त्व होता है। सम्यक्त्व के जितने भेद कहे गये हैं वे सब भव्य जीवों की अपेक्षा से कहे गये हैं अभव्य जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान विद्यमान रहता है उसका आदि अन्त नहीं हैं॥ ३६३॥

आगे स्थिति करण अंग में प्रसिद्ध वारिसेन मुनि की कथा

विहार प्रान्त में राजगृह नाम का नगर है उसमें राजा श्रेणिक राज्य करता था उसकी रानी का नाम चेलना था। महारानी चेलना की कुक्षि से वारिसेन नाम का पुत्र हुआ वह महा प्रतापी परक्रमी धैर्यवान था। एक दिन वारिसेन राजकुमार श्मसान भूमि में चतुर्दशी की रात्रि को ध्यान करने को गया और प्रतिमायोग धारण कर स्थिति हुआ था कि एक चोर चोरी कर रत्न जड़ित हार लेकर राजमहल में से निकल रहा था कि कोतवाल ने उस चोर का पीछा किया तव वह चोर श्मसान भूमि की तरफ भागा और वारिसेन राजकुमार के सामने पास में ही रत्नहार को डाल कर भाग गया और कहीं जाकर छिप गया। जव कोतवाल वहाँ पहुंचा और राजकुमार वारिसेन को खड़ा हुआ देखा और विचार

करने लगा कि राजकुमार ही चोरी करने लग गया तब फिर अन्य की तो बात ही क्या रह जाती है। यह विचार कर कोतवाल ने महाराज श्रेणिक को समाचार दिया कि राजकुमार ही रनिवास से चोरी कर ले गये हैं वे श्मसान भूमि में खडे हुए हैं। यह सुन कर राजा श्रेणिक ने कहा यदि राजकुमार वारिसेन ही चोरी करने लग गया तो ऐसे पापी राजकुमार के सिर धड़ से अलग-अलग कर दो अथवा मार डालो। यह सुनकर कोतवाल ने राजाज्ञा के अनुसार चाण्डालों को कहा कि वारिसेन राजकुमार को तलवार से मार डालो। राजाज्ञा से चाण्डालों ने श्मसान भूमि में जाकर ध्यानस्थ श्री वारिसेन राजकुमार जो प्रतिमायोग से खड़े थे उनके ऊपर तलवार की धाराओं का प्रहार किया गया। तलवार की धारायें राजकुमार के शरीर पर एक चमत्कार रूपी छटायें दिखाई दे रही थी। यह सब समाचार कोतवाल ने राजा श्रेणिक को कह सुनाया। राजा स्वयं चल कर घटना स्थल पर आया और सब चमत्कार देखकर आश्चर्य में पड़ गया और विचार करने लगा कि यह राजकुमार चोर नहीं है चोर कोई अन्य व्यक्ति हो सकता है। इतने में प्रभात हो गया और चोर सामने आ गया और बोला कि महाराज मैंने चोरी की राजकुमार ने नहीं, चोरी करके मैं जब राजमहल से गुजर रहा था तब कोतवाल ने मुझे देख लिया और मेरा पीछा किए हुए दौड़ता चला आ रहा था तब मैंने अपना जीवन बचाने के लिए उस हार को राजकुमार वारिसेन को ध्यानस्थ खड़े देखकर कुमार के पास हार डाल दिया और मैं आगे जाकर वृक्ष की छाया में छिप गया। इसके पश्चात् राजा श्रेणिक ने राजकुमार वारिसेन से क्षमा माँगी कि बेटा मेरी गलती को माफ करो और अपने राजपाट को सम्हालो परन्तु राजकुमार वारिसेन ने प्रतिज्ञा की कि मैं अब इस थाली में भोजन नहीं करूँगा अब भोजन में पाणि पात्र में ही करूँगा। सब परिवार व अपनी स्त्रियों से आज्ञा लेकर व माता-पिता से आज्ञा लेकर वारिसेन राजकुमार ने वन में विराजमान सुदत्ताचार्य के पास जाकर मुनि दीक्षा ले ली।

एक दिन वारिसेन मुनिराज अपने पुराने मित्र पुष्पडाल के घर पर आहार करने के निमित्त गये तब पुष्पडाल ने महाराज को पड़गाहा और आहार दान दिया। आहार होने के पश्चात् वारिसेन महाराज को पहुंचाने के निमित्त पुष्पडाल कमण्डल हाथ में लेकर मुनिराज के पीछे-पीछे जा रहा था और पुष्पडाल कहता जाता था कि महाराज यह वही क्षेत्र है जहाँ पर मैं और आप धान में पानी दिया करते थे पुनः कहने लगा कि यह वही खेत है कि जहाँ पर हम और तुम गाय खेदने को आया करते थे। पुनः कुछ आगे चलकर कहने लगा कि महाराज यह वही बावड़ी है कि जिसमें हम और तुम स्नान किया करते थे। इतना कहने पर भी वारिसेन महाराज ने लक्ष्य नहीं दिया वे पीछे की ओर नहीं देखते हुए चलते ही रहे पुष्पडाल विचार करता था कि अब आज्ञा दे देवें तो मैं अपने घर चला जाऊँ परन्तु वारिसेन महाराज ने आज्ञा नहीं दी वे अपने गुरु के पास जाकर कहने लगे कि महाराज यह संसार भोगों से विरक्त होकर जिन दीक्षा लेने के लिए आया है सो इसको दीक्षा दे दीजिए इसको भी अपना शिष्य बना लीजिए। तब पुष्पडाल से महाराज ने पूछा कि तुमको जिन दीक्षा लेनी है क्या ? तब पुष्पडाल विचार करने लगा कि अब अपने मित्र की बात

भी टाली नहीं जा सकती है यह सोचकर पुष्पडाल ने कहा कि हाँ महाराज जो वारिसेन महाराज ने कहा है वह सत्य है मुझे दीक्षा दे दीजिए। यह सुनकर मुनिराज ने पुष्पडाल को मुनि दीक्षा दे दी। पुष्पडाल और वारिसेन अपने गुरु सुदत्ताचार्य के साथ रहने लगे और देश देशान्तर में तीर्थ क्षेत्रों की वंदना के निमित्त निकले और जगह-२ भ्रमण कर बारह वर्ष में राजगृही के पास जंगल में लौटकर आए तब तक पुष्पडाल विचार करता रहा कि मेरी भामिनी कैसे रहती होगी कैसी उसकी व्यवस्था होगी क्या करती होगी मैं बिना कहे ही निकल आया वह मेरे बिना मेरे वियोग में अपना समय कैसे बिताती होगी जहाँ पर मुनि संघ ठहरा हुआ था वहाँ से पुष्पडाल अपने ग्राम की तरफ जाने को सन्मुख हुआ था। तब वारिसेन महाराज ने देख लिया और वे कहने लगे कि अरे पुष्पडाल तैंने द्रव्य लिंग को धारण कर बारह वर्ष उस गजदंता एक नयनी के ध्यान में सारा समय खो दिया। चल अब राजगृह में वारिसेन और पुष्पडाल दोनों ही राजगृह नगरी में पहुँचे और राजमहल में रानी चेलना को समाचार दिया कि वारिसेन मुनि तथा पुष्पडाल मुनि राजमहल में आ रहे हैं यहसुनकर महारानी चेलना ने विचार किया कि आज मेरा बेटा क्या पद से च्युत हो गया है जो कि राजमहल में आ रहा है उसने तुरन्त ही दो सिंहासन लगवाए जिसमें एक सुवर्णमयी था दूसरा लकड़ी का था। वारिसेन महाराज लकड़ी के सिंहासन पर जा आरूढ़ हुए पुष्पडाल सोने के सिंहासन पर आकर बैठ गये। माता ने उसी क्षण विचार किया कि मेरा बेटा स्थान पतित नहीं है। पुनः अपनी माता को पास में बुलाकर कहा कि हे माता तुम अपनी बत्तीश बहुओं को कहो कि वे सब अपने-अपने आभूषण और वस्त्र पहन शृंगार कर आवें तथा पुष्पडाल की स्त्री को भी बुलाओ और कहो कि सब वस्त्राभूषण पहन कर आवे व शृंगार कर शीघ्र ही आवे यह सुनकर चेलना रानी ने अपनी पुत्र वधुओं को आज्ञा दी कि सब बहुयें अपना-अपना सब श्रंगार कर वहां चले जहां पर श्री वारिसेन महाराज व पुष्पडाल बैठे हुए हैं। सब रनिवास की रानियां सज धज के आ गईं तथा पुष्पडाल की स्त्री भी आ गई तब वारिसेन महाराज बोले कि हे पुष्पडाल देख तेरी स्त्री जिसका तू बारह वर्ष से ध्यान कर रहा था देख जिनका मैंने त्याग किया है उनके पैर का धोवन भी तेरी स्त्री नहीं यदि है तो कह? यह सुनकर पुष्पडाल की स्त्री कहने लगी कि इसमोह को धिक्कारहो। तबवारिसेन महाराज बोले की जिस प्रकार तू निरंतर स्त्री का ध्यान करता रहा उसी प्रकार एक चित्त होकर संयम में रत होता तो तेरे को ऋद्धि नहीं प्राप्त हो जाती। पुनः पुष्पडाल की स्त्री कहने लगी कि तुमने जैसा मेरा ध्यान किया वैसा ध्यान यदि आप अपने आत्म ध्यान व संयम में लगाते तो तुम्हारा कल्याण हो जाता (आह मोह की महिमा) आप सरीखा मोही और कौन होगा। इस प्रकार समझाने पर पुष्पडाल शीघ्र ही राजभवन से निकल कर घोर तपस्या करने लगा और तप के प्रभाव से ऋद्धि की प्राप्ति हुई इस प्रकार स्थितिकरण अंग में वारिसेन मुनिराज ने पुष्पडाल को चारित्र में दृढ़ किया।

स्थिति करण अंग में वारिसेन मुनि की कथा समाप्त

पंच स्थावराणां च विकवेन्द्रियासंज्ञि पचेन्द्रियाणां ॥
मिथ्यात्वं खलु नित्यं अपर्याप्तक तिर्यश्चानां ॥३९४॥

पृथ्वीकायक जलकायक अग्निकायक वायुकायक वनस्पतिकायक जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में एक मिथ्यात्व ही रहता है। गुणस्थान प्रथम ही होता है दो-इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इंद्रिय असेनी पंचेन्द्रिय इनके पर्याप्त अपर्याप्त निवृत्ति पर्याप्तक तीनों अवस्थाओं में एक मिथ्यात्व कर्म का उदय रहता है व मिथ्यात्व गुणस्थान होता है इन जीवों के सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण पहले कह आये हैं कि पर्याप्तक संकलेन्द्रिय समनस्क साकार निराकार दोनों उपयोगों से युक्त जीवों के सम्यक्त्व की उत्पत्ति कह आये सेनी पंचेन्द्रिय त्रियंच जीव के पर्याप्त अवस्था में ही प्रथमोपसमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ॥ ३९४ ॥

पंचेन्द्रियाणांतयः सम्यक्त्वं च भवति मिथ्यात्वं।
इन्द्रिय व्याघारात् व्यपगतानां खलु क्षयकम् ॥३९५॥

सैनी चारोंगति वाले पंचेन्द्रिय जीवों के मिथ्यात्व तथा उपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व है। विशेष यह है कि पंचेन्द्रिय जीवों के प्रथमोपशम सम्यक्त्व पर्याप्त अवस्था में ही होता है अपर्याप्त अवस्था में उत्पन्न नहीं होता है।

परन्तु क्षायक या क्षयोपशमिक सम्यक्त्व जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों ही दशायें होती हैं परन्तु द्रव्य स्त्रियों के पर्याप्त अवस्थायें उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है क्षायक सम्यक्त्व नहीं होता है। इन्द्रिय व्यापार से रहित जीवों के एक क्षायक सम्यक्त्व ही होता है क्योंकि सयोगी और अयोगी केवली और सिद्धपरमात्मा के एक क्षायक ही सम्यक्त्व होता है ॥ ३९५ ॥

देव नारकयोश्चतुः पंचेन्द्रितत्रियश्चां पंचैव ॥
मनुष्याणां चतुदर्श गुणास्थानं खलु निर्दिष्टम् ॥३९६॥

देव तथा नारकी गति वाले जीवों में प्रथम के चार गुण स्थान होते हैं सैनी सकलेन्द्रिय त्रियंच जीवों के देश संयत नाम के पांचवे गुण स्थान तक होते हैं मनुष्यों के मिथ्यात्व से लेकर अयोग केवली पर्याप्त सब गुणस्थान होते हैं। देवियों के चार गुण स्थान व तिर्यंचिनियों के पांच गुण स्थान तथा द्रव्य स्त्री मनुष्यनियों के पहले से लेकर पांचवे संयमासंयम गुणस्थान होते हैं। तथा भाव स्त्रीवेदी जीवों के अनिवृत्त करण तक नौ गुण स्थान होते हैं। तथा भोगभूमिया मनुष्य व त्रियंचों व त्रियंचिनियों के पहले से लेकर अविरत संयम तक चार गुण स्थान होते हैं। सम्यक्त्व सहित मनुष्यों के चौदह गुण स्थान होते हैं मिथ्यात्व सहितों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है।

इस श्लोक में यह स्पष्ट करा दिया गया है कि सम्यक्त्व को प्राप्त त्रियंचिनी भी संयमासंयम को प्राप्त स्त्री पांचवे गुण स्थान को प्राप्त होती है यह सब महिमा सम्यक्त्व की है। सम्यग्दृष्टि जीव ही सकल निकल परमात्म पद को प्राप्त होते हैं। ३९६॥

स्थावरेषु मिथ्यात्वं त्रशकाये त्रयोदश गुणस्थानम् ॥
द्रव्यवेदे त्रयोदश भाववेदेच नव स्थानम् ॥ ३९७॥

पांच प्रकार के स्थावरों में एक मिथ्यात्व ही गुण स्थान पाया जाता है त्रशकायकों में तेरह गुण स्थान होते हैं। मिथ्यात्व से लेकर सयोग केवली पर्यन्त तेरह गुण स्थान होते हैं। तथा द्रव्य वेद पुरुष वेद में तेरह गुण स्थान होते हैं भाववेद से मिथ्यात्व से लेकर व्ययगत वेद अनिवृत्ति करण के भाग तक जो गुण स्थान होते है यथा पुरुष वेद वाले मिथ्यात्व से लेकर अनिवृत्त करण तक के गुणस्थान होते हैं। द्रव्यस्त्री वेद वाली के मिथ्यात्व से लेकर संपता संपत तक पांच गुण स्थान होते हैं। नपुंसक द्रव्यवेद वाले के चार गुण स्थान होते हैं। उदय की उपेक्षा वेद मिथ्यात्व से लेकर नोवें गुण स्थान पर्यन्त होते हैं। ३९७।

त्रियोगेषु त्रिविधं च सन्ति त्रयोदश स्थानान्यैव।
त्रिवेदेषु नवव्यपगत वेदेषु पंच विख्यातं च ॥ ३९८ ॥

मन वचन काय तीनों योगों में मिथ्यात्व से लेकर सयोग केवली पर्यन्त तेरह गुण स्थान होते हैं पहले गुण स्थान में एक मिथ्यात्व ही होता है दूसरे में सासादन तीसरे गुण स्थान में मिश्र सम्यक्त्व होता है चौथे से लेकर सातवे गुण स्थान तक तीनों सम्यक्त्व होते हैं आठवे से ग्यारहवें गुण स्थान तक के जीवों के द्वितीयोपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व होते हैं। तथा क्षीण मोह सयोगी अयोग केवली के एक क्षायक सम्यक्त्व होता है तथा सिद्ध भगवान के भी क्षायक सम्यक्त्व होता है।

विशेष यह है कि सत्य मनोयोग और सत्य वचन योग वाले जीवों के तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं। यथा असत्य मन वचन योगियों के तीनों सम्यक्त्व होते हैं। यथा औदारिक काययोग में मिथ्यात्व से लेकर संयोग केवली गुण स्थान तक सब होते हैं तथा तीनों सम्यक्त्व होते हैं तथा छहों भी होते हैं। औदारिक मिश्र में गुण स्थान पहला दूसरा चौथा तथा सयोग केवली ये चार गुण स्थान तथा सम्यक्त्व क्षयोपशम और क्षायक दो ही होते हैं। क्योंकि मिश्र अवस्था में उपशम सम्यक्त्व नहीं होता है वहां पर अपर्याप्त अवस्था विशेष है। उपशम सम्यक्त्व पर्याप्त अवस्था में ही होता है। वैक्रियक काय योग में तीनों हीं सम्यक्त्व तथा छहों सम्यक्त्व गुण स्थान पहला दूसरा तीसरा चौथा ये चार होते हैं उपशम क्षयोपशम क्षायक मिश्र सासादन और मिथ्यात्व सब होते हैं। वैक्रियक मिश्र में गुण स्थान तीन होते हैं। मिथ्यात्व सासादन और असंयत ये गुण स्थान होते हैं तथा सम्यक्त्व तीनों ही होते हैं। विशेष यह है कि वैक्रियक मिश्र में उपशम सम्यक्त्व भी पाया जाता है उसका कारण यह है कि कोई उपशम श्रेणी में चढ़ा और बीच में ही मरण को प्राप्त हुआ। उपशम श्रेणी का काल अन्तर्मुहूर्त का हैं परन्तु उस जीव ने एक समय में ही देवगति को प्राप्त कर लिया जिससे मिश्र अवस्था में देवों के अपर्याप्त अवस्था में उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। आहारक का एक प्रमत्त ही गुण स्थान है इसमें क्षायक तथा क्षयोशमोपशमिक ये दो सम्यक्त्व पाये जाते हैं। तथा आहारक मिश्र में भी जानना चाहिये। कार्माण योग में पहला दूसरा तथा चौथा और सयोग केवली ये चार गुण स्थान होते हैं। तथा उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों में ही सम्यक्त्व होते हैं।

कार्माण योग में मिश्र गुण स्थान नहीं होता है क्योंकि मरण का अभाव है नवीन कर्मों का वन्ध ही होता है न आयु का वन्ध हो होता है। भाववेद में गुण स्थान अनिवृत्त करण तक नौ होते हैं उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं इसी प्रकार स्त्री वेद पुरुष वेद नपुंसक वेदों में जानना चाहिये। वेद रहित सूक्ष्म सांपराय से लेकर अयोग केवली गुण स्थान जानना अपगत वेद वाले जीवों के उपशम तथा क्षायक सम्यक्त्व होते हैं। ३६८।

कषायेषु त्रिसम्यक नव स्थाने दशैव सूक्ष्मलोभः
शेषः स्थानमकषायं त्रियज्ञाने मिथ्यात्वमेव ॥ ३६९ ॥

संज्वलन नों कषायों के उदय में सांपराय नामक नोवां गुणस्थान होता है परन्तु लोभ कषाण में दश गुण स्थान होते हैं आगे के गुण स्थानों में कषायें व नो कषायें नहीं रह जाती। विशेष यह है कि अन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनका उदय (चौथे गुण स्थान तक पाया जाता है) मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थान पाये जाते है तथा एक मिथ्यात्व रहता है सासादनों सम्यक्त्व एक रहता है अप्रत्याख्यान के उदय में मिश्र तथा असंयत ऐसा चौथा गुण स्थान होता है प्रत्याख्यान के उदय में संयमासंयम होता है। असंयम गुण स्थान में उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों सम्यक्त्व होता हैं इसी प्रकार आगे के पंच में गुण स्थान में सम्यक्त्व तीनों होते हैं संज्वलन क्रोध, मान माया, लोभ इनके उदय में छठवे से लेकर नोवें गुण स्थान तक होते हैं छठवे में तीनों सम्यक्त्व तथा (सातवें अपूर्व करण में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तथा क्षायक सम्यक्त्व तथा नोवें में भी वे ही होते हैं दशवां गुण स्थान लोभ कषाय के उदय में होता है इसमें भी क्षायक और औपशमिक सम्यक्त्व होते हैं तथा आगे के गुणस्थान कषाय रहित हैं। मिथ्यात्व के साथ होने वाले कुमति कुश्रुति विभंगावधि ज्ञान ये तीनों मिथ्या ज्ञान हैं एक मिथ्यात्व नामक प्रथम गुण स्थान में ही होता हैं। तथा सासादन में भी पाया जाता है। ३९९

मतिश्रुतावधिश्च तनःपर्ययेषु त्रियसम्यक्त्वमेव ॥
चबुधन्ते क्षीणमोह केवले क्षायकं सम्यक्त्वम् ॥ ४०० ॥

मति ज्ञान श्रुत ज्ञान अवधिज्ञान क्रमशः चौथे गुण स्थानसे लेकर वारहवे गुण स्थान क्षीण मोह तक होते हैं। विशेष यह है कि मति श्रुत अवधि ज्ञान चौथे से उत्पन्न होते हैं और क्षीण मोह तक रहते हैं इनमें तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते हैं परन्तु मनःपर्यय छठवें गुण स्थान में विशेष चारित्र व ऋद्धि के धारक मुनि होता है और क्षीण मोह गुणस्थान तक योगियों के ही होता है अन्य के नहीं। चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक तीनों सम्यक्त्व होते हैं सातवें से लेकर क्षीण मोह तक दो ही सम्यक्त्व होते हैं उपशम या क्षायक परन्तु क्षीण मोह में एक क्षायक सम्यक्त्व ही होता हैं संयोग केवली अयोग केवली गुण स्थान में एक केवल ज्ञान और क्षायक सम्यक्त्व होता है मनःपर्यय ज्ञान मिथ्यात्व सासादन मिश्र असंयत संयतासंयत इन गुणस्थानों में नहीं उत्पन्न होता है वह तो प्रमत्त नाम के छठवें व अप्रमत्त नाम के सातवें गुण स्थान वाले मुनियों के उत्पन्न होता है और वारहवें गुण स्थान क्षीण मोह तक वाले जीवों के पाया जाता है जिसमें ऋजुमति वाले जीवों के तो तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते है परन्तु

विपुल मती के क्षायक एक ही सम्यक्त्व पाया जाता है। यह क्षायक सम्यग्दृष्टि के होकर केवल ज्ञान होने तक जीव के साथ बना रहता है परन्तु ऋजुमती मनःपर्यय ज्ञान उपशम सम्यक्त्व क्षयोपसम सम्यक्त्व द्वितीयोपशम क्षायक सम्यक्त्व वालों के होता है जिससे सम्यक्त्व के नाश होने के साथ ही ऋजुमती ज्ञान का भी नाश हो जाता है। उपशम श्रेणी चढ़ने वाले द्वितीयोपशम करने जीव के जो ऋजुमती ज्ञान होता है वह ग्यारहवें गुण स्थान में पहुंच कर सम्यक्त्व व चारित्र से भ्रष्ट होता है तब वह ज्ञान भी भ्रष्ट हो जाता है। केवल ज्ञान में दो गुणस्थान होते हैं सयोग केवली अयोग केवली तथा सिद्ध भगवान के गुण स्थान तीन होते हैं। उनके एक क्षायक सम्यक्त्व ही सास्वत विराजमान रहता है।

प्रमत्ताद्यानिवृत्ते च सामायकं प्रमत्ताप्रमत्ते च
परिहार विशुद्धिश्च क्षेदोपस्थाने त्रिद्विच ।४०१॥

प्रमत्त गुण स्थान से लेकर अनिवृत्ति करण पर्यन्त चार गुण स्थानों में सामायिक चारित्र होता है परिहार विशुद्धि चारित्र प्रमत्त और अप्रमत्त दो गुण स्थानों में होता है तथा क्षेदोपस्थापन चारित्र भी प्रमत्त और अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तकरण गुणस्थानों में होता है। सामायिक चारित्र में तीनों सम्यक्त्व होते है परिहार विशुद्धि वाले जीव के क्षयोपशम या क्षायक दो ही सम्यक्त्व होते हैं तथा क्षेदोपस्थापन चारित्र में उपशम क्षयोपशम और क्षायक तीनों सम्यक्त्व पाये जाते है तथा आठवें नौवें गुणस्थान की अपेक्षा उपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व पाये जाते हैं।४०१।

सूक्ष्मसांपराये वा यथाख्याते द्विसम्यक्त्वं नित्यम्॥
संयमासंयमेकं गुणस्थाने त्रय सम्यक्त्वं॥ ४०२॥

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान में एक सूक्ष्म सांपराय चारित्र है तथा उपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व होते हैं यथाख्यात चारित्र में दो सम्यक्त्व होते हैं एक उपशमसम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व होते हैं यथाख्यात चारित्र में चार गुण स्थान होते हैं। उपशांत मोह वाले जीवों के क्षायक सम्यक्त्व तथा उपशम सम्यक्त्व ये दोनों है परन्तु क्षीण मोहादि में एक क्षायिक सम्यक्त्व होता है संयतासंयत संयतों में एक गुणस्थान है इस गुणस्थान में तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं परन्तु संयतासंयत का काल बहुत होता है इसलिये वेदक व क्षायक दोनों सम्यक्त्व होते हैं।४०२।

मिथ्यात्वादीनि त्रयोवर्ज्य चक्ष्वचक्ष्ववधिदर्शने॥
प्रागसंयतस्थाने क्षीणमोहान्न नव सम्यक्त्रि॥ ४०३॥

आगे के मिथ्यात्व सासादन मिश्र इनको छोड़कर शेष नो गुणस्थानों में चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन अवधिदर्शन होते हैं इन तीनों दर्शनों में उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं। चौथे से लेकर सातवें में गुणस्थान पर्यन्त प्रथमोपशम सातवें से द्वितियोपशम सम्यक्त्व ग्यारहवे गुणस्थान तक होता है तथा चौथे से लेकर सातवें तक वेदक सम्यक्त्व है तथा क्षायक सम्यक्त्व चोथेगुणस्थान से लेकर बारहवें क्षीणमोह तक जीवों के होता है।४०३।

स अयोग केवलयो दर्शनमेकं क्षायकं सम्यक्त्वं॥
कृष्णनीलकापोते स्थानं चतुवयःसम्यक्त्वं॥ ४०४॥

सयोग केवली और अयोग केवली जीवों के एक केवल दर्शन और क्षायक सम्यक्त्व अवगाढ़ रूप होता है यथा सिद्धभगवान के भी ये दोनों ही रहते हैं। कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले जीवों के पहले गुणस्थान से लेकर चौथे गुणस्थान तक होते हैं। इन तीनों लेश्या वालों के मिथ्यात्व के उदय में मिथ्यात्व कषाय के उदय में सासादन तथा मिश्र मोह के उदय में मिश्र सम्यक्त्व होते हैं। परन्तु असंयत गुणस्थान की अपेक्षा से इन तीनों लेश्याओं में तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं क्योंकि तीनों लेश्यायें भव्य और अभव्य दोनों के पाई जाती हैं। ४०४।

अप्रमत्तान्तानि पीत पद्मेच शुक्ले त्रयोनशस्थानं।
सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे लेश्या वज्ययपोनिनश्च॥ ४०५।

प्रथम पीतलेश्या और पद्मलेश्या मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त वाले तक जीवों के निरन्तर रहा करती है आगे के गुण स्थानों में नहीं इन लेश्यावाले जीवों के छहों सम्यक्त्वादि होते हैं छहों का कहने का तात्पर्य यह है आगे गुण स्थान अपने-अपने भावानुसार होते हैं परन्तु चौथे से सातवे तक के जीवों के तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। आगे शुक्ललेश्या वाले जीवों के गुणस्थान तेरह होते हैं मिथ्यात्व, सासादन, सम्यक्त्व मिश्र, सम्यक्त्व उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुण स्थान पर्यन्त तीनों ही सम्यक्त्व होते है अपूर्वकरण में द्वितीयोपशम और क्षायक दो सम्यक्त्व होते हैं वे दोनों सम्यक्त्व उपशांत मोह गुण स्थान तक रहते हैं आगे क्षीणमोह सयोग केवली गुण स्थान में एक क्षायक सम्यक्त्व रहता है तथा अयोग केवली के लेश्या नहीं होती हैं सिद्ध भगवान के अलेश्या एक क्षायक सम्यक्त्व ही होता है। ४०५।

भव्येसर्वस्थानं सकलं सम्यक्त्वादि भवन्ति सदा।
अभव्येमिथ्यात्वमेव न सम्यक्त्व कदालभ्यते॥ ४०६॥

भव्यजीवों में चौदह गुणस्थान होते हैं। मिथ्यात्व से लेकर अयोगी पर्यन्त चौदह गुणस्थान होते हैं और अभव्य जीवों के एक मिथ्यात्व गुणस्थान और एक मिथ्यात्व ही रहता है। भव्य जीवों के मिथ्यात्व सासादन मिश्र असंयतादि गुणस्थानों में प्रथम में मिथ्यात्व दूसरे में सासादन तीसरे में मिश्र चौथे में उपशम क्षयोपशम क्षायक तीनों सम्यक्त्व होते हैं। परन्तु अभव्य जीव के एक मिथ्यात्व ही सास्वत रहता है उसके अनेक वार संयोग मिलने पर भी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता है। जैसे मोठ के अन्दर में छोड़ कर उसको कितती ही उवाल दी जावे तो भी नहीं सीझता है। ४०६।

सम्यक्त्रयेषुयथास्थानं चतु एकादशायोग्यन्नं॥
त्रिद्विचैकं च नित्यं सासादनादीनि स्वस्थानम्॥ ४०७।

उपशम क्षयोपशम क्षायक इन तीनों सम्यक्त्वों में चौथे गुण स्थान से लेकर अप्रमत्त तक चार गुण स्थान होते हैं। द्वितीय उपशम सम्यक्त्व में पाँच गुणस्थान होते हैं अप्रमत्त से लेकर उपशान्त मोह पर्यन्त होते हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व में चार गुण स्थान होते हैं क्षायक सम्यक्त्व में ग्यारह गुण स्थान होते हैं असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर चौदहवे अयोग केवली गुण स्थान तक होते हैं। मिथ्यात्व का एक मिथ्यात्व गुण स्थान है सासादन सम्यक्त्व

का सासादन गुणस्थान है मिश्र सम्यक्त्व का एक मिश्रनामका तीसरा गुण स्थान होता है। तथा गुण स्थानातीत सिद्ध भगवान के एक क्षायक सम्यक्त्व होता है ऐसा सकार से सूचित होता है। प्रथम यकार का यह भी प्रतीति होती है कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथे गुण स्थान से लेकर ग्यारहवे गुण स्थान तक के जीवों के पाया जाता है। ४०७ ॥

क्षीणमोहादीनिखलु स्थानं सम्यक्त्व त्रयानि संज्ञिनां ॥
मिथ्यात्वमेकं स्थानं असंज्ञिनां खलुप्रणीतं ॥ ४०८॥

समनस्क पंचेन्द्रिय जीवों के सामान्य से मिथ्यात्व से लेकर क्षीणमोह नाम के बारहवें गुण स्थान तक होते हैं परन्तु पंचस्थावर व दो तीन कर असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के नियम से एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। तथा उनके तीव्र दर्शन मोह का उदय बना ही रहता है। तथा सैनी जीव के मिथ्यात्व सासादन मिश्र तथा उपशम क्षयोपशम और क्षायक ये सब होते हैं सैनी व असैनी भाव से रहित जीवों के एक क्षायक सम्यक्त्व ही पाया जाता है। ४०८।

आहारकाणामेव सयोगान्तस्थानं सर्वसम्यक् ॥
अनहारकानां मिश्र न त्रयं च सयोगं न प्राक् ॥४०९॥

आहारक अवस्था में जीवों के प्रथम गुणस्थान मिथ्यात्व से लेकर तेरहवें तक तेरह गुणस्थान होते हैं। तथा मिथ्यात्व सासादन सम्यक्त्व मिश्र सम्यक्त्व तथा उपशम क्षयोपशम और क्षायक ये सब होते हैं परन्तु अनाहारकावस्था में एक मिश्र को छोड़कर मिथ्यात्व सासादन असंयत तथा केवली इन चार गुणस्थानों में अनाहारक अवस्था विशेष पायी जाती है। अनाहारक जीव विग्रह गति में होते हैं क्योंकि मरण मिथ्यात्व सासादन और अविरति इन गुणस्थानों में ही नियम से होता है मिश्र गुणस्थान में जीवों का मरण नहीं होता है। अरहंत केवली के जब समुद्घात होता है तब दण्ड कपाट लोक प्रतर और लोक पूर्ण करता है तब जीव अनाहारक होता है अनाहारक अवस्था में मिथ्यात्व सासादन सम्यक्त्व तथा द्वितीयोपशम क्षयोपशम व क्षायक सम्यक्त्व होते हैं। प्राक् के पहले न दिया है उससे यह सूचित होता है कि पहले के मिश्र को छोड़कर तथा तेरहवें गुणस्थान के पहले देश संयत से लेकर क्षीण मोह तक के जीव अनाहारक नहीं हैं। ४०९।

सम्यग्लिंगप्रधानं समृद्धिर्ज्ञान चरित्रयोर्नित्यम् ॥
स एव प्रथमंलिगं न द्रव्यलिंगान् मुक्तिश्च ॥४१०॥

सब लिंगों में भाव लिंग प्रधान है भाव लिंग के बिना द्रव्य लिंग प्रधान नहीं है जब भाव लिंग होता है तभी ज्ञान भी समीचीन होता है और वृद्धि को प्राप्त होता है। जिससे चरित्र की वृद्धि और कर्मों का क्षय व स्वर्ग और मोक्ष जीव को प्राप्त होता है। मात्र द्रव्य शरीर से विरक्त होने रूप नग्न दिगम्बर हो गया व श्रावक के व्रत नियम धारण किये अथवा श्रावक पद को छोड़कर मुनि व्रत को धारण किया तथा सब बाह्य परिग्रह घर खेती स्त्री पुत्र इत्यादि का त्याग कर नग्न हो गया वस्त्र भी त्याग दिये परन्तु अन्तरंग में मिथ्यात्व मोह व कषायें विद्यमान हैं उनका तो त्याग नहीं किया तब भाव कैसे हुआ बिना सम्यक्त्व के मोक्ष नहीं हो सकता है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चरित्र मोक्ष के कारण नहीं होते परन्तु संसार के ही

होते हैं। सब लिंगों में प्रधान लिंग सम्यक्त्व भाव है सम्यक्त्व भाव हो प्रथम लिंग है। जब जिस रूप में अपने भाव परिणमन होंगे उसी प्रकार शुभ अशुभ कर्मों के व शुभ अशुभ गात का आस्रव बंध होता है। आर्त ध्यान व रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान ये सब अपने भावों के ही आश्रित हैं जीव के भाव विभाव रूप हो चेतन, अचेतन द्रव्यों का जैसा संयोग मिलता है वैसा ही जीव का भाव भी परिणमन होता है वह भाव ही कुभाव है और नरक गति, त्रियंच गति का आस्रव और बंध का कारण होता है। जब अपना भाव शुभ रूप से परिणमन करता है तब देव आयु, देव गति का आस्रव बंधक होता है तथा धर्म ध्यान रूप भाव होता है। जब आर्तध्यान व रौद्रध्यान अपने भाव होते हैं उन भावों से युक्त अपने ही संक्लिष्ट परिणाम होते हैं वे अपने ही भाव संसार के भ्रमण व दुःख रूप से अपने अनुभव में आते हैं पर संयोग सम्बन्ध होने वाले भावों को छोड़ देना चाहिए। तथा विभावों का त्याग कर इन्द्रियजनित विषय भोगों को भी पर निमित्तक संयोग रूप जानकर उनमें आशक्ति का त्याग को जानकर उनसे उन्मुख होता है तब अपना परिणाम ही धर्म ध्यान रूप होता है जिससे कल्पवासी या कल्पातीत देव गति आयु का बन्ध करता है। जब अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व क्रोध मान, माया, लोभ नव नो कषायें इन परिग्रहों का त्याग करके संसार शरीर और भोगों से विरक्त परिणाम होता है तब जीव के सम्यक्त्व भाव व संयम होता है और द्रव्यलिंग शरीर, मन, वचन, पंचेन्द्रिय के विषय व्यापार से रहित होता है तब निज द्रव्य काल क्षेत्र भव और भाव में परिणयन करता है तब वह भाव ही सम्यक्त्व, ज्ञान, चरित्र होता हुआ समृद्धि को प्राप्त होता है जब विभावों से उन्मुखपना होवे तब स्वभाव में प्रवृत्ति हो तब जीव की मुक्ति की प्राप्ति हो इसलिए सब में अपना सम्यक्त्व रूप जो भाव है वही भाव प्रधान है वही श्रेष्ठ लिंग है भाव सम्यक्त्व के बिना द्रव्य लिंग का धारण करना सो साधु व श्रावक को मुक्ति का दाता नहीं मुक्ति का कारण तो भाव सहित द्रव्य लिंग का धारण करना ही है एक-एक से मुक्ति की प्राप्ति नहीं।

गुण जो स्वर्ग मोक्ष का होना और दोष जो नरक त्रियंच गति का होना। इनका होना ही भगवान ने अपने परिणामों को ही कहा है क्योंकि जैसा कारण होता है तदरूप कार्य होता है क्योंकि कार्य के पहले कारण होता है। यहां पर मुनि तथा श्रावक के प्रथम में सम्यक्त्व का होना ही प्रधान भाव लिंग है इस जगत में जीवादि छह द्रव्यें हैं उनमें से जीव तथा पुद्गल परिणमन शील हैं इन दोनों में स्वभाव परिणमन तथा विभाव परिणमन करते हुए दिखाई देते हैं जीव का स्वभाव परिणमन ज्ञान दर्शन में होता है तथा चित् स्वभाव है तथा पुद्गल में रूप, रस, गंध, स्पर्श ये स्वभाव हैं गुण हैं इनको छोड़कर अन्य रूप से रूपान्तर गंध से गंधान्तर रस से रसान्तर स्पर्श से स्पर्शान्तर होना सो स्वभाव परिणमन है यह पुद्गल द्रव्य अचेतन है अचेतन का अचेतन में ही परिणमन होता है चेतन में नहीं। चेतन का चेतन में ही परिणमन होता है अचेतन मे नहीं। ज्ञान का परिणमन ज्ञान में ही होता है दर्शन का परिणमन् दर्शन में ही होता है। परमाणु से द्विअणुक स्कन्ध होना संख्यात असंख्यात पुद्गल का एकत्र हो पिण्ड बन जाना सो ही विभाव भाव हैं। जीव का विभाव भाव रंग, द्वेष, मोह

रूप से परिणमन होना सो विभाव भाव हैं तथा ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से जो भाव होते हैं वे भी विभाव स्वभाव हैं।

जिन पुद्गल द्रव्यों का निमित्त पाकर जीव के जो राग, द्वेष, मोह, माया, ईर्षा मत्सर क्रोध, मान, माया, लोभ तथा स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, करण, इन्द्रिय के विषयों में प्रवृत्ति का होना तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, मन, वचन, काय के योग से सुख दुःख रूप परिणमन होना पर को अपना मानना तथा शरीर को अपना स्वभाव मान राग और द्वेष रूप परिणामों का होना ही जीव का विभाव भाव है। अथवा शरीर के विनाश व उत्पत्ति भी विभाव हैं नरक, देव, त्रियंच, मनुष्य ये गतियाँ भी स्वभाव नहीं ये भी परसंयोगी भाव ही हैं। इसलिए जीव को उपदेश है कि स्वभाव भाव रहना नैमित्तिक भाव रूप न प्रवंतने का है। जीव के पुद्गल द्रव्य कर्म के संयोग से व नौकर्म का सम्वन्ध है इन वाह्य शरीरादिक को द्रव्य कहते हैं अपने भाव के अनुसार ही द्रव्य कर्मों की प्रवृत्ति होती है। द्रव्य कर्म ज्ञानावरण दर्शनावरणादिक हैं इस प्रकार द्रव्य की प्रवृत्ति होती है। इन द्रव्य और भाव का स्वरूप जानकर स्वभाव के परिणमन करने का उपदेश है विभाव भावों में परिणमन करना योग्य नहीं। जव विभावों को हेय जान स्वभाव को उपादेय जान प्रवृत्ते तव स्वभाव रूप परमानन्द सुख की प्राप्ति होवे। पहले कहे गये राग, द्वेष सव ही विभाव हैं पर द्रव्य के संगोग से प्राप्त हैं और संसार वृद्धि के कारण हैं।

ग्रन्थकार कहते हैं कि यदि अपने आत्मा को शुद्ध भावयुक्त करना चाहते हो तो अपने विभावों का हमें त्यागकर अपने आत्मा के साथ वात्सल्य भाव को धारण करना चाहिये। क्योंकि जीव आप अपने स्वभाव से वात्सल्य न कर पर भावों से वात्सल्य करता हुआ अनादि काल से चला आ रहा है इसीलिए इसके कुभाव भाव हो रहे हैं। जव कर्म कर्मफल रूप विभाव है वे पर संयोगी कर्मों के विपाक से होने वाले भावों का त्याग करें तव कार्य वने, मोक्ष सुख की प्राप्ति हो, जीवों को कर्म सुख दुःख देने में कुछ भी कारण नहीं, परन्तु कर्मों का विपाक काल का निमित्त मिलने पर जीव अपने भावों से अपने को सुखी व दुःखी अनुभव करता है। जव कि स्वभाव तो ज्ञान दर्शन है रस, गंधादि पुद्गल के स्वभाव गुण हैं तथा स्कन्धदि विभाव हैं। उनमें जीव का हित अहित भाव प्रधान है वाह्य द्रव्य निमित्त मात्र है विना उपादान के यह निमित्त कुछ भी कार्यकारी नहीं है। यह तो सामान्य रूप से स्वभाव का स्वरूप है। इसी का विशेष सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र तो जीव का स्वभाव है इनमें भी सम्यग्दर्शन भाव है क्योंकि सम्यक्त्व के विना वाह्य क्रिया व ज्ञान सव ही मिथ्या है क्योंकि भाव के विना क्रिया फल देने में समर्थ नहीं होती हैं वह ज्ञान क्रिया ही सव संसार वृद्धि के साधन होगी ऐसा जानना चाहिये।

आगे वात्सल्य अंग में प्रधान श्री विष्णुकुमार मुनि की कथा

अवन्ती देश में विशाला नाम की एक विशाल नगरी थी उसमें जयवर्धन नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के दरवार में चार मन्त्री थे उनका नाम शुक्र, वृहस्पति प्रहलाद और वलि था ये मन्त्री व्राह्मण थे। शुक्र वौद्ध दर्शन का एक उच्च विद्वान था, वृह-

स्पति चार्वाक दर्शन का पारगामी था, प्रह्लाद शिव मत में प्रधान था तथा बलि वेदों में पारांगत था। एक दिन सर्व श्रुत पारांगत अकंपनाचार्य अपने ७०० सौ मुनि संघ सहित विशाला नगरी के सर्व जनानन्दन नाम के उद्यान में आकर ठहरे हुए थे। नगरवासी श्रावकों को मुनि संघ का समाचार प्राप्त हुआ और सब श्रावक मुनि संघ की पूजा व दर्शन करने के लिए उद्यान की तरफ जा रहे थे। जो राज मार्ग व राज महल के निकट में हो था। राजा का राजमहल बहुत ऊँचा गगनचुम्बी महल के ऊपर से सब श्रावकों को जाते हुए देख कर विचार करने लगा कि असमय में श्रावक लोग पूजा की वस्तुयें लेकर उद्यान की तरफ क्यों जा रहे हैं।

कुछ ही अर्सा बीता था कि छहों ऋतुओं के फल फूल लेकर माली आया और राजा को प्रणाम कर पुष्प फल भेंट किये और शुभ सूचना दी कि उद्यान में श्री परम पूज्य अकम्पनाचार्य महाराज सात सौ मुनि संघ सहित पधारे हैं। उनके प्रभाव से छहों ऋतुओं के फल फूल आने लगे हैं वे सब जीवों को आनन्द देने वाले तथा अपने वचनामृत से चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करने वाले हैं उन्हीं की कृपा व तप के प्रभाव से उद्यान नन्दन वन बन गया है। उनकी उपासना के लिए उज्जयनी नगरवासियों का उत्साह उमड़ रहा है। यह सुन कर राजा का भी भाव हुआ कि मुनिराज के दर्शन करूं। राजा ने मुनिराज के दर्शनार्थ चलने के लिए चारों मन्त्रियों से पूछा। तब प्रथम में सच्चे धर्म की धुरा को उखाड़ फेंकने में चतुर वलि बोला कि हे राजन्! वेद से बढ़कर दूसरा कोई तत्व नहीं है श्राद्ध से बढ़कर कोई विधि नहीं है यज्ञ से बढ़कर दूसरा कोई मोक्ष का देने वाला धर्म नहीं है तत्पश्चात समीचीन सन्मार्ग का विनाशक प्रह्लाद बोला—अद्वैत से बढ़कर उत्कृष्ट दूसरा कोई तत्त्व नहीं है। शंकर से बढ़कर कोई देवता नहीं है। और शैव शास्त्र से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं हैं जो भुक्ति और मुक्ति को देने वाला हो।

नास्तिक शिरोमणि शुक्र और बृहस्पति ने भी अपने अपने मत प्रकाशित किये तथा अपने धर्मों की प्रशंसा की। तव थोड़ा क्षुब्ध होकर राजा बोला अहो दुर्जन रूपी लता के आधार भूत द्विज वृक्ष क्या मेरे ही सामने आप की जबान चलती है या विद्वानों के सामने भी बोल सकते हो?

वलि उवाच—राजन यदि हमारी बुद्धि वैशिष्ठ के विषय में आपके मन में ईर्ष्या है इसलिए आप ऐसा वचन कहते हैं। तो समस्त शास्त्रों में प्रवीण विद्वान की तो बात ही क्या यदि सर्वज्ञ आजावें तो भी हम हारने वाले नहीं उसके सामने भी हमारी विद्या निर्दोष ही ठहरेगी।

नृप उवाच—यह सुनकर राजा कहने लगा कि जितना मान तुम करते हो इसकी परीक्षा अवश्य हो जाएगी कि कौन सूरवीर है कौन कायर यह पहचान तो समर भूमि में ही हो सकती है। ऐसा कहकर उस स्थिर स्वभाव वाले राजा ने नगरी में आनन्द सूचक भेरी वजवा दी उसको सुनकर सब परिवार पूजा की सामग्री लेकर आगये तब राजा विजयशेखर हाथी पर सवार हो वंदना करने को उद्यान की ओर चल दिया और नगरी के वाहर उद्यान में सीमा के

वाहर ही हाथी से उतर कर अपने अपने परिवार को प्राप्त पुरुषों के साथ आचार्य महाराज के समीप जाकर स्तवन व पूजा कर वैठ गया। और विनय सहित धर्म का स्वरूप पूछा तथा स्वर्ग और मोक्ष का स्वरूप वूझा कि भगवान मोक्ष का क्या स्वरूप है और उसकी प्राप्ति का क्या उपाय है ऐसी प्रार्थना करके चुप हो गया। आचार्य ने स्वर्ग और मोक्ष का स्वरूप कहा तथा धर्म की चर्चा करने लगे तव वलि वोला कि स्वर्ग और मोक्ष का आप स्वामी दुराग्रह क्यों करते हैं। वारह वर्ष की स्त्री और सोलह वर्ष का पुरुष का परस्पर में जो प्रेम रस उत्पन्न होता है उसे प्रीति कहते हैं यह प्रीति ही साक्षात् स्वर्ग है उसे भिन्न कोई अदृश्य स्वर्ग नहीं है। आचार्य क्या एक प्रत्यक्षप्रमाण ही है ? हां समस्त श्रुत रूपी पृथ्वी का उद्धार करने वाले आदि पुरुष के तुल्य विद्वान् महात्मन् एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण हैं।

आचार्य—तव हम पूछते हैं कि तुम्हारे माता पिता ने विवाह किया था इत्यादि का क्या प्रमाण है ? और तुम्हारे पूर्व पुरुष थे इसका क्या कुछ प्रमाण है ? यदि कहोगे कि जो वस्तुयें हमारे प्रत्यक्ष में नहीं हैं उनको हम प्रमाणिक पुरुषों के कथन से मानते हैं तो तुम्हारे पक्ष का ही-ह्रास होगा और हमारे पक्ष की पुष्टि होगी। इस उत्तर को सुनकर वलि संकट में पड़ गया और सदस्यों के लिए प्रीतिकर उत्तर न सूझने पर भण्ड वचनों का प्रयोग करने लगा। यह देखकर राजा की आंखें शर्म से नीची हो गई परन्तु प्रति उत्तर नहीं दिया। क्योंकि प्रतिष्ठा के भंग होने के भय से राजा ने मुनियों के सामने मंत्रियों से कुछ भी नहीं कहा और वोला कि भगवान् जिसका चित्त मोह से अंध हो रहा है जो समीचीन धर्म को विध्वंस करने में समर्थ हो रहा है जो वर्तमान तत्त्वों से ही संवंध रखता है उस पुरुष के पास मेरु के समान स्थिर आप सरीखे गुरुओं का अपवाद करने के सिवा दूसरा हथियार ही क्या हो सकता है।

(टिप्पणी)

अन्य पुस्तकों में यह कथा इस प्रकार भी कही गई है कि राजा जव दर्शन करने को आ रहा था उससे पहले अकंपनाचार्य ने अपने शिष्य वर्ग को सूचना दे दी कि यहाँ के राजा के मंत्री मिथ्यादृष्टि हैं तथा विद्या मद में चूर हो रहे हैं इसलिए राजा के आने पर सव मौन से रहें राजा भी मंत्रियों सहित दर्शन करने के लिए गया सव को नमस्कार किया आशीर्वाद भी दिया परन्तु कोई भी कुछ वोला नहीं तव राजा वापस आ रहा था कि मार्ग में श्रुत सागर नाम के मुनिराज मिले तव तक चारों मंत्री मुनियों की भूरि-भूरि निन्दा उपहास करते हुए आ रहे थे कि मुनिराज दीखे और प्रहलाद वोला देखो एक वैल पेट भर चर कर आ रहा है। राजा ने नमस्कार किया और धर्म का स्वरूप पूछा इस पर चर्चा चली तव मुनिराज ने उस मिथ्यात्वी वलि को वाद में परास्त किया तथा प्रहलाद व शुक्र को व वृहस्पति को भी हरा दिया। परन्तु हार होने का उनको सदमा व्याप्त हो गया और वे अपने स्थान को चले गये। इधर श्रुतसागर भी संघ में जा पहुंचे। रास्ते में हुए विवाद को भी गुरु से कह सुनाया तव आचार्य ने कहा वत्स तुमसे जहां पर विवाद हुआ है वहीं जाकर वहाँ के क्षेत्रपाल से

जगह माँगकर कायोत्सर्ग ध्यान से खड़े हो जाओ ? ऐसी आज्ञा पाकर श्रुतसागर जहां पर हो विवाद हुआ पहुंच गए और क्षेत्रपाल से आज्ञा लेकर वहीं जहाँ कायोंत्सर्ग से खड़े हो गये। रात्रिका मध्य काल था कि वे ब्राह्मण अपने अपने हाथों में तलवार लेकर मुनिराज को मारने के लिए चल दिए। रास्ते में जा ही रहे थे कि उनको वे ही मुनिराज दिखाई दिए कि जिन्होंने परास्त किया था। वे ब्राह्मण मंत्री मुनिराज को मारने के लिए परस्पर में कहने लगे कि प्रथम बार तू कर वह कहता है कि तू कर वह कहता है कि तू प्रथम बार कर सब के सब इसी द्वन्द्व में एक-एक से इशारा कर रहे थे। वे विचार करते थे कि यदि मेरी तलवार से मरण हो गया तो मैं ही पापी बनूंगा ये सब बच जाएंगे अन्त में यह निर्णय हुआ कि चारों एक साथ ही वार करें ताकि पाप के समभागी सब बनें तब चारों ने एक दम तलवार का वार करने के लिए ऊपर हाथ उठाया ही था कि यक्षदेव ने सबको ज्यों का त्यों कील दिया जिससे वे खड़े के खड़े रह गये। प्रभात हुआ तब सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि राजा के मंत्री मुनि महाराज को मारने के लिए तलवार का प्रहार कर रहे थे। सो किसी ने उनको कील दिया है लोग बड़ी ही तादाद में एकत्र हो गये सब ही चारों मंत्रियों को नालत दे रहे थे। यह समाचार राजा को भी प्राप्त हुआ और राजा भी घटना स्थल पर आ पहुंचा और मंत्रियों को धिक्कारना दी। तथा यक्षदेव से प्रार्थना की कि अब इन पापियों को क्षमा करो ये अपने किए हुए का फल स्वयं भोगेंगे। तब यक्षदेव ने उनको छोड़ दिया। राजा ने उनका सब जर माल लुटवा लिया और देश निकाला दे दिया।

इति टिप्पणी

इस प्रकार चर्चा का प्रसंग बदल कर और परम शान्ति रूपी गंगा नदी के उद्यम के लिए हिमवान पर्वत के तुल्य अकम्पनाचार्य के शिष्य जनों के योग्य आराधना करके तथा आज्ञा लेकर राजा अपने राज महल को वापस लौट आया। और दूसरे दिन अन्य अपराध के बहाने से वलि तथा उनके साथी मंत्रियों के साथ तिरस्कार पूर्वक निकाले गये वे मंत्री भ्रमण करते हुए कुरुजांगल देश में पहुंच कर हस्तिनापुर नगरी के राजा पद्म की शरण में पहुंच गये। राजा पद्म के पिता महापद्म ने अपने बड़े पुत्र विष्णुकुमार के साथ श्रुतसागर महाराज के पास जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली थी। अपने छोटे पुत्र को राज्य भार सौंप गये थे। उनके दीक्षा लेने के पीछे कुम्भपुर का राजा सिंह कीर्ति ने टैक्स देना बंद कर दिया पद्म राजा के ऊपर चढ़ाई करने का उद्योग करने लगा। उस सिंह कीर्ति राजा ने अनेकों राजाओं को युद्ध में परास्त किया था वह एक बड़ी सेना लेकर हस्तिनापुर पर चढ़ाई करने की सोच रहा था राजा पद्म के गुप्तचरों ने युद्ध का समाचार दिया। यह सुनकर पद्म राजा को अत्यन्त चिन्ता व्याप्त हो रही थी यह देख वलि ब्राह्मण कहने लगा कि राजन आप उदास क्यों हो रहे हो तब पद्मराज से कहा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो हम अभी उसको जीत कर आपके चरणों में ला सकते हैं। यह सुनकर राजा पद्म ने कहा कि यदि तुम चतुर हो तो सिंहकीर्ति को पकड़ कर लाओ और रुके हुए टैक्स को वसूल करो। यह सुनकर वलि प्रहलाद वृहस्पति शुक्र चारों मंत्री थोड़ी सी सेना लेकर चल दिए और मार्ग में कपट विद्या में प्रवीण उस वलि

ने मार्ग में छलकर सिंह कीर्ति को पकड़ लिया और साथ में अन्य योद्धाओं को भी पकड़ कर पद्म राजा के चरणों में लाकर उपस्थित कर दिया। यह देखकर राजा पद्म विचार करने लगा कि मंत्री बड़े ही श्रेष्ठ पराक्रमी हैं इन्होंने हमारे कांटे को ही निकाल दिया इस प्रकार मन मेंप्रसन्न होता हुआ बोला कि हे मन्त्रियों माँगो क्या माँगते हो वही तुम को दिया जाएगा ? तब बलि बोला महाराज अभी आपकी कृपा से सब प्रकार की वस्तुयें हमें प्राप्त है यह वचन आप अपने भंडार में जमा रखिए। ऐसा कहकर कुछ दिन पश्चात बलि मन्त्री एक सेना लेकर छोटे-छोटे राजाओं को जीतने के लिए चल दिया और विजय प्राप्त कर वापिस आ गया। इधर स्वामी अकंपनाचार्य अपने सात सौ मुनियों सहित विहार करते हुए कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर के उत्तर में स्थिति हेम पर्वत की बड़ी गुफा में चातुर्मास करने को ठहर गये। उधर यह समाचार बलि, प्रहलाद आदि मंत्रियों ने सुन लिया था। जिससे ऐसे प्रतीत होने लगे कि कुत्ते के काटने का जहर बढ़ जाता वैसे ही मुनियों के संघ का आने का समाचार सुनकर उनको क्रोध बढ़ गया और पुराना बदला चुकाने की अपेक्षा कर राजा पद्म से अपनी धरोहर वचन माँगा कि हमको सात दिन के लिए राज्य दिया जाय राजा पद्म ने भी राज्य सात दिन के लिए देना मंजूर कर लिया। और आप राज कार्य को छोड़ कर राजमहल में रहने लगे।

अब क्या था कि बलि ब्राह्मण ने एक अश्वमेध यज्ञ करना प्रारम्भ किया जहाँ पर जिस गुफा में मुनिराज ठहरे हुए थे उसके निकट ही प्रारम्भ कर दिया और यज्ञशाला के चारों तरफ मरे हुए जानवरों की चर्म की बाढ़ लगाई तथा यज्ञ का कार्य-क्रम चलने लगा। तथा नाना प्रकार के जलचर थल चर जीवों को पकड़ कर जलती हुई अग्नि की ज्वाला में डाल देते थे जिससे भयंकर धुआँ निकलने लग जाता था वह धुआँ मुनियों के आश्रम स्थान में भर गया था जिससे मुनियों के श्वासोच्छ्वास रुक रहे थे परन्तु उन मुनिराजों ने गुरु की आज्ञा पाकर सल्लेखना ले ली थी कि जब उपसर्ग दूर हो जाएगा तभी चर्या के लिए नगरी में जावेंगे नहीं तो हमारे चार प्रकार के आहार का त्याग है। जीवित पशुओं के शरीर के जलने से कडुआ धुआं निकलने लगा था जिससे मुनिराजों के कण्ठ फट गए थे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए थे। यज्ञ काण्ड चालू ही था। उधर मिथला पुरी में जिष्णु आचार्य का शिष्य भ्राजिष्णु मुनि महाराज रात्रि के बारह बजे तारागणों की शोभा देख रहे थे कि एक तारा कांपता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने अपने गुरु के समीप जाकर कहा कि महाराज इस प्रकार आकाश में तारा कांप रहा है यह सुनकर उन्होंने अवधि ज्ञान से जान लिया कि हस्तिनापुर में अकंपनाचार्यादि ७०० सौ मुनियों के ऊपर बलि ब्राह्मण कृत घोर उपसर्ग हो रहा है। यह बलि प्रहलाद बृहस्पति और शुक्र चार ब्राह्मण मंत्रियों के द्वारा किया जा रहा है। वह शिष्य गुरु से पूछने लगा कि महाराज यह कैसे निवारण किया जाय सो कहो ? यह सुनकर आचार्य बोले कि विष्णु कुमार मुनिराज के द्वारा ही दूर किया जा सकता है अन्यथा नहीं क्योंकि उनको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हो गई है तब आचार्य ने अपने शिष्य क्षुल्लक को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही अपनी आकाश गामिनी विद्या से जाओ जहाँ हिमालय पहाड़ पर विष्णु

कुमार मुनिराज बैठे ध्यान कर रहे हैं गुरु की आज्ञा पाकर वह क्षुल्लक शीघ्र ही हिमालय पर्वत पर पहुँचा। जहाँ पर विष्णु कुमार मुनिराज ध्यान में बैठे थे क्षुल्लक ने प्रथम ही तीन प्रदिक्षणा दीं नमस्कार किया, पास बैठ गया विष्णु कुमार मुनि का ज्योंही ध्यान छूटा त्योंही क्षुल्लक जी ने नमस्कार किया और कहा महाराज विष्णुकुमार आचार्य महाराज ने मुझको आपके पास भेजा है कि आपको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हो गई है आप चलकर हस्तिनापुर में अकंपनाचार्य के ७०० सौ मुनि संघ के ऊपर हो रहे उपसर्ग को दूर करो उनकी रक्षा का कार्य आपके हाथों से ही हो सकता है ऐसा महाराज ने कहा है।

यह सुन कर क्षण मात्र में विष्णु कुमार मुनि हस्तिना पुर में पहुँच गये और प्रथम ही राज महल में राजा पद्म से मिले और उसकोबहुत डाँट लगाई कि तेरे होते हुए सात सौ मुनियों के ऊपर घोर उपसर्ग हो क्या तेरे को इसीलिए राज्यपद दिया कि तू मुनियों के ऊपर उपसर्ग करा। यह सुनकर पद्मराज बोला महाराज क्षमा कीजिए मैं वचनबद्ध हो गया हूं अव आप और कुछ न कहें आप ही देवता हैं आप ही गुरु हैं आप ही रक्षक हैं आप ही मंगल रूप हैं आप ही जीवों को शरणभूत हैं आप ही जगत में श्रेष्ठ हैं इस प्रकार पद्म ने प्रार्थना विनती की तव राजमहल से निकल कर यज्ञ मण्डप की तरफ को चल दिए।

यज्ञ मण्डप था वह दूर से ही दिखाई दे रहा था जिस पर नाना प्रकार की ध्वजा पताकायें लग रही थीं धुआं भी आकाश को उड़ रहा था पशु पक्षियों का कोलाहल मच रहा था तथा वेद मन्त्रों का उच्चारण हो रहा था। तथा गायत्री मन्त्र का उच्चारण बड़े जोर-शोर से किया जा रहा था। उस यज्ञ मण्डप के निकट पहुंच कर विष्णु कुमार ने अपना रूप वौना वना लिया जनेऊ धारण किया माथे में त्रिपुंड तिलक भी लगाया एक पीताम्वर लगोटी पहन ली और चादर ओढ ली। हाथ में एक टेडी मेडी छड़ी ले ली (और वेद मन्त्रों का वड़े ही उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए यज्ञ शाला में प्रवेश किया) और गले में यज्ञोपवीत था गले में रुद्राक्ष की माला थी चर्म मृग पहने हुए ऐसा सुन्दर रूप किए हुए वे यज्ञ शाला में प्रवेश करते हुए वेदों के मन्त्रों व गायत्री मन्त्रों का उच्चारण वड़े मधुर ध्वनि से करते जा रहे थे कि यह देख सव लोग चकित हो गए और विचारने लगे कि वलि की यज्ञ की महिमा देखो कि साक्षात विष्णु भगवान यज्ञ को देखने के लिए यज्ञ मण्डप में आए हुए हैं। वही प्रतीत होता था सव लोग कह रहे थे कि विष्णु भगवान वामन का रूप धारण कर आये हुए हैं। विष्णु कुमार मुनिमहाराज दानशाला की ओर जा रहे थे सव यज्ञ मण्डप में एक नये आनन्द की छटा छा रही थी। वामन को आता देखा वे वंद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए दान शाला में पहुंच गये। उनके पीछे अनेक नर-नारी उनकी सौन्दर्यता को देखकर मुग्ध हो रहे थे। तथा वाणी सुनकर चकित हो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। दानशाला में वलि इच्छित दान बांट रहा था। तव वामन ने भी याचना की तव वलि वोला कि प्रभो जो इच्छा हो वह मांग लीजिए वही आपको दिया जाएगा। इतना कहने पर वामन ने त्रिवाचा भरवाली तथा तीन वार सकल्प का पानी छुड़वाया और कहाकि अब एक छोटी सी झुपडिया वनवाने को

तीन पेंड़ भूमि मेरे को दे दो मैं अपने ही पैर से नाप लूंगा यह सुन कर वलि बोला महाराज आपने कुछ भी नहीं माँगा और कुछ मांगिए। तव मुनिराज बोले वस और कुछ नहीं चाहिए। चलो शीघ्र ही चलो हमको वह भूमि बताइए कि जहां हम झोपड़ी वनवावेंगे। तव वलि बोला कि जहाँ आपको पसंद हो वही दी जाएगी यह सुनकर विष्णुकुमार मुनि ने वह यज्ञ शाला की भूमि ही मांगी तव वलि, प्रह्लाद बोला कि और कुछ आवश्यकता हो वह भी कहिए तव बोले कहाँ से नापूं अव जल्दी करो? तव यज्ञ की भूमि को नापा दूसरा पद पुष्करार्ध पर्वत पर रक्खा जिससे जमीन आकाश नाप लिया अव कहने लगे कि तीसरी डग कहाँ भरू शीघ्र ही बताओ नहीं तो तुम सवको श्राप दे दूंगा जिससे तुमको लोक में जगह ही नहीं मिलेगी यह सुनकर और भी घवड़ा गये और वलि बोला कि महाराज मेरी पीठ पर ही पैर रख लीजिए यह अवशेष रह गयी है। इस पीठ पर ही पैर रख लीजिए यह कह कर वलि भूमि पर लेट गया विष्णु कुमार ने भी उसकी पीठ पर जैसे ही पैर रखा तैसे ही जोर से चिल्लाने लगा। उधर आकाश से देव पुष्प वृष्टि करने लगे जय-जयकार का शब्द होने लगा सब लोग क्षमा की याचना करने लग गये। तव मुनिराज ने कहा कि जा अव मैं तुझको क्षमा करता हूं तू पहले यज्ञ में पानी डाल कर अग्नि को शांत कर यह सुनकर वलि और प्रह्लाद, वृहस्पति, शुक्र सवने सव दौड़ कर यज्ञ में पानी डाल शांत कर दी और चर्म की लगी हुई वाढ़ को वलि ने अपने हाथ से निकाल दी। और अकम्पनाचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए गए घोर उपसर्ग की निन्दा कर क्षमा मांगीं तथा जिन धर्म के स्वरूप को जानकर चारों ने जैन धर्म स्वीकार किया। उधर नगर वासी जितने श्रावक थे वे अन्न जल का त्याग किये हुए बैठे थे कि जव तक मुनियों के ऊपर आया हुआ उपसर्ग दूर नहीं होगा तव तक हम अन्न पान नहीं करेंगे।

श्रावक भी सव समाचार सुनकर शीघ्र ही सेवा वैयावृत्ति में उपस्थित हुए सवने विचार किया कि मुनिराजों के गले शुष्क हो गए हैं तथा फट गए हैं क्योंकि जहरीला दुर्गन्ध मय धुआं के होने से। इसलिए ऐसा सलिल कोमल सरस आहार वनाना योग्य है। तव सवने सेमही व खीर सीर इत्यादि भोजन तैयार किया और मुनिराज आहार के लिए नगरी में आये सव ने वड़े प्रसन्न भाव पूर्वक आहार दिया। जिनके घर मुनिराज नहीं आये थे उन्होंने महाराज से आकर कहा कि जव तक हमारे किसी अतिथी का भोजन हमारे घर पर नहीं होगा तव तक हम भोजन नहीं करेंगे। तव यह सुनकर अकम्पनाचार्य महाराज ने कहा कि जिन के यहाँ आहार नहीं हुआ है वे अपने दरवाजे पर श्रमण वनाकर पूजे और भोजन करें यह संकल्प करें कि हमने मुनिराजों को आहार दिया। सवने मिलकर परस्पर में रक्षावंधन किया तथा अपनी वहन वेटियों को भी दान मान दिया जिससे इस दिन का स्मरण वना रहे विष्णुकुमार मुनिराज भी पुनरपि दीक्षा छेद कर दुवारा दीक्षा धारण की और ध्यानाग्नि के द्वारा घातिया अघाति कर्मों को नाश कर शिवपुर गामी वन गये।

इति वात्सल्य अंग में प्रसिद्ध विष्णुकुमार मुनि की कथा।

प्रभावना अंग में प्रसिद्ध वज्रकुमार मुनि की कथा

पंचाल देश में श्रीमान भगवान पार्श्वनाथ के यश से प्रकाशित अहिछेत्र नाम का नगर है। उसमें द्विसंतप राजा राज्य करता था उसकी रानी का नाम चन्द्रानन था। राजा द्विसंतप के सोमदेव नाम का पुरोहित था वह बड़ा कुलीन और शीलवान था। षडंगवेद ज्योतिष शास्त्र, निमित्त शास्त्र और दण्डनीति का पण्डित था तथा देवी और मानवी विपत्तियों का प्रतिकार करने में चतुर था। एक दिन उसकी पत्नी यज्ञदत्ता गर्भवती हुई उसको जिनेन्द्र भगवान की पूजा जैन मन्दिर में दर्शन व जैन साधुओं के दर्शन करने व आहार दान देने के भाव होते थे। परन्तु पति और सास श्वसुर के भय से निरन्तर संकुचित रहती थी। वह दिनों दिन शरीर से कृश होती जाती थी तब सोम देव की माता ने पूछा कि बेटा बहू जिस दिन से गर्भवती हुई है उसी दिन से इसको न जाने क्या हो गया है, यह नित प्रति सूखती जाती है। यह सुनकर सोमदेव ने अपनी धर्म पत्नी यज्ञदत्ता से पूछा कि हे प्रिये तुम्हारी दशा क्यों बिगड़ती जाती है ? जब बार-बार पूछा तब वह बात बनाती हुई बोली की मेरी यह इच्छा हुई है कि आम खाऊँ परन्तु असमय में आम कहाँ मिल सकते क्यों कि आम का मौसम बीत चुका है था इसलिये दोला पूरा न होने के कारण वह बहुत दुखी थी। पूछने पर कहा तब सोमदेव सोचने लगा कि हमारे मन को पीड़ा देने वाले इसके असामयिक मनोरथों को कैसे पूर्ण करूँ। वह अपने शिष्यों सहित इधर उधर आम की खोज में चल दिया और जहाँ तहाँ आम के बागीचे देखे उनमें कहीं पर भी आम दिखाई नहीं दिया। तब अनेक लोगों से पूछा कोई आम नहीं बता सका। और आगे बढ़ते ही गए कि एक जंगल में गायें चराने वाले ग्वाले से पूछा कि भाई यहां आम कहीं पर मिल सकते हैं ? तब वह ग्वाला बोला कि भाई आम तो एक जगह देखे हैं देखो जहां पर एक नग्न दिगम्वर साधु जी बैठे हैं उस वृक्ष पर आम लगे हुए हैं। यह सुनकर सोमदेव शिष्यों सहित उधर को ही चल दिये और जहां मुनि राज बैठे थे वहां उसके उत्कृष्ट तप की एक नई छटा दिखाई दे रही थी। वे भ्रमण करते हुए जल वाहिनी नदी के तीर में फैले हुए एक विदाक्ष नाम के बड़े भारी जंगल में सुमित्र नाम के मुनिराज को देखा। उत्कृष्ट तप के करने से उनका शरीर पवित्र हो रहा था। समस्त शास्त्रों के सुनने से मनोबल बढ़ गया था। ऐसे प्रतीत होते थे मानो धर्ममूर्ति रूप धारण कर आ विराजमान हुएं हो। उनके ब्रह्मचर्य धर्म के तेज प्रताप से एक आमक वृक्ष पर बौर और आमों से फल रहा था। पुरोहित जी ने आम वृक्ष से तोड़कर अपने शिष्य के हाथ अपनी धर्म पत्नी के पास भेज दिये और आप धर्म कथा सुनने के लिए अवधि ज्ञान के धारी मुनि के समीप बैठ गये। तब मुनि ने अपना उपदेश देना चालू किया कहने लगे यह जीव पहले जन्म में सहस्रार स्वर्ग के सूर्य विमान में बहुत बड़े वैभव का स्वामी सूर्य चर देव था। पूर्व जन्म का वृतान्त श्रवण कर पुरोहित जी को जाति स्मरण हो आया स्वप्न में प्राप्त हुए साम्राज्य के तुल्य इस संसार से विरक्त होकर उसने काम को जीतने में समर्थ जैनेश्वरी दीक्षा धारण की और शास्त्रों के रहस्य को जान कर मगध देश के सोपारपुर के निकटवर्ती नाभि गिर पर्वत पर आतापन योग से स्थित हो गए।

उधर यज्ञदत्ता को जब छात्रों ने आम के फल ले जाकर दे दिए। उनको प्राप्त कर आनन्दित हुई साथ ही यह कह सुनाया कि गुरु जी ने जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली है। यह सुनकर बड़ी दुःखित हुई और पति के वियोग से उसका चित्त उमड़ गया। समय प्राप्त होने पर उसके गर्भ से एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। वह यज्ञदत्ता पुत्र को लेकर उसी पर्वत पर गई कि जहां पर सोमदेव आतापन योग से स्थित थे। उनको देखकर बोली। अरे मन रूपी वन को जलाने के लिए वन की आग समान निःस्नेही मूर्ख कपटी ! यदि इस नग्न दिगम्बर वेष को छोड़कर अपने घर चल और भोगोप भोग भोगो वे भोग इन्द्र को भी प्राप्त नहीं है स्वेच्छा से चलना हो तो चल नहीं तो अपनी संतान को संभाल इस प्रकार प्रथम में तो प्रेम बताया परन्तु वे उसकी तरफ को देख भी नहीं सके। तब उसके क्रोध की ज्वाला और बढ़ने लगी और कटुक कठोर निंद्य वचन रूपी अनेक प्रकार के वाण छोड़े परन्तु उनके हृदय में एक भी प्रवेश नहीं हुआ वे अपने ध्यान से क्षण मात्र के लिए भी विचलित नहीं हुए। यह देखकर कहने गली कि पापी योग धारण कर खड़ा हो गया है निःस्नेही मूर्ख कपटी। ये अपना पुत्र सम्भाल यह कहकर उस आतापन योग में स्थित मुनि के सामने शिला पर बालक को लिटाकर अपने घर को चली गई। शिला तप रही थी तब बच्चा मुनि राज के चरणों में लिपट रहा था और मुनिराज अपने ऊपर उपसर्ग जानकर कायोत्सर्ग से निश्चल खड़े रहे।

इसी बीच में एक घटना घटी विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में अमरावती नगरी को राजा त्रिशङ्कु चिरकाल तक राज्य सुख का भोग कर संसार और शरीर भोगों से विरक्त हो गए। मुनि होने की इच्छा से अपनी कन्या तो हेमपुर के स्वामी भूमि गोचरी वलवाहन राजा को दे दी और राजा जेष्ठ भास्कर देव पुत्र को राज्य भार सौंप दिया। और आप सुप्रभदेव मुनि के पास जिन दीक्षा धारण कर ली। कुछ दिन बीत जाने पर उसके छोटे पुत्र पुरन्दर ने आत्मीयजनों के द्वारा उत्साहित किए जाने पर अपनी भुजबल से तथा सैन्यबल के घमण्ड में आकर अपने बड़े भाई भास्कर देव का राज्य छीन लिया। तब भास्कर देव ने अपने परिजन के साथ आकर वलवाहनपुर में अपना लश्कर डाला और स्वयं अपनी पट राणी मणिमा के साथ सोमदत्त मुनिराज को वंदना के निमित्त आया। मुनि के चरण कमलों में पृथ्वी के कमल के समान उस सुन्दर बालक को देखकर वह बोला अरे बड़ा ही आश्चर्य है कि बिना रत्नाकर के रत्न बिना जलाशय के कमल बिना ईंधन के तेज का पुंज बिना सूर्य के उग्रकान्ति कारक और बिना चन्द्रमा के मनोहर यह बालक यहाँ कहां से आया ? वह पल्लव के समान इसका लावण्य हाथ के स्पर्श से भी म्लान होने वाला है। किन्तु इस अत्यन्त गर्म पहाड़ पर वज्र से बनें हुए के समान क्रीड़ा करता हुआ सुख से ऐसा लेटा हुआ मानो माता की गोद में लेटा हो। भास्कर देव अपनी पटरानी से बोला हे प्रिये ! तुमको पुत्र की वांछा थी भगवान के प्रसाद से तुम्हारे यह सर्व लक्षणों से युक्त पुत्र प्राप्त हुआ है। इसका नाम बज्रकुमार रखते हैं। यह हमारे वंश को समुन्नत होगा। ऐसा कहते हुए बालक को गोदी में ले लिया और मुनिराज की स्तवन पूजा वन्दना कर बच्चे का

वृतान्त मुनिराज से पूछा तब उन्होंने बच्चे का सब वृतांत कह सुनाया। यह सुनकर वह भास्कर देव अपने नगर की ओर लौट गया।

बचपन के कारण वज्रकुमार के शरीर की कांति अशोक वृक्ष के नवीन पत्तों की या धतूरे के अथवा लाल मणि की गेंद की तरह प्रतीत होती थी। घर बाहर के आदमी बड़ी ही प्रीति से प्यार से पुष्प गुच्छे की तरह देखते थे। वह हाथों हाथ घूमता था। पहले वह मुख ऊपर को करके लेटा रहता था कुछ बड़ा होने पर उसने मुस्कराना शुरू किया तत्पश्चात घुटनों से चलने लगा। फिर तुतलाते हुए बोलना भी चालू किया। फिर स्पष्ट बोलने लगा इस प्रकार वह पांच अवस्थाओं को बिताकर बड़ा हुआ जैसे मेरु भूमि का भाग वृक्षों की शोभा से शोभित होता है सरोवर कमलों से शोभित होता है। राजहंसों का समूह स्त्री के समागम से शोभित होता है और स्त्री समागम काम विलास से होता है वैसे ही वज्रकुमार का शरीर यौवन से सुशोभित हो गया।

तत्पश्चात् यौवन के भर उठने पर पितृ वंश और मातृ वँश से प्राप्त हुई निर्दोष विद्याओं के प्राप्त होने से उसका प्रताप और भी बढ़ गया और उसने अपने मामा की लड़की इन्दुमती के साथ पाणिग्रहण किया। एक दिन वज्रकुमार अनेक विद्याधर कुमारों के साथ विजयार्ध पर्वत की शोभा देखता हुआ घूम रहा था। घूमते-घूमते वह हिमवान पर्वत पर जा पहुँचा वहाँ विद्याधरों के स्वामी गरुड वेग की अतिशय रूपवती कन्याओं में प्रवीण पवन वेगा बहुरूपिणी विद्या साथ रही थी। वज्रकुमार ने देखा कि विघ्न डालने की इच्छा से वह विद्या अजगर का रूप धारण कर उस कन्या को निगलना ही चाहती है। उस परोपकारी ने तुरन्त ही गरुड विद्या के द्वारा उसके मुख को चीर दिया। इस विघ्न के दूर होते ही पवन वेगा को विद्या सिद्ध हो गई। उसने संकल्प किया कि मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला युवक इस जन्म में तो मेरा पति है। यह संकल्प करते हुए उसने वज्रकुमार को इष्ट वस्तु की प्राप्ति करने वाली प्रज्ञप्ति नाम की विद्या दी और कहा कि इसी पहाड़ के पास से बहने वाली नदी के पास आतापन योग से स्थित मुनि महाराज के चरणों के समीप में बैठ कर पढ़ने मात्र से तुम को यह विद्या सिद्ध हो जायेगी। यह कह कर वह अपने नगर को लौट गई। वज्रकुमार ने भी उसके कहने के अनुसार फेनमालिनी नदी के किनारे पर बैठे हुए आचार्य के सानिध्य में विद्या सिद्ध की। इस विद्या के प्रभाव से उसमें असाध्य कार्यों के साधन की शक्ति आ गई और इससे उसका पराक्रम तथा होसला और भी बढ़ गया। तब उसने अपने चाचा पुरन्दर देव भास्कर अमरावती नगरी के राज्य शासन पर अपने पिता भास्कर देव को बिठाया और स्वयंवर में पवन वेगा के साथ तथा अन्य विद्याधर कुमारियों के साथ विवाह करके आनन्द पूर्वक दिन बिताने लगा।

एक बार इष्ट बन्धु बान्धवों के कहने से और दुष्ट जनों के अनादर से उसको पता लगा कि मैं भास्कर देव का पुत्र नहीं हूँ बल्कि इसने मेरा पालन पोषण किया है। यह सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि अपने वंश का निश्चय हो जाने पर ही मैं अन्न जल ग्रहण करूँगा अन्यथा मेरे सबका त्याग है तब उसके पालक माता पिता उसको मथुरा नगरी में तपस्या

करते हुए सोमदत्त मुनि के पास ले गये। मुनि की शारीरिक आकृति के तुल्य ही अपनी आकृति को देखकर उसको बड़ा ही आनन्द आया। और उसने उन दोनों माता-पिता को समझा बुझाकर अंतरंग और वहिरंग परिग्रह का त्याग कर दिया और निर्ग्रन्थ साधु बनकर चारण ऋद्धि का स्वामी बन गया।

एक बार मथुरा नगरी में चारण ऋद्धि के धारी मुनि आकाश मार्ग में चले जाते थे उसी मार्ग में दो तीन वर्ष की एक वालिका थी जिसकी आखों में कीचड़ भरा हुआ था इधर उधर भटकती और मांगती खाती डोलती थी। उसको देखकर पीछे चलने वाले सुनंदन नाम के मुनिराज बोले कि जीवों के कर्म विपाक को कोई भी नहीं जानता है देखो तो बेचारी यह वालिका इतनी सी उम्र में कष्ट भोगती है। यह सुनकर आगे चलने वाले मुनि राज बोले कि ऐसा मत बोलो ? यद्यपि जब वह वालिका गर्भ में आई तब तो राजश्रेष्ठी के पद पर प्रतिष्ठित इसका पिता समुद्र दत्त मर गया। जब वह जन्मी तो माता भी मर गई। बड़ी हुई तो असमय में ही बन्धु बान्धव मर गए और अब वह इस हालत में है। तथापि युवती होने पर वह इस राजा की पूतिका नाम की पटरानी होगी। वहीं पर भोजन के लिए घूमते हुए बौद्धभिक्षु ने इस वार्तालाप को सुना उसने सोचा कि मुनि झूठ नहीं बोलते हैं। अतः वह उस वालिका को अपने विहार में ले गया और उसकी रूचि के अनुसार खान पान देकर उसे बड़ा किया। सब लोग हँसी में उसे बुद्धदासी कहते थे। धीरे-धीरे वह यौवन अवस्था को प्राप्त होने लगी उसकी भृकुटियों में विलास आचला लोचनों में एक अद्भुत चंचलता दृष्टिगोचर होने लगी उसकी बातों में चातुर्य झलकने लगा ओठों पर अपूर्व मादकता छा गई अंग प्रत्यंग में यौवन की लहर उठने लगी। चाल में भी मादकता आ गई कुछ ही समय बीतने पर वह रूपवती बुद्धदासी विहार के एक ऊंचे शिखर पर चढ़ी हुई थी कि घूमते-घूमते राजा पूतिवाहन उस विहार के करीब गया और उसकी दृष्टि बुद्धदाशी पर पड़ी और उसके रूप लावण्यता को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। उसके हृदय को काम-वाणों ने भेदन कर दिया। इस स्त्री रूपी नदो में प्रायः मेरी मति इस प्रकार की हो गई है। प्रथम तो वह उसके कुटिल केशों की बीच मांगवनी ही थी और केशों की चोटी बनी थी वह भी गोलाकार जूड़ा रूपी भ्रमर में पड़कर भ्रान्त हो गई थी। नेत्ररूपी लहरों के तूफान में पड़कर पीड़ित हुई उसके बाद दोनों स्तन रूपी बालुकामय किनारों पर पहुँच कर उसकी फिना शिथिल पड़ गई पुनः उदर की तीन रेखाओं में भ्रमण करने से थक गई और पुनः नाभि में डूब जाने से क्लान्त हो गई। बुद्धदाशी ने भी राजा को देखा। राजा ने अपने मन में उठते हुए बवण्डर को जिस किसी तरह रोक कर आगे का मार्ग निर्धारित किया। एक अपने विश्वस्त व्यक्ति को बुलाकर अपने मन की अभिलाषा बतलाकर वह बोला तुम भिक्षु के पास जाकर पूछो कि यह कन्या रत्न विवाहित है या अविवाहित है ? यदि अविवा-हित हो तो उसको हमारे लिए तैयार करो ? उस विश्वस्त पुरुष ने राज महिषी का पद प्रदान करने की प्रतिज्ञा करके उसका राजा के साथ विवाह कर दिया।

उसके बाद भव्य जनों को आनन्द देने वाला नन्दीश्वर पर्व आया। इस पर्व में

पूतिकवाहन राजा की रानी उर्मिला देवी बड़ा भारी महोत्सव करके जिनेन्द्र देव का रथनि कालती थी बुद्धदासी नें उसके महोत्सव को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए बुद्धदेवी की पूजा का आयोजन किया और उसके योग्य सब सामग्री राजा से मांगी। राजा ने सब सामान दे दिया। जब उर्मिला को अपनी सोत की यह हरकत दुर्जनता मालूम हुई और उसका प्रतिकार करने का उपाय सोचने लगी पर कुछ भी उपाय नहीं समझ में आया। तब उर्मिला देवी श्री आचार्य सोमदेव के चरण कमलों में आ उपस्थित हुई और बोली कि हे स्वामी मैं फाल्गुण की अष्टान्हिका की पूजा के दिन रथयात्रा सहित पूजा करती हूँ। इस साल मेरी सोत बुद्धदासी कहती है कि तेरा रथ पीछे चलेगा पहले बौद्ध रथ चलेगा। यदि मेरा रथ हमेशा की भांति इस साल नहीं चलेगा तो मैं चार प्रकार के आहार का त्याग कर दूंगी। इतना कहने पर सोमदेव आचार्य ने वज्रकुमार को इशारा किया। वज्रकुमार ने उसको समझाया कि माता धैर्य धरो और पूजा की तैयारी करो ?

यह सुनकर उर्मिला स्व स्थान को चली गई। वज्रकुमार ऋद्धिबल से भास्कर देव की नगरी में पहुंचे और वहां के सब विद्याधर वज्रकुमार को आया देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक तो भाई पुत्र पना दूसरे मुनिराज को देखकर सब विद्याधर एकत्र हुए ? और वज्रकुमार महाराज से सबने क्षेम कुशल पूछी। तब श्री वज्रकुमार मुनिराज बोले कि मथुरा नगरी में पूतवाहन राजा की रानी उर्मिला देवी अष्टान्हिका पर्व के दिनों में नित प्रति रथोत्सव करती है। अब फाल्गुण अष्टान्हिका आ गई है उसका रथ निकलवाना है। यह सुनकर सब विद्याधर और विद्याधरी अष्ट मंगल द्रव्य व पूजा की सामग्री लेकर चल दिये। आगे-आगे बाजे बजते जाते थे और ध्वजायें फहराती जा रही थीं। उस समय विद्याधर उन्मत्त भरे स्वरों से जिनेन्द्र भगवान के गुणों का गान करते हुए मथुरा में प्रवेश कर उर्मिला रानी के घर पहुँचे। सब नगर के नर नारी सोचते थे कि बुद्ध की पूजा के लिए ये सब तैयार ही होकर आये होंगे ? कोई कहते थे कि बुद्धदासी बड़ी भाग्यवान है। परन्तु यह बात सब ही निषफल हुई। प्रभात होते ही आकाश मार्ग से रथ का निकलना चालू हुआ। जिसके प्रथम में अनेक रंग वाली ध्वजायें थी पीछे अनेक प्रकार के बाजे थे। पीछे सुवर्ण के थालों में पूजा की सामग्री थी। उसके पीछे विद्याधरीयों के हाथों में दर्पण, झारी, कलश छत्र, चंवर पंखा, धूपदान, कुम्भ कलश था। तथा आठ प्रतिहार्य थे। तत्पश्चात् बांसुरी बजाने वाले नाचने वाले विद्याधर थे इस प्रकार आठ दिन पर्यन्त रथ निकलता रहा। यह रथ का ठाठ बाट देखकर बुद्धदासी दंग रह गयी। और अपने मनोरथ को धिक्कार देती रह गई। अन्त में बौद्ध धर्म का त्याग कर जैन धर्मानुरागी बन गई।

मिथ्यात्वेऽनंताश्च सासादन मिश्रश्चासंयतेषु ॥
संयतासंयते वा पल्यस्यासंख्येय भागाः सुदृक ॥ ४०९

मिथ्यात्व गुण स्थान तथा मिथ्यात्व दर्शनमोह वाले जीव अनंतानन्त हैं वे सब भव्य और अभव्य चकार से पंचस्थावर और नित्यनिगोद इतर निगोद तथा विकल सकलेन्द्रि चारों गति वाले जीव होते हैं। सासादन तथा मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि तथा संयत जीव

पल्य के असंख्यात वे भाग सम्यग्दृष्टि जीव हैं।

विशेष-सासादन गुण स्थान में सामन्य से ५२०००००००० सासादन सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं जिनका एक सासादन ही गुण स्थान पाया जाता है। मिश्र सम्यग्दृष्टि जीव १०४०००००००० एक सौ चार करोड़ मिश्रगुणस्थान में जीव पाये जाते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि जीव सात अरब हैं ७०००००००००० जो कि चौथे गुण स्थान वर्ती जीव होते है। तथा संयमासंयम वाले जीव १३ तेरह करोड़ होते हैं। ४०९

प्रमत्ते कोटि प्रथकत्वं संख्या त्र्युपरिनवाधः सति कोटि ॥
प्रयत्ते संयत प्रोक्तः संतं परमागमे साधुः ॥ ४१०

प्रमत्त गुण स्थान में जीवों की संख्या तीन करोड़ के ऊपर और नौ करोड़ के नीचे होती है इस प्रकार सम्यग्दृष्टि पर्यन्त की संख्या परमागम में जितेन्द्र देव ने कही। वह इस प्रकार है ५९३९८२०६ पांच करोड़ तिरानवै लाख अंठानवै हजार दो सौ छह हैं।

अमयत्ते संख्यात मुपशम काः प्रवेशे एक द्वित्रि ॥
चतुः पंचाशत् क्षयकोऽष्टोत्तर शतं तद्विशेषः ४११ ॥

अप्रमत्तवर्ती जीव संख्यात हैं तथा उपसम श्रेणी चढ़ने वाले जीव क्रमशः एक समय में एक वा दो या तीन तथा अधिक से अधिक चौवन होते हैं। उपशम श्रेणी अपूर्व करण तथा अनिवृत्त करण सूक्ष्म सांपराय तथा उपशांत मोह तक जानना चहिये। क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव प्रवेश काल में एक या दो या तीन होते हैं परन्तु अधिक एक सौ आठ तक जीव श्रेणी चढ़ते हैं। अप्रमत्त कुल जीवों की संख्या प्रमत्त गुण स्थान वालों की संख्या से आधी है २९६९९१०३ दो करोड़ ९६ लाख ९९ निन्यावै हजार एक सौ तीन होती है।

तेरह कोटि देशे वावण्णा सासण मुयव्वा।
भिस्सम्मि य मद्दूणा असंजदा सत्त साप्प कोडीयो १ ॥
क्षापकवत्केवलिनश्च विशेषेण सत सहस्र प्रथकत्वं ॥
ज्ञभव्योजीवाश्च खलु गुणस्थाने केवलो वित्ति ॥४१२॥

क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले क्षायक सम्यग्दृष्टि आठवां नोवां दशवां बारहवां चार गुण स्थानों में क्रम से जानना चाहिये। सयोग केवली तथा अयोग केवलियों की संख्या क्षपक श्रेणी के समान ही जानना चाहिये। तीन लाख से ऊपर और नौ लाख से नीचे की संख्या होती है उपशम श्रेणी में चढ़ने वाले ११९६ मुनि तथा चारों क्षपक श्रेणी में चढ़ने वाले मुनियों की संख्या २३९२ होती है तथा सयोग केवलियों की संख्या ८९८५०२ है तथा अयोग केवलियों की संख्या ५९८ मुनि ऐ मुनि अनेक समय वाले हैं। एक समय में एक वा दो या तीन सयोग केवली होते हैं अथवा अधिक से अधिक एक समय में एक सौ आठ अथवा तीन लाख के ऊपर तथा नौ लाख के नीची सयोग केवली होते हैं। तथा अयोग केवलियों की संख्या कही गई है पांच सौ अठानवै ५९८ है इन गुण स्थानों को भव्य सम्यग्दृष्टि जीव ही नियम से प्राप्त होते हैं। परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव अभव्य नहीं प्राप्त होते ऐसा ज़िनेन्द्र भगवान ने कहा है।

प्राग्नारके नारकाश्च मिथ्यादृष्टय संख्येयाश्रेणयः ।।
प्रतराऽसंयेय भागो द्वितियादिषु चा संख्याततैवः। ४१३
सर्वभूषु सासादन मिश्रासंपताः पल्पसंख्येयभागः ।।
त्रियग्गतौ मिथ्यादृगनंतानंताः ज्ञातव्यश्च ।। ४१४
सासादनादि असंयता संयताः पल ।ासंख्येया भागः ।।
नृगतौ नराः कुदृष्टयः श्रेण्यसंख्यात भागं संख्या ।। ४१५
सासनादि च संयता संयता संख्यातः सम्यग्दृष्टिः
शेषः प्राग्वत् स्थानं देवगतौ नारकवत्सन्ति ।। ४१६

घर्मा नामक प्रथम नरक में नरक गति वाले जीव नारकविलों के तथा आकाशप्रदेशों के प्रमाण को लेकर अपनी उपपाद शैवा जगत प्रतर श्रेणियों का ऊर्ध्व अर्ध त्रियक फैले हुये के साथ परस्पर गुणा करने पर जितने आकाश प्रदेश होते हैं उनके असंख्यातवे भाग प्रमाण प्रथम नरक में मिथ्यादृष्टि जीव निवास करते हैं। तथा सासादन सम्यग्दष्टि तथा मिश्र सम्यग्दृष्टि उपशम, क्षयोपशम, क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण होते हैं। इनका कहने का कारण यह है कि इन तीन गुण स्थान वाले जीव संख्यात है क्योंकि गुणस्थानों की चर्चा करते हुये सामान्य से सख्या बताई जा चुकी है। दूसरे नरक से लेकर सातवें नरक तक नारकी जीव जगत श्रेणो के असंख्यातवे भाग हैं क्योंकि इनका निवास स्थान सात राजू प्रमाण है। पहले नरक में मियाथ्दृष्टि जीव असंख्यात हैं इसी प्रकार प्रस्तार की अपेक्षा कहने से नारक विलों का प्रमाण संख्या उपपाद से ग्रहण हो जाता है। इसलिये सब नरकों में मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात हैं। असंख्यात के अनेक भेद आगम में कहे गये हैं दूसरे आदिक नरकों में क्षायक सम्यग्यदृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं शेष उपशम व क्षायोपशम वाले जीव होते हैं वे सब ही संख्यात ही हैं सातवें नरक में क्षयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता है। त्रियंच गति में मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तान्त हैं सासादन मिश्र तथा असंयत सम्यग्दृष्टि व संयमा संयमत जीव पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं अथवा सख्यात हैं। मनुष्यगति में मिथ्यादृष्टि जीव जितना मनुष्यक्षेत्र है उतने आकाश प्रदेश श्रेणी के प्रतर से रहित असंख्यातवे भाग है इसका कारण यह है कि मनुष्यों की संख्या कुछ अंक प्रमाण है तथा क्षेत्र ४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्र है उससे आगे मनुष्य नहीं रहते हैं जगतश्रेणी जो कही गई है वह भी संख्यात कोटि योजान प्रमाण हैं। सासदन मिश्र तथा असंयत सम्यग्दृष्टि देश संयत जीव भी संख्यात है प्रमत्तादि गुणस्थानों में जो सख्या पहले कही जा चुकी है उतनी ही यहां समझ लेना चाहिये। देवगति में देव जगत श्रेणी में जगत प्रतर के असंख्यात वे भाग प्रमाण मिथ्यादृष्टि जीव है। यह विशेष है कि तीन काय में क्षायक सम्यक्त्व के धारक जीव नहीं हैं शेष दो प्रकार उपशम सम्यक्त्व तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व के धारक है परन्तु वे भी वहीं उत्पाद कर धारक होते हैं। विमान वासियों में तीन सम्यक्त्व के धारक जीव उत्पन्न होते हैं अनुदिश और अनुत्तर विमानों में क्षायक और क्षयोपशम सम्यक्त्व धारी जीव उत्पन्न होते हैं क्योंकि नवें ग्रैवेयक के अन्त तक मिथ्यादृष्टि जीव की उत्पत्ति है आगे के देवों में नहीं। सासादन मिश्र

सम्यक्त्व वाले नहीं। वे सब स्वर्गों में पल्य के असंख्यात वे भाग प्रमाण होते हैं जिस प्रकार नरकों में बिलोंकी संख्या कही उसी प्रकार देवों के विमान और उत्पाद संख्या के प्रमाण से लेकर जानना। ४३८।३९।४०४१।

प्रागेकेन्द्रियाश्च आपंचासंज्ञिनोऽसंख्यातश्रेणयश्च
संज्ञिनोमिथ्यादृष्टियोऽसंख्येया श्रेणयः प्रतराः ।४१६।
शेषागुणस्थानवत् भुजलाग्निवायुकोऽसंख्याल्लोकाः।
अनंतानंतापादपास्त्रशाः प्रचेन्द्रियवदसंख्याताः ४१८ ॥
मिथ्यात्विनःवाङ्मनो योगिनोऽसंख्याच्छे श्रेणयोर्भागः ॥
प्रतराऽसंख्येयभागाः काये अनन्तानन्तार्जीवाः। ४१९
त्रियोगिषु शासनादि आसंपतासंपतेपु पल्यासंख्यात ॥
भोगः प्रयत्तादयाः केवलिनः सामान्योक्ताः संख्याः ४२०

एकेन्द्रिय जीव पृथ्वी कायक जल कायक अग्निकायक वायुकायक और वनस्पति दो इद्रिन्य तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय पाँच इन्द्रिय असैनी सब मिथ्यादृष्टि ही हैं उनके एक दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति का ही उदय विद्यमान निरन्तर रहता है वे सब जीव मिलकर अनन्तानन्त हैं। तथा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव जगत श्रेणीजगत प्रतर के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। अवशेष सासादनादि अपने-अपने गुण स्थान को संख्या कही गये प्रमाण हैं। दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीव त्रश नाली जगत श्रेणी जगत प्रतर के असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं। पृथ्वी जल अग्नि वायु कायक जाव मिथ्यादृष्टि जगत श्रेणी जगत प्रतर के असंख्यात वे भाग प्रमाण हैं अथवा असंख्यात लोक प्रमाण है। त्रसकायक जीव गुणस्थानों में कहे गये प्रमाण हैं क्योंकि त्रसकापक जोव अपने-अपने इन्द्रिय के जीव असंख्याता संख्यात हैं। मनोयोगी-मन सहित जीव वचन योगी वाले जोव मिथ्यादृष्टि जगत श्रेणी के असंख्यात वे भाग मात्र प्रमाण को लिये हुये हैं। काययोगी की अपेक्षा विचार करने पर कोययोग वाले जीव अनन्तानन्त हैं वे सब मिथ्यादृष्टि ही हैं तथा तीनों योग वाले जीव (मन वचन काय) सासादन मिश्र सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि देश संयत जीव पल्य के असंख्यात वे भाग हैं प्रमत्तादि में गुण-स्थान की चर्चा में कहे गये प्रमाण जीव राशि होती है अथवा प्रमत्त से लेकर सयोगी गुण स्थान पर्यन्त जीव संख्यात होते हैं। ये सब ही सम्यग्दृष्टि होते हैं।

स्त्रीपुंवेदयोः सदाऽसंख्यातमिथ्यादृष्टियोजीवाः।
वेदेनपुंसकेऽनन्तानन्ताः श्रेणयासंख्येयभागः ॥ ४२१॥

स्त्रीवेद तथा पुरुष वेद वाले मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात जगत श्रेणी प्रमाण हैं तथा दोनों वेद वाले जीव असंख्यात है क्योंकि स्त्रोवेद पुरुषवेद मनुष्य त्रियंच और देवों में पाये जाते हैं परन्तु ऐकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञो पंचेन्द्रिय तक के जोवों के स्त्रीवेद पुरुषवेद के कारणों के अभाव में कार्य का भी अभाव देखा जाता है। नपुंसक वेदवाले जीव सबलोक के प्रमाण हैं और वे अनन्तानन्त होते हैं इसका कारण यह है कि नपुंसक वेद का उदय ऐकेन्द्रिय

से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तक निरन्तर पाया जाता है तथा सैनी संपूर्णता तथा नारकी जीवों के उदय में निरन्तर रहता है वहां पर स्त्रीवेद पुरुषवेद नहीं होते हैं। तथा एकेन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेन्द्रिय सन्मूर्छन जन्म लेने वाले नपुंसकवेदी जीव अनन्तानन्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। वे जगत श्रेणी के असंख्यात वे भाग प्रमाण होते हैं। ४४६।

स्त्रीनपुंसकवेदयोः सासादनाद्यसंयता - संयताः ॥
गुणास्थानवत् प्रमतोऽ - निवृत्तान्तः संख्येयाश्चः ॥४२२॥

स्त्रीवेद तथा नपुंसक भावों में सासादन मिश्र असंपत सम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीव पल्य के असंख्यात भाग प्रमाण हैं स्त्री व नपुंसक वेदों का सत्व और उदय अनिवृत्त गुणस्थान के मध्य में पांचवे भाग तक पाया जाता हैं वे सव गुणस्थान की समान संख्या वाले होते हैं। परन्तु द्रव्य स्त्रीवेद वालों के मिथ्यात्व से लेकर संयतासंयत गुणस्थान होता है नपुंसक वेद वालों के भी यही व्याख्या समझनी चाहिये। पांचवें के आगे द्रव्य पुरुषभाव स्त्रियां नपुंसक वेद वाले जीव नौवे गुण स्थान तक होते हैं वे सव संख्यात होते हैं।

पुंवेदेसंख्यास्ति संयतासंयते सामान्योक्तम् ॥
सकलसंयमादिषु गुणस्थानवत्संख्याऽपगतवेदाः ॥ ४२३ ॥

पुरुषवेद वाले जीवों की संख्या जिसप्रकार सासादन आदि गुणस्थानों तथा मिश्र असंयत संयतासंयत जीवों को संख्या सामान्य से कही गई गुणस्थानों की चर्चा में कहे प्रमाण हैं तथा वेद रहित जीव सूक्ष्म सांपराय से लेकर अयोग केवली गुणस्थान तक की संख्या पहले कही जा चुकी है ये असंयतादि अयोगी पर्यन्त गुणस्थान सम्यग्दृष्टि जीवों के ही हुआ करते हैं।

क्रोध मान माया नव नो कषाय निवृन्ताते स्थान्वत्।
लोभकषायेऽन्ते सूक्ष्म सांपरायकोऽ कषायेऽन्याः ॥४२४॥

क्रोध, कषाय, मान कषाय, माया नव नौ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्ता, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नवंसक वेद ये सब नौ वे गुण स्थान तक होती हैं। अनंतानुवंधी कषाय के धारक मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं तथा लोक प्रतर के असंख्यात वे भाग मात्र हैं। अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों के धारक सम्यग्दृष्टि जीव पल्य के असंख्यात वे भाग हैं तथा संख्यात है। प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों के धारक देश संयत जीव संख्यात है। तथा संज्वलन क्रोध मान माया इन तीन तथा नव नो कषायों के धारक जीव संख्यात है तथा गुण स्थान के समान ही जानना योग्य है। तथा सूक्ष्म लोभ सूक्ष्म सांपराय दशवें गुण स्थान होता है उसकी संख्या गुण स्थान के समान ही कही गई है। कषाय सहित जीव उपशांत मोह क्षीण मोह सयोग अयोग केंवली ये गुण स्थान सम्यक्त्व के होने पर ही होते हैं इनकी संख्या गुण स्थान के समान जाननी चाहिए ॥४४६॥

कुमति श्रुतविभंगानि आमिश्रगुणस्थाने नित्योद्भूतम्।
मति श्रुतावधिज्ञानमसंयते क्षीणमोहान्ते ॥४२५॥

दर्शन मोह को मिथ्यात्व प्रकृति के उदय में रहते हुए जो ज्ञान होते हैं वे ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते हैं कुमति कुश्रुति विभंगावधि ज्ञान ये तीन प्रथम मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सासादन और मिश्र गुण स्थान तक के जीवों के होते हैं। सम्यक्त्व के होने पर जो ज्ञान होते हैं वे सम्यग्ज्ञान कहलाते हैं वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये सम्यग्ज्ञान हैं वे ज्ञान असंयत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह तक नो गुण स्थानों में मति श्रुति अवधिज्ञान होता है परन्तु मनःपर्ययज्ञान विशेप चारित्र के धारक प्रमत्त संयत से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त में सात गुण स्थानों में होता है ।।४२५।।

कुज्ञाने कुदृष्टिनोऽनंतानंताविभंगेऽसंख्याताः ।
प्रागसंयते जातं क्षीणान्ते मति श्रुतावधिः ।।४२६।।

कुमति कुश्रत के धारी मिथ्यादृष्टि जीव लोक प्रमाण हैं अथवा अनंतानंत हैं विभंगावधि ज्ञान के धारी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात जगत प्रतर श्रेणी के असंख्यातन्वे भाग प्रमाण हैं अथवा असख्यात हैं। मति श्रुति ज्ञान के धारक जीव असंख्यात हैं अथवा अवधिज्ञान के धारक सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात हैं ये तीनों ज्ञान असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुण स्थान से लेकर वारहवें क्षीण मोह क्षदमस्थ गुण स्थान के धारक जीवों के पाए जाते हैं। इनकी सख्या प्रत्येक गुण स्थान के समान संख्या जानना चाहिए। विशेप यह है कि सम्यग्दृष्टि देव व नारकी त्रियंच मनुष्यों में अवधिज्ञान और मति श्रुति ज्ञान पाए जाते हैं ।।४२६।।

मनः पर्यये जीवाः संख्याताः प्रमत्तादि क्षीण मोहे ।
केवलज्ञाने द्वे स्थः गुण स्थान वच्च ज्ञातव्यः ।।४२७।।

मनः पर्यय ज्ञान नियम से प्रमत्त गुण स्थान वाले किसी ऋद्धि के धारक विशेप तपस्वी व चारित्र की वृद्धि करने वाले मुनि के होता है। प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह क्षद्मस्थ तक के जीवों के होता है। तथा एक मनुष्य पर्याय सकल संयमी के ही होता है। क्यों कि मति श्रुति तथा अवधिज्ञान ये चारों गति वाले जीवों के हो सकते हैं परन्तु यह नियम मनः पर्यय ज्ञान के लागू नहीं होता है। दूसरी वात यह है कि मनः पर्यय ज्ञान मनुष्य लोक प्रमाण क्षेत्र में ही होता है व जानता है। प्रमत्त गुणस्थान वाले किन्हीं ऋद्धि धारकों के होता है सवके नहीं। मनः पर्यय ज्ञानियों की संख्या गुण स्थान के समान समझना चाहिए। अथवा संख्यात जीव होते हैं। केवलज्ञान के दो गुण स्थान हैं सयोग और अयोग केवली इनकी संख्या पहले कही जा चुकी है गुण स्थानों की चर्चा में वहां से जानना चाहिए ।।४२७।।

प्राक् चतुर्गुण स्थानेऽ संयतोत्तरे संयतासंयताः ।
अनन्तानन्तोऽसंख्याः संयता संयताः संयताः ।। ४२८।।

पहले गुण स्थान से लेकर मिश्र गुण स्थान पर्यन्त जीव अनंतानंत हैं तथा असंख्यात गुण स्थानवर्ती व संयता संयत प्रमत्त संयत जो संख्यात होते हैं तथा संयता संयत जीवों का एक संयतासंयत गुण स्थान होता है।

विशेप यह है कि मिथ्यात्व गुण स्थान का सम्वन्ध नित्यनिगोद इतर निगोद

पृथ्वी जल तेल वायु प्रत्येक साधारण वनस्पति तथा अप्रतिष्ठित प्रतिष्ठित एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असेनी पंचेन्द्रिय जीव तथा त्रियंच देव नार की व मनुष्य सब की संख्या असंयत सम्यग्दृष्टि को भी संकलन करने पर चार गुण स्थान असंयम में ही होते हैं वे असंयत जीव अनन्तानन्त होते हैं। संयता संयत जीव संख्यात ही होते हैं।

सामायक छेदोपस्थापने प्रमत्तादनिवृत्तकरणे।
परिहार विशुद्धे द्वे प्रमत्ता प्रमत्ते संख्याताः ॥४२६॥
सूक्ष्मसांपराये खलु यथाख्याते संयाताश्चजीवाः।
तेऽपि सम्यग्दृष्टिनः गुणस्थानवत् संख्यात्पराः ॥४३०॥

सामायिक चारित्र प्रमत्त नामक छठवें गुण स्थान से लेकर अनिवृत्त करण तक चार गुण स्थान ही होते हैं। परिहार विशुद्धि सन्यत वाले जीव प्रमत्त और अप्रमत्त दो गुण स्थान में होते हैं। तथा छेदोपस्थापन चारित्र भी प्रमत्त गुण स्थान से लेकर अनिवृत्त गुण स्थान तक चार गुण स्थान होते हैं। तथा सूक्ष्म सांपराय संयत का एक सूक्ष्म सांपराय स्थान है। यथाख्यात चारित्र संयम में चार गुण स्थान होते हैं। उपशांत मोह क्षीण मोह, सयोग केवली अयोग केवली इनमें होता है। प्रमत्त सामायिक चारित्र के धारक जीवों की संख्या गुण स्थान के समान कही गई है तथा परिहार विशुद्धि वाले जीव संख्यात हैं तथा छेदोपस्थापना वाले जीव व सूक्ष्मसांपराय यथाख्यात चारित्र के धारी जीव गुण स्थान की चर्चा में कहे प्रमाण हैं ये सब संयम सम्यग्दृष्टि जीवों के होते हैं ॥४२६॥४३०॥

चक्षुदर्शनेऽसंख्यात चक्षुदर्शने कुदृष्टयोऽनन्ताः।
अवधिदर्शनेऽसंख्यात्सकलेन्द्रियार्भवन्ति जीवाः ॥४३१॥
नोद्भवन्ति कुदृष्टेषु केवलदर्शनं केवलज्ञानवत्।
असंख्यातानंताश्च सदृष्टि मिथ्यादृष्टिनः ॥४३२॥

चक्षुदर्शन वाले जोव असंख्यात होते हैं तथा अचक्षुदर्शन में मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त होते हैं अवधिदर्शन वाले जीव असंख्यात होते हैं वे सब ही सकलेन्द्रिय समनस्क होते हैं। प्रायः अवधि दर्शन में देव नारकी त्रियंच व मनुष्य चारों गति वाले सम्यग्दृष्टियों के ही होता है मिथ्यादृष्टि जीवों के अवधि दर्शन नहीं होता है। एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तथा मिथ्यादृष्टि जीवों के अवधिदर्शन नहीं होता है। इसलिए अवधिदर्शन वाले जीव अवधिज्ञान के समान ही होते हैं चक्षुदर्शन में चार इन्द्रिय से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त मिथ्यादृष्टि प्रथम गुण स्थान से लेकर बारहवें क्षीण मोह तक होते हैं वे जीव असंख्यात होते हैं। अचक्षुदर्शन में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीव होते हैं। तथा मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त वाले जितने जीव हैं उन सबके होता है इसलिए उनकी संख्या अनन्तानन्त है। ये दोनों दर्शन भव्य और अभव्य दोनों के होते हैं परन्तु अवधिदर्शन सम्यग्दृष्टि जीवों के ही होता है अन्य के नहीं। केवल दर्शन केवलज्ञान के समान क्योंकि केवलदर्शन केवलज्ञान प्रायः एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। इनकी संख्या केवलज्ञान के समान है ॥४३१॥४३२॥

कृष्णनीलकापोतत्रिलेश्याऽवनंताजीवाः ।
पीतपद्म लेश्यायोश्च संयतासंयताश्च संयताः ॥४३३॥
महिला वेदवत्सन्ति शुक्ल लेश्या युक्तार्मिथ्यात्विनः ।
भूषयन्ति सयोगान्तारलेश्याऽयोगिनः जिनाज्ञतिव्यः ॥४३४

कृष्णलेश्या में स्थित एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञो पंचेन्द्रिय पर्याप्तक चार गति वाले जीव अनन्तानन्त हैं। तथा नील लेश्या में स्थित अनन्त जोव हैं। तथा कापोत लेश्या में एकेन्द्रिय से लेकर पर्याप्तक पंचेन्द्रिय चार गति वाले मिथ्यादृष्टि आदि से लेकर असंयत गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि तक के जीव स्थित होते हैं। इसका कारण यह है कि अनन्तानुवंधी कषायों का उदय चौथे गुण स्थान वाले जीवों के पाया जाता है। तथा वंध से विच्छुत्ति सासादन गुण स्थान में ही होता है परन्तु उदय चौथे गुण स्थान वाले उपशम सम्यग्दृष्टि के पाया जाता है जिससे सम्यक्त्व का नाश कर सासादन कर मिथ्यात्वी वन जाता है। कापोत लेश्या वाले जीव भी अनन्तानन्त होते हैं। पीतपद्म लेश्यायों में स्थित मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुण स्थान वाले होते हैं वे भी द्रव्य स्त्रियों के समान असंख्यात जीव होते हैं। पीत पद्म ये लेश्यायें शुभ हैं वे नरक गति में नहीं होती हैं ये तीन गति वाले जीवों में ही पाई जाती हैं। शुक्ल लेश्या में मिथ्यादृष्टि प्रथम गुण स्थान से लेकर सयोगीजिन तक के जीव पाए जाते हैं वे जीव तीन गतियों की अपेक्षा असंख्यात होते हैं। ये सव लेश्यायें कषायों के तारतम्य रूप से होती हैं परन्तु सयोग केवली भगवान के कषायें तो नहीं रह जाती हैं ? सयोगी जिनके योगों की अपेक्षा करके शुक्ल लेश्या कही गई है ऐसा जिन प्रवचन है अयोगी जिन लेश्या रहित होते हैं।

भव्योऽनंतानन्ता सर्वस्थानेषु खलु दीव्यन्ति ये ॥
पुनोऽभव्याऽनंताश्च मिथ्यात्वैव स्थानं नित्यम् ॥ ४३५

भव्य जीव अनन्तानंत हैं वे मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अयोगो गुणस्थान पर्यन्त प्रकाशमान हो रहे हैं। तथा अभव्य जीव अनन्त हैं वे एक मिथ्यात्व गुणस्थान को ही विभूषित करते रहते हैं। भव्य जीवों के गुणस्थान भावानुसार वदलते रहते हैं। जव मिथ्यात्व भाव होता है। व मिथ्यादृष्टि जव सम्यक्त्व भाव होता है तव सम्यग्दृष्टि होते हैं। जव मिथ्यात्व और अनंतानुवंधी कषायों का उपशम या क्षयोपशम या क्षय हो जाला तव भव्य जीव सम्यग्दृष्टि वन जाता है जव कषायों की गति मंदतर होती जाती है वैसे ही परिणामों की विशुद्धता होती जाती है तव देश संयतादि गुणस्थान होते हैं। जव कषायों का उपशम होता है तव उपशमिक भाव होता है जव कषायों का क्षय हो जाता है तव क्षायक सम्यक्त्व यथाख्यात चारित्र हो जाता है। यथाख्यात होने पर ज्ञानावरणादि कर्मों का घातियाओं का नाश कर डालता है तव केवली वीतरागी सर्वज्ञ हो जाते हैं। भव्य अभव्य दोनों भावों से रहित सिद्ध भगवान होते हैं॥ ४३५ ॥

कुदृष्टयोऽनंतानंताः सासादन मिश्रासंयतार्जीवाः ।
उपशमिक क्षायक क्षयोपशमिक सम्यक्त्वानि ॥ ४३६०॥

पल्यस्यासंख्येयभागः संख्यातसंख्यातं गुणितं नित्यम् ।।
परमागमे च भणितं संख्या सर्व गुणस्थाने ।। ४३७ ।।

संसार अवस्था में तत्वार्थ श्रद्धान से रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव तो अनंतानंत होते हैं। वे अपने आत्मा के त्रिभेदों के ज्ञान-श्रद्धान से रहित होते हैं उनको देव धर्म गुरु के गुण स्वभाव को न जानने व श्रद्धान के अभावों में मिथ्यात्व के पोषक देव धर्म गुरुओं की अराधना कर मिथ्यात्व में ही रत रहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोक प्रमाण हैं। तथा सासादन सम्यग्दृष्टि मिश्र सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि तथा संयतासंयत पल्य के असंख्यात वे भाग प्रमाण होते हैं। असंयत चौथे गुण स्थान के आगे वाले जीव नियम से सम्यग्दृष्टि होते हैं। चौथे गुण स्थान में प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। तथा क्षयोपशम और क्षायक सम्यक्त्व होता है। इस सम्यक्त्व वाले जीव संयमासंयम प्रमत्त अप्रमत्त संयम के धारी होते हैं। परन्तु विशेष यह है कि अप्रमत्त गुण स्थान में दो भेद हो जाते हैं। पहला स्व स्थान दूसरा सातिशय सातिशय वाला जीव श्रेणी आरोहण करने के सन्मुख होता है। तववेदक सम्यक्त्व की प्रकृति को दबाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि बन जाता है। और श्रेणी चढ़ने की पूर्ण तैयारी कर लेता है तब अपूर्व करण गुण स्थान सातिशय वाले जीव के होता है वहां दो प्रकार से श्रेणी चढ़ता है एक उपशम दूसरी क्षपक श्रेणी से चढ़ते हैं। जो उपशम श्रेणी से चढ़ते हैं वे उपशमक कहलाते हैं जो क्षपक श्रेणी से चढ़ते हैं वे क्षपक कहे जाते हैं। अपूर्व करण उपशमक क्षपक होते हैं अनिवृत्त करण भी उपशमक क्षपक होते हैं उपशमक जीव चारित्र मोह की २१ प्रकृतियों का उपशम करता है और क्षपक श्रेणी वाला उन ही प्रकृतियों का क्षय करता है। सूक्ष्म सांपरायक भी उपशमक और क्षपक होता है उपशांत मोह वाला जीव उयशामक ही होता है इसमें क्षपक श्रेणी वाले जीव का गमन नहीं। इस गुणस्थान में चारित्र मोह का नियम से उदय आता है और उपशांत से च्युत होकर नीचे-नीचे क्रम से वा अक्रम से उतरता है परन्तु क्षपक श्रेणी से चढ़ने वाला जीव दशवें से वारहवें क्षीण मोह में ही जाता है उसका पात नहीं होता है वह क्षीण मोह गुणस्थान के भागों में ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय का नाश कर केवली नाम के तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त होता है। इन सवकी संख्या गुण स्थान में जितनी कहीं है उतनी ही जाननी चाहिये। विशेष यह है कि उपशम श्रेणी वाले जीवों की अपेक्षा क्षयक श्रेणी चढ़ने वालों की संख्या वहुत विशेष होती है। क्षायक सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा वेदक सम्यग्दृष्टियों की संख्या [illegible] है। चारों उपशामक तथा क्षपकों की संख्या गुणस्थान के समान कही गई है [illegible] संयतों का काल वहुत है इसी कारण संख्या भी अधिक है यह गुणस्थान [illegible] है।

समनकाऽमनस्काश्च मिथ्यात्वेऽनंतानंताऽसंज्ञिनः [illegible]
संज्ञिनोऽसंख्याताश्च मिथ्यात्वादिक्षीणेषु [illegible]

संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं एक असैनी [illegible] एकेंद्रिय जीव पृथिवी, जल, वायु, वनस्पति, तथा दो इन्द्रिय [illegible] इन्द्रिय, चार इन्द्रिय [illegible] इन्द्रिय तक के जीव असैनी होते हैं वे सब मिथ्यादृष्टि [illegible]

असैनी जीव अनंतानंत होते हैं। समनस्क जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर क्षीण मोह तक वारहवें गुण स्थान पर्यन्त होते हैं वे सब चारों गति करने वाले जीव असंख्यात होते हैं। सैनी जीव देव और देवियां तथा नारकी जीवों के गुण स्थान चार होते हैं। तथा त्रियंचों के पांच गुण स्थान होते हैं। तथा मनुष्यों में बारह गुणस्थान होते हैं वे सब ही गुण स्थान पूर्ण विशुद्ध पर्याप्तिवालों के ही होते है अपर्याप्त अवस्था में नहीं होते हैं। चौथे गुण स्थान वाले जीव नियम से सम्यग्दृष्टि ही होते हैं वे समनस्क ही होते हैं तथा चौथे से वारहवें गुण स्थान तक जीव सम्यग्दृष्टि सैनी होते हैं। सयोग और अयोग केवली समनस्क अमनस्क के विकल्प के रहित होते हैं। उनकी संख्या गुणस्थान के समान कही गई हैं।

अनाहारकाऽऽहारकाः त्रयोदशगुणस्थानेषुहारकाः ॥
अनाहारकाःमिश्रं वर्ज्यं सयोगस्थानेषु ॥ ४३६ ॥

संसारी जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त आहारक ही होते हैं। तथा अनाहारक जीव मिथ्यात्व, सासादन, असंयत सम्यग्दृष्टि व संयोग केवली इन चार गुण स्थानों में होते हैं।

विशेष यह है कि विग्रह गति में जीव अनाहारक होते हैं। जो कोई जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने के लिए जाता है जब तक वह नवीन शरीर को धारण नहीं कर लेता तब तक अनाहारक होता है बीच की गति को विग्रह गति कहते हैं उसमें जीव एक समय या दो समय या अधिक से अधिक तीन समय तक अनाहारक होता है। तत्पश्चात नियम से आहारक हो जाता है। जीव का मरण मिथ्यात्व सासादन असंयत सम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानों में ही होता हैं। संयता संयत से लेकर वारहवें व तेरहवें इत्यादि गुणस्थान में मरण काल में जीव नियम से असंयत हो जाता है। समुद्धात के सात भेद होते हैं। वेदना समुद्धात काषाय समुद्धात मरणान्तिक समुद्धात आहारक समुद्धात तैजस समुद्धात के दो भेद होते हैं शुभ और अशुभ और केवली समुद्धात कुल समुद्धात के सात भेद हैं। जब केवली भगवान के आयुकर्म के निशेक थोड़े रह जाते है और वेदनीय नाम गोत्र की स्थिति के निशेक अधिक रह जाते हैं तब उस आयु के समान करने के लिए केवली समुद्धात होता है वह आठ समय का होता है। प्रथम समय में दण्डाकार होकर के आत्मप्रदेश शरीर को न छोड़ते हुए बाहर निकलते हैं। दूसरे समय में कपाट रूप आत्मप्रदेश होते हैं तीसरे समय में जगत प्रतर होते हैं चौथे समय में आत्म प्रदेश लोक पूर्ण होते हैं अथवा लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उन सब प्रदेशों पर आत्मप्रदेश स्थित हो जाते हैं जिससे अघाति कर्मों की स्थिति काण्ड होकर आयु के बराबर स्थिति रह जाती है तत्पश्चात प्रथम समय में लोकपूर्ण से आत्म प्रदेशों का समिटना होता है तब लोक प्रतर लोकप्रतर से कपाट रूप से दण्डरूप आत्मप्रदेश हो जाते हैं। तथा एक समय दण्ड रूप रहकर पहले के समान ही निज शरीर में व्याप्त हो जाते हैं वहाँ पर भी जीव अनाहारक होते हैं। समुद्धात की अपेक्षा से तेरहवें गुण स्थान वाले केवली भी अनाहारक होते हैं। तथा अयोग केवली व सिद्ध भगवान निरन्तर अनाहारक ही रहते हैं। आहारक जब एक

शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर छहों पर्याप्तियों के योग्य नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर लेता है तब जीव आहारक होता है। आहार प्रथम समय में जब नोकर्म स्कन्धों को ग्रहण करता है तत्काल में उपादयोग होता है उसके पीछे वृद्धियोग होता है जब पूर्ण छहों पर्याप्तियां होने में एक समय बाकी रह जाता है तब पूर्णयोग होता है। इस योग की पूर्ति पर पांच इन्द्रिय छठा मन श्वास्वोच्छ्वास मनबल, वचनबल, कायबल, आयु ये सब पूर्ण हो जाते हैं इन सबका काल अन्तर्मूहूर्त है और एक एक काल भी अन्तर्मूहूर्त का है। अन्तर मूहूर्त के बहुत भेद हैं। आहारक और अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीव अनंतानंत होते हैं। सासादन से लेकर सयोगी गुण स्थान तक सब जीव आहारक होते हैं वे सब जीव अपने अपने गुणस्थान के समान होते हैं। मिश्र गुण स्थान में जीव का मरण नहीं होता है मरण काल में मिश्र गुणस्थान वाला जीव नियम से मिथ्यादृष्टि बन जायगा या असंयत सम्यदृष्टि बन जायगा तब ही उसका मरण होगा। सम्यग्दष्टि जीव मरण करके मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होता है देव मरकर देवों में नहीं, नारकी मरकर नारकीयों में नहीं उत्पन्न होते हैं। तथा देव भी नारकी नहीं होते हैं नारकी मरण कर देव नहीं होते हैं, सम्यग्दृष्टि त्रियं च मरण कर त्रियंचों में उत्त्पन्न नहीं होते हैं। विशेष यह है कि देव मरण के पीछे मनुष्यों में या त्रियंचों में उत्दन्न होते हैं तथा नारकी मरण कर मनुष्यों में व त्रियंत्रों में उत्पन्न होते है। सम्यग्दृष्टि देव व नारकीक मर र नियम से मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दृष्टि मनुष्य त्रियंच मरण कर देवों में ही उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व सहित देव व नारकी पंचेन्द्रि त्रियंचों में जन्म लेते हैं व देव एकेन्द्रियों में भी जन्म लेते हैं। बाल तपकर तथा अकाम निर्जरा कर के मनुष्य भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होते हैं। तथा सब नरकों व त्रियंचों में भी उत्पन्न होते हैं व मनुष्यों में भी जन्म लेते हैं। नारकी मरण कर तीर्थंकर हो सकते हैं परन्तु अन्य महापुरुषों में वे जन्म नहीं ले सकते हैं। देव सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर व बलदेव वासुदेव चक्रवर्ती कामदेव आदि पदों को प्राप्त होते हैं। सम्यक्त्व होने के पूर्व में नरक व त्रियंच व मनुष्य आयु का वंध कर लिया है उसके पश्चात सम्यक्त्व की प्राप्ति हो तो वे जीव प्रथम नरकें में जाते हैं यदि त्रियंच गति आयु का वंध कर लिया हो तो मरण कर भोग भूमि के मनुष्य व त्रियंच नियम से होते हैं। आगे के नरकों में मिथ्यादृष्टि जीव जाते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव नरक में वास कर दुःखों का भी अनुभव करते हुए आकुलित नहीं होते हैं वे विचारते हैं कि पूर्व में खोटे कर्म किये हैं जिसका फल तो तेरे को ही भोग ना होगा अब खेद खिन्न होने से क्या प्रयोजन इस प्रकार समझा कर दुःखों के बोझा को वहन करते हैं। मिथ्यादृष्टि भी इन दुःखों का अनुभव करते हुए संक्लिष्ट परिणामी होता है इसलिए मरण कर त्रियंचों में जन्म लेता है सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यों में। मिथ्यादृष्टि जीव बहुत हैं और सम्यग्दृष्टि जीव थोड़े हैं। इस प्रकार संख्या का निरूपण किया है विशेष आगम से जान लेना चाहिए। ४३९।

इति संख्या निरूपण

सदामिथ्यात्वे क्षेत्र रिजुमति वासं सकलस
द भव्या भव्यानां प्रथम गुणस्थानमविभवान्

गुणस्थानं सासादन मगृहिता योग मवशा
असंख्याद्भागक्षेत्र मवि ससयोगेन सकलम । ४४० ।

मिथ्यादृष्टि जीव सव लोक में निवास करते हैं इसलिए उनका क्षेत्र सब लोक है मिथ्यत्व गुण स्थान वाले भव्य और अभव्य सव ही जीव होते हैं पृथ्वी कायक अवकायक तेजकायक वायुकायक वनस्पतिकायक नित्यनिगोद इतर निगोद (दो इन्द्रिय तीन) इन जीवों का निवास क्षेत्र सव लोक है। तथा दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय सैनी असंनेपंचेन्द्रिय जीव लोक नाड़ी के भीतर निवास करलेते हैं। तथा पर्याप्ति की अपेक्षा से सर्व लोक क्षेत्र वन जाता है इस लोक में कोई आकाश प्रदेश वाकी नहीं रहा कि इस जीव ने उसको अपना जन्म क्षेत्र न वना लिया हो। सव जीव लोक के असंख्यातवे भाग में निवास करते हैं। भव्य सासादन सम्यग्दृष्टि मिश्र सम्यग्दृष्टि असंख्यात सम्यग्दृष्टि संयतासंयत गुणस्थान वाले जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है। विशेप यह है कि संयतासंयत गुणस्थान त्रियंच व मनुष्यों में ही होते है। मनुष्यों का क्षेत्र तो ४५ लाख योजन वाला अढाई द्वीप क्षेत्र है। त्रियंचों का क्षेत्र स्वयंभूरयण पर्यन्त निवास क्षेत्र है वह भी लोक का असंख्यात भाग होता है। इसलिए लोक का असंख्यात का भाग कहा गया है। आगे प्रमत्तादि सयोगी और अयोगी गुण स्थान मनुष्यों के हीं पाये जाते हैं सो मनुष्यों का क्षेत्र सामान्य से ४५ लाख योजन मात्र है। विशेष यह है कि जिन केवलीयों की आयु कर्म कम रह गया है शेष अघातिया कर्मों की स्थिति अधिक रह गई है उन केवलियों के समुद्घात होता है तत्काल में नीचे से लेकर ऊपर पर्यन्त सव लोक की ऊंचाई तक आत्म प्रदेश दण्डाकार होते हैं दूसरे समय में कपाट रूप फैलते हैं। तीसरे समय में जगत प्रतर रूप से आत्म प्रदेश होते हैं चौथे समय में लोक पूर्ण करते हैं। तव उस काल में मनुष्यों का क्षेत्र सर्वलोक होता है। जव आत्म प्रदेशों को समेंटते हैं तव पुनः चार समय में चरमशरीर के वरावर आत्मप्रदेश हो जाते हैं। तथा मरणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा गति आगति के प्रमाण से मनुष्यों का निवाश क्षेत्र लोक का असंख्यात भाग प्राप्त होता है कोई छठवेंनरक का नारकी मनुष्यायु का वंध कर मनुष्य भव के सन्मुख हुआ तव मनुष्य का क्षेत्र छह राजू नीचे हुआ। तथा कोई देव सर्वार्थ सिद्धि में से मनुष्यायु का वंधकर च्युत हुआ और विग्रह गति को प्राप्त हो एक मोड़ा या दो मोड़ा लेकर मनुष्य में उत्पन्न हुआ इस अपेक्षा से सात राजू ऊपर मनुष्यों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग ही होता है। सम्यग्दृष्टि जीव मरण कर मात राजू क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं इस प्रकार मनुष्यों का क्षेत्र दश राजू से कुछ कम प्राप्त होता है। असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है ।। ४४० ।।

नारकेषु चतुर्गुण स्थानेषु च लोकस्यासंख्येय भागः ।
त्रियश्चां सर्व लोकः मिथ्यात्वादि संयता संयताः ।। ४४ ।।

नरक गति में नरकों में मिथ्यात्व, ससादन, मिश्र, असंयतादि चार गुण स्थान होते हैं उन सातों पृथ्वीयों में निवास करनें वाले नारकियों का सामान्य से लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है। एक जीव की अपेक्षा शरीर की अवगाहना के समान क्षेत्र है।

त्रियंच जीवों के सामान्य से मिथ्यात्व से लेकर संयता संयत तक पांच गुण स्थान होते हैं परन्तु मिथ्यादृष्टि त्रियंचों का सर्वलोक क्षेत्र है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी कायक और पृथ्वी जीव, जल कायक और जल जीव, अग्नि कायक और अग्नि जीव, वायुकायक वायु जीव वनस्पति कायक, वनस्पति जीव सर्व लोक में जन्म मरण करते हैं (इसलिए) ये सव जीवों का एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। दो इन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेद्रिय जीव भी मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है अथवा लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र होता है। (सासादन) भव्य सैनी पंचेन्द्रिय त्रियंच पर्याप्तक साकार निराकार उपयोग से युक्त जीवों के सासादन मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुण स्थान पांच होते हैं इन गुण स्थान वाले जीवों की अपेक्षा लोक का असंख्यात भाग क्षेत्र होता है। क्योंकि दो तीन चार सैनी असैनी जीव त्रसनाली के अंतर्गत ही पाये जाते हैं। त्रियंच मरण कर या नारकी मरण कर मनुष्य लोक के त्रियंचों में उत्पन्न होते हैं तब लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र होता है। एक जीव की अपेक्षा जितना मुक्त शरीर है उतना ही क्षेत्र होता है ॥ ४४१ ॥

नृगतौ नृणां मिथ्यात्वाद्य योग केवलि स्थानः क्षेत्रः।
लोकस्यासंख्य भागं समुद्घाते सर्वलोकम्: ॥ ४४२ ॥

मनुष्यगति में गुणस्थान चौदह होते हैं इनका क्षेत्र भी लोक का असंख्यातवां भाग होता है। जो कोई देव मनुष्य आयु बांधकर मरा और मनुष्य में उत्पन्न हुआ इस प्रकार छह राजू से कुछ अधिक क्षेत्र हो जाता है तथा कोई नारकी नरक से मनुष्यायु का वंधकर विग्रह गति में है इस प्रकार भी मनुष्य का क्षेत्र छह राजू हो जाता है। यह लोक का असंख्यातवां भाग है। केवली भगवान के समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक मनुष्यों का क्षेत्र होता है उस काल में त्रस नाली के वाहर भी मनुष्यों का (रहना) क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। विशेष रूप से जितनी अपने शरीर की अवगाहना होती है उतना ही अपना निवास क्षेत्र होता है।

देवगतौ चतुरस्थानं लोकस्यऽसंख्येय भाग क्षेत्रम्।
दीव्यन्ते सर्वत्रः मरणान्तक वैक्रियक समुद्घात् ॥ ४४३ ॥

देवगति में देवों के चार गुणस्थान होते हैं। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत सम्यग्दृष्टि इन चार गुण स्थान वाले देवों का निवास क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है। अव मरणान्तक समुद्घात की अपेक्षा भी छह राजू प्राप्त होता है वैक्रियक समुद्घात की अपेक्षा देवों के आठ राजू प्राप्त होता है मान लीजिये कि कोई देव अपनी अवधि ज्ञान से जान लेता है कि मेरा मित्र तीसरे नरक में गया है तव वह वैक्रियक समुद्घात कर सोलहवें स्वर्ग से चलता है और तीसरे नरकत क पहुंचा और सम्वोधन करा तव देवों का क्षेत्र आठ राजू प्रमाण क्षेत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार भी लोक का असंख्यातवा भाग ही प्राप्त होता है। अथवा कोई मिथ्यादृष्टि देव मरणान्तक समुद्घात कर निगोद में जावे तो भी देवों का सर्व-लोक क्षेत्र प्राप्त नहीं होता है वह भी असंख्यातवां भाग क्षेत्र होता है। अथवा जितनी अपनी अवगाहना व विहार करने का क्षेत्र है ॥ ४४३ ॥

एकेन्द्रियाणां सर्वं लोकं विकलेन्द्रिय सकलेन्द्रियाणां
लोकस्याऽसंख्यातभागेषु निवास क्षेत्रं च ॥ ४४४ ॥

पृथ्वी कायक जल कायक अग्नि वायु वनस्पति कायक एकेन्द्रिय जीव सव लोक में जाते हैं अथवा सर्व लोक सामान्य से जन्म क्षेत्र है अथवा निवास क्षेत्र है। तथा दो तीन चार पांच इन्द्रिय सैनी असैनी जीवों का निवास क्षेत्र लोक का असंख्यातवा भाग में से कुछ भाग में निवास करते हैं क्योंकि त्रस जीव त्रस नाली के अन्तर्गत ही रहते हैं वाहिर नहीं। मरणान्तिक और वेदना तथा वैक्रियक व केवली इन समुद्‌घातों की अपेक्षा विचार करने पर पंचेन्द्रिय त्रश जीवों का सर्व लोक क्षेत्र होता है। तथा वैक्रियक और मरणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी लोक का असंख्यातवां भाग दोइन्द्रिय सेलेकरपंचेन्द्रिय जीवों का निवास क्षेत्र होता है। तथा अपने-अपने शरीर की अवगाहना के प्रमाण क्षेत्रकहा गया है। विशेष यह हैं कि एक समय में पाई जाने वाली पहले कही गई संख्या क्षेत्र सहस्र पृथकत्व संख्यावाले सयोग केवली स्वस्थान अपने अपने क्षेत्र की अपेक्षा से लोक का असंख्यात का भाग क्षेत्र है। असंख्यात भाग इस कथन से प्रतर समुद्‌घात होने पर लोक के असंख्यात के वहु भाग मात्र क्षेत्र जानना चाहिये। त्रिलोक सारमें कहाहै। सन्तासोदी चदुस्सदेत्यादिना। कथन से सव वातवलय अवरूद्ध क्षेत्र से सवलोक के असंख्यात भागका एक भाग मात्र होने से हीन हो तो सव लोक उनका क्षेत्र होता है लोक पूर्ण की अपेक्षासे सवलोक क्षेत्र कहा गया है। अथवा असंख्यात वे भाग इस प्रकार शब्द से समुद्‌घातकालमें असंख्यातभाग होने पर भी परपृष्ट इससे दण्डकपाट प्रतर लोक पूर्ण करता हैं इस अपेक्षासे पंचेन्द्रियों का सवलोक क्षेत्र कहा है। ३७६ ॥

पंचस्थावराणां च क्षेत्रः सर्वलोकं त्रस कायकाना-मेव च ॥
नृवद् वांग्मनसयोगिनां मिथ्यात्वान्ते सयोगिनां च। ४४५

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति इन पंच स्थावतरों के एक मिथ्यात्व का ही उदय रहता है इनका निवास क्षेत्र सवलोक है। दोइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त त्रश कायक जीवों का क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है अथवा सर्वलोक केवली समुद्‌घात की अपेक्षा से कहा गया है मन, वचन योग वाले जीवों का निवास क्षेत्र लोक का असंख्यातका भाग है। वचन योग वाले जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोगी जिन तक तेरह गुण स्थान होते हैं। वे जीव दो इन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं। तथा मनोयोगी एक पंचेन्द्रिय ही होते हैं वे भी मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोगी केवली तक होते हैं इनका निवास क्षेत्र लोक का असंख्यातवा भाग होता हैं। काययोग की अपेक्षा विचार करने पर एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सव जीव काययोगी होते हैं। एकेन्द्रिय की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र प्राप्त होता है। दोइन्द्रिय तीन चार इन्द्रिय असैनी पंचेइन्द्रिय तक जीवों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है तथा सयोगीपर्यन्त काय योग वाले जीवों के लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है तथा पंचेन्द्रिय काययोगी केवल समुद्‌घात की अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र होता है वैक्रियक काय वैक्रियक मिश्र काययोग मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर असंयत नामके चौथे गुण स्थान तक

होता है उनका क्षेत्र लोक का असंख्यात भाग है। औदारिक मिश्र चार गुण स्थानों में होता है। मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, सम्यग्दृष्टि तथा सयोग केवली। आगे तीन में तो मरण की अपेक्षा क्षेत्र कहा गया है परन्तु सयोग केवली के मरना भाव होने पर भी समुद्घात अवस्था में अनाहारक नियम से होते हैं। मरन होने के पीछे जीव संयता-संयतादि गुण स्थानों को छोड़ कर नियम से चौथे गुण स्थान में आजाता है उसकाल में ही अनाहारक होता है उसका काल एक समय, दो समय, तीन समय, जीव अनाहारक कहा जाता है तत्पश्चात नियम से आहारक हो जाते हैं। इनका क्षेत्र मिथ्यादृष्टियों का तथा केवली समुद्घात का क्षेत्र सब लोक है। सासादन असंयत सम्यग्दृष्टियों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है। तथा आहारक और आहारक योग वाले जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है। तथा आहारक मिश्रवाले जीवों का गुणस्थान के समान ही होता है। यह आहारक और आहारक मिश्र प्रमत्त नामके छठवें गुण स्थान में ही होते हैं। कार्माणयोग वाले जीवों का क्षेत्र औदारिक मिश्र के समान ही जानना चाहिये वकार से यह सूचित किया गया है।

काययोगिनां मिथ्यात्वाद्ययोगिनां गुणस्थानवद्
स्त्री पुंवेदानां खलु मिथ्यादृष्टिनिवृन्तानां ।। ४४७
मिथ्या छ्द्यादीनन्य निवृत्तानपगत वेदानां क्षेत्रम् ।।
वेदेनपुंसकेवा सर्वलोकः लोकासंख्यभागः ।। ४४८

काययोग के सात भेद होते हैं जो इस प्रकार हैं औदारिक औदारिक मिश्र वैक्रियक वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माणयोग ये सब भेदों का कथन कहकर वेदों की अपेक्षा क्षेत्र कहते हैं। स्त्री वेद, पुरुष वेद, की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग क्षेत्रहैं इन दोनों वेद वाले जीवों के मिथ्यात्व से लेकर अनिवृत्त करण तक नो गुण स्थान होते हैं। नपुंसक वेद वाले जीवों का सर्व लोक क्षेत्र है तथा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय असैनी जीव तक सवही नपुंसक वेद वाले होते हैं। तथा नारकी और सम्मूर्छन जितने जीव होते हैं। वे सव ही नपुंसक वेद वाले होते हैं। नपुंसक वेद में मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति करण गुण स्थान तक होते हैं। तथा त्रियंच मनुष्यों में भी नपुंसक वेद वाले होते हैं। सर्व लोक क्षेत्र एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से है। दो इन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त तक जीवों का लोक का असंख्यातवा भाग क्षेत्र होता है। वेद रहित जीवों के पांच गुणस्थान होते हैं।

क्रोधमान मायाश्च लोभकषायाणां नवस्थानम्
गुणस्थावत्क्षेत्रं भणितं श्रीजिनागमे भव्यः ।।४४९।।

क्रोध मान माया इन तीन कषायों का उदय और सत्व नौवे गुणस्थान तक पाया जाता है तथा लोभकषाय का उदय दशवे सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान तक पाया जाता है। एकेन्द्रिय तथा दोइन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्तमिथ्यात्व गुण स्थानवर्ती जीवों के चारों कषायें पायी जाती हैं। इनका सर्वलोक क्षेत्र होता है। तथा अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध, मान, माया इन चारों का उदय प्रथम गुण स्थान से लेकर अनिवृत्ति करण नाम के नौंवे गुण स्थान तक पाया जाता है इन कषायों से युक्त जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यात वा भाग है तथा सूक्ष्म

लोभ का। इन कषायों से युक्त सब संसारी जीव होते हैं।

कुमतिश्रुतविभंगिनां सर्वलोको वा लोकस्य क्षेत्रं
असंख्येयभागश्च स्थानं त्रयमिथ्यात्वादि वा। ४५०

कुमति कुश्रुति वाले जीवों के मिथ्यात्व, सासादन, और मिश्र तीन गुण स्थान होते हैं इन दोनों ज्ञान वाले जीवों का निवास क्षेत्र सर्व लोक होता है। क्योंकि ये दोनों ज्ञान नित्य निगोदिया जीव के अक्षर का असंख्यातवां भाग मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान होते हैं और वे ज्ञान निरावरण होते हैं वे जीव सूक्ष्म और वादर भेद वाले होते हैं। वे सब जीव सब लोक में फैले हुए हैं कोई एक आकाश प्रदेश वाकी नहीं कि जहां पर वे जीव नहीं पृथ्वी आदि स्थावरों में भी मतिश्रुत ज्ञान पाये जाते हैं। तथा दोइन्द्रिय से लेकर सेनी पंचेन्द्रिय तक मिथ्यात्व सासादन मिश्रवाले जीवों के ये दोनों ज्ञान पाये जाते हैं इसलिये उन दोनों का क्षेत्र सब लोक होता है। विभंगावधि ज्ञान देव, नारकी जीवों के होता है तथा त्रियंच मनुष्यों के भी संम्भव हो इसका क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है। विभंगावधि ज्ञान के तीन गुण स्थात होते हैं मिथ्यात्व सासादन और मिश्र ॥४७५॥

मतिश्रुतावधीनां च मनःपर्ययकेवलज्ञानीनां।
लोकस्या संख्येय भागोवा सर्व क्षेत्रं च ॥ ४५०

मति श्रुत और अवधि ज्ञान वाले जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है तथा मनःपर्यय ज्ञानियों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवा भाग है तथा गुण स्थान असंयत सम्यदृष्टि से लेकर क्षीण मोह तक के गुण स्थान होते हैं। मनःपर्यय ज्ञानियों का क्षेत्र सब लोक है अथवा मनुष्य लोक ही क्षेत्र होरहा है दूसरी वात यह भी हैं कि यह मन पर्यय ज्ञान संयमी छठवे गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह पर्यन्त वाले जीवों के होता है। केवल ज्ञानियों का क्षेत्र स्वस्थान की अपेक्षा लोक का असंख्यात का भाग होता है समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है। तथा गुण स्थान सयोगी और अयोगी दोही होते हैं। ॥४७६॥

पंचसंयतानां वा संसतासंयतानाँ च क्षेत्रम्।
लोकस्याऽसंख्येय गुणस्थानवद् भागः तथा ॥ ४५२ ॥

सामायिक क्षेदोपस्थापन ये दोनों संयम छठवें गुण स्थान से लेकर नौवें तक होते हैं परिहार विशुद्धि छठवें सातवें में सूक्ष्म सांपराय एक गुण स्थान में इन सबका क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है तथा यथाख्यात चारित्र का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग तथा सर्व लोक होता है संयमासंयम एक गुणस्थान होता है वह भी त्रियंच मनुष्यों के ही होता है उसका क्षेत्र भी लोक का असंख्यातवां भाग है। आगे के पांचों संयम मनुष्यों के ही होते हैं इसलिये इनका क्षेत्र मनुष्य लोक क्षेत्र है। ४७७

चक्षव चक्षव वधीनां चासर्गलोकः केवल दर्शनस्य।
मिथ्यादृष्ट्यादि क्षीण मोहकेवलीनां क्षेत्राम् ॥ ४५३ ॥

चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन केवल दर्शन वाले जीवों का क्षेत्र सामान्य से सर्वलोक अथवा

लोक का असंख्यातवां भाग होता है विशेष अचक्षु दर्शन एकेन्द्रिय से लेकर क्षीण मोह तक के जीवों के होता है। जिसमें एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र है तथा दो इन्द्रियादि की अपेक्षा लोक का असंख्यात वा भाग है। चक्षुदर्शन यह चारइन्द्रिय से होता है और क्षीण मोह तक वाले जीवों के होता है सामान्य से लोक का असंख्यातवां भाग है विशेष अपने इन्द्रिय की आवगाहना के प्रमाण होता है। अवधि दर्शन सम्यग्दृष्टी जीव के होता है इसका क्षेत्र अवधि ज्ञान के समान है तथा केवलदर्शन का केवल ज्ञानियों के समान ही क्षेत्र होता है।

कृष्णनीलकापोत लेश्यायुक्तानां सर्वलोकैव।
प्राक्चतुः स्थानं पीत पद्मे चशुक्ले ऽ सर्वक्षेत्रम्।। ४५४ ।।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवों का क्षेत्र निश्चय से सब लोक होता है पहले गुणस्थान से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि तक चार गुणस्थान होते हैं क्योंकि एकेन्द्रियादि सब जीवों की अपेक्षाएं सर्व लोक क्षेत्र होता है। पीतपद्मलेश्या वाले जीव मिथ्यात्व से लेकर अप्रमत्त तक गुणस्थान में होते हैं। इन दोनों लेश्या वालों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है, शुक्ललेश्या वाले मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोगी गुणस्थान् तक होते है उनका क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग है। अथवा भव के प्रमाण क्षेत्र होता है।

भव्याभव्यानां वा सर्वलोकक्षेत्रं सामान्यं च।
गुणास्थानवत्सर्वत्रैर भव्यानाँमिथ्यात्वैव ।। ४५५ ।।

भव्य तथा अभव्य जीवों का सर्व लोक क्षेत्र होता है। क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर सैनी पंचेन्द्रिय तक भव्य और अभव्य दोनों ही पाये जाते हैं। परन्तु सासादन से लेकर अयोग केवली तक तेरह गुणस्थान भव्य जीवो के ही होते हैं। अभव्य जीवों का एक मिथ्यात्व गुण स्थान नियम से होता है। एकेन्द्रिय जीव सर्वत्र लोक में पाये जाते हैं जिनमें भव्य जीव अनंतानंत है अभव्यजीव भी अनंत हैं तथा दूर भव्य भी अनंत है वे सब मिथ्यादृष्टि होते हैं और उनके जन्म मरण का क्षेत्र सर्व लोक है। इस प्रकार एकेन्द्रिय भव्य अभव्य दूर भव्य इनकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है। ऐसा कोई क्षेत्र बाकी नहीं रह जाता है कि जहां पर सूक्ष्म एकेन्द्रिय या बादर एकेन्द्रिय जीव न पाये जाय। मिथ्यात्व की अपेक्षा तीनों का निवास क्षेत्र सर्वलोक है गुणस्थान सासादनादि की अपेक्षा भव्य जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यात वाँ भाग होता है। भव्य केवली समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक हैं तब अभव्य पन्चेन्द्रिय की अपेक्षा लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र होता।। ४५५ ।।

उपशमक्षयोपशम क्षायक सम्यग्दृष्टीनां नित्यम्।
प्राक्चतुस्थानादि च यथायोग्य मयो गियन्तानां।। ४५६ ।।
सामान्यं क्षेत्रोक्तं सासादन मिश्र सम्यग्दृष्टीनां।
उपशमोपशान्तानां मिश्राप्रमत्तेऽयोगेक्षायकम्ः ।। ४५७ ।।

सम्यक्त्व के तीन भेद होते हैं प्रथमोपशम द्वितियोपशम क्षयोपशम और क्षायक ये तीनों ही सम्यक्त्व भव्य जीवों के ही होते हैं चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर अयोग गुणस्थान तक वाले जीवों के होते हैं। श्लोक में यथा योग्य यह शब्द दिया है! इसका कारण यह है

कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व चोथे गुण स्थान में उत्पन्न होता है और अन्तर्मुहूर्त पीछे सम्यक्प्रकृति का उदय आ जाने पर वही सम्यक्त्व क्षयोपशम तथा क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व होता है। श्रेणी चढ़ते समय क्षयोपशम सम्यक्त्व की देश घाति या प्रकृति को दवाकर। द्वितीयोपशम कर श्रेणी चढता है उपशांत मोह तक गुणश्रेणी निर्जराकर चढता है। इन दोनों प्रथम द्वितीय उपशम का क्षेत्र लोक का असंख्यात वा भाग है। क्षयोपशम सम्यक्त्व का भी तत्प्रमाण ही है क्षायक सम्यक्त्व का क्षेत्र सर्वलोक वा लोक का असंख्यातवां भाग है। सासादन और मिश्र का भी लोक का असंख्यातवां भाग क्षेत्र है। केवली समुद्घात की अपेक्षा क्षायक सम्यक्त्व का क्षेत्र सवलोक होता है। मिथ्यात्व का क्षेत्र सर्वलोक होता है।

समनस्कानां असर्वं लोकक्षेत्रम्मनस्कानां तथा।
सर्वक्षेत्रं द्वयोर्विना सामान्योक्तं क्षेत्रं जिना॥ ४५८॥

सैनी जीवों का क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग होता है मनरहित जीवों का क्षेत्र सारवलोक है। समनस्क जीव तो देव नारकी पंचेन्द्रिय त्रियंच तथा मनुष्य होते हैं ये सव लोक के असंख्यातवें भाग में ही निवास करते हैं। समनस्क अमनस्क दोनों भावों से रहित केवली जिन होते हैं उनका क्षेत्र गुणस्थान के समान ही जानना चाहिये।

आहारक जीवानां मिथ्यादृष्टयादि सयोगान्ताना।
सामान्योक्तंक्षेत्रं महारकाणां सर्वलोकम्॥ ४५९॥

आहारकजीवों का क्षेत्रसामान्य गुणस्थानके समान कहा गया है क्योंकि जितने संसारी देह धारी हैं वे सब ही आहारक होते हैं उनका क्षेत्र लोक का असंख्यातवां भाग होता है (अनहारकजीवों) यह भी इस प्रकार है कि आहारक जीव सर्वलोक में पाये जाते हैं क्योंकि वो एकेन्द्रिय सूक्ष्म वादर से लेकर विकलेन्द्रिय व सकलेन्द्रिय जीव होते है। अनाहारक जीव सर्वलोक में पाये जाते हैं इसलिए इनका भी सर्वलोक क्षेत्र हैं। एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र अहारक जीवों के होता है। त्रसोंकी अपेक्षा नहीं अनाहारक जीवों केविग्रहगति व केवली के समद्घात की अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र होता है विशेष अपने-अपने शरीर की अवगहना के समान क्षेत्र होता है।

इति क्षेत्र प्ररूपणा।

मिथ्यादृष्टीनां स्पर्शं सर्वलोकं च सासादनादि।
अयोगान्तानां च लोकस्याऽ संयेय भागः॥ ४६२॥

मिथ्यादृष्टि एकेंद्रिय जीवों का स्पर्श सव लोक में किया जाता है वे सव लोक में निवास करते हैं। तथा दो इन्द्रिय तीन, चार, पांच इन्द्रिय असैनी व सैनी जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। सासादनादि क्षीण मोह तक वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है। तथा सयोग केवलियों के स्वस्थान की अपेक्षा तो लोक का असंख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है केवली समुद्घात की अपेक्षा से सव लोक स्पर्श किया जाता है। (त्रसनली) सासादन गुण स्थान वाले जीवों के द्वारा त्रसनली

के एक भाग के आठवें भाग बारहवें भाग व चौदहवें भाग से कुछ कम आकाश का स्पर्श करते हैं। सासादन मिश्र असंयम सम्यग्दृष्टि जीव लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं। अथवा त्रसनाली के आठवें भाग चौदहवें भाग से कुछ कम क्षेत्र को स्पर्श करते हैं। संयतासंयत लोक नाडी के असंख्यातवें भाग को स्पर्श करते हैं।

अष्टौ द्वादश चतुर्दश भागे वा किंचिद्रूनं स्पर्शम्।
षट् चतुर्दशभागेन प्रमत्ताद्ययोगान्तानाम् ॥ ४६१ ॥

अथवा त्रसनाली के आठवें भाग तथा बारहवें भाग व चौदहवें भाग से कुछ कम आकाश प्रदेशों को स्पर्श करते हैं। प्रमत्तादि अयोगी गुणस्थान पर्यन्त वाले जीवों के द्वारा लोक नाडी का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। अथवा त्रशनाड़ी का आठवां भाग व बारहवां भाग व चौदहवां भाग से कुछ कम स्पर्श किया जाता है। तथा सयोग केवली समुद्‌घात की अपेक्षा सब लोक का स्पर्श करते हैं ॥ ४६१ ॥

नरकगतौ नारकैश्य लोकस्यासंथ्येय भागं स्पर्शम्।
सन्ति चतुर्गुणस्थानं भागोहीनं हीनं किंचित् ॥ ४६२ ॥

नरकगति में नारकी जीवों के चार गुणस्थान पहले के होते हैं उन चार गुणस्थान-वाले नारकी जीवों के द्वारा लोक नाड़ी का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है मिथ्या-दृष्टि जीवों का क्षेत्र लोक नाडी का छह राजू तथा सात राजू से कुछ कम क्षेत्र का स्पर्श किया जाता है। अथवा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। दूसरे आदि से लेकर सातवें नरक तक के नारकियों द्वारा पहले कहे गये प्रमाण से कुछ-कुछ कम क्षेत्र स्पर्श किया जाता है। यह लोक नाड़ी चौदह राजू प्रमाण है। उसके आठवे भाग को स्पर्श करते हैं। कोई बारहवें भाग को स्पर्श करते हैं कोई चौदहवें भाग को स्पर्श करते हैं। अथवा कुछ हीनता को लिये हुए स्पर्श करते हैं। सासादन मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। तीन गुणस्थान वाले जीव एक राजू दो तीन, चार, पांच राजू यथा लोक नाडी के चौदहवें भाग से कुछ ही कम क्षेत्र को स्पर्श करते हैं। एक नारकी जीव की अपेक्षा अपनी उपपाद शैया से लेकर अपने प्रस्तार के मध्य भाग का अपने शरीर प्रमाण स्पर्श करते हैं।

त्रियग्गतौ तिरश्चौ सलोकं मिथ्यादृष्टीना स्पर्शम्।
सासादनादि देश संयतः लोकसंस्यभागं ॥ ४६३ ॥

त्रियंचगति वाले मिथ्यादृष्टि त्रियंचों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है त्रियंच कहने से पृथ्वी, अप, तेज, वायु और पादप संसार निगोद नित्यनिगोद सूक्ष्म वादर सब जीव सर्वलोक में व्याप्त हैं वे सब ही प्रथम गुणस्थान वाले होते हैं उनके द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। तथा दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पांचेन्द्रिय सैनी असैनी तक मिथ्या दृष्टि जीव हैं तथा सर्व प्रथम गुणस्थान वाले होते हैं उनके द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। त्रियंच गति में पांच गुणस्थान होते हैं। सासादन गुणस्थान वाले त्रियंच सबसे थोड़े हैं उनसे भी कम देश संयत वाले त्रियंच जीव हैं वे सब एक राजू प्रमाण

लोक को स्पर्श करते हैं तथा विशेष अपने-अपने शरीर की अवगाहना के अनुसार स्पर्श कहते हैं।४३६।

नृगतोनृभिः स्वर्शनं मिथ्यादृग्भिः सर्वलोक लोकवऽसंयेय ।
शेषगुणस्थाने वा क्षेत्रवाज्जाज्ञातव्यं: विभागम्: ।। ४६४ ।।

मनुष्यगति में मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा लोक का असंख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है। मरण समुद्धात की अपेक्षा से भी लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। क्योंकि मनुष्य लोक मात्र ४५ लक्षयोजन प्रमाण ही है। परन्तु केवली सद्धात की अपेक्षा ग्रहण करने पर सर्वलोक मनुष्यों के द्वारा स्पर्श किया जाता है। मिथ्यात्व गुणस्थान सासादन इत्यादि क्षीण मोह गुणस्थान वाले मनुष्यों के द्वारा लोक का असंख्यात वा भाग स्पर्श किया जाता है। स्वस्थान सयोगी अयोगी जीवों के द्वारा अपनी अपनी शरीर की अवगाहना के प्रमाण ही आकाश प्रदेश स्पर्श किये जाते हैं। मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा भी लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। यथा कोई जीव सर्वार्थसिद्धि से च्युत हो मनुष्य में जन्म लेने को सन्मुख हुआ तव भी वह छह राजू से कुछ अधिक क्षेत्र को स्पर्श करता है वह भी लोक का असंख्यातवां भाग होता है। तथा छठवें से निकलकर कोई जीव मनुष्यायु का वंध कर विग्रहगति को प्राप्त हो तव भी छह राजू प्रमाण क्षेत्र हुआ वह भी लोक का असंख्यात भाग है अयोग केवलियों के द्वारा सात राजू स्पर्श किया जाता है तथा चौदह राजू से कुछ यक आकाश स्पर्श किया जाता है।४६४।।

देवगतौ देवैर्वा कृदष्टिभि र्जगतोर संख्येय भागाम्: ।
अष्टौ चतुर्दश भागा शेष स्थाने स्पर्श मूयते ।।३६५ ।।

देवगति में मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा जगत श्रेणी के असंख्यातवें भाग को स्पर्श किया जाता है। तथा सादन और मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों के द्वारा लोक नाडो का आठवें भाग से कुछ कम अथवा चौदहवें भाग से कुछ हीन स्पर्श होता है। मरणान्तिक समुद्‌ात की अपेक्षा भी सात राजू स्पर्श किया जाता है आठ राजू इसका यह कारण है कि मिथ्यादृष्टि देव मरण कर एकेन्द्रिय जीवों में लोक में कहीं भी उत्पन्न हो तव लोक का असंख्यतवां भाग स्पर्श होता है ।। ४६०।।

एकेन्द्रियैः स्पर्श सर्वलोको द्वीन्द्रियादिभि रसर्वः ।
असंख्यात भागोवा पंचेद्रियैः सर्वलोकम् ।।३६६।।

एकेन्द्रिय जीवों के द्वारा सव लोक स्पर्श किया जाता है ऐसा लोक का क्षेत्र बाकी नहीं है कि जहाँ पर एकेन्द्रिय जीव न पाये जाते हों। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म वादर के भेद से सव जगह विद्यमान हैं। इसलिये इनके द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। दो इन्द्रियादि पंचेन्द्रिय जीव के द्वारा केवली समुद्धात काल में सव लोक स्पर्श किया जाता है। एकेन्द्रि-यादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त मिथ्यादष्टि जीवों के द्वारा सव लोक स्पर्श किया जाता है। सासादन मिश्र गुणस्थान वाले पंचेन्द्रिय जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है असंयत सम्यग्दृष्टियों से लेकर अयोगी गुण स्थान ग्यारह होते हैं उन गुण स्थानों में रहने वाले सव जीव सैनी पंचेन्द्रिय हो होते हैं उनका स्पर्श लोक का असंख्यातवां भाग होता

है । तथा चौदह राजू से कुछ कम है । कम कहने का कारण यह है कि सम्यग्दष्टि देव नारकी मनुष्य और त्रियंच सब पंचेन्द्रिय ही होते हैं इनका क्षेत्र कुछ कम चौदह राजू है क्योंकि जोव त्रस नाली के अन्तर्गत हो पाये जाते हैं त्रसनाली तेरह राजू से कुछ अधिक है ।

स्थावरैः सर्वलोकं त्रशकायकौ पंचेन्द्रियवच्च ।
स्पर्शं यथाकाले च निपुज्यतां गुणस्थानेषु ॥४६७॥

पंचस्थावर कायक जीव सब लोक में ठसाठस भरे हुए हैं इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्र सब लोक है । त्रश कायक जीवों का स्पर्श लोक का असंख्यात वाँ भाग है तथा सर्व लोक होता है । विशेष गुणस्थानों के समान यहां पर भी जान लेना चाहिये ।

वाङ्मनोयोगिभिश्च सर्वलोकं स्पष्टं मिथ्यादृष्टिभिः ।
सासादनादिक्षीण कषायैर्वा गुणस्थान् वत् ॥४६८॥

मन वचन योग वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है तथा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है क्योंकि वचन योग सयोग केवली के समुद्घात काल में भी विद्यमान रहता है । तथा वचन योगी तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं । तथा द्रव्य मन रहता है परन्तु भाव मनका कार्य नहीं रह जाता है इसलिये उनको अमनस्क भी उपचार से कहते हैं । सयोग केवली की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शं है । गति आगति व मरणानिनक समुद्घात की अपेक्षा भी लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है । क्योंकि वांङ् मनयोगो त्रशनाली के भीतर हो रहते हैं । तथा सर्वलोक भी स्पर्श किया जाता है इसका कारण यह है कि किसी एकेन्द्रिय जीव ने दोइन्द्रिय या तीन, चार, पांच इन्द्रिय की आयुका वंध किया वह लोक के किसी भी भाग में था वहां से विग्रह गति को प्राप्त हुआ इस अपेक्षा से (जानना चाहिये) सर्वलोक मिथ्यादष्टिवचन योगी के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है । शेष गुण स्थान के समान है । ४६८

काययोगिभिः कुदृग्भिः सयोगान्त योगिभिः स्पर्शम् ।
सामान्योक्तं क्षेत्रं लोकस्यासंख्येय भागम् ॥३६९॥

काययोग वाले जीवों के द्वारा व मिथ्यादृष्टी व एकेन्द्रिय पृथ्वी काय से लेकर वनस्पति काय तक वाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है क्योंकि ये सव जीव औदारिक काय योगवाले हैं । तथा दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय त्रियंच मनुष्य इनके द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है । अथवा केवली समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है । औदारिक औदारिक मिश्र, वैक्रियक वैक्रियक मिश्र आहारक आहारक मिश्र और कार्माण इन सातयोग वालों में से पहले औदारिक योग वाले सर्वलोक को स्पर्श करते हैं तथा औदारिक मिश्रवाले सम्यग्दृष्टि भी सर्वलोक को स्पर्श करते हैं । वैक्रियक और वेक्रियक मिश्रवाले जीवों के द्वारा लोक नाडी के कुछ भाग को स्पर्श करते हैं अथवा $\frac{८}{१४}$ राजू स्पर्श करते हैं । आहारक आहारक मिश्रवाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है । कार्माण योग वाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है कि औदारिक काय, योग में गुण स्थान चौदह होते हैं तथा मिश्र में चार होते हैं मिथ्यात्व

सासादन असंयत और सयोग केवली। इनमें मराणान्तिक विग्रहगति व समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श होता है या एकेन्द्रिय जीव सर्वत्र व्याप्त होने की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श करते हैं। वैसे अपने अपने शरीर के बराबर ही स्पर्श करते हैं।

स्त्री पुंवेदाभ्यां सह कुदृष्टिभिः जगताः संख्येय भागः।
सर्वलोकं च वायत् नपुंसकवेदैः स्पष्टम् वा ॥४७०॥

स्त्रीवेद पुरुष वेद वाले मिथ्यादृष्टियों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है क्योंकि स्त्री वेदी पुंवेदियों का लोक सात राजू है। इन वेदों का विचार पहले गुणस्थान से लेकर अनिवृति करण तक कहा गया है इसका कथन भाव वेद की अपेक्षा है। सासादन आदि गुण स्थान वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है नपुंसक वेद वाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है क्योंकि नपुंसक वेद वाले जीव पंचस्थावर एकेन्द्रिय हैं वे सब ही नपुंसक वेद वाले हैं तथा सम्मूर्छन जन्म लेने वाले व नारकी जीव सबही नपुंसक वेद वाले होते हैं। इनके मिथ्यात्वादि चार गुण स्थान होते हैं। नपुंसक वेद वाले जीव दो इन्द्रियादि असैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब ही में होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से सर्व लोक स्पर्श किया जाता है दो इन्द्रियादि की अपेक्षा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। स्त्री व पुरुषों में जो नपुंसक वेद होता है वह भाव वेद है भाव वेद की अपेक्षा से अनिवृतिकरण गुणस्थान होता है उन गुणस्थानों में निवास करने वालों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। लोक नाडी का आठवाँ भाग चौदहवाँ भाग पांचवाँ भाग छठवाँ भाग से कुछ कम मरणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा स्पर्श कहा गया है। स्व शरीर की अपेक्षा जितनी अवगाहना वाला जितना बड़ा या छोटा शरीर हो उतना स्पर्श है।

सर्वकषायैः स्पर्श सर्वलोको वा एक पंचषट्।
अष्टौ चतुर्दशभाग लोकस्याऽसंख्येयभागः ॥४७१॥

कुल कषायें पंच्चीश होती हैं सामान्य से सबकषाय वाले जीवों के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। भिन्न भिन्न कषायों की अपेक्षा सर्व लोक अथवा लोक का असंख्यातवां भागअथवा एकराजू, पांच राजू, छहराजू, आठ राजू, अथवा चौदह राजू से कुछकम स्पर्श किया जाता है। इसका क्रम यह है कि संज्वलन कषाय वाले जीव त्रसनाली के एक राजू से कुछ कम लोक को स्पर्श करते हैं क्योंकि संज्वलन कषायें छठवें से लेकर सूक्ष्म सांपराय तक ही जीवों के पाई जाती हैं इसलिये इनका मनुष्य क्षेत्र होता है। तथा अप्रत्याख्यान कषाय संयता-संयत जीवों के होती है इनका क्षेत्र एक राजू प्रमाण होता है क्योंकि स्वयं भूरमण द्वीप के पंचेन्द्रिय त्रियंचों में संयता संयत होता है। अप्रत्याख्यान कषाय वाले जीवों के द्वारा पांच राजू स्पर्श किया जाता है तथा आठ राजू स्पर्श किया जाता है। हास्यादि नव नो कषायवाले जीवों के द्वारा चौदह राजू से कुछ कम क्षेत्र स्पर्श किया जाता है। इसका कारण यह है कि नो कषायें प्रत्येक चौकड़ी वाले जीवों के साथ पायी जाती हैं। अनंतानुबंधी कषायवाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। स्त्री और पुरुष वेद को छोड़कर एकेन्द्रिय से लेकर

असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा सम्मूर्छन जन्म लेने वाले व नारकी जीवों के एक नपुंसक वेद का ही उदय पाया जाता है इसलिये नपुंसक वेद कषाय वाले जीवों के द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। एकेन्द्रिय से लेकर असैनी और सैनी मिथ्यादष्टी जीवों के अनंतानुवंधी कषाय का उदय पाया जाता है इसकी अपेक्षा से सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। उपशय सम्यग्दष्टि जीव के जब सत्ता में से अनंतानुबंधी कषाय उदय में आ जाती है तब सासादन गुणस्थान बनता है। सासादन के पीछे मिश्र आदिक गुणस्थानों में अनंतानुबंधी कषाय का उदय नहीं है अप्रत्याख्यान कषाय का उदय पाया जाता है। उपशम सम्यग्दृष्टी जीव के अनंतानु बंधी की सत्ता पायी जाती है क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीवों के सत्ता है नहीं भी है क्षायक सम्यक्त्व वाले जीव के अनंतानु बंधी कषाय का सत्व नहीं रह जाता है। शेष कषायों का क्रम गुणस्थान के समान लगा लेना चाहिये। ४७१॥

कुमतिश्रुतविभंगावधि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययैः।
केवलज्ञानिनेश्च क्षेत्रवत्स्पर्श सर्वलोकं॥ ॥४७२॥

कुमति, कुश्रुति, विभंगावधि, वाले तथा मति श्रुतावधि और मनः पर्यय ज्ञान वाले जीवों के द्वारा स्पर्श क्षेत्र के समान कहा गया है तथा केवल ज्ञानियों के द्वारा सामान्य से सर्वलोक स्पर्श किया जाता है क्षेत्र के समान ही यहां स्पर्श जानना चाहिये ॥४७२॥

असंयतैर्जगत् देशसंयतैःजगतोऽसंख्येय भागं।
सर्वसंयतै स्पर्शं क्षेत्रवत्स्वात्व काले सदा ॥४७३॥

पहले मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर चौथे सम्यग्दृष्टी असंयत पर्यन्त सब गुणस्थान असंयत ही होते हैं।

असंयत जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। तथा विशेष-मिथ्यादृष्टि असंयत एकेन्द्रिय जीवों के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। तथा दो इन्द्रिय आदि त्रस-कायक असैनी व सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। तथा सासादन मिश्र व असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। देश संयत वा सकल संयतों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है तथा सयोगी के केवली द्वारा सब लोक व स्वस्थान की अपेक्षा अपनी-अपनी अवगाहना के समान ही स्पर्श किया जाता है। संयतों का गुणस्थान के समान स्पर्श होता है ।४७३॥

अचक्षुदर्शनः स्पर्शस जगत् चक्षुदर्शनैः पंचेन्द्रियवत् ॥
अवधिः केवल दर्शनैः सामान्योक्तं स्पर्शं चैव। ४७४॥

अचक्षुदर्शन वाले जीवों के द्वारा सबलोक स्पर्श किया जाता है। चक्षु दर्शन वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। अवधि दर्शन वाले तथा केवल दर्शन वाले जीवों के द्वारा अवधि ज्ञान और केवल ज्ञान के समान स्पर्श है।

विशेष—अवधि दर्शन असंयत सम्यदृष्टि जीव से लेकर वारहवें क्षीणमोह तक वाले संयमी जीवों के होते हैं उनके द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं। केवल दर्शन स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग को स्पर्श करते हैं तथा समुद्घात की

अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। यह अन्य प्रदेशों की अपेक्षा कथन है। ५७४॥

कृष्णनीलकापोत लेश्याभिः सर्वलोक स्पर्शम् ।
सासादन सुदृग्भिश्च जगतोऽसंख्येय भागवं। ४७५ ॥

कृष्ण, नील, कापोत, तीन अशुभ लेश्यावाले जीवों के द्वारा तीनों लोक स्पर्श किये जाते हैं तथा सासादन, मिश्र और असंयम सम्यग्दृष्टियों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है ।

मिथ्यादृष्टि जीवों के कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्याओं का उदय पाया जाता है वे मिथ्यादृष्टी जीव एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तथा असैनी और सैनी जीवों के ये तीनों लेश्यायें विद्यमान रहती हैं। तथा नारकी मिथ्यादृष्टी व सासादन व मिश्र असंयत गुण स्थान वालों के ये तीनों ही लेश्यायें पाई जाती हैं। तथा पहले नरक में जघन्य कापोत लेश्या होती है दूसरे में मध्यम तीसरे के ऊपरी भाग में उत्कृष्ट कापोत लेश्या तथा नीचले भाग में जघन्य नील लेश्या चौथे नरक में मध्यम नीललेश्या तथा पांचवें के ऊपरी भाग में उत्कृष्ट नील तथा जघन्य कृष्ण लेश्या पाई जाती है। छठवें नरक के मध्यमें कृष्ण लेश्या तथा सातवें नरक में उत्कृष्ठ कृष्ण लेश्या होती है। एकेन्द्रिय जीवों के प्रायः कृष्ण लेश्या पायी जाती है तथा अन्य भी पाई जाती है इसी लिये इन लेश्यावाले जीवों के द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। तथा सासादनादि गुण स्थान चार गती वाले सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के होते हैं। उनका स्पर्श लोक का असंख्यात वाँ भाग है। अथवा पांचवा भाग है अथवा आठवां भाग है अथवा चौदहवाँ भाग से कुछ हीन को लिये हुए स्पर्श करते हैं। यहां पर शिष्य प्रश्न करता है कि बारहवां भाग क्यों नहीं कहा ? समाधान-यहां पर कही गई लेश्याओं की अपेक्षा से पांच भाग हैं। किन्हीं आचार्य का मत है कि सासादन वाले जीव मरण कर एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न नहीं होते हैं इस मत के अनुसार बारहवां भाग नहीं दिया गया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि जीव लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं। ५०१ ॥

तेजोलेश्या कुदृगाद्य प्रमत्ते जगतोऽसंख्येय भागं ।
तथा पद्मलेश्याभिः शुक्ल कुदृगादि संयोगैः ४७६
कुदृग्देशसंयतैश्च जगतोऽसंख्येय भागं षट्चदतु श
प्रमत्तादिसंयोगान्तैः गुणस्थान वत्स्पर्श सदा ।।४७७

पीत लेश्या और पद्मलेश्या वाले जीव मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्त गुण स्थान तक होते हैं वे जीव लोक के असंख्यात वें भाग को स्पर्श करते हैं तथा लोक नाडी के आठवें भाग चौदहवें भाग से कुछ हीन आकाश को स्पर्श करते हैं। तथा विशेष यह है कि सम्यग्मिथ्या-दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि जीव लोक के असंख्यातवें भाग को स्पर्श करते हैं। जगत नाली के आठ राजू से तथा चौदह राजू से कुछ कम स्पर्श करते हैं संयतासंयत गुणस्थान में पीतलेश्या वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यात वां भाग स्पर्श किया जाता है। तथा साढे तेरह राजू को छोड़कर शेप रहता है उसमें से भी कुछ कम क्षेत्र को स्पर्श करते हैं प्रमत्त

और अप्रमत्त गुणस्थान वाले जीवों के द्वारा भी लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है।

पद्मश्लेया वाले जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक होते हैं। अथवा पद्मलेश्या अप्रमत्त गुण स्थान तक रहती है पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि सासादन मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श कियाजाता है। विशेष यह है कि पद्म लेश्या वाले जीवों के द्वारा लोक नाड़ी का ८वाँ चौदहवां भाग से कुछ कम लोक वाणी स्पर्श की जाती है। संयतासंयत वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यात वाँ भाग स्पर्श किया जाता है। अथवा पाँच राजू या चौदह राजू से कुछ कम को। प्रमत्ताप्रमत्त दो गुण स्थान वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है।

प्रथमतः शुक्ल लेश्या मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर सयोग केवली गुण स्थान वाले जीवों के होती है। मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत पांचवे गुण स्थान वाले जोवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है। बिशेष यह है कि शुक्ल लेश्या वाले जीव छह राजू तथा चौदहवें राजू से कुछ कम लोक का स्पर्श करते हैं। प्रमत्त से लेकर सयोगी पर्यन्त गुणस्थान के समान कहा गया है।

विशेष कापोत लेश्या का धारक मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि या संयतासंयत या प्रमत्त संयत मरणान्तिक समुद्धात करता है उस समय उसके परिणाम जिस योनि के योग्य होते हैं तव जीव प्रदेश उस स्थान तक जाते हैं और स्पर्श कर पुनः शरीर में आ जाते हैं उस काल में लोक नाडी का एक राजू से कुछ हीन व पांच राजू तथा वैक्रियक समुद्धात कर पीत लेश्या वाला पांच राजू ऊपर तथा तीन राजू नीचे तीसरे नरक तक गमन करता है तत्काल में आठ राजू स्पर्श होता है।

तम-तम प्रभा में रहने वाले कृष्ण लेश्या के धारक जीवों का मरण सासादन में नहीं होता है। इसलिए इनके मरण के अभाव की प्रतीति होती है। कोई जीव अन्तिम पाचवें नरक के प्रसार से नील लेश्या वाला सासादन सम्यग्दृष्टि मरणांतिक समुद्धात कर आत्म प्रदेशों का ऊपरी चित्रा पृथ्वी तक के क्षेत्र को स्पर्श करता है। उस समय सासादन वाला जीव लोक नाड़ी के चौदह राजू में से कुछ कम पांच राजू स्पर्श करता है। तीसरी पृथ्वी वालुका प्रभा के अन्तिम इन्द्रक प्रस्तारसे उत्कृष्ट कापोत लेश्या तथा जघन्य नील लेश्या में मरणान्तिक समुद्धात करता है तब चौदह राजू में से सासादन वाला जीव दो राजू से कुछ अधिक का स्पर्श करता है। २/३४३छठवीं पृथ्वी में रहने वाले जीवों के अशुभ लेश्या के धारक असंयत सम्यग्दृष्टियों का मरण होता है इसलिए लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श होता है। वह कैसे ? उनका मनुष्य लोक में उत्पन्न होने का सद्भाव होने से एक राजू विष्कम्भ होने पर सर्वत्र स्पर्श का अभाव होने से कहा है गमन के समान स्व स्थान की अपेक्षा से चौदह का आठवाँ भाग स्पर्श ८/३४३ राजू है। विहारवंत पीत लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि देव तीसरे नरक की पृथ्वी से अष्टम पृथ्वी वादर कायक जीव के द्वारा मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा

से चौदह राजू से ८ राजू तथा ८/३४३ स्पर्श होता है। गमन के समान ही स्व स्थान की अपेक्षा से लोक का आठवां भाग व लोक नाड़ी का आठ राजू होता है ८/३४३। पीत लेश्या वाले देश सयतों के द्वारा किए गए मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा से सात राजू अथवा चौदह का आधा भाग है। अथवा चौदह का तीन भाग होना चाहिए ३/३४३ ॥

सानत्कुमार महेन्द्र पर्यन्त पीत लेश्या का सद्भाव पाया जाता है इसका परिहार करने के लिएगोमट्ट सार जीवकांड में लेश्या मार्गणा के स्पर्शाधिकार में इस प्रकार समुद्धात में नौ का १४ भाग से थोड़ा कम है। आठ भाग प्रमाण है विहार के समान समुद्धात के काल में भी त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भाग प्रमाण स्पर्श होता है। तथा मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा चौदह भागों में से कुछ कम नव भाग प्रमाण स्पर्श है। उप-पाद,अवस्था में चौदह भागों में से कुछ कम डेढ भाग प्रमाण स्पर्श होता है। इसप्रकार पीत लेश्या का कथन तीन प्रकार से किया गया है। विहार के समान स्वस्थान वेदना समुद्धात कषाय समुद्धात वैक्रियक समुद्धात की अपेक्षा से लोक का आठवां भाग है ८/३४३ पहले कहे हुए चौदह के आठवें भाग प्रमाण यह क्रम जानना चाहिए।

पद्म लेश्या वाले देश संयतों के द्वारा की गई मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा से चौदह का पाचवां भाग है ५/३४३ राजू सहस्रार स्वर्ग के ऊपर पद्म लेश्या नहीं पायी जाती है। पद्म लेश्या का गमन के समान ही स्वस्थान वेदना कषाय तथा वैक्रियक समुद्धात में चौदह भाग में से कुछ कम आठ भाग प्रमाण ही स्पर्श है। मरणान्तिक समुद्धात में भी चौदह भाग में कुछ कम आठ राजू $\frac{८}{३४३}$ प्रमाण ही स्पर्श है। क्योंकि पद्म लेश्या वाले भी देव पृथ्वी, जल, वायु वनस्पतियों में उत्पन्न होते हैं। तैजस तथा अहारक समुद्धात अवस्था में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श है स्वभाव अवस्था में लोक के असंख्यातवें भाग मे से एक भाग प्रमाण स्पर्श होता है। पद्म लेश्या सतार सहस्रार स्वर्ग मध्य लोक से पांच राजू प्रमाण ऊँचा है। उपपाद की अपेक्षा से पद्म लेश्या का स्पर्श त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम पांच भाग प्रमाण है। ५/३४३ ॥

शुक्ल लेश्या वाले जीवों का स्वस्थान स्वस्थान में पीत लेश्या की तरह लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श है। विहारवत्स्वस्थान तथा वेदना कषाय वैक्रियक मरणान्तिक समुद्धात और उपपाद इन तीन स्थानों में चौदह भाग में से कुछ कम छह भाग प्रमाण स्पर्श होता है। तैजस तथा आहारक समुद्धात में असंख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श है। शुक्ल लेश्या वाले दश संयतों के मरणान्तिक समुद्धात की अपेक्षा चौदह का छठवां भाग स्पर्श है। ६/१४ ६/३४३ अच्युतकल्प से ऊपर उनकी उत्पत्ति का अभाव होने के कारण दूसरे जीवों के भी मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान तक वाले जीवों के चौदह के छठवां भाग से कुछ कम स्पर्श होता है ६/३४३। शुक्ल लेश्या वाले देवों का मध्य लोक से नीचे गमन नहीं होता है ऐसी युक्ति प्राप्त होती है। अन्यथा चौदह राजू का आठवां भाग भी आचार्यों ने शास्त्रों में कहा है उनका गमन मध्य लोक तक भी नहीं होता है केवल मरणान्तिक समुद्धात

की अपेक्षा से चौदह का छठवां भाग कैसे मानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि के उसका अभाव है।

आरणादि कल्पों तथा कल्पातीत देवों के एक शुक्ललेश्या होती है उनके द्वारा लोक का ८/३४३ राजू स्पर्श किया जाता है। केवली के उपचार से कही गई है क्योंकि उनके कषायों का क्षय हो चुका है परन्तु योग विद्यमान होने की अपेक्षा होती है। समुद्घात के चार भेद होते हैं एक दण्ड़ दूसरा कपाट तीसरा लोक प्रतर चौथा लोक पूर्ण होता है तत्काल में सर्व लोक स्पर्श होता है अन्य समय में उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक का असंख्यात वाँ भाग स्पर्श करते हैं ॥४७७॥

भव्यैः गुणस्थानत् अभव्यैः सर्वलोकैव स्पष्टम् ।
त्रय सम्यग्दृष्टिनामसंयतादि सयोगान्तैः स्थानम् ॥४७८॥

भव्य जीवों के द्वारा आकाश प्रदेशों को गुणस्थानों के समानस्पर्श किया जाता है। तथा अभव्य जीवों के द्वारा सर्व लोक स्पर्श किया जाता है। क्यों कि मिथ्यादृष्टि अभव्य एकेन्द्रिय जीव अनंत हैं वे सब जीव सर्व लोक में निवास करते हैं। तथा त्रसजीव हैं उनका गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है। भव्य जीव अनंतानंत हैं वे सबलोक व आकाश के प्रदेशों पर विराजमान हैं। एकेन्द्रिय पृथ्वी काय, अपकाय, अग्निकाय, वायुकायक जीव असंख्यातासंख्यात हैं। वनस्पति कायक, जीव अनंतानंत होते हैं उनके द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया जाता है। दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव त्रसनाली के भीतर रहते हैं इसलिये लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। मरणान्तिक वेदना वैक्रियकऔर कषाय समुद्घात की अपेक्षा भी लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। केवली समुद्घात की अपेक्षा सब लोक स्पर्श किया जाता है। सासादन मिश्र तथा उपशम क्षयोपशम क्षायक सम्यग्दृष्टियों का स्पर्श गुण स्थान के समान जानना चाहिए। संयतासंयत प्रमत्त संयत, अप्रमत्त, अपूर्वकरण उपशामक और क्षपक अनिवृत्त करण उपशमक क्षपक सूक्ष्म सांपराय उपशमक उपशांत मोह क्षीण मोह इन सब का स्पर्श गुण स्थान के समान है। तथा सयोगी अयोगी का भी स्पर्श गुण स्थान के समान ही है ।५०४।

संयतासंयतैर्जगतोऽसंख्येय भागमोपशामिकाः ।
क्षयोपशमिकै र्वा सासादनमिश्र सुदृष्टैस्तथा ॥४७९॥
सामान्यं स्पर्शं च कृद्गमनस्काना सर्वलोकश्च ।
चक्षुर्वत् संगिनैः द्वौव्यपदेशरहितानां स्थानवत् ॥४८०॥

संयतासंयत पांचवें गुणस्थान वाले जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टियों के द्वारा गुण स्थान के समान स्पर्श किया जाता है। तथा उपशम क्षायक सम्यग्दृष्टियों का जानना चाहिए ॥४८०॥

असैनी मिथ्यादृष्टी जीवों के द्वारा सबलोक स्पर्श किया जाता है। सेनी एक पंचेन्द्रिय देव नारकी मनुष्य या त्रियंच होते है उनके द्वारा चक्षु दर्शन वालों के समान स्पर्श किया जाता है। अथवा लोक का असंख्यातवां भाग तथा सैनी असैनी के विकल्पों से रहित

जीवों के द्वारा सब लोक स्पर्श किया जाता है। केवली समुद्‌धात की अपेक्षा से है तथा विग्रह गति वाले जीव तथा सिद्ध भगवान ये सब जीव सैनी असैनीपन से रहित हैं। उनका स्पर्श अपने-अपने गुण स्थानवत् गुणस्थानातीत है। ५८०॥

आहारकैः कुदृगादि क्षीणकषायान्तानां प्राग्वदुक्तः।
सयोगीभिश्च जगतोऽसंख्येय भागः स्पर्श वा ॥४८१॥
अनाहारक कुदृष्टभिः सलोकं सासादन दृष्टिभिः।
असंख्येय भागंवा एकादश चतुदर्श भागोनम् ।४८२ ॥
सयोगिभिश्च जगतोऽ सख्येय भागामुपदिष्टंजिनैः।
स्पर्शं सम्यक्त्वदि गुण सामान्यविशेषैव ॥४८३॥।॥

आहारक जीवों के द्वारा गुणस्थान में कहे गये प्रमाण स्पर्श कहा गया है। वह मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त गुणस्थान में जानना चाहिए। क्योंकि इनका स्पर्श समुद्‌धात व मरणान्तिक समुद्‌धात व विग्रह गति से रहित है इसलिए प्रत्येक का अपने अपने शरीर के प्रमाण स्पर्श किया जाता है। अनेक जीवों की अपेक्षा सब लोक स्पर्श किया जाता है। केवली भगवान समुद्‌धात अवस्था में भी एक अपेक्षा से आहारक रहते हैं क्यों कि समुद्‌धात काल में भी अपने मूल शरीर को नहीं छोड़ते हैं परन्तु उनके शरीर से असंख्यात प्रदेश बाहर निकलते हुए भी शरीर में असंख्यात प्रदेश रहते हैं। अनाहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टियों के द्वारा सवलोक स्पर्श किय जाता है। तथा सासादन सम्यदृष्टियों के द्वारा लोक का असंख्यातवां भाग चौदह भागों में से कुछ कम ग्यारह भाग ११/३४३ स्पर्श किया जाता हैं। अनाहारक अवस्था में संयोगी जिन के द्वारा सवलोक स्पर्श किया जाता है। सब गुण स्थान व मार्गणा स्थानों में जैसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है वैसा जानना चाहिये। ।४८१।४८२।४८३।

काल की प्ररूपणा करते हैं।

सामान्यविशेषकालं त्रिविधोऽनाघनंतानादिशान्तश्च ॥
सादिशान्तश्च भव्यैः अभव्यानांमनादिनान्तः। ४८४॥

काल दो प्रकार कहा गया है एक सामान्य दूसरा विशेष। सामान्य से भव्य और अभव्यों का काल अनादि अनंत है। एक जीव की अपेक्षा कर काल का कथन करना विशेष है। काल तीन प्रकार का है एक काल अनादि अनंत दूसरा अनादिशान्त तीसरा सादि शान्त इस प्रकार हैं। अभव्य और दूरानदूर भव्यों की अपेक्षा विचार करने पर अनादि और अनंत है तथा भव्य जीवों को अपेक्षा विचार करने पर अनादि शान्त तथा सादि शांत काल होता है। जिनको ससार अवस्था में अनंत उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी व हुण्डासर्पिणी काल व्यतीत हो चुके हैं और उत्सर्पिणी और अवसर्पिणो हुंडा सर्पिणीकाल अनंतानंत वीतने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगे उनके काल को अनंतानंत काल कहते हैं। जिन जीवों ने अनन्तकाल से अभी तक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है परन्तु कुछ काल वीत जाने पर जीवों ने एक वार उपशम सम्यक्त्व को प्राप्तकर अन्तर्मुहुर्तकाल व्यतीत कर पुनःमिथ्यादृष्टी बन गया हैउसको

ही फिर से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो उस भव्य जीव की अपेक्षा काल सादिशाँत होता है। जो जीव उपशम श्रेणी से चढ़ कर मिथ्यात्व और अनंतानुवंधी के वंध का अभावकर विशेष यह है कि अनादि मिथ्यादृष्टी जीव ने अनंतवार विना सम्यक्त्व के पंचपरावर्तन रूप संसार में रहकर काल व्यतीत किये परन्तु सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई। तथा ऐसा काल नहीं प्राप्त हुआ कि जिसमें सम्यक्त्व के योग्य भाव हुए हों। तथा अनंतवार पंच परावर्तनों को परिपूर्ण करे फिर भी सम्यक्त्व के योग्य भाव अनेक काल तक प्राप्त नहीं होगा उस अभव्य तथा दूर भव्य की अपेक्षा कर अनादि अनंत कहा गया है। परन्तु इन दोनों में भी भेद है अभव्य जीव को तो सम्यक्त्व उपार्जन के अनेकानेक कारण मिलते हैं तथा अनेकवार मुनिव्रत धारण कर घोर तपस्या करके नव गैवेयक तक जाता है परन्तु सम्यक्त्व की योग्यता न होने के कारण संयोग मिलनेपर भी अनंत संसारी ही रह जाता है। दूर भव्य जिसको ऐसा योग कभी प्राप्त नहीं होता है कि जिससे वह सम्यक्त्व को ग्रहण करे। वह तो नित्य निगोद या पृथ्वी कायक, जल, तेज, वायु और वनस्पति कायक तथा दो इन्द्रियां तीन चार असैनी पंचेन्द्रिय व सैनी पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हुए भी गुरुओं का उपदेश मिलता नहीं मिल जाये तो उसके धारण करने के भाव नहीं होते हैं। जिनकी शंखावर्तयोनि है उनके तो संयोग मिलने पर गर्भ रह नहीं सकता है परन्तु जिनकी योनि तो वंश पत्र है परन्तु उनके संयोग का अभाव होने के कारण पुत्र की उत्पत्ति नहीं। अभव्य जीव तो वाँझ के समान है दूर भव्य विधवा (बाड़) के समान है भव्य जीव कुमारी के समान हैं। उसकी जव शादी होगी और पति का संयोग मिलेगा और सन्तान की उत्पत्ति होगीं ही। दूर भव्य भी अनंत काल से संसार में भ्रमण करता चला आ रहा है उसको सम्यक्त्व प्राप्त करने का नियोग नहीं मिलता है और अनंतानंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल वीत जाने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी वे दूर भव्य हैं जिन जीवों ने पहले क्षयोपशम विशुद्धी देशना प्रयोग तथा करण लब्धी को प्राप्त कर अनंतानुवंधी क्रोध मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व इन पांच का उपशम कर या सात का उपशम कर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर सम्यक्त्व से च्युत होगया है और मिथ्यादृष्टो बन गया है। वह जीव अर्धपुद्गलापरावर्तन के कुछ कम कोटि पूर्व शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर वेदक सम्यक्त्व को करता है और क्षय करने के सम्मुख होता है तत्काल में कृत-कृत वेदक को करके क्षायक-सम्यग्दृष्टी बन जाता है। और संयम को धारणकर मोक्ष को प्राप्त होता है। इस प्रकार सादि साँत है। अथवा कोई जीव द्वितीयोपशम को प्राप्त कर उपशम श्रेणी माड़ी और चरित्र मोह की संज्वलन कषायों को दवाता गया और उपशान्त मोह को प्राप्त हो तदनंतर संज्वलन लोभ का उदय में आजाने के कारण उपशांत मोह से गिरा और नीचे के गुण स्थानों को प्राप्त कर अन्त में मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ और मरण को प्राप्त हो कुदेवों में उत्पन्न हुआ वहां से चतुर्गति निगोद में जाकर उत्पन्न हुआ और अर्धपुद्गला परावर्तन तक संसार में जन्म मरण के दुःख सहन कर अन्तं में सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षायक सम्यग्दृष्टी हो संयम धारण करके सब कर्मो की जंजीर वंधन को तोड़कर मोक्ष को प्राप्त करता है इस

अपेक्षा से सादि शान्त है।

मिथ्यादृष्टिनां खलु सर्वकालोऽनाद्यनंतं जिनोक्तम्।
भव्यानां शादिसान्त मनाद्यवसानं सामान्यम् ।४८५।।

भव्य मिथ्यादृष्टी जीव समान्य अनादि अनंत काल तक पाये जाते हैं उनका सव काल है। सम्पक्त्व की उत्पत्ति की अपेक्षा से अनादि शान्त कहा गया है। पहले जिन्होंने उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर सम्यक्त्व से च्युत हो सासादन को प्राप्त हो पुनः दर्शन मोह का वन्धक होकर वह उदय में आया तव वह मिथ्यादृष्टि हुआ और पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त होगा इस अपेक्षा से भव्य जीवों के सादिशांत कहा है। कोई अनादि काल से मिथ्यात्व में रत होकर पंचपरावर्तनों को अनेकवार कर चुका तव पंचलब्धियों को प्राप्त हो उपशम सम्यग्दृष्टी हुआ और उसके काल को पूरा होने के पूर्व में ही सम्यक्प्रकृति का उदय आया तथा सर्वघातिओं का उदयाभावीक्षय किया कषायों का विसंयोजन कर क्षयोपशम कर सम्यग्दृष्टि हुआ तव केवली के चरण को प्राप्त हो कृत-कृत वेदक होकर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त किया और मरण को प्राप्त हुआ और देवों में उत्पन्न होकर वहां की आयुका भोग कर मनुष्य हुआ और आठ वर्ष की उम्र में मुनि दिक्षा लेकर कर्मों का नाश करेगा इसी अपेक्षा से आदि शान्त है।४८५।

सादि शान्तं जघन्ये चान्तमुहूर्ता

सादिशान्तानां काल मन्तर्मुहूर्तार्धद्रव्य परावर्तनम् च।
विशेष सामान्यैकमुपशमकानां तथैव ।।४८६।।

सादि शान्त का जघन्य काल अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्टता से अर्धपुद्‌गल परावर्तन से कुछ कम काल है। गुण स्थानों की अपेक्षा विचार करने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त है तथा उपशम श्रेणी चढ़ने वाले द्वितीयोपशम का काल है। तथा क्षयोपशम का जघन्य काल है। किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और अन्तर मुहूर्त के पीछे छूट गया तव अर्धपुद्‌गल परिवर्तन का शेष काल जव पूर्व कोटि से कुछ अधिक रह जाता है उस समय में पुनरपि उपशम व क्षयोपशम व क्षायक कर क्षपक श्रेणी से चढ़ कर केवल ज्ञान को प्राप्त करता है तथा मोक्ष को प्राप्त करता है। कोई अनादि मिथ्यादृष्टी जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्रथम समय में प्राप्त किया तदनन्तर सम्यक्त्व प्रकृति का उदय में आ जाने पर सर्व घातिया प्रकृतियों का उदया भावी क्षयकर क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो अप्रमत्त गुण स्थान को प्राप्त हुआ और कृत कृत्य वेदक को प्राप्त हो सव सातों का क्षयकर क्षपक श्रेणी से चढ़ा और अन्तर मुहूर्त में केवली हुआ और निर्वाण को प्राप्त हुआ इस अपेक्षा से जघन्य से अंतर मुहूर्त काल होता है। इस प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। शादि शांत का काल कहा गया है।४८६।

समयःसासदनानामुत्कृष्टं पल्यासंख्येय भागः।
जघन्येन समयैव उत्कृष्टं षडावलिकश्च ।।४८७।।

सासादन, सम्यग्दृष्टी गुण स्थान का काल सामान्य से अल्प काल का असंख्यातवां

भाग है तथा जघन्य एक समय है। एक जीव की अपेक्षा सासादन सम्यक्त्व का काल एक समय है। तथा अधिक से अधिक काल छह आवली प्रमाण है तत्पश्चात् वह सासादन वाले जीव नियम से स्वस्थान पतित होकर मिथ्यादृष्टी बन जाते हैं।

लघुमिश्राणांकालः द्वौघटिके पल्यसंख्येय भागः।
हीनाधिकमानं च अन्तर्मुहूतं जानीहि ॥४८८॥

मिश्रगुण स्थान में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का जघन्य काल दो घड़ी है और उत्कृष्ट काल पल्य का असंख्यातवां भाग है। एक जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट और जघन्य काल अंतर मुहूर्त है ऐसा जानना चाहिये।४८८।

असंयतसदृष्टिनां सर्वकालो वान्तमुहूर्त च :
विशेषैवषट्षष्ठि त्रायंभिशत्सा गरैवम् ॥४९९॥

असंयत सम्यग्दृष्टियों का जघन्य काल अन्तमुहूर्त है। और उत्कृष्ट सर्व काल सामान्य से कहा गया है। क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि जीव हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। विशेष यह है कि एक जीव व अनेक जीवों की अपेक्षा विचार किया जाता है तव अनेक जीवों की अपेक्षा तो सब काल प्राप्त होते है कि कोई ऐसी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल नहीं कि जिसमें उपशम क्षायक क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव न रहते हों परन्तु रहते ही हैं। एक जीव की अपेक्षा उपशम सम्यक्त्व का काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का जघन्य काल अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट छयासठ सागर है क्षायक सम्यक्त्व का काल जघन्य से अन्त मुंहूर्त है उत्कृष्टता से तेतीससागर प्रमाण से कुछ अधिक है उसके पीछे मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

विशेष—उपशर्म सम्यक्त्व वाला जीव अंतर्मुहूर्त के वीत जाने पर कषायों का उद होने पर सम्यक्त्व से गिर जाता है और सासादन को प्राप्त होता हुआ मिथ्यदृष्टि वन जाता है। यदि उपशम सम्यक्त्व को विराधना नहीं करता है तो अनंतर अन्तर मुहूर्त के अन्त-र्गत सम्यक्प्रकृति उदय में आजाती है तव वह जीव नियम से क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि वन जाता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव का जघन्य से अंतर मूहूर्त काल है। यह कैसे ? उत्तर—कोई जीव ने क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो उपशम श्रेणी चढने के सन्मुख हुआ और क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्रकृति को दवा कर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो उपशम श्रेणी से चढ़ा। तथा अन्त मूंहूर्त काल वीतने के पहले कृत कृत्य वेदक होकर पीछे सम्यग्प्रकृति का क्षय कर क्षायक सम्यग्दृष्टि वन जाता है इस प्रकार क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य काल अंतर्मुहूरत प्राप्त होता है। तथा उत्कृष्ट काल क्षयोपशम सम्य-क्त्व का छयासठ सागर प्रमाण है। यह कैसे ? उत्तर—कोई जीव क्षयोपशभ सम्यक्त्व को प्राप्त कर तिष्ठा और छयासठ सागर का जव दो घटी काल शेष रहा तव उपशम श्रेणी से चढा और उसको द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कर उपशान्त मोह को प्राप्त हो चरित्र से च्युत हुआ अन्त में सम्यक्त्व से च्युत हुआ तब छयासठ सागर उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। अथवा छयासठ सागर के अन्तर्मुहूत अवशेष रहने पर सम्यग्प्रकृति का क्षय कर क्षायक

सम्यग्दृष्टि वन जाता है इस प्रकार भी काल छयासठ सागर प्राप्त होता है। क्षायक सम्यग्दृष्टी का काल जघन्य से अन्तमुहूर्त कहा गया है और वह इस प्रकार है कोई वेदक सम्यग्दृष्टि जीव केवली श्रुत केवली के समीप में जाकर कृत कृत्य वेदक को यक्ष कर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षयक श्रेणी माड़ कर चढा और अन्तर्मुहूर्त में घातिश्रा और अघातिया कर्मों को क्षय कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ। एक जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त होता है। तथा किसी जीव को क्षायक सम्यक्त्व कर संसार में भ्रमण करे तो तेतीस सागर प्रमाण तक संसार में भ्रमण कर मोक्ष को प्राप्त होगा तथा यह विशेष है कि क्षायक सम्यक्त्व होने के पीछे जीव कोटिपूर्व से अधिक (आठ वर्ष) एक समय कम तेतीस सागर तक ससार में रहता है इसका कारण यह है कि किसी जीव ने मरण काल के अंतर मुहूर्त पहले कृतकृत्य वेदक हो केवली के पाद मूल में क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त हो मरण को प्राप्त हुआ और सर्वार्थसिद्धि में देव हुआ वहां की तेतीस सागर का भोग कर मरा और पूर्वकोटि की आयु वाले कर्म भूमियां मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और आठ वर्ष की वय में सकल संयम को धारण कर क्षायक श्रेणी से चढ और केवली वन कर मोक्ष को प्राप्त हुआ इस अपेक्षा से क्षायक वाले का काल प्राप्त होता है।४८९।

संयतासंयतानां सामान्य सर्वकालोजघन्यम्।
विशेषान्तर्मुहूर्तं पूर्वकोटि देशोनधिकम् ॥४९०॥

संयतासंयत जीवों के वासना काल हमेशा विद्यमान रहते हैं यह सामान्य है। एक जीवने सयमासंयम को धारण किया और अन्तरमूहूर्त रहा कोई अप्रत्याख्यानावरण कषायों का उदय और वाह्य अन्यकारणों के मिलने पर सयमासंयम की विराधना करके असंयमी होगया अथा मरण को प्राप्त हुआ तव वहां पर असंयमी वन जाता है इस अपेक्षा से अंतर मुहूर्त प्राप्त होता है क्योंकि मरण काल व विग्रह गति में नियम से चौथा गुण स्थान होता है। किसी जीव ने सयमासयम को आठ वर्ष छह मास की वय में धारण किया और पूर्व कोटि से कुछ कम आयुका भोग कर मरा और कल्पवासी देवों में उत्पन्न हुआ इस प्रकार जीव का उत्कृष्ट काल है पूर्व जन्म से कुछ कम रहने का भी यह कारण है कि आठ वर्ष तक व्रत धारण करने की शक्ति प्रकट नहीं होती है। यही देशोन कहने का कारण है। ४९०।

प्रमत्ता प्रमत्तानां सर्वकालोत्कर्ष स्तोकश्च वा।
जीवस्य स्तोकैक समयोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम् ॥४९१॥

सामान्य से प्रमत्त और अप्रमत्त गुण स्थान वाल जीवों का सव काल है अथवा सर्व काल में रहते हैं। ऐसा कोई समय खाली नहीं रहता है। कि जिस समय में प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान वाले जीव न हों। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर सव से कम काल एक समय है एक समय कहने का कारण यह है कि प्रमत्त अप्रमत्त संयत एक समय में अप्रमत्त दूसरे समय में प्रमत्त होता है तथा पहले समय में प्रमत्त दूसरे समय में अप्रमत्त इस प्रकार स्वस्थान वाले अप्रमत्त और प्रमत्त संयम वाले जीव भूला भूलते रहते हैं। जो सातिसय अप्रमत्त होते हैं वे जीव समय पश्चात् अपूर्व करण को प्राप्त हो जाते हैं। तथा उत्कृष्टता

से दो घड़ो काल होता है। अथवा मरणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट काल होता है। इसका कारण यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्था में मरण का अभाव है।

चतुरूपशमकानां च स्तोकैक समयोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम्।
चतुःक्षपकानां खलु जघन्योत्कृष्ट ज्ञातव्यः ॥४६२॥

उपशम श्रेणी से चढ़ने वाले जीवों का काल जघन्यता से एक समय है उत्कृष्टता से अन्तर्मुहूर्त है तथा प्रत्येक गुण स्थान का भी अन्तर्मुहूर्त काल है। तथा क्षपक श्रेणी चढने वालों का जघन्य और उत्कृष्ट काल मुहूर्त प्रमाण है। एक समय कहने का यह कारण है कि जीव के भाव प्रति समय वदला करते हैं यदि कोई जीव उत्तम संहनन का धारी हो तब उसके एक से भाव वढते हुए दो घड़ी तक रहता हैं इस अपेक्षा से दो घड़ी उत्कृष्ट काल चारों उपशामक वालों का होता है तथा क्षायक वालों का परन्तु विशेष यह है कि उपशमक तो उपशान्त तम जाता है परन्तु क्षायक क्षीण मोह नाम के गुणस्थान को दशवें से प्राप्त होता है। अपूर्वकरण उपशायक और क्षायक दोनों के भाव एक समान ही उज्ज्वल होते हैं। अपूर्व करण में अपूर्व भाव होते हैं। अनिवृत्त करण में उससे भी उज्ज्वल परिणाम होते हैं सूक्ष्म सांयराय में उससे भी उज्ज्वल परिणाम होते हैं। तथा उपशांत मोह में उपशम जीव जाता है। परन्तु क्षपक श्रेणी से चढने वाला नहीं जाता है ॥४६६॥

सर्व क्षपकाणां स्तोका स्तोकौ च कालोऽन्तर्मुहूर्तम्।
सिद्धानंता क्षपकाः कालोऽनंतानंतप्रगृह्यम् ॥ ४६३ ॥

चारों क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों का काल उत्कृष्ट जघन्य तथा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अपूर्वकरण से लेकर अयोगी गुण स्थान वाले जीवों का काल दो घड़ी है। एक जीव की अपेक्षा से भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा कोई जीव क्षपक श्रेणी में चढ़ना प्रारम्भ कर अन्तर्मुहूर्त में कृत-कृत केवली ही सिद्ध वन जाता है। अथवा उपसर्ग विजयी वन कर अन्तरमुहूर्त में सिद्धगति को प्राप्त होता है। जव कभी अप्रमत्त गुणस्थान वाले तथा प्रमत्त के ऊपर देव व मनुष्य व त्रियंच के द्वारा किया गया उपसर्ग उस काल में वह क्षापक श्रेणी माढ चढ़ा और उपसर्ग केवली हो सिद्धगति को प्राप्त हुआ इस प्रकार जानना चाहिए। आगे संयोगी और अयोगी का कारण कहते हैं।

सयोगीनां आ कालं एकः प्रति स्तोकान्तर्मुहूर्तः।
उत्कृष्टेन पूर्वकोटि देशोनं चोक्तं जिनः। ४६४।

सयोगी जिनका सामान्य अनेक जीवों की अपेक्षा सव काल है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्टता से पूर्व कोटि से कुछ काम होता है। यह वासना काल है। यदि कोई सयोग केवली अधिक से अधिक केवल ज्ञान प्राप्त कर साढ़े आठ वर्ष कम कोटि पूर्व तक रह सकता है। इसका कारण यह है कि कोई क्षायक सम्यग्दृष्टि सर्वार्थ सिद्धि से च्युत होकर कोटि पूर्व की आयु को लेकर जन्मा और आठ वर्ष के पीछे जिन दीक्षा धारण कर क्षपक श्रेणी चढ़ा ध्यानस्त हुआ और अन्तरमुहूर्त में घातिया कर्म को नाशकर केवली वन गया और शेष आयु का भोग केवल ज्ञानावस्था में करता है इस प्रकार

उत्कृष्टता से आठ वर्ष कम कोटि तक वासना काल प्राप्त होता है।

मिथ्यादृष्टीनां सर्वकालोनरकगतौ त्रिविधो प्रोक्तम्।
वेदनाकालेऽचिन्ता निन्दागर्हो स्वमनस्यन्तर्मुहूर्तम् ॥ ४९५ ॥

नारकी जीव नरक गति में मिथ्यादृष्टि जीवों का सव काल है क्योंकि मिथ्यादृष्टि हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। वे मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य और दूरभव्य की अपेक्षा से तीन प्रकार के होते हैं। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर कम से कम काल की मर्यादा दो घड़ी। अथवा अन्तरमुहूर्त है वह कैसे? पूछे जाने पर कोई मिथ्यादृष्टि भव्यमिथ्यात्व सहित प्रथम नरक की आयु का वंध कर मरा और अन्तरमुहूर्त मिथ्यात्व में रहा और पृथ्वी छूने व नारकीयों के द्वारा दी गई वेदना का अनुभव करता हुआ अपनें मन में विचार करता है कि मैंने गुरुओं की आज्ञा का उलंघन कर हिंसारम्भ में तल्लीन रहा जिससे मुझे आज ये दु:ख भोगने पड़ रहे हैं अव मैं उन गुरुओं के उपदेश को स्मरण कर पापों का त्याग करता हूं तव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार मिथ्यात्व का जघन्य काल सातों नरकों में जानना चाहिए। दूसरी वात कोई नारकी दस हजार वर्ष की आयु को लेकर उत्पन्न हुआ और जव वेदना की प्रतीति हुई थी उसकी वार-वार मन में चिन्ता करता है और पापों की वृत्ति का त्याग करता है तथा सच्चेदेव धर्म गुरु की श्रद्धा उत्पन्न होती है तव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरण करता है इस प्रकार काल की प्राप्त होती है यही क्रम आगे के नरकों में कहा गया है। ५१८

उत्कर्षाऽधिनरकाणां स्वभुज्यमानायुवत्कालो भवति ॥
सासादन मिश्राणां सामान्योक्तं पूर्वं जिनैः ॥ ४९६ ॥

एक नारकी जीव नरक में मिथ्यादृष्टि अपनी आयु प्रमाण काल होता है। पहले नरक के इन्द्रक विल में जघन्य से दस हजारवर्ष और उत्कृष्ता से एक सागर तथा दूसरे नरक का नारकी जीव एक सागर जघन्य और उत्कृष्ट तीन सागर पर्यन्त रहता है। तीसरे नरक की जघन्य स्थिति तीन सागर और उत्कृष्ट स्थिति सात सागर चौथे नरक के नारकी जीव की जघन्य से सात सागर और उत्कृष्टता से १० सागर पांचवें नरक के नारकियों की जघन्य स्थिति दश सागर और उत्कृष्ट स्थिति सत्रह सागर प्रमाण होती है छठवे नरक में जघन्य स्थिति १७ सागर की है और उत्कृष्ट वावीस सागर प्रमाण है सातवें नरक की जघन्य स्थिति वावीस सागर प्रमाण और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण आयु है उतने तक उत्कृष्ट मिथ्यात्व की स्थिति प्राप्त होती है। सासादन और मिश्र सम्यग्दृष्टि का काल गुण स्थान के समान कहा गया है ॥५१९॥

सदृष्टीजीवानां खलु सर्वकालः एको जीवः तथा।
द्वे घटिकेस्तोकं कलस्तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ ४९७ ॥

नरक गति में सम्यग्दृष्टि नारकी जीव निरंतर सव कालों में रहते हैं पहले नरक में उपशम सम्यक्त्व काल तथा क्षायक क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव निरंतर विद्यमान रहते हैं। दूसरे नरक में नारकी जीवों के उपशम और क्षयोपशम दो सम्यक्त्व वाले जीव

हमेशा विद्यमान रहते हैं तीसरे चौथे पांचवें तक क्षयोपशम तथा उपशम सम्यक्त्व सब काल में पाया जाता है तथा छठवें सातवें में उपशम सम्यक्त्व वाले जीव होते हैं। एक जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर दो घड़ी काल तक रह कर विराधना करके मिथ्यादृष्टि बन जाता जाता है। मिथ्यादृष्टि त्रियंच जीवों का मिथ्यात्व सब काल में विद्यमान रहते हैं।

सर्वकालो जीवस्य दौ घटिका स्तोकमस्तोकमसंख्येय।
पुद्गल परावर्ताः सासादनादिदेश संयतान् ॥ ४९८ ॥
गुणस्थानवत्कालोऽसंयत सदृशां सर्वकालश्च।
एकः प्रति पेक्षा च स्तोकं द्विघटिके त्रिपल्योपमम् ॥४९९॥

एक जीव की अपेक्षा से दो घड़ी मिथ्यात्व का काल है। इसका यह कारण है कि कोई-मिथ्यादृष्टि जीव जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार मिथ्यात्व का जघन्य काल पाया जाता है। जैसे कोई जीव मरण कर पर्याप्तक साकार निराकार दोनों उपयोग वाला सेनी पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने के सन्मुख हुआ और अपने शरीर के योग्य नौकर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर पूर्ण पर्याप्तक हुआ और उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार त्रियंचगति में मिथ्यात्व का जघन्य काल दो घड़ी बन जाता है। सामान्य से असंख्यात पुद्गल परावर्तन काल होता है। सासादन सम्यग्दृष्टि मिश्र सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि देश संयत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानों के समान जानना चाहिए।

विशेष यह है कि असंयत सम्यग्दृष्टि हमेशा ही वर्तमान रहते हैं एक जीव दो घड़ी सम्यंक्त्व में रह कर पुनः सासादन को प्राप्त कर एक समय में या अधिक से छह आवली काल से पहले ही मिथ्यात्व की प्राप्त होती है। कोई जीव त्रियंचगति की आयु का बंध करने के पीछे सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरा और भोग भूमिया त्रियंचों में उत्पन्न हुआ और तीन पल्य की स्थिति प्राप्त करने की अपेक्षा से तीन पल्य प्रमाण सम्यग्दृष्टि का काल प्राप्त होता है ॥ ४८९ ॥ ४९९ ॥

कुदृगाणां सर्वकालः एकजीवः प्रति हीनान्तर्मुहूर्तः।
उत्कृष्टेन त्रिपल्यं साधिकं पूर्वकोटि प्रथक्त्वै ॥ ५०० ॥

मनुष्य गति में मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि मनुष्य सब काल में विद्यमान रहते हैं एक जीव की अपेक्षा से मिथ्यात्व अन्तर्मुहूर्त काल जघन्य से और उत्कृष्टता से तीन पल्य से अधिक करोड़ पूर्व काल प्राप्त होता है इसका कारण यह है कि किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने मुनियों की भक्ति कर आहार दान दिया तत्काल में आयु का त्रिभाग प्राप्त हुआ और मरण कर उत्तम भोग भूमि में उत्पन्न हुआ और तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु को धारक भोग भूमिया मनुष्य हुआ और तीन पल्य की आयु का भोग किया इस प्रकार पहले की करोड़ पूर्व और भोग भूमि की तीन पल्य उत्कृष्ट आयु की अपेक्षा से मिथ्यात्व का काल मनुष्य गति में उपलब्ध होता हैं ॥ ५०१ ॥

सासादन सदृष्टीनाँ जघन्यैक समयोत्कृष्टान्तर्मुहूर्तम्।
एक जीवैक समयः उत्कर्षेण षडा वलिकाः ॥ ५०२ ॥

सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों का काल सामान्य से जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य है। परन्तु एक जीव कम से कम एक समय सासादन वाला होता है अधिक से अधिक छह आवली प्रमाण काल होता है। यह कथन सासादन गुणस्थान की अपेक्षा से नहीं है परन्तु गिरने की अपेक्षा से है। जैसे कोई मिथ्यादृष्टी उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व की विराधना कर रत्न परवत से गिरा और मिथ्यात्व पर नहीं पहुँचा उसके बीच के काल को सासादन कहते हैं। जब कोई जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो दो घड़ी काल तक सात प्रकृतियों में से अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन कषायों में से कोई एक उदय में आजाने पर सम्यक्त्व से गिरा परन्तु अभी उसका मिथ्यात्व प्रकृति का उदय नहीं आया है तब तक वह शासक है (सासादन वाला है) जब मिथ्यात्व प्रकृति का उदय प्राप्त हो जाता है तब मिथ्यादृष्टि बन जाता है। बीच के काल कम से कम एक समय अधिक से छह आवली प्रमाण काल सासादन का है।

मिश्राणांहीनाधिककालोऽन्तर्मुहूर्तंकबहुनृणां।
असंयतानां सर्वः एकस्य द्वे घटिका कालः ॥ ५०३ ॥

मिश्र गुण स्थान वाले तथा मिश्र सम्यक्त्व वाले जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट काल दो घड़ी है यह दो घड़ी जघन्य और उत्कृष्ट है। इस गुण स्थान में जीव का मरण भी नहीं होता है जब मरण काल अप्राप्त होगा उस समय वह जीव नियम से सम्यग्दृष्टि बन जाएगा या मिथ्यादृष्टि दोनों से कोई एक में मरण होगा। असंयत गुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव सर्व काल में रहते हैं विशेष एक जीव की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल है। यह कैसे? किसी अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव ने सात प्रकृतियों को उपशम कर और उपशम सम्यक्त्व में रहा। तत्पश्चात् चार कषायों में से कोई कषाय के उदय आ जाने व सबके उदय आ जाने पर मिथ्यादृष्टि बन जाता है किसी जीव ने मरण काल में वेदक सम्यक्त्व पाकर मरण किया या क्षायक को पाकर मरण किया इस अपेक्षा से अन्तरमुहूर्त जघन्य काल प्राप्त होता है। अथवा क्षयक श्रेणी के सन्मुख हुआकृत कृत वेदक सम्यग्दृष्टि क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त हो क्षयक श्रेणी से चढ़ा और अन्तरमुहूर्त में घातिया अघातिया कर्मों को क्षय कर सिद्ध बन गया इस प्रकार का भी क्षायक अन्तरमुहुर्त प्राप्त होता है ॥ ५२५ ॥

उत्कर्षेण त्रिपल्यः सातिरेकाणि देश संयताद्य।
योगान्तानां कालः स्वरूपस्थानवत् च ज्ञातव्यः ॥ ५०४ ॥

असंयत सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य गति में अधिक से अधिक पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य तक रह सकते हैं। यह कैसे? किसी मिथ्यादृष्टि जीव ने उपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व में ही मनुष्य आयु का बंधकर पीछे से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ तत्पश्चात क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ पुनः केवली के पाद मूल में क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त कर मरा और उत्तम भोग भूमि में जाकर जन्मा और तीन पल्य की आयु का भोग किया इस प्रकार मनुष्यों में सम्यक्त्व का काल तीन पल्य से अधिक काल प्राप्त होता है। संयतासंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोग केवली जीवों का काल गुण स्थान में कहे गये प्रमाण समझना चाहिए। ऐसा

आगम बचन है ।। ५०४ ।।

कुदृगदेवानामाकालमेकंप्रति स्तोकं द्विघटिका ।
दीर्घनैर्कात्रिशत् सागरोपमः खलु जिनोक्तः ।। ५०५ ।।

मिथ्यादृष्टि देवों का सादाकाल है क्योंकि मिथ्यादृष्टि देवों का कभी कोई अवस्था में अभाव नहीं है। एक जीव की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि जीवों का कम से कम काल अन्तरमुहूर्त तक रहकर सम्यग्दृष्टि हो जाता है। जैसे कोई मनुष्य देव आयु का वंध कर मरा और देव गति को प्राप्त हुआ जाति स्मरण उपपाद स्थान में सोते हुए के समान उठा और देवों के वैभव को देख विभंगावधि से विचार किया कि मैंने जिनेन्द्र भगवान का नाम मात्र सुना था जिसके प्रभाव से मैं देवगति को प्राप्त हुआ हूं यह विचार कर जिनेन्द्र भगवान व जिन धर्म पर अत्यन्त श्रद्धालू बन गया तव दो घड़ी जघन्य काल मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। उत्कृष्टता से इकतीस सागर से कुछ कम देवगति में मिथ्यात्व की सत्ता होती है। यह कैसे ? कोई मिथ्यादृष्टि दिगम्बर जिन मुद्रा को धारण कर घोर तप संयम कर द्रव्य सल्लेखना सहित मरण कर अंतिम ग्रैवेयक कल्पातीत देवों में उत्पन्न हुआ और वहां की आयु ३१ सागर प्रमाण सुख भोग कर मरण किया और मनुष्यों में जन्म लिया इस अपेक्षा से देवों में मिथ्यात्व का अस्तित्व अधिक से अधिक ३१ सागर प्राप्त हो जाता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का प्रवचन है ।। ५०५ ।।

सासादनमिश्रयोश्च प्रागुक्तस्तद्वत् काल क्रमः ।
सदृष्टीनां मेव कालोदेवं प्रति चरमोद्विघटिकाः ।। ५०६ ।।

सासादन सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवों का काल गुणस्थानों की चर्चा में जैसा कह आये हैं उसी प्रमाण जानना। क्योंकि देव दो घड़ी के वाद उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं और अन्तरमुहूरत काल तक सम्यक्त्व में रह कर व्यतीत कर सासादन में रह कर एक समय से लेकर अधिक से अधिक छह आवली प्रमाण व्यतीत कर मिथ्यादृष्टि वन गया तव सम्यक्त्व जघन्य काल दो घड़ी हुआ। ५०६।

कालत्रायत्रिशत् सागरोपम कल्पातीतानां
देवीनां पल्यानि पंच पंचासत् द्विघटिकेवा ।। ५०७ ।।

देवों में सम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट काल तेतीश सागर प्रमाण होता है। यह कैसे ? कोई मनुष्य जिन दीक्षा लेकर जिन भगवान के समवसरण में गया और कृत कृत वेदक को कर क्षायिक सम्यग्दृष्टी बना और घोर तपस्या करी उपशम श्रेणी से चढ़ा उपशांत मोह तक गुण श्रेणी निर्जरा कर रहा था कि मरण को प्राप्त हुआ और कल्पातीत सर्वार्थसिद्धि का अहमेन्द्र देव हुआ और तेतीश सागर की आयु तक सुख का अनुभव कर च्युत हुआ। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि देवों के उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

देवीयों के भी काल मिथ्यात्व का जघन्य दो घड़ी और उत्कप्ट पचपन पल्य कहा गया है। कोई स्त्री मिथ्यादृष्टि देवीयों में उत्पन्न हुई और उपपादसैया पर उसको दूसरा ही महत्त्व दिखाई दे रहा था यह देख चकित हो गई तव जाति स्मरण से जाना कि मैं अव

देवगति को प्राप्त होकर देवी हुई हूं। इसका कारण मैंने जिन विम्ब के दर्शन किए थे उसका ही प्रभाव है ऐसा विचार कर मन में देव शास्त्र गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धान हुआ और सम्यग्दृष्टि वन गई तब मिथ्यात्व को दो घड़ी काल प्राप्त हुआ। तथा इसी प्रकार अधिक से अधिक दो घड़ी कम पचपन पल्य प्रमाण काल होता है। दो घड़ी कम करने का क्या कारण ? इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि स्त्री मरण कर देवीयों में उत्पन्न नहीं होती है वे तो नियम से देव ही होती हैं। सामान्य की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि देव देवी सब काल में पाये जाते हैं तथा सम्यग्दृष्टि देव देवी सब काल में पाये जाते हैं। तथा अपने-अपने स्वर्ग की आयु के समान काल कहा गया है ॥ ५०७ ॥

एकेन्द्रियजीवानां सर्वकालश्चरमं क्षुद्रभवम् ।
कालोत्कर्षेणासंख्येय पुद्गलापरावर्ताश्च ॥५०८
विकलेन्द्रियाणां सर्वकालैक समय जीवस्य क्षुद्रभवञ्च ।
असंख्येय वर्ष सहस्राण्यजघन्यायुलब्धि ॥५०९ ॥

एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के होते हैं वे सूक्ष्म और बादर दो प्रकार के होते हैं उनमें से सब जीवों के एक मिथ्यात्व ही सब काल में रहता है अथवा सर्व काल कहा गया है वे जीव पृथ्वी कायक, जल कायक, अग्नि कायक, वायु कायक, वनस्पति कायक होते हैं क्योंकि उनके एक मिथ्यात्व की सत्ता और उदय रहता है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर पृथ्वी कायक जीव कम से कम एक क्षुद्रभव जो स्वासोच्छवास का अठारह भाग १/१८ आयु प्रमाण हैं। उत्कृष्टता से शुद्ध पृथ्वी जीव की आयु १२००० हजार वर्ष प्रमाण होती है खर पृथ्वी की २२००० हजार वर्ष प्रमाण होती है। जल कायक जीवों की उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष प्रमाण होती है। जघन्य से क्षुद्र भव प्रमाण है १/१८ भाग है। अग्नि कायक जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन दिन जघन्य क्षुद्रभव प्रमाण आयु वायु कायक जीवों की जघन्य आयु क्षुद्रभव स्वासोस्वास का १/१८ भाग प्रमाण और उत्कृष्टायु ३००० हजार वर्ष प्रमाण है वनस्पति कायक जीवों की उत्कृष्ट आयु १०००० हजार वर्ष प्रमाण होती है जघन्य से क्षुद्रभव प्रमाण होती है। तथा दो इन्द्रिय जीवों की आयु जघन्यता से क्षुद्रभव प्रमाण है उत्कृ-ष्टता से वारह वर्ष प्रमाण है। जघन्यता से दो घड़ी भी कही गई है वह आयु पर्याप्त जीव की अपेक्षा से है। तीन इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु ४९ दिन की तथा जघन्यायु क्षुद्रभव और अन्तरमुहूर्त की है। चतुरिन्द्रय जीवों की उत्कृष्ट आयु छह महीना की है जघन्य आयु अपना क्षुद्रभव प्रमाण हैं। अथवा उत्कृष्टपना से एक जीव एकेन्द्रिय में रहे तो कितने काल रह सकता है ? असंख्यात द्रव्य परावर्तन कर सकता है। कोई जीव उनमें से निकलकर दो इन्द्रियादि जीवों में उत्पन्न होते हैं कोई जीव क्षुद्रभव धारण कर त्रश जीवों में उत्पन्न होते हैं। विकले-न्द्रिय व सकलेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हैं। वनस्पति काय के दो भेद हैं एक साधारण दूसरी प्रत्येक वनस्पति इनके ही आश्रय से रहने वाले नित्यनिगोद और चतुर्गति निगोद लब्ध पर्याप्तक जीव हैं उनका काल क्षुद्रभव या अनन्त पुद्गल परावर्त होता है। यह कैसे— इसका कारण यह है कि नित्यनिगोदिया जीव एक पुद्गल परावर्तन को भी करते रहते हैं

उनमें क्षेत्र परावर्तन का अभाव है क्योंकि उनका क्षेत्र सीमित है यदि भव परावर्तन करने लग जावे तो नित्यनिगोदिया कहना बन नहीं सकता है। अथवा अपनी मुक्त आयु का स्वास का अठारहवाँ भाग है क्षुद्रभव को व्यतीत कर त्रश काय में विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं। विकलेन्द्रिय में जीव असंख्यात हजार वर्ष पर्यन्त रह सकता है।

कुदृग: सकलेन्द्रियाणां प्रज्ञप्तः सर्वकालेषुवासम्।
अनुकालोऽतर्मुहूर्तं वरमुदधिसहस्राधिकं वा ॥५१०॥

पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों का सब ही वासना काल है वे सब काल में विद्यमान रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य काल दो घड़ी अथवा अन्तरमुहूर्त है। इसका कारण यह है कि कोई देव या नारकीय सम्मूर्छन सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के जन्म लेने के पीछे सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार दो घड़ी जघन्य काल मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है। उत्कृष्ट का विचार करने पर हजार सागर से अधिक पूर्वकोटि काल कहा है यह कथन भव्य जीव की अपेक्षा से है क्योंकि अभव्य का काल तो अनन्तानन्त पंच परावर्तन है।

देव नारक त्रिचश्चश्चनृणां सासादनाद्य योगान्तानां।
गुणस्थानवत्कालः प्रज्ञप्तः खलु जिन शासने ॥५११॥

पंचेन्द्रिय देव देवी व नारकीय और मनुष्य तथा मनुष्यनी जीव त्रियंच त्रियंचनी इनकी काल व्यवस्था गुण स्थान के समान जानना चाहिये। विशेष यह है कि मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य और दूर भव्यों को अपेक्षा से सर्व काल में जोव रहते हैं। वे सब एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक होते हैं। आगे सासादन इत्यादि गुण स्थान पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के ही होते हैं। पंचेन्द्रियपने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

स्थावर काय में स्थावर जीवों का निवासकाल अनन्तानन्त है अथवा सर्व काल है। तथा एक जीव की अपेक्षा से अपने क्षुद्रभव के प्रमाण हैं पूर्व कथित उत्कृष्ट आयु प्रमाण है तथा उत्कृष्टता से असंख्यात पुद्गल परावर्तन है। पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चारों काय के जीवों की अपेक्षा सर्व काल है। तथा वनस्पति कायक जीवों का भी काल एकेन्द्रियों के समान है।

उत्कृष्ट सहस्रोदधिः कोटि पूर्वं पृथक्त्वै रधिकम्॥
सासादनाद्य योगान्त शेषाणां गुणस्थानवत्॥५१२॥

सामान्य से मिथ्यादृष्टी त्रस जीव सब काल में विद्यमान रहते हैं एक जीव की अपेक्षा दो घड़ी अथवा अन्तरमुहूर्त काल प्राप्त होता है। यह कैसे ? जब कोई त्रश पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव जन्म के सन्मुख हुआ और उस ही काल में दो घड़ी बीत जाने पर उसने सम्यक्त्व को प्राप्त किया तब मिथ्यात्व का काल दो घड़ी या अन्तर मुहर्त हुआ। उत्कृष्टता से हजार सागर कोटि पूर्व अधिक पृथक्त्व काल प्राप्त होता है। सासादन मिश्र असंयत देश संयत से लेकर असंयोग केवली गुण स्थान तक पंचेन्द्रिय जीवों में होते हैं उनकी काल मर्यादा गुण स्थानों के समान कही गई है।

वाङ मनसः योगिनाम् च मिथ्यादृष्टियादि संयोगिदेहिनां ।
सर्वकाल एकस्यैकसमयोत्कृष्टद्विघटिका ॥५१३॥

मन, वचन, योगि मिथ्यादृष्टी से लेकर संयोग केवली व त्रियंच मनुष्य देव नारकी होते हैं उनका सब काल है। तथा एक जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है। और जघन्य काल एक समय है। तथा सासादन सम्यग्दृष्टियों का काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली प्रमाण है। मिश्रसम्यग्दृष्टी का काल जघन्य से एकसमय उत्कृष्टता से पल्य का असंख्यातवां भाग है। (अथवा अन्तरमुहूर्त है) एक जीव की अपेक्षा से जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है।

उपशमकानां कालो जघन्यैक समयोऽन्तरमुहूर्तं च ।
काययोगस्य सर्व कालाऽऽनपानस्याष्टादश भागः ॥५१४॥

उपशम श्रेणी चढ़ने वाले, वचन, योग वाले जीव अपूर्व करण अनिवृति करण सूक्ष्म सांपराय इनका जघन्य काल एक समय प्रत्येक का है। उत्कृष्टता से सब का काल भी अन्तर-मुहूर्त है तथा एक-एक का काल भी अन्तरमुहूर्त प्रमाणहै। इस श्लोक में च शब्द से यहां पर चारों क्षपकों को ग्रहण कर लेना चाहिए। उपशम श्रेणो चढ़ने वाले के समान ही क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों का काल कहा गया है। क्षपक श्रेणी वाला जीव उपशांत मोह को उलंघ कर क्षीण मोह में जाता है अथवा दसवें से वारहवें को प्राप्त होता है। प्रत्येक गुण स्थान चढ़ने वालों का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है तथा प्रत्येक गुण स्थान का कम से कम काल तो एक समय और अधिक अन्तरमुहूर्त है यह कैसे ? इसका कारण यह है कि आवली के ऊपर और दो घड़ी से नीचे जितने काल हैं वे सब अन्तरमुहूर्त प्रमाण ही कहे गये हैं। यह काल की मर्यादा भावों की अपेक्षाकृत है क्योंकि भाव प्रति समय वदलते रहते हैं।

काय की अपेक्षा विचार करने पर काय योग वालों का सर्व काल है तथा अनन्ता-नन्त पुद्गल परावर्तन है क्योंकि काययोग एकेन्द्रिय से लेकर असेनी सेनी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तक के होता है।(जघन्य से स्वास्वोच्छवास का अठारहवां भाग है)जघन्यता से एक समय है। मिथ्यादृष्टी सम्यग्दृष्टी अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है क्योंकि मिथ्यादृष्टी तथा सम्यग्दृष्टी हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। एक मिथ्यादृष्टी की अपेक्षा से जघन्य काल एक समय है उत्कृष्ट काल अनन्तानन्त काल है अथवा असंख्यात,पुद्गल परावर्तन है। शेष सुगम है ॥५१४

समिथ्यात्रिवेदानां सर्व काल एकस्यान्तमुहूर्तम् ।
अथः पल्य पृथक्त्वं सतमुदधि पृथक्त्वमनंतश्च ॥ ५१५

स्त्री पुरुप और नपुंसक वेद वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का सर्वकाल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्यता से अन्तरमुहूरतकाल है और उत्कृष्टता से तीनसौ पल्य से ऊपर नौ सौ पल्य से नीचे। तथा पुरुप वेद वाले जीव का जघन्य से अन्तरमुहूरत तथा उत्कृष्टता से तीन सौ सागर से ऊपर नौ सौ सागर से नीचे काल कहा गया है नपुंसक वेद वाले जीवों की अपेक्षा से अनन्तानन्त काल है।

एकस्यान्तर्मुहूर्तं मोघेन पंचपंचाशत् पल्यानि ।।
त्रयत्रिंशतत्सागरः स्त्री नपुंसक वेदयोर्नः पुंषः ।।५१६।।

तीन वेद वाले जीवों का जघन्य काल अन्तरमुहूरत है। तथा स्त्री वेद वाले जीवों का उत्कृष्ट काल पचपन पल्य प्रमाण है क्योंकि स्त्री वेद वाले जीव आरणअच्युत स्वर्ग तक वहां उनकी पचपन पल्य की उन्कृष्ट आयु होती है। नपुंसक वेद वाले जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर प्रमाण होती है। तथा पुरुष वेद की स्थिति तैंतीस सागर प्रमाण है क्योंकि वेद रहित कोई उपशम श्रेणी चढ़ने वाला जीव सूक्ष्म सांपराय को पार कर उपशांत मोह से च्युत होते समय मरण को प्राप्त हुआ और सर्वार्थ सिद्धि विमान में तैंतीस सागर प्रमाण आयु को प्राप्त हुआ इस प्रकार तैंसीस सागर प्रमाण काल प्राप्त होता है। कोई संक्लिष्ट परिणामी दीर्घ रौद्र ध्यानी नरक की तैंतीस सागर प्रमाण आयु का धारक नारकी हुआ। इस अपेक्षा से नपुंसक वेद की तैंतीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है।

षोडशकषायानां च चत्वारिंशत् कोटाकोटी सिन्धुः ।।
अरति भय शोक नपुंसकानां विंशति कोटाकोटी ।।५१७।।
स्त्रीवेदस्य पंचदश हास्यरति पुंवेदानां दशोदधिः ।।
कोटाकोटी च यदाकालेऽपकर्षेण द्विघटिकाः ।।५१८।।

अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ इन सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटा कोटी सागर प्रमाण है। तथा अरति शोक भय और नपुंसक वेद इन नो कषायों की उत्कृष्ट स्थिति २० कोडा कोडी सागर प्रमाण है स्त्री वेद की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोटा कोटी सागर प्रमाण है। तथा हास्य रति और पुरुष वेद नोकषायों का काल दश कोटा कोटी सागर प्रमाण उत्कृष्ट कहा गया है। इन कषायों तथा नो कषायों का जघन्य काल दो घड़ी प्रमाण जानना। यह मिथ्यादृष्टी जीव इन पचीस कषायों की उत्कृष्ट बंधक होता है। तथा प्रथम कषाय की चौकड़ी का तीव्र उत्कृष्ट स्थिति कौन के होती है

आगे श्लोक कहते हैं

सर्व काले मिथ्यात्वे मिथ्यादृष्टिनां सर्वकषानि यान्ति।
मिथ्यात्व मोहस्य सप्तति कोटाकोट्यन्तर मुहूर्तम् ।।५१९।।

(मिथ्यादृष्टि) मिथ्यात्व में मिथ्यादृष्टि जीवों के निरन्तर वासना काल प्राप्त होता है। ऐसे जीव वहुत हैं जिनको मिथ्यात्व का अन्त नहीं आवेगा। वे कौन हैं ? अभव्य और दूर भव्य दोनों के ये कषायें निरन्तर विद्यमान रहती हैं इसलिए इनका काल अनंतानंत कहा गया है। तथा दर्शन मोह की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण काल होता है। जघन्य से दो घड़ी प्रमाण वासना काल होता है। इनका फल काल आवाधा काल के पूर्ण होने पर होता है। आवाधा काल एक कोटा कोटी सागर का एक सौ वर्ष होता है। जैसे किसी कर्म की स्थिति बीस कोड़ा कोड़ी सागर की है उनका आवाधा काल दो हजार वर्ष होगा। भव्य मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से दो घड़ी जघन्य काल ही पर्याप्त है। और उत्कृष्ट पने से असंख्यात पुद्गला परावर्तन काल है। मिथ्यात्व का सदाकाल है। एक जीव की अपेक्षा

अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्टता से असंख्यात पुद्गल परावर्तन काल है। ५२०॥

सासादनादि सूक्ष्मसांपरायान्तानाम् सदाकालः।
जघन्येक समयोत्कृष्टेनान्तर मुहूर्तं कालम् ॥५२भ॥

सासादन से लेकर सूक्ष्म सांपराय नाम के दशवें गुण स्थान तक के जीव हमेशा विद्यमान रहते हैं इस प्रकार सामान्य से यह काल की मर्यादा कही है। एक-एक गुण स्थान पृथक-पृथक की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त प्रमाण है। काल कषायों का कहा गया है। लोभ कषाय को छोड़कर शेष कषायों का अस्तित्व अनिवृत्त करण तक ही पाया जाता है लोभ का अस्तित्व दशवें गुण स्थान तक होता है।

ज्ञानावर्णस्यस्थितिः सागरकोटाकोटी त्रिंशच्च।
कुमतिश्रुतिमिथ्यादृष्टिनां सदाविभंगानां च ॥५२१॥

ज्ञानावरण कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटी सागर प्रमाण होती है। तथा कुमति कुश्रुत तथा विभंगावधि ज्ञान का सर्व काल होता है ये तीनों ज्ञान मिथ्यादृष्टि जीवों के होते हैं। इनका काल मिथ्यात्व के काल प्रमाण है॥

सेतरैकजीवस्य त्रार्यात्रिंशसागरश्चान्तर्मुहूर्तम्।
मतिश्रुतावधीनां च सम्यक्वत् कालो याति ॥५२२॥

कुमति कुश्रुति और विभंगावधि ज्ञान का काल उत्कृष्टता से तेतीश सागर प्रमाण है। कम से कम अन्तर मुहूर्त प्रमाण है। इसका कारण यह है कि ये तीनों ज्ञान मिथ्यादृष्टि देव और नारकियों के होते हैं। नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयु तेतीश सागर प्रमाण है। देवों के इकतीस सागर प्रमाण होती हैं। ये एक जीव एकेन्द्रिय के कुमति कुश्रुति दो ज्ञान होते हैं वे अक्षर के असंख्यातवें भाग प्रमाण निरावरण ज्ञान के धारो होते हैं। विकलेन्द्रियों तथा अमनस्क पंचेन्द्रिय तथा सेनी पंचेन्द्रिय त्रियंच मनुष्यों देव नारकी मिथ्यादृष्टि जीवों के होने से इनका मिथ्याज्ञान कहा गया है ऐसे जीव नित्य ही संसार में विद्यमान रहते हैं। सर्व काल है। जघन्य से अन्तर मुहूर्त है यह कैसे जाना जाता है? कोई मिथ्यादृष्टि पर्याप्त पंचेन्द्रिय साकार निराकार उपयोग वाला अनादि मिथ्यादृष्टि देव या नरकी पंचलब्धियों के काल को पूराकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तब अन्तरमुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है। विभंगावधि मिथ्यादृष्टि देव या नारकी जीवों के प्रायः कर होते हैं। कोई मिथ्यादृष्टि अकाम निर्जरा या बाल तपकर देवगति को प्राप्त हुआ या पापोपार्जन कर नरक गति को प्राप्त हो सातवें नरक गया वहां तेतीश सागर की स्थिति को प्राप्त हुआ। वहां विभंगावधि को प्राप्त हुआ तब तेतीश सागर इन तीनों ज्ञानों का काल उत्कृष्ट प्राप्त हुआ। मति श्रुतावधि इन तीनों ज्ञानों का काल नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होता है। इनकी काल मर्यादा सम्यक्त्व के समान है इसका भी कारण सम्यक्त्व ही है। क्यों कि सम्यक्त्व होने पर ही सम्यग्ज्ञान कहलाते हैं नहीं तो मिथ्याज्ञान कहलाते हैं। जब जीवों के उपशम सम्यक्त्व हुआ तत्काल में मिथ्याज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाते हैं। जब अन्तर मूहूर्त व्यय हो गया और उपशम सम्यक्त्व क्षय हो गया तब मति श्रुति ज्ञान हैं वे मिथ्याज्ञान हुए इस प्रकार इनका काल दो

घड़ी जघन्य है। मति श्रुतावधि ये तीनों ज्ञान सम्यग्दृष्टि असंत से लेकर क्षोण मोहक्षद्मस्थ तक रहते हैं तथा मनः पर्ययज्ञान छठवें गुण स्थान से क्षद्मस्स क्षीण मोह तक सात गुण स्थानों में होता है इन चारों ज्ञानों का काल सम्यक्त्व के समान कहा गया है।

मनःपर्ययस्य कालः प्रमत्तादि क्षोणमोहान्तवच्चेत् ।।
केवलऽनिनां कोटिपूर्व देशोनैक मुहूर्तम् ।।५२३ ।।

मनः पर्ययज्ञान प्रमत्त गुण स्थान वाले मुनियों के होता है तथा प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह तक के किन्हीं भी योगियों के होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वकाल है। तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्यता से अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टता से कोटि पूर्व से कुछ कम काल तक रहता है। केवल ज्ञान सयोगी अयोगी दो गुण स्थानों में होता है इसका काल एक समय या मुहूर्त है। तथा वासना काल कोटी पूर्व से कुछ काल कम है तत्पश्चात जीव सिद्ध भगवान बन जाता है। इन ज्ञानों की मर्यादा एक सम्यक्त्व है। मति श्रुति ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति क्षायक सम्यक्त्व की अपेक्षा से तेतीश सागर पूर्व कोटि पृथक्त्व है। जघन्य अन्तर मुहूर्त की है। अथवा क्षयोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा से ६६ सागर की स्थिति प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि किसी जीव ने प्रथमोपशम को प्राप्त कर दूसरे समय में क्षयोपशम किया तब श्रेणी चढ़ने को सन्मुख हो शेष प्रकृति का क्षय कर क्षपक श्रेणी से आरोहण किया और सब के काल को पूराकर केवलज्ञान को प्राप्त हुआ। इन सब का काल अन्तर मुहूर्त हो जघन्य हुआ। क्षायोपशम सम्यक्त्व के साथ होने वाले मति श्रुति अवधि इनका काल छयासठ सागर उत्कृष्ट और जघन्यता से अन्तर मुहूर्त है। क्यों कि क्षयोपशम सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागर की कही गई है तत्पश्चात या क्षायक सम्यग्दृष्टि हो जायेगा या द्वितियोपशम सम्यक्त्व को कर लेगा। इस प्रकार उत्कृष्ट और जघन्य काल सब ज्ञानों का कहा है।

संयम की काल मर्यादा कहते हैं।

पंचविध संयमाना मोघेन सदाकालैक समयो वा।
अन्तर मुहूर्तं हीनं देश संयतनां पूर्व कोटी ।।५२४।।

सामायिक क्षेदोपस्थापन परिहारविशुद्धि सूक्ष्म सांपराय और यथाख्यात पाचों चारित्र का सामान्य से काल अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्टता से सत्र काल है कि पांचों संयम वाले जीव सब कालों में नियम से विद्यमान रहते हैं। एक-एक की अपेक्षा से जघन्यता से एक समय और उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त काल है। इसका सामान्य से कोटि पृथक्त्व मुनिराज प्रमत्त गुण स्थान से लेकर सयोगी असयोगियों की संख्या विद्यमान रहती है। अथवा तीन कम नौ करोड़ मुनि विराजमान रहते हैं। यथाख्यात चारित्र की जघन्य से अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टता से कोटि पूर्व से कुछ कम स्थिति है। इस का कारण यह है कि किसी जीव ने आठ वर्ष छह माह की उम्र बीत जाने पर जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर श्रेणी चढ़ा और अन्तर मुहूर्त तक ध्यान किया जिनमे केवल ज्ञान को प्राप्त हुआ। आठ वर्ष छह महिना दो घड़ी कम कोटि पूर्व तक संयोग में रहकर अयोग केवली होते हैं। वह यथा ख्यात चारित्र का काल उत्कृष्ट प्राप्त हुआ। संयमासंयम का जघन्यता से एक समय और उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त है वासना की अपेक्षा

यथाख्यात के वरावर है।

चतुर्दर्शनानां सर्वः कालो भवन्ति वहुवो जीवाः।
मिथ्यादृष्टि जीवस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तं कथितम् ॥५२५॥

चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन अवधि दर्शन और केवल दर्शन चारों दर्शन वाले जीवों का सर्व काल है। हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। चक्षुदर्शन वाले मिथ्यादृष्टि तथा अचक्षुदर्शन वाले मिथ्यादृष्टि का काल जघन्यता में दो घड़ी कहा गया है। और उत्कृष्ट से दो हजार सागर प्रमाण है।

द्वे सहस्रोदधिः कालः चक्षुदर्शनयुक्तानाम्।
अचक्षुदर्शनानां प्राग्युक्तस्तथा विजानीहि ॥५२६॥

अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन तथा केवलदर्शन की काल मर्यादा पहले की चर्चा में कथन कर आये हैं उतनी ही जानना चाहिए। तीश कोटाकोटी सागर प्रमाण है।

प्राक् लेश्यायुक्तानां भवति च सर्वकालोऽन्तरमुहूर्तं।
उत्कृष्टेस्त्रार्यात्रिशत् सागरोपमं मुनिरुपदिष्टः ॥५२७॥
सप्त दश सप्त सागरो संयताम् त्रयत्रिंश सप्तदश ॥
सप्तसागरोपयान्तर मुहूर्तं कालश्चरमम् ॥५२८॥

कृष्ण लेश्या नील लेश्या कापोत लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का वासना काल सव है अथवा तीनों लेश्याओं के धारक मिथ्यादृष्टि नित्य विद्यमान रहते हैं इनका काल सव है। एक जीव की अपेक्षा से विचार करने पर कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट काल तेतीश सागर से कुछ अधिक है नील लेश्या का जघन्य से अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्टता से सत्रह सागर से कुछ अधिक है कापोत लेश्या वालों का उत्कृष्ट काल सात सागर से कुछ अधिक है जघन्यकाल दो घड़ी है कृष्ण नील कापोत ये तीनों असंयत चोथे गुणस्थान वाले जोवों तक के होती हैं।

पीतादित्रयलेश्या मिथ्यादृष्टिनां सर्वकालश्च।
एकस्यद्वेयष्टादश एकत्रिंश सागरोऽधिकम् ॥५२६॥

पीत लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर की है और कुछ अधिक है। पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागर से कुछ अधिक है। शुक्ल लेश्या की स्थिति अधिक से ३१ सागर की मिथ्यादृष्टी जीवों द्रव्यलिंगी मुनि की अपेक्षा से है क्योंकि कोई भी मिथ्यादृष्टी कु तप कर देव गति को प्राप्त हुआ ईशान व सोधर्म स्वर्ग में पीत लेश्या का धारक उत्पन्न हुआ तव दो सागर से कुछ अधिक काल प्राप्त होता है। जघन्यता से दो घड़ी या अन्तरमुहूर्त काल है ॥५२६॥

जघन्यान्तुर्मुहूर्तं सम्यग्दृष्टीनां सर्वकालश्च।
त्रायत्रिंशत्सागरोपम देशान्सयोगान्ते शुक्ला ॥५३०

सम्यग्दृष्टी नाना जीवों की अपेक्षा से ये तीन लेश्यायें हमेशा विद्यमान रहती हैं एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तरमुहूर्त काल है उत्कृष्टता से मिथ्यादृष्टी के समान हा पीत पद्म लेश्या का उत्कृष्ट काल है। परन्तु शुक्ल लेश्या का काल तेंतीस सागर प्रमाण है।

अथवा कोटि पूर्व पृथक्त्व अधिक हैं। यह लेश्या मिथ्यादृष्टी जीवों से लेकर सयोग केवली गुण स्थान वाले जीवों तक के होती हैं। पीत पद्म अप्रमत्त गुण स्थान तक होती हैं।

पीतपद्मेप्रमत्ता प्रमत्तैक संयतान्तर्मुहूर्तम् ।
शुक्ले यथाकालश्च योगान्तेषु गम्यते जिनः ॥५३१ ॥

पीत पद्म दोनों लेश्यायें मिथ्यादृष्टी असंयत सासादन मिश्र संयतासंयत प्रमत्त अप्रमत्त छठवें व सातवें तक होती है। शुक्ल लेश्या मिथ्यादृष्टी से लेकर सयोग केवली जिनके होती हैं। अन्तरमुहूर्त तथा एक-एक सयय की इनका जघन्य काल है विशेष यह है कि संयतासंयत शुक्ल लेश्या वाले नाना जीवों की अपेक्षा सर्व काल हैं। एक जोव को अपेक्षा से जघन्य काल एक संमय है और उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त है ॥५३१॥

अभव्य मिथ्यादृष्टी जीवों का काल अनादि अनन्त है भव्य जीवों का काल अनादि शान्त सादि शान्त। जो अनादि काल से मिथ्यात्व को लेकर संसार में जन्म मरण कर रहा था जिनसे पंच परावर्तनों को अनेक वार पूर्णकर दिये फिर भी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं हुआ न होवेगा ऐसा अभव्य मिथ्यादृष्टी का काल अनादि अनन्त है। जो भव्य अनादि काल से संसार अवस्था में रहकर पंचलब्धियों को पाकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ तव अनादि शान्त मिथ्यात्व का हुआ। यदि शांत किसी जीव ने संसार में भ्रमण कर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर क्षयोपशमक हो श्रेणी चढ़ने के सन्मुख हुआ तव द्वितीयोपशम कर उपशम श्रेणी से चढ़ना चालू किया और उपशान्त मोह तक चढ़ा तव ज्ञानावरर्णादि का वंध का अभाव किया। तव कषाय के उदय में आ जाने से उपशान्त मोह से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया और पुनः नवीन रूप से ज्ञानावरण आदि कर्मों का आस्रव और वंध कई प्रकार से हुआ तब संसार में भ्रमण कर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त किया तव सादि शान्त काल भव्य के प्राप्त होता है वही क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त कर क्षपक श्रेणी से चढ़कर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं। भव्य भी दो प्रकार के होते हैं एक निकट भव्य दूसरे दूर भव्य। वा शब्द से दूर भव्यों को भी ग्रहण किया गया है वे जीव अनन्तानन्त काल संसार में ही भ्रमण करते रहेंगे गुणस्थानों की अपेक्षा प्रथम गुणस्थान मिथ्यात्व में सव भव्य अभव्य दूर भव्य सव ही होते हैं। शेष गुण स्थान भव्य जीव के ही होते हैं। विशेष इस प्रकार है।

अभव्यानामनाद्यनंतो भव्यानामनादि सान्तः।
सादिशान्तपूर्वोक्तः कालो यथावज्ज्ञातव्यः ॥ ५३२॥
अभव्यानाद्यनंतो भव्यानादिशादिशान्त कालः।
मिथ्यादृष्टीनां सान्तर्मुहूर्तं साद्यनादि शान्तः ॥ ५३३ ॥

अभव्य मिथ्यादृष्टी जीवों का काल अनादि और अनंत है। भव्य जीवों का काल अनादि शान्त और सादि शान्त। जो भव्य है और मिथ्यात्व सम्पन्न होने के कारण ने अनंत काल से संसार में जन्म मरण करता चला आ रहा था जिसने पंच परावर्तनों को अनेक वार पूर्ण कर दिए फिर भी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं हुआ न होवेगा ही ऐसे अभव्य जीवों का काल अनादि और अनंत होता है। जो भव्य है और अनादि काल ने संसार अवस्था में रहकर

पंच लब्धियों को प्राप्त हुआ और उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया तब अनादि शान्त मिथ्यात्व की अवस्था हुई। सादि शान्त किसी मिथ्यादृष्टो जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पाकर पुनः क्षयोपशमिक सम्यक्त्व को कर श्रेणी चढ़ने के सन्मुख हुआ और सम्यक्प्रकृति को उपशम द्वितीयोपशम कर उपशम श्रेणी से चढ़ा और उपशान्त मोह ग्यारहवें गुण स्थान तक चढ़ा और उसमें अन्तरमुहूर्त काल तक रह कर। लोभ कपाय का उदय आ जाने से उपशान्त मोह का आस्रव कर वंध को प्राप्त हुआ तव सादि शान्त काल भव्य जीव को प्राप्त हुआ। वही जीव संसार में कुछ समय भ्रमण कर सम्यक्त्व को प्राप्त करके क्षपक श्रेणी से चढ़कर केवल ज्ञान को प्राप्त हो मोक्ष को प्राप्त करता है। भव्य जीव भी दो प्रकार के होते हैं एक निकट भव्य दूसरा दूरभव्य। वा शब्द से दूर भव्य को भी ग्रहण किया है दूरभव्य अनंत काल वीत जानें पर संयोग नहीं मिलेगा। न वे सम्यक्त्व को ही प्राप्त होंगे। वे अनंत संसारी ही रहेंगे। गुण स्थानों की अपेक्षा से मिथ्यात्व गुण स्थान में भव्य दूर भव्य और अभव्य सव ही में रहते हैं। शेष गुण स्थान भव्य जीवों के ही होते हैं ॥ ५३२-५३३ ॥

मिथ्यात्वे चाहारक जीवानां प्रोक्तं सर्वकालश्च।
अनुकालोऽन्तरमुहूर्तं ऐधाऽसंख्यातोत्सर्पिण्यं च ॥५३२॥

अमनस्क जीवों का सर्व काल है क्योंकि वे जीव एकेन्द्रिय से लेकर असेनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त अनंतानंत जीव हैं वे सव ही अमनस्क हैं (मन रहित) उनकी अपेक्षा से सव काल है एक जीव की अपेक्षा से क्षुद्रभव प्रमाण है इसका कारण यह है कि कोई भव्यात्मा एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय सेनीयों में उत्पन्न होता है इस अपेक्षा से क्षुद्रभव कहा है। उत्कृष्ट काल असंख्यात भाव परावर्तन काल है इसका कारण यह है कि नित्यनिगोदिया जीव असंख्यात वार भाव परावर्तन को करके भी नित्य निगोद से निकलता नहीं। भाव परावर्तन ही क्यों कहा ? इसका कारण कहने का यह है कि भव परावर्तन तक के परावर्तन नित्यनिगोदिया जीवों के नहीं होते हैं क्योंकि द्रव्य क्षेत्र काल भाव ये चार परावर्तनों को एकेन्द्रिय से लेकर चारों गति वाले पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। नित्यनिगोद वाले जीवों को नित्य ऐसा विशेषण दिया है। परन्तु इतर निगोद यहां ग्रहण किया जाय तव पांचों ही परावर्तन प्राप्त हो सकते हैं परन्तु नित्य निगोदिया जीवों के ऐसा भाव परावर्तन ही होता है चार नहीं।

सेनी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टी व सासादन मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टी व सर्व क्षीण मोह पर्यन्त जीव हैं वे सब ही समनस्क है सामान्य से सवका काल नित्य है क्योंकि कोई भी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का एक समय नहीं। तथा जघन्यता से दो घड़ी काल है। संज्ञी जीवों का जघन्य काल दो घड़ी है और उत्कृष्टता से तीन सौ सागर से कुछ कम काल होता है अथवा सौ सागर प्रथक्त्व काल है यह सेनी मिथ्यादृष्टी का काल कहा है। सासादन से लेकर क्षीणकषाय क्षद्मस्त जीवों की अपेक्षा जघन्य काल अंतरमुहूर्त है। उत्कृष्टता से सत सागर प्रथक्त्व है।

आहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टी जीव हमेशा ही विद्यमान रहते हैं इसलिए आहा-

रक जीवों का सर्व काल है। जघन्यता से अंतरमूहूर्त है। उत्कृष्टता से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल कहा गया है। अनाहारक जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर संयोगी जिन गुण स्थान तक सब ही जीव अनाहारक होते हैं उनका अनेक संसारी जीवों की अपेक्षा सर्व काल है। एक जीव की अपेक्षा से एक समय या दो समय व तीन समय होता है। उत्कृष्टता से आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल है। पुनः एक जीव की अपेक्षा जघन्य से एक समय काल है या दो समय या संख्यात समय है तथा एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय है। अयोग केवलो अनाहारक नाना जीवों की अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय है। अयोग केवली अनाहारक नाना जीवों की अपेक्षा से सब काल हैएक जीव कौ अपेक्षा से जघन्य काल अंतरमुहूरत है उत्कृष्टता से कोटि पूर्व से कुछ कम है।

विशेष—एक जीव पूर्व शरीर को छोड़कर उत्तर शरीर को प्राप्त करने के लिए विग्रह गति से गमन करता है तब ऋजुगति से गमन करे तो एकसमय पर्यन्त अनाहारक रहता है तत्पश्चात वह अपने शरीर के योग नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर नियम से आहारक बन जाता है। एकेन्द्रिय जीव या देव मरण कर लोक नाड़ी के बाहर वाले एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने के सम्मुख होता है तब वह दो समय या तीन समय पर्यन्त अनाहारक औदारिक काय इन्द्रिय बल स्वासोच्छ्वास और आयु इनके योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर लेता है तब वह आहारक हो जाता है। दो इन्द्रिय के भाषा पर्याप्त रसना इन्द्रिय ये छह पर्याप्त होती हैं तीन इन्द्रिय के एक घ्राण इन्द्रिय पर्याप्त बढ़ जाती है चार इन्द्रिय के एक चक्षु इन्द्रिय बढ़ जाती है पंचेन्द्रिय जीव के कर्ण इन्द्रिय व मन बढ़ जाने से छह पर्याप्तयां हैं। नाना भव्य जीवों की अपेक्षा सर्व काल है एक जीव की अपेक्षा अन्तरमुहूर्त काल है एक जीव की अपेक्षा से एक समय अन्तरमुहूर्त है ॥५३३-५३४॥

सम्यक्त्वानां खलु सर्वः वासानाकालः सामान्यः।
चरमोद्विघटिका त्रायंत्रिशसागरोऽधिकं विद्येत् ॥५३५॥
क्षयोपशमिके द्विचरम द्वात्रिंशाधिक सतसागरः कालोऽपिवा ॥
भ्रमित्वा जगान्ते सिद्धाः सुखानुभवन्तु चिरकालश्च ॥५३६॥

सामान्य से तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीवों का वासना काल हमेशा ही रहता है उपशम तथा क्षयोपशम ये दोनों सम्यक्त्व पंचेन्द्रिय चारों गति वाले जीवों की अपेक्षा सब काल रहता है क्योंकि ऐसा कोई समय नहीं आता है कि तीनों लोक में उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव न रहे। उन दोनों सम्यक्त्वों की उत्पत्ति और विनाश दोनों ही हुआ करते हैं। कुछ स्थान ऐसे हैं कि जहाँ पर क्षायक सम्यक्त्वी की उत्पत्ति नहीं होती। विशेष यह है कि उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव तीसरे नरक तक ही जन्म लेते हैं तथा क्षायक सम्यग्दृष्टी प्रथम नरक तक ही जन्म लेते हैं दूसरे आदिक में क्षायक सम्यक्त्व का अभाव है। उपशम सम्यक्त्व सातों नरक वासी नारकियों के होता है उसका काल उत्कृष्ट दो घड़ी मात्र ही है उपशम करने वाले जीव सब कालों में पाये जाते हैं। विशेष यह है कि

क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य काल अंतरमूहूर्त है उत्कष्टता से ६६ सागर प्रमाण है किन्हीं आचार्यों का ऐसा मत है कि क्षयोपशम सम्यक्त्व दोवार होता है इसका कारण यह है कि क्षयोपशम न करने वाला जीव जब छयासठ सागर में अंतरमुहूर्त शेष रहा तब श्रेणी चढ़ने के सन्मुख हुआ और द्वितीयोपशम कर श्रेणी चढ़ा और उपशान्त मोह, में अंतरमुहूर्त काल रहा और च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो पुनः उपशम कर पुनः क्षयोपशम करके क्षयोपशमिक सम्यग्दष्टी वना और अंतरमूहूर्त कम छयासठ सागर प्रमाण रहकर कृतकृत वेद कर क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त हो गया इस अपेक्षा से १३२ सागर प्रमाण काल क्षयोपशम का होता है। क्षायक सम्यक्त्व का जघन्य काल अंतरमुहूर्त है उत्कष्ट काल कोटि पूर्व आठ वर्ष तीन महीना अधिक तैंतीस सागर प्रमाण है। इसका कारण यह है कि जिनके दो भव मनुष्य के वाकी हैं वे अनुदिश और अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते रहते हैं उनकी जघन्य स्थिति ३२ सागर प्रमाण हैं और उत्कष्ट तैंतीस सागर प्रमाण है इस प्रकार विचार करने पर क्षयोपशम वाले की छयासठ सागर प्रमाण कही गई है तथा पूर्व कोटि पृथक्त्व सिद्ध हो जाता है। अथवा १३२ सागर प्रमाण संसार अवस्था में रहकर क्षय कर क्षायक सम्यक्त्व को प्राप्त हो मोक्ष को प्राप्त होता है। उपशम श्रेणी से चढने वाले उपशम सम्यग्दृष्टी चारों का काल अंतरमुहूर्त है तथा एक-एक का भी है क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों का काल अयोगी पर्यन्त मूहूर्त होता है सयोग सम्यग्दष्टी का काल कोटि पूर्व से कुछ कम है सासादन का जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलिक मिश्र वालों का भी उत्कृष्ट काल अन्तरमुहूर्त तथा जघन्यता से एक समय है विशेष आगम से जानना चाहिए। ये सव सम्यक्त्व निकट भव्य के लिए अचिन्त्य सुखों को देने वाले हैं। इनका सुख स्वाद अभव्य तथा दूर भव्य को नहीं होता है ।। ५३५-५३६ ।।

अमनस्कानां सर्वः कालो वा क्षुद्रभव प्रमाणेव।
उत्कृष्टोऽसंख्यातो भावपरावर्ताः भवेत् तत् ।।५३७
मिथ्यात्वे संज्ञीनां सर्वं भवन्ति कालोऽन्तरमुहूर्तो।
सासादनादि क्षीणान्त संयमीनामन्तमुहूर्तम् ।।५३८

सामान्य अमनस्क जीवों का सर्वकाल है। अमनस्क जीव हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव का काल छुद्रभव प्रमाण है क्योंकि भव को पूर्ण कर सेनी पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होने की अपेक्षाकृत है। और उत्कृष्टता से अनंत भाव परावर्तन उस जीव के होते हैं। क्योंकि अमनस्क जीवों के नित्य ही मिथ्यात्व का उदय पाया जाता है। तथा स्थावर नाम कम का उदय (रहता है)। वे जीव एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायक एकेन्द्रिय होते हैं इनके चार प्राण होते हैं और चार पर्याप्तियां होती हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के सात प्राण पांच पर्याप्तियां होती हैं असेनी पंचेन्द्रिय जीवों के पांच पर्याप्तयां तथा ९ प्राण होते हैं। ये सव ही असैनी होते हैं। जव छहों पर्याप्तियां और दश प्राणों की प्राप्ति होती हैं तव पंचेन्द्रिय समनस्क होता है। पर्याप्तियां कौन हैं उनसे क्या प्रयोजन है ? जव मिथ्यादृष्टि जीव औदारिक वैक्रियक और आहारक तीन शरीरों योग्य व छह पर्याप्तियों के योग्य ओदारिक वैक्रियक आहारक तथा भाषा मन आनपान पर्याप्ति इनके

योग्य नो कर्म पुद्‌गल वर्गणाओं को ग्रहण कर लेता है तब समनस्क होता है। सेनी पंचेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टियों का सब काल है। एक जीव की अपेक्षा से अन्तरमुहूर्त है क्यों कि जन्म के पीछे अन्तरमुहूर्त बीत जाने पर सम्यक्त्व को प्राप्त होता है। सासादन से लेकर क्षीण कषाय गुण स्थान वाले संयमी जीवों का काल अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट और जघन्य प्राप्त होता है। क्योंकि सासादन से लेकर क्षीण कषाय तक के सब जीव समनस्क ही होते हैं। औदारिक शरीर वालों के कवलाहार होता है केवलियों के नो कर्म आहार स्थावरों के लेपाहार होता है देवों के इच्छाहार और पक्षियों के अण्डे की अवस्था में ओजाहार होता है। किसी के कर्माहार भी होता है। परन्तु यहां इन से कोई सम्बन्ध नहीं है ॥५३७-५३८॥

एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण होते हैं दोइन्द्रिय जीवों के छह प्राण होते हैं।

अनाहारकेमिथ्यादृगादीनां श्चैक द्वित्रि समयाः।
सासादनासंयता सम्यग्द्वष्टेयेक द्वित्रि समयः।५३९॥

अनेकानेक मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा से सर्वकाल होता है परन्तु एकजीव की अपेक्षा एक समय या दो समय या तीन समय अधिक से अधिक इसके पीछे जीव नियम से आहारक हो जाता है सासादन तथा असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाले अनाहारक अवस्था में एक दो या तीन समय काल होता है। तथा आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल होता है सयोग केवली के अनाहारक काल की व्याख्या कर आये हैं।५३९।

आगे अन्तर कहते हैं

गुणभ्रष्टो गुणान् पुनः लब्ध्वामध्यगतःकालान्तरोच्यते॥
यथाकोऽपि स्वगृहात् निर्गच्छतं पर गृहं पुनःस्वम्॥५४०॥

जैसे कोई व्यक्ति अपने घरको छोड़कर परदेश चला गया और कुछ काल बीतने के बाद वह अपने घर को वापस आया और अपने घर को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार जो कोई भी पहले समय में गुणस्थान का स्वामी बना था और उस गुणस्थान से कालान्तर में च्युत हो गया औरअन्य गुणस्थानों को प्राप्त होगा पुनः उन गुणस्थानों को छोड़कर पहले स्थान को प्राप्त होने के बीच में जितना काल व्यतीत हुआ वह अन्तर कहलाता है। गुण से गुणान्तर भाव से भावान्तरमार्गणा से मार्गणान्तर कषाय से कषायान्तर। ज्ञानावरण से ज्ञानावरणान्तर दर्शनावरण से दर्शनावरणान्तर दर्शन मोह से दर्शनमोहान्तर। ५४०।

मिथ्यादृष्टे नास्त्यंतरैकं प्रत्यन्तर मुहूर्तान्तरः
ऐधांन्तरं द्वात्रिंशधिक शतोदधिर्देशोनः।४४१॥

अनेक मिथ्यादृष्टी जीवों की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा दो घड़ी अंतरकाल होता है और उत्कृष्टता से १३२ सागर से कुछ कम होता है। इसका कारण यह है कि किसी अनादि मिथ्यादृष्टी जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर उपशम सम्यग्दृष्टी हुआ और तत्पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति उदय में आ जाने से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी बन गया तब उसका काल ६६ सागर प्रमाण हुआ और असंयत गुणस्थान में ही व्यतीत किये जब अंतर मुहूर्तकाल शेष रह गया उपशम श्रेणी चढने के सन्मुख सातिशय

अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त हो द्वितीयोपशम कर श्रेणी चढ़ा और उपशान्त मोह में कुछ ही समय रहा और कषाय का उदय हो जाने के कारण वहां से च्युत हो क्रम से असंयत दशा को प्राप्म होने पर सम्यक्त्व प्रकृति का पुनः उदय हुआ तव ६६ सागर प्रमाण स्थिति सम्यक्त्व की ग्रहणकर मनुष्य देव देवसे मनुष्य गति में जन्ममरण कर ६६ सागर से कुछ कम काल शेष रहा कि कारण पाय सम्यक्त्व की विराधना करके मिथ्यादृष्टि वन गया इसप्रकार १३२ सागर प्रमाण काल उत्कृष्ट प्राप्त होता है। किसी जीव ने उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त किया और दो घड़ी काल तक सम्यक्त्व में रहा तव कषाय का उदय होने पर सासादन करने वाला हो एक समय के पीछे मिथ्यादृष्टि वन गया इस प्रकार मिथ्यात्व का अंतर काल दो घड़ी होता है यह मिथ्यात्व का जघन्य काल है।५४१॥

सासादन मिश्रौदृगां नास्त्यंतरैकं प्रति चरम समयः
ऐधा पल्यासंख्येय भागोवैकस्य चरमान्तरम् ।५४२
ऐधार्धपुद्गला परावर्तो देशोनमिश्रैकं द्विघटी ।।
सम्यग्दृष्टयप्रमत्त संयतानां नास्त्यंतरैव ॥५४३॥
एकस्य चरमो द्विघटिकैधाऽर्धपुद्गलावर्त देशोन ॥
चतुरूपशमक क्षपकौ चरम समयो जीवानाँ च। ५४४॥

सामान्य से सासादन और सम्यगमिथ्यादृष्टि नाना जीवों की अपेक्षा से अन्तर नहीं पाया जाता है इसका कारण यह हैं कि तीनों लोकों में प्रतिसमय कोई न कोई जीव सासादन व मिश्रवाला विद्यमान रहता ही है इसलिए निरंतर है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर कम से कम एक समय अन्तर पड़ता है। इसका कारण यह है कि कोई उपशम सम्यक्त्व वाला जीव उपशम सम्यक्त्व की मर्यादापूर्ण कर कषायके उदय आने के कारण को पाकर सम्यक्त्वरत्न चूलिका से गिरा परन्तु मिथ्यात्व रूपी भूमि पर नहीं पहुंचा है तव तक सासादन करता है पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ एक समय के अनंतर पुनः जीव सासादन को प्राप्त हुआ इस प्रकार जघन्य अन्तर एक दूसरे जीव की अपेक्षा से अन्तर प्राप्त होता है नाना जीवों की अपेक्षा एक समय अन्तर है एक जीव की अपेक्षा अधिक से अधिक अंतर पल्यका असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

मिश्र सम्यग्दृष्टी जीवों का जघन्यअन्तरदो घड़ी हैं। उत्कृष्टता से अर्धपुद्गलापरावर्तन काल से कुछ कम कहा है इसका भी कारण यह है कि कोई मिथ्यादृष्टी जीव ने मिथ्यात्व को दवा कर सम्यगमिथ्यात्व को प्राप्त हुआ पीछे एक समय के पश्चात उपशंम सम्यग्दृष्टी हुआ अथवा मिथ्यादृष्टी हुआ पुनः दो घड़ी के पीछे मिथ्यात्व प्रकृति को दबाकर सम्यगमिथ्यात्व को प्राप्त हुआ तव दो घड़ी अन्तरकाल प्राप्त हुआ। तथा कोई मिश्र सम्यग्दृष्टि था पुनः च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो अर्धपुद्गला परावर्तन से कुछ कम काल तक संसार में भ्रमण किया पुनः मिश्र को प्राप्त हुआ तव अन्तर काल उत्कृष्ट अर्धपुद्गला परावर्तन से कुछ कम काल प्राप्त हुआ। असंयत सम्यग्दृष्टी से लेकरअप्रमन्नगुणस्थानवाले अनेकजीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नहीं पाया जाता है इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव तीनों लोक तीनों कालों में

विद्यमान रहते हैं। तथा संयतासंयत और प्रमत्त और अप्रमत्त संयत सदा काल विद्यमान रहते हैं इस अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल अंतर अर्ध पुद्‌गला परावर्तन से कुछ कम समय पाया जाता है। जैसे किसी जीव से उपशम सम्यक्त्व व क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर संयमासयम को प्राप्त किया प्रमत्त संयत हुआ और अप्रमत्त इन चारगुण स्थानों को प्राप्त होने के पीछे सम्यक्त्व से व चारित्र से भ्रष्ट हुआ और अर्धपुद्गला परावर्तन पर्यन्त संसार में भ्रमण कर जब अंतरमुहूर्त शेष रहा तव सम्यक्त्व को प्राप्त हो संयम को धारण कर संयमासंयम प्रमत्त अप्रमत्त को प्राप्त हो क्षपक श्रेणी माड़कर चढ़ा और मोक्ष पद को प्राप्त हुआ। चारों उपशम व क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीवों की अपेक्षा से एक समय जघन्यता से अंतर है इसका भी कारण यह है कि एक समय के पीछे नियम से कोई न कोई जीव श्रेणी चढ़ने के सन्मुख होता ही है। उपशम श्रेणी से चढ़े चाहे क्षपक श्रेणी से चढ़े ॥ ५४२-५४३-५४४ ॥

ऐधा वर्षपृथक्त्वमयनमेकस्य द्विघटिका कालः ॥
अर्धद्रव्य परावर्तः सयोगीनां च नाऽस्त्यन्तरम् ॥५४५॥

उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीवों का अधिक से अधिक सवत्यर पृथकत्वअंतर होता है। यदि कोई भी जीव उपशम श्रेणी नहीं चढ़े तो एक वर्ण प्रथकत्व तक नही चढ़ेगा तत्पश्चात नियम से चढ़ेगा क्षपक श्रेणी का अन्तर छह महिना है उसके पीछे निलम से कोई जीव क्षपक श्रेणी से चढेगी। एक जीव की अपेक्षा से विचार करने पर कम से कम दो घड़ी और अधिक से अधिक अर्धपुद्गला परावर्तन से कुछ कम अंतर उपशम श्रेणी वाले का है उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव उपशान्त मोह तक चढ़ता है और वहां से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो संसार में भ्रमण कर पुनः पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होकर उपशम श्रेणी चढा तथा अर्धपुद्‌गला परावर्तन से कुछ कम काल अन्तर हुआ। क्षायक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणो चढ़ने वालों के अन्तर नहीं है क्योंकि क्षायक सम्यक्त्व विनाश नहीं होता है वह सयोगी अयोगी तथा सिद्ध होने तक जैसा का तैसा वना रहता है। तथा सयोगी एक जीव या अनेक जीवों की अपेक्षा से भी अन्तर नहीं है।

जीव कांड गोमट्ट सार में सांन्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट काल प्रमाण कितना है!

सत्तदिवा छम्मासा वासपुधन्तं च वारसमुहुन्ता ॥
पल्लासंखं तिण्हं बरमवरं एक समयो दु ॥॥१४६॥
पढमुवसमसहिदाण विरदाविरदीये चोद्दसा दिवसा ॥
विरदिए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोधव्वो ॥१४७॥

आठ अन्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट काल क्रम से सात दिन छह महीना पृथकत्व वर्ष पृथकत्व वारह मुहूर्त और अन्त की तीन मार्गणाओं का काल पल्य के असंख्यात वें भाग प्रमाण है। जघन्य काल सब का एक समय है। उपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्ट विरह काल सात दिन है सूक्ष्म सांपराय का छह महोना आहारक योग का वर्ष पृथक्त्व तथा आहारक मिश्र का पृथक्त्व वर्ष की वैक्रियक मिश्र का वारह मुहूर्त अपर्याप्त मनुष्य का पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। तथा सासादन और मिश्र इन दोनों का भी उत्कृष्ट अन्तर काल पल्यका

असंख्यातवां भाग है। और जघन्य काल सबका एक समय है मतलब यह है कि तीनों लोक में कोई भी उपशमसम्यग्दृष्टि न रहे। ऐसा विच्छेदन सात दिन के लिए पड़सकता है। उसके पीछे कोई न कोई उपशम सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होता ही है इसी प्रकार सूक्ष्म सांपराय आदि के विषय में समझना चाहिए।

प्रथमोपशम वाले देश संयत का उत्कृष्ट विरह काल चौदह दिन और प्रमत्तअप्रमत्त गुण स्थान का उत्कृष्ट विरह काल पन्द्रह दिन समझना चाहिए। उपशम सम्यक्त्व के भेद दो हैं एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व दूसरा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चार अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ कषायें तथा एक दर्शन मोहनीय मिथ्यात्व के आश्रित तीनों दर्शन मोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी पांच अथवा सात का उपशम करता है। तब उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है उसको उपशम सम्यक्त्व कहते हैं। अनन्तानुबन्धी चार का विसंयोजन कर तथा दर्शन मोह का उपशम होने से जो सम्यक्त्व होता है वह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व है इनमें से प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित देश संयत गुण स्थान का अन्तर काल चौदह दिन का है प्रमत्त और अप्रमत्त का पन्द्रह दिन का है। गाथा में दिए गए तु शब्द से दूसरे सिद्धान्त के अनुसार २४ दिन का भी अन्तर होता है ऐसा सूचित किया गया है किन्तु जघन्य विरह काल सबकाएक समय है।

नारक सप्तभूषु कुदृष्टयाद्यसंयत सदृष्टिनों नान्तरम्।
चरमान्तनरं मुहूर्तश्च दीर्घं स्वनरकायुर्देशोन ॥५४८॥
सासादन मिश्रणां चरमसमोनधः पल्यासंख्य भागः॥
एकस्यद्विघटी चोत्कर्षेण स्वायुर्देशयैः ॥५४६॥

पहले-पहले नरक से लेकर सातवें नरक तक सब नरकों में पहले के चार गुणस्थान होते हैं। नाना जीवों की अपेक्षा से जीव चारों गुण स्थानों में सदा विद्यमान रहते हैं इसलिए कोई अन्तर प्राप्त नहीं होता है। एक जीव की अपेक्षा से विचार करने पर जघन्यता से मिथ्यादृष्टि का अन्तर-अन्तर मुहूर्त है और उत्कृष्टता से अपनी भुज्यमान नरक आयु से कुछ कम काल है। पहले नरक में एक सागर से कुछ कम है। दूसरे नरक में तीन सागर से कुछ कम है तीसरे नरक में सात सागर से कुछ कम है चौथे नरक में दश सागर से कुछ कम हैं पांचवें नरक में सत्रह सागर से कुछ कम है छठवें नरक में २२ सागर से कुछ कम है सातवें नरक में तेतीस सागर से कुछ कम अन्तर पाया जाता है। इसका कारण यह है कोई मिथ्या-दृष्टि मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ और दो घड़ी के पीछे वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और मरण समय में विराधना कर अन्तर मुहूर्त के पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ इस प्रकार अपनी नरक आयु से कुछ कम काल एक सागर प्राप्त हुआ। सासादन सम्यग्दृष्टि व मिश्र सम्यग्दृष्टि तथा असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के भी अन्तर पाया जाता है। कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और अन्तर मुहूर्त के पीछे कोई अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय में आने से सम्यक्त्व रूपी रत्न शिखर से च्युत हुआ तब सासादन को प्राप्त हुआ। उसमें भी एक समय व्यय कर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। जब वेदना का अनुभव करते-करते बहुत काल व्यतीत हो गया उसके पीछे पुनः उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और पुनः

अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय में आ जाने के कारण सम्यक्त्व से च्युत हुआ पुनः सासादन को प्राप्त हुआ एक समय के पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त होकर मरण कर पंचेन्द्रिय त्रियंचों में उत्पन्न हुआ इस प्रकार सासादन में अन्तर पाया जाता है। इसी प्रकार मिश्र और असंयत का भी अन्तर प्राप्त होता है एक सागर तीन सात दश सत्रह बावीश और तेतीश सागर से कुछ कम अन्तर पाया जाता है यह अन्तर एक जीव की अपेक्षा से कहा गया है। जघन्यता से सासादन और मिश्र का अन्तराल कम से कम एक समय तथा पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सम्यक्त्व की अपेक्षा से जघन्य दो घड़ी अन्तर है। इसका कारण यह है कि कोई जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तर मुहूर्त तक रहकर पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ पुनः मिथ्यात्व का उपशम करके सम्यग्दृष्टी बन गया, तब अन्तर मुहूर्त काल प्राप्त हुआ। उत्कृष्टता से अपनी भुक्तायु से कुछ कम अन्तर प्राप्त होता है। इसका कारण यह है कि एक वार सम्यक्त्व होकर छूट जाने पर पुनः सम्यक्त्व होने तक के बीच के काल को अन्तर कहते हैं तीसरे नरक तकके नारकियों को देवों के द्वारा दिए गए धर्मोपदेश को सुनकर नारकी जीव मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं। तथा वेदना अनुभव व जाति स्मरण से सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं। तथा भ्रष्ट होते हैं पुनः प्राप्त होकर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार नरक गति में अन्तर का निरूपण किया। नाना जीवों की अपेक्षा तीनों सम्यक्त्वों का अन्तर नहीं वे जीव निरन्तर रहते ही हैं। ५६७।५६८॥

त्रियंचगति

यत् त्रियंगतौमिथ्या दृष्टीनां नास्त्यिन्तरं चरमद्विघटी।
दीर्घ त्रिपल्योपमं देशोनैक जीवस्यान्तरम् ॥ ५४९॥

मिथ्यादृष्टी अनेक जीवों की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है यदि अंतर है तो दो घडी तो जघन्य से है अधिक से तीन पल्य से कुछ ही कम है। उसका भी कारण यह है कि पंचेन्द्रिय त्रियंच भोग भूमि में मिथ्यादृष्टी त्रियंच की उत्कृष्ट आयु तीन कल्प की होती है। किसी मिथ्यादृष्टी जीव ने वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त किया और विराधना कर मिथ्यात्व को प्राप्त हो पुनः जब भुक्तायु पल्य के असंख्यातवे भाग आयु शेष रही तब पुनः उस ही सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ पुनः अंतर मुहूर्त के पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ, तब दो घड़ी मिथ्यात्व का अंतर प्राप्त हुआ। त्रियंचों में गुणस्थान पाँच होते हैं। उनका भी अंतर गुणस्थानों की चर्चा के समान समझना चाहिये ॥ ४४९ ॥

मनुष्यगति

मिथ्यादृष्टयादिनृगताः सयोगान्तानां किंचिन्नान्तरम्।
जीवं प्रातिद्विघटी चरमैघपल्पत्रयसाधिकम् ॥ ५५० ॥

सामान्य मिथ्यादृष्टी से लेकर मनुष्य गती में सयोग केवली गुणस्थान वाले जीवों के कोई अंतर नहीं प्राप्त होता है। एक जीव को अपेक्षा से दो घड़ी अंतर प्राप्त होता है। इसका कारण यह है कि मिथ्यादृष्टी सादि या अनादि दोनों ही मिथ्यात्व रूपी जहर का वमन कर सम्यक्त्व रूपीरस का पान करते हैं, पुनः सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यादृष्टी हुआ तब

दो घड़ी मिथ्यात्व का अंतर प्राप्त हुआ। उत्कृष्टता से तीन पल्य से कुछ अधिक काल अंतर प्राप्त होता है। यथा किसी मिथ्यादृष्टी जीव ने मनुष्य आयु का पूर्व में वंधकर लिया पीछे से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ तव वह उत्कृष्ट भोगभूमि के तीन पल्य वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और मरण काल में सम्यक्त्व की विराधना कर मिथ्यादृष्टी होकर मरा और कुदेवों में उत्पन्न हुआ इस प्रकार तीन पल्य से कुछ अधिक अन्तर मिथ्यात्व का हुआ। यह अंतर क्षयोपशम की अपेक्षा है॥ ५५० ॥

सासादन मिश्रयोश्च द्विघटो चरमो दीर्घं त्रियल्याधिकम्।
देशाद्यप्रमत्तान्त ऐकैके द्विघटिका चरमैव ॥ ५५१ ॥

सासादन सम्यक्त्व मिश्र सम्यक्त्व असंयत सम्यग्दृष्टो देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त पर्यन्त सब का अंतर काल अंतर मुहूर्त है। विशेष यह है कि सासादन सम्यग्दृष्टो व सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवों का जघन्यता से अंतर मुहूर्त अंतर है, तथा उत्कृष्टता से तीन पल्प से कुछ अधिक है। अधिक कहने से पूर्व कोटि पृथक्त्व समय अधिक है। तथा पल्प के असंख्यातवें भाग है अथवा अंतर मुहूर्त अंतर है। नानाजीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नहीं एक जीव के प्रति जघन्यता से तीनों में अंतर मुहूर्त होता है।

आगे इन तीन गुणस्थान वाले जीव यदि पुनः प्राप्त हों तो अधिक से अधिक कितने समय वाद उन गुणस्थानों को प्राप्त होंगे।

ऐधापूर्व कोटी प्रथकत्वोपशमचतुर्णां द्विघट्यन्तरम्।
दीर्घं चक्षपकानां नास्त्यन्तरं जिनोपदिष्टम्॥ ५५२ ॥

देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त संयतों का उत्कृष्ट कालान्तर करोड़पूर्व प्रथकन्त्व है इतना काल व्यतीत होने पर नियम से जीव संयमासंयम प्रमत्त संयम अप्रमत्त संयम भाव को प्राप्त होते हैं चारों उपशम श्रेणी चढ़नेवालों में जघन्यता से अंतर मुहूर्त कालान्तर है। जो कोई भव्य देश संयत को धारण कर पुनः भ्रष्ट हो जावे तव गुरू का उपदेश सुनकर पुनः देश संयम गृहण करने के योग्य भाव हुए उसके मध्य में जघन्यता से अन्तर दो घड़ी होता है (अंतर मुहूर्त)। जो कोई भव्य देश संयम को धारण कर पुनः भ्रष्ट हो गया और पूर्व कोटि तक पुनः देश संयत के योग्य भाव नहीं हुए जव अन्तर मुहूर्त शेप रहा तव पुनः देश संयत को धारण किया। इस नियम से पूर्व कोटि पृथकत्व काल प्राप्त होता है यह उत्कृष्ट काल है। क्योंकि कर्मभूमिया मनुष्य की आयु इससे अधिक नहीं होती है। क्योंकि सम्यग्दृष्टी जीव देश संयत का धारण करने वाला मनुष्य से मनुष्य नहीं होता है। इसी प्रकार काल जघन्य उत्कृष्ट प्रमत्त और अप्रमत्त का प्राप्त होता है। कोई सातिसय अप्रमत्त उपशम श्रेणी चढ़ना प्रारम्भ कर उपशान्त मोह को प्राप्त हुआ। वह क्षायक सम्यग्दृष्टी हो या उपशम सम्यग्दृष्टी हो दोनों ही उपशम से चढ़कर उपशान्त मोह में पहुंचकर भ्रष्ट हुआ और क्रमसे गिरा प्रमत्त में आया तथा मिथ्यात्व भाव हुए अथवा असंयत भाव हुए दो घड़ी काल वीतने पर पुनः उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो उपशम श्रेणी से चढा या असंयम में अंतर मुहूर्त रहकर पुनः उपशम श्रेणी प्रारम्भ कर चढ़ा इस नियम से अंतरमुहूर्त अन्तर प्राप्त हुआ। पूर्वकोटि उत्कृष्ट

अंतर काल है। क्षायक सम्यग्दृष्टी और क्षपक श्रेणी चढने वाले जीवों के कोई अन्तर नहीं पाया जाता है क्योंकि क्षपक श्रेणी चढने वाले जीव नियम से केवल ज्ञान को प्राप्त हो मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। मनुष्यगति में मनुष्यों के चौदह गुणस्थान होते हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है।

सुरगतौमिथ्यादृष्टी जीवानामंतरंनंकिचिदेकम्।
अंतरमुहूर्तोत्कृष्ट मेकत्रिंशदुदधिर्देशोनः ॥ ५५३ ॥
तथासासादनाद्यसंय ताताना चान्तरमौद्यच।
चतुर्गतिषु मिथ्यादष्टी जन्ममृत्युलभतेसदा ॥ ५५४ ॥

देवगती में मिथ्यादृष्टी जीवों का निरन्तर जन्ममरण होता रहता है तथा मिथ्यादृष्टी जीव निरंतर निवास करते है मिथ्यात्व की सत्ता कायम रहती है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर दो घड़ी है और उत्कृष्टता से इकतीश सागर से कुछ कम है। सासादन और मिश्र तथा असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होने में अन्तर मुहूर्त जघन्य अन्तर है तथा मिथ्यात्व को लेकर चारों गतियों में जीव भ्रमण करते रहते हैं ॥ ५५३ । ५५४ ॥

एकेन्द्रिय वते चतुः पंचेन्द्रियाः वाऽसंज्ञीनोजीवानां।
सर्वदामिथ्यात्वैव नास्त्यंतर मेकंक्षुद्रभवः ॥ ५५५ ॥

इन्द्रिय मार्गणा की अपेक्षा विचार करने पर एकेन्द्रिय द्विइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जितने जीव हैं वे सब मिथ्यादृष्टी ही हैं तथा सेनी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टी गुणस्थान से लेकर सयोगी जिन तक होते हैं। एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त नाना जीवोंकी अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा विचार करने पर अपना क्षुद्र भव अन्तर होता है।

ऐधा द्वौसिन्धुः कोटीपूर्वं पृथकत्वमभ्यधिकम्।
चैकंप्रति क्षुद्रभवः संख्यात पुद्गला परावर्ताः ॥५५६॥

उत्कृष्टता से दो सागर से अधिक दो कोटी पूर्व पृथकत्व अन्तर प्राप्त होता है। तथा एक जीव की अपेक्षा से एक क्षुद्र भव अधिकता से अन्तर असंख्यात पुद्गला परावर्तन काल अन्तर प्राप्त होता है। कोई एकेन्द्रिय क्षुद्र भव धारण कर दो इन्द्रिय के क्षुद्र भव को धारण कर पुनः एकेन्द्रिय में जन्मा तब एक क्षुद्रभव प्राप्त होता है। कोई एकेन्द्रिय निगोदिया जीव अपने स्थान से च्युत हो क्रम से जन्म मरण कर पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होकर असंख्यात पुद्गला परावर्तन किये और देवगति को प्राप्त हो पुनः एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ तब असंख्यात पुद्गला परावतर्तन काल अन्तर प्राप्त होता है ॥ ५५६ ॥

सासादन मिश्राणां नास्त्यंतरैकं पल्या संख्येय भागः ॥
उत्सहस्रसागराः पूर्वकोटी पृथक्त्वं सदृगोवा ॥५५७॥

सासादन सम्यग्दष्टी मिश्र सम्यग्दृष्टी जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है परन्तु एक जीव की अपेक्षा अंतर अवश्य पाया जाता है। अथवा एक जीव की अपेक्षा पल्य का

असंयाख्तवां भाग काल अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्टता से हजार सागर और पूर्वकोटि पृथकत्व अंतर पाया जाता है। असंयत सम्यग्दृष्टी का भी सासादन के समान ही अंतर जघन्य और उत्कृष्ट होता है। ५५७

चतुरुपशमकालां च सामान्यैकं प्रति चरम द्विघटी।
ऐधा सहस्रसिन्धुः पूर्वकोटी पृथक्त्वैरम्यधिकम् ॥५५८॥

चारों उपशम श्रेणी चढने वालों की अपेक्षा अन्तर नहीं है परन्तु एक जीव की अपेक्षा अन्तर पाया जाता है। यदि कोई एक वार उपशम श्रेणी चढ़कर गिरे पुनः श्रेणी चढ़ना आरम्भ करेगा तो अंतरमुहूर्त काल वीत जाने पर ही करेगा तव अन्तर जघन्यता से प्राप्त दो घड़ी होता है। यदि कोई उपशय श्रेणी चढ़ा और उपशान्त मोह में पहुँचा वहाँ चारित्र मोह की कषाय का उदय आया और उपशान्त मोह से च्युत हो मिथ्यात्व को प्राप्त हो मरण किया और मिथ्यादष्टी देव हो वहां की आयु को भोगते हुए जव शेष आयु के छह मास रह गये तव मंदार माला को मुरझानी देखकर तीव्र संक्लिष्ट परिणामी हो मरा जिससे मरकर स्थावर कायक एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ तथा चतुर गतिनिगोद जीवों में उत्पन्न होकर हजार सागर पर्यन्त जन्म मरण कर मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर आठ वर्ष वीतने के पीछे सम्यक्त्व प्राप्त हो संयमी वना और प्रमत्त अप्रमत्त का उलंघन कर उपशम श्रेणी से चढ़ा तव हजार सागर अन्तर प्राप्त होता है। अथवा एक हजार सागर पूर्वकोटी अन्तर मुहूरत काल अन्तर प्राप्त होता है। ५५८॥

स्थावरकायकाणां च नास्त्यंतरमेकं प्रतिक्षुद्रभवः।
उत्कृष्टेन संख्येया द्रव्य परावर्ताऽन्तरः ॥५५९॥

पृथवी पानी आग हवा और वनस्पति कायक जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षा से क्षुद्रभव जघन्य अन्तर है। उत्कृष्टता से असंख्यात पुद्गला परावर्तन काल अन्तर है। वनस्पति कायक जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं एक जीव की अपेक्षा अपना क्षुद्रभव हैं उत्कृष्टता से लोकके जितने प्रदेश हैं उतना अन्तर काल है क्योंकि इन जीवों के हमेशा ही मिथ्यात्व व अनंतानुवन्धी कषायों का उदय निरंतर विद्यमान रहता है। गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही है।

त्रशकायकानां खलु इन्द्रिय मार्गणावदंतर नियोजयेत्।
सासादन मिश्रयोः हीनं पल्यासंख्येय भागः ॥५६०॥
द्विघट्युत्कृष्टांतरं द्वौसहस्रसागरौ पूर्वकोटी।
अभ्यधिकम् पृथक्त्व मुपशमकस्यान्तरमुहूंतञ्च ॥५६१॥

त्रशकायक जीव दोइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सव त्रसकाय वाले ही जीव होते हैं उनके त्रसनाम करम का उदय निरंतर वना रहता है। मिथ्यात्व से लेकर अयोगी तक सव गुण स्थान होते है। चौदहवें अयोगी गुणस्थान वाले त्रस स्थावर दोनों नाम कर्म से रहित होते हैं। चौदह गुणस्थानों का अन्तर इन्द्रिय मार्गणा के समान ही है विशेष कुछ नहीं है। सासादन और मिश्र सम्यग्दष्टी जीव से दो गुणस्थान में रहने वालों का अन्तर पाया जाता है वह

अन्तर पल्यका असंख्यातवां भाग तथा अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्टता से दो हजार सागर पूर्व कोटी पृथकत्व से कुछ अधिक अन्तर पाया जाता है । उपशम श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा कम से कम दो घड़ी और उत्कृष्टता से हजार सागर पूर्वकोटि पृथक्त्व कालान्तर पाया जाता है । क्षायक सम्यक्त्व सहित यदि श्रेणी चढ़े तो जघन्यता से अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है और उत्कृष्टता से तेतीश सागर पूर्वकोटि पृथक्त्व अन्तर प्राप्त होता है। क्षपक श्रेणी वाले के कोई अंतर नहीं पाया जाता है । ५६१ ।

त्रियोगीजीवानांच मिथ्यादृष्ट्या द्ययोगान्तानाम् ।
अंन्तरै कवहूणां च सर्व गुणस्थान वन्नियोज्येत् ।। ५६२।।

मन वचन काय तीनों योग वाले जीवों के अंतर गुणस्थान के समान है जैसा गुणस्थानों में कालान्तर कहा है उसी प्रकार लगा लेना चाहिये । काय योग वाले जीव मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी जिन तक निरंतर वने रहते हैं । योग वहुवचन के साथ है । इससे यह सूचित होता है कि तीनों योग वाले जीव निरन्तर होते हैं । एक जीव की अपेक्षा से अन्तर कहा गया है ।

स्त्री वेद वाले जीवों के कितना अन्तर पड़ता है इसको वतलाने के लिये श्लोक कहते हैं ।

स्त्रीवेदे खलु कुदृगां नाहत्पंतरैकस्य चरमधिद्वटी ।।
पंचपंचाशत पंल्योपम देशौन लब्धः ।।५६३।।
सासादन मिश्रयोः एक प्रति चरमपल्यासंख्येयः भागः
असंयताद्यप्रमत्त संयतानां दीर्घ पल्यशतं ।।५६४।।
द्वयोपशमकयोः एकं प्रति चरमाद्वि घटी दीर्घम् ।
पल्योपम शत पृथकत्वं क्षपकमोहैक समयोवर्षः ।।५६५।।

मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेद वाले जीवों की अपेक्षा विचार करने पर निरन्तर स्त्रीवेद वाले जीव रहते हैं। ऐसा कोई समय नहीं रहता कि कोई स्त्री न रहे । परन्तु एक स्त्री की अपेक्षा से विचार किया जावे तो एक स्त्रीवेदी जीव का अंतर मुहूर्त जघन्य से अन्तर प्राप्त होता है । विशेषता से पचपन पल्य से कुछ कम अंतर प्राप्त होता है । सासादन और मिश्र गुणस्थान वाली स्त्रीवेदी जीवों के प्रति विचार करने पर पल्य का असंख्यातवां भाग तथा अंतर मुहूर्त काल प्राप्त होता है । उत्कृष्टता से सौ पल्य प्रथक्त्व अंतर है । असंयत सम्यग्दष्टी से लेकर संयमासंयम गुणस्थान तक द्रव्य स्त्रीवेद पाया जाता है इन दो गुणस्थानों वाले एक जीव का अंतर अंतर्मुहूर्त है उत्कष्टता से सौ पल्य पृथकत्व कालअंतर प्राप्क होता है । भावदेव स्त्री वेदी जीवो की अपेक्षा विचार करने पर असंयत से लेकर अनिवृत्त करण तक उत्कृष्टता से सौ पल्य से कुछ कम अंतर होता है तथा जघन्यता से दो घड़ी अंतर प्राप्त होता है ।

अप्रमत्त संयत अपूर्वकरण अनिवृत्त करण भाव स्त्री वेद वलों का एक जीव की अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त काल अन्तर होता है उत्कृष्टता से सौ पल्य पृथकत्व है । दोनों क्षपक श्रेणी

चढ़ने वालों का एक समय जघन्यता से अंतर है उत्कृष्टता से वर्ष प्रथकत्व है विशेष षड् खण्डागमादि ग्रन्थों से जान लेना चाहिये।

वेदनपुंसकेनित्यं मिथ्यादृष्टीनांनास्त्यन्तरम्।
द्विघटिकाऽन्तरमेकेन त्रार्यात्रिंशदुदधिर्देशोन ॥५६६॥
सासादनादि संयताऽनिवृत्तकरणान्तनाम्।
अकथिष्यं च वान्तरं गुणस्थान सदृक् व्रजेत् ॥५६७॥

नपुंसक वेद में गुणस्थान पहले से लेकर अनिवृत्त करण तक सब गुण स्थान वाले जीवों के अन्तर नहीं पाया जाता है ये सब निरंतर ही रहते हैं। मिथ्यादृष्टि एक जीव की अपेक्षा दो घड़ी जघन्य अंतर पाया जाता है उत्कृष्टता से तेंतीश सागर से कुछ कम अंतर पाया जाता है। सासादन से लेकर अनिवृत्तकरण गुणस्थान तक के अन्तर को पहले कह आये हैं उतना ही अन्तर जानना चाहिये। नपुंसक भाव वेद में गुण स्थान नौ होते हैं द्रव्यवेद वालों के गुण स्थान पाँच होते हैं।

सकषायैश्च जीवानां प्रागनिवृत्त संयताः।
पुंवेद सादृशांतरं सर्वस्थानेषु सामान्यम् ॥५६८॥

कषाय सहित जीवों के गुणस्थान नौ होते हैं सूक्ष्म लोभ में दश गुणस्थान होते हैं। सामान्य अनेक जीवों की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टी से लेकर अनिवृत्ति करण के छठवें भाग तक लोभ कषाय को छोड़कर शेष कषाय वाले जीव निरंतर विद्यमान रहते है। सामान्य से लोभ कषाय वाले जीवों के भी अंतर नहीं पाया जाता है। उदय की अपेक्षा इनमें भेद होते हैं। क्योंकि तीव्र उदय मंद उदय मंदतर उदय मंद तम उदय में आती रहती हैं उनकी सत्ता का अभाव ही नहीं। यदि एक जीव की अपेक्षा अंतर होता है तो वह इस प्रकार है कि कोई एक जीव उपशम श्रेणी से चढ़ता है और कषायों को उपशमाता हुआ उपशांत मोह को प्राप्त हो गया वहां कषाय का उदय आया तब जघन्यता से एक समय अंतर और उत्कृष्टता से अठारह महीना अंतर पाया जाता है। क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले जीवों के भी जघन्यता से एक समय और उतकृष्टता से अठारह महीना अन्तर पाया जाता है। सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में एक लोभ कषाय का सत्व रह जाता है उससे आगे उसकी सत्ता नहीं शेष पुरुष वेद के समान समझना।

कुत्रिज्ञानेषु मिथ्यादृग् जीवानां नास्त्यंतरम्।
प्राक् सुज्ञानमसंयत्क्षीण मोहान्तश्च जीवानाम् ॥५६९॥
सम्यग्दृष्टे घटिद्वे च कोटीपूर्वश्च देशोनम्।
संयतासंयते षट्षष्ठयुदधि सातिरेकश्च ॥५७०॥

सामान्य से कुमति कुश्रुत विभंगावधि ज्ञानों में स्थित मिथ्यादृष्टी जीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नहीं है एक जीव की अपेक्षा भी अन्तर नहीं है सासादन में भी एक और अनेक जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं हैं। मति, श्रुत अवधि ज्ञान में नाना जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर प्राप्त नहीं होता है। एक जीव की अपेक्षा विचार किया जाय तब जघन्यता

से अन्तर मुहूर्त अन्तर होता है उत्कृष्टता से पूर्व कोटि से कुछ कम कम अन्तर प्राप्त होता है। देशसंयतो में सामान्य से कोई अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त अन्तर होता है उत्कृष्टता से छयासठ सागर से कुछ अधिक अन्तर पाया जाता हैं। विशेष यह है कि कोई मिथ्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर कुमति कुश्रत विभंगावधि का विनाश कर मति श्रुत अवधि ज्ञान का धारी होकर अन्तर मुहूरत के पीछे मिथ्यादृष्टी हुआ तव अन्तर, अन्तर मुहूर्त प्राप्त हुआ। कोई मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्व अंधकार का क्षयोपशम कर क्षयोपशम सम्यग्यदृष्टी हुआ और अपनी छयासठ सागर की स्थिति को पूर्ण कर मिथ्यादृष्टी वन गया तव पुनः कुमति कुश्रुत विभंगावधि ज्ञान को प्राप्त हुआ इस प्रकार छयासठ सागर अन्तर प्राप्त होता है क्षायक सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं।

प्रमत्ताद्यु पशांतनां मुहूर्तं चरमान्तरम्।
त्रार्यत्रिशत्समुद्राः सातिरेक षट् षष्ठयविघश्च ।।५७१।।

प्रमत्त गुणस्थान वाले एक जीव की अपेक्षा अन्तर मुहूर्त अन्तर प्राप्त होता है तथा उत्कृष्टता से तेतीश सागर से कुछ अधिक अंतर होता है। चारों उपशम श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा से अंतर नहीं हैं परन्तु एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अंतर दो घड़ी है। और उत्कृष्ट अंतर छयासठ सागर से भी कुछ अधिक विरह काल पाया जाता है ।।५७१।।

अवधिज्ञानिनां हीनं समयोवर्ष पृथकत्वम्।
मनःपर्यय संयतादि क्षीण मोहान्तानां ।।५७२।।
जघण्योत्कृष्टमंतर मुहूर्तं पूर्व कोटि वा।
केवलीनां गुणस्थान सामान्यमाप्रवर्तितः ।।५७३।।

अवधिज्ञान चोथे गुणस्थान से लेकर क्षीण मोह तक वाले जीवों के होता है उन सब गुण स्थान वाले जीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नहीं। एक जीव की अपेक्षा कम से कम एक समय अंतर है और जत्कृष्टता से वर्ष पृथक्त्व अंतर है। मनःपर्यय ज्ञान प्रमत्त संयत से लेकर उत्पन्न होता है और क्षीण मोह वाले जीवों तक के उत्पन्न होते रहते है नाना जीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अन्तर मुहूरत काल है और उत्कृष्ट भी अंतर मुहूरत है। चारों उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव की अंतरमुहूरत अंतर पाया जाता है और उत्कृष्ट कोटि पूर्व से कुछ कम अन्तर पाया जाता है चारों क्षपक श्रेणी चढने वाले योगियों का विरह काल अवधि ज्ञान के समान है केवली भगवान केवल ज्ञान में संयोग केवली को तरह अन्तर जानना चाहिये तथा अयोगी का ।।५७३।।

सामायिक क्षेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि संयनां।
जघन्यान्तर मुहूर्तश्च द्वयोरुपशमकयो रेकैकम् ।।५७४।।
पूर्वकोटिदेशोन गुणस्थान प्रमत्ताप्रमत्तयोः ।।
मिथ्यादृष्टी संयत द्विघटिका आर्यात्रिशंदुदधिः ।।५७५।।

सामायिक क्षेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि संयतों का नाना जीवों की अपेक्षा ने कोई अन्तर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा से तीनों का जघन्य अन्तर काल अन्तर मुहूर्त

है । सामायिक क्षेदोपस्थापन संयत प्रमत्त गुणस्थान से लेकर अनिवृत्त गुणस्थान तक वाले जीवों के होते हैं इनमें उत्कृष्टता से करोड़ पूर्व से कुछ कम अन्तर है यह अन्तर उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीवों की अपेक्षा से है । परिहार विशुद्धि संयत जीवों के गुण स्थान दो होते हैं । उनका कालान्तर उत्कृष्टता से अन्तर मुहूर्त है । अन्य सूक्ष्म सांपराय संयत और यथाख्यात संयतों के अंतर गुण स्थान व मनुष्य गति के समान जानना चाहिये । मिथ्यादृष्टी सासादन मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टी का अंतर तेतीश सागर प्रमाण उत्कृष्ट अंतर होता है जघन्यता से अंतर मुहूर्त है ।।५७५।।

चक्षुदर्शने मिथ्यादृष्टयादि क्षीणमोहान्तानां च ।
सामान्यैर्नास्त्यन्तरं एकमेव प्रति विशेषश्च ।।५७६।।

चक्षुदर्शन वाले जीवों के गुण स्थान बारह होते हैं इनके सामान्य से कोई अंतर नहीं पाया जाता है क्योंकि चारइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सैनी मिथ्यादृष्टी आदि सब के पाये जाते है इन सब की अपेक्षा कोई अंतर प्राप्त नहीं हैं परन्तु एक जीव की अपेक्षा अन्तर जहां जहां पर कहा गया है वही जानना विशेष है ।।५७६।।

जघन्यं पल्यासंख्यभागः द्वे घटिका द्वौसागरसहस्रः
देशोनेऽसंयते च चतुरुपशमकानां अजेयुः ।।५७७।।
अक्षववधिकेवल दर्शनेष्वंन्तरं तथा ।
गुणस्थानेषु सामान्य अवधि केवलज्ञानवत् ।।५७८।।

सासादन सम्यग्दृष्टो तथा मिश्र सम्यग्दृष्टी एक जीव की अपेक्षा अंतर जघन्यता से पल्य का असंख्यातवां भाग है तथा अंतर मुहूर्त अंतर होता है । उत्कृष्टता से हजार सागर से कुछ कम अंतर हैं । तथा असंयत सम्यग्दृष्टी का जघन्य अंतर अंतर मुहूर्त और उत्कृष्टता से दो हजार सागर प्रमाण काल से कुछ कम अंतर होता हैं । देश संयत प्रमत्त अप्रमत्त संयतो की अपेक्षा कोई अंतर नहीं परन्तु एक जीव की अपेक्षा से जघन्य दो घड़ी और उत्कृष्टता से दो हजार सागर से कुछ कम है । चारो क्षपकों का अन्तर गुणस्थान के समान जानना चाहिये ।

अचक्षु अवधि केवल दर्शन का अंतर गुण स्थान के समान जानना कोई विशेष नहीं अवधि दर्शन केवल दर्शन का अवधि ज्ञान और केवल दर्शन का केवल ज्ञान के समान अंतर जानना चाहिये ।५७८।

अशुभलेश्यानां नास्ति विरहं जीव मन्तर मुहूर्तं सप्त ।।
सप्तदश त्रार्यात्रिशंत्सागरार्देशोनान्तरं च ।।५७९।।
सासादनमिश्रयोश्च सामान्यं एक जीवं प्रागूवच्य ।
तेजा पद्मयोः नास्त्यंतरमेकान्तर मुहूर्तञ्च ।।५८०।।
उत्कृष्टं द्वे चाष्टादश सागरः सासादन मिश्रयोश्च ।।
सातिरेकं पल्यस्यासंख्येय भागान्तरमेव च ।।५८१।।

अशुभलेश्या कृष्ण नील कापोत होती हैं इन लेश्या वाले जीव मिथ्यादष्टी से लेकर

धसंयत सम्यग्दृष्टी गुण स्थान तक के जीवों में पायी जाती हैं नाना जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं पाया जाता है। एक जीव की अपेक्षा विरह काल अंतर मुहूर्त है और उत्कृष्ट कृष्णलेश्याका काल अंतर तेतीस सागर से कुछ कम है नील लेश्या का सत्रह सागर कापोतलेश्या का सात सागर से कुछ कम अंतर पाया जाता है। सासादन मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों कीं अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है। एक जीव की अयेक्षा से पल्य का असंख्यात वां भाग व अंतर मुहूर्त अंतर पाया जाता है उत्कृष्टता से तेतीश सागर सत्रह सागर और सात सागर अंतर प्राप्त होता है। पीत और पद्म लेश्या वाले अनेक जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं पाया जाता है एक जोव की अपेक्षा अंतर्मुहूर्त अंतर होता है। और उत्कृष्ट दो सागर प्रमाण और १८ सागर प्रमाण विरह काल पाया जाता है। सासादन व मिश्र सम्यग्दृष्टी नाना जीवों कीं अपेक्षा से कोई विरह काल नहीं है। एक एक जीव की अपेक्षा जघन्यता से पल्य का असंख्यातवां भाग व अंतर मुहूर्त विरह काल पाया जाता है। उत्कृष्टता से पहले के समान दो सागर व अठारह सागर प्रमाण काल अंतर प्राप्त होता है। देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त का संयतो के जघन्य उत्कृष्ट एक जीव व अनेक जीवों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं पाया जाता है।५७६/८०/८१।।

> शुक्ललेश्यामेकं प्रति कुदृग संयतांल ध्वंतामुहूर्तं च।
> उत्कृष्टेनैकत्रिंशत्सागर देशोनमंतरैव ।।५८२।।

शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टी नाना जीवों की अपेक्षा से कोई अंतर नहीं है एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर अंतर मुहूर्त है तथा उत्कृष्टता से इकतीश सागर प्रमाण अंतर है। यह अन्तर मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टी तक के जीवों का कहा गया है। सासादन मिश्र इनका अंतर पल्य का असंख्यातवें भाग व अंतर मुहूर्त है। उत्कृष्टता से तेतीश सागर से कुछ कम अंतर है।

> देश संयत प्रमत्त संयतयोः तेजोलेश्यावदन्तरं ।
> अप्रमत्त जीवंप्रति जघन्योत्कृष्टान्तर्मुहूर्तन् ।।५८३।।
> त्रयोयपशमकान्नां लघुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं शेषाणाम्।
> गुणस्थान वदंतरंच यथा स्थानं नियोजितव्यः ।।५८४।।

देश संयत और प्रमत्त संयत वाले शुक्ल लेश्या के धारक जीवों के पीत पद्म लेश्या के समान ही अन्तर जानना चाहिये अप्रमत्त गुण स्थान वाले जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त अन्तर है। तथा तीनों उपशम श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर मुहूर्त अन्तर है शेष क्षपक श्रेणी वालों का अन्तर गुण स्थान के समान जानना चाहिये।

विशेष—किसी विवक्षित एक लेश्या को छोड़ कर दूसरी लेश्या को प्राप्त होना और उसको भी छोड़ कर पुनः उस लेश्या को प्राप्त होना इसके बीच के काल को अन्तर कहते हैं। इस प्रकार कृष्ण लेश्या का जघन्य अन्तर अन्तर मुहूर्त काल अन्तर है उत्कृष्ट अन्तर दश मुहूर्त और आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व वर्ष अधिक तेतीस सागर प्रमाण अन्तर

है। इसी प्रकार नील लेश्या तथा कापोत लेश्या का भी अंतर जानना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि नील लेश्या के अंतर में आठ अंतर मुहूरत और कापोत लेश्या के अंतर में छह अंतर मुहूर्त ही अधिक हैं। तेतीश सागर सत्रह सागर व सात सागर से कुछ अधिक अंतर बताया गया है क्योंकि इन तीनों लेश्याओं के धारक परिणाम वाले मिथ्यादृष्टी से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टी गुण स्थान तक चारों गति वाले जीव होते हैं। इन सबका जघन्यता से विरह काल अन्तर मुहूर्त है।

आगे शुभ लेश्याओं का उत्कृष्ट अन्तर दृष्टान्त द्वारा बताते है कोई जीव पीत लेश्या को छोड़ कर क्रम से एक एक मुहूर्त काल बीतने पर कापोत नील कृष्ण लेश्या को प्राप्त हुआ और एकेन्द्रिय अवस्था में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गल द्रव्य परावर्तन का काल उतने काल पर्यन्त भ्रमण कर विकलेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ वहां पर भी उत्कृष्टता से संख्यात हजार वर्ष पर्यन्त भ्रमण किया। पीछे पंचेन्द्रिय हुआ और प्रथम समय से एक एक अन्तर मुहूरत में क्रम से कृष्ण नील कापोत लेश्या को प्राप्त होकर पीत लेश्या को प्राप्त हुआ। इस प्रकार के जीव के पीत लेश्या का छह अन्तर मुहूर्त संख्यात सागर वर्ष अधिक आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला द्रव्य परावर्तन होता है। पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार है कि कोई पद्मलेश्या वाला जीव पद्मलेश्या को छोड़कर अन्तर मुहूर्त तक पीत लेश्या में रहकर वहां से पल्य के असंख्यातवें भागअधिकदो सागरकी आयु से सौ धर्म ईशानस्वर्ग उत्पन्न हुआ चलकर पहले के समान एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ और एकेन्द्रिय अवस्था में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गला द्रव्य परावर्तनों के काल का जितना प्रमाण है उतने काल तक भ्रमण किया। पीछे विकलेन्द्रिय होकर असंख्यात हजार वर्ष तक भ्रमण किया पीछे पंचेन्द्रिय होकर भव के प्रथम समय से लेकर एक एक अन्तर मुहूरत तक क्रम से कृष्ण नील कापोत पीत लेश्या को प्राप्त होकर पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ। इस तरह के जीव के पांच अन्तर मूहूर्त और पल्य के असंख्यात भाग अधिक दो सागर तथा असंख्यात हजार वर्ष अधिक आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला परावर्तन मात्र पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अन्तर होता है। शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार है कि कोई शुक्ल लेश्या वाला जीव शुक्ल लेश्या को छोड़ कर क्रम से एक एक अन्तर मूहूर्त पर्यन्त पद्मपीत लेश्या को प्राप्त होकर सौ धर्म ईशान स्वर्ग में उत्पन्न होकर तथा वहां पर पूर्वोक्त प्रमाणकाल तक रहकर पीछे एकेन्द्रिय अवस्था में पूर्वोक्त प्रमाण काल तक भ्रमणकरके क्रम से पंचेन्द्रिय होकर प्रथम समय से लेकर एक एक अन्तर मुहूर्त तक क्रम से कृष्ण नील कापोत पीत पद्मलेश्या को प्राप्त होकर शुक्ल लेश्या को प्राप्त हुआ। इस तरह के जीव के सात अन्तर मुहूर्त सख्यात हजार वर्ष और पल्य के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर अधिक आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गला परावर्तन मात्र शुक्ल-लेश्या का अन्तर सामान्य विशेष रूप से कहा गया है।

अंतरमभव्यानां न नचैकं प्रत्यन्तरं प्राग्स्थानम्।
भव्याना सर्वस्थानमैद्यन्तेऽभव्या स्तत्रैव ॥५८५॥

अभव्य जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं है। एक अभव्य व अनेक अभव्य जीवों का गुण स्थान एक मिथ्यात्व ही रह जाता है। उनके अन्तर का अभाव है। परन्तु भव्य जीवों की अपेक्षा अन्तर सामान्य और विशेष पाया जाता है। भव्य जीवों में चौदह गुण स्थान पाये जाते हैं। तथा भव्य जीव मिथ्यात्व को छोड़ कर सासादन मिश्र असंयत देश संयत आदि अयोगी गुण स्थान को प्राप्त होते हैं। जिस गुण स्थान को छोड़ कर अन्य गुण स्थान को प्राप्त होना पुनः उस गुण स्थान को प्राप्त होना कि जिसको पहले छोड़ दिया या उसके मध्यकाल को विरह या अंतर कहते हैं। मिथ्यात्व से लेकर उपशांत मोह तक के जीवों के परिणामों से अन्तर पाया जाता है। भव्य जीवों के गुण स्थान के समान ही अंतर जानना चाहिये।

असंयत् सम्यग्दृष्टि भवति च क्षायक गुणं।
अभव्यानां सामर्थम भवति कालान्तरगते ॥
तथैवैकं जीवं प्रति भवति वान्तमुहूरतम् ।
यदोत्कृष्टं कोटी भवति पूर्वश्च समयः ॥५८६॥

अभव्य जीवों को अनंत काल बीत चुका है और अनंतानंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल बीत जाने पर भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। भव्य जीव को अपेक्षा क्षायक सम्यक्त्व असंयत सम्यग्दृष्टी चौथे गुण स्थान वाले जीवों से लेकर अयोग केवली गुण स्थान तक होते हैं। एक जीव के सम्यक्त्व होने के पीछे अन्तर मुहूर्त काल बीत जाने पर क्षायक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। अधिक से अधिक करोड़ पूर्व से कुछ समय तक काल बीत जाने पर नियम से क्षायक सम्यग्दृष्टी कोई न कोई जीव होता ही है॥ ५८६॥

देशसंयताद्य प्रमत्तोपशमकेषु लघु घटिका द्वे च ।
उत्कृष्टान्तरं त्रयत्रिंश दुदधिः सातिरेकंच ॥५८७॥
क्षयोपशमिक सम्यक्त्वेऽसंयतस्य द्विघटिकोत्कृष्टं ॥
पूर्वकोटि देशोन संयतासंयतस्य साधिकम् ॥५८८॥
षट्षष्टयुदधिर्देशोन प्रमत्ताप्रमत्तयोः द्विघेटिका ॥
दीर्घेन त्रयंत्रिशत्सागरः सातिरेकं विघेत् ॥५८९॥

असंयत सम्यग्दृष्टी से लेकर प्रमत्त अप्रमत्त तथा उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीवों में जघन्यता से दो घड़ी अंतर (अंतरमुहूर्त) है। उत्कृष्टता से तैंतीस सागर से कुछ अधिक काल अंतर पड़ता है। च कार से यहां मध्य अन्तर के बहुत भेदों को रचित किया गया है। क्षयोपशम सम्यक्त्व असंयत सम्यग्दृष्टी से लेकर अप्रमत्त गुण स्थान वाले जीवों को उत्पन्न होता है और उसका जघन्य अन्तर काल अंतरमुहूर्त है। उत्कृष्टता से करोड़ पूर्व से कुछ अन्तर पड़ता है। देश संयत एक जीव की अपेक्षा अंतरमुहूर्त काल अन्तर है। उत्कृष्टता से छयासठ हजार से कुछ कम है। प्रमत्त और अप्रमत्त जीवों की अपेक्षा जघन्यता से अन्तरमुहूर्त है और उत्कृष्टता से उत्कृष्ट अंतर छयासठ सागर से कुछ कम अन्तर पाया जाता है प्रमत्त और अप्रमत्त जीवों की अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तरमुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर तैंतीस

सागर से कुछ अधिक है। इसका कारण कोई क्षायक सम्यग्दृष्टी जीव उपशम श्रेणी चढ़ने को सानिध्य हुआ और उस ही काल में मरण हो गया तव सर्वार्थ सिद्धि विमान में तैंतीश सागर आयु को लेकर जन्मा और वहां की आयु को पूरा कर पुनः मनुष्य भव को प्राप्त कर आठ वर्ष छह महीने के पीछे प्रमत्त व अप्रमत्त गुण स्थान के भावों को प्राप्त हुआ तव तैंतीस सागर से कुछ अधिक काल अन्तर प्राप्त होता है। देशव्रती श्रावक अपने व्रत से च्युत होकर पुनः उन व्रतों को ग्रहण कर पहले के समान भाव वन जावे तो अन्तरमुहूर्त का जघन्य अन्तर प्राप्त होना है। उत्कृष्टता से अन्तर पड़े तो छयासठ सागर से कुछ काल पहले देश संयत वन सकता है।

औपशमिक सम्यक्त्वे सर्वस्थानेषु समयोजीवानां
घटिके वा सप्तचतुर्दश पंचदशाहो रात्रि च ॥५६०।
एकजीवं घटिके च त्रयाणामुपशमकानामनुसमयः।
उत्कृष्टं संवत्सर पृथक्त्वमनुगुरू घटिके ॥५६१॥

उपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा अन्तर का विचार करने पर असंयत सम्यग्दृष्टी देश संयत प्रमत्त सयत अप्रमत्त सयत इन चारों का जघन्यता से एक समय अन्तर है तथा उत्कृष्टता से असंयत सम्यग्दृष्टि का अन्तरमुहूर्त अन्तर है तथा संयतासंयत का सात दिन रात अन्तर है प्रमत्त संयत का उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है अप्रमत्त का पंद्रह दिन रात उत्कष्ट अन्तर है। जघन्य अन्तरमुहूर्त है। उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीवों की अपेक्षा एक समय अन्तर जघन्य है। और उत्कृष्टता से वर्ष पृथक्त्व है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरमुहूर्त अन्तर है। उपशान्त कषाय वाला नाना जीवों की अपेक्षा गुण स्थान के समान अन्तर है एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है।

सासादन मिश्रयोश्च लघु समय उत्कर्षेण पल्या च।
असंख्येया भागान्तरं यथा स्थाने नियोजितव्यः ॥५६२॥

सासादन सम्यग्दृष्टी व मिश्र सम्यग्दृष्टी इन दोनों का अनेक जीवों की अपेक्षा से जघन्य एक समय अन्तर है। उत्कृष्टता से पल्य के असंख्यातवां भाग प्रमाण है एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है। मिथ्यादृष्टी अनेक जीव व एक जीव की अपेक्षा अन्तर नहीं है। यहां जिन गुणस्थानों का अन्तर नहीं कहा गया है वहाँ गुण स्थान की चर्चा के समान अन्तर जानना चाहिए।

समनस्क जीवाना मिथ्यादृष्टे नास्त्यंतरं कदा।
सासादनाद्युपशांत मोहानां एकस्यामुहूर्तम् ॥५६३॥
उत्कृष्टा सर्वेषां सत्सागरोपम पृथक्त्वं सदा।
क्षपकाना सामान्यममनस्काणा नास्त्यंतरम् ॥५६४॥

समनस्क जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह तक होते हैं सामान्य से समनस्क जीव नित्य विद्यमान रहते हैं इसलिए कोई अन्तर नहीं है। सासादन और मिश्र असंयत सम्यग्दष्टी देश संयत प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तकरण, सूक्ष्म सांपराय, उप-

शांत मोह और क्षीण मोह इनके सामान्यता से कोई अन्तर नहीं है परन्तु विशेष की अपेक्षा अन्तर कहा गया है। सासादन वाले एक जीव के जघन्यता से अन्तरमुहूर्त अन्तर काल होता है मिश्र वाले के भी अन्तरमुहूर्त अन्तर पड़ता है। पल्य का असंख्यातवां भाग अन्तर है। उत्कृष्टता से सात सागरोपम पृथकत्व अन्तर है। असंयत सम्यग्दष्टि एक जीव के प्रति जघन्यता से अन्तरमुहूर्त अन्तर है उत्कृष्टता से सौ सागर पृथकत्व और कुछ अधिक काल अन्तर है देश संयत से लेकर उपशांत मोह तक वाले जीवों में से एक-एक जीव के प्रति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा कहे गये गुण स्थानों के समान ही अंतर है। एक या वहुत जीवों में अन्तर नहीं है।

आहारक कुदृगानां सामान्यं सासादन मिश्रदृगाम।
एकंप्रति लघुघटिके वा पल्यासंख्यभागः ॥५९५॥
उत्कृष्टमंगुलासंख्येय भागोऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवर्त्सपिणी।
असंयतसुदृगाद्यप्रमत्तानां नास्त्यंतरं च ॥५९६
सासादनवदुत्कृष्टो वा जघन्योपशमकानामंतरम्।
असंख्येयासंख्येय उत्सर्पिणीवर्सपिणी च ॥५९७
शेषाणां सामान्यं अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टि नामन।
सासादन सदृष्टेः लघु समयः पल्यासंख्येयभागः ॥५९८
एकंप्रत्यंतरं नास्त्य संयतस्यैक समयोत्कृष्टम्।
मासपृथक्त्व सयोगीना समयोत्कृष्ट वर्षः ॥५९९

आहारक मार्गणा की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टि जीवों की अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं है क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त चारों गति वाले जीव मिथ्यादृष्टि हैं। परन्तु एक जीव की अपेक्षा पहले कह आये हैं। एक प्रति जघन्य अन्तरमुहूर्त अन्तर होता है उत्कृष्ट ३२ सागर से कुछ कम है। सासादन सम्यग्दृष्टी सम्यग्मिथ्यादृष्टि नाना जीवों की अपेक्षाकोई अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षा अन्तरमुहूर्त काल है और या पल्य का असंख्यतवां भाग समय है। असंख्यातवें उत्कृष्टता से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण तथा असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल अन्तर है। इसका कारण यह है कि कोई एक जीव आहारक अवस्था में सासादन को प्राप्त हुआ और एक समय दो समय तीन समय पीछे मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया पुनः उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तरमुहूर्त के पीछे उपशम की विराधना करके सासादन को प्राप्त हुआ तव अन्तरमुहूर्त अन्तर काल प्राप्त हुआ इसी प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट जानना चाहिए। असंयत सम्यग्दष्टी देश संयत प्रमत्त संयत अप्रमत्त संयत अपूर्व करण अनिवृत्त करण सूक्ष्म सांपराय उपशांत मोह इन चार उपशम श्रेणी चढ़ने वालों आहारक जीवों का जघन्यता से अन्तरमुहूर्त अन्तर काल है अथवा पल्य का असंख्यातवां भाग है। और उत्कृष्टता से असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल अन्तर है चौथे गुणस्थान से लेकर एक-एक जीव की अपेक्षा से यह कथन किया जाता है और ग्यारहवें गुण स्थान तक के जीवों का क्षायक सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा गुण स्थान की चर्चा में कह आये हैं उतना अन्तर यहां भी

समझ लेना चाहिए।

अनाहारक अवस्था में मिथ्यादृष्टि अनेक जीवों की अपेक्षा सामान्य में कोई अन्तर नहीं है सासादन के जघन्यता से एक समय अंतर है तथा उत्कृष्टता से एक पल्य का असंख्यात वां भाग है ऐसा समझना चाहिए। एक जीव के प्रति कोई अन्तर नहीं है। नाना असंख्यात सम्यग्दृष्टी जीवों के प्रति एक समय अंतर है उत्कृष्टता से एक महीना पृथकत्व है। एक जीव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है। संयोग केवली के प्रति जघन्य एक समय है उत्कृष्टता से छह महीना अंतर कहा गया है। एक जीव के प्रति अंतर नहीं है शेष सामान्य विशेष आगम प्रमाण से जान लेना चाहिए।

इति अन्तर प्ररूपणा

मिथ्यात्वे चौदयिक चतुसासादने पारिणामिक।
मिश्रेक्षयोपशमिक संयतस्थाने त्रिभावाः ॥

आगे भावों की अपेक्षा कथन करते हैं।

असामान्यौंदयकमयि मिश्रे पुनः देशसंयत्।
भावःक्षयोपशमिक मिति द्वौ प्रमत्ताप्रमत्तौ ॥६००॥

मिथ्यात्व में औदयिक भाव होते हैं। सासादन गुण स्थान में एक अपेक्षा से पारिणामिक भाव होते हैं वे इस प्रकार हैं कि कोई जीव उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त्व रूपी रत्न शिखर से पतित हुआ और मिथ्यात्व का अभी उदय नहीं आया है तब तक पारिणामिक भाव होते है। दूसरे क्रोधादि कोई कषाय के उदय होने के कारण को पाकर सम्यक्त्व से च्युत हुआ है। और सासादन को प्राप्त है उस समय अनंतानुबंधी कषाय औदियक है। मिश्र गुण स्थान में मिश्र भाव हैं असंयत सम्यग्दृष्टी के तीन भाव हैं जैसा जिसका सम्यक्त्व है वैसा उसका भाव हैं। किसी को औपशमिक भाव किसी को क्षयोपशमिक भाव है किसी को क्षायक भाव हैं तथा औदयिक भाव पाया जाता है। क्योंकि कषायें लेश्यायें औदयिकी भाव हैं देशवितर में क्षयोपशमिक भाव हैं तथा प्रमत्त अप्रमत्त ये हैं।

मिथ्यात्व गुण स्थान में दर्शन, मोह व चरित्र मोह दोनों की सत्ता व उदय पाया जाता है मिथ्यात्व को संयोगिनी अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या व ज्ञानावर्णी औदायिक भाव हैं। सासादन गुण स्थान कषाओं के उदय में ही होता है परन्तु दर्शन मोह का उदय नहीं होने के कारण पारिणामिक भाव कहे गये हैं। मिश्र गुण स्थान में उभय प्रकृतियों की सामान्य सत्ता एक साथ पायी जाती हैं इस लिये उसको मिश्र कहा जाता है। उस जीव को मिथ्यात्व भाव वाला या सम्यक्त्व भाव वाला नहीं कहा जा सकता है उसके भाव सक्कर और दही के समान मिले हुए परिणाम पाये जाते हैं इस लिये क्षयोपशम भाव हैं। असंयत सम्यग्दृष्टी, गुण स्थान में तीन भाव होते हैं। औपशमिक क्षायक क्षयोपशमिक सम्यत्क्त्व की अपेक्षा से है। लेश्या अज्ञान कषाय २१ इन्द्रिय औदयिकी भी हैं। देश विरत व प्रमत्त अप्रमत्त इन में क्षयोपशमिक भाव हैं। सम्यक्त्व की अपेक्षा से तीनों भाव हैं परन्तु चरित्र की अपेक्षा से क्षयोपशमिक भाव है।

चतुरुपशमकेषु चौपशमिक भावः क्षयके क्षायक् ।
सयोगायोगिनां च क्षायक भावः क्षायक् सम्यक्त्वम् ।।६०१।।

अपूर्व करण अनिवृत्त करण सूक्ष्म सांपराय इन तीनों गुण स्थान वाले जीवों के दो प्रकार के भाव होते हैं उपशम श्रेणी वाले के औपशमिक भाव क्षपक श्रेणी चढने वाले के क्षायक भाव होते हैं। उपशान्त मोह में औशपमिक भाव होता है क्षीण मोह में क्षायक भाव होता है। और क्षायक ही सम्यक्त्व होता है। परन्तु उपशम श्रेणी चढ़ने वालों के औपशमिक सम्यक्त्व व क्षायक सम्यक्त्व दोनों ही पाये जाते है। सयोगी अयोगी गुण स्थानों में भी क्षायक भाव होते हैं क्योंकि जिनके घातिया कर्मों का सर्वथा नाश हो गया है।

सम्यग्दृष्टादि चतुर्गुणस्थानेषू त्रय सम्यक्त्वम् ।
तथैवं भावाः क्षयोपशमःक्षायको भावश्च ।।६०२।।

असंयत सम्यग्दृष्टी से लेकर अप्रमत्त तक गुण स्थानों में तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं। जैसा सम्यक्त्व होता है वैसे ही भाव कहे जाते हैं। उपशम सम्यक्त्व वाले जीव के उपशम भाव क्षायक सम्यक्त्व वाले के क्षायक भाव क्षयोपशमिक भाव होते हैं। आगे मार्गणाओं में भावों की व्याख्या करते हैं।

प्राङ्नारकेष्वौदयिकः पारिणामिकमौपशमिक क्षायक ।
क्षायोपशमिको भावः क्षायक रधोवर्ज्यं सम्यक् ।।६०३।।

पहले नरक वाले नारकी मिथ्यादृष्टीयों में औदयिक भाव होता है क्योंकि इनके मिथ्यात्व कषाय और नरक गति औदयिक भाव कहा है। तथा सासादन गुणस्थान में जीवों के पारिणामिक भाव व औदायिक भाव होता है। उपशम सम्यक्त्व वाले के औपशमिक भाव होते हैं क्षयोपशम सम्यक्त्व और मति श्रुत ज्ञान व कषायों का क्षयोपशम होना है इस लिये क्षयोपशमिक भाव होता है। क्षायक सम्यग्दृष्टा के सम्यक्त्व की अपेक्षा से तो क्षायक भाव होता है अन्य की अपेक्षा से क्षयोपशम व औदायिक होते हैं। दूसरे तीसरे आदि नरक में क्षायक सम्यक्त्व को छोड़कर शेष भाव होते हैं। छठवी और सातवे नरक में औदयिक भाव हैं तथा पारिणामिक और औदयिक भाव होते हैं ।।६०३।।

तिरश्चय मौदयिकश्च क्षायकमौपशमिक क्षयोपशमिकाः ।।
नृणां सर्वभावाः देवानां च यथाकश्च ।।६०४।।

त्रियंच गति में त्रियंचों के औपशमिक भाव क्षायक भाव क्षयोपशमिक औदयिक पारिणामिक भाव होते हैं। त्रियंच एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त मिथ्यादृष्टी जीवों के औदयिक भाव होते हैं। सासादन की अपेक्षा पारिणामिक भाव तथा औदयिक भाव होते हैं। मिश्र वाले जीवों के क्षयोपशमिक भाव होते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टी के जो सम्यक्त्व हो वही भाव होता है देश संयत में क्षयोपशमिक भाव होते हैं त्रयंचिनियों के क्षायक सम्यक्त्व नहीं गुण स्थान पांच होते हैं।

मनुष्यों में मनुष्य गति में गुण स्थान चौदह होते हैं पहले गुण स्थान में मिथ्या-

त्व कपायों के उदय में होता है इस लिये औदायिक भाव होता है। सासादन सम्यग्दृष्टी के मिथ्यात्व दर्शन मोह के उदय के अभाव में पारिणामिक भाव होता है। क्योंकि मिथ्यात्व दर्शन मोह की प्रकृति के उदय में आजाने पर मिथ्यात्व औदयिक भाव हो जाता है। किसी आचार्य का यह भी विचार है कि चरित्र मोह की अनंतानुवंधी कपाय के उदय में सासादन गुण स्थान होता इस लिये औदयिक भाव है। सम्यगमिथ्यात्व मिले हुए परिणाम होते हैं इस लिये मिश्र गुण स्थान में क्षयोपशमिक भाव होते हैं असंयत सम्यग्दृष्टीयों के सम्यक्त्व की अपेक्षा उपशम भाव क्षायक भाव क्षयोपशमिक भाव होते हैं। परन्तु गुण स्थान सम्यग्प्रकृति उदय पाया जाता है क्षयोपशम सम्यक्त्व में क्षयोपशमिक भाव होते हैं। पांचवे गुण स्थान में तीनों सम्यक्त्व होते हैं परन्तु चरित्र मोह से सम्बन्ध होने से क्षयोपकषायों के क्षयोपशम से होता है इस लिये क्षयोपशमिक भाव होते है उसी प्रकार प्रमत्त और अप्रमत्त गुण स्थानों में क्षयोपशमिक भाव होते हैं। अपूर्व करण में चरित्र मोह का उपशम करने वालों के औपशमिक भाव होते हैं यही भाव चारों उपशम श्रेणी वालों के हैं। तथा क्षायक श्रेणी चढ़ने वालों के होते हैं संयोग केवली और अयोग केवलीयो के क्षायकभाव ही होते हैं। मिथ्यात्व से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टी जीवों के दर्शन मोह की मुख्यता कर भाव कहे हैं पाँचवे से वारहवे तक चरित्र मोह की अपेक्षा भाव कहे गये हैं तेरहवे चौदहवे गुण स्थान में क्षायक भाव सर्व धातिया कर्मों के क्षय अपेक्षा से कहे गये हैं। देव गति में गुण स्थान प्रथम के चार होते हैं। मिथ्यादृष्टी देवों के औदयिक भाव हैं सासादन सम्यग्दृष्टी जीवों के पारिणामिक भाव होते हैं मिश्रवालों के क्षयोपशमिक भाव होते हैं। असंत सम्यग्दृष्टियों के तीनों सम्यक्त्व और उनको अपेक्षा तीनों भाव होते हैं। भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्क और सौ धर्म ईसान स्वर्ग वाले देवों के क्षायक भाव नहीं होते इसका कारण यह है कि इनमें क्षायक सम्यक्त्व वाला जीव उत्पन्न नहीं होता है। नव ग्रीवक के उपर वाले देवों में क्षयोपशमिक व क्षायक दो भाव ही होते हैं उनके उपशम भाव नहीं क्योंकि वहाँ नियम से क्षयोपशम व क्षायक सम्यक्त्व के धारक जीव उत्पन्न होते हैं। अनुत्तर विरानों में क्षायक सम्यक्त्व और क्षायक भाव होते हैं। यह कथन दर्शन मोह की अपेक्षा से है। चरित्र मोह की अपेक्षा से आगे के गुण स्थान होते हैं वे देवों के होते ही नहीं ॥६०४॥

एकेन्द्रियादि सकलेन्द्रियामनस्काणांमौदयिको भावः ॥
सकलेन्द्रियसमनस्काजीवानां पंचभावाश्च ॥६०५॥

इन्द्रिय मार्गणा का विचार करते हुए सव भाव होते हैं क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों के सव ही भाव पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति तथा दोइन्द्रिय शंखादि तीन इन्द्रिय चीटी आदि चार इन्द्रिय भोगादि पंचेन्द्रिय असेनी सर्पतोतादि इनके सतत एक मिथ्यात्व दर्शन मोह का उदय रहता है इस लिये इनके औदयिक भाव होता है। संभी पंचेन्द्रिय में किसी के दर्शन मोह का उदय होता है उनके औदयिक भाव जिनके दर्शन मोह का उपशम होता है उनके औपशमिक भाव जिनके दर्शन

मोह का क्षयोपशम व चरित्र मोह की अनंतानुवंवी काम होता है उनके क्षयोपशम भाव, जिनके दर्शन मोह और चरित्र मोह की अनंतानुवंध कपाय का क्षय होता है उनके क्षायिक भाव होते हैं, जो सम्यक्त्व से पतित हो रहा है उसके पारिणामिक भाव होते हैं। तथा औदयिक भाव होते हैं ॥६२४॥

स्थावराणामौदयिक त्रशाणां गुणस्थान वद्भावाश्च ॥
त्रियोगीनां खलु सर्वेभावाः त्रिवेदानां च तथा ॥६०६॥

वेद मार्ग में काययोगी जीव औदायिक काय वाले पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति और इतर निगोद तथा नित्य निगोद वाले जीवों के निस्पृही औदयिक भाव रहते है त्रश काय वाले दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असैनी व सैनी जीवों के औदयिक भाव होता है। तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के पहले मनुष्य गति के समान भाव जानना चाहिये। क्योंकि त्रस काय में सब गुण स्थान होते हैं।

एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीवों के एक नपुंसक ही वेद होता है तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच व नारकी जीवों के नपुंसक वेद होता है और देव गति में देवों के स्त्री वेद पुरुष वेद दो वेद होते हैं पंचेन्द्रिय तिर्यच व मनुष्यों के तीनों वेद होते हैं। उनके औदयिक औपशमिक, क्षपोयशमिक व क्षायिक तीनों भाव होते हैं। द्रव्य स्त्री व नपुंसक वेद देश व्रती तक होता है द्रव्य पुरुष वेद अंत तक और भाव वेद तीनों ही के अनिवृत्त करण तक होते हैं। द्रव्य वेद की अपेक्षा गुणस्थान के समान भाव समझना चाहिए।

कषाय मार्गणा में क्रोध, मान, माया लोभ कपायों सहित जीव और कपायों से रहित जीवों के गुणस्थान के समान भाव जानना चाहिये। विशेप यह है कि अनंतानुबंधी कपाय के उदय में औदायिक भाव होते हैं आगे की कपायों में अपने अपने गुण स्थान के वासना काल के अनुसार ही भाव होते हैं। तथाज्ञान की अपेक्षा कुमति, कुश्रुति विभंगावधि इन तीनों ज्ञान वाह्य जीवों के औदयिक और क्षयोपशमिक भाव होते हैं व पारिणामिक भाव होते है। मतिश्रुत अवधि और मन:पर्यय इन में तीनो भाव होते हैं तथा सयोग अयोग गुण स्थान केवल ज्ञान में होते हैं इसलिये केवल ज्ञानी के क्षायिक भाव होते हैं। ६२६ ॥

क्रोध मान माया लोभ कपायाणांनकपायाणा सामान्यम् ।
कुमति श्रुतविभंग नतिश्रुतावधि मनःपर्ययणां ॥ ६०७ ॥
सामायिकादि संयम इचदत्वादि दर्शन कृष्णादि लेश्या ॥
भव्यानां सामान्यं अभव्यानां पारिणामकः ॥६०८ ॥

सामायिक संयम की अपेक्षा प्रमत्त अप्रमत्त इन दोनों गुणस्थानों में सम्यक्त्व तीनों होते हैं परन्तु भाव क्षयोपशमिक होते हैं और श्रेणी चढने वालों के उपशम वाले के औप-शयिक द्वितीय सम्यक्त्व और औपशमिक भाव क्षायिक सम्यक्त्व औपशमिक भाव क्षपक श्रेणी चढने वालों के क्षायिक भाव होते हैं। ऐसे छेदोपस्थापन वाले जीव के भाव सामायिक चारित्र के समान होते हैं। परिहार विशुद्ध संयम वाले के क्षयोपशमिक भाव होते हैं परन्तु सम्यक्त्व क्षयोपशम व क्षायिक दो ही होते हैं उपशम सम्यक्त्व नहीं। सूक्ष्म सांपराय वाले

के औपशमिक व क्षायिक भाव होते हैं। यथाख्यात संयम वाले उपशांत मोह में औपशमिक भाव होते हैं क्षीण मोह संयोग अयोग केवलियों के एक क्षायिक ही भाव होता है। संयमासंयम गुणस्थान वाले जीवों के सब सम्यक्त्व होते हैं परन्तु भाव क्षयोपशमिक ही होते हैं। असयत सम्यग्दृष्टि के औपशमिक भाव, किसी के क्षयोपशमिक किसी के क्षायिक भाव होते हैं। मिश्र में क्षयोपशमिक भाव सासादन में पारिणामिक और भाव मिथ्यात्व में औदयिक भाव होते हैं।

लेश्या मार्गणा में कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के औदयिक भाव होते है। सासादन वाले जीवों के पारिणामिक. मिश्र में क्षयोपशमिक, असंयत में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तीनों भाव होते हैं। प्रथम तीन आगे के गुण स्थान में नहीं होती है देश संयत प्रमत्त में पीत, पद्म शुक्ल लेश्यायें होती है उन में क्षायोपशमिक भाव होता है आगे पीन पद्म लेश्यायें नहीं रह जाती एक शुक्ल लेश्या है सब का गुण स्थान के समान ही कथन है। अभव्य जीवों के पारिणामिक भाव हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टौ भावत्रयः सम्यक्त्वं चौदयिक ॥
देशसंयताद्यप्रमत्तानां क्षायोपशमिकभावः ॥ ६०९ ॥

असंयत सम्यग्दृष्टि के तीन भाव होते हैं। तथा औदयिक भाव भी बताया है। देश संयत अप्रमत्त के भी वही भाव हैं। उपशम श्रेणी में औपशमिक भाव और क्षपक श्रेणी में क्षायिक भाव तथा केवली सयोग अयोग के क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक के नौ भाव होते हैं।

चतु.क्षपकाश्चौपशमिक जीवानां क्षायकसम्यक्त्वं च।
उपशम सम्यग्भावः मिश्रेक्षयोपश्मिको भावः॥ ६१०॥
सासादने प्पारिणामिक मिथ्यात्वे खल्वौदीपकश्च।
सयोगायोगीनां सिद्धानां क्षायको भावः ॥ ६११॥

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि व क्षायिक सम्यग्दृष्टि जब उपशम व क्षायिक श्रेणी चढ़ते है उस समय में उन दोनों के परिणाम समान ही उज्ज्वल होते हैं। भावों की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं पाया जाता है परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी उपशम श्रेणी चढ़ता है वह चारित्र मोह की २१कषायों का उपशम कर उपशान्त मोह तक औपशमिक भावों का धारक कहा गया है। उपशम सम्यग्दृष्टि दर्शन मोह व चारित्र मोह की सब प्रकृतियों का उपशामक होता है। इन दोनों के बीच यही अन्तर है कि एक पानी के नीचे मिट्टी बैठी हुई है पानी के हिलने पर ऊपर आजायगी परन्तु दूसरे में से कीचड़ को निकाल कर फेंक दिया है कितने ही निमित्त मिलें पर वह पानी निर्मल का निर्मल ही रहेगा। इसी प्रकार भावों का कथन है। मिश्र सम्यग्दृष्टि और देश संयत प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत इनके क्षायोपशमिक भाव है। सासादन वाले के पारिणामिक भाव व औदयिक भाव हैं। मिथ्यादृष्टियों के औदयिक भाव है। सिद्ध भगवान के क्षायिक और पारिणामिक भाव है। क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक दर्शन ज्ञान वीर्य और जीवत्व ये पांच भाव होते है। ६२९।६३०॥

असंज्ञीनां मोदयिक: संयतानां गुणस्थानवद्भाव ।।
संज्ञाऽसंज्ञा भाव विहीनानां क्षायकं भाव: ।।६१२

असंज्ञी जीवों के मिथ्यात्व दर्शन मोह का उदय पाया जाता है इसीलिये औदयिक भाव होते हैं। सैनी जीवों के सब गुणस्थान कहे गये हैं। उनके भाव गुणस्थान के समान होते हैं। सैनी और असैनी भावों से रहित जीवों के क्षायिक भाव होते हैं। आहार मार्गणा और अनाहारक जीवों के भाव गुण स्थान के समान होते हैं।

विशेष भाव पांच प्रकार के होते हैं वे उपशम, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक भाव तथा पारिणमिक उपशम भाव के दो भेद होते हैं—उपशमिक सम्यक्त्व और उपशमिक चारित्र क्षायिक भाव के नौ भेद होते हैं क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक चारित्र क्षायिक दर्शन क्षायिक ज्ञान क्षायिक दान लाभ भोग और वीर्य। क्षयोपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम चारित्र क्षयोपशम, ज्ञान, मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय कुमति, कुश्रुत, विभंगावधि चक्षु अचक्षु अवधि तीन दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्यान्तिराय और संयमासंयम। औदयिक भाव के २१ भेद होते है गति चार कषायें चार, लिंग तीन, स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग मिथ्यादर्शन एक अज्ञान दर्शनावरण एक असंयत १ असिद्धत्व १ छह लेश्यायें। पारिणामिक जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व (कर्मोंके) मोहकर्म के उपशम होने पर जो भाव होते है उनको औपशमिक भाव कहते हैं। कर्मों के क्षय होने पर जो भाव होते हैं उनको क्षायक भाव कहते हैं। कर्मों के क्षयोपशम होने पर जीव के जो भाव होते हैं उनको क्षयोपशमिक भाव कहते हैं। कर्म के उदय में रहने पर जो भाव होते हैं उनको औदयिक भाव कहते हैं। जिनमें कर्मों क कारण नहीं हैं उन भावों को परिणामिक भाव अथवा स्वाभाविक भाव कहते हैं।

आगे गुणस्थानों में विभाजन कर कहते हैं कि मिथ्यात्व में कितने भाव होते हैं। गुण स्थान मिथ्यात्व में औदयिक भाव के २१ और क्षयोपशम के तीन अज्ञान दो दर्शन पांच लब्धियाँ और तीन पारिणामिक इस प्रकार चौंतीस भाव होते हैं। सासादन गुण स्थान में मिथ्यात्व के विना औदयिक के २०, तीन अज्ञान, दो दर्शन, पांचलब्धि ये क्षयोपशम के तथा पारिणामिक के भव्यत्व और जीवत्व कुल भाव ३२ होते हैं। मिश्र में मिथ्यात्व के विना २० क्षयोपशम के तीन ज्ञान, तीन अज्ञान, दो दर्शन, पांच लब्धियां, भव्यत्व अभव्यत्व कुल ३५ भाव होते हैं। गुणस्थान असंयत में औदयिक के वीस, क्षयोपशमिक के तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पांच लब्धियां, एक क्षयोपशमिक, सम्यक्त्व एक औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायक सम्यक्त्व और जीवत्व भव्यत्व कुल भाव मिलकर ३६ भाव होते हैं। देश संयत गुण स्थान तिर्यन्च व मनुष्यों के ही होता हैं। मनुष्य गति त्रियंच गति चार, क्रोधादिक कषायें, तीन लिंग, तीन शुभलेश्यायें, पीत पद्मशुक्ल असिद्धत्व अज्ञानत्व इस प्रकार औदयिक की चौदह। तीन दर्शन, तीन ज्ञान पांच लब्धियां सयमासंयम, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तीनों सम्यक्त्व भव्यत्व और जीवत्व कुल मिलाकर ३१ भाव होते हैं। गुणस्थान प्रमत्त में गति एक, मनुष्य, चार कषायें, तीन लेश्या तीन दर्शन तीनज्ञान, पांच लब्धियां अज्ञान असिद्धत्व तीन लिंग, औदयिक ये तेरह होते हैं। सराग चारित्र उपशम, क्षयोपशम, क्षायक सम्यक्त्व, जीवत्व, भव्यत्व एक मनः पर्यय मिलाने पर

३१भाव होते हैं। गुण स्थान अमप्रत्त में प्रमत्त के समान ही ३१ भाव होते हैं। अपूर्व करण में पीत, पद्मलेश्या के बिना क्षयोपशम सम्यक्त्व और सराग चारित्र को घटाने पर सत्ताईस रहे और औपशमिक तथा क्षायक चारित्र मिलाने पर २९ भाव पार्व्व करण और अनिवृत्तकरण में होते हैं। सूक्ष्मसांपराय में लोभकषाय एक है वेद तीनों ही नहीं तब पहले के शेप भाव २३ होते हैं। उपशान्त मोह में पहले कही गई क्षायक सम्यक्त्व, क्षायक चरित्र को घटाने पर २१ भाव होते हैं। गुणस्थान क्षीण मोह उपशमचारित्र उपशम सम्यक्त्व घटाने पर तथा क्षायिक सम्यक्त्व क्षायक चारित्र मिलाने पर क्षीण मोह मे २१ भाव होते हैं। सयोग केवली गुणस्थान में गति मनुष्य, लेश्या शुक्ल, असिद्धत्व औदयिक के तीन क्षायक के नो जीवत्व, और भव्यत्व कुल, चौदह भाव होते हैं सिद्ध भगवान के क्षायक सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्य और जीवत्व ये पांच भाव सहित सिद्ध भगवान होते हैं। अयोगी जीवों के लेश्या का अभाव है अतःकुल तेरह भाव होते हैं।

गुणस्थानों में प्रत्येक भाव के भेद

औपशामिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से लेकर सातवे पर्यन्त होते हैं आठवें से ग्यारहवें तक द्वितीयोपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र। क्षायक भाव क्षायक सम्यक्त्व और क्षायक चारित्र सयोग अयोग केवलियों के क्षायक सम्यक्त्व क्षायक चारित्र क्षायक दर्शन ज्ञान पांचलब्धि सिद्धभगवान के क्षायक चारित्र के विना चार भाव होते हैं। क्षयोपशमिक भाव मिथ्याष्टी और सासादन गुणस्थान में अज्ञान दर्शन लब्धियां और तीन भाव होते हैं। मिश्रगुण स्थान में ज्ञान, दर्शन और लब्धियां तीन भाव होते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टी गुण स्थान में ज्ञान, दर्शन क्षयोपशमिक सम्यक्त्व और लब्धि चार भाव होते हैं देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन तीनों में ज्ञानदर्शन लब्धियां क्षयोपशम सम्यक्त्व ये चार देशसयत में क्षयोपशमिक चारित्र देश संयत प्रममत्ता प्रमत्तमें सराग चारित्र से पांच पांच भाव होते हैं।

औदयिक भाव में मिथ्यात्व, गति, कषाय, लिंग, लेश्या, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व इस प्रकारआठ औदयिक भावहैं। सासादन में मिथ्यात्व के विना सातभाव हैं। मिश्रगुणस्थान से लेकर ऊपर के गुणस्थानों में उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्व सराग चारित्र हैं। अनिवृत्त करण के संवेद भाग तक असंयम विना छह भाव हैं। आगे सूक्ष्म सांपराय में वेद रहित पांच भाव होते हैं क्षीण मोह में कषाय विना चार औदयिकी भाव हैं सयोगी के अज्ञान विना तीन औदयिकी भाव होते हैं अयोगकेवली के लेश्या के विना दो औदयिकी भावहै। मिथ्यात्व गुणस्थान में और भव्यत्व अभव्यत्व दोपारिणामिक भाव जानना। औपशमिक भाव चौथे गुणस्थान में उपशम सम्यक्त्व होता है तथा संयतासंयत प्रमत्त अप्रमत्त तक अपूर्व करण में द्वितियोपशम सम्यक्त्व तथा चारित्र होता है वह उपशाँत मोह तक होता है। ६३१।

आगे अल्प बहुत्व कहते हैं।

उपशमे प्रविष्ट काले एकं द्वौ त्रिक्षपके संख्यगुणः।
क्षीणमोहोपशांत सयोगायोगेषु तथापि ॥६१३॥
उत्कृष्टोपसमिके चतुः पंचाशत् क्षपके द्विगुणश्च।
वासनाकाले समुदिताः योगे संख्यात गुणितं च ॥६२४॥

उपशम सम्यक्त्व में प्रवेश के समय में एक दो या तीन जीव प्रवेश करते हैं तथा क्षायक सम्यक्त्व में प्रवेश करते समय एक दो या तीन जीव प्रवेश करते हैं उत्कृष्टता से चौवन (५४) जीव उपशम सम्यक्त्व को एक साथ एक काल में प्राप्त हो सकते हैं इससे अधिक नहीं क्षायक सम्यक्त्व में एक समय मे प्रवेश करे तो अधिक से अधिक उपशम वालों की अपेक्षा दूने होते होते है अथवा १०८ होते हैं। उपशम श्रेणी में चढ़ने वाले एक काल समय में एक साथ चढें तो एक दो या तीन जीव चढ़ते है अधिक से अधिक ५४ जीव चढ़ते हैं। क्षपक श्रेणी में चढ़ते समय एक या दो या तीन अथवा अधिक से अधिक १०८ जीव एक साथ क्षपक श्रेणी में चढ़ते हैं। सयोग केवली अयोग केवली में प्रवेश के समय में एक दो या तीन जीव प्रवेश करते हैं अथवा अधिक से अधिक चढ़ें तो १०८ जीव चढ़ सकते है। इससे अधिक जीव नहीं चढ़ते हैं। ६३२।६३३।

तत्संख्यातगुणितं सयोगेऽप्रमत्तासख्येय गुणितं।
तत्प्रमत्तसंख्येय संयतासंयता: संख्येया: ॥६१५॥
सासादने च मिश्रेऽसंयत सम्यग्दृष्टेऽसंख्यगुणितम्।
मिथ्यादृष्टेऽनन्तानन्तगुणितं सर्वलोकेषु ॥६१६॥

सयोगी जिनका वासना काल में अधिक से अधिक ५९८ रह सकते हैं। और अयोग वाले जीवों से सयोगी जीव संख्यात गुणा हैं अथवा ८९८५०२ रहते हैं। अप्रमत्त गुणस्थान वाले संख्यात गुणे हैं वे इस प्रकार हैं २९६९९१०३। इतने जीव अप्रमत्त गुणस्थान में रहा करते हैं। इससे अधिक संख्या नहीं होती है। प्रमत्त गुणस्थान में रहने वाले जोव अप्रमत्तों से संख्यात गुणे होते है उनकी संख्या इस प्रकार है ५९३९८२०६। सव प्रमत्तों की सख्या विशेष संख्या है इससे अधिक नहीं होते हैं। प्रमत्त संयतों से देश संयत संख्यात गुणे है वे १३०००००० करोड़ जीव होते हैं। सासादन वाले संयतासंयत से संख्यात गुणे होते हैं उनकी संख्या इस प्रकार है ५२००००००(बावन करोड़) होते हैं सासादन से सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव संख्यात गुणे होते हैं १०४०००००००० जीव होते है दस अरव चालीस करोड़ सख्या तीनों लोकों में रहती हैं। इनसे भी सम्यग्दृष्टी जीव असख्यात गुणे होते हैं। सम्यग्दृष्टी जीवों से संयतासंयत गुणे मिथ्यादृष्टी होते हैं। यह क्रम सव कालों को अपेक्षा से है।६३४।६३५।

नारकेषुस्तोकश्च सासादनमिश्रात् विशेषोऽसंयता:।
संख्येय गुणितस्तथाऽसंख्येय गुणित: कुदृष्टिन: ॥६१७॥

सात नरकों में नारकी जीवों में पहले नरक में सव से थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं मिश्र सम्यग्दृष्टी सासादन से संख्यात गुणे हैं सम्यग्दृष्टी जीव मिश्र वालों से असंयत सम्याग्दृष्टी जीव संख्यात गुणे सातों नरकों में कहे गये हैं। प्रथम नरक में क्षायक सम्यग्दृष्टी सबसे थोड़े है उपशम सम्यग्दृष्टी जीव क्षायक सम्यग्दृष्टीयों से संख्यात गुणे अधिक है। उपशम वाले जीव से क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव संख्यात गुणे होते हैं। इन सवसे असंख्यात गुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं।६२६

अथक्षु सर्वात्लोक देशसंयतः सासादन मिश्रो ।
सुदृष्टिनोऽसंख्येयगुणं मिथ्यादृष्ट्यनंतश्च ।।६१८।।

तिर्यंचगति में त्रियंचों में सबसे थोड़े संयतासंयत होते हैं उससे सासादन वाले संख्यात गुणे हैं सासादन वालों में मिश्र विशेष संख्या को लिए हुए हैं मिश्र वालों से संख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव हैं सम्यग्दृष्टी जीवों से अनंतानंत गुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं। एकेन्द्रिय नित्यनिगोद और इतर निगोद जो वनस्पति काय के आश्रित व वनस्पति में होते हैं वे सब अनन्तानन्त जीव होते हैं चार स्थावर, दो, तीन, चार, सैनी असैनी पंचेन्द्रिय त्रियंच सब संख्यातासंख्यात ही होते हैं।

नारकवद्देवानां मनुष्येषु प्रागुक्तमुपशमकः ।
क्षायकानां प्रमत्ताप्रमत्त संयत संयतासंयता संख्येय ।।५१६

देवों के नारकियों के समान संख्या में अल्पबहुत्व कहा गया है। मनुष्य गति में मनुष्यों की प्रमत्त अप्रमत्त उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले तथा सयोग अयोग की संख्या और अल्प बहुत्व पहले गुण स्थान की चर्चा में कह आये हैं। क्योंकि ये सब गुण स्थान मनुष्यों में ही होते हैं अन्य गति वाले जीवों के नहीं पाये जाते हैं। विशेष यह है कि उपशम सम्यग्दृष्टी व प्रमत्त अप्रमत्त संयतों से देश संयत वाले जीव विशेष अधिक होते हैं। अथवा असंख्यात गुणे होते हैं। देश चारित्र वालों से सासादन सम्यक्त्व वाले जीव संख्यात गुणे हैं सासादन वालों से मिश्रवाले जीव विशेष अधिक होते हैं। मिश्रवालों से सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात गुणे होते हैं। सम्यदृष्टि जीवों में सबसे थोड़े उपशम सम्यक्त्व वाले जीव होते हैं उनसे संख्यात गुणे क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं। क्षायक सम्यग्दृष्टी जीवों से संख्यात गुणे क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव होते हैं। मिथ्यादृष्टी जीव सबसे संख्यात गुणे जीव होते हैं। इसका कारण यह है इनकी काल की मर्यादा अधिक-अधिक विशेष है। अप्रमत्त के काल से प्रमत्त का काल बहुत विशेष है इसी प्रकार उपशम काल जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है परन्तु क्षायक का तेतीस सागर पूर्वकोटि पृथक्त्व होता है। क्षयोपशम का छयासठ सागर होता है ।।६२०।।

एकेन्द्रियश्च विकलेन्द्रियाऽसंज्ञीनां च मिथ्यात्वम् ।
एकैवस्थानैर्वासंज्ञीनां न चाल्पबहुत्वम् ।।६२०।।

पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति कायिक एकेन्द्रिय शंख, दोइन्द्रिय, चीटी, खटमल आदि तीन इन्द्रिय, भोंरा माखी आदि चौइन्द्रिय तथा देव मनुष्य नारकी व त्रियंच जीव पंचेन्द्रिय होते हैं। पंचेन्द्रिय से पहले के सब जीव असैनी ही नियम से होते हैं पंचेन्द्रिय में सैनी असैनी दो विकल्प होते हैं। असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीवों के एक मिथ्यात्व ही रह जाता है इसलिए उनके अल्प बहुत्व प्राप्त नहीं होता है। पंचेन्द्रिय जीवों में सब गुणस्थान पाये जाते हैं इसलिए गुणस्थानों के समान ही अल्प बहुत समझना चाहिए। देश संयम एक ही गुण स्थान हैं उसमें भी अल्प बहुत्व नहीं पाया जाता है ।।६२०।।

पंचेन्द्रियषुन्यसेत् गुणस्थानोपमंस्थावराणाम् च।
स्तोकाऽग्निकायकेभ्यस्तधिका भूजल वायु भूरुहाः ॥६२१॥

पंचेन्द्रिय जीवों में अल्प बहुत्व गुण स्थान के समान लगा लेना चाहिए। काय की अपेक्षा करके पंच स्थावरों में सबसे थोड़े अग्नि कायिक जीव होते हैं। अग्नि कायक जीवों से विशेष अधिक पृथ्वी कायक असंख्यात गुणे होते हैं। पृथ्वी कायक जीवों से असंख्यात गुणे जल कायक जीव होते हैं। जल कायक जीवों से असंख्यात गुणे वायु कायक जीव होते हैं वायु कायक जीवों से (असंख्यात) अनन्तानन्त गुणे वनस्पति कायक जीव होते हैं। प्रत्येक वनस्पति से अनन्त गुणे साधारण वनस्पति कायक जीव होते हैं। ये जीव सब लोक में इस प्रकार भरे हुए हैं कि जिस प्रकार से तिल में तेल भरा हुआ हो। इन पंच स्थावरों व वनस्पति काय साधारण में इतर निगोद से अनन्त गुणे नित्य निगोद वाले जीव होते हैं। इन पंच स्थावरों का गुण स्थान, एक मिथ्यात्व ही होता है ॥६२१॥

त्रशकायक जीवेषु गुणस्थानवदल्प बहुत्वं तथा।
मनो वाक्काय योगिनाम् कायपयोगिना गुणस्थानवत् ॥६२२॥

त्रश कायक जीवों में सब गुण स्थान सामान्य से पाये जाते हैं इसलिए गुण स्थान के समान ही सारी व्यवस्था अल्प बहुत्व की समझना चाहिए। इसी प्रकार मन वचन का योग वालों की व्यवस्था गुण स्थान के समान ही अल्प बहुत्व जानना चाहिए ॥६२२॥

त्रिवेदेषु सामान्यं क्रोध मान माया लोभ युक्तानाम् ॥
मिथ्यादृष्टेऽनंत गुणितः स्व स्व गुणस्थान वद्भावः ॥६२३॥

स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसक वेद वाले जीवों में कुछ विशेष नहीं हैं गुणस्थान के समान ही जानना चाहिए। इन तीनों वेद वाले जीवों में सबसे अधिक नपुंसक वेदवाले-मिथ्यादृष्टि अनंतानन्त गुणे हैं। क्योंकि नपुंसक वेद का उदय मिथ्यादृष्टी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेंद्रिय पर्यन्त संमूर्छन जन्म वाले व नारकी जीव सब ही में नपुंसक वेद पाया जाता है स्त्री वेद पुरुष वेद वाले जीवों से अनंतगुणे कहे गये हैं स्त्री वेद वाले जीव असंख्यात होते हैं उनसे भी संख्यात वें भाग हीन पुरुष वेद वाले जीव होते हैं। इसका कहने का कारण यह है कि पुरुषों से स्त्री वेद वाली द्रव्य स्त्रीयें तिगुनी निरंतर रहती हैं इससे संख्यात गुणी कही गई है। इनसे भी नपुंसक वेदवाले अनंत गुणे होते हैं। अपने-अपने गुणस्थान के समान जानना चाहिये। सज्वलन लोभ वाले उपशम श्रेणी वाले जीव सबसे थोड़े होते हैं। उससे क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले लोभ कषाय वाले जीव संख्यात गुणे हैं। नव नो कषाय तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ वाले जीव द्वितीयोपशम वाले जीव स्तोक हैं उससे अधिक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव होते हैं इनसे संख्यात गुणे अप्रमत्त है अप्रमत्तों से संख्यात गुणे प्रमत्त वाले जीव हैं। संज्वलन कषाय वालों से संख्यात गुणे प्रत्याख्यान कषाय वाले संयतासंयत होते हैं उससे संख्यात गुणे अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, वाले सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। अप्रत्याख्यान कषाय की अपेक्षा अनंन्तानुबंधी कषाय वाले जीव मिथ्यादृष्टी ऐकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय अनंत गुणे हैं।६२३

सर्वतः स्तोकोऽयोगिनः संख्येय गुणितोऽघोधःस्थाने ।
मतिश्रुतावधिमनःपर्ययानि सम्यग्दृष्टयान्तः ॥ ६२४ ॥

सबसे थोड़े केवल ज्ञानी अयोगी होते हैं उससे संख्यात गुणे सयोग केवली भगवान होते हैं उनसे संख्यात गुणे मनःपर्ययज्ञानी होते हैं क्योंकि प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह तक वाले जीव उसके स्वामी होते हैं। मनः पर्यय से संख्यात गुणे अवधि ज्ञानी जीव होते हैं। तथा अवधि ज्ञान से संख्यात गुणे मति श्रुतज्ञान के धारी जीव होते हैं क्योंकि मति श्रुत ज्ञान के धारी चौथे गुणस्थान से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान वाले जीवों के होते हैं। वे जीव चारों गति वाले होते हैं।

कुमति श्रुतविभंगावधिर्ज्ञानिनां मिश्रसासादनः ।
संख्यात हीनाधिकान्यनं दृष्टिनाः सर्वतो स्तोकः ॥ ६२५ ॥

कुमति कुश्रुत विभंगावधि वाले सब थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं उनसे बहुत अधिक मिश्र गुणस्थान वाले जीव होते हैं। उससे असंख्यात गुणे विभंगावधिवाले होते हैं। विभंगावधिवालों की अपेक्षा कुमति कुश्रुति वाले अनंत गुणे जीव होते हैं।

विशेष—मतिश्रुतऔर अवधि ज्ञान के धारी उपशम श्रेणी चढ़ने वाले सब से स्तोक (थोड़े) हैं। उनसे संख्यात गुणें क्षपक श्रेणी से चढ़ने वालों की संख्या होती है। उनसे अप्रमत्त गुणे स्थान वाले जीव संख्यात गुणे अधिक होते हैं। अप्रमत्तों से संख्यात गुणे (अथवा दुगुने प्रमत्त गुणस्थान वाले जीव होते हैं) प्रमत्त संयतो से संयतासंयत संख्यात गुणे हैं। देश सयतो से असयत सम्यग्दृष्टी संख्यात गुणे होते हैं। मनः पर्यय ज्ञान में सबसे स्तोक उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव हैं उससे अधिक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव होते हैं उपशम और क्षपकों से संख्यात गुणे अप्रमत्तों से सख्यात गुणे प्रमत्त संयत होते हैं। केवल ज्ञानी सबसे थोड़े अयोगी जीव हैं उससे संख्यात गुणे सयोग केवल ज्ञानी जीव होते हैं। ६२५॥

सामायकक्षेदोपस्तापनयोरुपशम काः स्तोकाः
क्षायका द्विगुणा बहुः विशेषोऽप्रमत्ताप्रमत्ताः ॥ ६२६

सामायिक और क्षेदोपस्थापना संयत सब से थोड़े उपशम श्रेणी चढ़ने वाले होते हैं उनसे अधिक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव होते हैं। क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा से अप्रमत्त संयत गुणे अधिक होते हैं उनसे प्रमत्त संख्यात गुणे जीव होते हैं।६२६॥

परिहारविशुद्धौ च प्रमत्ताप्रमत्ताः संख्येयाः लघु
सूक्ष्मसाँपराये चोपशमकाः स्तोका. क्षपकाधिकाः ॥६२६

परिहार विशुद्धि में सब से थोड़े अप्रमत्त जीव होते हैं उनसे संख्यात गुणे प्रमत्त जीव होते हैं। सूक्ष्म सांपराय चारित्र में सबसे स्तोक श्रेणी चढ़ने वाले सम्यग्दृष्टी जीव हैं तथा उनसे संख्यात गुणे अधिक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले जीव होते हैं। ययाख्यात संयत में सब से स्तोक उपशम श्रेणी चढ़ने वाले उपशांत मोह वाले जीव थोड़े हैं। उनसे संख्यात गुणे अयोगी जिन हैं उनसे संख्यात गुणे क्षीण मोह जीव होते हैं क्षीण मोह से संख्यात गुणे सयोगी जिन होते हैं क्योंकि संयोगी जिन का काल बहुत है। ६६॥२

यथाख्यातोपशमकाः पूर्ववद्धक्षपका केवलिनः बहुवः ॥
संयतासंयतैवं विशेषाधिकाः संख्येयास्तथा ॥६२८॥

असंयत जीवों में सब से थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं उनसे संख्यात गुणे मिश्र गुण स्थान वाले जीव होते हैं। मिश्र वालों से असंयत सम्यग्दृष्टी जीव संख्यात गुणे हैं तथा सबसे अधिक अनंतानंत जीव मिथ्यात्व गुण स्थान वाले हैं। इस प्रकार सब काला में व्यवस्था ज़ानना चाहिये। ६२८॥

स्तोकाश्च सासादने वहुमिश्रा संयत सम्यग्दृष्टीः।
मिथ्यादृष्टिनोऽनंता समुदिता सर्वकालेषुच ॥६२९॥

चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन वाले जीवों के अल्पवहुत्व गुणस्थानों के समान जानना चाहिये। अवधि दर्शन और केवल दर्शन का अल्पवहुत्व अवधिज्ञान और केवलज्ञान की तरह जानना चाहिये। विशेषयह है कि चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन कुमति कुश्रुत विभंगावधि वाले मिथ्यादृष्टी तथा मति श्रुतज्ञान के धारी सम्यग्दृष्टी असंयत से लेकर क्षीण मोह वाले जीवों तक के होते हैं चक्षु अचक्षु दर्शन वाले जीव उपशम श्रेणी चढ़ने वाले थोड़े हैं उससे अधिक चारों क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले हैं उन चारों से अप्रमत्त गुणस्थान वाले संख्यात गुणे अधिक हैं। तथा प्रमत्त उनसे संख्यात गुणे हैं प्रमत्तों से देश संयत संख्यात गुणे होते हैं। तथा देश संयतों से संख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी असंयत जीव होते हैं इसी प्रकार अवधि दर्शन वालों में अल्प वहुत्व समझना चाहिये।६२९

चक्ष्वचक्ष्ववधि केवल दर्शनानिमनः काय योगिनश्च।
अवधिः केवल ज्ञानैव यथायोग्यं तज्ज्ञातव्यः ॥६३०॥

चक्षु अचक्षु दर्शन वाले का अल्प वहुत्व मन और काययोगियों के समान जानना चाहिये। अवधि दर्शन का अल्पवहुत्व अवधि ज्ञान के समान जानना चाहिये केवल दर्शन में अल्प वहुत्व केवल ज्ञान के समान जानना चाहिये कोई विशेष नहीं है।

कृष्णत्रयोऽसंयताः तेज पद्मेऽप्रमत्ताप्रमत्तयोः।
सुक्लायामुपशमकाः स्तोकाः तद्विशेषा क्षपकाः।६३१॥

कृष्ण नीलकापोत ये अशुभ लेश्यायें भव्य और अभव्य सब जीवों के रहती हैं परन्तु जहां तक मिथ्या दर्शन मोह का सम्बन्ध है वहां तक इनका बल बहुत है। इन तीनों लेश्याओं में सब से थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। सासादन वालों से मिश्र सम्यदृष्टी संख्यात गुणे हैं। मिश्र वालों से संख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। सम्यग्दृष्टी जीवों से अनंतानंतगुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं। पीत और पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टी से लेकर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान तक जीवों के पायी जाती हैं। उन दोनों लेश्याओं में सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। उनसे संख्यात गुणे मिश्रपरिणाम वाले हैं। उनसे संख्यात गुणे अप्रमत्त संयत गुण स्थान वाले होते हैं। उनसे संख्यात गुणे प्रमत्त संयत जीव होते है। प्रमत्तों से संयता संयत गुण स्थान वाले संख्यात गुणे होते हैं। संयतासंयतों से असंख्यात गुणे असंयत सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। शुक्ल लेश्या में सबसे थोड़े जीव उपशम श्रेणी चढ़ने वाले होते हैं। उनसे अधिक संख्यात गुणे क्षपक श्रेणी

चढने वाले जीव होते हैं। उपशम सम्यक्त्व वाले जीव सबसे थोड़े हैं। क्षायक सम्यक्त्व वाले संख्यात गुणे है। उनसे संख्यात गुणे सयोग केवली हैं। उनसे भी संख्यात गुणे सासादन सम्यग्दृष्ठी जीव शुक्ल लेश्या में होते हैं। सासादन वालों से संख्यात गुणे मिश्र गुण स्थान वाले जीव होते हैं। मिश्र वालों से संख्यात गुणे अप्रमत्त गुण स्थान वाले जीव होते हैं। अप्रमत्तों से संख्यात गुणे प्रमत्त होते है। प्रमत्तों से असंख्यात गुणे देश संयत जीव हैं। देश संयतों से भी संख्यात गुणें मिथ्यादृष्टी जोव हैं। मिथ्यादृष्टीयों से असंख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। लेश्यों की अपेक्षा अल्प बहुत कहा गया हैं।

अल्प बहुत्वं नास्ति भव्यानामभव्यानां सामान्यः।
सदृष्टिषु क्षायके च लघु चत्वारोपशमकाश्च ॥६३२॥

अभव्य जीवों की अपेक्षा विचार करने पर कोई अल्प बहुत्व प्राप्त नहीं होता है। भव्य भी दो प्रकार के होते हैं एक निकट भव्य दूसरा दूर भव्य। दूर भव्य के कोई अल्प बहुत नहींहै परन्तु निकट भव्यों के अल्प बहुत गुण स्थानों के समान जानना चाहिये। इति भव्य मार्गणा।

सम्यक्त्व मार्गणा क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में सब से थोड़े उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव होते हैं चारों उपशमक क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव उनसे संख्यात गुणे हैं चारों क्षपक श्रेणी चढ़ने वालों की अपेक्षा अयोग केवली जीव संख्यात गुणे होते हैं। उनसे संख्यात गुणे सयोग केवलो जीव होते हैं। सयोग केवलियों से संख्यात गुणे अप्रमत्त जीव होते हैं उनसे अधि प्रमत्त गुण वाले संख्यात गुणे हैं। प्रमत्तों से संख्यात गुणे देश संयत गुणस्थान वाले जीव होते हैं। देश संयतों से क्षायक सम्यग्दृष्टी जीव संख्यात गुणे होते हैं। यह क्षायक सम्यक्त्व और श्रेणी का चढना प्रमत्तादि आयोगी पर्यन्त गुण स्थान ये सब एक मनुष्य भव में ही जीवों को प्राप्त होते है। यह कथन क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा से किया गया। आगे क्षयोपशम की अपेक्षा कथन करते हैं।६३२॥

इतरेषामप्रमत्ताश्च देश संयता संख्यातोगुणिता,।
सम्यग्दृष्टी संख्येया औपशमिके चत्वारौपशमिकाः ॥६३३॥

उपशम सम्यक्त्व वाले व क्षयोपशमिक सम्यक्त्व वाले जीव अप्रमत्त गुण स्थान वाले सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यात गुणे प्रमत्त संयत होते हैं। प्रमत्तों से संख्यात गुणे देश संयमी जीव होते हैं। देश संयतों से संख्यात गुणे क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी जीव होते हैं। उपशम सम्यक्त्व द्वितीय में उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव सबसे थोड़े हैं उनसे अधिक अप्रमत्त व प्रमत्त के देश संयत जीव होते हैं। उन सबसे अधिक असंख्यात गुणे उपशम सम्यक्त्व वाले जीव होतेहैं।

अनाहारके स्तोकोऽयोगे सयोगे संख्येयगुणास्तु।
संख्येय सासादने सम्यक्त्वे मिथ्यात्वेऽ संख्यः ॥६३४॥

आहारक जीवों के अल्प बहुत्व गुण स्थान के समान जानना चाहिये। अनाहारक अवस्था में सवसे थोड़े अयोग केवली जीव होते हैं उनसे संख्यात गुणे सयोग केवली जीव हैं। सयोग केवलीयों से संख्यात गुणे सासादन सम्यग्दृष्टी जीव है सासादन वालों से

असंख्यात गुणे सम्यग्दृष्टी जीव हैं सम्यग्दृष्टी जीवों से अनंतानंत गुणे मिथ्यादृष्टी जीव होते हैं। सासादन से असंख्यात गुणे उपशम सम्यग्यदृष्टी जीव हैं उपशम सम्यग्यदृष्टियों से असंख्यात गुणे क्षायिक सम्यग्यदृष्टी जीव हैं क्षायिक सम्यदृष्टी जीवों से असंख्यात गुणे क्षयोपशम सम्यक्त्व वाले जीव अनाहारक होते हैं तीनों सम्यग्दृष्टी जीवों से मिथ्यादृष्टी अनाहारक जीव असंख्यात और अनंतानंत अधिक जीव हैं विग्रह गति में अनाहारक होते हैं।

विशेष--अयोग केवली तो शरीर का त्याग कर अनाहारक विशेष अवस्था को प्राप्त हुए हैं तथा सिद्ध अनंत जीव अनाहारक ही होते हैं। सयोग केवली गुण स्थान वाले क्वचित् किन्हीं के स्वभाव से समुद्घात होता है उस समय में अनाहारक होते हैं। अनाहारक जीवों के संसार अवस्था में चार गुणस्थानों की प्राप्ति होती है इसका कारण यह है कि मरण मिथ्यात्व सासादन तथा असंयत सम्यग्दष्टी व सयोग केवली इन चारों में ही होता है। यहाँ विशेष यह जानना चाहिये कि विना विग्रह गति के भी अनाहारक जीव होते है। संसार अवस्था में जीव अपने पूर्व शरीर को छोड़ कर नवीन शरीर ग्रहण करने को जब गमन करते हैं तव एक मोड़ व दो मोड़ या तीन मोड़ लेते हैं वे जीव क्रम से एक समय दो समय या तीन समय अनाहारक होते हैं। मरण नियम से मिथ्यात्व सासादन असंयत सम्यग्दष्टी तीन गुण स्थानों में ही होता है इन में ही जीव अनाहारक नियम से होते हैं। इति अल्प वहुत्व।

मार्गणा गुणस्थानेषु सम्यक्त्वस्य सत्संख्य क्षेत्रं च।
काल प्रमाण भाव स्पर्शान्तिाल्प वहुत्वं च ॥६३५॥

चौदह मार्गणाओं में तथा चौदह गुणस्थानों में सम्यक्त्व सत्व तीनोलोक के जीव कौन-कौन से सम्यक्त्व की कहां-कहां पर सत्ता या मौजूदगीरी होती है यह कहा। सम्यग्दृष्टी कितने जीव होते हैं वे कहाँ किस गति में होते हैं ऐसी संख्या का कथन किया। सम्यग्दृष्टी जीवों का क्षेत्र कितना है। कहां कौन से सम्यक्त्व की कितनी स्थिति होती है। सम्यग्दृष्टी जीव या अनेक जीव कितने क्षेत्र को स्पर्श करते हैं। किस सम्यक्त्व के पीछे वह सम्यक्त्व पुनः कितने काल के पीछे उत्पन्न होवेगा यह अन्तर वता दिया, कि सम्यक्त्व वाले के कौन से भाव किस सम्यक्त्व के होने पर होते हैं यह भी स्पष्ट कर दिया गया है। कौन कौन से सम्यक्त्व वाले जीव हीन हैं कौन से सम्यक्त्व वाले जीव किस गति में हीन हैं या अधिक हैं यह सब कथन कर दिया गया है ॥६३५॥

आगे कोई भव्य प्रश्न करता है कि सम्यक्त्व उच्चकुल वाले जीवों के होता है या नीच कुल वालों के होता है ? प्रश्न किया है उसका उत्तर ॥

नास्त्युत्तम कुलस्यैव नास्ति दुस्कुलस्य धर्म सम्यक्त्वम्
यत्सद्धर्मश्रद्धानमिति जिनदरमुपदिष्ट ऐव ॥६३६॥

यह सम्यक्त्व धर्म है सो किसी उच्चकुल क्षत्री ब्राह्मण वैश्य से सम्बन्ध नहीं रखता है न यह किसी चमार नाई धोवी चण्डाल भंगी इत्यादि नीच कुलों से ही सम्बन्ध रखता है। देव गति व नरक गति व मनुष्य गति व तिर्यंच गति से सम्बन्ध नहीं

रखता है यह सम्यक्त्व तो सच्चे धर्म और धर्म के प्रकाश करने वाले देव शास्त्र गुरुओं में जो रुचि रुप श्रद्धान होता है उसका नाम ही सम्यग्दर्शन धर्म है वह चारों गति वाले भव्य जीवों के होता है। निश्चय नय आत्म विश्वास रूप श्रद्धान का होना सो ही सम्यग्दर्शन है ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है।

सम्यक्त्व किसको होता है।

कस्य धर्मं सम्यक्त्वं कस्यनास्ति धर्मं सम्यक्त्वैवं।
समीचीन भव्यस्य धर्मः सम्यक्त्वमुपदिष्टम् ॥६३७॥

यह सम्यक्त्व धर्म कि स प्राणिका है? किस प्राणी का सम्यक्त्व धर्म नहीं है। ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते है। कि यह सम्यक्त्व उनको ही प्राप्त होता है जो जीव समीचीन निकट भव्य हैं। इनसे विपरीत दूरानुदूर भव्य व अभव्य जीवों को अनंत काल वीत जाने पर भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। यह सम्यक्त्व रत्न उनको ही प्राप्त होता है कि जिन का संसार कम-से-कम अंत कोटाकोटी सागर शेप भ्रमण करना शेप रह गया है अथवा जिनका अर्धपुद्गला परावर्तन काल वाकी रह गया है। इससे अधिक काल जिनका संसार पर्यटन रह गया है उनको सम्यक्त्व धर्म प्राप्त नहीं हो सकता है। समीचीन भव्य कहने से यह वात सूचित की गई है कि समीचीन धर्म और धर्म के धारकों में भक्ति व भावना का होना व उनके कहे हुए यथार्थ तत्त्वों में रुचि का होना ऐसा समीचीन का अर्थ होता है। सम्यक्त्व के होते ही संसार में भ्रमण शान्त हो जाता है। यह देव नारकी त्रियंच मनुष्यों के उत्पन्न होता है। यह सेनी पर्याप्तक साकार निराकार उपयोगवाले जीवों के ही होता है अन्य के नहीं ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है सम्यक्त्व क्षत्री ब्राह्मण व वैश्य शूद्रों से सम्वन्ध नहीं रखता है। यह सम्यक्त्व राजा या भिखारी से सम्वन्ध नहीं रखता है यह तो परमागम में कहे गये पदार्थों के श्रद्धान रूप है ऐसा जिन प्रवचन है ॥६३७॥

मिथ्यात्वं वा ऽज्ञानं तिमिरं हन्ति क्षायिकं सर्वमंगलंलाति
प्रधानं त्रिलोकेषु यत्सम्यक्त्वं केतुरिवभाति ॥ ६३८ ॥

(सम्यक्त्व) क्षायिक व क्षयोपशयिक सम्यक्त्व है वह जो मिथ्यात्व और अज्ञान अंधकार है उस अंधकार को नाश करता है। तथा पाप मलों को नाश करना ही इनका फल है। क्षायक सम्यक्त्व होने पर अमंगल रूप जो दर्शन मोह की मिथ्यात्व तथा अज्ञान मति श्रुत व विभंगावधिज्ञान थे उन सव को नाशकर मंगल लाता है मलों को गला देता है। अथवा मिथ्यात्व असंयत रूप जो पाप मल थे उन पाप मलों को नाशकर पुण्य रूप मंगल (देता है) करता है क्षायक सम्यक्त्व तीनों लोकों में श्रेष्ठ है और इस प्रकार शोभा को पाता है कि जिस प्रकार मन्दिर के शिखर के ऊपर ध्वजा शोभती है। अथवा ध्वजा से मन्दिर की शोभा वढ़ती है इसी प्रकार सम्यक्त्व के होने पर रत्नत्रय की शोभा वढ़ती है। यहां पर श्लोक में वाशव्द दिया है उससे उपशम और क्षयोपशम दोनों सम्यक्त्वों को ग्रहण कर लेना चाहिए। इसलिए सर्व मंगलों में सम्यक्त्व मंगल ही प्रधान है ॥६३८॥

वहिरन्तर परमात्मा भेदतः भवेदात्मा त्रिविधाश्च।
वहिरात्माः हेयं खलु अन्तर परमात्मोपादेयः ॥६३९॥

आत्मा तीन प्रकार का है प्रथम बहिरात्मा दूसरा अन्तरात्मा तीसरा परमात्मा के भेद वाला है। जिनमें से प्रथम बहिरात्मा त्यागने योग्य है अन्तरात्मा और परमात्मा उपादेय हैं। जो जीव संसार और शरीर तथा पंचेन्द्रिय के विषय भोगों में नित्य रत हैं तथा परवस्तुयें चेतन तथा अचेतन और चेतनाचेतनात्मिक वस्तुओं को अपनी मानते हैं व परवस्तु की होने वाली पर्यायों को ही अपनी स्वद्रव्य मान उनमें ममत्व बुद्धि रखते हैं वे सब बहिरात्मा हैं। मेरा घर है मेरी गाय भैंस हैं मेरा बड़ा ही प्रभाव है। शरीर के विनाश होने पर यह मानता है कि मेरा मरण हो गया, शरीर के उत्पन्न होने पर मेरा जन्म हो गया। व मैं तो बड़ा ही गरीब हूं, मैं तो बड़ा ही राजा हूं, मैं तो बलवान हूं, मैं तो निर्बल हूं, मैं भिखारी हूं, मैं दानी हूं, इस प्रकार जो द्रव्य पर की पर्यायों के विनाश उत्पत्ति में अपनी क्रिया करता रहता है वह बहिरात्मा है। मिथ्यात्व सासादन और मिश्र तीनों गुणस्थान बहिरात्मा के ही होते हैं क्योंकि इन गुण स्थानों में मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यग्प्रकृति व अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया लोभ इनका उदय पाया जाता है। जिनके इन प्रकृतियों का उदय रहता है उनके यथार्थ तत्वों की रुचि रूप श्रद्धान नहीं होता है। अथवा आत्मा में रुचि रूप श्रद्धान नहीं होता है इसलिए बहिरात्मा है। जो बाह्य वस्तुओं को ही अपना आत्मा मानते हैं वे ही बहिरात्मा हैं। चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर बारहवें क्षीण मोह तक सब जीव अन्तरात्मा ही होते हैं। चौथे गुण स्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य अन्तरात्मा होते हैं। तथा अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ रूप कषायों का जब उपशम या क्षयोपशम क्षय हो जाने पर विशेष परिणामों में विशुद्धता आती है तब आत्मानुभूति रूप देश संयत प्राप्त होता है वहां पर पाप भीरु होता है। तब त्रसकाय वध रूप हिंसा का त्यागी होता है तब आत्मानुभूति रूप स्व-संवेदन ज्ञान होता है और संसार भ्रमण के कारण पंच पापों का त्याग करता है व पंचेन्द्रिय के भोगों का परिमाण करता है तब मध्यम अन्तर आत्मा होता है। जब प्रत्याख्यान कषाय का क्षयोपशम या उपशम होता है या क्षय होता है तब सकल चारित्र होता है उसमें प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्व करण अनिवृत्तकरण सूक्ष्म सांपराय ये सब गुण स्थान संज्वलन चारों कषायों के उदय में होते हैं यहाँ तक के सब जीव मध्यम अन्तरात्मा होते हैं। उपशांतमोह क्षीण मोह इन दो गुण स्थान वाले जीव उत्तम अन्तरात्मा होते हैं। इनमें पहले-पहले गुण स्थानों की अपेक्षा परिणामों में विशुद्धता अधिक-अधिक बढ़ती जाती है। वीतरागता बढ़ती जाती है। आगे-आगे प्रमत्त गुणस्थान वाले मुनियों से अप्रमत्त वाले विशेष विशुद्धि को लिए हुए होते हैं। अपूर्वकरण में संज्वलन कषायों की मन्दता बढ़ जाती है और सातिशय होकर श्रेणियों में चढ़ते हैं। कोई जीव उपशम श्रेणी से कोई जीव क्षपक श्रेणी से, क्षपक श्रेणी वाले तो आगे नौवें गुण स्थान में जाकर बहुत सी प्रकृतियों को क्षय करके अत्यन्त विशुद्धता को प्राप्त होते हैं। परन्तु उपशम श्रेणी चढ़ने वाले जीव उन प्रकृतियों को दबाते जाते हैं। परन्तु दोनों श्रेणी चढ़ने वालों के परिणामों में निर्मलता एक समान ही होती है। विशेष वीतरागता बढ़ती जाती है और स्व-संवेदन ज्ञान भी उज्ज्वल होता जाता है। तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, तथा लोभ कषायें क्षय होती हैं या उपशम होती हैं तब उनके परिणाम अत्यन्त उज्ज्वल होते हैं और आत्मानुभूति

अपने में आपको स्वयं ही अनुभव में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव में आने लगती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टी क्षपकश्रेणीउपशम श्रेणी में चढ़ते हुए भावों में निर्मलता वीतरागता समान ही होती है। दशवें गुणस्थान में जो सूक्ष्म लोभ शेप रह गया था उसको दशवें गुणस्थान के अन्त में क्षय करने वाला जीव योगी वीतराग क्षद्मस्थ क्षीणमोह गुणस्थान को प्राप्त होता है उपशम श्रेणी से चढ़ने वाले उपशान्त मोह गुणस्थान को प्राप्त होता है तव उत्तम अन्तरात्मा दोनों गुणस्थान वाले जीव होते हैं। जव वीतराग क्षद्मस्थ होते हुए संयम तप में लीन श्रमण सुख दुःख में समभाव का धारक शुद्धोपयोगी होते हैं तव अपने घातिया कर्म जो दर्शनावरण ज्ञानावरण और तीन आयु तथा दान लाभ भोग उपभोग वीर्यान्तराय कर्मों का नाश करके सयोग केवली भगवान वन जाते हैं तव उनको सकल परमात्मा कहते हैं वे जीवन युक्त होते हैं। उनके अव संसार के वृद्धि के हेतुओं का अभाव हो गया है। जव आठों ज्ञानवराणादि कर्मों का नाश करकेतथा पंच शरीरोंको नाश करके वे सिद्ध भगवान वन जाते हैं वे निकल परमात्मा हैं वे ही उपादेय हैं। इसलिए प्रथम में मिथ्यात्व भावों को हमें छोड़ने का उपदेश दिया गया है और अन्तरात्मा वनने का उपदेश दिया गया है अन्तरात्मा वनकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ॥६३९॥

यन्मन्यन्ते नित्यं परद्रव्याणि स्वद्रव्य स्वामित्वम् ॥
शरीरादिष्वनुरक्तो भवति तदात्माकुदृष्टिः ॥ ६४० ॥

जो अज्ञानी मोही पर द्रव्यों को अपनी मानता है वे परद्रव्यें चेतन और अचेतन व चेतनाचेतन रूप से तीन प्रकार की होती हैं। चेतन तो स्त्री पुत्र माता पिता भाई वह नाती पोता वेटी धेवता मामा साला व गाय भैंप हाथी घोड़ा वैल गाय वकरी इत्यादि चेतन असंख्यात भेद वाले हैं उनको अपनी मानते हैं। तथा अचेतन रुपया चांदी तांवा लोहा सोना हीरा पन्ना प्रवाल शंख मोती मकान हवेली कोट इत्यादि अचेतन असंख्यात प्रकार के हैं उनको अपनी मानता है। चेतनाचेतन ग्राम नगर खेवट कर्वट राज्यपुर इत्यादि चेतना चेतन इन सव को अपनी मानता है और चिन्तवन इनका ही करता है इनके लिए ही राग मोह करता है अपने को उनका स्वामी मानता है। तथा उन चेतन को अपना दाशया सेवक मानता है। यह मानता है कि इस राज्य की स्थापना मैंने ही की है यह मेरा ही राज्य है इस पुर को मैंने ही वसाया, मकान वनवाये हैं मैं ही इनका स्वामी हूँ। यह मकान व किला कोट कूप वापी सरोवर तो मैंने ही निर्माण करवाये हैं तथा मन्दिर वागीचे उद्यान मठ विद्यालय मैंने वनवाये हैं ये मेरी ही है मैं इन सव का मालिक हूँ। ये आयुध फर्सा कुल्हाड़ी तलवार कुदालो वन्दूक धनुप वाण तोमर त्रसूल कुल्हाड़ शांकल हल मूसल इत्यादि मैंने ही वनवाए हैं मैं इनका स्वामी हूं मैं नहीं रक्षा करूँगा तो कौन इनकी रक्षा करेगा। मैं ही एक ऐसा हूं कि इनकी व्यवस्था वना रहा हूं विना मेरे कौन इनकी व रक्षा सम्हाल कर सकता है। मैं इन स्त्री पुत्र मित्रादि भव्य सेवक इत्यादि का मैं ही पालन करता हूं मेरे विना ये कोई भी जीवित नहीं रह सकते हैं। ये कभी यह विचारते हैं कि ये मेरे मालिक हैं यही मेरे उपकारी हैं यदि ये न होते तो मेरा मरण जरूर ही हो जाता। इनका ही यह सव वैभव है कि जिसे मैं देख रहा हूँ ये ही वड़े महान हैं इनके समान और कोई नहीं हैं।

शरीर और शरीर से सम्बंध रखने वाली वस्तुयें हैं इनमें विशेष राग करता है। उनकी प्राप्ति में अपने को सुख की छटा दिखाता है, कि मैं वड़ा ही सुखी हूं उनके वियोग में अपने को अनुभव करता है कि मैं वड़ा दुःखी हूँ मेरे समान कोई दुःखी नहीं है। इत्यादि प्रकार से पर वस्तुओं में राग कर अपनी मानते हैं। तथा राग के कारण ही दुःखी होते हैं पुनः उनकी प्राप्ति करनें की इच्छा करते हैं उनके लिए इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग वेदना अनुभव और निदान बंध कर संसार में दीर्घ काल तक भ्रमण करते हैं ऐसे अनन्त संसारी वहिरात्मा जीव है। वह द्रव्यों को होनें वाली पर्यायों को ही द्रव्य मानते हैं ऐसा मिथ्यादृष्टि वहिरात्माओं का लक्षण कहा है। ६४०

यद्धन धान्येऽनुवक्ताः कामिनीनांवि षयाशक्ता सदा।
मोहमूढित चिन्तेन भ्रमति संसार कान्तारे ॥६४१॥

जो अज्ञानी मोही प्राणी जगत का पालन करने में लगा रहता है और विचार करता है कि मैं जगत का पालन कर रहा हूं। यह वात कहां तक सत्य है यह हम नहीं जान पाते ? तथा कोई मोहान्ध प्राणी अपना धन गौरव मान कर गाय वैल और घोड़ा हाथी, भैंस, भैंसा, इत्यादि का पालन पोषण करता है और उनमें ही आशक्त रहता हुआ मरण को प्राप्त होता है। कोई ज्वार, वाजरा, गेहू, मूग, उड़द, मटर इत्यादि धान्यों को उपार्जन करने में तथा उनके संरक्षण करने में अपनें अमूल्य समय को व्यतीत कर देता है। तथा स्त्रीयों के सहवास व आलिंगन करने में अपने को सुखी मान रत हो रहा है नित्य जिसका ऐसा मोही उन विषयों की सामिग्री जुटाने में दिनों दिन चिंतित रहता है। कभी उनके पोषण करने के लिये हिंसा करता है, झूठ वोलता है, तथा चोरी भी करता है मायाचारी छल कर पर द्रव्य व प्राणों का हरण भी करता है। क्षण में विनाश होने वाली स्त्री पुत्र दासी दास परिग्रह का संचय करने में लवलीन रह कर उनसे सुख की इच्छा करता। तथा उस सब परिग्रह को प्राप्त करने के लिए दीन हीन अचार विचार वाले नीच पुरुषों की सेवा चाकरी करता है और जूठा भोजन भी खाता है, और परिग्रह को संचय करता है। कुछ यदि भाग्य का उदय से परिग्रह मिल गया तव उसके संरक्षण का प्रयत्न निरन्तर करता रहता है सोते समय स्वपन में भी वही दिखाई देता है। कभी नवयोवन सुन्दर कामनियों के रुप रंग को देखकर कामातुर होता है तथा स्त्रीयों के हाव भाव शरीर और शरीर की कान्ति देखकर विचार करता है कि ऐसी ही स्त्री मुझे मिले तव तो मेरा जीवन का सार है। तव ही मैं अपने जीवन को सार मानूंगा। जव कहीं मिल जाय तो आलिंगन व विषयों का अनुभव कर अपने को सुखी मानता है कहता है कि वस यही सुख सवसे श्रेष्ठ हैं। यह मोही प्राणी दुःखाभास को ही सुख मानता है। जव स्त्री के साथ संयोग करता है तव अपना वीर्य पतन होने तक ही यह सुख प्रतीत होता है कि स्त्री भोग में वड़ा सुख है परन्तु वीर्य के पतन होने के पीछे तो दुर्दशा ही होती है फिर वह सुख कहां गया ? सो कहो। स्त्रियों के विषयों में आसक्त मनुष्य अपना तन धन ऐश्वर्य कीर्ति यश यौवन को वरवाद कर डालता है कामी पुरुष को भोजन पान भी अच्छा नहीं लगता है वह और की तो वात ही क्या है वह अपने जीवन को भी नष्ट कर देता है। ऐसा

मोही विषयाशक्त जीव संसार रूपी महा भयानक जंगल में भ्रमण कर जन्म मरण के दुःखों को निरन्तर प्राप्त होता है आचार्य कहते हैं कि जिनके मनको मोह रूपी मूढता ने मढ लिया है इसी कारण उसको विषय भोग अच्छे लगते हैं अन्य भोग उपभोग व आत्म वैभव से विमुख ही निरंतर रहता है ।।६४१।।

नृपालोऽहं सूढो ममशरणमाजीवनं सुखं,
मयादापोयूयं किमपि न दुःखं निरगुणाः ।।
धनं धान्यं दासी सुतपरिजनाः स्वविमुखा ।
गजार्गोवस्त्रं यासि न मरण काले च वसुधाः ।।६४२।

संसारी वहिरात्मा अज्ञानी जीव अपने को सवका स्वामी मानता हुआ विचार करता है कि ये सव जन मेरी शरण में आये हुए हैं । मैं अव इनको जीवन पर्यन्त निरंतर सुख दूंगा और इनके दुःखों को नाश कर डालूगा । तथा विचार करता है कि मेरे समान संसार में और कौन है कि जिसके पास इतना वैभव राज्य संपदा हाथी, घोड़े, सेना, और गाय भैंप हों । मैं ही सव राजाओं में प्रधान हू मेरे समान संसार में कोई धनाड्य नहीं है । मेरी जैसी सुन्दर गुणवान आज्ञाकारिणी शीलवन्त व रूपवान धर्मात्मा कोई स्त्री नहीं । मेरे मंत्री पुरोहित सेनापति इत्यादि व राजा लोग मेरी सेवा में व आज्ञा पालन करने को आगे खड़े रहते हैं । इत्यादि राजमद में मत्त पुरुष की तरह मूछों पर ताव देता हुआ वैठा रहता है । सवको कहता है कि तुम सव मेरे सेवक हो मैं तुम्हारा स्वामी हूं मेरा धन है धान्य है मेरी यह रानी व दासी सेविका है मेरा पुत्र व सेवक जन हैं मेरे परिवार के लोग हैं मुझे यहां रंच मात्र भी दुःख नहीं है इत्यादि कल्पना प्रथम में करता है जव पाप कर्म का उदय काल प्राप्त होता है तव वे ही सव अपने से विमुख हो जाते हैं । तथा पुत्र मारने को सम्मुख आता है सेवक हैं वे भी आज्ञा को नहीं मानते स्त्री भी अव सेवा नहीं करती है, इतने सव होने पर भी मोही अज्ञानी उनसे राग को नहीं छोड़ता है । अव मरण काल नजदीक आ पहुँचा तव रोता है कि हाय मेरी पृथ्वी राजधनी व राज्य वैभव सव रह चला, हाय मेरे हाथी घोड़ा गाय खच्चर इत्यादि व कोट कुर्ता पाजामा धोती दुपट्टा मुकुट करोधनी वाजूवन्द कंकण इत्यादि सव मेरे साथ नहीं जावेगें इत्यादि प्रकार से रुदन कर प्राण छोड़ देता हैं पर वस्तु में अपनापन मान उनके प्रति आर्त ध्यान व रोद्रध्यान कर मरण करता है जिससे संसार के चारो गतियों में दुःख भोगता है ऐसा वहिरात्मा है ।

विशेष—अज्ञान मोही प्राणी आप सवका स्वामी वन कर वैठा और कहता है कि तुम सव मेरी आज्ञा का पालन करो तुम सव मेरे सेवक हो । मैं ही तुमको सुख देता हूं मैं ही तुम्हारी सव प्रकार से रक्षा करता हूं । जिन पुत्रादि को व अश्वादि वाहनों को व पुत्रादि को अपना मानता है वे ही पुत्र मित्र भाई आदि जिसको मारने को सन्मुख होते हैं । आचार्य कहते हैं कि अरे भाई यह राज्य वैभव या पृथ्वी हाथी घोड़े गाय कपड़ गहने क्या मरण समय में तेरे साथ जायगे जिन में तू राग कर रहा है । परन्तु मोही प्राणी जानता हुआ भी पर में हो रमण करता है और संसार में भ्रमण करता है ।

जन्मंगात्रं मम जननष्टे च मत्युर्वियोगे
दुःखं मूडानुभवति तदा रोदनं हाय्र जन्ति।
चित्ते खिद्यन्ति निशदिन माक्रन्दनं स्त्रीष्टनष्टे।
अन्यान्यवा मत सकल मीशोऽप्यहं सेवकोवा ॥६४३॥

अज्ञानी मोही मूड मती इस शरीर के उत्पत्ति होने पर अपनी उत्पत्ति तथा विनाश होने पर अपना मरण मानता है तथा इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर अपने को सुखी व अनिष्ट वस्तु के मिलने पर अपने को दुखी मान कर रोदन मचाता है तथा इष्ट वस्तु के विनाश होने पर होता है कि हाय मेरा पुत्र मर गया हाय मेरी स्त्री का मरण हो गया इस प्रकार अज्ञानी मोही प्राणी दुःखों का अनुभव करते हैं। तथा वे अपने मन में अत्यन्त खेद खिन्ना व शोक करते है। व गत दिन रो रो कर अश्रुपात करते रहते हैं। और कहते हैं कि हम पर तो भगवान ही रूठ गये हैं इस लिये हमको इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग रूप अनेक दुःख भोगने पड़ रहे हैं। कभी एक दूसरों का आप मालिक बनता है कभी आप एक दूसरों का सेवक बनता है। तथा अपने आपको सेवक मानता है इस प्रकार मिथ्यादृष्टी जीव की मान्यता है सो ही संसार वृद्धि का कारण है।६४३।

विषयाशक्तोमुञ्चन्ति न पुनः पुनः इच्छति विषयानि तथा।
पावति दारूण दुःखम्मनंन्त पुद्गला परावर्त्ता ॥६४४॥

जो प्राणी अनादि काल से पंचेन्द्रियों के विषय वासनाओं में आसक्त हो रहा है। अपने हिताहित के विचार से शून्य मोही पुनः पुनः उन ही विषयों की अभिलाषा करता है। उन विषयों को सेवन कर पाप उपार्जन करके दारुण दुःख पाता है। तथा अनन्त पुद्गला परावर्तन काल तक संसार में ही भ्रमण करता है।

विशेष—जब यह प्राणी पंचेन्द्रियों के विषय सुखों की अभिलाषा करता है और विषयों के पोषण करने के लिये नाना प्रकार से हिंसा करता है जिसको करके नरक गति में चला जाता है यहां पर नरक भूमि से ऊपर पांचसौ धनुष पर उपपाद शैया है वहां पर जन्म लेकर नीचे की ओर गिरता है। उस उपपाद शैया के नीचे प्रथम नरक में छत्तीस आयुध बने हुए हैं उनके ऊपर आकर गिरता है जिससे सारा शरीर जर जर हो जाता है। जिससे उसके अंग में इतनी वेदना होती है कि वह नारकी प्राणी पांच सौ धनुष ऊपर को छलांग मारकर उसमें से निकलने का प्रयत्न करता है। परन्तु आयु कर्म बड़ा ही बलवान होने से वहीं रोक देता है। वह नरक में जाता है तब पुराने नारकी नवीन नारकी के पीछे लग जाते हैं और उसको पकड़ कर मार लगाते हैं। कोई नारकी उन नवीन नारकी को की मार लगता है तो कोई अग्नि में पकाते हैं तो कोई करोंत लेकर उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। कोई-कोई नारकी पक्षी का रूप धारण कर नवीन नारकी के शरीर में से मांस नोचकर खाता है। ज्यादा क्यों कहना वहां की भूमि को छूने मात्र से इतना दुःख होता है कि हजार बिच्छुओं के द्वारा एक बार डंक मारने पर जितनी वेदना होती है उससे भी अधिक वहां नरक में नारकी जीव के वेदना होती है। कोई नारकी नवीन नारकी

को लोहे की पुतली बनाकर उसको अग्नि में तपाकर उसको शरीर से चिपटा देते हैं और कहते हैं कि तूने पर स्त्री के साथ वहुत आलिंगन भोग विलास किया था अब इसके साथ कर कोई नारकी लोहे को तपाकर पानी के समान बना लेते हैं और उस नारकी के मुख को फाड़कर उसके मुख में डालते हैं और कहते हैं कि तूने मनुष्य भव में वहुत शराव पियी थी अव इस शराव को पी ? कभी कभी अंवावरीस नाम के असुर कुमार जाति के देवनरक में जाकर उनको याद दिलाते हैं कि इसने तेरे भाई को मारा था इसने तेरी वेटी के शील को भंग किया था। कोई कहता कि इसने तेरे धन माल को अपहरण किया था व क्षेत्र को राज्य को छीन लिया था। यह सुन कर नारकी वड़े ही क्रोधित होकर एक दूसरे से लड़ने लग जाते हैं वे इस प्रकार लड़ते हैं कि जिस प्रकार मुरगा व तीतर लड़ते हैं। वे एक दूसरे नारकी के शरीर के तिल तिल के वरावर टुकड़े कर डालते हैं इस प्रकार वे नारकी परस्पर लड़ते हैं। उन नारकियों को भूख इस प्रकार की तीव्र लगती है कि तीन लोक का सव अनाज खा जाऊं पर एक दाना भी उपलब्ध नहीं होता है। प्यास भी इतनी तीव्र लगती है कि यदि मध्य लोक स्थित जितने समुन्द्र हैं उन सव समुद्रों का पानी पी जाऊँ तो भी प्यास नहीं वुझगी परन्तु एक वूंद भी पानी नहीं मिलता है। इतना कष्ट व दुःख प्राप्त होने पर भी मरण नहीं होता है क्योंकि इनके अपमृत्यु का अभाव है। पहले दूसरे तीसरे चौथे अथवा पांचवें नरक के ऊपरी भाग में गर्मी है नीचले भाग से लेकर सातवे नरक तक शीत का दुःख है। पहले पहले नरकों से आगे आगे के नरकों में दूने दूने आयुध वढ़ते जाते हैं तथा वेदना भी वढ़ती जाती है आयु भी वढती जाती है तथा काया भी वढ़ती जाती है उन नरकों में स्वभाव से ही दुर्गन्ध आती हैं कि जम्बूद्वीप के एक कोने पर रख देने पर जम्बू द्वीप में रहने वाले जीव दुर्गन्ध से व्याकुल हो जावेंगे। उन नरकों में रक्त और पीप के आकार को धारण करने वाली वैतरणी नदी वहती है जो नारकी जीवों को पीडा का ही कारण होती हैं। उन नरकों में सेमर-तरु के ऐसी तीक्ष्णा धार-वाले पत्तो से होते हैं कि शरीर पर पड़ते ही शरीर के टुकड़े कर डालते है। इन पहले के नरकों में इतनी गर्मी पड़ती है कि मेरु के वरावर लोह का गोला भी एक क्षण मात्र में पानी की तरह वहके चल देता है। और नीचे के नरकों में शीत की इतनी विशेषता है कि लवणोदधि का पानी एक क्षण में जम कर पत्थर हो जावे। इस क्षेत्र में जिस प्रकार कोई अन्य क्षेत्र का कुत्ता आ जाता है तव इस क्षेत्र वाले कुत्तें उसके पीछे पड़ जाते हैं उसको मार खाते हैं और गुर्राते हैं यह अवस्था उन नारकी जीवों की होती है। वे नारकी स्वभाव से ही क्रूर क्रोधी होते हैं तथा कृष्ण नील कापोत लेश्या के धारक होते है। तथा तीव्र संक्लिष्ट परिणाम वाले होते हैं। वहाँ के दुःखों को भोग कर त्रियंच गति में जन्म लेते हैं। जव त्रियंच गति को प्राप्त हो जाते हैं तव अपने से दीन हीन निर्वल पशुओं को मार कर खाते हैं जव आप निर्वल हो जाते हैं तव अपने से बलवालों के द्वारा मारे जाते हैं तथा शरीर का छेदन भेदन और नोंच नोंच कर मांस भक्षण करने पर तीव्र वेदना को परवश होकर सहन करते हैं। अथवा भूख प्यास का दुःख व वध वन्धन का दुःख व अधिक को अपने रहने

रूप दुःख अन्न पान निरोध रूप दुःख व नाक कान छेदने व पूछ काटने व अन्डकोश को फोड़ने छेद कर निकालने रूप दुःख प्राप्त होते हैं, सीग उखड़ाने व जारने तवावने रूप अनेक प्रकार से दुःखो को जीव त्रियंच गति में पाता है। तथा पराधीनता से शीत का दुःख का उष्णता दुःख योग्य क्षेत्र न मिलने रूप दुःख योग्य चारा घासादि न मिलने रूप त्रियंच गति में भी हजारों प्रकार के दुःख है। गाड़ी व रहट खीचने पर जव तक ताकत से वाहर हो जाता है तव वैरी पोतों व कोमल स्थानों में और छेद कर मारता है जिससे सर्वांग के रोम खड़े हो जाते हैं परन्तु बोल ही नहीं सकता ऐसे दुःख त्रियंच गति में जीव ने निरंतर प्राप्त किये। और कुछ पुण्य का उदय पाया तव मनुष्यों में उत्पन्न हुये।

मनुष्य गति के दुःख—जीव जव मनुष्य गति में उत्पन्न हुआ तव प्रथम गर्भावस्था में अंग के सिकुड़ने व अधोमुख झूलने का यहाँ दुःख उससे भी अधिक दुःख माता के गर्भ से बाहर आने पर होता है जिस प्रकार जंती में सुनार तार खींचता है उसी प्रकार माता के योनि में से निकलते समय प्राप्त होते और जन्म लेते ही इतनी भूख की वेदना हुई कि झूर झूर कर रोया। वाल अवस्था में माता के मरण हो जाने पर दूसरों का उच्छिष्ठ भोजन मांग कर खाया व जगह-जगह पर दुत्कार फटकार भी खाई। कभी धन हानि कभी मान हानि कभी धन क्षय के होने का दुःख कभी पुत्र मित्र स्त्री वियोग रूप अनेक दुःख मनुष्य पर्याय में इस जीव ने इस एक मिथ्यात्व के ही कारण सहन किये। इस प्रकार मनुष्य गति को पूर्ण कर कभी अकाम निर्जरा व वाल तप कर देव गति को प्राप्त हो अन्त में ये तीव्र संक्लिष्ट परिणामों से मुक्त हो मारा और एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हो अनन्त पुद्गल परावर्तन जीव किये हैं।

इस प्रकार चारों गतियों में पंचेन्द्रिय जीवों ने दुःख सहे हैं।

अहोरात्रिचिन्तयति संचिनोति परिग्रहं च नित्यम्।
भ्रमति च विदेशेषु वा दीनोवाचोवदति वहुधैव ॥६४५

अज्ञानी मोही विषयाशक्त प्राणी दिन और रात्रि में यही चितवन करता रहता है कि पंचेन्द्रिय विषयक भोग और उपभोग की जितनी अधिक वस्तुएं एकत्र की जायें उतना अधिक सुख भोगोपभोग का प्राप्त होवेंगा। परन्तु जितना-जितना परिग्रह बढ़ता जाता है उतनी-उतनी साथ ही साथ आकुलतायें वढ़ती जाती हैं। जितना परिग्रह बढ़ता जाता है उतनी उतनी इच्छायें अधिकाधिक वढ़ती जाती हैं जितनी-जितनी इच्छायें बढ़ती जाती हैं उतनी उतनी आकुलता और चिन्तायें भी वढ़ती जाती हैं। मानव परिग्रह की प्राप्ति करने की इच्छा से विदेशों में जाता है। जहां पर अपने परिचितव धर्मवाला भी नहीं होता है वहां जाकर धन की इच्छाकर नीच कुलों की सेवा चाकरी करता है उच्छिष्ठ भोजन करता है तथा मालिक के लिए रसोई की व्यवस्था करता है रसोई बनाता है वस्त्र धोता है शरीर का मर्दन कर मालिक को प्रसन्न कर धन की इच्छा करता है। प्रथम तो धन मिलता नहीं यदि कुछ मिल भी जावे तो इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है तब दीन वचन बोलता है और परिग्रह को

संचय करता है। यह परिग्रह भी पुण्य के विना प्राप्त नहीं होता यदि हो जावे तो दुःख का ही कारण है प्रथम तो उसके उपार्जन करने में दुःख है उपार्जन किये हुए की रक्षण करने में दुःख और जव विनाश हो जाता है तव भी दुःख का कारण है इस कारण यह पंचेन्द्रिय भोग और परिग्रह ये दोनों ही आर्त ध्यान के मूल कारण हैं ग्रन्थकार कहते हैं कि मोही वहिरात्मा के निरन्तर आर्त रौद्र ध्यान ही होते रहते हैं।६५॥

वस्त्राभूषणानिवा वेस्मनि वहुक्षेत्रश्च मा संवासः।
संयोगवियोगयोः विनाशे वोत्पादे चार्तः ॥६४६

अज्ञानी वहिरात्मा दिन रात चिन्तातुर रहता है कि मेरे वस्त्र जीर्ण हो गये वस्त्र उनके समान सुन्दर नहीं हैं उनके जैसे वस्त्र मेरे पास नहीं मिले उनको मिल गये इस प्रकार वस्त्रों के विषय में दिन रात आर्त ध्यान करता है। कभी विचार करता है कि उसके यहां पर रेशमी व अच्छे वस्त्र हैं ऊनी साल दुसाले सरज के वस्त्र हैं परन्तु मेरे पास एक भी नहीं अगर मेरे वस्त्र जीर्ण और गले हुए वहां के लोग देखेंगे तो वे मेरा आदर विनय नहीं कर घृणा की दृष्टि से देखेंगे तव मुझको नीची दृष्टी करनी होगी इस प्रकार वस्त्रों के विषय में आर्त ध्यान करता है। तथा मेरे घर में सुवर्ण के व हीरा मोती पन्ना पुखराज के हार नहीं कंठा व गुलीवन्द, हमेल, मोहन माला, मटर माला इत्यादि नहीं है कण्डा, लड़ वेशर, दुलरी, कर्ण फूल, करोंधनी, वाजूवंद तथा हाथ शंकर, नहीं है उस मेला में व विवाह में तो सव स्त्री पुरुष वच्चे अपने-अपने आभूषण पहन कर आवेंगे तव वहां मुझको उनके सामने नीचा देखना पड़ेगा यदि वहां नहीं जाऊंगा तो भी मुझे नीचा देखना होगा। यदि नहीं जाऊं तो लोग मेरी हंसी करेंगे और कहेंगे कि वह तो वड़ा ही कंजूस है। अव कैसे जाऊं किससे माँग कर लाऊं कौन इतनी कीमती वस्तुएं देगा किससे कहूं और कौन सुनेगा ? इस प्रकार आभूषण न होने के कारण आर्त ध्यान करता ही रहता है। जिनके पास हैं वे भी विचार करते हैं कि यदि किसी चोर डाकू को पता लग जायेगा तो जवरन छुड़ाकर ले जायेगा। यदि किसी को मांगे दे दी और उसने लौटा कर नहीं दी तव मैं उनका क्या करूंगा। उनसे यदि कुछ कहूंगा तव लोग मुझे ही पागल कहेंगे। यदि नहीं देता हूं तो कहेंगे कि हमारा विश्वास ही नहीं यहीं जेवर वाला हो गया, इत्यादि दुर्भा-वना करता है। कभी विचार करता है कि ये पुत्र स्त्री आभूषणों को पहन लेवेंगे तो घिस जायेंगे वजन कम हो जायगा। वे जरूर ही मांगेंगे तो देने होंगे वह दिन रात आभूषणों के होने न होने पर आर्त ध्यान करता रहता है। तीसरे प्रकार का आर्त ध्यान मेरे पास मकान नहीं है घर भी अच्छा नहीं है वह घास फूस की वनी हुई झोपड़ी है, उनका वंगला व हवेली कितनी सुन्दर देखने योग्य इन्द्र के भवन के समान सुन्दर है। जव मेरे पास द्रव्य हो जायेगा तव मैं भी उनके वंगला से भी सुन्दर एक भवन निर्माण कराऊंगा जिसमें नाना प्रकार के चित्र व रंग रंगीले नक्शा निकलवाऊंगा। कभी विचार करता है कि ये मकान तो पुराना हो गया है और पुरानी टाइप का है अव नई डिजाइन का हवादार वनवाऊंगा। जव कभी पैसे की कमी हो जाती है तव व्यापार में पैसा लगाने के लिए व गृहस्थी का पालन करने के लिए मकान को गिरवी रख दिया और मकान के ऊपर ऋण ले लिया और ऋण का व्याज नहीं

दिया गया तब डूबने की आशंका उत्पन्न हो जाने पर चितवन करता है कि अब हाय मकान मेरे हाथ से गया, हाय मेरे पूर्वजों की निशानी भी निकल चली अब क्या करूं। उसको मिलाने का प्रयत्न भी करता है पर पास में कोड़ी भी नहीं दिखाती! तब दूसरों से भी कहता है इधर उधर भटकता है परन्तु एक पैसा प्राप्त नहीं होने से अब मेरा मकान गया। कोई विचार करता है कि अपने पास जैसा छोटा या बड़ा मकान है परन्तु बहुत पुराना हो गया उसका जीर्णोद्धार करना चाहिए। मेरे पास तो जीर्णोद्धार करने के लिए एक भी पैसा नहीं अब पुराना मकान होने के कारण गिर जाता है तब उसको बनवाने के लिए दिन रात आर्त ध्यान करता है कभी विचार करता है कि मेरे पास तो एक एकड़ जमीन है उनके पास तो पचासो एकड़ जमीन है परन्तु अब मैं क्या करूं जिससे मेरे पास सभी जमीन हो जावे। इष्ट वस्तु जैसे पुत्र से मिलन होने पर अत्यन्त हर्ष होता है तथा स्त्री का सयोग होने पर आनन्द मानता है, जब इनका वियोग हो जाता है, तब दिन रात रो-रो कर नेत्रों को सुखा लेता है तथा इष्ट वियोग नाम का आर्त ध्यान करता है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि यह जीव खोटे कार्यो को तो तन मन से करता है करता चला आ रहा है जिससे चारों गतियों में जन्म मरण जरा रोग के दुःखो को अनन्त काल से भोगता हुआ चला आ रहा है। इसलिये संसारी जीवों के दुःख का कारण यह आर्त ध्यान ही है तथा अनर्थो का कारण भी यह आर्त ध्यान ही है। इसलिए भव्य जीवों को चाहिए कि वे सम्यक्त्व उपार्जन करें कि जिसके प्राप्त होते ही आर्त व रौद्र ध्यान सब क्षय हो जाते हैं सम्यक्त्व होने पर संवेग भाव उत्पन्न होता है और धर्म ध्यान का क्रम चालू हो जाता है वह धर्म ध्यान व सम्यक्त्व ही मंगलकारी है तथा दुर्भावनाओं का नाश करता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टी के अनिष्ट संयोग व इष्ट वियोग तथा निदान बंध नाम का आर्त ध्यान नहीं होता है। निदान बंध नाम का ध्यान तो बहिरात्मा के ही हुआ करता है क्योंकि मिथ्यादृष्टी ही वैर विरोध सुखाभिलाषा रूप निदान बांधता है। अग्निभूति की भावज वायुभूति की धर्मपत्नी ने निदान किया था यह कथा पुराणों में लिखी है। तथा विश्वामित्र मुनि ने निदान किया था वह हरिवंश पुराण में कथा लिखी है वहां से जान लेना चाहिए।६५४॥

मिथ्यादृष्टी के सुखों को बताने के लिए कहते हैं।

प्रविश्याऽरण्येवाञ्छति शिव सुखं कंटक पथे।
बहुव्यावासिहो विषय विवधोलोलुपजनाः॥
कथं निर्भीतं याति तदनुदिनौकोप दपटः।
सदावृद्धिश्चित्तेऽशुभकलहकार्या च बहुधाः॥ ६४७॥

कोई अज्ञानी प्राणी घनघोर जंगल में प्रवेश करने के लिए मार्ग में चलता है जिस में सब जगह पत्थर फैले हुए हैं ऐसे मार्ग में चलता है यदि दृष्टि चूक जाती है तब पैरों में कांटे चुभ जाते हैं या पत्थर की ठोकर लगने से पैर घायल हो जाता है अथवा पैर में ठोकर लगने से पैर फट जाता है। जिससे रक्त बहने लग जाता है। तथा कांटे चुभ जाने से अत्यन्त वेदना भी होती है उस वेदना को सहन करता हुआ आगे बढ़ता जाता है, जो यहां पर

देवों के वैभव को देख कर मन ही मन में खेद खिन्न होते रहते हैं। और अपने को हीन समझते हुए अपनी निन्दा करते हैं मन में बड़े ही आकुलित होते हुए विचार करते हैं कि अब हमको इन महा ऋद्धियों के धारक देवों की आज्ञा का पालन करनी पड़ेगी। तथा इनकी सवारी का काम हमको ही करना पड़ेगा हम तो वाहन जाति के देव हुए हैं सो हमको अब हाथी घोड़ा ऊंट बैल बकरा सूकर इत्यादि रूप धारण करने पड़ेंगे महार्द्धिक देव हमारे ऊपर बैठ कर चलेंगे। किल्विष नाम के देव विचार करते रहते हैं कि हम बड़े ही अभागे हैं क्योंकि राजा के हमको दर्शन करने व इन्द्र की सौधर्मादि सभाओं में भी जाने को अधिकार नहीं है। सब देवों को जाने दिया जाता है, परन्तु हमको नहीं जाने दिया जाता है। हमको तो दरवाजे पर ही बाजे बजाने को रोक दिया जाता है कोई देव विचार किया करते हैं कि हमको किसी भी उत्सव या महोत्सव में शामिल नहीं करते अपितु और डाट लगाते हैं। उन परिषद तथा आत्मरक्षा तथा सामानिक देवों के वैभव को देखो कि प्रथम तो इन्द्र की सभा में इन्द्र के बराबर वैभव सहित बैठना दूसरे हम जिन्हें जन्म कल्याणादि व अष्टाह्निकादि पर्वों में भी जाने नहीं दिया जाता है, उनके कितनी सुन्दर और सुख साधन रूप देवांगनायें हैं हमारे तो उनकी देवांगनाओं की अपेक्षा पैर का धोवन भी नहीं हैं ये देव अनेकानेक ऋद्धि अणिमा गरिमा आदि महाऋद्धियों के स्वामी हैं। इनकी अपेक्षा हमारे पास तो ऐसी कोई ऋद्धि नहीं है। अब मैं क्या करूँ मैं तो इनका नियोगी वाहन जाति का देव हुआ हूं ये पुण्यवान हैं मैं नीच हूं इसलिए मुझको इनकी सेवा करनी पड़ती है। देखो ये तो वैभव में इन्द्र के समान हैं इनके देवांगनायें बहुत हैं और वैभव भी बहुत है मेरे पास तो कुछ भी वैभव नहीं। अथवा देवांगनाओं का जब-२ विनाश होता तब सोचते हैं कि हाय अब मेरी देवी मर गई अब क्या करूँ? इस प्रकार दिन रात आर्त ध्यान में लवलीन रहते हैं? हाय मेरे सहकारी मेरे साथ में रहने वाले देवों का विनाश हो गया अब क्या करूं? भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों में उत्पन्न होकर मानसिक दुःख रूपी शोक समुद्र में डूबे रहते हैं तथा देवगति को पाकर दिन रात अपना आर्त ध्यान में व्यय कर देते हैं। तथा तीव्र आर्त ध्यान करके देव एकेन्द्रिय का आस्रव और बंधकर लेते हैं मरण कर तिर्यंच व निगोदों में भी चले जाते हैं। जब देवों की आयु छह महीना शेष रह जाती है तब मंदार माला मुरझाने लग जाती है तब देव देवांगनायें यह समझ लेती हैं कि अब हमारी आयु क्षीण हो गई है तब वे मिथ्यादृष्टि देव हाय-हाय कर अत्यन्त दुःखी होते हैं कि मेरी देवांगनायें अब यहाँ ही रह जायेगी, अब आयु समाप्त हो चली और यह विमान छूट जायेगा हाय मेरा सारा वैभव छूटा जावेगा, हाय इच्छित फल देने वाली ऋद्धियाँ हैं वे भी यहीं पर छूट जायेंगी अब क्या करूँ। इस प्रकार दुर्ध्यान तथा शोक रूपी समुद्र में गोता खाने लग गये हैं और मरण को प्राप्त हो एकेन्द्रिय जीवों में जाकर उत्पन्न होते हैं, यह सब बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि की महिमा है। देवगति से च्युत हुआ देव कोई तो पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं कोई मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तथा अग्निकाय और वायुकाय को छोड़ कर सब स्थावरों में देव मर कर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि देवों के मानसिक दुःख होता है मानसिक वेदना

सहित संक्लिष्ट परिणामी देव एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हो कर संसार में भ्रमण करते हैं ॥६४८॥

गृहीत्वा मिथ्यात्वं भरति भव दुःखं च विपुलम् ।
नसम्यक्त्वं शीलं विलसति च मूढो बहुसुखम् ॥
इदानीमाश्चर्य स्वगुण विमुखः स्वादनिफलम् ।
व्यतीतकालोऽनंतखलुगमतारोश्शिव सुखम् ॥ ६४९ ॥

अज्ञानी बहिरात्मा जो (शील) सम्यक्त्व स्वभाव वाले आत्मा के अनंत दर्शन ज्ञान क्षायिक सम्यक्त्व के सुख की तरफ दृष्टि नहीं डालता हुआ मिथ्यात्व को ग्रहण करके संसार के महान दुःखों का भोग करता है। इस समय बड़ा ही आश्चर्य है कि विपरीत मार्ग के फल को न जानता हुआ अनन्त काल व्यतीत कर दिया परन्तु मोक्ष सुख जो सुख महान और अलौकिक है अनुपम है उसकी तरफ को दृष्टि ही नहीं डालता है। अपने स्वभाविक उत्तम सुख जो अतीन्द्रिय है उसको न जानता न अनुभव में लाता हुआ पर द्रव्य के संयोग सम्बन्ध को ही सुख का साधन मानकर विपुल दुःखों को ही प्राप्त होता चला आ रहा है। इसलिए हे भव्य अब इस संयोग सम्बन्ध से होने वाले सुख का त्याग कर अपने स्वभाव रूप सुख की तरफ दृष्टि डाल कर देखें तब तेरे को यथार्थ सुख की प्राप्ति हो ॥६४९॥

स्वासोच्छ्वासे जनममरणेऽष्टादश प्राप्तजीवः
माणिक्यंलभ्य तदुपममालभ्यतेयत्र शैलम् ॥
पुण्यैलाभो भवति खलु चित्तं विनायन्तिरक्षु
भव्ये पुण्योदय समान सुत्वं मालभन्ते कदापि ॥६५०॥

मिथ्यात्व मोह रूपी मदिरा का पान कर अपने स्वरूप को भूल कर पर में महत बुद्धि कर रहा है जिसके कारण ही एक स्वास्वोच्छवास में अठारह बार जन्म मरण करता है परन्तु स्थावर निगोद पर्याय को छोड़ कर प्रत्येक वनस्पति को प्राप्त नहीं हुआ जिस प्रकार मणिक्य रत्न बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रत्येक गति को प्राप्त किया। परन्तु त्रस कायक जीवों में उत्पन्न नहीं हुआ। जब कभी पुण्य कर्म का स्वभाव से ही लाभ हुआ तब दो इन्द्रियादि जीवों में उत्पन्न हुआ परन्तु पंचेन्द्रिय नहीं हुआ। जब कुछ पाप का क्षयोपशम हुआ तब यह जीव पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ परन्तु मन के अभाव में कोरा मूर्ख ही रहा परन्तु सेनी पंचेन्द्रिय नहीं हुआ। और कोई पुण्य के उदय में आने पर सैनी पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ परन्तु क्रूर वक्र परिणामी होकर अपने ने निर्बल पशुओं को बहुत बार मार कर खाया कभी आप स्वयम निर्बल हो गया तब दूसरे जीवों बलवान् प्राणियों के द्वारा मारे जाने व शरीर के विदारने काटने छेदने अंगोपांग भिन्न भिन्न करने रूप अनेक दुःसह दुःखों का त्रियंचों में उत्पन्न होकर अनुभव किये। इसका कारण एक दर्शन मोह ही है।

सदेवोमिथ्यात्वो दथ भवति चैकेन्द्रियरितिः ।
महादुःखंतत्रापि मरण मिवाष्टादशविधः
विहायं सौख्यं दिव्यपरमगति कालेऽनुभवति ॥
सदा संक्लिष्टस्तत्र विरमति मानिस्सर तियत् ॥६५१॥

यह मिथ्यात्व कर्म के उदय में आने के कारण ही देव मर कर ऐकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है वहां सूक्ष्म एकेन्द्रिय होकर जब लब्ध पर्याप्तक अवस्था में स्वास के अठारहवें भाग में जन्म लेकर मरण करता है इस प्रकार दीर्घ काल तव दुःखों का अनुभव करता है। हे भव्य प्राणियो वह देव देवगती के दिव्य सुखों को त्याग कर तीव्र आर्त्त ध्यान संक्लिष्ट परिणामों वाला होता हुआ मरण कर एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है। वह एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होकर अनन्त काल तक उसमें ही निवास करता हुआ दुःखी होता है मिथ्यात्व और अनंतानुवंधी कषायों का उदय निरंतर बना रहता है जिसके कारण सूक्ष्म लब्ध पर्याप्तक चतुर गति संसार निगोद में भ्रमण करता रहता है अथवा जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करता ही रहता है।

विशेप—जब दीर्घ काल तक देव तीव्र मिथ्यात्व और अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनका तीव्र उदय व कृष्णादि चार लेश्याओं के उदय में रहने के कारण ही देव आर्त ध्यान कर एकेन्द्रिय जीवों की आयु अंत समय में बांध कर मरण करता है जिससे पंचस्थावर एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है और एक श्वास के अठारहवे भाग आयु का धारक लब्ध पर्याप्तक अवस्था में रहता हुआ जीव अनंत काल उस निगोद में विता दिये एकेन्द्रिय पर्याप्तकपना उसी प्रकार दुर्लभ है कि किस प्रकार वालू के ढेर में रत्न का कण गिर जाने पर फिर मिलना कठिन है उसी प्रकार समझना चाहिये।

पृथ्वी कायक जीवों के दुःख

एकेन्द्रियणां भूकायके कृषने भंगे रोदने च।
उत्कीर्ण संग्रहणे प्रसारणे कुट्टने दुःखम् ॥६५२॥

एकेन्द्रिय स्थावर कायक जीवों में से पृथ्वी कायक जीवों को नाना प्रकार के दुःख होते हैं। प्रथम तो पृथ्वी की खोदने पर यथा खोदकर फोरने व फैलाने फावड़ा कुदाली व हल से जोतने पर खोदकर फेंकने पर अथवा इकट्ठी करने पर पानो डालकर रोदने पर व टांकी घन हथोड़ादि से कूटने पर पृथ्वी कषाय जीवों को दुःख होता है। पृथ्वी के ऊपर में आग जलाने पर अत्यन्त दुःख होता है। विजली के पड़ने पर तथा आगों में तपने पर दुःख होता है। भट्टी धमनी इत्यादि में डालकर पकाने पर दुःख होता है तथा फोरने पीसने पटकने रोदने पर अत्यन्त दुःख होता है। क्षुद्रभात्र धारण करने पर जन्म मरण की वेदना होती है। ओले पड़ने पर इत्यादि अनेकानेक दुःख हैं ॥ ६६॥

जल कायक जीवों के दुःख।

प्रच्छालने तापने पादयोरून्धने तीक्ष्ण वस्तु मिश्रणे।
कुट्टने प्रसारणेष पतने पातने दुखंञ्च ।६५३॥

धारणोच्छालन हिमकर्कषु गलने तुहिने षोषणे
जलकाये बहुदुःखं आघाते पावन्ति जन्मे च ॥६५४॥

जल कायक जीवों को भी अनेक प्रकार के दुःखों को सहन करना पड़ता है जैसे तालाब नदी बावड़ी समुन्द्र इनमें कपड़ों के धोने पर उनको दुःख होता है। पानी को इधर उधर फेंकना व सींचना कपड़े कूटना व मकान दीवालों पर फैंकना अग्नि के ऊपर रख कर तपाने पर अत्यन्त दुःख होता है। पानी में कूदने पर व अग्नि बुझाने के लिये अग्नि के ऊपर डालने पर भी अत्यन्त दुःख होता है। नमक मिर्चा व अन्य तीखी वस्तुओं के संयोग होने पर अत्यन्त वेदना होती है। पानी में पत्थर ईंटा फेकने पर पहाड़ से गिरने पर ठोकरें लगने पर जो जल कायक जीवों को दुःख होता है वह कहा नहीं जा सकता है। घड़ा में भरने पर तथा भरकर फेंकने पर दुःख होता है। बरफ जमाने पर पाला पड़ने और सूखने पर गलने पर अत्यन्त दुःख होता हैं। तथा ओला और बरफ के गलने पर तुषार के पड़ने पर जो वेदना होती है वह वेदना केवली भगवान ही कह सकते है। पानी को सुखाने सोडा साबुन लगाने पर तथा दुर्गन्धमय वस्तुओं के संयोग होने अत्यन्त दुःख होता है। पहाड़ के ऊपर से गिरने पर अघात होने पर दुःख होता है। अग्नि से तपाये हुए गोला को पानो में डाल बुझाने पर सूर्य की उष्णता लगने पर ओस के पड़ने और सूख जाने पर जल कायक एकेन्द्रिय जीवों को जो तीव्र दुःख होता है। और उनकी कषायें इतनी बढ़ जाती हैं कि यदि हम मनुष्य होते तो इनकी परंपरा को नाश कर डालते।

अग्नि कायक जीवों के दुःख।

प्रज्वलनेऽच्छादने च पयात्प्रच्छालने ताडनघनेन।
धोकनेन धमन्यार्वा दुःखमग्नि काये बहुवः ॥६५५॥

एकेन्द्रिय अग्नि कायक जीवों को स्थावर काय में अनेक प्रकार के दुःखों निरंतर भोगने पड़ते हैं। प्रथम तो जलने से दुःख दूसरे गीले ईधन के कारण से दुःख होता है। जलती हुई अग्नि के ऊपर माटी डालकर दबाने से दुःख होता है, इधर उधर फेंकने से दुःख होता है तथा लोहे को अग्नि में तपाने और घन लेकर कूटने पर घन की चोट खाते समय अत्यन्त अग्नि कायक देह धारीयों को दुःख होता है। धौंकनी से धोकने पर तथा जलती हुई अग्नि को पत्थर लकड़ी छड़ी चींमटी आदि से कूटने पर तथा अंगार के फोड़ने से अंगार के अन्दर में लकड़ी चिमटा आदि के द्वारा छिद्र करने से अत्यन्त दुःख होता है। जोर की हवा लगने से व इधर उधर उड़ने से व तिलंगा रूप होना से अत्यन्त दुःख होता है। लकडी द्वारा कूटने व बुझाने पर उन अग्नि कायक जीवों को अत्यन्त क्रोध कषाय उत्पन्न होता है कि यदि उनकी सामर्थ्य होती तो छेदन भेदन करने वालों को घानी में पेलकर मार डालते। जिसके कारण वे अनन्त काल तक अग्नि कायक जीवों में दुःखों का भोग करते हैं।

वायु कायक के दुःख।

वायुकायकजीवानां संसार भ्रमरे दुःखं।
बंधने घातने निरोधे विच्छेपन वानित्यम् ॥६६६॥

एकेन्द्रिय वायु कायक जीवों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। उनमें से

कुछ संक्षेप से कहते हैं धीमी वायु के लगने से वृक्षों के हिलने व उनसे टक्कर लगने पर दुःख होता है। दूसरे पर्वतों की चपेट लगने रूप अघात होने पर दुःख होता है। पंखा वीजना चलने से व चलाने से दुःख होता है। शीत पड़ने व बरफ पाला पड़ने पर जीवों को दुःख होता है। सूर्य की गर्मी लगने से व अग्नि की गर्मी लगने से दुःख होता है। अग्नि की जलती हुई भट्टी को धोकने से व धोकनी से धमकने पर जीवों को अत्यन्त दुःख होता है मेघों के तड़फने व विद्युत के पड़ने पर ओले वर्षने पर वायु कायक जीवों को महान दुःख होता है। तीक्ष्ण हवा के चलने और दीवाल पहाड़ों की व वृक्षों की चोट लगने पर वायु कायक जीवों को दुःख होता है। तथा वायु कायक जीवों को मकान या टायर में फूकना में भरने वंदकरने पर तथा जलती हुई अग्नि में पानी डालने पर उसकी भभक उष्णता की लहरें उठने से तथा कड़ुआ व दुर्गन्ध मय धुंआ के उठने और लगने पर दुःख होता है। उबलते हुए पानी की भाप के उठने और लगने से वायु कायक जीवों को दुःख होता है। बरफ पाला ओला व शीत पड़ने के कारणों से सूर्य के ताप पड़ने से भी अत्यन्त दुःख होता है। तथा ग्रीष्म ऋतु में लू चलने व भोघेंर पड़ने हर तथा चपेट लगने रूप अनेक प्रकार से वेदना होती है।

वनस्पति कायक जीवों के दुःखों का कथन

छेदने भेदने वा पाके पाचने रुन्धनोऽघाते।
मोचने मिश्रणे च शीतोष्णयोः कर्षणेषु वा ॥६५७॥
रोदने खण्ड खण्डे दहने दाहने चर्वन भङ्गनेषु ॥
पेलनमूलोत्कीर्णे पादप जीवानां बहुदुखम् ॥६५८॥

वनस्पति कायक जीवों के भी अनेक प्रकार के दुःख हैं प्रथम तो यह दुख है कि बढ़ई जन वनस्पति वृक्षों को कुल्हाड़ी गेंती गंडासा व अन्य औजारों से काटते हैं व वृक्ष से डाली शाखा पत्ते फलों को तोड़कर फेंकने के कारण से दुःख होता है। अग्नि में भूंजने व हांडी में डाल पकाने जड़ सहित उखाड़ कर फेंकने पर तथा एक दूसरी में मिला देने व नमक मिरचादि तीखी वस्तुओं को लगाने पर अत्यन्त असह्य दुःख होता है। टुकड़ा करके रसोई मे कूटकर उबालने व टुकडे करने मरोड़ने तथा एक वृक्ष के ऊपर दूसरे वृक्ष के गिर जाने पर भंग होने से अत्यन्त दुःख होता है। पत्ते शाखायें तोड़ने व छाल को छीलने तथा मुख काट नमक आदि वस्तुओं के मिलाने से दुःख होता है। गर्मी के पड़ने वा पानी के नमिलने जमीन के सूख जाने के कारण अत्यधिक दुःख होता है। शीतल वायु के चलने पर भी अत्यन्त वेदना होती है। पाला व ओला बरफ के पड़ने पर शीत के कारण से पत्ते डाली आदि जल गये हैं जिससे अत्यन्त वेदना होती है। जड़ सहित उखाड़ कर फेंक देने पर तथा खेत आदि स्थानों में गाय भैंष वकरा वकरी मेष आदि के द्वारा खोट चोंटकर चवाने पर वेदना होती है। इधर उधर दौड़ने चलने खुरों से उत्कीड़ने व मुख के अग्र भाग से खोदकर जड़ सहित खोद निकाल कर चवाने पर अत्यन्त दुःख होता है। और जंगलादिको में स्वाभाविक वृक्षों से वृक्षों टहनिया रगड़ने पर अग्नि की उत्पत्ति हो जाने से जंगल में आग लग जाने जिससे वहां पर स्थित वनस्पतियां हैं उनके स्कंध शाखा छाल पत्ते कोपलों को जल जाने से अत्यन्त

वेदना होती है। तथा किसी भीलादिक के द्वारा आग लगा देने व हवा के ओट में आकर टूट जाने जड़ से उखड़कर गिर जाने पर बिजुली के आधा होने से जंगल में अग्नि लग जाने के कारण भी दुःख होता है। तथा एक वृक्ष के ऊपर वृक्ष व लताओं के लड़ जाने के कारण से अत्यन्त दुःख होता है। कोल्हू में पेरने व चरखी में पेरने तथा जड़ों व डाली पत्तों फूलों व छाल को तोड़कर निकाल कर पीसने के कारणों के मिलने पर अत्यन्त दुःख होता है। वनस्पति कायक जीवों को प्रति समय दुःख होता है। एक वृक्ष के ऊपर उसके आधार से लताओं के लिपट कर चढ़ जाने पर भी दुःख होता है। कुण्डादिक में वृक्षारोपड़ करने पर हल व वखर से क्षेत्र को जोतने पर जड़ में से कट जाने व जड़ के कट जाने पर अत्यन्त दुःख होता हैं और भी अनेक प्रकार के दुःख वनस्पति कायक जीवों को होते ही रहते हैं। जैसे नदी के किनारे पर खड़े हुए वृक्षों को सजड़ उखार कर बहा ले जाने से भी अत्यन्त दुःख होता है। इन स्थावरों के स्पर्श इन्द्रिय जनित दुःख है। खाद न मिलने यदि अधिक खाद मिल गया तब पानी न मिलने यदि पानी मिला और खाद नहीं मिला या अधिक मात्रा में पानी ही पानी मिलने के कारण से भी दुःख होता है।

त्रस कायक जीवों के दुःख।

छेदन वंधन पीडन क्षुत्पिपासा शीतोष्णान्न पानैः।
वधवंधन विदारणैः निरूध्याति भाररोपणैः ॥६५६॥
हस्तपादादिचर्वणैः तिरश्चां वहुविधैदृश्यते दुखं।
निर्णयतुं कोऽपिक्षमः केवली विना नत्रिलोके ॥६६०॥
परस्परविरोधैर्वा वनाकुशवतीक्ष्ण चचुना च।
खड्गत्रशूल कक्षतोमर सूलादि भेदनैश्च ॥६६१॥

त्रस पर्याय में दोइन्द्रिय जीवों को अनेक प्रकार के दुःख हैं प्रथम तो जन्म लेते समय एक जीव को दूसरे जीव पकड़ खींचकर चल देता है इससे पानी की वर्षा होने पर पानी के साथ में बहकर मरने का दुःख है। तथा कौआ चिड़िया आदि पक्षियों के द्वारा पकड़ कर वज्र के समान कठोर नुकीली चौंच से दवाने पीसने टुकडे कर भक्षण करने पर दुःख होता है। तथा अन्य जीवों के द्वारा पकड़ कर खेचने पर तथा शरीर के विदारने पर दुःख होता है। तथा शीत केपड़ने व गर्मी के अधिक पड़ने पर नीचे रेत व माटी के गरम होना और ऊपर से धूप की गर्मी होने से गात्र शुष्क होने से वेदना होती है। हाथी, ऊट, वैल, गाय आदि अनेक जानवरों के पैरों के नीचे कट जाने दब जाने रुंद जाने टुकड़े हो जाने व रगड़ जाने रूप दुःख हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के भी इसी प्रकार अनेक दुःख है डंक के मारने पैरों को तोड़कर खाने पर दुःख होता है तथा रोदने दवाने व रोकने रूप दुःख हैं। खाने को दौड़ते समय दूसरे के द्वारा पकड़ लिए जाने पर अग्नि में जल जाने पानी में वहकर मरने के कारण अत्यन्त दुःख होते हैं। वृक्षादिक से गिर कर चोट लगना प्राण घात होने पर अत्यन्त वेदना होती है—कौवा बाज गोरैया चातक आदि पक्षियों के द्वारा भक्षण करने पर व दवकर प्राण जाने पर व लब्ध पर्याप्तक होने पर जन्म मरण के अत्यन्त दुःसह दुःख तीन इन्द्रिय जीवों को प्राप्त होते हैं।

चार इन्द्रिय जीवों को पहले के समान ही दुःख होते हैं विशेष दुःख होता है कि

चार इन्द्रिय जीवों के पर होते हैं जब कभी प्रकाश देख लेते हैं तव वे प्रकाश की तरफ दौड़ लगाते हैं और दीपक की लौ (ज्योति) के ऊपर पड़ जाते हैं जिससे उनका गात्र व पंख जल जाते हैं जिससे मरण का भयंकर दुःख भोगना पड़ता है। तथा अग्नि की ज्वाला में जलकर मर जाते हैं। जब वार-वार उड़ते हैं तव उनके पर टूट जाते हैं जिससे उनको जमीन पर चलते हुए वहुत वेदना होती है। जब उड़ने लगते हैं तव चिड़िया कौआ वाजादि पक्षी पकड़कर पंख तोड़कर वज्र के समान चंचु के वीच में दवाकर शरीर के टूकडे कर खालेते हैं तव उनको अत्यन्त वेदना होतो है जब कभी उड़ते-उड़ते पानी के वहाव में वह जाते हैं तव मरने रूप दुःख हैं पक्षियों के द्वारा वार-वार चंचु की चोट मारने पर जो वेदना होती है वह मुख से नहीं कही जा सकती है इस प्रकार चार इन्द्रिय जीवों को अनेकानेक दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। वे अपने वचन के द्वारा किसी को भी कुछ कह नहीं सकते हैं। माटी के नीचे दवने पर तथा पत्थर व दीवाल की चोट लगने पर वायु के चलने पर उनके वीच में आ जाने पर व मरण होने पर दुःख होता है तथा आंधी लू चलने पर कल्प काल की हवा चलने पर यत्र तत्र हवा में उड़ते समय पंख टूट जाने से दुस्सह दुःख उत्पन्न होता है। इस प्रकार चार इन्द्रिय जीवों के दुःख होता है तथा क्षुद्र भवो में जन्म मरण का दुःख होता है।

पंचन्द्रिय त्रियंच जो असेनी हैं विना मन के कुछ कर नहीं सकते हैं हलन चलन भी करने के चेष्टा नहीं होती है वे जीव दूसरे प्राणियों के द्वारा मार दिये जाते हैं तथा जिनका गात्र स्वभाव से ही क्रम-क्रम से गलने लग जाता है तव महा वेदना को भोगते हुए मरण को प्राप्त होते हैं। अथवा दूसरों के द्वारा मारने छेदने रोंदने पेलने संघर्षण करने रूप अनेक दुःख हैं।

सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के भी असंख्यात कारणों के मिलने से निरन्तर दुःख होते ही रहते हैं। कभी शरीर में रोग की वेदना व घाव हो जाने से दिन्न रात वेदना के कारण वैठा उठा भी नहीं जाता है। दूसरे वृद्धावस्था आ जाने के कारण चारा घास न चवने के कारण क्षुधा की तीव्र वेदना होने पर दुःख होता है। एक प्राणी के शरीर को दूसरे प्राणी द्वारा छेदन करने पर तथा शरीर के खण्ड-खण्ड हो जाने पर अत्यन्त गंम्भीर दुःख होता है जो असह्य है। किसी के द्वारा रस्सी व सांकल से वंधन में डाल देने पर लाठी चावुक के मारने पर अथवा सूली के समान तीक्ष्ण नोक वाली आर को नाजुक स्थान में छेदने पर अत्यन्त दुःख होता है। तथा मरम स्थानों में मारने का दुःख है। जिन पक्षियों के चंचु वज्र के समान कठोर हैं वे पक्षी मांस के लोलुपी दीन निर्वल पक्षियों को व चूहा गिलहरी मेंढ़क मछली इत्यादिक जीवों को पकड़ कर मार कर खा जाते हैं व कठोर चोंच से उनके शरीर के अनेक टुकडेकर खा जाते हैं तथा नोच-नोच कर खाते हैं जिससे उनको अत्यन्त घोर वेदना होती है। भूख के लगने पर घास पत्ते नहीं मिलते हैं और पेट खाली होने के कारण इधर उधर देखता परन्तु दाना घास न मिलने पर क्षुधा की वेदना का दुःख होता है। पानी के न मिलने से कण्ठ सूख गया है वचन का भी उच्चारण नहीं किया जा सकता है प्राण निकलने का भी आशका उत्पन्न हो गई परन्तु थोड़ा भी पानी नहीं मिलने रूप दुःख है। जहां पर शीतल

वायु बह रही है और तुहिन भी पड़ रहा है (पाला) जहाँ पर वृक्ष लतादि पाले के पड़ने से सूख गये हैं ऐसे काल में शीत के लगने का बहुत दु:ख त्रियंच गति में होता है। जहां पर वृक्षों की छाया भी नहीं है जहां पर मीलों तक पीने को पानी का साधन नहीं है और सूर्य घाम की ऊपर से गर्मी नीचे से जमीन गरम हो गई है जिससे नीचे से शरीर दग्ध हुआ जाता है और हवा भी उष्ण चल रही है ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर जंगलों में विचरने वाले दीन हीन पशु पक्षियों को उष्णता से वेदना होती है। घास पानी आदि खुराक के न मिलने से अथवा रोक देने से दु:ख होता है। पर के द्वारा रस्सी में फँसाकर के बांध देने पर पराधीन होने के कारण से दु:ख त्रियंच गति में जीवों को होता है। अपने से बलवान जीवों के द्वारा मारने विदारने व नाक कान छेदने काटने व तीक्ष्ण दांत दाढ़ व पैर के नखों से सर्वांग को नोच-नोच कर खाने के कारण अत्यन्त वेदना त्रियंच गति में जीवों को होती हैं। शरीर की अतड़ियों को खींचकर खाने व मांस रक्त को खाने पर तीव्र वेदना होती है। वैरी विरोधी जीवों के मिलने जैसे सर्प व नेवला व मोर के मिल जाने पर सर्प को दु:ख होता है व बिल्ली और चूहा के मिलने व सिंह और हरिणों के मिलने पर मार कर खा जाते हैं मार डालते हैं जिससे उनको बहुत दु:ख होता है। निर्दयी दुष्ट मांस भोजी दुराचारी मनुष्यों के द्वारा त्रियंच गाय भैंस बकरा बकरी हरिण भैंस इत्यादि पशुओं की गर्दन पर तलवार कटारी छरी चलने पर तथा शरीर में से मांस निकालने पर अत्यन्त भयंकर दु:ख होता है। जीते जी कढाई व बटलोई आदि में हींग जीरा मिर्चादि डालकर बघार देने पर व राधने पर जो दु:ख होता है वह दु:ख दुस्सह भयंकर होता है तथा जलती हुई अग्नि में पटक देने पर सारा गात्र जिसका दग्ध हो गया है और जिसके चारों पैर बांध दिये गए हैं और मुख को भी बांध दिया गया है ऐसी अवस्था में जीव को जो दु:ख होता है उस दु:ख का कौन कथन करने में समर्थ है। कसाई खटीक भील आदि नीच जन चांडालादि मांस खाने के लंपटी गर्दन को काट डालते हैं तथा अग्नि में जीवित होम देते हैं तत्काल में अग्नि में जीवित जलते हुए प्राणियां को कितनी वेदना होती होगी यह कहा नहीं जा सकता है (तथापि) गाड़ी में वजन बहुत ज्यादा भर दिया है कि जितनी बैलों की खेंचने की ताकत नहीं है जब उनसे खींचा नहीं जाता है और जमीन पर गिर जाते हैं तो भी निर्दयी लाठी चाबुक लेकर ऊपर से मारता हुआ कटुक कठोर वचन भी बोलता जाता है और नाजुक स्थानों में आर छेदता है तब दु:खित होकर खींचने का प्रयत्न करता है। और जमीन पर गिर जाता है तब भी बैरी लाठी मारता है तथा चाबुक चलाता है आर छेदता है। जिससे सारा शरीर कांपने लगता है तथा जिह्वा भी मुख से बाहर निकल आती है। इस प्रकार अत्यन्त दु:ख होता है। गाड़ी व हल में जोत दिया है पानी की प्यास अत्यन्त जोर से लग रही है भूख लगने से सारा गात्र कुम्हिला गया है पैर आगे चलते नहीं हैं लगड़ाकर जमीन पर गिर जाता है तब बैरी सोटाओं की मार लगाता है और खड़ा करके पुन: गाड़ी में जोत देता है। फिर भी चारा पानी नहीं मिलने से घोरअत्यन्त वेदना त्रियंच गति में होती है कभी कोई पीठ पर बोझ लाद कर ऊपर से आप भी बैठ लेता है और पीठ में कोड़ा मारता जाता है ऐसा निर्दयता का व्यवहार करता है जिससे वेदना होती है। पैर पूंछ कानों के काटने व चबाने पर अत्यन्त दु:ख होता

है। (इस प्रकार) कभी आप भी निर्बल हो जाता है तब दूसरे सबल प्राणियों के द्वारा मार कर खाये जाने से बहुत दुःख होता है छेदन भेदन करने से भूख प्यास के लगने बोझा ढोने से व लादने से ठण्डी गर्मी के पड़ने के कारणों से त्रशकायक जीवों को महान दुःख संसार में भोगने पड़ते हैं। त्रिर्यञ्च गति के दुःखों का पूर्णरूप से कथन करने में कौन समर्थ है इनका कथन तो केवली भगवान ही जानते होंगे कि कितना कितने प्रकार के दुःख है ये सब दुःख एक सम्यक्त्व विना ही संसारी जीवों को प्राप्त हुए हैं।

विशेष—यह है संसार अवस्था में संसारी जीवों को दुःख का मूल कारण मिथ्यात्व और कषायें ही हैं। इन मिथ्यात्व और अनंतानुवंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ का तीव्र वा मंद उदय रहता है तब तक जीव त्रियंचगति में नाना प्रकार के दुखों का अनुभव करता है। दुःखों का अनुभव करता हुआ अपने परिणामों को संक्लिष्ट कर पुनः कर्मों का आस्रव और कर्मों का तीव्र बंध कर लेना है। इन मिथ्यात्व और कषायों के कारण ही एक जीव अनंतानन्त काल से नित्यनिगोद में चला आ रहा है। वहां से भी निकल आया तो इतरनिगोद रूपी समुद्र में गोते लगाने लग जाता है। जब कषायों का क्षयोपशम हो तब नित्यनिगोद व इतर निगोद में से तथा पंचस्थावर काय में से निकल कर विकलेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ। जब और अधिक ज्ञानावर्णादिक का क्षयोपशम हुआ तब पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ। जब दो इन्द्रिय का शरीर धारण किया तब पक्षियों को चोंच के वीच आ गया जिससे उसके शरीर को पूरा ही निगल लिया किसी के शरीर के टुकड़े कर निगल लिये। तीन इन्द्रिय हुआ तब दीमक मकोड़ा कानखजूरा विच्छू इत्यादि में उत्पन्न हुआ तब पक्षियों में तथा मेढ़क करकोटा सर्प छिपकली इत्यादि जीवों ने अपना मुख का ग्रास वना लिया। तथा चोंच से टुकड़े-टुकड़े कर खा लिये जिससे अत्यन्त दुःख प्राप्त हुआ। जव जीव चार इन्द्रिय हुआ तब अनजान होने के कारण अग्नि की शिखाओं व दीपक की ज्योति के ऊपर जा गिरा और अंग उपर के जल जाने से पंख भस्म हो जाने से तथा दूसरे जीवों के द्वारा खाये जाने से व पंख तोड़ फ़ेकने व पंखों के टूट जाने के कारणों से विकलेन्द्रिय जीवों की पर्याय में घोर दुःख प्राप्त होते हैं। पंचेन्द्रिय त्रियंचों के भी अनेक प्रकार से दुःख जाने जाते हैं व दृष्टीगोचर होते, रोग होने पर तथा छेदन भेदन मारण ताड़न अन्न पान निरोधन व रस्सी सांकर आदि से वंधन में रखने से दुःख होता है। किसी के विच्छू सर्प के काटने रूप दुःख हैं। किसी के शरीर को दूसरे मांसाहारी जीवों के द्वारा शरीर को विदारण कर रक्त मांस के खाने अवयवों के छेदने व घानी खेत व बैलगाड़ी आदि में जोतने के कारणों से वह दुःख पंचेन्द्रिय त्रियंचों को त्रियंच पर्याय में होते हैं वे दुःख केवली भगवान के विना पूर्ण रूप से कहे नहीं जा सकते। ऐसे दुःख जीव ने एक मिथ्यात्व व कषायों के ही उदय में प्राप्त किये है इनके दुःखों का कथन आगम से विशेष जानना चाहिए।६५९। ६६०।६६१।

सुतस्त्री वित्तैर्विना प्राग्दुखंप्रभवति सदानृणांच।
तेषां बहुवियोगे वा संयोगे विघ्नोगेषुवान ॥६६२॥

कर्कषाव्यभिचारिणी स्वेचारिणीस्त्री सुतोव्यसनीश्च ।।
गात्रेव्याधिरूभूतं बहुवित्तकोषं किमहि न सौख्यं ।। ६६३।।

मनुष्य गति में मनुष्यों को अनेक प्रकार के दुःख हैं। प्रथम तो पुत्र नहीं होने के कारण से दुःख हैं तथा स्त्री के न होने से दुःख व धन की प्राप्ति न होने के कारण दुःख होता है। यदि कुछ पुण्य कर्म का उदय आ जावे तव पुत्र भी हो जावे व स्त्री की व धन की प्राप्ति हो जाय परन्तु होकर नष्ट हो जाने के कारण से अत्यन्त दुःख होता है। प्रथम तो दरिद्रता के होने से दुःख होता ही था अब उस धन की इच्छाकर धन प्राप्त करने के लिए नर परदेश में जाता है और दीन वचन बोलता है। तथा बीयावान भयानक जंगल में भी निडर होकर प्रवेश करता हुआ यह नहीं विचारता है कि इस जंगल में मुझको शेर चीता वाघ भालू इत्यादि क्रूर प्राणी मारकर खा जावेंगे वह तो आगे बढ़ता ही जाता है। और गिरि कन्दरा नदी आदि में प्रवेश करता है और धन की इच्छा करता है। परदेश में जाकर बिना जाने हुए जनों की नौकरी करता है तथा उच्छिष्ट थाली आदि वर्तनों को सफाई करता है तथा वस्त्रों को धोता है उनके यहाँ पर बचे हुए भोजन को खाकर अपना जीवन निर्वाह करता है उनका अहसान मानकर धन की प्राप्ति करने में लगा रहता है वह अपने जीवन को जीवन न मानता हुआ धन की प्राप्ति करने के प्रयत्न में लगा रहता है। पापानुवन्धी पुण्य का जब कुछ उदय प्रारम्भ हुआ जिससे कुछ धन का लाभ हुआ तव उसकी रखवाली करने की चिन्ता उत्पन्न हो गई। यह एक नई प्रकार की व्याधि लग गई जिससे उस धन के रक्षण करने के लिये उसको अलमारी में रखता है कभी जमीन के अन्दर गाड़ देता है कभी वैंक में रखता है कभी अन्य अन्य स्थानों में अलमारी व पेटी में रखकर उसकी रक्षा करता है। उस धन के उपार्जन करने में भी दुःख सहा और अब जब प्राप्त हो गया तव रक्षा करने का दुःख। जब कभी राजा को पता लगा कि इसने इनकम टैक्स नहीं दिया व चुंगी टैक्स नहीं दिया राज्य कष्टम डयूटी नहीं दी है तव वह कोपकर उस धन को जबरन छीन लेता है व चोर जारों के द्वारा हरण कर लिया जाता है तव अत्यन्त दुख होता है या कोई कारण से माल दुकान व्यापार में घाटा दिखाई देता है तव अत्यन्त अधीर होकर रोता है तथा दुखी होता है। कथंचित मरण भी हो जाता है इस प्रकार धन के न होने पर दुःख होने पर दुःख और नाश होने पर भी दुःख होता है। जब अपने योग्य स्त्री नहीं थी तव दुःख था अब विवाह भी हो गया परन्तु एक पुत्र नहीं हुआ तव मनुष्य खोटे देव देवियों की पूजा करता है व पशुओं की वलि चढ़ाता है और पूड़ी पापड़ी घी गुण इत्यादि चढ़ाकर देवी की पूजा भक्ति करता है और मस्तक नवा कर दण्डवत करता है। भैरव भूमिया कालो शीतला केला देवी आदि अनेक प्रकार के कुदेवों की पूजा करता है परन्तु पुत्र एक नहीं होता है तव वे दम्पत्ति अत्यन्त दुखी होते हैं। कदाचित पुण्य संयोग से पुत्र हो गया और वाल अवस्था में मरण को प्राप्त हुआ तव माता पिता परिवार के सब जनों को दुःख होता है क्वचित किसी के पुत्र हो गया और यौवन को प्राप्त हुआ तव व्यभिचारी व्यसनी बन गया और दुराचारी जनों की संगति में बैठने लग गया और धन को भी खर्च करने लग गया तव माता पिता को उस पुत्र के कारण से ही अत्यन्त दुःख हुआ

कभी जुआ खेलता है उसमें धन को वरवाद करता है कभी मद्यपान करता है मांस खाता है कभी चोरी करता है। जब कभी चोरी करते हुए पकड़ लिया जाता है तब राजकर्मचारी उसके घर पर आकर माता-पिता व परिवार के लोगों को घर की सब वस्तुओं को खोज करते हैं तथा बहाना बनाकर घर के आभूषणों को ले जाते हैं जिससे माता-पिता को अत्यन्त दुःख होता है। तथा पुत्र आज्ञा नहीं मानता है तब माता पिता को दुःख होता है। पहले तो विवाह नहीं हुआ था तब यह दुःख था कि मेरा विवाह नहीं हुआ किससे कहूं कि जिससे मेरी शादी हो जावे। जब कभी शादी हो गई तब स्त्री कर्कसा मिलने से दुःख और व्यभिचारिणी मिल गई तब अत्यन्त दुःख अज्ञान मानने वाली स्वाचरिणी मिल जाने के कारण से पति को और भी अधिक दुःख हुआ। वह घर में आ ही कलह होने लग गई व सास स्वसुर देवर ज्येष्ठ आदि की आज्ञा का विरोध करने लग गई, तथा पति की आज्ञा का उलंघन करने वाली मिलने से अत्यन्त दुःख हुआ। धर्म की मर्यादा भंग कर शील रहित हो अन्य पुरुषों के साथ व्यभिचार करने में तत्पर हुई जिससे अत्यन्त दुःख होता है। कि इसने हमारे कुल व धर्म को डुबा दिया जिससे दुःख होता है। शरीर में मूल, व्याधि भगन्दर, खिसर, राजक्षमा, कुष्ट, जलोदर भस्म व्याधि आदि भयंकर रोग हो जाने के कारण से अत्यन्त दुःख होता है। धन के खजाने भरे हुए परन्तु शरीर में रोग हो जाने के कारण भोगने में नहीं आता है। भोग और उपभोग में की सामग्री घर में भरी है सुन्दर नव यौवन स्त्री भी है परन्तु रोगी होने के कारण उसके साथ संभाषण करने का भी भाव नहीं होता है। इस प्रकार रोग के कारण अत्यन्त मनुष्य पर्याय में प्राणियों को दुःख है। वैद्य, डाक्टर, हकीमों को आज्ञानुसार कड़वी दवाई का सेवन करता है, और दाल के धोवन का पानी मात्र पीता है स्त्री के साथ विषय भोग नहीं कर सकता है इस प्रकार दुःख है। व स्त्री के मर जाने व बाल अवस्था में माता-पिता के मर जाने पर अत्यन्त दुःख होता है। दूसरों को उच्छिष्ट भोजन करना व दीनता दिखाना अन्य की सेवा करने रूप अनेक मनुष्य पर्याय में जीवों को दुःख होते हैं।

यदि किसी के पुण्य का उदय प्राप्त हो तब स्त्री पुत्र माता-पिता निरोग शरीर व धन धान्य यथा योग्य पुत्र आज्ञाकारी व स्त्री आज्ञाकारी शीलवान धर्म परायण विवेकवान साध्वी मिलने पर भी मनुष्य को सुख नहीं। भोग और उपभोग की सर्व वस्तुयें उपलब्ध होते हुए भी इच्छायें दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं जिससे उसको दुःख ही बढ़ता जाता है। जिसके पास खाने के लिए एक मुट्ठी चावल के दाने नहीं वह पैसा मांगता है कि मुझे पैसा मिल जावे जिसके पास एक पैसा है वह दस को इच्छा करता है। जिसके पास में दस पैसा है वह सौ पैसा की इच्छा करता है जिसके पास एक रुपया है वह दश की दस वाला है वह सौ रुपये की, जिसके पास सौ है वह हजार की इच्छा करता है। जिसके पास में हजार रुपया है वह दस हजार की, जिसके पास दस हजार है वह लाख की. जिसके पास में लाख हैं वह दश लाख की इच्छा करता है। इस प्रकार इच्छाओं का अन्त नहीं आता है जब धन धान्य स्त्री पुत्रादि सब योग्य मिले तब भी यह चिन्तित ही रहता है कि अभी मैं राजा नहीं हुआ हूं, इस प्रकार तृष्णा बढ़ जाने के कारण दुःखी होता है जब राजा भी हो गया तब

दूसरों की नव यौवन सुन्दर गात्र वाली स्त्रियों को देख उन पर कामासक्त हो व्यभिचार करने के सन्मुख होता है इस प्रकार मनुष्य गति में दुःख है।

वालावस्थायां च जननी जनकाभ्यां वियोगात्तदा ।
भरति च दुःखादुर्द्धरं दीनतादृश् णाञ्चावृत्तिः ॥६६४
आक्रन्दनशोकमग्नः भोसुत मां मुञ्चत्वं कुतोगतः ॥
तव जननी जनकौ मुखं दर्शदार्थं लोलुपौ ॥६६५

जब बाल वय में अज्ञान अवस्था में माता पिता के मर जाने के कारण से वड़े दुःख के साथ भेट करता है व दीनता पूर्वक से भीख माँगकर का खाता है। व झूठा भोजन खाता है भोजन न मिलने से भी दुःखी होता है। कभी पुत्र का वियोग या मरण हो जाता है तब माता पिता बालक के वियोग में अत्यन्त व्याकुल होकर रूदन करते हैं जमीन पर मूर्छित होकर पड़ जाते हैं। जब मूर्छा जाग उठती है तब पुनः हाय वेटा तुम अपनो माता को अपना खेल दिखाओ तुम्हारी माता तुम्हारे वियोग में रो रही है। तुम हम सरोखे माता पिता को छोड़ कर कहां चले गये, कहां जा छिपे हो, अपनी माता को जरा मुख तो दिखाओ माता तेरे दर्शन करने को लोलुप है। आप के माता पिता आपके मुख की तरफ देख रहे है कुछ तो अपनी तोतली वाणी का शब्द सुनाओ, इस प्रकार सुतवियोग का दुःख माता पिता परिवार के लोगों को होता है।

भावार्थ—आचार्य कहते हैं कि ससार अवस्था में सव प्रकार सुख किसी प्राणी को निरतर नहीं होता हुआ देखा जाता है । जब कभी जन्म देने वाली माता का मरण रूप वियोग हो जाता है तब पराश्रित होकर जैसा उच्छिष्ठ व अनउच्छिष्ट खाकर अपना पेट का भरण पोषण करता है। तथा यत्र तत्र पड़ी हुई रोटियों को खाकर बड़े दुःख के साथ अपने जीवन को व्यतीत करता है। माता का वियोग कभी माता पिता का वियोग हो जाने से पराधीन हो जाने से दुःख भोगता है और दीनता दिखाता हुआ इधर उधर भ्रमण कर दीनतामय वचन बोलता हुआ याचना करता है। याचना कर अपनी आजीविका चलाता है। जब कभी पुत्र का मरण रूप वियोग हो जाता है तव उसके वियोग में माता पिता अत्यन्त अधीर होकर रूदन करते हैं, और कहते हैं, हाय वेटा तुम हमको छोड़ कर चल बसे तुम्हारी माता तुमको वार वार याद करती है उनको जरा आंख उठा कर देखो और अपनी माता के सामने कूदो खेलो इस प्रकार पुत्र वियोग का मनुष्य गति में दुःख है।

कस्यापिपतिर्वियोगात् वनितयाः वियोगातक्ष वित्तये ॥
मानापमाने कदापि जन्म मृत्युयोः सदा दुःखं ॥६६६॥

मनुष्यों में अनेक प्रकार के दुःख किसी को वैरी का संयोग होने रूप दुःख जिसने दिन आकुलता में ही व्यतीत होते हैं। किसी के पुत्र और पिता में परस्पर वैर विरोध होने के कारण एक दूसरे को देख नहीं सकते हैं तथा एक दूसरे को मारने के लिये सन्मुख तुले हुए होने से दुःख है। किसी के भाई, भाई के साथ लड़ता है धन वैभव को लेने के लिये व जबरन छुड़ाने को प्रयत्न शील है व कहीं वाप लोभ कषाय के कारण वेटा को मार डालता है जिसने

अत्यन्त दुःख होता है। वही कहीं चोर डाकुओं के भय के कारण इधर उधर छिपकर निवास करता है। जिससे अत्यन्त दुःख होता है। शेर चीता आदि जीवों के द्वारा पकड़ कर खाने अंग उपांगो को चवाने व खींच खींच कर खाने से मनुष्य गति में मनुष्यो को दुःख होता है। कभी राजा के द्वारा सूली को सजा देने रूप विशेष दुःख होता है। कि उस समय अन्न पान व भोग और उपभोग की वस्तुये भी उसको अच्छी नहीं लगती हैं। किसी दुष्ट के द्वारा वन्दूक की गोली मारने पर जो दुःख होता है किसी को तलवार से वैरी के द्वारा शरीर के टुकड़े टुकड़े करने पर वेदना होती है उस वेदना का उस काल में होने वालादुख कोन कहने में समर्थ होगा। वृक्ष पर से गिर जाने पर हाथ पैर भंग होने व टूट जाने के कारण से अत्यन्त वेदना होती हैं। जिससे दिन रात रोदन करता है। कभी नदी या तालाव में किसी वैरी के द्वारा डाल देने पर या अकस्मात में पानी का वहाव आने से वहने पर अत्यन्त दुःख का अनुभव होता है। कभी किसी के द्वारा अपमान होने पर भी दुःख पूर्वक नदी या तालाव में गिर कर पूर्वक मरण के सन्मुख होने से अत्यन्त दुःख मनुष्य भव में होता है। कहीं पर मान भंग होने के कारण हाय वहां पर इतनी जनता के मध्य मेरा अपमान किया गया जिससे दुःखी होता है। तथा कभी अपने योग्य इष्ट वस्तु के प्राप्त न होने से दुःखी होता है। कभी अशुभ कर्म के उदय में आ जाने पर सर्वांग में वेदना होती है। जिससे दिन रात चैन नहीं पड़ता है और कोई धैर्य भी वंधाने वाला नहीं है सुन्दर भोजन भी रूचता नहीं है। और हाय हाय चिल्लाते हुए समय व्यतीत करता है। इस प्रकार मनुष्य पर्याय में जीवों को अनेक दुःख तो वाहरी चिन्हों से देखने व जानने में आ जाते है। परन्तु दूसरे के वाहर से जानने व देखने में नहीं आते है उनके भीतर ही भीतर शोक में मगन रहता। कहीं मकान के गिर जाने के कारण दवने व चोट के लगने व उलकापात होने के कारण कुछ शरीर का भाग टूट गया है व जल गया है जिससे शरीर में वेदना हो रही है, व कुछ शरीर का हिस्सा दागी होगया है। जिससे अत्यन्त वेदना रूप दुःख होता रहता है। और भी अनेक प्रकार दुःख मनुष्य गति में जीवों के होते रहते हैं। जिनसे मनुष्य व्याकुल रहते हैं इन का मुख्य कारण वास्तविक एक मिथ्यात्व कर्म ही है तथा मिथ्यात्व दर्शन मोह के साथ वांधी गई वेदनीय अशुभ कर्म का ही उदय हैं इस लिये भव्य जीवो यदि दुःखों से मुक्ति चाहते हो तो निश्चय कर सम्यक्त्व को प्राप्त करो।

जिनका हाल ही में विवाह सम्वंध हुआ है तथा पति का मुख मात्र ही देखा है पति का मरण रूप वियोग जव हो जाता है तव सव परिवार वाले रोते हैं। व जिसका वियोग सम्वंध हुआ है उसको पति वियोग का महा दुःख होता है। किसी की सुन्दर युवती के साथ विवाह हुआ है और प्रेम का फांसा भी फंसा हुआ है उसके मरण रूप वियोग होने से पुरुष को भी अत्यन्त दुःख होता है कि हाय मेरी जैसी स्त्री दूसरी कोई नहीं थी अव मैं क्या करूँ इस प्रकार दुःख होता है। तथा स्त्री के वियोग में अन्न पान सव त्याग करता है तथा भोगोप भोग की सुन्दर वस्तुयें भी उसको अच्छी नहीं लगती हैं वह तो उसके वियोग होने पर अपने जीवन को ही शून्य मानता है। और अपने को नष्ट करने का प्रयास करता है इस प्रकार इष्ट

वियोग रूप मनुष्य गति में दुख हैं। जो धन पूर्व में वड़े ही कष्ट से कमाया था जव कमाया हुआ धन को चोर व राजा ले लेता है तब अत्यन्त दुःख होता है। और भी सबसे वड़े दुःख तो जन्म और मृत्यु का है तथा वृद्धावस्था का है उस प्रकार मनुष्य गति में मनुष्यों को नाना प्रकार के दुःख हमेशा से ही होते चले आ रहे हैं उन दुःखों का अन्त नहीं है इस प्रकार चारों गतियों में क्रम से, मिथ्यात्व, दर्शन चारित्र मोह के कारण जीव प्राप्त करते हैं।

दुःखान मिथ्यात्वं हेतुश्चतुर्गतिषु खलु जीवेभ्यः।
नित्यं रात्यविद्याञ्च च विषयाशक्त चित्तानामेवम् ।।६६७।।

चारों गतियों में चारों गति वाले जीवों को दुःखों का मूल कारण एक दर्शन मोह की मिथ्यात्व प्रकृति ही है। उस मिथ्यात्व के कारण ही संसारी प्राणी दुःखी होते रहते हैं। जिसके कारण ही जीवात्मा आत्म ज्ञान को भी अज्ञानमय बना देता है। जो आत्मा दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगमय में शुद्ध है वही आत्मा इस मोह के कारण मिथ्या ज्ञान हो जाता है, जिस प्रकार पानी को जैसी संगत मिल जाती है वैसा ही पानी हो जाता है। जब कभी ईख में जाता है तब मीठा हो जाता है जब चिरायता में जाता है तब वही कड़ुवा हो जाता है जब वही पानी शीप के मुख में जमा है तब मोती की उत्पत्ती हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान भी मिथ्यात्व की संगत के कारण ही मिथ्याज्ञान मिथ्यादर्शन कहा जाता है। जिनका मन पंचेन्द्रियों के विषयों में आसक्त है जिससे पंचेन्द्रियों के विषय सुखों की इच्छायें वढ़ती जाती है जिसके कारण ही जीवों को दुःखों की प्राप्ति होती है। जिसका कारण अनादि अज्ञान और मिथ्यात्व ही है जिसके कारण जीवों को दुःख भोगने पड़ते है।

विषयाशक्त चित्तानाम् को गुणो न विनश्यति।
नसम्यक्त्वं न वैदुष्यं न च पूजा न दानादि ।।६६८।।

जिसका चित्त पंचेन्द्रियों के विषयों में आशक्त हो रहा है उनके सर्व गुण नष्ट हो जाते है देवशास्त्र गुरु के ऊपर में श्रद्धान नहीं रह जाती है तब सम्यक्त्व गुण का भी नाश हो जाता है। तथा मिथ्यात्व रूपी दुर्गुणों की वृद्धि होने लग जाती है। मति भी भ्रष्ट हो जाती चली जाती है, विचार करने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है, और आकुलतायें बढ़ती जाती हैं। देव पूजा गुरुपास्ती संयम धारण करने के भाव भी नहीं होते हैं और असयत भाव (बढ़ते जाते हैं) वृद्धि को प्राप्त होते हैं। देव पूजा शास्त्र का स्वाध्याय मन्दिर में जाकर देव दर्शन करने के भाव भी नहीं होते हैं। तव युवतियों के मर्म स्थान व मुख की तरफ देखने की दृष्टि लगाता है स्पर्श करने के सन्मुख होता है तथा स्पर्श कर अपने को आनन्दित मानता है। विद्वान होकर भी वह मूर्ख के समान आचरण करता है वह अपनी कीर्ति को नष्ट कर डालता है। और अपयश को अपने साथ ले जाने वाला होता है। अपनी मान्यता को नष्ट कर देता है, अथवा मान्यता नष्ट हो जाती है यश कीर्ति आदि सब नष्ट हो जाते हैं। वह दानादि शुभ भाव रूप गुण आदि उनको भी नष्ट कर देता है ऐसा मोही मिथ्यादृष्टि क्षणिक विषयों में आसक्त होकर पाप उपार्जनकर बंध करता है। हे भव्य इन पंचेन्द्रियों के विषयों को मन वचन काय से त्याग कर अपनी आत्मिक गुणों के प्राप्त करने का प्रयत्न कर जिससे अविनाशी सुख की सामग्री प्राप्त होगी ।।६६८।।

संयमो न शीलानि न तपो न क्रिया नोत्तय क्षमा ॥
कामार्मामुंचन्ति सम्यग्ज्ञानचारित्राणि ॥ ६६९ ॥

कामासक्त जीवों के संयम गुण नहीं रहता है न उनके सात प्रकार के शील ही रह जाते हैं। संसारी जीवों को संसार के दुःखों से निकालने वाला सम्यक्त्व भी नहीं रह जाता है। और क्रिया भी नहीं पाली जा सकती न उत्तमक्षमादि दश धर्म ही रह जाते हैं और की बात ही क्या कहें उसके अपने हित रूप विवेक व ज्ञान भी नष्ट हो जाता है तथा चारित्र को भी धारण कर वह विपय सक्त मोही जीव छोड़ देता है।

दृष्टांत—एक समय की वात थी कि एक जंगल में विचित्र गति मुनि थे उनके पास में श्रवण नामक मुनिराज थे वे मुनि चर्या के निमित्त ग्राम की ओर जा रहे थे कि एक वेश्या मार्ग रोक कर खड़ी हो गई और वोली श्री मुनि प्रवर आप हमको धर्म का उपदेश दीजिए? यह प्रश्न सुनकर मुनिराज ने मौन खोला और श्रावक धर्म का उपदेश दिया जिससे उस वेश्या ने पापों का त्याग कर श्रावक के व्रत लिए और अपने घर को प्रसन्न होती हुई चली गई। श्रवण मुनिराज के साथ में जो वार्तालाप हुआ था वह सव विचित्र गति को उन्होंने सुनाया। उस वेश्या का जैसा रूप रंग था वह सव ही कह सुनाया तव विचित्र गति मुनिराज उस वेश्या के घर पर जा पहुँचे और वेश्या से वार्तालाप किया तव उस वेश्या ने उन विचित्र गति मुनिराज को डाँट फटकार कर वापस भेज दिया, तो भी उनका मन उस वेश्या में रत रहा और उस वेश्या को प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गये। वह राजा की सेवा चाकरी करने लगा तव राजा प्रसन्न हो गया और पूछने लगा कि आप क्या चाहते हो सो कहो? तव विचित्र गति वोला कि राजन मुझे वह राज वेश्या चाहिए। यह श्रवण कर राजा ने राज वेश्या को विचित्र गति के सुपुर्द कर दिया। विचित्र गति राजवेश्या के साथ रमण करने लग गए। अन्त समय में मरण करके हाथी हुए इस कथा का सार यह है कि पंचेन्द्रियों के विषय में आसक्त जीव अपने धन वैभव मान्यता धर्म संयम तप चारित्र इत्यादि गुणों की परवाह नहीं करता है जिससे मरण कर विचित्र गति के समान दुर्गति का पात्र वन जाता है। वह अपने पद का भी ध्यान नहीं रखता है त्रिलोक पूज्य ऐसे जिन लिंग व चारित्र जो तीनों लोक में जीवों के द्वारा पूजने योग्य है उस चारित्र का नाश कर हाथी हुआ। मिथ्यादृष्टी अज्ञानी हिता हित के विवेक से सून्य हो कर आप अपने गुणों का घात करता है ॥६६९॥

मुञ्चन्त्ये व मिष्ठान्नमवहरंति वरहारिव खलु विष्ठाम् ॥
विषयासक्तानां च सम्यक्त्वादि नरुच्यते ॥६७०॥

जिसका मन पंचेन्द्रियों के विषय भोगों में आसक्त है उन जीवो को सद्गुण अच्छे नहीं लगते हैं सद्गुणों से घृणा करते हैं। उसको सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन और चारित्र तपवीर्यादि इन गुणों में रुचि नहीं लगती हैं अथवा ये गुण रुचिकर नहीं लगते हैं। भिष्टा के खाने वालेसूकर के सामने यदि सुगंधित जिसमें घी केशर लवंगादि मशाले डाले गए हैं और घृत दूध पिस्ता छुहारे काजू इत्यादि डाले गये हैं ऐसी खीर उनको अच्छी नहीं लगती है दे तो उसकी सुगंध को सूँघकर छोड़कर चले जाते हैं और भिष्टा को खाने में ही अनान्द मानते हैं। तथा भिष्टा

खाकर दु:र्गन्धमय व गंदले पानी को पीने में ही आनन्द मानते हैं। उसी प्रकार विषय सुखों में रत रहने वाले अविनाशी सुख सम्पत्ति के देने वाले सम्यक्त्वादि गुणों का घात कर संसार सागर में गोता खाते हैं ॥६७८॥

विषयेषुयदाशक्तिः क्रोध मान माया लोभादीनाम् ॥
वर्धन्तेऽसंयमं वा तदा न स्थितिः सम्यक्त्वादीनाम् ॥६७९॥

जिस समय प्राणी पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियों के विषय वासनाओं में तथा भोग और उपभोगों में रत रहते हैं वैसे ही भोगों की इच्छायें बढ़ने लग जाती हैं। उन विषयों की पूर्ति करने के निमित्त अनेक साधन जुटाते हैं। आज इस विकट पंचम काल में मनुष्यों के भोगों की अभिलाषायें नित प्रति बढ़ती जा रही हैं। तथा पंचेन्द्रियों के योग्य अनेक नये-नये आविष्कार तैयार होते जा रहे हैं उन आविष्कारों को प्राप्त करने का सदा चिन्तवन किया करता है। जैसे कोई मनुष्य धूप में चलकर एक ग्राम से दूसरे ग्राम में पहुंचा मार्ग में धूप लगने से उसको बड़ जोर से प्यास लग रही थी कण्ठ सूख गया था और धूप से अत्यन्त घबड़ाया हुआ था और एक गृहस्थ के घर पानी पीने को गया और बोला माँ जी मुझे प्यास जोर की लगी हुई है पानी पिला दो ? जब वह भीतर पानी लेने जाती है उस बंगला में टेलीवीजन कूलर रेडियो पंखा लगे हुए थे। नाना प्रकार के चित्र भी दीवालों पर लिखे हुए थे। तब वह बोला कि यह कूलर चालू करो गर्मी बहुत लग रही, है कूलर चालू किया गया तब बोला कि इस रेडियो की स्वीच तो जरा खोलो इसमें क्या न्यूज आ रही है रेडियो खोल दिया न्यूज सुनने लगा। इतने में पानी लेकर वृद्ध माता आ जाती है तब बोला कि इसमें शर्बत और होता तो अच्छा होता। यह सुनकर वृद्ध माता ने शर्बत लाकर दे दिया तब उसने कहा कि इसमें क्रीम का रंग और होता तो अच्छा होता ? तब वृद्धा ने क्रीम का रंग भी लाकर पानी के लोटा में डाल दिया। अब कहने लगा कि यदि इसमें इत्र और होता तो मजा आ जाता, यह सुनकर वृद्धा माता ने केवड़े की चार बूंदें डाल दीं तब उसने पानी को पीकर प्यास को बुझाया। विचार कीजिए कि कहां तो प्यास से घबराकर पानी पीने, गया था कहां वह अपने कानों को प्रसन्न करने को रेडियो की न्यूज सुनता है शरीर स्पर्शन इन्द्रिय का स्वाद लेने को कूलर का उपभोग करता है, रसना के विषय को पुष्ट करने के लिए शर्बत की इच्छा तो है। घृणा इन्द्रिय को प्रसन्न करने के लिए इत्र का प्रयोग किया। नेत्रेन्द्रिय के विषय को पुष्ट करने के लिए क्रीम का रंग डालवाया इस प्रकार एक प्यास के बुझाते समय में पांचों इन्द्रियों का भोग भोगता है। जितना पंचेन्द्रियों के विषयों में आशक्ति वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, उतना ही क्रोध मान माया लोभ कषायें भी बढ़ती जाती हैं जिससे अपने परिणामों में संक्लिष्टता बढ़ती जाती है। जैसे कषायें बढ़ती जाती हैं वैसा ही असंयम भी बढ़ता जाता है। तथा परस्पर में विरोध भी बढ़ने लग जाता है जिससे भाई-भाई को मार डालता है व बहिष्कार करता है घर से भी निकाल देता है। पिता और पुत्र के साथ में झगड़ा होने लग जाता है पिता पुत्र को नहीं चाहता है पुत्र पिता को नहीं चाहता है। सास बहू को नहीं चाहती, बहू सास को देखना ही नहीं चाहती, इस बर विरोध का मूल कारण एक मात्र पंचेन्द्रियों के विषय

हैं। इस पंचम काल में पंचेन्द्रिय विषयों के पोषण करने वाले अनेक नये-नये साधन बन गये हैं व आविष्कार होते चले जा रहे हैं गाना सुनने के लिए ट्रांजिस्टर टेलीवीजन जिसमें रूप रंग हाव भाव सब ही दिखाये जाते हैं। गाना सुनने व नाच रंग देखने के लिए सिनेमा घर चल चित्र घर जगह-जगह नये-नये निर्माण होते जा रहे हैं तथा टेलीवीजन भी चल चित्र बताता है कि जिसमें नृत्य और गाने दिखाये जाते हैं। ठण्डी न लगने के लिए अनेक प्रकार के हीटर बनने लग गये हैं। गर्मी न लग जाये इसलिए एयरकण्डीशन की मशीन है। व कूलर सदुपयोग करने को लगे हुए हैं। खाने के लिए अनेक प्रकार के अभक्ष्य वस्तुओं से युक्त ढाबा व लाज होटल इत्यादि खुले हुए हैं जिनमें जाकर मनुष्य पापाचार से न भय-भीत होता हुआ रसना इन्द्रिय को पोषण करने के लिए होटलों में जाकर मांसाहार कर रसना को तृप्त करता है। इस प्रकार पंचेन्द्रियों के विषयों का प्रचार बहुत बढ़ रहा है उतने ही हमारे परिणामों में क्रूरता बढती जाती है और क्रोधादि कषायें भी बढती जा रही हैं जिससे हम दूसरों के जीवन और जीविका को तुच्छ समझ कर प्राण और जीविका को नष्ट करने को सन्मुख होते रहते हैं। कषायों की वृद्धि होने पर वैर विरोध अधिक बढ़ता जाता है जैसा वैर विरोध बढ़ता जाता है वैसा ही असंयम भाव भी बढ़ता जाता है। इसलिए इस पंचम दुःखम काल में सम्यक्त्व गुण लोप सा होता जा रहा और मिथ्यात्व और असंयम का प्रचार परिपूर्ण रूप से होता चला जा रहा है। मिथ्यात्व असंयम रूप भावनायें बढ़ती चली जा रही हैं। इन पंचेन्द्रियों के विषयों की आशक्ति के ही कारण जीवों को अनेक प्रकार की आकुलतायें विशेष रूपसे बढती जा रही हैं विषयों की सब वस्तु यथायोग्य मिलने पर भी संतोष की प्राप्ति नहीं होती है। असंतोष ही बढता जाता है ॥६७१॥

इन्द्रियाणां विषया रोचन्ते सुलभायिन भव्यानाम् ॥
बोधन्ति सुखाभाष आस्रवबंधहेतुर्नित्यम् ॥७७२॥

जो निकट भव्य हैं सम्यग्दृष्टि हैं उनको अनेक प्रकार के पंचेन्द्रियों के विषय पोषक भोग और उपभोगों की अनेक प्रकार की वस्तुयें सुलभता से प्राप्त होते हुए भी उनको तरफ दृष्टि डालकर नहीं देखता है और इच्छा भी नहीं करते हैं। वे यह जानते हैं कि ये पंचेन्द्रियों के विषय सेवन करने पर जो कुछ सुख होता है वह सुख नहीं है अपितु सुखाभाष है। दुःख रूप ही है जिस प्रकार सूर्य के अस्त होते समय पर आकाश में होने वाली लाली के प्रकाश के पीछे तुरन्त रात्रि का अन्धकार अपना अधिकार जमा लेता है और प्रकाश नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय विषय के सेवन से होने वाले सुख की स्थिति है। सेवन करते समय तो विषय सुख अच्छे लगते हैं परन्तु वे पीछे महा पाप बंध का कारण होते हैं। जिनका फल बहुत दिन तक दुःख भोगना हमको ही पड़ेगा इस प्रकार विचार कर उनकी तरफ दृष्टि नहीं डालते हैं।

सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा जीव पंचेन्द्रियों के विषयों को सुलभता पूर्वक प्राप्त होने पर भी नहीं भोगता है और भोगते हुए भी यही विचार करता है कि ये भोग और उपभोग जो मिल रहे हैं वे सब कर्मों के उदय के कारण से ही प्राप्त हुऐ और मुझे भोगने पड़ रहे हैं। इस

तरह भोगता हुआ भी इनसे विरक्त रहता है उनमें आशक्त नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि वाह्य इन्द्रिय विषयों को सुलभता से प्राप्त होने पर प्रीति नहीं कर अपने शुद्धात्मा में अन्तरंग रुचि कर श्रद्धान रूप से परिणत होता है यह जानता है कि ये पंचेन्द्रिय विषय तो आस्रव बंध रूप होते हुए संसार वृद्धि के कारण हैं ॥६८०॥

सम्यक्त्वे भवति यथा सुलभोऽपि विषयान्न रोचन्ते।
इच्छानां निरोधने जाग्रति भव्यात्मगोचरे ॥६७३॥

जब जिस काल में भव्य जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तब पंचेन्द्रियों के विषयों की सब योग्य वस्तुयें मिल जाने पर भी उनमें मगन नहीं होते हैं वे उनको विरक्त भावों से ही देखते हैं। उनसे बहुत दूर रहते हैं तथा पंचेन्द्रियों के विषयों का भी त्याग करते हैं। और अपने स्वभाव की ओर दृष्टि होती है। तब पंचेन्द्रियों के विषयों को विभाव जान कर छोड़ते हैं वे उनको अच्छे नहीं लगते हैं तब आत्मा में अधिक रुचि पूर्वकश्रद्धान बढ़ता है।

जब तक जीव के दर्शन मोह का सत्व व उदय रहता है तब तक ही पंचेन्द्रिय विषय सुखों को भोगने में अशक्त रहता है। भोग भोगने की इच्छा करते हैं। यदि भाग्य वस मिल भी जाते हैं तो भी पूरण जैसे चाहिए वैसे नहीं मिलते तब उनकी प्राप्ति करने को सन्मुख होते हैं अथवा प्राप्ति करने का उपाय विचारा करते हैं इस प्रकार अज्ञानी मिथ्यात्व युक्त प्राणी तीव्र कर्मों का आस्रव बंध कर लेता है। कभी राज्य वैभव स्त्री पुत्र इत्यादि की प्राप्ति न होने पर भी विषयाशक्त होने के कारण न भोगता हुआ भी भोग करता है परन्तु विषय वासनाओं से रहित सम्यग्दृष्टि जीव भोग भोगते हुए भी अनासक्ता के कारण कर्म बंधक नहीं होता है वह तो अपने आत्मा के स्वरूप का वार-वार विचार करने लग जाता है वह तो पर से रहित आत्म स्वभाव में जाग्रत होता है सब इच्छाओं का त्याग कर निराकुल होता है ऐसा सम्यग्दृष्टी का स्वभाव है ॥६७३॥

अब आगे आस्रवों के भेदों को कहते हैं।

आस्रवस्य चतुर्भेदः मिथ्यात्वासंयम कषाय योगाः।
पंचद्वादश पंचविंशति पंचदश सन्त्येवम् ॥६७४॥

आस्रव के चार कारण हैं इनसे ही आस्रव होता है। आस्रव के मूल में चार भेद हैं मिथ्यात्व असंयत कषाय और योग। इनमें से मिथ्यात्व के पांच भेद हैं संशय विपरीत एकांत विनय और अज्ञान असंयम के वारह भेद हैं स्पर्श इन्द्रिय संयम नहीं रसना इन्द्रिय संयम नहीं, घ्राण इन्द्रिय संयम नहीं, चक्षु इन्द्रिय संयम नहीं, कर्ण इन्द्रिय संयम नहीं, अनिन्द्रिय (मन) संयम नहीं। पृथ्वी काय, जलकाय, अग्नि काय, वायु काय व वनस्पति काय और त्रस काय, असंयम है इस प्रकार असंयम वारह प्रकार का है। कषायें सोलह हैं नव नो कषाय जिनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुरुष नपुंसक वेद ये कषायों के भेद हैं। योग पन्द्रह होते हैं मनोयोग के चार सत्य मनोयोग असत्य उभय, अनुभय मनोयोग। तथा वचन योग के भी चार भेद होते हैं सत्य वचन योग असत्य

वचन योग उभय वचन योग अनुभय वचन योग काय योग के सात भेद हैं औदारिक काय योग औदारिक मिश्र काययोग वैक्रियककाय योगवैक्रियक मिश्र काय योग आहारक काययोग आहारक मिश्र काय योग कार्माण काय योग इन आस्रवों का विशेष कथन आस्रव तत्व के स्थान में कर आये हैं इसलिए यहां भेद मात्र कहे गये हैं ॥६८३॥

जीवसमासानि सन्ति चतुर्दशत्रियक्षु त्रिग्गगतौ च।
देवनरक मनुज गतिषु देव नारक नृणां द्वौ द्वौ ॥६७७॥

जीव समास सामान्य से चौदह होते हैं त्रियंच जीवों के त्रियंचगति में चौदह जीव समास होते हैं वे इस प्रकार हैं एकेन्द्रिय वादर और सूक्ष्म होते हैं वे पर्याप्तक और अपर्याप्तक होने से चार जीव समासहोते हैं विकलेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय सेनी व असेनी पर्याप्तक अपर्याप्तक होते हैं तब दश जीव समास होते है। देव नारकी और मनुष्य गतियों में देक नारकी और मनुष्यों के दो ही समास होते है क्योंकि इनमें सेनी पंचेन्द्रिय ही होते हैं वे पर्याप्तक और अपर्याप्तक दो प्रकार के ही होते हैं इसलिए उनके दो दो जीव समास होते हैं ॥६७७॥

मनोवाग्योगसप्तेषु एकोऽनभयवाग्योगे पंचैव।
औदारिकमिश्रयोश्च सप्तैवाष्टौकेवलिनः ॥६७८॥

सत्यमनोयोग असत्यमनोयोग उभयमनोयोग अनुभय मनोयोग सत्यवचन योग असत्य वचन योग तथा उभय वचन योग इस योग वाले जीवों के सात जीव समास होते हैं। क्योंकि ये सब योग एक पर्याप्त अवस्था में ही होते हैं इसलिए प्रत्येक में एक जीव समास होता है। सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के ही ये सात योग होते हैं इसलिए इन सात योगों में एक पर्याप्तक जीव समास होता है। प्रत्येक योग के मिलकर सात जीव समास होते हैं। अनुभव वचन में पांच जीव समास होते हैं दो इन्द्रियादि पर्याप्तक 'असेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के होते हैं इसलिए प्रत्येक का एक-एक ग्रहण करने पर पांच जीव समास होते हैं। औदारिक काय योग और औदारिक मिश्र काय योग वाले जीवों के सात-सात योग होते हैं। ऐकेन्द्रिय वादर और सूक्ष्म दो तीन चार पाँच इन्द्रिय सेनी और असेनी पर्याप्तक के सात योग होते हैं उसी प्रकार औदारिक मिश्र काय योग में अपर्याप्तक सूक्ष्म और वादर दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय सेनी असेनि पंच इन्द्रिय मिलकर कुल सात जीव समास होते हैं।' एक सेनी अपर्याप्तक अवस्था में समुद्घात काल में होता है ॥६७८॥

वैक्रियक मिश्रयोश्च आहारक मिश्रयो एक समनस्कः।
कार्माणयोगे तथा औदारिक मिश्र वत्समासं ॥६७९॥
स्त्री पुंस वेदयोश्चतुः नपुंसक वेद कषाय युक्तेषु।
कुमति श्रुतयोः सर्वे विभंगावधे पंचेन्द्रिय ॥६८०॥

वैक्रियक काय योग में और वैक्रियक मिश्रकाय योग में एक पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव समास है। आहारक आहारक मिश्र में भी एक सेनी पंचेन्द्रिय जीव समास होता है। वंक्रियक मिश्र काय योग में अपर्याप्तक सेनी पंचेन्द्रिय जीवसमास होता है। आहारकमिश्र में पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक एक जीव समास होता है। आहारक मिश्र में अपर्याप्तक सेनी पंचेन्द्रिय जीव

समास होता है। कार्माण योग में औदारिक मिश्र के समान सात जीव समास होते हैं। स्त्री वेद में चार जीव समास होते हैं सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त तथा असेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार होते हैं। पुरुष वेद में भी चार जीव समास होते हैं। असेनी पंचेन्द्रिय गर्भज पर्याप्त और अपर्याप्त सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार होते हैं। नपुंसक वेद में चौदह समास होते हैं क्योंकि नपुंसक वेद वाले जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन जन्म लेने वाले पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पती शंख चींटी भौंरा व पंचेन्द्रिय मेंढ़क मछली ये सब जीव सम्मूर्छन गार्भ वाले होते हैं तथा नारकी पंचेन्द्रिय सेनी इन सब के चौदह जीव समास होते हैं तथा मनुष्यों में भी नपुंसक वेद के धारी होते हैं। क्रोध मान माया लोभ आदि सब कषायों में चौदह जीव समास होते हैं। क्योकि एकेन्द्रिय लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीवों के कषायें निश्चित रूप से पाई जाती हैं। कुमति कुश्रुति इन दोनों कुज्ञानों में भी चौदह जीव समास होते हैं। विभंगावधि में एक सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है ॥६८५॥६८६॥ पु०

पर्याप्ता-पर्याप्तौ सन्तिमतिश्रुतावधि ज्ञानेषु ॥
मनः पर्यय केवलज्ञानयोः एक संज्ञिनः पंचेन्द्रिय ॥६८१॥

मति श्रुत और अवधिज्ञान इन तीनों में पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते हैं मनः पर्ययज्ञान में सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक एक जीव समास होता है केवलोज्ञानी के भी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक सेनी एक ही जीव समास होता है। क्योंकि मनः पर्ययज्ञान सेनी पंचेन्द्रिय संयमी मनुष्य के उत्पन्न होता है तथा केवलज्ञान सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त एक जीव समास होता है तथा समुद्धात अवस्था में सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते हैं ॥६८७॥

संयमेषु पर्याप्त समनस्क पंचेन्द्रियार्जीवाइति।
सर्व समासासंयमेऽचक्षुर्चक्षु दर्शने षडेवम् ॥६८२॥
अवधौ केवलैकं कुलेश्या चतुर्दश सुलेश्यासु द्वौ।
भव्याभव्येषु सन्ति सर्व जीव समासानि च ॥६८१॥

संयमासंयम और सामायिक संयम क्षेदोपस्थापना संयम परिहार विशुद्धो संयम सूक्ष्म सांपराय संयम और यथाख्यात संयम में सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक एक जीव समास होता है। और असंयम में चौदह जीव समास होते हैं। क्योंकि सूक्ष्म बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक तथा दो तीन चार इन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकार होते हैं पंचेन्द्रिय सेनी और असेनो पचेन्द्रिय जीव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सब जीव समास होते हैं क्योंकि ये सब जीव असंयमी ही होते हैं। अचक्षुदर्शन में चौदह जीव समास होते हैं चक्षुदर्शन में छह जीव समास होते हैं चार इन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त पांच इन्द्रिय सेनी और असेनी ये पर्याप्त और अपर्याप्तक के भेद से छह जीव समास होते हैं। भव्य और अभव्य जीवों में सब जीव समास होते हैं। अवधिदर्शन और केवल दर्शन में एक सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक एक जीव समास होता है। पहले की तीन कुलेश्या कृष्ण नील कापोत लेश्या वाले

जीवों के सब जीव समास होते हैं शुक्ल पद्म पीत लेश्यायों में दो जीव समास होते हैं सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक में दो जीव समास होते हैं ॥६८२॥६८३॥

क्षायिक क्षयोपशमे [औपशमिकेद्वौ समास प्रस्तूयते ।
मिश्रे पर्याप्तकैव पंचेन्द्रिय समनस्कैकं ॥६८४॥
सासादने समासा मिथ्यात्वे चतुर्दश समनस्के द्वौ ।
असंज्ञि द्वौ पंचेन्द्रियाहारके चतुर्दशाष्टौ च ॥६८५॥

क्षायिक सम्यक्त्व में और क्षयोपशम व उपशम सम्यक्त्व में पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक समनस्क दो जीव समास होते हैं। उपशम सम्यक्त्व में सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव समास होते हैं। विशेष सेनी पर्याप्तक मनुष्य व त्रियंच नारक जीवों के व देव गति में प्रथमोपशसम्यक्त्व होता है इस नियम से एक ही जीव समास होता है। परन्तु क्षायक और क्षयोपशम दोनों ही सम्यक्त्व पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही अवस्थाओं में सेनी पंचेन्द्रिय के दो जीवसमास होते हैं।,मिश्र सम्यक्त्व में एक सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समास होता है। सासादन में अपर्याप्त सात और एक पंचेन्द्रिय सेनी पर्याप्त समास मिलकर कुल आठ जीव समास होते हैं मिथ्यात्व में चौदह जीव समास होते हैं। सेनी जीवों में पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते हैं। असेनी जीवों में पर्याप्त और अपर्याप्त दो जीव समास होते हैं। आहारक अवस्था में चौदह जीव समास होते हैं क्योंकि आहारक जीव सब एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीवों के होता है। अनाहारक अवस्था में सात अपर्याप्तक होते हैं एक सेनी पंचेन्द्रिय अनाहारकपना सेनीपने में ही होता है। संसारी जीव विग्रह गति में अनाहारक होते हैं। केवली समुद्घात को मिलाने पर आठ जीव समास होते हैं ॥६८४॥६८५॥ (इति जीव समास।)

आगे मार्गणाओं में गुण स्थान को कहते हैं।

नरक त्रियंनरामर गतिषु चतुः पंच चतुर्दश चतुः।
पृथ्वी कायादिविकल त्रयाऽसंज्ञीनाम् मिथ्यात्वैकम् ॥६८६॥
पचेन्द्रिय संज्ञीनाम् गुणस्थान चतुर्दश भवंति सदा।
द्रव्यस्त्रीणाम् पंच संज्ञानाम् भावेषु नवैव ॥६८७॥

नरक गति में आगे के चार गुण स्थान होते हैं मिथ्यात्व सासादन मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टि ये चार गुण स्थान होते हैं। त्रियंच गति में त्रियंचों के मिथ्यात्व सासादन मिश्र असंयत सम्यग्दृष्टि तथा संयतासंयत ये पांच होते हैं। मनुष्यों में चौदह गुण स्थान होते हैं। वे इस प्रकार हैं पहले से पांचवें तक कहे गये हैं उनसे प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्व करण अनिवृत्ति करण सूक्ष्म सांपराय उपशांत मोह क्षीण मोह सयोग केवली और अयोग केवली ये चौदह होते हैं देव गति में चार पहले नरक के समान ही गुण स्थान होते हैं। पृथ्वी जल वायु अग्नि और वनस्पति काय तथा दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय असेनी पंचेन्द्रिय इन जीवों के एक पहला मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के चौदह गुण स्थान होते हैं। द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपुंसक वेद वाले जीवों के पहले के पांच गुण स्थान होते हैं परन्तु

भाव वेद वाले जीवों के नौ गुण स्थान होते हैं .मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति करण पर्यन्त होते हैं पुरुष वेद और द्रव्य पुरुष वेद वाले जीवों के पहले से नौ गुण स्थान तक होते हैं। परन्तु द्रव्य पुरुष के तेरह गुण स्थान होते हैं।

विशेष यह है कि एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय जीवों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है परन्तु अपर्याप्त अवस्था में सासादन गुण स्थान उपपाद योग में पाया जाता है इस तरह एकेन्द्रिय से लेकर चारइंद्रिय तक के दो गुण स्थान होते हैं। त्रश कायक जीवों के काय में चौदह गुण स्थान होते हैं। प्रश्न—एकेन्द्रिय जीवों के सासादन गुण स्थान कैसे सम्भव है? समाधान—जो देव संक्लिष्ट परिणामों से युक्त देव उपशम सम्यक्त्व की विराधना कर सासादन का स्वामी हुआ और एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ तव उपपाद योग में सासादन गुण स्थान होता है और वृद्धि योग में मिथ्यात्व गुण स्थान होता है। मिथ्यादृष्टि संक्लिष्ट परिणामी जीव जिसने छह महिने शेष आयु के रहने पर एकेन्द्रिय जीव की आयु का बंध किया है और अन्तर्मुहूर्त शेष आयु के रहने पर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और कषाय के उदय आ जाने के कारण सम्यक्त्व की विराधना कर सासादन मरण काल में किया पाणि मुक्ता गति से निग्रह गति को प्राप्त हो एक समय या दो समय में एकेन्द्रिय जीव के उपपाद स्थन को प्राप्त हुआ उस काल में सासादन गुण स्थान स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के पाया जाता है। अग्निकाय वायु कायक जीवों के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है॥

सत्यानुभय मन वचनोः संयोगान्ताश्चाऽसत्योभयोश्च।
द्वादश गुणस्थानान्यौदारिकयोगे सयोगान्ताः॥६८८॥
औदारिकमिश्रे च एक द्वि चतुस्त्रयश्च केवली च।
वैक्रियके चतुः मिश्रयोगे त्रयाहारकयुगलैकम्॥६८९॥
कार्माणे चतु नंवत्रिवेदनोकषाय त्रिकषायेषु।
लोभेदश कुमति श्रुत ज्ञानयो द्वे गुण स्थाने॥६९०॥
विभंगावधेप्रग्द्वे त्रय सम्यग्ज्ञाने नवस्थानं।
मनः पर्यये सप्त केवलज्ञाने द्वेस्थाने च॥६९१॥

आगे कहते हैं कि कौन-कौन से योग में कौन-कौन से गुण स्थान होते हैं।

सत्यमनोयोग अनुभय मनोयोग सत्य वचन योग और अनुभय वचन योग वाले जीवों में तेरह गुण स्थान होते हैं। असत्य और उभय मनोयोग और वचन योग में मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण कषाय पर्यन्त वारह गुण स्थान होते हैं। औदारिक काय योग में तेरह गुण स्थान होते हैं। औदारिक मिश्रकाय-योग में पहला दूसरा चौथा ये तीन गुण स्थान होते हैं क्योंकि इन तीन गुण स्थानों में ही संसारी जीव का मरण होता है मरण के पीछे विग्रह गति करके नवीन जन्म लेने के स्थान पर अपने शरीर के योग्य नो कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है उस काल में औदारिक नो कर्मवर्गणाओं को पूर्ण ग्रहण करता है तव तक औदारिक मिश्र काय योग होता है। चौथा औदारिक मिश्र केवली समुद्घात अवस्था में होता

है वैक्रियक काय योग में चार गुण स्थान होते हैं और वैक्रियक मिश्र योग पहला दूसरा व चौथा गुणस्थान होते है। आहारक और आहारक मिश्र वाले जीवों के एक प्रमत्त ही गुणस्थान होता है। कार्माण योग में भी औदारिक मिश्र के समान ही जान लेना चाहिए। स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसक वेद वाले जीवों के मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्त करण तक नौ गुण स्थान होते हैं नव नो कषायों में व क्रोध मान माया इन तीन कषायों में मिथ्यात्व से लेकर अनिवृत्त करण गुण स्थान तक नो गुण स्थान होते हैं लोभ कषाय में दश गुण स्थान तक (सूक्ष्म सांपराय) होते हैं। कुमति कुश्रुत ज्ञानी जीवों के दो गुण स्थान होते हैं मति श्रुतावधि ज्ञान वाले जीवों के असंयत के लेकर क्षीण मोह गुण स्थान तक नो गुण स्थान होते हैं मनः पर्यय ज्ञानी जीवों के प्रमत्त से लेकर क्षीण मोह तक सात गुण स्थान होते हैं। केवल ज्ञान में दो गुण स्थान होते हैं एक सयोगी दूसरा अयोगी चकार से सिद्ध भगवान के केवल ज्ञान ही होता है।

सामायिकयुगलयोर्नव परिहारे द्वे सूक्ष्मे सूक्ष्मम्॥
यथाख्याते चतुर्दश संयते स्वेऽसयततेश्चतुः॥६९२॥

चक्ष्वचक्षु दर्शनयो द्वादशावधौ नव केवले द्वे च।
अक्त्रिलेष्यासु चतुः पीतपद्मे सप्त शुक्लेसा॥६९३॥

भवोसर्वेऽभव्ये मिथ्यात्वैव क्षयिकयेकादश।
क्षायोपशमिके चतु औपशमिक सम्यक्त्वे अष्ट॥६९४॥

मिथ्यात्वे सासादन मिश्रे स्वस्वस्वक् स्थानम् संज्ञिनो।
द्वादशा मनस्के द्वे चाहारके सर्वेऽनेपंच॥६९५॥

सामायिक छेदोपस्थापना वाले जीव प्रमत्त गुण स्थान से लेकर अनिवृत्तकरण गुण स्थान तक चार गुण स्थान होते हैं परिहार विशुद्धी में प्रमत्त अप्रमत्त दो ही होते हैं सूक्ष्म सांपराय संयत में एक सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान होता है यथाख्यात संयत में उपशांत मोह क्षीण मोह सयोग, अयोग केवली चार गुणस्थान होते हैं। देश संयत का एक देश संयत ही गुण स्थान होता है असंयत सम्यग्दृष्टी एक असंयत दृष्टी गुलस्थान होता है अथवा नीचे के भी असंयत गुणस्थान के नाम को ही पाते हैं। चक्षु, अचक्षु दर्शन वाले जीवों के बारह गुण स्थान होते हैं क्योंकि मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह गुणस्थान तक जीव होते हैं। अवधि दर्शन में असंयत सम्यग्दृष्टी से लेकर क्षीण मोह बारहवें गुण स्थान तक होता है केवल दर्शन में दो गुणस्थान होते हैं संयोग केवली अयोगी जिन सिद्ध भगवान गुणस्थानातीत हैं। आगे की तीन अशुभ लेश्यायें कृष्ण नील कापोत इनमें चार गुणस्थान होते हैं पतिपद्म लेश्याओं से मिथ्यात्व से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक सात गुणस्थान होते हैं। शुक्ल लेश्यायें मिथ्यात्व से लेकर संयोग केवली पर्यन्त तेरह गुणस्थान होते हैं। भव्यजीवों के सब चौदह जीव समास होते हैं व चौदहगुणस्थान होते हैं अभव्य जीवों के एक मिथ्यात्व ही गुणस्थानहोता है। क्षायकसम्यक्त्व में चौथे असंयत क्षायक सम्यग्दृष्टी से लेकर ग्यारह गुण स्थान होते हैं क्षयोपशमिक में चार गणस्थान होते हैं। उपशय क्षयोपशम में चार गुणस्थान होता हैं द्वितीयोपशम में आठ गुणस्थान

होते हैं। मिथ्यात्व सासादन सम्यग्दृष्टी व मिश्र सम्यग्दष्टी अपने-अपने गुणस्थान में ही रहते हैं। सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के बारह गुण स्थान होते हैं तथा अनाहारकों के पांच गुणस्थान होते हैं मिथ्यात्व सासादन असंयत सम्यग्दृष्टी संयोग केवली अयोग केवली भगवान अनाहारक होते हैं सिद्ध जीव नित्य ही अनाहारक होते हैं ६९२ से ॥६९५॥ तक

आगे मार्गणा स्थानों में योगों का कथन करते हैं।

नारक देवगतयोश्च त्रियश्चैकादश त्रयोदश नरौ।
एकेन्द्रियो त्रिविकले चतु सकले सर्वे योगाः ॥६६६॥
त्रशकाये सर्ववेद स्त्री संढयोस्त्रयोदश सर्वे पुंवे।
क्रोधादि चतुस्के सर्वं कुज्ञानयो त्रयोदशयोगः ॥६६७॥

नरक गति में आहारक, आहारकमिश्र औदारिक, औदारिकमिश्र विना ग्यारह योग होते हैं। वे सब इस प्रकार हैं सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग सत्य-वचन योग, असत्य वचन योग, उभय वचन योग, अनुभय वचन योग, (औदारिक, औदारिक मिश्र वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र)और कर्माणयोग ये काय के तीन कुल ग्यारह है। सत्यमन असत्यमन उभयमन सत्य वचन असत्य वचन उभय वचन अनुभय वचन औदारिक मिश्र और कार्माण ये ग्यारह योग होते हैं। मनुष्थ गति में वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र विना तेरह योग होते हैं एकेन्द्रिय जीवों के औदारिक, औदारिक मिश्र और कर्माण ये तीन योग होते हैं। विकलेन्द्रिय जीवों के औदारिक, औदारिक मिश्र और अनुभय वचन योग तथा कर्माण योग ये चार योग होते हैं। असेनी पंचेन्द्रिय में सत्य वचन असत्य वचन अनुभय वचन ये चार औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्माण ये सात योग होते हैं। सेनी पंचेन्द्रिय जीवों के पन्द्रह योग सब ही होते हैं। काय की अपेक्षा स्थावर काय में तीन योग होते हैं वे औदा-रिक, औदारिक मिश्र और कार्माण। त्रशकाय में पन्द्रह योग सब होते हैं। स्त्री वेदवाले जीवों के आहारक, आहारक मिश्र विना तेरह योग होते हैं नपुंसक वेद में भी स्त्री के समान ही तेरह योग होते हैं चार मन चार वचन औदारिक, औदारिक मिश्र वैक्रियक और वैक्रियक श्रिम कार्माण ये तेरह होते हैं। पुरुष वेद में सब योग होते हैं क्रोध, मान, माया, लोभ, चारों कषायों में सब योग होते हैं।

विशेष यह है कि पर्याप्त अवस्था में नरक गति में नारकी जीवों के चार मन के चार वचन के एक वैक्रियक काय योग ये नौ होते हैं अर्पाप्त अवस्था में वैक्रियक मिश्र और कार्माण ये दो ही योग होते हैं। सामान्य से ग्यारह होते हैं इसी प्रकार देवगति में योगों का क्रम है। त्रियंच गति में पर्याप्त काल में एकेन्द्रिय के पर्याप्त अवस्था में एक औदारिक काय योग होता है अर्पाप्त अवस्था में औदारिक मिश्र और कार्माण योग होते है नारक देव पंचे-न्द्रिय सेनी त्रियंच व मनुष्य के पर्याप्त काल में नौ योग होते हैं परन्तु मनुष्य संयमी प्रमत्त के ग्यारह योग होते हैं यहां पर आहारक और आहारक मिश्र ये दो मिल जाते हैं अर्पाप्त अवस्था में औदारिक मिश्र और कर्माण ये दो ही योग होते हैं देवों के कहे प्रमाण हैं। दो इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त काल में औदारिक काय योग और अनुभय वचक योग तथा तीन चार

इन्द्रिय में भी समझना चाहिए अपर्याप्त अवस्था में औदारिक मिश्र और कार्माण ये दो योग होते हैं।

कुमति कुश्रुत ज्ञान में आहारक, आहारक मिश्र के विना तेरह योग होते हैं विभंगावधि में औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र आहारक मिश्र और कार्माण योग विना दश योग होते हैं। मति श्रुतावधि ज्ञान इन तीनों ज्ञानों में सव योग होते हैं। मनः पर्याय ज्ञान में वैक्रियक वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र औदारिक मिश्र और कार्माण योग विना चार मन के चार वचन के एक औदारिक काय योग कुल नौ योग होते हैं। केवल ज्ञान में सात योग होते हैं सत्य मनोयोग अनुभय मनोयोग सत्य वचन योग अनुभव वचन योग औदारिक काय योग औदारिक मिश्र काय योग कार्माण योग औदारिक मिश्र और कार्माण योग केवली समुद्धात की अपेक्षा से हैं।

विशेष—अनंतानुवंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों में तेरह योग होते हैं क्योंकि आहारक और आहारक मिश्र नहीं होते हैं। अप्रत्याख्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ इनमें सामान्य से तेरह योग होते हैं प्रत्याख्यान कषाय में वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र औदारिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण योग नहीं होते हैं शेष ९ नो योग होते हैं। संज्वलन व नो कषायों में वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र औदारिक मिश्र कार्माण योग विना ग्यारह योग होते हैं।

स्तः सामायिक युगले एकादश नवयुगले देशविरते।
यथाख्याते वैक्रियक आहारक युगले नवैकादश ॥६९८

सामायिक क्षेदोपस्थापना इन दो संयमों में ग्यारह योग होते हैं। चार मन के चार वचन के औदारिक काय योग आहारक, आहारक मिश्र ये ग्यारह होते हैं। परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म सांपराय ये दोनों संयम युगल के जो श्लोक में दिया है इससे दोनों का ही ग्रहण किया गया है क्योंकि यहां संयम का विषय है। इन दोनों में नौ-नौ योग होते हैं यथाख्यात चरित्र में आहारक, आहारक मिश्र वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र विना शेष ग्यारह योग होते हैं। देश संयत में भी नो योग होते हैं क्योंकि यह त्रियंच व मनुष्यों के होता है वह पर्याप्त अवस्था प्राप्त होने पर होता है इस गुण स्थान में नौ योग होते हैं औदारिक काय योग और चार मन के चार वचन के चार कुल नो योग होते हैं। असंयम में तेरह योग होते हैं इसमें आहारक, आहारक, मिश्र दो विना तेरह योग होते हैं। भव्य जीवों के सव योग होते हैं तथा अभव्य के तेहर योग होते हैं आहारक आहारक मिश्र के विना।६९८॥

चक्ष्वचक्ष्ववधि केवल दर्शनेषु द्वादशपंचदशे च।
सप्तैव त्रिकृष्णादिषु त्रयोदश पीतादिषु सर्वः ॥६९९॥

चक्षु दर्शन वाले जीवों के वारह योग होते हैं औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र चार मन के चार वचन के कुल वारह होते हैं। अचक्षुदर्शन चार मन योग के चार वचन योग के साव काय के सव योग होते हैं। अवधि दर्शन में सव योग होते हैं। अवधि केवल दर्शन में सात योग होते हैं केवल ज्ञान के समान हैं।

कृष्ण नील कापोत तीनों लेश्यायों में चार मन चार वचन औदारिक, औदारिक मिश्र वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र और कार्माण ये तेरह योग होते हैं। पीत और पद्म लेश्यायों में सब ही योग होते हैं। तथा शुक्ल लेश्या में भी सब योग होते हैं (अभव्य जीवों के तेरह योग होते हैं आहारक, आहारक मिश्र विना भव्य में सब ही योग होते हैं श्लोक में काय से ग्रहण किया गया है।

अभव्येषु त्रयोदश भव्ये क्षायिके वेदके सर्वे ॥
उपशमिक त्रयोदश सासादन मिथ्यात्वेषु तथा ॥७००।
मिश्रे च दश संज्ञिने सर्वेऽसंज्ञिने चतुश्चर्दशनं ॥
आहारके च वर्ज्य कार्माण मनाहारकेष्वेकम् ॥७०१

अभव्य जीवों के आहारक, आहारक मिश्र को छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं। भव्य जीवों में पन्द्रह योग होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व और क्षयोपशम सम्यक्त्व में सब योग होते हैं उपशम सम्यक्त्व में आहारक, आहारक मिश्र को छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं। सासादन मिथ्यात्व में भी तेरह योग होते हैं मिश्र में दश योग होते हैं औदारिक मिश्र वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र कार्माण योग रहित होते हैं। सेनी जीवों के सब ही योग होते हैं अनाहारक जीवों के एक कार्माण योग होता है। असेनी जीव के चार योग होते हैं औदारिक, औदारिक मिश्र कार्माण अनुभय योग ये चार होते हैं आहारक मार्गणा में कार्माण योग को छोडकर शेष चौदह योग होते हैं। इस प्रकार संक्षेप से मार्गणा स्थानों में कथन किया है। विशेष आगम से जान लेना चाहिये ।७००।७०१॥

आगे उपयोगों का कथन करते हैं।

देव नारकत्रयक्षु नव-नव मनुजे द्वादशोपयोगाः।
एक द्वि त्रि चतु पंचाक्षेषु त्रि द्वादश भवन्ति ॥७०२॥
स्थावरेषु त्रय त्रस्काये द्वादश मन वच योगेषु।
सत्योऽष्युयये द्वादशाऽसत्योभययेदश भवन्ति ॥७०३॥
औदारिक द्वादश वैंक्रियके युग्मे नव सप्तोपयोग।
आहारकयोगेषट नवौदारिक कार्माणयोश्च ॥७०४॥

देव नारक तथा त्रियंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टियों के पाच उपयोग होते हैं कुमति कुश्रति विभंगावधि और चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन ये पांच होते हैं ये भी पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से कहे गये हैं। सम्यग्दृष्टी देव नारक और त्रियंच जीवों के मति श्रुति अवधि ये छह उपयोग होते हैं। कुल मिल नौ-नौ उपयोग होते हैं सम्यग्दृष्टी मनुष्यों के चार दर्शन के चक्षु अचक्षु अवधि और केवल दर्शन। ज्ञान के मति श्रुतावधि मनःपर्यय और केवल ज्ञान कुमति कुश्रुत विभंगावधि कुल बारह मिथ्यादृष्टी और सम्यग्दृष्टी दो प्रकार के पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति काय इन पांचो स्थावरों में कुमति कुश्रुत और अचक्षु दर्शन ये तीन उपयोग नियम से होते हैं। दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय जीवों के कुमति कुश्रत और अचक्षु दर्शन ये तीन उपयोग होते हैं। चारइन्द्रिय के चार उपयोग होते हैं

कुमति कुश्रुति और चक्षुदर्शन अचक्षु दर्शन ये चार है। पंचेन्द्रिय में मिथ्यादृष्टी के पांच उपयोग होत हैं कुमति कुश्रुत विभंगावधि व चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन ये पांच उपयोग होते हैं परन्तु सम्यग्दृष्टी जीवों के चार दर्शन और पाँच ज्ञान होते हैं दोनों को मिलकर बारह उपयोग पंचेन्द्रिय जीवों के होते हैं। काय की अपेक्षा से स्थावर काय में तीन उपयोग होते हैं कुमति कुश्रुत और अचक्षुदर्शन ये तीन होते हैं। त्रश काय में बारह उपयोग होते हैं। अनुभय मनोयोग सत्य वचन और अनुभय वचन योगो में कुमति कुश्रुत विभंगावधि मति श्रुतावधि मनः पर्यय और केवल ज्ञान व चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन केवल दर्शन ये बारह होते हैं। उभय मनोयोग और असत्य मनोयोग तथा असत्य उभय वचन योगों में दश उपयोग होते हैं कुमति कुश्रुत विभंगावधि मति श्रुतावधि मनः पर्यय ज्ञान तथा चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन ये दस उपयोग होते हैं।

औदारिक काययोग में चार दर्शनोपयोग आठ ज्ञानोपयोग ये बारह उपयोग होते हैं औदारिक मिश्र योग में कुमति कुश्रुत विभंगावधि मति श्रुतावधि चक्षु अचक्षु अवधि ये नौ उपयोग होते हैं केवली के समुद्घात अवस्था में दो ही उपयोग होते हैं। औदारिक मिश्र काययोग में मन पर्यय ज्ञान नहीं होता है और विभंगावधि तथा चक्षु दर्शन नहीं होते हैं शेष नौ ही उपयोग होते है। वैक्रियक काययोग में कुमति कुश्रुत विभंगावधि ये तीन तथा मति श्रुतावधि ये तीन चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन ये नो उपयोग होते हैं। वैक्रियक मिश्र में अचक्षु दर्शन अवधि दर्शन कुमति कुश्रुत मति श्रुतावधि सात उपयोग होते है। आहारक, आहारक मिश्र योग में मति श्रुतावधि तथा चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन छह योग होते हैं। कार्माण योग में कुमति कुश्रुत मति श्रुतावधि और केवल ज्ञान तथा अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन केवल दर्शन ये नौ उपयोग होते हैं।

विशेष—यह है कि औदारिक मिश्र और वैक्रियक मिश्र अपर्याप्त काल में चक्षु दर्शन और विभंगावधि व मनः पर्यय ज्ञान ये तीनों नहीं होते हैं ये नियम से पर्याप्त अवस्था में ही जीवो के होते हैं देव मनुष्य और त्रियंच नारकी जीवों में होते हैं। मनः पर्यय ज्ञान नियम से प्रमत्त संयत छठवे गुणस्थान वाले किसी ऋधि धारी मुनि के ही उत्पन्न होता है। विभंगावधि ज्ञान देव नारकी मनुष्य त्रियंच गतियों में होता है वह पर्याप्तियोके पूर्ण हो जाने व अन्तरमुहूर्त जन्म लेने के पीछे होता है और चक्षुदर्शन का भी यह नियम है कि पर्याप्तियायें जब पूर्ण हो जाती है तब चक्षुदर्शन होता है ।७०८।७०९।७१०।

स्त्री नपुँसक वेद कषायेषु

स्त्री नपुंसक पुंवेद कषाय कुत्रिज्ञान सुज्ञानेषु ॥
नव नव दश पंच सप्तोपयोगाः भंवन्त्यैवम् ॥७०५॥
केवले सामायक युग्मे सूक्ष्मे परिहार विशुद्धिषु ॥
द्वौ सप्त सप्त षट् च यथाख्यातिदेशे नव षट् ॥७०६॥
असंयत चक्ष्वचक्ष्ववधिः केवल दर्शन कुलेष्याण्वैव ॥
नव दश सप्त द्वौ च नव पीतपद्मे दश शुक्लेद्वादश ॥७०७॥

स्त्री वेद और नपुंसक वेद में कुमति कुश्रुत विभंगावधि तथा मति ज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ये छह ज्ञानोपयोग तथा चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन ये नो होते हैं। पुरुष वेद में केवल दर्शन और केवलज्ञान के विना कुमति आदि तीन मतिश्रुतादि चार चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन होते हैं। काषायों में सामान्य से केवल ज्ञान और केवल दर्शन को छोड़कर शेष दश उपयोग होते हैं।

विशेष यह है कि स्त्री वेद और नपुंसक वेद मिथ्यादृष्टि गुण स्थान से लेकर नौवे गुण स्थान तक वाले जीव के होते हैं। जहां तक मिथ्यात्व के साथ वेदों का संवन्ध रहता है जहां तक पांच ही उपयोगी होते हैं कुमति कुश्रुति विभंगावधि तथा चक्षुदर्श और अचक्षुदर्श जब सम्यक्त्व हो जाता है तब उस अवस्था में छह उपयोग होते हैं मति श्रुत अवधिज्ञान ये तीन तथा चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन होते हैं सब मिलकर नौ होते हैं। पुरुष वेद में तीन कुज्ञान चार सुज्ञान तीन दर्शन ये दश होते हैं। मिथ्यात्व का सम्वन्ध जव तक पांच ही उपयोग होते हैं सम्यक्त्व और संयम की वृद्धि होने पर सात उपयोग होते हैं मति श्रुत अवधि यह असंयत के भी होते हैं परन्तु मनः पर्ययज्ञान संयम की वृद्धि से युक्त साधू के ही होता है अवधि दर्शन भी सम्यग्दृष्टि के ही होता है। अनन्तानुवन्धी कषाय में पाँच उपयोग होते हैं कुमति कुश्रुति विभंगावधि तथा चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन अप्रत्याख्यान में छह उपयोग होते हैं मति श्रुति अवधि चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन ये छह होते हैं। प्रत्याख्यान में भो ये ही छह होते हैं संज्वलन कषाय और छह नो कषायों में दो भेद हैं मिथ्यात्व के साथ होवें तव पांच उपयोग होते हैं सम्यक्त्व के साथ हों वे तव सात उपयोग होते हैं ये ही संज्वलन कषायों में होते हैं क्योंकि संज्वलन कषाय में एक मनः पर्यय ज्ञान वढ़ जाता है। कुल दश होते हैं।

. कुमति कुश्रुत विभंगावधि में पांच उपयोग होते हैं तीन कुज्ञान और चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन इस प्रकार पाँच उपयोग होते हैं मति श्रुत अवधि मनः पर्यय इन चारों ज्ञानों में सात उपयोग होते हैं। असंयत गुण स्थान देश संयत वाले जीवों के ६ छह उपयोग होते हैं तथा जहाँ पर अवधिज्ञान नहीं होता है वहां पर चार उपयोग होते हैं संयत प्रमत्त गुण स्थान से क्षीण मोह पर्यन्त सात उपयोग होते हैं। केवल ज्ञान में दो उपयोग होते हैं एक केवल ज्ञान दूसरा केवल दर्शन। सामायक और क्षेदोपस्थापना इन दोनो संयमें में सात उपयोग होते हैं। मति श्रुत अवधि मनः पर्यय ये चार ज्ञान के तथा चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन ये सात उपयोग होते हैं। सूक्ष्मसांपराय में भी सात उपयोग होते हैं परिहार विशुद्धि में मति सब श्रुतावधि ये तीन ज्ञान चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन में छह उपयोग होते हैं। यथाख्यात चारित्र में नो उपयोग होते हैं। मति श्रुत अवधि मनः पर्यय और केवल ज्ञान तथा चारदर्शन ये सव नौ उपयोग होते हैं। देश संयत में तीन पहले के मति श्रुतावधि तथा तीन दर्शन ये छह होते हैं। असंयतों में नौ उपयोग होते हैं, तीन कुज्ञान तीन सुज्ञान तीन दर्शन ये नौ होते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि के छह ६ उपयोग होते हैं मति श्रुतावधि और चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन होते हैं। मिथ्यात्व में पांच उपयोग सासादन में तथैव मिश्र में तीन कुज्ञान तीन सुज्ञान तीन दर्शन ये नव उपयोग होते हैं। चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन अवधि दर्शन में चक्षु अचक्षु

दर्शन इन दोनों में दस उपयोग होते हैं क्योंकि मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर क्षीण मोह तक सब जीवों के पाए जाते हैं इन दोनों में केवल ज्ञान और केवल दर्शन दो उपयोग नहीं होते हैं। अवधि दर्शन में सात उपयोग होते हैं मति श्रुतावधि और मनः पर्यय ये चार ज्ञान तथा चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन। केवल दर्शन में दो उपयोग होते हैं केवल ज्ञान केवल दर्शन होते हैं।

कृष्ण नील कापोत इन लेश्याओं में कुमति श्रुतविभंगावधि व चक्षु अचक्षु अवधि मतिश्रुत अवधि ये नौ होते हैं। पीत पद्म लेश्याओं में तीन कुज्ञान चार सुज्ञान और तीन दर्शन पहले के सब होते हैं केवल दर्शन ज्ञान बिना। शुक्ल लेश्या में सब ही उपयोग होते हैं। कृष्णादि छहों लेश्यायें मिथ्यादृष्टि जीव से लेकर क्रम से सयोग केवली तक पायी जाती है। इनकी व्याख्या गुण स्थानों की चर्चा में कर आये हैं ॥७११॥७१२॥७१३॥

सर्वभव्येऽभव्ये पंच च नव क्षायिकसम्तक्त्वे ॥
क्षायोपशमिके सप्तौपशमिक सम्यक्त्वे च एकं ॥७०८॥
मिश्रे षट् सासादन सम्यक्त्वे पंच च मिथ्यात्वे वा ॥
समनस्के अमनस्के दश चतु राहारके सर्वः ॥७०९॥

भव्य जीवों में तीन मिथ्याज्ञान पांच सम्यग्ज्ञान चार दर्शन सब उपयोग होते हैं। परन्तु अभव्य जीवों में कुमति कुश्रतविभंगावधि ये तीन चक्षुदर्शन अचक्ष दर्शन कुल पांच उपयोग होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व में कुमति कुश्रुत विभंगावधि को छोड़कर शेप उपयोग होते हैं क्षयोपशम सम्यक्त्व में कुमति आदि तीन केवल दर्शन केवल ज्ञान इन पांच के विना शेष सात उपयोग होते हैं उपसमसम्यक्त्व में भी येही उपयोग होते हैं। मिश्र सम्यक्त्व में छह उपयोग होते हैं कुमति कुश्रुत विभंगावधि मति श्रुतावधि ये सब मिश्रामिश्र होते हैं। सासादन सम्यक्त्व में पांच होते हैं कुमति आदि तीन और चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन पांच ही होते हैं तथा मिथ्यात्व में येही पांच होते हैं। सेनी पंचेन्द्रिय जीवों में दश उपयोग होते हैं। कुमति कुश्रुत विभगावधि तथा मति श्रुत अवधि मनः पर्यय तथा चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन कुल दश उपयोग होते हैं। अमनस्क जीवों में चार उपयोग होते हैं कुमति कुश्रुत चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन। आहारक जीवों में सब ही उपयोग होते हैं। परन्तु अनाहारक में दश ही उपयोग होते हैं। विभंगावधि और मनः पर्यय को छोड़कर शेष होते हैं। इसका कारण यह है कि विभंगावधि पर्याप्त अवस्था में ही होती है मनः पर्यय ज्ञान भी छठवें गुण स्थान से लेकर बारह वे गुण स्थान वाले जीवों के होता है वह भी आहारक अवस्था में ही होता अनाहारक अवस्था में नहीं होता है। दूसरी बात यह है संसारी जीव विग्रह गति में ही अनाहारक होते हैं विग्रह गति में विभंगावधि और मनः पर्यय दोनों ज्ञान नहीं होते है।॥७१६॥

नव जीव समासेषु चतुष्वेकं प्रत्येक द्वौ द्वादश।
सप्तेष्वेकं सप्त्वेषु द्वौ द्वादश नव सप्त ॥७१०॥

नव जीव समासों में एक योग होता है चार जीव समासों में दो योग होते हैं एक

जीव समास में बारह योग होते हैं सात जीव समासों में एक योग होता है सात जीव;समासों में दो योग एक समास में बारह योग तथा सात योग होते हैं। ये किस प्रकार होते हैं ? एकेन्द्रिय अपर्याप्तक सूक्ष्म दोइन्द्रिय नो जीव समासों में एक योग कैसे होता हैं ? एकेन्द्रिय अपर्याप्त सूक्ष्म में एक औदारिक मिश्र काय योग होता है एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त में औदारिक काय योग एक होता है एकेन्द्रिय वादर अपर्याप्तक जीवों के एक औदारिक मिश्र काय योग होता है.। एकेन्द्रिय वादर पर्याप्तक जीवों के एक औदारिक काय योग होता है दोइन्द्रिय अपर्याप्त में एक औदारिक मिश्र काय योग है तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक में औदारिक मिश्र काय योग एक होता है चारीन्द्रि अपर्याप्तक में औदारिक मिश्र काय योग एक ही होता है असेनी पंचेन्द्रिय जीव में एक अपर्याप्तक में औदारिक मिश्र सेनी पंचेन्द्रिय के एक औदारिक मिश्र काय योग होता है। इस प्रकार नव जीव समासों में एक काय योग होता है। आगे चार जीव समासों में दो कोन से योग होते हैं ? दोइन्द्रिय पर्याप्त के औदारिक काय योग और अनुभय वचनयोय होता है तीन इन्द्रिय के औदारिककाय योग और अनुभय वचन योग होता है। चारइन्द्रिय पर्याप्तक के औदारिक काय योग तथा अनुभय वचन योग होता है असेनी पंचेन्द्रिय के अनुभय वचन योग तथा औदारिक काय योग ये दो प्रकार के होते हैं इस चार जीव समासों मे दो योग होते हैं एक पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समासों में वारह योग होते हैं। सत्य असत्य उभय अनुभय मन के चार वचन के चार तथा औदारिक वैक्रियक आहारक-आहारक मिश्र ये वारह योग होते हैं। सात स्थानों में एक कार्माण योग होता है एकेन्द्रिय वादर सूक्ष्म दोइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय पांच इन्द्रिय असेनी पांच इन्द्रिय सेनी पूर्व शरीर को छोड़कर विग्रह गति में एक कार्माण योग होता है अपर्याप्त अवस्था विग्रह गति में। सात पर्याप्त स्थानों में एक औदारिक योग होता है तथा एकेन्द्रिय अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय वादर अपर्याप्त दोइन्द्रिय अपर्याप्त तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय अपर्याप्त पंचेन्द्रिय असेनी अपर्याप्तक सेनी पंचेन्द्रिय अप-र्याप्तक इन सातों में एक औदारिक मिश्र काय योग होता है। दोइन्द्रिय से लेकर असेनी पंचेन्द्रिय तक पर्याप्तक जीवों के दो योग होते हैं औदारिक काय और अनुभय वचन योग। पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के वारह योग होते हैं चार मन के चार वचन के चार काय के औदारिक वैक्रियक आहारक-आहारक मिश्र काय योग होते हैं। पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के एक साथ औदारिक व वैक्रियक के पर्याप्त पंचेन्द्रिय गति की अपेक्षा से नौ योग एक साथ होते हैं। पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य के चार मन के चार वचन के एक औदारिक काय योग नौ योग होते हैं देवो के चार मन के चार वचन के एक वैक्रियक काय योग ये नौ होते हैं एक पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव समास होता हैं ॥७१६॥

सिद्धान्त सार में भी कहा हैं।

णवसु चउक्के इक्के जोगा इगि दो हवन्ति वारसया ॥
तब्भव गईसु एदे भवंतर गईसु कम्मईयो ॥४३॥
सत्तसु पुण्णेसु हवे ओरालिय मिस्सयं अपुण्णेसु ॥
इगि इगि जोग विहीणा जीव समासेसु तेण्णेया ॥४४॥

त्रायरुपयोगा दशतूभय समासयोश्चतुः सप्त सन्ति ।।
अपर्याप्त पर्याप्ते दश संज्ञिषु व द्वादश ।।७११।।

दश जीव समासों में तीन उपयोग होते हैं वे कौन-कौन से होते हैं ? एकेन्द्रिय सूक्ष्म और वादर पर्याप्त अपर्याप्त दोइन्द्रिय तीन इन्द्रिय चारिंद्रय अपर्याप्त पंचेन्द्रय अपर्याप्त इन दश स्थानों में कुमति कुश्रुति और एक चक्षुदर्शन ये तीन उपयोग होते हैं। चारिन्द्रिय पर्याप्त तथा असेनी पर्याप्त जीवों में चार जीव समास होते हैं वे ये हैं कुमति कुश्रुत तथा चक्षुदर्शन ये चार उपयोग होते हैं। सेनी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक के सात उपयोग होते हैं वे कौन से हैं ? कुमति कुश्रुत तथा मति श्रुतावधि ये पाँच तथा अचक्षुदर्शन और अवधि दर्शन ये कुल सात उपयोग होते हैं। पर्याप्तक जीवों के दश उपयोग होते हैं वे इस प्रकार हैं कुमति कुश्रुति कुअवधि और मति श्रुत अवधि मनः पर्यय ये सात चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन ये कुल दश उपयोग होते है। कुल उपयोग बारह होते है मनुष्य पंचेन्द्रिय केवली के दो उपयोग होते हैं यहां अधिक से अधिक जीवों में उपयोग कितने होते हैं यह स्पष्ट कर दिया गया है ।।७११।।

आहारौ वच्चैवं त्रिदश योगार्भवन्त्य संयमत्रिषु ।।
एकादश संतमे नव सप्त सप्त दश मिश्रेषु ।।७१२।।

मिथ्यात्व सासादन असंयत सम्यग्दृष्टि इन तीन गुण स्थानों में सत्य असत्य उभय अनुभय ये चार मन के चार वचन के औदारिक-औदारिक मिश्र वैक्रियक-वैक्रियक मिश्र और कार्माण ये कुल तेरह होते है छठवें प्रमत्त संयतों में आहारकाय योग आहारक मिश्र दो होते हैं मन वचन के आठ औदारिक काय योग तथा आहारक-आहारक मिश्र ये एकादश योगहोते हैं। मिश्र गुणस्थान में दश योग होते हैं चार मत के चार वचन के औदारिक वैक्रियक काय योग ये दश होते हैं क्योंकि इस गुणस्थान में मरण नहीं होता है। देश संयत अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तकरण सूक्ष्म सांप्राय उपशांत मोह क्षीण मोह इन सव गुण स्थानों में नौ-नौ योग होते हैं। चार मनो योग चार वचन योग एक औदारिक काय योग होते हैं। सयोग केवली के सात योग होते हैं सत्य मनोयोग अनुभय मनोयोग सत्य वचन अनुभय वचन योग औदारिक-औदारिक मिश्र तथा कार्माण ये सात योग होते हैं। अयोग केवली के योगों का अभाव है ऐसा जानना चाहिए ।।७१२।।

आद्यद्वे पंच मिश्रेऽसंयतदेशेषु षड्सप्त ।
प्रमत्तादिक्षीणान्ते संयोगेऽयोगे भवन्तिदौ ।।७१३।।

मिथ्यात्व व सासादनइनदोनों गुणस्थानोंमें कुमति कुश्रुति विभंगावधि ये तीन ज्ञान तथाचक्षुदर्शन और अ चक्षुदशनये पांच उपयोगहोते हैं। मिश्र में कुमति, कुश्रुति, विभंगावधि ये तीनों मिश्र चक्षु अचक्षु ये दो दर्शन कुल पांच उपयोग होते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि व देश संयतों में मति, श्रुतावधि ये तीन ज्ञान चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन ये छः उपयोग होते। प्रमत्त संयत अप्रमत्त संयत अपूर्वकरण, अनिवृत्तकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांत मोह, क्षीणमोह, इन सव गुणस्थानों में सात उपयोग होते है। मतिश्रुतावधि मनः पर्यय ये चार ज्ञानोंपयोग तथा चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन ये तीन दर्शनोपयोग कुल सात होते हैं। संयोग अयोग केवलियों के

दो उपयोग होते हैं।

विशेष—मिथ्यात्व गुणस्थान में एकेन्द्रीय जीवों के तीन उपयोग होते हैं यद्यपि मिथ्यात्वगुण स्थान में पाँच उपयोग होते हैं वे सब देव नारकी त्रियंच मनुष्यों की अपेक्षा से कहे गए हैं। एकेन्दय दो इन्द्रीय तीन चार असैनी पंचेन्द्रीय जीव सब ही मिथ्यादृष्टि हैं। अपर्याप्त अवस्था में उनके तीन उपयोग पाये जाते हैं। परन्तु पाँच उपयोग पर्याप्त अवस्था में ही पाये जाते हैं। परन्तु पाँच उपयोग पर्याप्त अवस्था में अपर्याप्त में तीन ही होते हैं ये कुमति कुश्रुति अचक्षुदर्शन ते तीन ही होते हैं।

> जिनं पश्यति भक्तितां भावनया च निर्वान्छा।
> ग्रहित्वा च स्व कर्माणि यत्सम्यग्दृष्टि भवति ।।७१४।।
> रथयात्रा महोत्सवैः या नन्दीश्वरादि पर्वणि।
> जिनगृहे यजन्ति ये श्रावकश्शुद्ध धी नित्यम् ।।७१५।।

जो प्रभात में सुवह की शौचादि क्रियायों से निवृत्त होकर स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर अपने घर से अच्छत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलादि सब सामाग्री द्रव्यों को भाव भक्ति से अपनी दिन चर्या का कर्त्तव्य मानकर घर से मन्दिर की ओर गमन करता है। और मन्दिर के तोरण द्वार में जब प्रवेश करता है तब प्रथम ही यह उच्चारण करता है जयश्री, जयश्री, जयश्री कहने के पीछे निस्सही, निस्सही, निस्सही इतना कहकर मन्दिर में प्रवेश करता है वहां जाकर मन्दिर की तीन प्रदक्षिणा देकर अपने माथे पर दोनों हाथों को स्थावना करके धीरे-धीरे मध्यम ध्वनि से आकुलता रहित होता हुआ अच्छर यात्रा की हीनाधिकता से रहित भक्ति में विभोर होकर भगवान अरहंत देव व गुरु शास्त्र की भक्ति पूजा आराधना करता है। वह पूजा अपने दिनोंदिन की क्रियामान करता है अथवा अपना नित्य कर्म मानकर करता है। उसके बदले में कोई प्रकार की इष्ट अनिष्ट को विषय में इच्छा या निदान नहीं करता है। परन्तु अज्ञानी मोही जीव भगवान की भक्ति पूजा करता है मन में यह भी साथ ही भावना या इच्छा करता है कि ये भगवान मुझको पुत्र, धन, दारा दे देवेंगे, या इन भगवान की पूजा करूंगा तो भगवान के प्रसाद से मैं मुकद्दमा जीत जाऊँगा। पूजा करने के प्रभाव से मेरी शादी हो जावेगी, मेरे पुत्र हो जावेगा। मैं धनवान बन जाऊँगा, भगवान मेरे पर प्रसन्न हो जाएंगे और मेरी इच्छाओं की पूर्ती कर देवेंगे। इस प्रकार अनेक कोटी की इच्छायें कर के जो भगवान की भक्ति पूजा व तीर्थयात्रा आरती करता वह तो ऐसा समझना चाहिए कि जेसी जंगल में रहनेवाली भिल्लिनी अमूल्य गजमुक्ताओं के ऊपर पैर रखकर अथवा पैरों को ठोकर मारकर चली जाती है और लाल गोगचियों को एकत्र कर हार बनाकर अपने गले में पहनती हैं। उसी प्रकार समझना चाहिए कि जिस देव शास्त्र गुरु की पूजा करने का फल तो तीर्थंकर पद व मोक्ष पद की प्राप्ति का होना है। उसको फेंककर धूल एकत्र करना है। इसलिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते समय पूजा के फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। इतना प्रातः काल की क्रिया मान कर ही देव दर्शन व गुरु के दर्शन व पूजा करनी चाहिए। ऐसा करने से अपने आप में भव्य सम्यकत्वादि गुणों की वृद्धि अवश्य ही होती है। भगवान अरहंत यद्यपि

दोषों से रहित हैं ये ही वीतराग हो सकते हैं । अन्यन हीं उनकी वीतराग मुद्रा को देखकर उनके गुणों में जब अनुराग होता है, और उनके गुणों का चिन्तन करता है तब अपने आत्मिक गुणों को सब पर द्रव्यानि से रहित अनुभव करने वाले के सम्यक्त्व की उज्ज्वलता होती है । कि भगवान ने जिन जिनकर्मों दुःख के कारण मानकर उन कर्मों को समूल नष्ट कर वीतरागता को प्राप्त हुए थे परन्तु हम उन कर्मों के भोग-भोगकर दुःखों का अनुभव कर रहे हैं । यह बड़े ही दुःख की बात है जान कर भव्या को संसार और शरीर के प्रति विरक्त भाव उत्पन्न होता है । और भोगों से भी अरुचि पैदा होती है और खोटी बुद्धि उस समय में दूर हो जाती है । और सद्भावनाएं सद्बुद्धि की प्राप्ति और संसार से अरुचि जिनेन्द्र भगवान के गुणो में अनुराग होता है । तत्काल में भगवानकी पूजा करने परजो मिथ्यात्व रूप शत्रु अपने अनेकगुणगणों का नाश कर रहे थे वे कर्म भगवान के देखने व दर्शन करने या पूजा करने पर देखने मात्र ही से जिस प्रकार भाग जाते हैं कि जिस प्रकार मालिक को देखकर चोर अपना माल असबाब छोड़ कर भाग जाते हैं । इसलिए हमको हमेशा अपने भावों को शुभ बनाने के लिए भगवान वीत राग की पूजा करना चाहिए । भगवान की पूजा के विधान अनेक प्रकार के होते हैं एक नन्दीश्वर द्वीप की पूजा अष्टाह्निकाओं से की जाती है । दूसरे सिद्ध चक्रमंडल, तीसरे चौबीश तीर्थंकर व अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा । भगवान के जन्मदिन में जलयात्रा पूर्वक कलाशाभिषेक तथा अष्ट द्रव्यों से या इक्षुरस, घी, दूध, दही, चन्दन और जल सर्वौषधी से अभिषेक करना भी पूजा है । निर्वाणकल्याणक व इन्द्रध्वज इत्यादि एक तीर्थंकर व देवशास्त्र गुरु की पूजा करना व निर्वाण दिन में भगवान ने आज के दिन अपने सर्व दुःखों का नाश कर अविनाशी मोक्ष सुख जो सुख अनुपम है उसको प्राप्त किया था । कोई पंचमेरु स्थापना कर भगवान की पूजा करते हैं । कोई अपनि भक्ति सहित अपनी शक्ति के अनुसार गणधर वलय या शान्ति विधान की पूजा करते हैं । कोई प्रभावनापूर्वक रथयात्रा व जलयात्रा महोत्सवादि सहित प्रभावना कर इन्द्रध्वज पूजाविधान करते हैं कोई नित्य पूजा करते हैं कोई तीनों लोक में जितने अकृतिम चैत्यालय हैं जहाँ पर पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊँचा पद्मासन से विराजमान है जिन सिद्ध अकृत्रम प्रति माओं की पूजा कर उत्सव कर प्रभावना बाँटते हैं इन पूजाओं के करने से-सम्यग दृष्टि के गुणों की विशुद्धी होती है मिथ्यात्वादि पाप, मल सब धुल जाते हैं । अथवा सम्यत्व की प्राप्ति होती है जिससे संसार के दुःखों का अन्त व थाह मिल जाती है ।।७२०।८२१।।

भावैरष्टैर्द्रव्यैः जिनमर्चन्ति तेषां सागरोपमम् ।
याति पुण्यं विषकणं च दोषाऽऽरम्भादि किं दूषयन्ति ।।७१६।।
एको निंदति नित्यं नन्दत्येकोऽभ्यन्तर भावैः ।
नहरति नददाति किंचिदपि वीतमोहोजिनाश्चः ।।७१७।।

जो भव्य भगवान अरहंत जिनेश्वर की पूजा भाव सहित अष्टद्रव्यों से करते है । वे द्रव्यें पानी सुगन्ध, चन्दन, केशर, कपूर, अक्षत, फूल, नवेद्य, दीप, धूप फल इनसे पूजा करते हैं उसको पूण्य समुद्र के बराबर प्राप्त होता है । पूजा के निमित्त लगाये गए ज़ल, फूल, नैवेद्य दीप, धूप, फल आदि तोड़ने अग्नि जलाने दीप जलाने व नैवेद्य बनाते समय व फ़ूल, फल वृक्षों

पर सेतोड़ने व धूप अग्नि में खेवने पर आरम्भ होता है अथवा पानी कुआ में से लाने पर छानने गरम करने में आरम्भ होता है तथा पूड़ी, पापड़ी, वर्फी. घेवर पापर इत्यादि वनाने हैं आरम्भ अवश्य होता ही है परन्तु इस आरम्भ से होने वाली हिंसा एक पानी के वूंद के समान है। यदि एकजहरकी बिन्दु पानी के समुद्र में ढाल दी जाय तो वह भी पानी के समान ही हो जाती है परन्तु पानी जहरीला नहीं होता है उसी प्रकार जहाँ पुण्यानुवंधी पुण्य और आरम्भ से होनेवाली हिंसा भी समझना चाहिए। इसलिए भव्य जीवों को चाहिए कि वे प्रभात में उठ कर गृह सम्बन्धी सब कार्यों को विहाय मन्दिर में जाकर भाव भक्ति से भगवान की पूजन करना चाहिए। कोई भव्य भगवान की पूजा कर अपने भावों से पुण्यानुवन्धी पुण्य उपार्जनकर लेता है दूसरा है वह भगवान की विम्व की निन्दा करता है, हंसी करता है, अपमान करता है। वह भी अपने भाव के अनुसार विशेष रूप से पपानुवन्धी पाप उपार्जन करलेता है। दोनों ही अपने अपने भाव के अनुसार पुण्य और पाप उपार्जन करते हैं। परन्तु भगवान पुजारी से प्रेम कर धन-धान्य पुत्र-पौत्रादि व जायदादनहीं देते हैं, न निन्दा करने वाले के धन-धान्य पुत्र-पौत्रादि को हरण ही करता है क्योंकि भगवानने उस राग और द्वेप का कारण मोहनीय कर्म था। उसका भगवान ने क्षय कर दिया है इसलिए वे तो वीतराग हैं उनके राग व द्वेप नहीं होते हैं। परन्तु पूजक और निंदक अपने-अपने भाव के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। निन्दक पाप उपार्जन करता है पूजक पुण्य उपार्जन करता है।

दृष्टान्त—उपाख्यानम्।

एक निर्जन वन में दिगम्बर जैनाचार्य विराजमान थे, वहाँ एक दयालू भव्य ब्राह्मण मार्ग से निकला वह मुनिराज को देखकर विचार करने लगा कि अरे वेचारा नग्न दिगम्बर यह साधू यहाँ जंगल में ऐसी शीतकाल में मर जाएगा। ऐसा विचार कर अपने घर आया और वाजार में से एक सुन्दर कम्वल खरीदकर जंगल में ले गया और मुनिराज को नमस्कार कम्वल पास में रख दिया। मुनिराज ने भी आशीर्वाद दिया। वह ब्राह्मण उस कम्वल को मुनिराज पास के रखकर दूसरे नगर के प्रति गमन कर गया। इधर मुनिराज के पास कम्वल को देखकर चोर विचार करने लगा कि यह अहो कितना सुन्दर नया कम्वल है। इसको मुझे ले लेना चाहिए। यह विचार कर पुनः विचार करने लगा कि यदि यह साधू खड़ा होगा तो मेरे पास दण्डा है सो मार लगाऊँगा यह विचार कर वह उस कम्वल को अपने हाथ में लेकर चल दिया। उधर ब्राह्मण चलते-चलते सौ कोस चला गया तव वहां क्या देखा कि उस नगरी का राजा मर चुका था और वह निपुत्री था। उसके कोई सन्तान नहीं थी तव मन्त्रियों ने विचार किया कि राजा जवतक गद्दी पर नहीं वंठेगा तव तक राजा का शव दहन नहीं किया जा सकता है। तव मन्त्रियों ने मंत्रणा दी कि राजा का हाथी चतुर है, वह जिसको माला पहनायेगा वही राजा वनाया जाएगा। हाथी की सूंढ़ में माला दे दी हाथी उस माला को लेकर चारों ओर नगर में भ्रमण करता हुआ वहीं आ पहुँचा जहां वह ब्राह्मण नगर की तरफ जा रहा था। हाथी की दृष्टि उस ब्राह्मण की तरफ जाती है और वह हाथी ब्राह्मण के पास पहुंचा और उसके गले में माला पहना दी। महावत ने ब्राह्मण को हाथी के ऊपर विठा लिया और राज दावार में ले गया और वहां राज्या भिषेक हुआ और पूर्व राजा का शव दहन किया-

उधर चोर उस कम्वल को लेकर चल दिया और मुनिराज को नमस्कार किया तव मुनिराज ने धर्मवृद्धि आशीर्वाद कहा। वहां से कम्वल को लेकर जा रहा था कि उसको दिखाई दिया कि मेरे पीछे राजा की फौज आ रही है और मेरे को शीघ्र ही पकड़ लेगी यह देखकर आगे को दौड़ता है। पीछे को देखता जाता है इस प्रकार दौड़ लगाता हुआ जा रहा था कि कोई पुराना विना पानी का कुआ था उसमें गिर जाता है जिससे हाथ-पैर सव टूट जाते हैं। इसमें विचार करो कि उसको राज्य किसने दिया ? उसको कूए में किसने पटका ? इसमें दोनों के अपने अपने भाव ही फल देने वाले थे। वे मुनि नहीं ! अपने भावों के प्रमाण ही दोनों को पुण्य और पाप का फल प्राप्त होता है।

नंदन्ति च देवेन्द्रार्वस्त्राभूषणं स्रंगारादिभिः।
क्रीड़ा नृत्य नाटकैर्जिनं भक्ताश्चैव वहुविधैः ॥७१८॥

भक्त देवेन्द्र सौधर्मेन्द्र भगवान की भक्ति से पूजा करते हैं जव भगवान का जन्म होता है उस काल में सौधर्मादि इन्द्र स्वर्ग से चलकर मनुष्य लोक में आते हैं। तथा चतुर निकाय के देवों के सहित होकर नगर में आते है और नगरी की प्रदक्षिणा देकर राज महल में जाते हैं और शची इन्द्राणी माता जहां पर सोती हैं उस प्रसूती गृह में जाती है और वालक को अपनी गोद में ले आती है। तव देवेन्द्र उस वालक को अपने गोदी में हाथों में लेकर उसके मुख को व सर्वांग को देखते हुए त्रप्त नहीं होता है तव हजार नेत्रों से भगवान के शरीर को देखता है। उधर अनेक देव तांडव नृत्य करने लग जाते हैं। भक्ति में मग्न हो नाना प्रकार से उत्सव मनाते हुए मेरु पर्वत पर पांडुक शिला पर जाकर भगवान का अभिषेक करते हैं और तत्पश्चात भगवान की पूजा वस्त्राभूषणों से वाजूवंध मुकुट हार कुण्डल करधनी आदि पहना कर पूजा करते है तथा इन्द्रानी भगवान के आंखों में काजल लगाती हैं इसप्रकार जन्मकल्याणक के समय इन्द्रों ने भगवान की पूजा की थी ॥७१८॥

पूज्यपाद देवनन्दी आचार्य ने भी शान्ति भक्ति में कहा है।

ये ऽभ्यर्चिता मुकुट कुंडल हाररत्नैः सक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत पादपद्माः।

जिन शान्तिनाथ भगवान की पूजा इन्द्रादिक देवों के द्वारा की गई थी अथवा अर्घ उतार कर वस्त्र आभूषण अपने हाथों से भगवान को पहनाए थे। तथा आभूषणों से पूजा करते हैं। जव भगवान दीक्षा ले लेते हैं तव इन्द्र उनके केशों को सुवर्ण की डिविया में रखकर क्षीर समुद्र में छेपण करने को ले जाता है और गुणों का गान करता है।

देवेन्द्रारिन्द्रानियोऽनेन पुण्येनलब्ध्वा मनुजभवम्।
मुक्तियान्ति न भक्ताः संसरन्ति दीर्घ संसारे ॥७१९॥

जब भगवान जिनेन्द्र देव के गर्भजन्म तप और ज्ञान कल्याण तथा मोक्ष कल्याणक होते हैं। उन सव में सौधर्मादि इन्द्र ही अग्रसर हो-होकर उत्सव मनाते हैं। तथा गर्भ से लेकर निर्वाण कल्याणक तक की पूजा करते हैं। और भक्ति में विभोर होने के कारण ही वे एक मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। जिनेन्द्र भगवान के भक्त जन संसार में भ्रमण नहीं करते हैं। वे चार प्रकार के वंधनों को तोड़कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं। वहां वे भक्त

अनन्त अविनाशी सुखों के धाम अक्षय अनन्त सुख को प्राप्त होते हैं। आचार्य कहते हैं कि जो जिनेन्द्र भगवान की भाव सहित भक्ति करता है पूजा आराधना करता है वह नियम से स्वर्गों के सुखों को भोग कर मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है। इन्द्रों व इन्द्राणियों के मोक्ष जो कहा है वह दक्षिण इन्द्र और इन्द्रानियों का नियम है।

यक्षार्जनमजन्ति पृष्ठिं न कदापिराति भक्तिभिः।
नीत्वाधर्मचक्रैव मनुज भव ग्रहित्वा मुक्तिम् ॥७२०॥

जो सर्वान् यक्ष व्यन्तर जाति का देव होता है भगवान की भक्ति में तल्लीन रहता है जब भगवान अरहन्त देव के समवसरण का विहार होता है उस काल में वह धर्मचक्र को अपने मस्तक पर लेकर चलता है और चलते समय वह भगवान की तरफ अपना मुख ही रखता हैं वह भगवान को किसी भी अवस्था में अपनी पीठ नहीं दिखाता हुआ ही गमन करता है। वह उलटा ही चलता है जिससे वह अतिशय पुण्य का संचय कर लेता है जिससे वह देव व्यन्तर जाति का होते हुए भी मनुष्य का एक भव धारण कर नियम से मोक्ष को प्राप्त होता है यह शक्ति एक भक्ति में ही है। इसलिए भव्यात्माओं जब तुम भी मन्दिर में जाओ तो वेदी में विराजमान भगवान को अपनी पीठ मत दिखाओ पीठ दिखाने वाले का पुण्य नाश हो जाता है और पापास्रव का वंध होता है। तथा भगवान के बिम्ब की अविनय होती है। मन्दिर में से इस हिसाब से निकलना चाहिए कि जिससे भगवान को पीठ न लगे दायें या वायें हाथ की ओर मुख कर निकलना चाहिए उस यक्ष की भक्ति का व भक्ति से अपने को भी यह शिक्षा लेनी चाहिए कि अपन भी कभी-भी देवशास्त्र गुरु को पीठ देकर न चलें यही पुण्यानुबन्धी पुण्य का कारण है ॥७२६॥

श्रीपाल मैनादिभिश्च चक्रुर्जिनार्चाऽष्टद्रव्यैस्तदा।
कुष्टमहाव्याध्यभूत् भाव भक्तिभिः कुष्टं क्षयं ॥७२१॥
तदाऽप्रक्षद् भोदेवमम सुकृतं किं न भवति।
विना कुष्ट व्याधि क्षपयति च मैना सविनयं ॥
तदाऽब्रूत् भो मैना तव पति लघुं याति विमलम्।
करो पूजा सिद्धान् समूदयइ भक्तिः सतिहशम् ॥७२२॥

एक दिन श्रीपाल महाराज चम्पापुरी में सुख पूर्वक राज्य करते थे उनके पूर्व पाप कर्म के उदय में आने के कारण श्रीपाल के वालावस्था में ही कुष्ट का रोग हो गया था जब यौवन अवस्था को प्राप्त हुए तब उनके साथ में रहने वाले सात सौ वीरों के भी कुष्ट रोग हो गया था उस काल में सब शहर में कुष्ट के कारण दुर्गंध फैल रही थी। उस काल में प्रजाजन श्रीपाल महाराज के पास आकर कहने लगे थे कि हे राजराजेश्वर आपके प्रसाद से प्रजा में सब प्रकार आनन्द है परन्तु यह बड़े ही दुःख की बात है कि आप तथा आप के साथ में रहने वाले वीरों के सब शरीरों कुष्ट की वेदना हो गई है जिससे प्रजाजन आप के आरदाश लेकर उपस्थित हुए हैं कि यदि आप की आज्ञा होवे तो हम लोग इस देश को छोड़कर अन्यत्र देश में चले जावें यहां पर अब हम लोग दुर्गंध के कारण रह नहीं सकते हैं हम सब

दुःखी हैं प्रजाजनं हमको आज्ञा दीजिए ? ताकि हम अन्य देश में जाकर रहें। यह सुनकर श्रीपाल महाराज ने कहा आप लोग इतने न घबड़ायें हम आज या कल में सब इन्तजाम किए देते हैं। यह कह कर प्रजाजनों को विदा कर दिया और अपने काका वीर दयन को बुलवाया और कहा कि काका जब तक मेरे कुष्ट रोग की वेदना शांत नहीं होगी तब तक आप प्रजा का पालन करो प्रजाजनों को अपने पुत्रों के समान समझकर पालन करो इस प्रजा के कारण ही में इस राज्य वैभव को त्याग कर वन में ही विश्राम करूँगा। वीर दयन को राज्य भार सौंपकर श्रीपाल महाराज जंगल की ओर चल दिए। और अपनी माता व सब परिजन पुरजन से आज्ञा लेकर जंगल की तरफ को चल दिए। भ्रमण करते-करते मालव देश में जा पहुचे जहाँ पर छिप्रा नदी बहती थी उसके जंगल में सात सो वीरों सहित विराज मान हुए थे। कि उज्जयनी नगरी के राजा पहुपाल की पुत्री मैंना सुन्दरी एक आर्यका के पास पढ़कर आई थी उसने जिनमन्दिर में जाकर भगवान का अभिषेक कर गंधोदक लेकर राज दरबार में आई थी और गदोदक राजा को दिया। राजा ने गंदोदक का महात्म्य पूछा तब मैंना सुन्दरो उसका महात्म्य प्रकट कर कहा कि इस गंधोदक को जो रोगी लगाता है वह निरोगी हो जाता है बधिर सुनने लग जाता है अंधा देखने लग जाता है यह भगवान का नवन का गंधो दक सर्व पापों का नाश करने वाला है। तत्पश्चात राजा ने मैंना सुन्दरी को अपनी गोद में ले लिया और मस्तक पर हाथ फेर कर पुचकारा और कहने लगा बेटी तेरा किस राजकुमार के साथ विवाह कर दूँ सो कह कौन सा राजकुमार तेरे को पसन्द है। यह सुनकर मैंना सुन्दरी बोली पिता जी आप यह अपसगुन क्या कह रहे हैं कही कन्यायें वर खोजती फिरती हैं ? यह तो माता-पिता परिवार वालों का फर्ज है कि वे अपनी पुत्री के योग्य वर देखकर देवें पीछे पुत्री का जैसा भाग्य। जैसा उसके भाग्य में होगा वही होगा। यह सुनकर राजा कहने लगा कि मैंने तेरे को इतनी सुख की सामग्री दी और मेरा दिया हुआ क्या निरर्थक हो गया ? यह सुनकर मैंना सुन्दरी ने कहा कि हे पिता जी मेरे भाग्य से ही आप मुझे राजा मिले हैं यदि मेरा भाग्य नहीं होता तो तुम्हारे यहां पुत्री कैसे होती। यह सुनकर राजा को और अधिक गुस्सा आ जाता है और कहने लगा कि अरे बेटी तेरी बड़ी बहन सुर सुन्दरी ने भी तो कोशाम्बो नगरी राजा को अपना पति चुन लिया था अप तू क्यों तकरार करती है। यह सुनकर मैंना सुन्दरी कहने लगी कि हे पिता जी यह दोष सुर सुन्दरी का नहीं है यह दोष उसकी पढ़ाई का है उसने कुगुरु के पास विद्या अध्ययन किया है। तब राजा कहने लगा कि देख अभी मैं कह रहा हूँ कि जो कोई राजा को बतलाओ उसके साथ तेरी सादी कर दूं नहीं तो तेरे को पछताना होगा ? फिर भी मैंना सुन्दरी ने कहा कि आप चाहे जैसे पुरुष को दे दो वही घर वर मुझे स्वीकार होगा। पीछे हमारा कर्म है जो हमारे भाग्य में लिखा होगा वही मिलेगा। इस पर राजा गुस्सा हो गया और एक दिन जंगल को हवा खाने के लिए छिप्रा नदी के किनारे पर जंगल की सैर करने को गया और वहाँ पर श्रीपाल और उनके सात सौ वीरों को कुष्ट से युक्त देखकर कहने लगा कि तुम्हारा सब का सरदार कौन है ? ऐसा पूछे जाने पर एक कुष्टी वीर बोला कि देखिए उस आम के वृक्ष के नीचे बैठा है वही हम सब का अधिपति है। तब राजा पहुपाल

पहुँचा कि जहाँ पर श्रीपाल महाराज कुमार कुष्टा के भेष में बैठे थे। वहाँ जाकर राजा ने पूछा आप लोग कहां से यहाँ पर आए हुए हैं ? यह सुनकर श्रीपाल ने उत्तर में कहा राजन् कौन देश कौन ग्राम न कोई देश है न कोई ग्राम हम तो अपने विपदा के दिन विताने को तुम्हारे देश में आए हुए हैं। चम्पापुर में राजा अरीदमन कोटी भट राज्य करते थे उनका मैं पुत्र हूं जब पिता का स्वर्गवास होगया तब राज्य कार्य हमने संभाला पुनः हमारे भाग्य ने पलटा मारा जिसके कारण शरीर ने जो पूर्व कर्म किए थे उनके अनुसार यह कुष्ट रोग हमारे शरीर में उत्पन्न हो गया और प्रजाजनों को दुर्गंध आने लगी तब उन्होंने आकर हमारे से कहा तब हमने राज्य भार अपने काका वीरदमन को सौपकर जंगल की तरफ को विहार किया राजन न जाने ये कर्मफल कितने दिन तक हमें और दुःख भोगने पड़ेगे। तब पहुपाल राजा कहने लगा कि घबड़ाओ मत इस देश का तुम अपना ही देश मानों जब हम आपको बुलवावें तब तुम नगरी में आना हम तुमको अपनी लाडली पुत्री को देवेंगे। इतना कहकर पहुपाल नगर की ओर चला गया और मैना सुन्दरी व मैना सुन्दरी की माता को बुलाकर कहा कि बेटी अब भी अपनी जिद् को छोड़ नहीं तो तेरा विवाह देख आ जंगल में बैठे हुए कोड़ी के साथ किए देता हूँ तू पाछे पछतावेगी ? जो आप की इच्छा वैसा कीजिए। मंत्री बोला राजन अपनी पुत्री पर ऐसा अन्याय मत ढाइये यह पुत्री क्या उस कोडी के योग्य है कि जिसको तुम देना चाहते हो। अरे मंत्री मुख बन्द करो मैं तुम्हारी एक भी नहीं सुनूंगा मैं तो उस हठीली लड़की की जिद् को देखूंगा। राजा ने उसी दिन पण्डितों को बुलवाया और कहा कि मैना सुन्दरी का विवाह आज करना है कुष्टी के साथ में। पण्डितों ने पंचांग खोलकर देखे और महूरत बनाया जब आप आज ही करना चाहते है फिर तो आप महूर्त बनाकर ही बैठे है तब आज का ही शुभ मुहूर्त है। इतना कहकर राजा ने कहा कि पण्डितों को भेंट दे दो ? तब पण्डित बोले कि हम इस समय में दक्षिणा नहीं लेवेंगे। सब ज्योतिषी गण खड़े होकर राज दरबार से बाहर चले गये। तब राजा ने एक दूत को बुलाकर कहा कि जाओ जंगल में जहां कोढ़ियों का समूह बैठा है उनका सरदार श्रीपाल है उनको बुलाकर ले आओ। ऐसी आज्ञा पाकर वह द्वारपाल तुरन्त ही श्रीपालादि कुष्टियों को बुला कर ले आया और राजा ने भी मैना सुन्दरी की शादी श्रीपाल के साथ में कर दी। जब विदा होकर श्रीपाल के साथ में मैना सुन्दरी जा रही थी तब सब परिजन पुरुजन तथा कुटम्ब के सब लोग रो रहे थे यह देख राजा को भी यह खेद हुआ कि हाय मैंने मैना सुन्दरी के साथ में कैसा अन्याय ढा दिया हा मेरी मति मारी गई जो कि मैंने इतनी नाजुक बाला को एक दरिद्री कुष्टी के साथ विवाह दी। मैना सुन्दरी सबसे क्षमा कराती हुई श्रीपाल के साथ जंगल में चली गई। वहां श्रीपाल की सेवा करती थी तब श्रीपाल कहते थे कि आप हमसे दूर रहो क्योंकि यह उड़ना रोग है हम तो दुःखी हैं ही तुमको हम क्यों दुःखी करें ? एक दिन की बात थी कि मैना सुन्दरी एक चैत्यालय में दर्शन करने को गई हुई थी कि वहाँ पर एक मुनिराज आये हुए थे भगवान के दर्शन करने के पीछे मुनि महाराज के दर्शन किए और दर्शन कर पास में बैठी-बैठी अपने पूर्व कर्मों का बार-बार

निंदा कर रही थी। मुनि महाराज को विनय पूर्वक नमस्कार किया और पूछा भगवन हमारा कष्ट कब और कैसे दूर होगा। किस पाप के उदय से हमको कोढी पति मिला है सो सब कृपा कर कहो ? यह सुनकर मुनिराज बोले बेटी धैर्य धरो और सिद्ध चक्र का पाठ अष्टाहिंका पर्व आने पर भक्ति भाव सहित पूजन विधान करो ? पूजन करने से कुष्ट की वेदना नष्ट हो जायेगी। यह श्रवण कर मैना सुन्दरी के भाव सिद्ध पूजा करने के हो गये और फाल्गुण मास में अष्टान्हिका पख आने पर भक्ति भाव से पूजा विधान करवाया जब पूजा पूर्ण हो गयी तब अन्तिम दिन में भगवान का अभिषेक किया और सात सौ वीरों पर गंधोदक छिड़का जिसके प्रभाव से सात सौ वीरों सहित श्रीपाल महाराज का कुष्ट रोग दूर हो गया और श्रीपाल का (स्वरूप) शरीर कंचन के समान सुन्दर निर्मल बन गया। जैसा मुनिराज ने कहा था वैसही किया। मुनिराज के कहे अनुसार ही श्रीपाल का रोग दूर हो गया यह भगवान की भक्ति भाव पूजा करने का महात्म्य है। जिस प्रकार श्रीपालादि सात सौ का कुष्ट रोग दूर हो गया। यश भी फैल गया कि आज तक गायन किया जाता है कि भगवान की पूजा मैना सुन्दरी ने की थी जिससे श्रीपाल का शरीर अत्यन्त शोभायमान सुन्दर बन गया था। हे भव्य जीव भगवान की भक्ति करो यह भक्ति दुःखों का नाशकर सुख देने वाली है।

श्लोकार्थ

मैना सुन्दरी के पति श्रीपाल राजा के शरीर में कुष्ट की वेदना हो गई थी और जिससे मैना सुन्दरी अतयंत दुःख में दिन व्यतीत कर रही थी एक दिन वह मन्दिर में ऋद्धि के धारक चार ज्ञान के जानने वाले मुनराज के दर्शन कि और विनय सहित मुनिराज के दर्शन किये। और अपने कर्मों को पुनः पुनः निन्दा कर बैठो और मुनिराज से सविनय मस्तक होकर पुछने लगी कि भगवान हमने ऐसा कौन सा पाप किया है कि जिससे पति कोढ़ि मिला है और और यह कुष्ट का रोग उनका दूर होगा भी कि नहीं तब मुनिराज कहने लगे कि धैर्य धरो तुम्हारा पति कामदेव के समान निर्मल काया का धनी होगा तुम अष्टान्हिका में सिद्धचक्र को अष्ट द्रव्य लेकर आराधना करो जिससे तेरे पति व सात-सौ कुष्ट से व्यस्त वीरों का भी रोग ठीक हो जायेगा। यह सुनकर मैना सुन्दरी सिद्धचक्र की पूजा बड़े ठाठ के साथ की जिसका गंदोदक सब कोढ़ियों के ऊपर डाल दिया जिससे सब का कुष्ट रोग दूर हो गया। जैसा मुनि महाराज ने कहा वैसा ही हुआ यह भगवान भक्ति कुष्ट आदि भयंकर रोगों को भी गला देती है। यह पूजा सम्यक्त्व की वृद्धि का कारण है।

शुक वर्षा भुवौ भिल्ल वृषभ स्वानैः कृतंपूजाः ।
किं न आसरत् स्वर्गं त्रियश्चोऽपि भावैयु क्तैश्च ।।७२३।।
भूवेन्द्रशचिवो भक्तया शस्त्रे कृततोयं किं न श्रुतं स्मः ।
जोधपुरे रूष्ठनृपोऽ।र क्षत्रार्थ कृतोद्यमश्च ।।७२४।।

भक्ति में विभोर होकर एक तोता आम का फल भगवान के चरणों में चढ़ाया

जिससे वह मर कर देव गति को प्राप्त हुआ। एक वावड़ी में एक वर्षाभु (मेढ़क रहता था) उसने अपने कानों से सुना कि भगवान वीर प्रभु का समवोसरण विपुलाचल पर्वत पर आया हुआ है यह समाचार जानकर विचार करने लगा कि भगवान की पूजा अवश्य ही करनी चाहिए। यह विचार कर वह वावड़ी में स्थित कमलों को तोड़कर भगवान की पूजा के लिये ले जाने का विचार कर ऊपर को उछला परन्तु कमल नहीं टूटा तव एक कमल की पांखुड़ी को लेकर मुख में चल दिया और भक्ति के वसीभूत होकर उछलता हुआ जा रहा था कि मार्ग में श्रेणिक महाराज के हाथी के पैर के नीचे आ गया जिससे मरण को प्राप्त हो गया। और मरण कर देवगति को प्राप्त होकर अंन्तर मुहूर्त के पीछे अवधि ज्ञान से पूर्व भव का विचार किया और सारा समाचार जानकर पुनः पूजा करने के लिये स्वर्ग से आया और भगवान की पूजा वड़ी भाव भक्ति से की। राजा श्रेणिक भी भगवान महावीर के समवसरण जो विपुलांचल पर था वहाँ पहुंच गया और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान के सन्मुख जाकर पूजा की, पूजा करने के तत्पश्चात मनुष्यों की सभा में जा वैठा और सब तरफ को दृष्टि डाल कर देखा तव देव के मुकुट में विपरीत लाँछन था जबकि सब देवों के मुकुटों में अरहंत भगवान की मूर्तियां थी यह देखकर भगवान से राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया कि भगवान एक देव के मुकट विपरीत ही चिन्ह देख रहा हूं यह क्या बात है? तब भगवान की दिव्य ध्वनि खिरने लगी कि हे राजा श्रेणिक यह एक त्रियंच गति में मेढ़क का जीव था और महावीर भगवान की पूजा करने को कमल की पांखुड़ी मुख में दवा कर चल रहा था तव तेरे हाथी के पैर के नीचे दवकर मर गया जिससे यह देवगति को प्राप्त हुआ है। अवधि ज्ञान से पूर्व भाव को जान कर पूजा करने को आया हुआ आप को यह वताने के लिये इसने अपने मुकुट में मेढ़क का चिन्ह वनाया है। एक भील जंगल में गाये चरा रहा था जव देखा कि एक मुनि महाराज दिगम्बर वेष के धारी मुनिराज को देख कर आनंद में मगन होकर रात्रि में मुनिराज की भक्ति करी, पूजा करी जिसके प्रभाव से मरकर एक महान ऋद्धि का धारी देव हुआ! एक वैल मरण के सन्मुख हुआ स्वासें ही कुछ वाकी रह गई थी कि किसी भव्य ने उसको अरहंत भक्ति का उपदेश दिया और कहाकि णमो अरहंताणं इत्यादि स्मरण कर प्राण छोड़े जिससे देवगति को प्राप्त किया। कुत्ता ने भगवान के नाम की पूजा की भाव भक्ति से जिसने वह मर कर अमर हुआ। क्या इतने जीव भगवान की भक्ति करके क्या देवगति व स्वर्ग को प्राप्त नहीं हुए? जोधपुर राजा का दीवान था किन्ही दुराचारी लोगों ने राजा के पास झूठा दोषारोपण करके उसको मरवाने की चेष्टा की थी। राजा ने दीवान को पकड़वाकर मंगवाया मार्ग में श्री वीरनाथ की प्रतिमा निकली हुई थी उस प्रतिमा की भक्ति भाव सहित की। अथवा भगवान महावीर चाँदनपुर वाले की तसवीर वना कर अपने हृदय में स्थापना की थी। जव दीवान को जोधपुर ले जाया गया और राजाज्ञा से एक लोहे के खम्भा से बांध दिया और तोप के गोले छोड़े गये परन्तु भक्ति के प्रभाव से वे गोला शान्त होकर चरणों से कुछ ही दूरी पर जा गिरे व एक गोला तोप के अन्दर ही रह गया यह भक्ति व पूजा

का साक्षात फल है।

एकस्मिन् वेलायां त्रिसमाचारं ज्ञात्वा भूपालः।
श्री जिनस्य केवलं चक्रायुधपुत्रो वभूवुः ।।७२५।।
चित्तेऽ चिन्तयन् तदा प्रथमे जिनार्चा तदनंतरमन्यम।
पुत्रजन्मोत्सवतदा चक्ररत्नार्चा विधानं च ।।७२६।।

एक दिन एक समय में तीन समाचार श्री भरत राज को प्राप्त हुए उनको जानकर मन में विचार करने लगा कि एक तो श्री आदिनाथ भगवान को केवल ज्ञान दूसरा पुत्र-जन्म तीसरा आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है ये तीनों में से प्रथम में कौनसा कार्य करना चाहिये ? पुनः विचार करता है कि पुत्र और आयुध तो जीव को अनेक वार मिल चुके परन्तु यह भगवान के केवल ज्ञान की पूजा करना चाहिये यही सव वैभवों की देने वाली है यही जगत में जीवों को दुर्लभ है । इसलिये प्रथम में श्री वृषभ देव की पूजा करने के लिये कैलाश पर्वत पर भगवान के समोसरण में सपरिवार जाकर पूजा की तदनंतर पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और चक्ररत्न की पूजा की जिसके प्रभाव से अभ्यन्तर उनके परिणाम इतने निर्मल होगये थे कि दीक्षा धारण करते ही अंतरमुहूर्त में केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। इसलिये सवसे प्रथम में जितेन्द्र भगवान को पूजा करना चाहिये तदनंतर दूसरे गृह सम्वंधी कार्य करना चाहिये।

विशेष—एक काल में चक्रवर्ती के पास तीन समाचार आये, समाचार पाया कि भगवान श्री आदि नाथ को केवल ज्ञान हो गया है यह सुनकर शीघ्र ही सिंहासन से उतर जमीनपर आकर सात पेंड़ चल कर आदिनाथ भगवान को परोक्ष नमस्कार किया तत्पश्चात समाचार देने वाले को अमूल्य रत्नों के हारादि वहुत सा द्रव्य परितोषक दिया। तत्पश्चात समाचार लेकर द्वारपाल आया कि श्री महाराज की जै हो वड़ी पटरानी महारानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है यह समाचार पाकर राजा ने दूत को वहुत सा इनाम देकर सन्तुष्ट किया तत्पश्चात भंडारी आकर समाचार देता है कि महाराज आपकी आयुधशाला में चकरत्न उत्पन्न हुआ है। ऐसा समाचार पाया और समाचार देने वाले को इच्छित वस्तुयें व बहुधन परितोषिक देकर विदा कर दिया। इसके पश्चात चक्रवर्ती विचार करने लगा कि सवसे पहले भगवान के केवल ज्ञान की पूजा करना चाहिये क्योंकि भगवान की पूजा सव अमंगलों को नाश करने वाली है ऐसा निश्चय किया और सव नगर वासियों को सूचनार्थ डोडी पिटवा दी जिससे नगर के नर नारी व सव परिजन सव भरत महाराज के साथ साथ ही सव लोग पूजा की सामग्री ले लेकर चल दिये और जहां पहुंचे जहां पर श्री ऋषभदेव केवली भगवान समवसरण में विराज रहे थे वहां पहुच गये। सवने भगवान के समव सरण को तीन प्रदिक्षिणादीं और समवसरण में प्रवेश किया और अष्ट द्रव्यों से भगवान की पूजा वड़े वैभव के साथ की तथा नृत्य कर गुणों को गान कर मनुष्यों की सभा में विराज मान हुए और भगवान की दिव्य ध्वनि खिरी और धर्म धर्म का स्वरूप और फल भी सुना और जव दिव्य ध्वनि का समय समाप्त होने पर भरत चक्रवर्ती नगरी में आकर पुत्र-

जन्म का उत्सव मनाया नगर सजाया व याचक जनों को दान दिया वंदो जनों को मुक्त किया था इन सव का कहने का तात्पर्य यह है कि सबसे प्रधान भगवान की पूजा हैं यह सम्यक्त्व की वृद्धि का हेतु है।

किमिच्छकेन दानेन जगदा शाप्रपूर्ययः ॥
चक्रिभिः क्रियतेयज्ञ स यत्कल्पद्रुमोमतम् ॥७२७॥

चक्रवर्तीयों के द्वारा जो पूजा की जाती है वह कल्पद्रुम है पूजा है जो कोई जो कुछ इच्छा करता है उसको वही द्रव्य दी जाती है जिससे चक्रवर्ती के समय में छह खण्ड में कोई दीन दरिद्री नहीं रह जात है सव इच्छाओं को पूर्ती चक्रवर्ती के द्वारा कर दी जाती है।

सर्व मंगलेषूत्तमं जिनपूजा भक्तिः स्फुरायमानः ॥
पातिविमल सम्यक्त्वं चतुचत्वारिंश मलंविना ॥७२८॥

अरहंत व सिद्ध व आचार्य उपाध्याय साधुओं की पंचपरमेष्टीयों की जो पूजा है वह सर्व विघ्नों का क्षय कर सव मंगलों में प्रथम श्रेष्ठ मंगल है। पंच परमेष्टी को (विहाय) छोड़कर अन्य कोई भी इस संसार में मंगल नहीं है। भगवान अरंहत व सिद्धों के स्मरण मात्र से सव विघन दूर होजाते हैं तथा पापों का नाश हो जाता है। और पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। मंलगालयति स मंगल विघ्नों का नाश करती है अथवा विघ्नों का नाश करती है उसको मंगल कहते हैं। पुण्यलाति इति मंगलं। जो जीवों को पुण्य प्राप्त कराने में समरथ है उसको मंगल कहते है। जो भगवान को पूजा भक्ति भाव से तथा मन में आनंद प्रसन्न और उत्साह पूर्वक करते हैं जिससे सम्यक्त्व गुण अत्यन्त निर्मल हो जाता हैं। भगवान की पूजा करने से सम्यक्त्व के ४४ दोष नष्ट हो जाते हैं तव सम्यक्त्व शुद्ध हो जाता है।

सर्वस्थानेमंगलंरूपं श्रद्धानं परमेष्ठीनां ॥
सुखं भुञ्जन्ति भव्याः माकिंचिदपि सुखं च मिथ्यात्वे ॥७२९॥

यह भगवान पंच परमेष्ठीयों की कींगई भक्ति पूजा या की जाने वाली पूजा सव स्थानों में मगलकारी है क्योंकि यह पूजा स्वयम मंगल रूप है। जब भगवान अरहंतादि परमेष्ठियों में भक्ति वढ़ती जाती है वैसे वैसे ही पाप मलों का क्षय होने लग जाती हैं। जब भव्य जिन पंचपरमेष्टीओं व एक अरहत की पूजा आरती करता है व दीप जलाकर भगवान के गुणों का पुनः पुनः चिन्तवन करता है वैसा ही दुःख उसका साथ छोड़कर भागने लग जाते हैं। संसार अवस्था में पंचपरमेष्ठियों की पूजा करने वाला भव्य सव प्रकार के अमंगलों से मुक्त हो जाता है। जो अरहंत सिद्ध भगवान की पूजा करता है वह कोई भी अवस्था में रहे परन्तु उसके ऊपर उपसर्ग कदापि नही आ सकता है न दुःख ही उसके पास आसकते हैं तव सुखी ही रहता है। तृष्णा रूपी नागिन भी उसको नहीं डसती है वह दूर भाग जाती है जैसे घर के मालिक को आता देखकर चोर वहुत दूर भाग जाते हैं ये मालिक को आता देखकर वहां ठहर नहीं सकते हैं उसी प्रकार मिथ्यात्व और कषायें व आर्तध्यान व रौद्र-

ध्यान स्थिर नहीं रह सकते है। भव्य भगवान के गुणों को श्रद्धान पूर्वक अपने हृदय में उतार लेता है जिससे पर को पर जानने लग जाता है स्व को स्व जानता है तब आत्मा में जाग्रति होने के कारण से पर को अपनी नहीं मानता है पर विनाश होने पर भी दुःख को प्राप्ति नहीं होती है। सम्यग्दृष्टी जानता है कि ये पर वस्तुयें हैं वे मेरे से पर हैं वे सब पुण्य के योग से मिली हैं और पाप के योग होने पर वियोग को प्राप्त हुई इस लिये इनके वियोग या संयोग से क्या प्रयोजन है। इष्ट के वियोग व अनिष्ट के संयोग रूप दुःख सुख रूप कोई नहीं है यदि ऐसा नहीं होता तो महापुरुष क्यों इन से ममता का त्याग करते हैं। भगवान को पूजा करने वाले का शरीर भी निरोग होता है। मिथ्यादेव और गुरुओं को उपासना करने वालों को कहीं भी जावें वहां दुःखों की ही प्राप्ति होती है तथा जहां दृष्टि डालता है वही अमगल ही अमंगल होते हैं। कुदेव पूजा करने वालों को सिवाय आकुलता ओर पापों के और दूसरा कुछ नहीं मिलता है। जिस मिथ्या देवो की पूजा अराधना को करके भी अंत में नरक गति में जाकर अनेकानेक दुःखों का निरंतर भोग करता है। इस लिये भव्य जीवों को चाहिये कि कुदेव की पूजा को त्याग कर सच्चे देव अरहंत की पूजा श्रद्धान और विधिपूर्वक करें।

नारकेष्वमित दुःखं जिनपूजकानां किंचित् काले च।
तत्रैवंसुखानुभूतिन दुःखं तत्रैव दृश्यते ॥७३०

सम्यग्दृष्टी जिन भक्त जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने वाले भव्य जीवों के नरक निवास में रहने पर भी दुःख नहीं होता है वहां पर भो सुख का ही अनुभव करते है। वहां पर मिथ्यादृष्टो जीव निरंतर दुःख में मग्न रहते हैं परन्तु यह वात सम्यग्दृष्टी जीवों के नहीं पाई जाती है। यद्यपि वहाँ पर दुःख सब जीवों को ही होता है परन्तु जिन भक्त उस दुःख को अपने किये हुए पाप कर्म का फल मान भोग करते हैं जिससे उनके मन में आकुलता नहीं प्राप्त होतो है। और वे कर्मा के फल को भोगकर निर्जरा कहने वाले हो होते हैं। प्रथम तो जिनेन्द्र भक्त नरक गति में जा हो नहीं सकता है यदि किसो अज्ञानो मोही मिथ्यादृष्टा जोव ने मिथ्यात्व में ही (त्रियंच व मनुष्य) नरक गति और नरक आयु का बंध कर लिया है और पीछे जिनेन्द्र भगवान की पूजा का अतिशय जेखकर भगवान को भक्ति व पूजा करने में लवलीन हुआ तव मिथ्यादेव मिथ्याधर्म मिथ्यागुरुओं को प्रलोपकर जान कर त्याग दिया और तव अपनी आत्म जाग्रति हुई और आप निजघर के विवेक का पाकर सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और अन्त में सम्यक्त्व सहित मरण मिया और प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ और मर्याद से रहित दुःखों को प्राप्त होता है परन्तु सम्यक्त्व के कारण जिन भक्त दुःखों का भोग भी कर रहा है उस काल में उसके यह भावना जाग्रत होतो है कि हे आत्मन मैंने मोह का अवलम्वन लेकर जो पाप उपार्जन किये हैं उनका अव विपाक आ गया है वे हा कर्मो का फल तेरे को भोगना पड़ रहा है यह भी सास्वत नहीं रहने वाला है यह भी चन्द दिन का है। यह कर्मों का विपाक फल है सो इनका फल तेरे को अनिवार्य रूप से भोगना पड़ेगा। स्वयम भोग दूसरों को वेदना मत दे जैसे ये नारकी क्रूर परिणामी हो रहे हैं वैसा तू मत वन। ऐसी अन्तरंग भावना होने से भव्य जिन पूजक को

नरक में रहते हुए भी दुःख नहीं अनुभव में आता है। नरक में भी मंगलक्रिया होती है। वहां पर शारीरिक दुःख है मानसिक दुःख नहीं है वे नारकी उन नरकों में रहते हुए रत नहो होते हैं वे चाहते हैं कि वह कौन सा काल आवेगा कि जिसमें हम निकल कर मनुष्य लोके में उत्पन्न होकर भगवान की भक्ति व संयम प्राप्त करेगे इस लिए जिनेन्द्र भगवान की भक्ति अवश्य ही करो ॥३५७

मग्नं जिनपूजायां नगरोज्जयन्ते धनंजयस्योख्येन।
सुतं जघास मूर्छितः गंधोदकेन विषविनष्टः ॥७३१

उज्जयंत नगर में धनंजय नाम का सेठ था वह नित्य ही प्रातः में उठकर जिन मन्दिर में जाकर भगवान की पूजा जल इक्षु रस घी दूध दही चन्दन इत्यादि द्रव्यों से भगवान के बिम्ब का अभिषेक करता था। तत्पश्चात आठ द्रव्यें लेकर अष्ट कर्मो नाश करने के भाव से भगवान की पूजा करता था। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक मैं भगवान जिनेन्द्र की पूजा करूगा तब तक मेरे सब घर दुकान खेती का त्याग है तथा धन धान्य स्त्री पुत्र इत्यादि का त्याग है। सब परिग्रह से निवृत्त होकर पूजा करता था। उसकी परीक्षा करने की इच्छा करके एक देव उज्जयनी नगर में आ पहुंचा और जहां धनंजय का पुत्र क्रोड़ाकर रहा था वहां गया और उस बालक को सर्प बनकर काट खाया जिससे बालक के सर्वांग में जहर फैल गया था और मूर्छा खाकर जमीन पर पड़ गया था। उसको माता उठाकर मन्दिर में ले गई और धनंजय ने बालक के ऊपर गंधौदक के छिड़कते ही जहर की वेदना दूर हो गई थी।

इसकी संक्षिप्त कथा

एक दिन उज्जयनी नगरी में धनंजय नाम के एक श्रेष्ठी रहते थे वे प्रभात ही सब प्रकार के परिग्रह के संकल्प का त्याग कर जिन मन्दिर में नित्य पूजा किया करते थे। उनकी पूजा की प्रशसा चारों तरह फैल चुकी थी सब यही कहते थे कि पूजा करने में धनञ्जय नाम का श्रावक भगवान की पूजा बड़े ही भाव पूर्वक करते हैं। एक दिन सौधर्म की सभा में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने में मध्य लोक में मालवा देश के मध्य उज्जयनी नगरी में धनञ्जय श्रावक है उसके समान कोई भक्त व पूजा करने वाला नहीं है। यह सुनकर एक देव परीक्षा करने के निमित्त उज्जयनी नगरी में पहुँचा और एक काले सर्प का रूप धारण कर धनञ्जय के बालक को काट लिया जिससे बालक मूर्छाखाकर भूमि पर पड़ गया साथ में खेलने वाले बालकों ने उनकी माता से जाकर समाचार कह सुनाया कि तुम्हारे बच्चे को सर्प ने काट खाया है। यह सुनते ही वह माता भी बच्चे के पास शीघ्र ही पहुच गई। और बच्चे को अपनी गोदी में लेकर अपने घर में ले आई। उसके पश्चात धनञ्जय के पास समाचार दिया कि बच्चे को सर्प ने काट खाया है इसलिए आप शीघ्रही घर आओ और बच्चे का इलाज करवाओ बच्चा मूर्छित होकर सोया हुआ है जहर का वेग बढ़ता ही जा रहा है इतना [illegible] सेवक ने जाकर बच्चे की सब दशा हुई यह कथा कह सुनाई परन्तु धनञ्जय अपनी पूजा को न छोड़कर पूजा करने में ही लवलीन रहे उन्होंने बच्चे की तरफ दृष्टी तक नहीं डाली। अब क्या था कि सेठानी ने दूसरा आदमी भेज दिया कि अब आप पूजा को समाप्त करके

शीघ्र ही घर आओ और विष वैद्य को बुलाकर जल्दी ही इलाज करवाओ। यह अबकी बार भी नहीं सुनी और भगवान की पूजा में और दृढ़ रूप से स्थिति होते गये। धनञ्जय तो भगवानकी पूजा करने ही लगे थे कि स्त्री को एक दम गुस्सा आ गया और कहने लगी कि इतनी देर हो गई परन्तु अभी तक उनकी पूजा की समाप्ति नहीं हुई। इस प्रकार गुस्सा में आकर भण्ड वचन बोलती हुई मन्दिर में बालक को लेकर जा पहुँची और कुछ भण्ड वचन बोलती हुई कहने लगी कि अब तो तुम्हारी पूजा पूरी हो गई न ये कुल का दीपक बुझ गया। करो पूजा कितनी करते हो ? इतना कहने पर भी धनञ्जय ने एक बात पर भी दृष्टी नहीं डाली और वे पूजा हमेशा की भांति करते रहे जब पूजा समाप्त हो जाती है तब बच्चे के ऊपर दृष्टि डालते हैं और विषापहार स्त्रोत पढ़ कर मंत्र का उच्चारण कर बालक के ऊपर गंधोदक छिड़कते है कि बालक का जहर एकदम उतर जाता है और बच्चा खड़ा होकर इस प्रकार दौड़ने लग जाता है कि जिसे सेज पर से सोकर ही उठा हो। ग्रन्थकार कहते है कि भक्ति के प्रभाव से विष की वेदना शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इस प्रकार जानकर भव्य जीवों को भगवान की पूजा भक्ति निरन्तर करते रहना चाहिए।७३१

सर्वपरिग्रहेभ्यः रागंमुक्त्वा गच्छेर्युजिनगृहे।
निस्सही त्रिवारोच्चार्युः प्रविसितव्यश्चैत्यालये ।७३२।।

त्रिपरीत्येतिभक्त्या स्थित्वा गत्वा निसद्योच्चरण सनै।
हस्तयुग्मं भालेऽपि संस्थाप्य त्रिकरणशुद्धयैः ।।७३३

भव्य जिन भक्त सब संसार सम्बन्धी घर मकान स्त्री पुत्र माता पिता व गाय भैंष घोड़ा हाथी बैल आदि चेतन व अचेतन दोनों प्रकार के परिग्रह से ममत्व छोड़कर निराकुल होकर गमन करना चाहिए। तथा यह प्रतिज्ञा करना चाहिए कि जब तक मैं भगवान जिनेन्द्र देव के चैत्यालय के दर्शन व पूजा करने जा रहा हूं तब तक मेरे सब परिग्रह का त्याग है। तथा अन्तरंग परिग्रह कषायें व नो कषायें व मिथ्यात्व इनका भी मुझे त्याग है। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर चलता है मार्ग में कोई मित्र व इष्ट सम्बन्धी के भी मिलने पर अपते उपयोग से रंच मात्र भी चलायमान नहीं होता है वह उनकी तरफ दृष्टि उठाकर भी नहीं देखता हुआ ईर्या पथ से गमन क्रिया करता है और जब मन्दिर के निकट पहुँच जाता हैं तब अपने पैरो के उज्जवल स्वच्छ पानी से धोकर प्रवेश करता है। प्रवेश करते समय में निःस्सही तीन-तीन बार उच्चातण कर आगे जाता है प्रश्न—निस्सही क्यों करनी चाहिए ? निःस्सही उच्चारण करने का तात्पर्य यह है कि मन्दिरों में चतुर निकाय देव लोग व देवियां ये दर्शन करने को आती हैं व भव्य मनुष्य पुरुष व स्त्रियायें आती हैं उनके पूजा भजन भक्ति में कोई बाधा न आ जावे और अपने पैरों से कुचिल न जावें व ठोकर नहीं लग जाये। निःस्सही सुनते ही वे दर्शन पूजन भजन करने वाले जीव भी सावधान होकर मार्ग को व स्थान को छोड़कर इधर उधर हो जाते हैं इसलिए निःस्सही-निःस्सही-निःस्सही तीन बार उच्चारण करके ही प्रवेश करना चाहिए। आते समय फिर क्या कहना चाहिए ? मन्दिर में दर्शन के पीछे निकलते समय भी पहले के समान ही आसही-आसही इस प्रकार उच्चारण कर निकलना चाहिए।

यहां निःस्सही त्रिवार क्यों ? इसका भी कारण यह है कि किसी ने एक वार कहने पर पूजा भक्ति में तल्लीन होने के कारण से नहीं सुन पावा तो दूसरी व तीसरी वार उनको अवश्य ज्ञात हो जाएगा कि कोई आ रहा है वे मार्ग छोड़ देवेंगे। मन्दिर में प्रवेश कर क्या करें ? मन्दिर में प्रवेश कर भगवान की वेदिका की तीनप्र दक्षिणा देकर दोनों हाथों को मस्तक पर संस्थापन करके भगवान की वेदिका के दाहिनी तरफ या वाईं तरफ खड़े होकर एकाग्र-चित होकर धीरे-धीरे आकुलता रहित होकर भगवान की स्तुति स्तवन स्त्रोत मंद-मन्द स्वर से वोलते हुए व शुद्ध उच्चारण करना चाहिए जोर सोर करते हुये नहीं बोलना चाहिए ताकि दूसरों के पाट करने में कोई प्रकार की वाधा उत्पन्न न होवे। अपने दोनों हाथों को कमलाकार वनाकर) वार-वार जिनेन्द्र भगवान के विम्व की तरफ दष्टि डालते रहना चाहिए। मन को सम्पूर्ण आकुलताओं व घर सम्बन्धी व देश ग्राम व नगर सम्बन्धी क्रियाओं का चिन्तवन नहीं करना चाहिए। वचन से शुद्ध उच्चारण करते हुए काय की शुद्धि इधर-उधर को अपनी दष्टी नहीं डालना चाहिए। न हाथ पैरों को ही चलाना चाहिए स्वस्त खड़े होकर व बैठकर पूजा व स्तवन करना चाहिए। कहे प्रमाण करने मे पुण्य लाभ विशेप होता है और आत्म जाग्रति होती है जो सम्यक्त्व की वृद्धि का हेतु है।

> निवृत्तं विभोरन्ति को शौचादि क्रियानां व्रजेन्मन्दिरे।
> मार्ग संशोध्यं निष्प्रोहस्त युग्ममवलोक्य मार्गे ॥७३४
> नोध्वंनाधोऽस्तर्यड न दिग्दिगान्तरं पश्येयुः भव्याः।
> सन्मुखेवालोक्य सनैन धावयतं न विस्मयं तदा ॥७३५

सुबह के समय उठकर शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होकर व स्नानादिक क्रियाओं से निवृत्त होकर शुद्ध स्वच्छ वस्त्र धारण कर अपने घर से पूजन की सामग्री जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फलादि व अभिषेक की वस्तुयें जल चन्दन इक्षु रस दूध घी दही सर्वोषधि इत्यादि लेकर जिन मन्दिर में जाना चाहिये। तथा चलते समय मार्ग में भूमि को देखकर चलना चाहिए। क्योंकि मार्ग में विष्टा चर्म हड्डी व मृतक त्रश शरीरादि दुर्गन्धमय वस्तुये पड़ी रहती हैं उनसे स्पर्श न हो जावे। यदि प्रमाद सहित जूता खड़ाऊ चप्पल पादुकादि पहन कर चलेंगे तो उन वस्तुओं का स्पर्श हो जाने पर पुनः स्नान करना पड़ेगा।

दूसरीवात यह है कि मार्ग में अनेक लघु काय के धारक देहधारी विचरत रहते हैं उनके ऊपर पैर पड़जायगा तब उनका मरण हो जावेगा। वे जीव लट चेटी मकोड़ा खटमल माखी मच्छर व अन्य पचेन्द्रिय जीव निरन्तर विचरते रहते है उनका विनाश होगा। उन जीवों को वाधा भी पहुचेगी। इसलिए मार्ग में गमन करते समय ऊपर व नीचे व तिरछा नहीं देखते हुए चलना चाहिए क्योंकिस रलता पूर्वक गमन करना चाहिए। तथा दिशा विदिशा औकी तरफ मत देखो न कुछ भी चिन्तल करो इन सबसे राग छोड़ कर स्वतन्त्रता पूर्व चार हाथ भूका सोधन कर भली प्रकार से गमन करो। चलते समय अत्यन्त धीरे वा अत्यंत वेग से भागत चलो मध्यम चाल से चलाना चाहिये। सामने पास की जमीन को आकुलता रहित हो कर चलने पर जीवों की हिंसा व विराधना नहीं होती है। जहां से भगवान के मन्दिर की

शिखर दिखाई देने लगे वहीं से खड़े होकर नमस्कार कर आगे मन्दिर की तरफ गमन करना चाहिए दृष्टाष्टक स्तोत्र पढ़ना चाहिए। मन्दिरके दरवाजे के निकट पहुंचकर अपने दोनों पैरों को स्वच्छपानी से धोलेना चाहिए क्योंकिबाहरकी लगी हुई पैरों में धूल वहमन्दिरकी सफाई का नाश कर डालेगी वह मन्दिर पवित्र स्थान है कलह भीत से रहित निर्विघ्न स्थान है। मार्ग में चलते समय संसार व शरीर व पचेन्द्रियों के विषय भोग वासनाओं का चिन्तवन नहीं करना चाहिए। व मोन व्रत धारणकर चलना चाहिए यदि कोई अपना इष्ट मित्र मिलजावेतो भी बोलना नहीं चाहिए क्योंकि जो अपनी भावना भगवान के दर्शन पूजन की थी उन भावनाओं की क्षति हो जाती है और उपयोग मन्दिर की तरफ लगा था वह उपयोग हट जाता है जिससे अपने ही परिणामों में विकृता उत्पन्न हो जाती है। व की गई प्रतिज्ञा का ह्रास हो जाता है जिस समय हम मन्दिर को चलते हैं तब कहते हैं कि अब हम मन्दिर में दर्शन व पूजन करने के लिए जा रहा हूं ऐसी जो प्रतिज्ञा की थी वह दूर हो गई जिससे अपनी ही प्रतिज्ञा भंग हुई तब पापास्रव ही हुआ। यदि मन में खदे खिन्न होकर चलेंगे तो कहीं हमारी दृष्टि होगी कहीं हमारी शरीर का गमन क्रिया होगी तब प्रमाद भी वृद्धि होगी इसलिए खेद खिन्न होकर भी मन्दिर को नहीं चलना चाहिए, प्रसन्न चित्त हो कर चलना चाहिए ॥७३४।७३५॥

ईर्यापथं पठेपुः गात्रेऽलंकृते नर्वातिलकैश्च।
कृत्वासर्वाङ्गशुध्यैः भवताऽर्चयेज्जिनविम्वस्य ॥७३६

मन्दिर में जाकर प्रथम में ईर्यापथ पढ़ना चाहिए पीछे अपने मुख शुद्धि व शरीर शुद्धि वस्त्र शुद्धि कर यज्ञो पवीत (जनेऊ) धारण कर अपने अंगों में नव स्थानों में तिलक करना चाहिए प्रथम उत्तमांगमें व शिर में दोनों कानों में दोनों भुजाओं में कण्ठ में हृदय स्थान व नाभि स्थान में तिलक कर पुजारी अपने शरीर को अलंकृत करे व णमों कार मन्त्र की नोवार जाप सत्ताईस स्वासोच्छवास पूर्वक देना चाहिये।

मन्त्र पढ़ कर द्रव्यों की शुद्धि करने के पश्चात भगवान जहां जिस चौकी पर विराजमान करते हों उसको स्वच्छ जल से धोना चाहिए। पश्चात पीठ को धोना चाहिए और श्री लिखना चाहिये और भगवान की आरती सहित अर्घ चढ़ाकर जिनविम्व को वेदिका में से लाकर जहां श्रीकार लिखा गया है उसके ऊपर जिनविम्व को विराजमानकर अभिषेक करना चाहिए।७३६॥

प्राग्नीरेक्षु घृतैर्दुग्धदधिमृदुरसैःसर्वगोशीरगन्धैः।
वार्गोशीरैश्चमिश्रैश्च सुरभिशुभगंधाक्षतेन्दीवरैर्षा॥
नैवेधैर्दीप धूपेन वहुविधफलैर्य पजन्ति प्रथवत्वम्।
स्वंशक्तितस्तोऽपिनित्य लभतशिवपदंमांप्रतं भव्यजीवाः॥७३७॥

जो भव्य जीव इस पंचम् दुःसम काल में जिनेन्द्रभगवान की भक्ति पूजा आराधना करते हैं वे शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। जो प्रथम में पानी से भगवान के विम्व की पूजा अभिषेक करते हैं। तत्पश्चात् इक्षुरस की धारा से भगवान का अभिषेक करते हैं व शुद्ध गाय भैंष के घृत से भगवान का अभिषेक करते हैं वे कालान्तर में शुद्ध पद है उसको

प्राप्त होते हैं। दूध और दही से भगवान का अभिषेक करते हैं उनको धवल कीर्ति अनन्त काल तक विमान रहती है एसे पद को प्राप्त होते हैं जो दूध व दहीं में मीठा रस मिलाकर व गोसीर (चन्दन कपूर केशर) इत्यादि गंधों को मिश्रकर सर्व औषध से भगवान का अभिषेक करते हैं वे निरोग अथवा जन्म मरण से रहित एसी अवस्थाको प्राप्त होते हैं। जो चन्दन केशर कपूर आदि घिसकर भगवान के बिम्ब के ऊपर लेपकर गंध से अभिषेक करते हैं वे जीव सुगंधित सुन्दर शरीर को प्राप्त होते हैं अथवा परम औदारिक शरीर को प्राप्त होते हैं। जो जल चढ़ा कर भगवान की भक्ति करते हैं वे निर्मल चारित्र व सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं। जो गंध से भगवान की पूजा करते है वे चार संज्ञा रूपी ज्वर से मुक्त हो जाते हैं अथवा चार आहारभय मैथुन और परिग्रह रूपी संज्ञायें नष्ट हो जाती हैं। जो भव्य अक्षत लेकर उनसे भगवान की पूजा करता है व अक्षय अभिनाशी पद को प्राप्त होता है। जो पुण्यों से भगवान की पूजा करता है वह मदन के दर्प से रहित लोंकान्तिक व सर्वार्थ सिद्ध में उत्पन्न होता है तथा कामदेव के मान को मर्दन कर सिद्धरामा के साथ में विवाह करता है। जो नैवेध लेकर भक्ति लाल से जिनेश्वर को पूजा करता है वह अविनाशी सुख को प्राप्त होता है अथवा भूख की वेदना से मुक्त हो जाता है। जो दीपक लेकर भगवान की पूजा करता है वह केवल ज्ञान रूपी ज्योति को अपने में प्रकाशित करता है। जो धूप से भगवान की पूजा करता है अथवा सुगन्ध फैलाता है उसी प्रकार पूजक की कीर्ति सब जगह फैलजाती है जो भगवान की पूजा मीठे सुन्दर निर्दोष फलों से प्रभात मध्यन और शाम के समय में करता है वह अविनाशी मोक्षफल को प्राप्त होता है जे जीव एक एक द्रव्य भिन्न-भिन्न से करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं जो नित्य ही आठ द्रव्यों से भगवान की पूजा अपनी शक्ति के अनुसार करते हैं वे ही मोक्ष को नियम कर प्राप्त होते हैं।७४४।।

सम्मत भद्रा चार्य ने स्वयंभू स्तोत्र में वासु पूज्य भगवान की स्तुति करते हुए कहा है।

शियासु पूज्योऽभ्युदय कियासु त्वंवासुपूज्य त्रिदशेन्द्र पूज्य ।।
मयाऽपि पूज्योऽल्पधियामुनीन्द्र दीपार्चिषा कितपनो न पूज्य ।।१।।

हे पासुपूज्य भगवान आपकी पूजा तो तीनों लोकों में श्रेष्ट सौइन्द्रों ने की है। वे इन्द्र भवन वासियों के चालीश व्यन्तर देवों के वत्तीस होते हैं। कल्पवासी देवों के चौबीस एक चन्द्रमा एक सूर्य ये दोइन्द्र ज्योतिसियों के तथा एक मनुष्यों का राजा चक्रवर्ती व त्रिर्यचों का स्वामी के हरी सब सौइन्द्र आपको सेवा पूजा करते हैं। गणधर देव जो ग्यारह अग चौदह पूर्व के धारी मुनिराज हैं उनके द्वारा आपकी पूजा की गई है। [illegible] जन्म होने के पहले गर्भ में जब आये थे तब से ही इन्द्रो ने आपकी पूजा की [illegible] नगरी की शोला की व छप्पन कुमारियों ने आपकी माता की सेवा पूजा [illegible] इन्द्र आपको हाथी पर सवार कर सुमेर के ऊपर पांडुक शिला पर ले [illegible] हजार आठ कलशों से किया था और स्तवन नृत्य किया व [illegible] से आपकी पूजा की थी। तत्पश्चात जब आपको विराग हुआ तब आपके [illegible] कल्याण की पूजा की व

केवल ज्ञान होने पर समव सरण की रचना कर पूजा की थी। अन्ति में निर्वाण कल्याणक की पूजाकी थी। मुझ अल्प बुद्धि के द्वारा भी आपके अभ्युदय की पूजाकी जाती है क्योंकि आप में जो अभ्युदय व क्रियायोंमें है वह हेमुनीन्द्र वासुपूज्य वह क्रिया और अभ्युदय अन्य में नहीं है। इसलिए मैं अल्प बुद्धि भी आपकी पूजा करता हूं। क्योंकि यह व्यवहार भी देखा जाता है कि सूर्य की आरती दीपक से की जाती है। जबकि सूर्य के प्रकाश से सव भूमण्डल प्रकासित हो रहा है।

न पूजपार्थस्त्वोय वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्त वैरे ।।
तथापि ते पुज्य गुणस्मृतिर्न पुनाति चिन्तं दुरितांजनेभ्यः ।२।

हे नाथ पूजा करने से या आपका गुणगान करने से आपको कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि आप वीतराग हैं। क्योंकि आपकी आत्मा से मोह राग था उसका अत्यन्त अभाव हो गया है अथवा मोह क्षय हो गया है। इसलिए किसी के द्वारा पूजा या वन्दना करने न करने पर आप प्रसन्न नहीं होते हैं। अथवा कोई आप के गुणों का गान व पूजा वन्दना न करते हुए निन्दा ही करता है अथवा अपशद्ब रूप गालियायें देता हैं तो भी आप उस पर कुपित नहीं होते हैं आपको क्षोभ नहीं आता है क्योंकि आपके यहां पर द्वेप वैर भाव नहीं रह गया है इसलिए वैर भाव नहीं होता है। एसी अवस्थायें पूजक और निन्दक दोनों ही समान होते हैं। न पूजा करने वाले को मन्त्र यन्त्र तन्त्र धन धान्य स्त्री पुत्र भूमि इत्यादि दृष्ट पदार्थ ही देते हैं। न निन्दा या गाली देने वाले के द्रव्यों छीन ही लेते हैं। फिर भी जो आप को भक्ति भाव सहित करता है व आपके गुणों का वारवार चिनतवन् करता है तव पापों का नाश हो जाता है और मंगल मय वन जाता है तथा सव विघ्नों का नाश हो जाता। जो निन्दाकरता है वह भी अपने भावों के अनुसार पापों को उपार्जन कर अनर्थो का घर वन जाता है। जो हमारे भावों में आर्त व रोड रूप ध्यान निरन्तर चलता था जो अमंगल रूप था जव भगवान के गुणों में अनुराग हुआ तव वारवार गुणों का चित्तवन स्मरण किया तव आप भी वैसा ही वन जाने से आर्त रौद्र रूप दुर्ध्यान नष्ट हो जाते हैं इनका नष्ट होना ही मंनल है और पापों से रक्षा करता है। जो इनसे विपरित हैं आर्त रोद्र ध्यान को प्राप्त होते हुए पापों का संचय कर लेते हैं।

हे प्रभु आपके राग भाव का अंशभी विद्यमान नहीं है कि जिसके कारण किसे के द्वारा पूजा की जाय वंदना की जाय तव आप आनन्दित हों यह वात नहीं हैं। यदि ाप को कोई गालियायें देवे तो भी आप उससे कभी रूष्ठ नहीं होते हैं क्योंकि आपके आत्मा में वैर द्वेप खेत का कारण जो मोह था वह समूलक्षय हो गया है जिससे आपके कोप या खिन्नता का अभाव है इस प्रकार मोह के अभाव में किसी के द्वारा पूजने या गाली देने पर कोई प्रयोजन नहीं दोनों ही समान हैं। इससे आपका कुछ भी विगड़ता नहीं है। परन्तु हमारे भाव तो आपके गुणों का चिन्तवन हमारे भावों को तो अवश्य ही विपय करते हैं। इसलिए हम भी आप की पूजा भक्ति स्वतन आदि करते हैं। यह स्तवन आपके लिये नहीं है। पूजाके द्वारा आपको कुछ लाभ हुआ होता सो भी नहीं हैं या निन्दा करने से कोई

हानि हो गई हो सो भी नहीं हैं। यह देखा जाता है पूजक पूजा का फल आप स्वभाव से ही प्राप्त हो जाता है। आपके पुण्य गुणों का स्मरण करने मात्र से ही पाप मल धुलजाते हैं। विशेष-विशेष यह रागी मोही जो देव हैं वे अपनी निन्दा को देख कर निन्दा करने वाले का नाश करने का विचार करते हैं तथा पूजा करने वाले को धन धान्य आदि देने को चेष्टा करते हैं। परन्तु यह वात आप में नहीं है।

पूज्यजिनंत्वाऽर्चयतोजनस्य सावद्यलेशो वहु पुण्य राशौ ॥
दोषाय नालंकणिकावितस्य नदूंषिकांशीयि शिवाम्वु राशौ ॥३॥

हे वासुपूज्यजिन आपकी पूजा करते समय यद्यपि आरम्भ होता है वह आरम्भ पांच भेद वाला है। प्रथम में कोमल झाडू या वस्त्र से वेदो व सिंहासन विम्व का प्रमार्जन करना। दूसरा नदी कुआ वावडी आदि में से पानी लेने रूप आरम्भ है तथा पानी को प्रासुक करने रूप आरम्भ है चौथे पुष्प तोड़ने रूप पांचवे धूप खेहने व फल तोड़ने रूप आरंभ होता है। व दीपक जलाने पर आरम्भ होता है यह सत्य है। इन आरम्भों से होने वाला पाप वहुत कम है परन्तु पूजन करने पर पुण्य का संचय समुद्र के पानी को राशि के वरावर होता है वह पुण्यानुवंधी पुण्य है यदि एक वूंद जहर की समुद्र में डाल दी जाय तो क्या वह समुद्र का पानी जहरीला हो जायगा क्या? नहीं हो सकता है वह जहर की कणिका भी पानी रूप ही हाजायगी। अथवा शीतल सुगन्धित जल में यदि एक जहर की वूंद डाल दी जाये तो वह भी पानी रूप ही परिणमन वश्व ही कर जाएगी ॥३॥

यदस्तु वाह्यं गुणदोष सूते निमित्त मम्यन्तर मूल हेतोः
अध्यात्म वृत्तस्य न दंग भूतमम्यन्तरं केवलमप्यलं न ॥४॥

वाह्य में अनेक कारण मिलने पर भी कार्य की उत्पत्ति होती हुई नहीं देखी जाती है परन्तु वाह्य निमित्त के साथ अपने परिणामों में भी मिथ्यात्व कषायों का तथा ज्ञाना-वरणादिकों का क्षयोपशम होते व अपने परिणाम पूजा का निमत्ति पाकर शुभ रूप होते हैं तब पुण्य की उत्पत्ति हो जाती है। यदि अपने परिणामों में कलुषता रूप मिथ्यात्व कषायों का उदय अन्तरंग में कारण वाह्य में अनेक वैसे ही निमित्त मिलने पर जो परिणाम होते हैं वे ही परिणाम पाप वंध के कारण होते हैं। जव जीव के भक्ति पूजा दान व संयम के भाव होते हैं तव वह पुण्योपार्जन कर लेता है। जव जीव के भाव अशुभ होते हैं तब पापों का संचय कर लेता है निन्दा करना राग करना द्वेष करना हिंसा प्राणियों के घात करने के भाव होना इत्यादि हैं असत्य वोलना चोरी करना वेश्या के साथ व परस्त्री में रत होना परिग्रह में आसक्ति का होना। वाह्य निमित्त कारण कुछ कार्य करने में समर्थ नहीं होता है। गुण और दोषों का उत्पन्न करने वाला जो जीव का स्वपरिणाम है।४॥

वाह्ये तरोपाधि समग्रतेयं कार्यं ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्ष विधिश्च पुंसां तेना भिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानां ॥५॥

वाह्य अनेकानेक कारण मिलें और अंतरंग में योग्यता हो तब तो कारण से कार्य हो सकता है यदि कारण को हीनता हो तव भी कार्य नहीं वन सकता है यदि उपादान में

हीनता होवे तो वाह्य निमित्त कुछ भी कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता यह आपके मत में द्रव्य गत स्वभाव है तथा क्रिया और कार्य स्वरूप है द्रव्यगत स्वभाव के विना अन्य प्रकार से मोक्ष प्राप्त करने का विधान नहीं वन सकेगा। इसलिये अनेक ऋद्धियों के धारक ऋषिजन आपके चरणों की पूजा करते हैं।

विशेष यह है कि इन पांच काव्यों के अंतर्गत यह स्पष्टी करण किया गया है कि कारण दो प्रकार के होते हैं एक तो वाह्य निमित्त कारण दूसरा अभ्यन्तर निमित्त कारण वाह्य में कारण तो देव पूजा व देव दर्शन गुरुओं का उपदेश श्रवण करना व मिलना व जिन बिम्व और पंच कल्याण आदि महोत्सव आदि देखने पर शुभ भाव होने में कारण हैं ये सब वाह्य कारण मिलने पर भी जीव के शुभ भाव नहीं हो पाते हैं। जब वाह्य कारण मिले अंतरंग में मिथ्यात्व और कषायों का उपशम या क्षय या क्षयोपशम हो। अथवा मति ज्ञानावरण श्रुतज्ञान वरण वीर्यान्तराय इन कर्मों का क्षयोपशम हो तव वाह्य और अभ्यन्तर उभय निमित्त मिलने पर भव्य जीव के जाग्रति होती है इनके मिलने पर भी यदि अन्तरंग भावों में जाग्रत्ति नहीं हो तो कोई कार्य नहीं वन सकता है। जिस प्रकार के निमित्त मिले उसी प्रकार के भाव भी वन जावें तव तो जीव के पुण्य और पाप का आस्रव होता है। वाह्य कारण देव गुरु का उपदेश अंतरंग सम्यक्त्व पूर्वक संयम शीलों का पालन करने के व धारण करने के भाव होवें। यह जाग्रता आगई कि ये शील संयमादि ही मेरे कल्याण के हेतु हैं इनको निरंतर ही पालन करना चाहिये। ऐसे भाव अहिंसामय वन गये जो भाव अहिंसा रूप हो जाते हैं तव जीव को पुण्य काल लाभ होता है इन से विपरीत भावों की प्रवृत्ति होती है तव पापोपार्जन होता है जव इन दोनों से रहित हो जाता है तव भाव ही शुद्धोपयोग रूप होते हैं जिससे जीव मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है। इस लिये भाव से की गई भगवान की पूजा स्तवन भक्ति मोक्ष का कारण होती है भाव शून्य के कोई क्रिया फलित नहीं होती हैं। इसलिये अनेक ऋधियों के धारक ऋषि हे वासु पूज्य जिन आपकी पूजा भक्ति भाव से करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥५॥

पूजा भवति द्विविधं द्रव्य भावौ वींराक्षव गंधादिभिः।
वाच रूच्चारणे स्तथा स्तोत्र स्तवनं भवित द्रव्यम् ॥७३८॥
जिन सिद्ध गुणानां चैवानु चिन्तनं वा तद्रूपं यान्ति।
ध्यानानु भूतिःक्रिया भावपूजा जिनोपदिष्टैः ॥७३९॥

पूजा दो प्रकार की भगवान जिनेन्द्र ने कहीं है। प्रथम द्रव्य पूजा दूसरी भाव पूजा। जो गृह स्थ जल गंध अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल लेकर भगवान की पूजा करते है व स्तवन स्तोत्र पढ़ते हैं वह द्रव्य पूजा है। जो अष्ट द्रव्यें है वे मन व वचन काय की होने वाली अशुभ क्रियाओं व चंचलता को रोकने के निमित्त हैं। द्रव्य पूजा के साथ जो मन वचन काय रूप योगों में परिस्पन्द में लघुता होती है यह ही द्रव्य पूजा के साथ भाव पूजा शुभ परिणमन रूप होती है। दूसरी भाव पूजा वह है कि श्री अरहत सिद्ध साधुओं के गुणों का मन ही मन चिन्तवन करना व उनके गुणों को अपने में उतार लेना व अपने स्वरूप

में अनुभव में आते हैं। उनके गुणों का बार बार चिन्तवन करना तद्रूप परिणाम मन में करना यह पूजा भाव पूजा है। यह भाव पूजा निश्चय कर उन्ही योगियों को प्राप्त होती है जो सर्व प्रकार के परिग्रह रूपी जाल को तोड़ कर बीतराग छद्मस्थ हो गये हैं क्यों कि वे तद्रूप में अपने को अनुभव करते हैं। तथा क्रिया में परिणमन करते हैं। यह भाव पूजा निराकुल है तथा आत्मानुभूति रूप है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। जब जैसा गुण चिन्तन होता है गुण के चिन्तवन के अनुरूप भावों की क्रिया होती है व अनुभूति प्राप्त होती है इस प्रकार ध्यान रूप भाव पूजा का संक्षेप से कथन किया है।

येऽर्चन्ति गृह्णन्भक्त्या पावन्ति देवेन्द्रचक्रे सौख्यम् ।
ध्यानेलीनास्तुद्गुणे भावकस्द्रूपोतऽभूतिः ॥७४०॥

जो भव्यात्मा जिन अरहंत और सिद्ध भगवान के गुणों की पूजा करते हैं वे जीव स्वर्ग में जाकर इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं। वहां देवों की परिषद के अधिपति होते हैं। वहां पर वहुत काल तक देव गति के सुखों का बहुत काल तक अनुभव करते हैं। जो भगवान के गुणों का ध्यान करता हैं वह शीघ्र ही अरहंत सिद्ध शुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता हैं। अथवा अपने को अपने में ही शुद्धोपयोग करता है तब वह पूजक ही जिन सिद्ध स्वरूप आप ही हो जाता है।

जिन सिद्ध विम्वानां च प्रत्यक्षं मन्यतें साक्षातमेव ।
याग विधानं भक्ताः प्राप्तं च जिनसिद्ध स्वरूपं ॥७४१॥

जो भव्य अरहंत सिद्ध के विम्व की (प्रतिमा की) पूजा करते हैं व साक्षात रूप से अरहंत सिद्ध मूर्ति को मानकर पूजा भक्ति करता है वह भव्य जीव अपने आत्मा में प्रत्यक्ष रूप से जिन सिद्ध भगवान के समान आप अपने को अपने अत्मा में प्रत्यक्ष कर देखते हैं अरहत सिद्ध स्वरूप अपने को ही अनुभव करते हैं। जो जैसी भावना कर पूजा करता है उस भाव रूप आप अपने में परिणमन करता है अनुभव करता है। जिन सिद्ध पद को प्राप्त हो जाता है ७४१॥

यथा कोऽपि महिषगुणान् अर्चत्येकाग्र मनसि चैकान्ते ॥
भक्ति खलु महिषेव ऐधंते विषाणौ च तदा ॥७४२॥

जब कोई व्यक्ति एकान्त कमरा में वैठ कर भैंष का ध्यान करता है कि मेरी भैंष इतनी मोटी हैं हाथी के समान शरीर वाली है यथा उसके सींग वहुत लम्वे हैं भैंष के गुणों का वार वार चिन्तवन कर रहा था। तथा भैंष का ध्यान करता था तव मनुष्य पने को भूल और भैंष रूप भाव में परिणमन हो जाता है तव अपने को भैंष रूप से ही अनुभव करता है। भाव में ही भैंष के सींग वहुत लम्वे हो गये थे व सींग उस छोटे कमरा के दरवाजे में से निकल नहीं सकते थे। समय पाकर कोई मित्र मिलने के लिये आया और उसने अपने मित्र को आवाज लगाई तव वह मित्र कोठा के भीतर से वोलता है कि हे मित्र मैं कोठा में भीतर बैठा हूं यह सुनकर मित्र वोला भाई तुम शीघ्र ही कोठे से वाहर आजाओ। यह सुनकर भीतर से आवाज आती है कि हे मित्र मेरे सींग वहुत वड़े हो गये

हैं व छोटे से दरवाजे से होकर निकलते नहीं है क्योंकि दरवाजा छोटा और सींग बड़े लम्बे हैं वे दरवाजे में अटक जाते हैं। यह सुनकर मित्र जाकर उसके महिष के ध्यान व उपयोग को छुड़ाने की चेष्टा करता है तब वह उस भैंस के ध्यान को छोड़ देता है तब अपने को मनुष्य रूप से देखने लग जाता हैं। इसी प्रकार एकान्त स्थान व एकान्त चित्त होकर जब अरहंत सिद्ध का ध्यान करता है तदरूप अपने भाव करता है और तदरूप परिणमन करता हैं तब वह भी प्राप्ति उन परमेष्ठियों के प्रसाद से ही होती है उन से ही हमको मोक्ष मार्ग का उपदेश मिलाता है। इस कलिकाल में अरहंत केवली व श्रुत केवली मनः पर्यय ज्ञान के धारक व अवधिज्ञान के धारक आचार्य उपाध्याय व साधू नहीं हैं परन्तु वर्तमान में उनका उपदेश भी नहीं प्राप्य है। तो भी इस दुष्पम काल में हमको आचार्य उपाध्याय साधूओं के दर्शन व उपदेश मिल रहा है ये ही हमारे अरहंत सिद्ध हैं इसलिए इनकी ही भक्ति पूजा करना चाहिए। जो इनकी भक्ति पूजा करते हैं वे अरहंतों की पूजा करते हैं ।।७४५।।

अपशूनारम्भैर्विना यजयं सप्तगुण समाहितेन शुद्धेन ।।
नवधाभक्तियुक्ताराचार्याणामिश्यतेदादनं ।।७४६।।

अपशून्य के पांच भेद हैं प्रथम अपशून-अतिथि के घर आ जाने पर झाड़ू लेकर घर की सफाई करना। दूसरा जब मुनिराज घर पर आ जावें उस ही काल में गेहूँ आदि धान्य लेकर चक्की से पीसने की तैयारी करना या पीसना। तीसरा मुनिराज जब घर पर आ जावें तब कुआं वावड़ी या नदी आदि में से पानी भरने को जाना या निकलना चौथा जब कोई अतिथी घर पर आ जावें उसी ही काल में चूल्हे में अग्नि का जलाना या रसोई चढ़ाना पकाना। जब घर पर अतिथि आ जावें तब सालि जौ बाजरा आदि का कूटना चालू करना ये पंच सून्य आरम्भ हिंसा के कारण हैं। इनको अतिथि के आने के पीछे नहीं करना चाहिए। अग्नि जलाना भू खोदना पानी से जमीन को गीली कर देना झाड़ू देना अग्नि को पानी डालकर बुझा देना तथा वृक्षों से फूल पत्ते शाखाओं का तोड़ना भी अपसून है। दाता के सात गुण प्रथम संतोषी, दूसरे निर्लोभी, तीसरे विनयवान, चौथे भक्तिवान, पांचवे श्रद्धालू, छठवे विवेकवान, सातवां क्षमा दयावान ये सात श्रावक के गुण हैं। नवधा भक्ति प्रथम द्वारापेक्षण व पड़गाहन करना दूसरी भक्ति उच्चासन देना तीसरा भक्ति पाद प्रक्षालन करना चौथी भक्ति अष्ट द्रव्य लेकर पूजा करना विनय पूर्वक नमस्कार करना पांचवीं छठवी सातवी मन शुद्धि वचन शुद्धि काय शुद्धि आठवीं नोवीं आहार पानी शुद्ध है ये नौ भक्तियें है इनको नवकोटि शुद्धि कहते हैं। अथवा नवधा भक्ति कहते हैं। इन भक्तियों सहित मुनिराजों को श्रावक आहार दान देने से ही श्रावक श्रेष्ठ माना जाता है तथा सम्यक्त्वादि गुणों को वृद्धि होती है ।।७४६।।

वैयावृत्ति के विपयों में कुछ विशेष है वह कहते हैं।

द्रव्यं क्षेत्रं कालं सविवेकेन ज्ञात्वऽतिथीनाम् ।
अन्नं पानं स्वाद्यं खाद्यं निराकुलं क्षेत्रं च ।।७४७।।
यथाकाले च माता स्वगर्भोपपन्न पालकस्यपाति ।
तथैवानगामाणाम् पूजावैयावृत्तिनिष्प्रमादात् ।।७४८।।

प्रथम आहार देने वाले श्रावक व श्राविका विवेकवान होना चाहिए क्योंकि अतिथि के शरीर की अवस्था बिशेष वाल है या युवक या वृद्ध या रोगी है कौन सी वस्तु इनको सुगमता पूर्वक हजम होगी। यदि वृद्ध मुनि है उनको गरिष्ट भोजन दिया गया तो उनको निद्रा आवेगी प्रमाद व आलस बढ़ेगा सुस्ती आवेगी या जभाई अधिक आवेगी या शरीर अकड़ायेगा जिससे धर्म ध्यान स्वाध्याय में वाधा उत्पन्न होगी। यदि रोगी शरीर होगा और उसको गरिष्ट भोजन दिया गया तो उसके रोग की और विशेष वृद्धि हो जायगी जिससे स्वाध्याय सामायिकादि कृति कर्म करने में बाधा होगी व स्वध्याय में आलस आवेगा। व शरीर में वेदना और बढ़ जाने के कारण आकुलता होगी ? काल का विचार शीत काल में जो आहार दिया है वही आहार यदि उष्ण काल में दिया जाय उष्ण काल में दिया जाने वाला आहार शीत काल में दिया जाने पर हानिकारी होगा। अथवा वर्षा काल में किस प्रकार का आहार देना किस अतिथि को क्या देना यह काल विवेक अवश्य होना चाहिए। नहीं तो अनर्थ होने की सम्भावना है। आहार दाता को क्षेत्र का विचार भी करके आहार देना चाहिए कि यह क्षेत्र शीत है या उष्ण है मध्यम है जहां न विशेष शीत ही होती है न अधिक गर्मी ही होती है इस प्रकार क्षेत्र का विचार कर देना चाहिए। वह आहार चार प्रकार का होता है खाद्य दाल रोटी लाडू इत्यादि खाद्य लवंग इलाइची लेय जिव्हा से चाटने चटनी आदि पेय पानी दूध रसादि देना चाहिए। बत्ति का जहाँ पर स्त्री व वच्चों का व नीच मिथ्याचारी जीवों का संड जीवों का संचार न हो। जहाँ पर दंश मषक न हो ऐसी वस्तुका दान देना चाहिए कि जैसे माता अपने गर्भ से उत्पन्न बालक की सेवा करती है यदि बालक पेशाब कर लेता है तब माता बालक को गीले में से उठाकर सूखे वस्त्रों में सुलाती है और आप गीले वस्त्रों पर सोती है। तथा उनके शरीर में होने वाली वेदना का पूर्ण रूप से ध्यान रखती है क्योंकि बालक मुख से कुछ भी नहीं कहता है तो भी माता उसकी वेदना को जानकर दूर करने का प्रयत्न करती है। उसी प्रकार निराकुल होकर मुनियों की वैयावृत्ति करना चाहिए।

कथन मात्रै वगुणाः जिनानां षट चत्वारिंषदनवा।
सन्त्यनंतगुणो स्त्वेव अरहंताणां नहीनाऽधिकम् ॥७४६॥

कोई अज्ञानी कहता है कि भगवान अरहंत प्रभु के ४६ गुण ही होते हैं।

अरहंत भगवान के छ्यालीस गुण कहे गये हैं वे गण कहने मात्र के होते हैं परन्तु भगबान के अनन्त गुण होते हैं। अन्तरहित अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुख क्षायक सम्यक्त्व अनन्त दान अनन्त लाभ अनन्त भोग अनन्त उपभोग अनन्त वीर्य ये सव अनन्त ही होते हैं। कहने के लिए जन्म होते समय में दश अतिशय केवल ज्ञान होते समय दश अतिशय देव कृत चौदह अतिशय व आठ प्रातिहार्यों का होना अनन्त चतुष्ट के होने से छ्यालीश गुण कहे जाते हैं यह सव व्यवहार मात्र की जिन सिद्ध स्वरूप हो जाता है इस भाव पूजा का विधान भक्ति पूर्वक विनय युक्त कहा गया है इसलिए द्रव्य पूजा है वह भी भाव पूजा का कारण होती है। द्रव्य पूजन करने वाले को पुण्यानुबंधी पुण्य की प्राप्ति होती है और परंपरा से भी वो प्राप्त होता है। जो भाव पूजा करने वाले योगी मुनी यती अनगार हैं वे भाव पूजा को

करके तद्भव से मोक्ष प्राप्ति करते हैं। ये दोनों ही पूजा अमंगल का नाशकर मंगल प्रदान करती हैं। तथा दुःखों के समुद्र में से निकालकर उत्तम सुख में ले जाती है द्रव्य पूजा और भाव पूजा का कथन किया है। इसलिए भव्य जीवों को चाहिए कि वे भाव सहित आठ द्रव्य लेकर अरहंतादि परमेष्ठियों की पूजा करें पूजा करने से गृहस्थी में होने वाले आरम्भादिक पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्य का विशेष लाभ होता है ॥७४६॥

यजेयुःश्रुतंभवत्था द्रव्याष्टकैः शुभ्रवस्त्रादिभिश्च।
आकर्षयते मार्गे सर्वदुःखक्षयस्थानेधर् ॥७५०॥
श्रुतेनदृश्यते खलु शुभसंन्मार्ग लभते श्रुतविना मुक्ति वौख्यम्।
किंचिदप्यंतर माहुररहंतश्रुतदेवयोर्न ॥७५१॥

पूर्व में जैसे अरहंत जिन सिद्ध भगवान की पूजा भक्ति की उसी प्रकार जिनवाणी की पूजा करनी चाहिए अरहंत सिद्ध और जिनवाणी में वहुधा कोई अन्तर नहीं है। यह श्रुत भगवान वीतराग के मुख से दिव्य ध्वनि से निकली हुई है यह जिनवाणी है। जिनवाणी की भक्ति करने से व अष्ट द्रव्यों से पूजा करके सफेद वस्त्र का वेष्ठन चढ़ाना चाहिए पश्चात आरती उतारना चाहिए। प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करना चाहिए पश्चात में एक उच्चासन पर विराजमान कर भक्ति पूर्वक विनय सहित विराजमान कर पुनः-पुनः भक्ति पूर्वक नमस्कार करने से श्रद्धा भक्ति वढ़ती है और पुण्य लाभ होता है तथा अज्ञानांधकार नष्ट हो जा ा है। जिनवाणी जीवों को दुर्गम मार्ग से निकाल कर शुभ सन्मार्ग में ले जाती है विना श्रुतज्ञान के कोई भी जीव मुक्ति पद को कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। यह जिनवाणी एक महौषधि है जो इसकी भक्ति भाव से पूजा करता है उसके पंचेन्द्रियों के विषयों से अरूचि हो जाती है तथा यह वाणी अमृत स्वरूप है जिस प्रकार अमृत पान करनेवाले अमर बन जाते हैं उसी प्रकार जिनवाणी की पूजा मनन करते हैं उनको अविनाशी बना देती है तथा जन्म मरण व्याधि के दुःखों का नाश करती है व सब संसारी अवस्था में होने वाले दुःखों का सहसा नाश कर डालती है और मोक्ष सुख में पहुँचा देती है। क्योंकि तत्त्वातत्त्व का विवेक जिनवाणी श्रुत से ही प्राप्त होता है श्रुत की पूजा अनेक नामों कर दी गई है। जिनश्रुताभ्यास करने से आत्मा में श्रद्धान ध्यान संयम में श्रद्धान में दृढ़ता आ जाती है जिनवाणी के पढ़ने सुनने से आत्मज्ञान होता है आत्मज्ञान से ध्यान होता है ध्यान से कर्मों की निर्जरा होती है कर्मों के समूल क्षय होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आचार्योपाध्याय साधूनां नंदति द्रव्याष्टकैः।
वैयावर्न्तिः भक्तिश्च वैः वृद्धिर्भवति सम्यक्त्वे ॥७५२॥

जो भव्य सम्यग्दृष्टि भाव भक्ति पूर्वक आचार्य उपाध्याय और साधुओं की जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फलादि अष्ट द्रव्यों से पूजा करता है व स्तवन विनय वन्दना करता है। निरालस होकर उनकी वैयावृत्ति करता है उसका सम्यक्त्व व संयम चारित्र वृद्धि को प्राप्त होता है और निर्मल हो जाता है। आचार्य उपाध्याय और मुनि हैं वे किसी से कोई वस्तु की याचना नहीं करते हैं न वे ही कहते हैं कि तुम हमारे पैर छओ या पैर

दवाओ ? जो इतने निस्प्रह होते हैं कि पानी की भी याचना नहीं करते हैं। वे अपने ज्ञान ध्यान करने में लवलीन रहते हैं और वे निर्दोष चारित्र का पालन करते हुए कर्म रूपी ईंधन को ध्यान रूपी जलती हुई अग्नि में झोकने को समर्थ होते हैं। वे सब ही परमगंभीर और आरम्भ परिग्रह से बहुत दूर रहते हैं और इच्छाओं के विजयी (जिजीविसु) भट करते हैं। इच्छाओं को त्याग कर संसार शरीर और भोग रूपी परिग्रह से अत्यन्त भिन्न रहते हैं। तथा संसार के दु:खों से अत्यन्त भयातुर रहते हैं वे कोई भी अवस्था में ससार को भोगों का चिन्तवन व इच्छा नहीं करते हैं। यदि शरीर में कोई पूर्वोपार्जित वेदनीय कर्म के उदय में आने के कारण शरीर में रोग या वेदना के हो जाने पर इसकी वेदना को दूसरों को न कहते हुए आप स्वयम ही सहन कर देते हैं पर दीनता मय वचन नहीं बोलते कि हमारे रोग हो गया है हमको औषधी लाओ या वैद्य बुलाओ ? फिर भी सम्यदृष्टि धर्मात्मा उनके गुण व धर्मायतन जानकर उनकी भक्ति से पूजा करते हैं व उनकी शारीरिक वेदना को दूर करने के लिए उपचार व वैयावृत्ति करते हैं। भव्य सा धर्मी अपने हित का इच्छुक उनके गुणों को देखकर व गुणों में अनुराग कर उनकी सेवा वैयावृत्ति करते हैं। वैयावृत्ति के अनेक प्रकार होते हैं जैसे यदि साधू रोगी अवस्था को प्राप्त हुआ हो उस काल में शास्त्र पढ़कर सुनाना व हाथ पैर मलना दवाना व शरीर पर तैल मर्दन करना या औषधी की यथा योग्य व्यवस्था करना व आहार पानी की यथा काल योग्य व्यवस्था कर ना पास फलक चटाई इत्यादि को स्वच्छ कर जमीन को देखकर बिछा देना और समेट देना यथा योग्य स्थान पर रख देना। शोचादि क्रिया करने को जब जावें तब उनका कमण्डल लेकर साथ-साथ जाना व कमण्डल में गरम पानी करवा कर भर देना ये सब वैयावृत्ति के ही प्रकार (भेद) हैं। उनके गुणों में अनुराग का होना तथा उनकी वैराग्य की छटा को अपने हृदय में और उतारना और बारबार उसका विचार करने कि यह ही पदार्थ का स्वरूप है। इस प्रकार अपने अन्तरंग में विरक्त भावों की वृद्धि होती है तथा पाप दोषों से घृणा उत्पन्न होती है जिससे सम्यक्त्व निर्मल हो जाता है और पाप वृद्धि नष्ट हो जाती है और पुण्य की प्राप्ति व विनयादि करने से कहना है। इन ४६ गुणों से अरहंत भगवान का महात्म्य प्रकट नहीं होता है क्योंकि वे सर्वज्ञ सर्व दर्शी होते हैं। और उनके अनन्त गुण होते हैं जिनका वर्णन चार ज्ञान के धारी गणधर भी नहीं कर सकते अथवा वचन असंख्यात होते हैं गुण अनन्त होते हैं इसलिए भी वचन वर्गणाओं से कथन नहीं किया जा सकता है ॥७५२॥

श्री जिनवीरायनमः मोहध्वान्तविनाशकाय नित्यम् ।
सम्यक्त्वाधिकस्य परिसमाप्ति करोम्यत्यहम् ॥७५३॥
अज्ञानात्प्रमादादर्थमात्रापद वाक्यविमुक्तश्चैव ।
शंसोध्येयुर्बहु गुणैः श्रुतपारगैः विद्वद्वरैः ॥७५४॥

मैं ग्रन्थ कर्ता उन वीर अन्तिम वीर प्रभू को नमस्कार करता हूँ कि जिन्होंने सर्व अमंगलों का नाश कर सव मंगलों को प्राप्त कर लिया है। अमंगल जो मोह दर्शन मोह और चारित्र मोह ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय इनका नाश कर दिया है। तथा अठारह

दोषों को नाश कर दिया है वीर अंतरंग लक्ष्मी वाह्य लक्ष्मी से विभूपित हैं जो जिन है कर्म रूपी वैरियों को जिन्होंने जीत लिया है उन जिन वीर प्रभु को नमस्कार करके सम्यक्त्व विचार की समाप्ति करता हूं। जो मेरे प्रमाद व अज्ञान से अर्थ व मात्रा व पद वाक्य समास और छन्द में जो कुछ गलतियां रह गई होगी उन गलतियों को श्रुत के जानने वाले शोध कर पढ़ें। क्योंकि हमको इस विषय का पूर्ण परिज्ञान भी नहीं है। काव्य व्याकरण अलंकार छन्द का भी बोध नहीं है परन्तु अपने मन को वहलाने के लिए भक्तिवश यह शास्त्र लिखा है। इसलिये इस सम्यक्त्वाधिकार में जो कुछ गलती रह गई होगी उसको शोधकर शुद्ध करें।

॥इति प्रबोधसार तत्त्व दर्शनम् ॥